१ੴ सतिगुर प्रसादि॥

वारां गिआन रतनावली

भाई गुरदास जी

(हिन्दी अनुवाद सहित नागरी लिप्यन्तरण)

प्रकाशक — भुवन वाणी ट्रस्ट

मौसम बाग़ (सीता पुर रोड), लखनऊ

गुरमुखी

।। १ ओं सतिगुर प्रसादि ।।

महान् कवि एवं गुरुमत प्रचारक भाई गुरदास जी कृत

वारां ग्यान रतनावली

(कुञ्जी – आदि श्री गुरू ग्रन्थ साहिब)

[हिन्दी अनुवाद सहित नागरी लिप्यन्तरण]

अनुवादक

डॉ० जोधसिंह

एम०ए०, पी-एच०डी०, साहित्य रत्न

प्रकाशक

भुवन वाणी ट्रस्ट

मौसमबाग़ (सीतापुर रोड), लखनऊ– 226 020

के लिए विनय कुमार अवस्थी प्रो० लखनऊ किताबघर द्वारा प्रकाशित

प्रत्येक क्षेत्र, प्रत्येक संत की बानी।
सम्पूर्ण विश्व में घर-घर है पहुँचानी॥

★ प्रथम संस्करण—1986-87 ई०

★ द्वितीय संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण—2008 ई०

★ आकार— डबलडिमाई—1/16

★ पृष्ठ संख्या— 8 + 700 = 708

★ भेंट— 275/- रुपया

★ ISBN — 81-7951-023-9

★ वितरक— लख़नऊ किताबघर

मौसमबाग़, सीतापुर रोड,
लखनऊ - 226 020
Ph. No. 0522 - 2758508

★ मुद्रक— काकोरी ऑफसेट प्रेस, लखनऊ

विश्वनागरी लिपि

।। ग्रामे-ग्रामे सभा कार्या, ग्रामे-ग्रामे कथा शुभा ।।

सब भारतीय लिपियाँ सम-वैज्ञानिक हैं !

All the Indian Scripts are equally scientific !

भारतीय लिपियों की विशेषता

'संसार की लिपियों में नागरी लिपि सर्वाधिक वैज्ञानिक है', यह कथन बिलकुल ठीक है। परन्तु यह कहते समय हमें याद रखना चाहिए कि वह सर्वाधिक वैज्ञानिकता, केवल हिन्दी, मराठी, नेपाली लिखी जानेवाली लिपि में नहीं, वरन् समस्त भारतीय लिपियों में मौजूद है। क, च, त, प आदि के रूपों में कोई वैज्ञानिकता नहीं है। वैज्ञानिकता है लिपि का ध्वन्यात्मक होना। स्वरों-व्यंजनों का पृथक् होना। अधिक से अधिक व्यंजनों का होना। सबको एक 'अ' के आधार पर उच्चरित करना। ['अ' अक्षर-स्वर, सकल अक्षरों का इस भाँति मूल आधार। सकलविश्व का जिस प्रकार 'भगवान्' आदि है जगदाधार।] एक अक्षर से केवल एक ध्वनि। एक ध्वनि के लिए केवल एक अक्षर। स्माल्, कैपिटल्, इटैलिक्स् के समान अनेकरूपा नहीं; बस एक ही रूप में लिखना,बोलना, छापना और प्रत्येक अक्षर का समान वजन पर एकाक्षरी नाम। उच्चारण-स्स्थान के अनुसार अक्षरों का कवर्ग,

पंजाबी (गुरमुखी)-देवनागरी वर्णमाला

अ ਅ	आ ਆ	इ ਇ	ई ਈ	उ ਉ
ऊ ਊ	ऋ ਰੀ	ए ਏ	ऐ ਐ	ओ ਓ
	औ ਔ	अं ਅਂ	अः ਅ:	
क ਕ	ख ਖ	ग ਗ	घ ਘ	ङ ਙ
च ਚ	छ ਛ	ज ਜ	झ ਝ	ञ ਞ
ट ਟ	ठ ਠ	ड ਡ	ढ ਢ	ण ਣ
त ਤ	थ ਥ	द ਦ	ध ਧ	न ਨ
प ਪ	फ ਫ	ब ਬ	भ ਭ	म ਮ
य ਯ	र ਰ	ल ਲ	व ਵ	श ਸ਼
	ष ਸ਼	स ਸ	ह ਹ	

चवर्ग आदि में वर्गीकरण। फिर प्रत्येक वर्ग के अक्षरों का क्रम से एक ही संस्थान में थोड़ा-थोड़ा ऊपर उठते हुए अनुनासिक तक पहुँचना, आदि-आदि ऐसे अनेक गुण हैं जो अभारतीय लिपियों में एकत्र, एकसाथ नहीं मिलते। किन्तु ये गुण समान रूप से सभी भारतीय लिपियों में मौजूद हैं, अत: वे सब नागरी के समान ही विश्व की अन्य लिपियों की अपेक्षा ' सर्वाधिक वैज्ञानिक ' हैं। सब ब्राह्मी लिपि से उद्भूत हैं। ताड़पत्र और भोजपत्र की लिखाई तथा देश-काल-पात्र के अन्य प्रभावों के कारण विभिन्न भारतीय लिपियों के अक्षरों के रूप में यत्र-तत्र परिवर्तन, हिन्दी वाली ' नागरी लिपि ' को कोई श्रेष्ठता प्रदान नहीं करता। भारत की मौलिक सब लिपियाँ ' नागरी लिपि ' के समान ही श्रेष्ठ हैं।

नागरी लिपि को 'भी' अपनाना श्रेयस्कर क्यों ?

" नागरी लिपि' की केवल एक विशेषता है कि वह कमोबेश सारे देश में प्रविष्ट है, जबकि अन्य भारतीय लिपियाँ निजी क्षेत्रों तक सीमित हैं। वहीं यह भी सत्य है कि नागरी लिपि में प्रस्तुत और विशेष रूप से खड़ी बोली का साहित्य, अन्य लिपियों में प्रस्तुत ज्ञानराशि की अपेक्षा कम और नवीनतर है। अत: समस्त भाषाओं की ज्ञानराशि को, सर्वाधिक फैली लिपि " नागरी " में अधिक से अधिक लिप्यन्तरित करके, क्षेत्रीय स्तर से उठाकर सबको सारे राष्ट्र में, यहाँ तक कि विश्व में ले आना परम धर्म है। विश्व की सब भाषाओं में उपलब्ध ज्ञान (सत्साहित्य) तो है आत्मा, और 'नागरी लिपि' होना चाहिए उसका पर्यटक शरीर।

अन्य लिपियों को बनाये रखना भी कर्तव्य है

वस्तुत: यह परम धर्म है कि समस्त सदाचार साहित्य को नागरी में तत्परता से प्राचुर्य में लिप्यन्तरित करना। किन्तु साथ ही यह भी परम धर्म है कि देशी-विदेशी अन्य सभी लिपियों को उत्तरोत्तर उन्नति के साथ बरकरार रखना। यह इसलिए कि सबका सब कभी लिप्यन्तरित नहीं हो सकता। अत: अन्य लिपियों के नष्ट होने और नागरी लिपि मात्र के ही रह जाने से विश्व की समस्त अ-लिप्यन्तरित ज्ञानराशि उसी प्रकार लुप्त-सुप्त होकर रह जायगी जैसे पाली, प्राकृत और अपभ्रंश, सुरयानी आदि का वाङ्मय रह गया। जगत् तो दूर, राष्ट्र का ही प्राचीन आप्तज्ञान विलुप्त हो जायगा।

नागरी लिपि वालों पर उत्तरदायित्व विशेष !

इन दोनों परम धर्मों की पूर्ति का सर्वाधिक भार नागरी लिपि वालों पर है, इसलिए कि उनको ' सम्पर्क लिपि ' का श्रेष्ठ आसन प्रदत्त है। मैं कह सकता हूँ कि उन्होंने अपने कर्तव्य का, जैसा चाहिए था, वैसा निर्वाह नहीं किया परन्तु उसकी प्रतिक्रिया में अन्य लिपि वालों को भी " अपराध के जवाब में अपराध " नहीं करना चाहिए। ' कोयला ' बिहार का है अथवा सिंहभूमि का है, इसलिए हम उसको नहीं लेंगे, तो वह हमारे ही लिए घातक होगा। कोयले की क्षति नहीं होगी। अपनी लिपियों को समुन्नत रखिए, किन्तु नागरी लिपि को 'भी' अवश्य अपनाइए।

उपर्युक्त परिवेश में नागरी लिपि का पठन और समग्र श्रेष्ठ साहित्य का नागरी में लिप्यन्तरण तो आवश्यक है ही, किन्तु अन्य लिपियाँ भी अपनी लिपि में दूसरी भाषाओं के सत्साहित्य को लिप्यन्तरित तथा अनूदित कर सकती हैं। 'अधिकस्य अधिकं फलम्।' ज्ञान की सीमा नहीं निर्धारित है। 'भुवन वाणी ट्रस्ट' ने भी अवधी के रामचरितमानस को ओड़िआ भाषा में गद्य एवं पद्य अनुवाद सहित, ओड़िआ लिपि में लिप्यन्तरित किया है। परन्तु सम्पर्क और एकीकरण की दृष्टि से ' नागरी लिपि ' अनिवार्य है।

नागरी लिपि की वैज्ञानिकता मानव मात्र की सम्पत्ति है

अब एक क़दम आगे बढ़िए। भारतीय लिपियों की सर्वाधिक वैज्ञानिकता, युगों की मानव-श्रृंखला के मस्तिष्क की उपज है। क्या मालूम इस अनादि से चल रहे जगत् में कब, क्या किसने उत्पन्न किया ? भारत संयोग से इस समय इस विज्ञान का कस्टोडियन् है, स्रष्टा नहीं। भारत भी न जाने कब, कहाँ तक और कितना था ? अत: हम भारतीयों को नागरी लिपि के स्वामित्व का गर्व नहीं होना चाहिए। वह आज के मानव के पूर्वजों की देन है, सबकी सम्पत्ति है, सकल विश्व उसका समान गौरव से उपयोग कर सकता है। हमारा ' अहम् ' उस लिपि की उपयोगिता को रुद्ध कर देगा, जिसके हम सँजोये रखनेवाले मात्र हैं। किन्तु विदेशों में बसने वाले बन्धुओं को भी नागरी लिपि के गुणों को अपने ही पूर्वजों की उपज मानकर परखना चाहिए। ये गुण इस निबन्ध के प्रथम अनुबन्ध में अधिकांशत: वर्णित हैं। न परखने पर, उनकी क्षति है, विश्व की क्षति है। अरब का पेट्रोल हम नहीं लेंगे तो क्षति किसकी होगी ? पेट्रोल की नहीं, अपनी ही।

फिर याद दिला देना जरूरी है कि क, प आदि रूपों में वैज्ञानिकता नहीं है। बे, काफ़, पे और के, पी, जैसे ही रूप रख सकते हैं, किन्तु लिपि में 'अनुबन्ध प्रथम में ऊपर दिये हुए गुणों और क्रम को अवश्य ग्रहण करें। और यदि एक बनी-बनाई चीज को ग्रहण करके सार्वभौम सम्पर्क में समानता और सरलता के समर्थक हों, तो 'नागरी लिपि' के क्रम को अपनी पैतृक सम्पत्ति मानकर, ग़ैर न समझकर, मौजूदा रूप में भी ग्रहण कर सकते हैं। वह भारत की बपौती नहीं है। आज के मानव के पूर्वजों की वह सृष्टि है। इससे विश्व के मानव को परस्पर समझने का मार्ग प्रशस्त होगा।

नागरी लिपि में अनुपलब्ध विशिष्ट स्वर-व्यंजनों का समावेश

हर शुभ काम में कजी निकालनेवाले एक दूर की कौड़ी यह भी लाते हैं कि " नागरी लिपि सर्वाधिक वैज्ञानिक होते हुए भी अपूर्ण है और अनेक स्वर-व्यंजनों को अपने में नहीं रखती। उनको लिपि में क़हाँ तक और कैसे समाविष्ट किया जाय ?" यह मात्र तिल का ताड़ है। मौजूदा कर्तव्य को टालना है।

अल्बत्ता अन्य भाषाओं में कुछ व्यंजन ऐसे हैं जो नागरी में नहीं हैं--किन्तु अधिक नहीं। भारतीय भाषा उर्दू की क़ ख़ ग़ ज़ फ़, ये पाँच ध्वनियाँ तो बहुत समय

से नागरी लिपि में प्रयुक्त हो रही हैं। दु:ख है कि आज़ादी के बाद स राष्ट्रभाषा के पक्षधर ही उनको ग़ायब करने पर लगे हैं। इसी प्रकार मराठी ळ है। इनके अतिरिक्त अ़रबी, इब्रानी आदि के कुछ व्यंजन हैं, किन्तु उनको नागरी की दैनिक लिपि में अनिवार्यत: रखना आवश्यक नहीं। विशिष्ट भाषाई कार्यों में, ज़रूरी मानकर, उन विशिष्ट भाषाई स्वर-व्यंजनों को चिह्न देकर दरसाया जा सकता है।

अंग्रेजी—व्यामोह भी ! आदर्श भी !

अंग्रेज़ी की लिपि-जैसी पंगु लिपि शायद ही संसार में कोई हो। ' डब्लू '—तीन अक्षर, चार मात्राएँ, किन्तु वास्तविक ध्वनि (व) का लोप ! शब्दावली इतनी निरीह कि उसमें ८० प्रतिशत से अधिक शब्द विदेशी भाषाओं के हैं। अपनी छोटी-सी धरती पर यह ग़रीब भाषा, फ्रेंच शाहंशाही आ धमकने पर, अपने फ्रेंच-भक्त अंग्रेज बन्धुओं ही द्वारा लताड़ी गई, जैसे हमारे अंग्रेजी-भक्त भारतीय उसी शान में राष्ट्रभाषा का तिरस्कार करते हैं। वे अंग्रेजी से नसीहत लें कि दुर्दशाग्रस्त, पंगु लिपि पर आधारित, शब्द-निर्धन होकर भी कैसे हौसला क़ायम रखकर विश्व-साम्राज्य स्थापित किया। उस हौसले को आदर्श मानकर अपनी समृद्ध राष्ट्रलिपि और राष्ट्रभाषा को विश्वसम्मान दिलायें।

तदर्थ अ़रबी लिपि का आदर्श सम्मुख

और यह कोई नयी बात नहीं। नितान्त अपरिवर्तनशील कहे जाने वालों की लिपि ' अ़रबी ' में केवल २७-२८ अक्षर होते हैं। भाषा के मामले में वे भी अति उदार रहे। " अ़िल्म चीन (अर्थात् दूर से दूर) से भी लाओ"— यह पैग़म्बर (स़०) का कथन है। जब ईरान में, फ़ारसी की नई ध्वनियों च, प,ग, आदि से सामना पड़ा तो उन्होंने उनको अ़रबी-पोशाक – चे, पे, गाफ़ पहना दी। जब हिन्दोस्तान आये तो ट, ड, ड़ आदि से सामना पड़ने पर अ़रबी ही जामे में टे, डाल, ड़े आदि तैयार कर लिए। यहाँ तक कि सिन्धी में नागरी के सब महाप्राण और अनुनासिक, तथा सिन्धी के विशिष्ट अन्त:स्फुट अक्षरों को भी अ़रबी का लिबास पहना दिया गया। फिर ' नागरी ' वाले तो औदार्य का दावा करते हैं, उनको परेशानी क्या है ? और नागरी में भी तो परिवर्तन होते रहे हैं। ऋग्वेद के प्रथम मंत्र में प्रयुक्त ळ को छोड़ चुके हैं, और ड़, ढ़ आदि को अवर्गीय दशा में जोड़ चुके हैं। नागरी लिपि में कुछ ही व्यंजनों का अभाव है। उनमें से कुछ को स्थायी तौर पर और कुछ को अस्थायी प्रयोग के लिए गढ़ सकते हैं। ' भुवन वाणी ट्रस्ट' ने यह सेवा बड़ी सरलता, सफलता और सुन्दरता से की है।

स्वर और प्रयत्न (लह्जा) का अन्तर

अब रहे स्वर। जान लीजिए कि प्रमुख स्वर तीन ही हैं— अ, इ, उ— उनसे दीर्घ, संयुक्त (डिफ्थांग) आदि बनते हैं। अतिदीर्घ, प्लुत, लघु, अतिलघु संवृत, विवृत आदि विश्व में अनेक रूपों में बोले जाते हैं। भारतीय वैदिक एवं संस्कृत व्याकरण में अनेक हैं। वे स्वतंत्र स्वर नहीं हैं,

प्रयत्न हैं, लह्जा हैं। वे सब न लिखे जा सकते हैं, न सब सर्वत्र बोले जा सकते हैं। डायाक्रिटिकल मार्क्स कोशों में छाप-छापकर चमत्कार भले ही दिखा दिया जाय, प्रयोग में तो, " एक ही रूप में ", अपने निजी शब्द निजी देशों में भी नहीं बोले जाते। स्वर क्या, व्यंजन तक। एक शब्द " पहले " को लीजिए। सब जगह घूम आइए, देखिए उसका उच्चारण किन-किन प्रकार से होता है। एक बिहार प्रदेश को छोड़कर कहीं भी " पहले " का शुद्ध उच्चारण सुनने को नहीं मिलेगा। पंजाब, बंगाल, मद्रास के अंग्रेजी के उद्‌भट विद्वान अंग्रेजी में भाषण देते हैं–उनके लह्जे (प्रयत्न) बिलकुल भिन्न होते हैं। फिर भी न उनका उपहास होता है, न अंग्रेजी भाषा का ह्रास।

शास्त्र पर व्यवहार को वरीयता (तर्जीह)

शास्त्र और विज्ञान से हमको विरोध नहीं। लिपि की रचना, शोध, परिमार्जन, देश-काल-पात्र के अनुसार करते रहिए, परन्तु व्यवहारिकता को अवरुद्ध मत कीजिए। खाद्य पदार्थ के तत्त्वों का गुण-दोष, परिमाण, संतुलन, न्यूनाधिक्य, और खानेवाले की शक्ति के साथ उनका समन्वय, यह सब स्तुत्य है, कीजिए। किन्तु ऐसा नहीं कि उस शोध-समीक्षा के पूर्ण होने तक कोई भूखा रहकर मर ही जाय। थाली रखी है, उसे भोजन करने दीजिए। आज सबसे जरूरी है राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक का एक-दूसरे की ज्ञानराशि को समझने के लिए एक सम्पर्क लिपि की व्यापकता।

' भुवन वाणी ट्रस्ट ' ने स्थायी और मुकामी तौर पर अनेक स्वर-व्यंजनों की सृष्टि की है। दक्षिणी वर्णमालाओं में एकार तथा ओकार की ह्रस्व, दीर्घ–दोनों मात्राएँ हम बोलते हैं, किन्तु पृथक् लिखते नहीं। पढ़ने दीजिए, बढ़ने दीजिए। समस्त भाषाओं के ज्ञान-भण्डार को निजी क्षेत्रों से उठाकर धरातल पर नागरी लिपि के माध्यम से पहुँचाइए। नागरी लिपि मानव के पूर्वजों की सृष्टि है, मानव मात्र की है। यहाँ से योरोप तक उसकी पहुँच है। यूरोपियों की लिपि-शैली नागरी थी। अक्षरों के रूप कुछ भी रहे हों। किन्हीं कारणों से सामीकुलों में भटककर अलफ़ा-बीटा के क्रम को थोड़े अन्तर के साथ अपना लिया। फिर पुराने संस्कारों से याद आया, तो स्वर-व्यंजन पृथक् कर दिए। किन्तु उनके क्रम-स्थान जैसे के तैसे मिले-जुले रहे। सामीकुल की भाषाओं ने भी प्रमुख स्वर तीन ही माने हैं, ज़बर-ज़ेर-पेश (अ इ उ)। ै और ौ का उच्चारण अरबी, संस्कृत, अवधी और अपभ्रंश का एक जैसा है–(अई, अऊ)। किन्तु खड़ी बोली हिन्दी-उर्दू के अै, और औ, ऐनक, औरत जैसे। यह स्वरों की भिन्नता नहीं है, वरन् लह्जा (प्रयत्न) की भिन्नता है।

पूर्ण वैज्ञानिक कोई वस्तु मनुष्य के पल्ले नहीं पड़ सकती। "पूर्ण विज्ञान" भगवान् का नाम है। सा-रे-ग-म-प-ध-नि, ये सात स्वर; उनमें मध्य, मन्द, तार; कुछ में तीव्र, कोमल–बस इतने में भारतीय संगीत बँधा है। उनमें भी कुछ तो अदा नहीं हो सकते, अनुभूति मात्र हैं। किन्तु क्या इतने ही स्वर हैं ? संगीत के स्वरों का उनके ही बीच में अनंत विभाजन हो सकता है। जैसे अणु से परमाणु का, और उसमें

भी आगे। किन्तु शास्त्र एक वस्तु है, व्यवहार दूसरी। व्यवहार में उपर्युक्त षडज से निषाद तक को पकड़ में लाकर संगीत क़ायम है, क्या उसको रोककर इनके मध्य के स्वरों को पहले तलाश कर लिया जाय ? तब तक संगीत को रोका जाय, क्योंकि वह पूर्ण नहीं है ? क्या कभी वह पूर्ण होगा ? पूर्ण तो ' ब्रह्म ' ही है। " बेस्ट् इज् द ग्रेटेस्ट ॲनिमी ऑफ़ गुड्।" इसलिए शग्ल और शोब्दों की आड़ न ली जाय। नागरी लिपि पर्याप्त सक्षम है।

विश्व-व्यापकता के संदर्भ में नागरी लिपि के स्वरों का रूप

लिखने के भेद – यदि नागरी को हिन्दी क्षेत्र की ही लिपि बनाये रखना है तो इ, उ, ए , ऐ लिखने के अपने पुरानेपन के मोह में मुग्ध रहिए। और यदि उसे राष्ट्रलिपि अथवा विश्व तक में, यहाँ तक कि सामीकुल में भी आसानी से ग्राह्य बनाना चाहते हैं तो गुजराती लिपि की भाँति अि, अु, अे, अै लिखिए। किन्तु कोई मजबूर नहीं करता। विनोबा जी ने भी इसका आग्रह नहीं रखा। आकार और रूप का मोह व्यर्थ है। पुराने ब्राह्मी-शिलालेखों को देखिए। आपके मौजूदा रूप वहाँ जैसे के तैसे कहाँ हैं?

संस्कृत के तिरस्कार से भाषा-विघटन

मेरा स्पष्ट मत है कि " संस्कृत " राष्ट्रभाषा होने पर, भाषा-विवाद ही न उठता। सबको ही (हिन्दी-भाषी को भी) समान श्रम से संस्कृत सीखने पर, स्पर्धा-कटुता का जन्म न होता, संस्कृत का अपार ज्ञान-भण्डार सबको प्रत्यक्ष होता, और हिन्दी की पैठ में भी प्रगति ही होती। उर्दू-हिन्दी की अपेक्षा, अन्य सभी भारतीय भाषाएँ, संस्कृत के अधिक समीप हैं। संस्कृत देश-काल-पात्र के प्रभाव से मुक्त, अव्यय (कभी न बदलनेवाली), सदाबहार भाषा है। अन्य सब भाषाएँ देश-काल-पात्र के प्रभाव से नहीं बचतीं।

आज क्या करना है ?

किन्तु अब " हिन्दी " ही राष्ट्रभाषा सबको मान्य होना चाहिए। यह इसलिए कि अन्य भारतीय भाषाओं में हिन्दी ही एक भारतीय भाषा है जो देश के हर स्थल में कमोबेश प्रविष्ट है।

सार यह कि हुज्जत कम, काम होना चाहिए। शास्त्र पर व्यवहार प्रबल है। समय बड़ा बलवान है, वह आवश्यकतानुसार ढलाई कर देता है। हिन्दी-क्षेत्र में ही घूम-घूमकर प्रतिमा-अनावरण, हिन्दी का महिमा-गान, अनुवादों की धूम, अमुक भाषा की हिन्दी को यह देन, अमुक भाषा में हिन्दी की यह छाप–यह सब दिशाविहीनता, क़िलेबन्दी और अभियान त्यागकर, नागरी लिपि में विश्व का साहित्य लाइए। टूटी-फूटी ही सही, हिन्दी बोलना भी – ("ही" नहीं बल्कि "भी") बोलने का अभ्यास कीजिए। लिपि और भाषा की सार्थकता होगी। मानवमात्र का कल्याण होगा। हमारी एकराष्ट्रीयता और विश्वबन्धुत्व चरितार्थ होगा।

– नन्दकुमार अवस्थी (पद्मश्री)

मुख्यन्यासी सभापति, भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ।

प्रकाशकीय (द्वितीय संस्करण)

विषय-प्रवेश

भुवन वाणी ट्रस्ट द्वारा भारत एवं समग्र धरातल के सदाचार-वाङ्मय के मूल पाठ को तद्वत् नागरी लिपि में हिन्दी अनुवाद सहित प्रस्तुत करने की श्रृंखला में गुरमुखी लिपि का योगदान अनुपम और अविराम रहा। सर्वप्रथम " आदि श्री गुरूग्रन्थ साहिब " सम्पूर्ण (चार सैंचियों में) प्रकाशित हुआ। यह पवित्र योगदान पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला में हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ० मनमोहन सहगल, एम०ए०, पीएच०डी, डी०लिट्० के द्वारा प्रस्तुत हुआ। यह कार्य चल ही रहा था कि दैवकृपा से हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी के सरदार डॉ० जोधसिंह, एम०एम०,पीएच०डी०, साहित्यरत्न से परिचय हुआ। उनके अनन्त श्रम के फलस्वरूप " श्री दशम गुरूग्रन्थ साहिब " सम्पूर्ण (चार सैंचियों में) प्रकाशित हुआ। ग्रन्थ समाप्त होते ही डॉ० जोधसिंह जी ने भाई गुरदास जी के वाराँ (ज्ञान रत्नावली) के प्रकाशन का प्रस्ताव रखा और अविलम्ब उसका अनुवाद भी सम्पूर्ण कर दिया। वही अनुपम ग्रन्थ इस समय पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत है। इन सभी ग्रन्थों में गुरमुखी मूलपाठ नागरी लिपि में तथा अनुवाद हिन्दी में दिया है। डॉ० जोधसिंह इस समय पंजाबी विश्वविद्यालय में ही दि इन्साइक्लोपीडिया ऑफ् सिखिज़्म विभाग में विभागाध्यक्ष के पद पर कार्यरत हैं।

ग्रन्थ-समर्पण

शाश्वत मानव-धर्म सनातन से एक है, और सदैव वही रहेगा। यह हम दुर्बल मानव हैं जो उसके रूप में नाना विकृतियाँ लाया करते हैं और अलगाव की कुभावना में स्वयं ग्रस्त होकर त्रस्त होते रहते हैं। ऐसे ही संकटकालों में दैवी पुरुष सन्तजन अवतरित होते हैं और अपनी उपदेशमयी अमृतवाणी से समाज में पुन: सद्भावना जागरित करते हैं। यों ही सुधरना-बिगड़ना, यही इतिहास का क्रम है। डॉ० जोधसिंह ने अपने वक्तव्य में भाई गुरदास जी का जीवनवृत्त एवं कृतित्व दिया है। भाई जी सन्तों में सन्त और रत्नों में रत्न हैं।

हम उनकी वाणी को प्रकाशित करके उनकी ही पुण्य-स्मृति में सभक्ति इस पावन ग्रन्थ को अर्पित करते हैं। भाई गुरदास जी का "कवित्त और सवैये" भी ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित हो चुका है।

आभार-प्रदर्शन

भुवन वाणी ट्रस्ट द्वारा इस वाणीयज्ञ के प्रमुख ऋत्विज, ग्रन्थ के विद्वान अनुवादक एवं लिप्यन्तरणकार हैं। उनका आभार सर्वोपरि है। भुवन वाणी ट्रस्ट के विशिष्ट विद्वान एवं अद्‌भुत शिल्पियों का योगदान भी कम सराहनीय नहीं है। साथ ही, पश्चात् सदाशय श्रीमानों का अनवरत योगदान भी स्तुत्य है, जिसके बिना संस्था का एक पग चलना ही दुश्वार होता।

विश्ववाङ्मय से निःसृत अगणित भाषाई धारा।
पहन नागरी-पट सबने अब भूतल-भ्रमण विचारा।।
अमर भारती सलिलमञ्जु 'गुरमुखी' सुपावन धारा।
पहन नागरी-पट, 'सुदेवि' ने भूतल-भ्रमण विचारा।।

—विनय कुमार अवस्थी
मुख्यन्यासी सभापति, भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ-२०

अनुवादकीय

गुरूग्रन्थ साहिब में अनेकों प्रमाण मिलते हैं जिनसे यह सुनिश्चित होता है कि " वाणी " आत्म-परमात्म-तादात्म्य की विस्मयकारक गहनता के परम उत्स से स्वत: ही प्रस्फुटित वह अमर काव्य रूपी झरना है जो सर्वप्रथम गुरु नानकदेव जी के मुख से प्रकट हुआ और बाद के गुरुजन एवं अन्य श्रद्धालु सिक्ख-असिक्ख इसी प्रवाह की शीतलता एवं सरलता से शक्ति प्राप्त कर गुरु नानकदेव जी द्वारा बताए मार्ग को प्रशस्त करते रहे।

गुरुमत के प्रचलन के साथ ही साथ गुरुजनों के शब्दों में निहित सिद्धान्तों की व्याख्या टीका का कार्य भी स्वत: ही शुरू हो गया था। गुरु अंगददेव, गुरु अमरदास, गुरु रामदास एवं गुरु अरजनदेव आदि ने गुरु नानकदेव की सूत्रात्मक शब्दावली, भावों एवं विचारधारा को अपनी वाणियों के माध्यम से और सरलता, स्पष्टता एवं पुष्टि प्रदान की। उदाहरणतया शब्द, संगत, हुक्म, हउमै, सहज, महासुख, आनन्द, ओंकार, सत् , गुरु, गुरुमुख, मनमुख शब्दों के परिवेश एवं अर्थ को गुरु नानकदेव के बाद के वाणीकारों ने सिक्ख-जीवन के अनुरूप चौखटे को ध्यान में रखकर सहज रूप से व्याख्यायित एवं स्थापित किया। श्रद्धालु भक्तों की आध्यात्मिक एवं सामाजिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर एवं सुस्पष्ट दिशा-निर्देश देने के लिए गुरु अरजनदेव जी ने सन् १६०४ में श्री गुरूग्रन्थ साहिब का सम्पादन कार्य किया और इस महान कार्य में, जिसमें गुरुजनों की वाणियों के अतिरिक्त अखिल भारतीय अनेकों हिन्दू, मुस्लिम, संतों, फ़कीरों की वाणियाँ भी संकलित की गईं, गुरु जी ने भाई गुरदास को परम सहयोगी के रूप में नियुक्त किया। भाई गुरदास संस्कृत, फ़ारसी, ब्रजभाषा, पंजाबी आदि भाषाओं के मर्मज्ञ विद्वान एवं भारतीय संस्कृति एवं चिन्तन के गहन अन्वेषक थे। इन्होंने इस कार्य को पूर्ण निष्ठा एवं कुशलता से जनहित में पूरा किया और गुरु अरजनदेव जी की आज्ञा के अनुसार गुरूग्रन्थ साहिब की कथा-व्याख्या भी हरिमन्दिर अमृतसर में करते हुए गुरुवाणी के मर्म को लोगों तक पहुँचाते रहे। इनकी व्याख्या-प्रणाली की स्पष्ट झलक हमें इनकी "वारां" और " कवित्त सवैये " रचनाओं में देखने को मिलती है। सिक्ख-परम्परा में भाई गुरदास की रचनाओं को " गुरुग्रंथ साहिब की कुंजी " के रूप में भी जाना जाता है।

सिक्ख-इतिहास में एक तथ्य स्वत: ही उभर कर सामने आ जाता है कि जहाँ एक ओर गुरुजन परम सत्य और उससे उद्भूत जनसेवा से पूर्ण निरन्तर सत्योन्मुखी जीवन को जीकर जन साधारण के सामने आदर्श प्रस्तुत करते रहे, वहीं साथ ही साथ उनकी जनप्रियता और लोकोपकारक

प्रवृत्ति कुछ लोगों की आँख की किरकिरी भी बनी रही। पाँचवें गुरु अरजनदेव जी तक पहुँचते-पहुँचते तो गुरु जी के सगे भाई प्रिथी चन्द ने गुरु-घर की महिमा को घटाने और निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा दिया। देश-देशान्तर से आनेवाली संगत को गुमराह कर उनसे धन-माल उगाह लेना तथा स्वयं ही गुरुवाणी से मिलते-जुलते पदों की रचना कर उन्हें संगत में प्रचारित करने की कुचेष्टा भी प्रिथीचन्द और उसके साथियों ने पूरे ज़ोर-शोर से शुरू कर दी थी। फलतः गुरु-घर का कोष खाली होने लगा और संगत की सेवा-सुश्रूषा में भी कमी आने लगी। ऐसे आड़े समय में भाई गुरदास ने बाबा बुड्ढा, भाई पैड़ा मोखा आदि सिक्खों से विचार-विमर्श कर सिक्ख संगठन को सुदृढ़ करने के लिए अनेकों उपाय किए। उन्होंने सर्वप्रथम गुरूग्रन्थ साहिब के संपादन कार्य में एक कुशल सम्पादक के तौर पर मुख्य सम्पादक श्री गुरु अरजनदेव की सहायता की और चार साल में इस महान् कार्य को पूरा किया ताकि " सच्ची वाणी में कच्ची वाणी" को प्रक्षिप्त न किया जा सके और संगत को गुमराह न किया जा सके। इन्होंने सिक्खों में दसवंध (अर्जित आमदनी का दसवाँ हिस्सा गुरु की गोलक के लिए सुरक्षित रखना) की परम्परा को प्रचलित किया। इसके चलन के साथ गुरु-घर का आर्थिक संकट दूर हो गया और संगत की देखभाल लंगर एवं आवासीय सुविधाओं के साथ अच्छी तरह होने लगी। " भाई गुरदास : जीवनी और रचना'' के प्रणेता सिक्ख-धर्म-दर्शन एवं पंजाबी साहित्य के उद्भट् विद्वान डॉ० रतनसिंह जग्गी के कथनानुसार भाई गुरदास का जन्म सन् १५५१ में अमृतसर के पास गोइंदबाल में ईसरदास भल्ला के घर हुआ। भाई गुरदास माता-पिता के एकलौते बेटे थे और १२ वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते माता-पिता की छत्रछाया से वंचित हो गए। इन्होंने सारा जीवन सिक्ख धर्म के प्रचार में ही अर्पित कर दिया और ऐसा प्रतीत होता है कि ये जीवन पर्यन्त ब्रह्मचारी ही रहे। तथापि इनकी रचनाओं में गृहस्थ-धर्म की प्रमुखता एवं महानता का काफी वर्णन है।

गुरुवाणी की व्याख्या, टीका के संदर्भ में यदि सिक्ख-साहित्य को देखा-परखा जाए तो हम इसे सात प्रणालियों में बाँट सकते हैं। सहज प्रणाली में अन्य गुरुजनों ने गुरु नानकदेव जी की वाणी की सहजभाव से व्याख्या की। भाई प्रणाली, परमार्थ प्रणाली और उदासी प्रणाली में अधिकतर शब्दार्थ, कोष-रचना और व्याख्या पर जोर दिया गया है तथा गुरुवाणी के संकेतों, प्रतीकों और बिम्ब-विधान को स्पष्टता प्रदान की गई है। जीवन के व्यवहारिक पक्षों को दृष्टि में रखकर सत्कर्म और अध्यात्म का सामंजस्य करनेवाली रचनाएँ इस प्रणाली की देन हैं।

इन तीनों प्रणालियों में क्रमश: भाई गुरदास, सोढ़ी मिहरबान एवं साधु आनन्दघन प्रमुख हैं। निर्मला प्रणाली में पंडित तारासिंह नरोत्तम, भाई संतोखसिंह, पंडित गुलाबसिंह आदि वे विद्वान आते हैं जिन्होंने वेद-वेदांग को आधार मानकर गुरुमत की व्याख्या की है और ज्यादा बल गुरुवाणी की विशिष्टता को न दिखाने में लगाकर उसे वेदान्त का ही विस्तार दिखाने में लगाया है। भाई मनीसिंह, ज्ञानी बदनसिंह, संत अमीरसिंह, पंडित करतारसिंह दाखा आदि विद्वानों ने जनसामान्य के दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर सरल एवं स्पष्ट भाषा शैली को अपनाया एवं अन्य किसी की प्रणाली के प्रभाव को अपने पर भारी नहीं पड़ने दिया। सिंह सभा प्रणाली २० वीं शताब्दी की उपज है जिसमें पश्चिमी विद्या से प्रभावित सिक्ख विद्वानों ने तर्क-वितर्क का आश्रय लेकर सिक्ख-धर्म के न्यारेपन को उजागर करने का भरपूर प्रयत्न किया है। इस प्रणाली को अधिक मान्यता नगरीय जनता ने दी और प्रिंसिपल तेजासिंह, भाई वीरसिंह, डॉक्टर शेरसिंह, डॉ० मोहनसिंह दीवाना आदि इस प्रणाली को प्रचलित करनेवाले कुछ मुख्य विद्वान हैं।

इन सब प्रणालियों एवं उनसे सम्बद्ध विद्वानों की सूची में भाई गुरदास का एक अत्यन्त विशिष्ट स्थान है और गुरुवाणी के बाद उनकी रचनाओं को ही सर्वाधिक प्राधिकृत माना जाता है। भाई गुरदास देश-देशान्तर में घूमे-फिरे विद्वान थे और उन्हें मानव-मन की गहराइयों एवं चतुराइयों की गहरी पकड़ थी। पंजाब में रहते समय उन्होंने गुरुमत की व्याख्या के लिए " वारां " की रचना की और जब वे आगरा, काशी आदि पहुँचे और इन स्थानों पर काफी समय बिताया तो समय-स्थान के हिसाब से गुरुवाणी का संदेश जन सामान्य तक पहुँचाने के लिए इन्होंने काव्य की तत्कालीन प्रिय भाषा ब्रजभाषा में " कवित्त सवैये " की रचना की। भाई गुरदास की वारों की संख्या ४० मानी जाती है, परन्तु प्रस्तुत अनुवाद कार्य में हमने शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी द्वारा संकलित भाई गुरदास दूसरे की वार का भी अनुवाद प्रस्तुत कर दिया।

भाई गुरदास की पहली वार का जहाँ एक ओर ऐतिहासिक महत्त्व है क्योंकि इसमें गुरु नानकदेव जी के जन्म के समय की परिस्थितियों एवं गुरु हरिगोबिन्द साहिब तक अन्य गुरुजनों का क्रमपूर्वक वर्णन है वहीं साथ ही साथ भाई गुरदास छ: शास्त्रों, वैदिक-अवैदिक मतों का सूत्रात्मक रूप में वर्णन कर भारतीय धर्म-दर्शन के प्रति गहरी रुचि एवं जानकारी प्रकट करते हैं। छ: दर्शनों और उनसे उद्‌भूत मतों के प्रति भाई गुरदास अपने विचारों को निस्संकोच बताते हैं। पहली वार की चौदहवीं " पउड़ी " में भाई गुरदास शेषनाग के अवतार पतंजलि को " गुरुमुख " पद से सम्बोधित करते हैं। अन्य " वारों " में भाई गुरदास ने ठेठ पंजाबी भाषा

में गुरुमुख, गुरु-शिष्य संबंधों, भक्त और सांसारिक व्यक्तियों के भेद, सद्गुरु के उपकारों, ध्रुव, प्रह्लाद , बलि, वामन, अंबरीष, द्रौपदी, सुदामा, नामदेव, जयदेव, अजामिल, गणिका आदि अनेकों पौराणिक, ऐतिहासिक एवं प्रागैतिहासिक संतों-भक्तों की महिमा एवं सद्कर्मों का वर्णन किया है। सद्संगति, सेवा गुरुद्वारा आदि शुद्ध सिक्ख अवधारणाओं की खुलकर व्याख्या की है और खास तौर से इस तथ्य की ओर इशारा किया है कि सभी गुरुजनों में एक ही ज्योति विद्यमान थी और गुरमुख बनकर इस तथ्य को भलीभाँति समझा जा सकता है।

समय-समय पर गुरुमत का प्रचार करने के लिए बाहर जाने के अतिरिक्त भाई गुरदास अधिकतर अमृतसर में ही रहे, परन्तु उनका देहावसान ८६ वर्ष की परिपक्व आयु में गोइंदवाल में हुआ। गुरु गोबिन्द साहिब ने अपने हाथों से भाई साहिब का अंतिम संस्कार किया और चौथे दिन अस्थियों को व्यास नदी में प्रवाहित कर अमृतसर आ गए। भाई गुरदास परम् ब्रह्मज्ञानी, विवेक बुद्धि के स्वामी और कथनी तथा करनी में अंतर न रखनेवाले महान् पुरुष थे। डॉ० रतनसिंह जग्गी के कथनानुसार " भाई गुरदास पंजाबी के महान कवि थे। उनकी रचनाओं का महत्त्व ' गुरबाणी की कुंजी' के रूप में भी है और साहित्यिक गुणों के कारण भी। कहावतें और मुहावरे उनकी सभी रचनाओं में नगों की भाँति जड़े हुए हैं। बोली के दृष्टिकोण से उनकी कृतियाँ भाषा वैज्ञानिकों के लिए बहुत दिलचस्पी वाली हैं। गुरु-सिक्ख के तौर पर उनका चरित्र अनुकरणीय है। उनका व्यक्तित्व प्रतिभाशाली है।''

भुवन वाणी ट्रस्ट का मैं हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने " श्री गुरूग्रन्थ साहिब" एवं " दशम ग्रन्थ " के बाद अब भाई गुरदास जी की रचनाओं को भी हिन्दी-जगत तक पहुँचाने का महान् कार्य किया है और इस कार्य के लिए मुझे सदैव प्रोत्साहित किया है।

गुरु गोबिंदसिंह भवन
पंजाबी यूनिवर्सिटी
पटियाला

(डॉ०) जोधसिंह

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
वार १	**२५-६३**
पउड़ी १ मंगलाचरण	२५
,, २ जगत-उत्पत्ति	२६
,, ३ मनुष्य-जन्म-उत्तमता	२७
,, ४ जगत-उत्पत्ति	२८
,, ५-७ युग आदि	२८
,, ८ छः शास्त्र	३१
,, ९ न्याय	३२
,, १० मीमांसा	३३
,, ११ वेदांत	३३
,, १२ सांख्य	३४
,, १३ वैशेषिक	३५
,, १४ नाग अर्थात शेषनाग के अवतार पंतजलि	३६
,, १५ युगादि से संबंधित प्रचलित विचारधारा	३७
,, १६ कलियुग के कर्म	३७
,, १७ युगों की अंधेरगर्दी	३८
,, १८ बौद्धिक मत	४०
,, १९ वेश-निर्णय	४०
,, २० इस्लाम-मत	४१
,, २१ हिन्दू-मुस्लिम तुलना	४२
,, २२ परमात्मा का न्याय	४३
,, २३ गुरु-अवतार	४३
,, २४ गुरुनानक देव जी की प्रथम वार्ता	४३
,, २५ तीर्थों में प्रेम-अभाव	४४
,, २६ तत्कालीन परिस्थितियाँ	४५
,, २७ गुरु नानक सूर्योदय	४६
,, २८ सुमेरु पर्वतारोहण	४६
,, २९ सिद्धों के साथ प्रश्नोत्तर	४७
,, ३० भारत की दुर्दशा	४८
पउड़ी ३१ गुरु परीक्षा	४९
,, ३२ मक्का-गमन	५०
,, ३३ क़ाजी-मुल्ला-प्रश्नोत्तर	५०
,, ३४ मक्का में सम्मान	५१
,, ३५ बग़दाद-गमन	५२
,, ३६ ज़ाहरी कला	५३
,, ३७ सत्नाम का चक्र	५३
,, ३८ करतारपुर-आगमन	५४
,, ३९ बटाला में शिवरात्रि	५५
,, ४० सिद्धों के साथ गोष्ठी	५६
,, ४१ सिद्धों की करामात	५६
,, ४२ सिद्धों के साथ प्रश्नोत्तर	५७
,, ४३ सतिनाम का प्रताप	५८
,, ४४ सिद्धगोष्ठी, मुलतान-गमन	५९
,, ४५ गुरु अंगददेव	६०
,, ४६ गुरु अमरदास	६१
,, ४७ गुरु रामदास, अर्जुनदेव	६२
,, ४८ गुरु हरगोबिन्द	६२
,, ४९ वाहिगुरु मेल	६३
वार २	**६४-७६**
पउड़ी १ वस्तुनिर्देश मंगलाचरण	६४
,, २ वादक का दृष्टांत	६५
,, ३ स्वयं ही रसिया-रस	६५
,, ४ वही	६६
,, ५ अधिकारी-भेद	६६
,, ६ संगति का प्रभाव	६७
,, ७ जल का दृष्टांत	६८
,, ८ अन्य दृष्टांत	६८
,, ९ अनेकता में एकता	६९
,, १० धागे का दृष्टांत	६९
,, ११ सोने का दृष्टांत	७०

		विषय	पृष्ठ
पउड़ी	१२	गन्ने का दृष्टांत	७१
''	१३	गाय के दूध का दृष्टांत	७१
''	१४	सूर्य का दृष्टांत	७२
''	१५	अग्नि-दृष्टांत	७३
''	१६	बिरद-पालन	७३
''	१७	प्रेम	७४
''	१८	आँखों का दृष्टांत	७४
''	१९	स्रष्टि-स्रष्टा-संबंध	७५
''	२०	आप ही आप	७६

वार ३ ७७-९२

पउड़ी	१	नमस्कारात्मक मंगलाचरण	७७
''	२, ३, ४,	गुरु-चेला	७८
''	५	गुरुमुख-पथी	८०
''	६	गुरु-सिक्खी का सौदा	८१
''	७	सच्चा गुरु	८१
''	८	गुरु-सिक्खों के लिए साधन, दशा, व्यवहार	८२
''	९	गुरुमुखों के लक्षण	८३
''	१०	चरण-धूलि	८४
''	११	गुरु-सिक्ख एकात्मता	८५
''	१२	उपर्युक्त भाव पर ही	८५
''	१३	गुरुमुख	८६
''	१४	वही भाव	८७
''	१५	मूलमंत्र का रहस्य	८८
''	१६	चार वर्ण में एकरूपता	८९
''	१७	गुरुमुख-अंजन	८९
''	१८	मुरीद (सच्चा शिष्य)	९०
''	१९	सेवक क्या करे ?	९१
''	२०	स्वीकार्य सिक्ख कौन है?	९२

वार ४ ९३-१०७

पउड़ी	१	दुर्लभ मनुष्य-जीवन	९३
पउड़ी	२	विनम्रता	९३
''	३	चरणों का दृष्टांत	९४
''	४	कनिष्ठ उँगली-दृष्टांत	९५
''	५	अग्नि-जल से नम्रता	९५
''	६	मजीठ-कुसंग से उपदेश	९६
''	७	कीड़ी-मकड़ी आदि	९७
''	८	घास	९८
''	९	तिल	९८
''	१०	विनौला	९९
''	११	अनारदाना	१००
''	१२	शुद्ध मुहर	१००
''	१३	खस का दाना	१०१
''	१४	गन्ना	१०२
''	१५	स्वाति-बूँद एवं सीपी	१०३
''	१६	हीरक-कण से सिक्ख-गुरु-मिलाप	१०३
''	१७	जीवन-मुक्त का कर्म	१०४
''	१८	केश का दृष्टांत	१०५
''	१९	गूलर का दृष्टांत	१०६
''	२०	दूज के चाँद से उपदेश	१०६
''	२१	दूज के चाँद से उपदेश	१०७

वार ५ १०८-१२२

पउड़ी	१	गुरुमुखों के लक्षण	१०८
''	२	गुरमुखों के लक्षण	१०८
''	३	गुरु-सिक्ख सहचारियों का दृष्टांत	१०९
''	४	सहचारि दृष्टांत	११०
''	५	अन्य जीवों और गुरुमुखों में अमृत	११०
''	६	पूरी सृष्टि में गुरुमुख का अन्तर	१११
''	७	जगत-प्रपंच, गुरु-शब्द	११२
''	८	शकुन और गुरुमुखता	११२

विषय	पृष्ठ
पउड़ी ९ गुरुमुखमार्ग-पवित्रता	११३
'' १० कुलधर्म में गुरुमुखमार्ग	११४
'' ११ शहजादे राजकुमार	११५
'' १२ अन्य दृष्टांत	११५
'' १३ सरल गुरुमुख-मार्ग	११६
'' १४ सत्य कर्म	११७
'' १५ गुरुमुख-मनमुख	११७
'' १६ सुहागिन-गुरुमुख	११८
'' १७ वेश्या-मनमुख	११९
'' १८ बालक, यौवन, बुढ़ापा	११९
'' १९ हंस-बगुला, गुरुमुख-मनमुख	१२०
'' २० पाँच जंतु और मनमुख	१२१
'' २१ सत्गुरु सच्चा बादशाह	१२२

वार ६ १२३-१३८

पउड़ी १ मंगलाचरण वस्तुनिर्देश	१२३
'' २ वही	१२४
'' ३ गुरुमुख-नित्यकर्म	१२४
'' ४ साधुसंगति-सत्यखंड	१२५
'' ५ जपु जी के ३८ वें पद "पवण गुरु पाणी पिता" का अर्थ	१२६
'' ६ निर्लिप्त दृष्टि	१२७
'' ७ गुरुमुख दिनचर्या	१२८
'' ८ ज्ञानी का लक्षण	१२८
'' ९ ईश्वरीय शक्ति	१२९
'' १० गुरुमुख-अवधारणा	१३०
'' ११ गुरुमुख	१३१
'' १२ हाथों की सार्थकता	१३१
'' १३ चरणों की सार्थकता	१३२
'' १४ गुरुमुख परोपकारी	१३३
पउड़ी १५ घरवारी सिक्ख-चर्या	१३४
'' १६ सत्गुरु सिक्ख-स्तुति	१३४
'' १७ सार्थक समय	१३५
'' १८ गृहस्थी जीवन-मुक्त	१३६
'' १९ गुरुमुख-अवधारणा	१३७
'' २० मनमुख-गति	१३८

वार ७ १३९-१५२

पउड़ी १ मंगलाचरण	१३९
'' २ दो की गिनती-गुरुमुख-महिमा	१४०
'' ३ तीन की गिनती-गुरुमुख-महिमा	१४०
'' ४ चौकड़ी-वर्णन-गुरुमुख	१४१
'' ५ पाँच संख्या-गरुमुख	१४२
'' ६ छः गिनती-गुरुमुख	१४३
'' ७ सात संख्या-गुरुमुख	१४३
'' ८ अष्ट संख्या-गुरुमुख	१४४
'' ९ नौ संख्या-गुरुमुख	१४५
'' १० दस संख्या-गुरुमुख	१४५
'' ११ ग्यारह संख्या-गुरुमुख	१४६
'' १२ बारह संख्या-गुरुमुख	१४७
'' १३ तेरह संख्या-गुरुमुख	१४७
'' १४ १४-१५-१६-१७ की गिनती-गुरुमुख	१४८
'' १५ १८ से ३४ तक संख्या	१४९
'' १६ ईश्वरोपमा	१४९
'' १७ गुरुमुख सुखफल	१५०
'' १८ आकाश-वर्णन	१५१
'' १९ गुरु-महिमा	१५२
'' २० गुरु शब्द	१५१

वार ८ १५३-१६८

पउड़ी १ वस्तु-निर्देश मंगलाचरण	१५३

विषय			पृष्ठ
पउड़ी	२	वही	१५३
''	३	दैवी-आसुरी संपदा	१५४
''	४	तथा	१५५
''	५	तथा	१५५
''	६	संगति का फल	१५६
''	७	हिन्दी-मत	१५७
''	८	मुहम्मदी-मत	१५८
''	९	ब्राह्मण-जातियाँ	१५८
''	१०	क्षत्री-जातियाँ	१५९
''	११	वैश्य-जाति	१५९
''	१२	गोत्र, कार्य आधृतजातियाँ	१६०
''	१३	वर्ण-मत	१६०
''	१४	साधु	१६१
''	१५	असाधु जन	१६२
''	१६	यवनमतों के भेद	१६२
''	१७	अलग परिस्थितियाँ	१६३
''	१८	शरीर की विभिन्न अवस्थाएँ	१६४
''	१९-२३	संख्या	१६४
''	२४	सब गुरुमुख बनो	१६७
वार	**९**		**१६९-१८२**
पउड़ी	१	वाहिगुरु, गुरु शब्द सत्संग	१६९
''	२	गुरुसिक्खी	१६९
''	३	गुरुमुखता	१७०
''	४	सिख का आचरण	१७१
''	५	गुरुसिक्ख-आत्मिकखेल	१७१
''	६	वाहिगुरु की व्यापकता का अनुभव	१७२
''	७	गुरु-सिक्ख-आचरण	१७२
''	८-९	गुरुसिक्ख-अभेद	१७३
''	१०	साधुसंगति सत्यखंड	१७४
''	११	साक्षी अवस्था	१७५
,,	१२	ईश्वरीय गुण	१७५
पउड़ी	१३	वाहिगुरु मंत्र	१७६
''	१४	गुरुमुख के गुण	१७६
''	१५	चन्दन का दृष्टांत	१७७
''	१६	गुरु चेला, चेला गुरु	१७८
''	१७	गुरु-चेला का कार्य	१७८
''	१८	चरण-नम्रता-उपदेश	१७९
''	१९	धरती से उपदेश	१७९
''	२०	जल से उपदेश	१८०
''	२१	वृक्ष से उपदेश	१८१
,,	२२	सेवक के लक्षण	१८१
वार	**१०**		**१८३-२०१**
पउड़ी	१	भक्तों की कथा-ध्रुव	१८३
''	२	प्रह्लाद भक्त	१८४
''	३	राजा बलि	१८५
''	४	अंबरीष भक्त	१८६
''	५	राजा जनक	१८७
''	६	हरिश्चन्द्र और तारामती रानी	१८७
''	७	विदुर और दुर्योधन	१८८
''	८	द्रौपदी	१८९
''	९	सुदामा भक्त	१९०
''	१०	जयदेव भक्त	१९१
''	११	नामदेव	१९१
''	१२	नामदेव, त्रिलोचन	१९२
''	१३	धंना और ब्राह्मण	१९३
''	१४	बेनी भक्त	१९४
''	१५	कबीर, रामानन्द	१९५
''	१६	सैण नाई	१९५
''	१७	रविदास भक्त	१९६
''	१८	अहल्या और गौतम	१९७
''	१९	वाल्मीकि बटमार	१९८
''	२०	अजामिल	१९९

विषय		पृष्ठ
पउड़ी	२१ गणिका	१९९
''	२२ पूतना	२००
''	२३ श्रीकृष्ण का अंत	२०१

वार ११ २०२-२२६

पउड़ी	१ सतगुरु-प्रेम-प्याला	२०२
''	२ गुरुमुख परमार्थ-भेद	२०२
''	३ गुरु-सिक्ख कौन ?	२०३
''	४ गुरुमुख	२०४
''	५ गुरु-सिक्खी	२०५
''	६ गुरु-चरण-कमल	२०६
''	७ एकता पर एक दृष्टांत	२०६
''	८ गुरुमुखों की प्रीति	२०७
''	९ गुरु-प्रीति	२०८
''	१० गुरु-सिक्ख-विशेषता	२०९
''	११ अन्य दृष्टांत	२१०
''	१२ गुरु सिक्ख-संधि	२१०
''	१३ गुरु नानक के सिक्खों की नामावली	२११
''	१४ सिक्ख नाम-माला	२१२
''	१५ गुरु अंगददेव के शिष्य	२१३
''	१६ गुरु अमरदास की डल्ला-निवासी संगति	२१४
''	१७ गुरु रामदास के सभरवाल सिक्ख	२१४
''	१८ गुरु अर्जुन के सिक्ख	२१५
''	१९ गुरु अर्जुन के अन्य सिक्ख	२१६
''	२० सिक्ख नामावली	२१७
''	२१ सुल्तानपुर के सिक्ख	२१७
''	२२ मसंद (दान-दक्षिणा उगाहनेवाले सिक्ख)	२१८
''	२३ चढ़ाव वाले सिक्ख	२१९
''	२४ केवल पंजाबी सिक्ख	२२०
''	२५ लाहौर मुजंग-संगति	२२०
पउड़ी	२६ देशान्तरों के सिक्ख	२२१
''	२७ आगरा की संगति	२२२
''	२८ हुजूरी सिक्ख	२२३
''	२९-३१ गुरु हरगोविंद के सिक्ख	२२४

वार १२ २२७-२४१

पउड़ी	१ गुरु-सिक्ख-व्यवहार	२२७
''	२ गुरु-सिक्ख-दिनचर्या	२२७
''	३ गुरु-सिक्ख का हृदय	२२८
''	४ गुरु-सिक्ख अस्पृश्य है	२२९
''	५ गुरु-सिक्ख ज्ञानी है	२२९
''	६ सिक्ख-निष्काम अवस्था	२३०
''	७ ब्रह्मा का कारनामा	२३१
''	८ दशावतारों के कर्त्तव्य	२३२
''	९ महादेव शिव	२३२
''	१० इन्द्र और ब्रह्मा	२३३
''	११ नारद आदि ऋषि	२३४
''	१२ यती, सती आदि	२३४
''	१३ धरती और वृक्ष	२३५
''	१४ ध्रुव आदि भक्त	२३६
''	१५ नीचकुल निष्काम भक्त	२३७
''	१६ कलियुग की श्रेष्ठता	२३७
''	१७ वाहिगुरु मंत्र	२३८
''	१८ गुरुमुख-वर्णन	२३९
''	१९ असह्य सहना	२४०
''	२० साधुसंगति-महिमा	२४०

वार १३ २४२-२५७

पउड़ी	१ गुरु चेला	२४२
''	२ गुरु से गुरु बनना	२४२
''	३ संयोगादि वर्णन	२४३
''	४ प्रेम-रस	२४४
''	५ वही प्रेम-रस	२४४

विषय	पृष्ठ
पउड़ी ६ मस्ती का वर्णन	२४५
'' ७ प्रेम-रस	२४६
'' ८ प्रेम-रस	२४६
'' ९ प्रेम-रस	२४७
'' १० प्रेम-प्याले की बूँद	२४७
'' ११ अनंतता	२४८
'' १२ प्रेम-प्याले की एक बूँद	२४९
'' १३ प्रेम-रस का एक क्षण	२४९
'' १४ प्रेम-रस कैसे प्राप्त ?	२५०
'' १५ बिरद की लाज	२५१
'' १६ हीरा	२५१
'' १७ गुरुमुखों की गति	२५२
'' १८ वट वृक्ष के फैलाव की तरह गुरु के सिक्ख प्रभु-नाम का प्रसार	२५३
'' १९ गुरु वृक्ष-रूप	२५३
'' २० प्रभु-नाम का धनी	२५४
'' २१ धनी सद्गुरु	२५५
'' २२ गुरु-स्तुति	२५५
'' २३ वही-गुरु-प्रताप	२५६
'' २४ वाहिगुरु-महिमा	२५६
'' २५ छः गुरु-स्मरण	२५७
वार १४	**२५८-२६९**
पउड़ी १ गौरवहीनों का गौरव	२५८
'' २ गुरु-सिक्ख-संगत	२५८
'' ३ अगम्य दर्शन	२५९
'' ४ ब्रह्मा, विष्णु, महेश	२६०
'' ५ सनकादि एवं शुकदेव	२६०
'' ६ धरती	२६१
'' ७ पानी का वर्णन	२६१
'' ८ वृक्ष-वर्णन	२६२
'' ९ वृक्ष के अन्य उपकार	२६२
'' १० तिल का दृष्टांत	२६३
पउड़ी ११ स्वेच्छाचारी से पशु उत्तम है	२६४
'' १२ गुरुमुख कपास की तरह कष्ट सहते हैं	२६४
'' १३ गुरुमुख मजीठ रंग और गन्ने की तरह सेवक	२६५
'' १४ लोहे की तरह अहम गँवाकर ही निज-स्वरूप को देखा जा सकता है	२६५
'' १५ रबाब वाद्य की तरह दुख सहन कर गुरुमुख सहज-पद में समाहित	२६६
'' १६ चंदन-वर्णन	२६७
'' १७ गुरु-सिक्खों की सेवा	२६७
'' १८ गुरु-सिक्ख (सेवा-फल)	२६८
'' १९ सेवा का फल	२६८
'' २० सेवा का अनन्त फल	२६९
वार १५	**२७०-२८४**
पउड़ी १ सतगुरु-महिमा	२७०
'' २ वही	२७०
'' ३ मनुष्य-देह की उत्पत्ति	२७१
'' ४ मनमुख स्वेच्छाचारी-गति	२७२
'' ५ कनफटों की दशा	२७२
'' ६ पूर्णगुरु के बिना रोना ही रोना	२७३
'' ७ झूठे संबंधी	२७४
'' ८ झूठे व्यापारी	२७४
'' ९ पूर्णगुरु के बिना सभी वैद्य झूठे हैं	२७५
'' १० झूठे तीर्थ	२७६
'' ११ सद्गुरु पारस	२७६
'' १२ गुरु कल्पवृक्ष	२७७
'' १३ सद्गुरु-बिना दुर्गति	२७८

विषय	पृष्ठ
पउड़ी १४ भोगों से अग्नि बढ़ती	२७९
" १५ कुदरत का वर्णन	२७९
" १६ गुरु चेला, चेला गुरु	२८०
" १७ अंगों की सार्थकता	२८१
" १८ प्रभु की देन, हमारी भूलें	२८१
" १९ गुरु के बिना गर्भवास	२८२
" २० गुरुमुख-बिन रस नहीं	२८३
" २१ माया में उदासीन	२८४
वार १६	**२८५-२९९**
पउड़ी १ जैसा बोओ, वैसा फल	२८५
" २ जल से उपदेश	२८६
" ३ कमल जैसे निर्लिप्त	२८६
" ४ वृक्ष की तरह समदर्शी	२८७
" ५ सद्गुरु मल्लाह-रूप है	२८८
" ६ बावन चंदन से गुरुमुख	२८८
" ७ सूर्यवत परोपकारी	२८९
" ८ साधुसंगति मानसरोवर	२९०
" ९ गुरुमुख पारस-रूप है	२९०
" १० गुरुमुख सबसे ऊँचे हैं	२९१
" ११ कर्त्ता का प्रेम-प्याला	२९२
" १२ साधुसंगति सत्यखंड	२९२
" १३ गुरुमुख सच्ची राह	२९३
" १४ परमात्मा अलक्ष्य है	२९४
" १५ अंजन में निरंजन	२९५
" १६ वाहिगुरु (अद्भुत प्रभु परे से परे)	२९५
" १७ अद्भुत गुरु परमात्मा परे से परे है	२९६
" १८ सतगुरु ने अलक्ष्य दिखा दिया	२९७
" १९ गुरु की शरण	२९७
" २० सद्गुरु की महानता	२९८
" २१ गुरु के तुल्य कुछ नहीं	२९९

विषय	पृष्ठ
वार १७	**३००-३१४**
पउड़ी १ शंख से उपदेश-करनी विहीन	३००
" २ मनमुख मेंढक-समान	३०१
" ३ बगुले की तरह कपट-स्नेही को फल अप्राप्त	३०१
" ४ अनधकारी व्यक्ति को गुरु-शब्द सुनकर भी शान्ति नहीं मिलती	३०२
" ५ अहंकारियों पर दृष्टांत	३०३
" ६ उल्लू से उपदेश-मनमुख	३०४
" ७ कपटी व्यक्ति, चकवे की तरह साधुसंगति में भी खाली	३०४
" ८ कलछुल, घुँघची और कपट-स्नेही	३०५
" ९ हाथी, आक की तरह कपट-स्नेही	३०६
" १० बाँझ की तरह मनमुख	३०६
" ११ मनमुख कपटी पत्थर	३०७
" १२ हंसों की संगति में	३०८
" १३ मनमुख रोगी है	३०८
" १४ गधा-स्वेच्छाचारी रूपक	३०९
" १५ रेशम, कम्बल—गुरुमुख, मनमुख	३१०
" १६ मनमुख फल-विहीन तिल के समान हैं	३१०
" १७ मनमुख (काँसा-शंख)	३११
" १८ रेंड़ी, कनेर-कपटी	३१२
" १९ आक, टिड्डा, जोंक और मनमुख	३१२
" २० सभी मनमुखों के अवगुण मेरे अंदर हैं	३१३

विषय	पृष्ठ
पउड़ी २१ निन्दक और विमुख	३१४

वार १८ ३१५-३३०

विषय	पृष्ठ
पउड़ी १ मंगलाचरण	३१५
,, २ वही	३१५
,, ३ सृष्टि में कौशल है	३१६
,, ४ सृष्टि लेखे में है	३१७
,, ५ सृष्टि भय में है	३१७
,, ६ कर्त्ता अनन्त है पर सर्वत्र व्याप्त है	३१८
,, ७ सृष्टि का रहस्य कर्त्ता ही जानता है	३१९
,, ८-९ कर्त्ता सृष्टि के लिए अगम्य है	३१९
,, १० कर्त्ता निर्लिप्त पूर्ण	३२०
,, ११ माया-उत्पत्ति-कारण	३२१
,, १२ बादशाहों का हुक्म	३२२
,, १३ रचना ने रचयिता को भुला दिया	३२२
,, १४ रचना रचयिता को कैसे पाए ? राजमार्ग	३२३
,, १५ राजमार्गी (गुरुमुख)	३२४
,, १६ गुरुमुख का जीवन-भक्त पद	३२४
,, १७ गुरुमुख निर्लिप्त रह कर, कष्ट सहकर दूसरों का भला करते हैं	३२५
,, १८ गुरुमुखों का सुखफल और उसकी महिमा	३२६
,, १९ सत्य ही श्रेष्ठ आचरण	३२६
,, २० सच्चा राज	३२७
,, २१ गुरुमुखों की निर्लिप्तता	३२८
,, २२ आज्ञाकारी सेवक	३२९
पउड़ी २३ गुरु-सिक्ख की प्रीति	३२९

वार १९ ३३१-३४३

विषय	पृष्ठ
पउड़ी १ मंगलाचरण	३३१
,, २ चौरासी लाख योनियों में उत्तम योनि	३३१
,, ३ गुरुमुख अतिथि है	३३२
,, ४ चलने की युक्ति	३३३
,, ५ सराय का ठिकाना	३३३
,, ६ चलने की युक्ति	३३४
,, ७ चलने की युक्ति-मायका	३३४
,, ८ जीवन-युक्ति	३३५
,, ९ चलने की युक्ति	३३६
,, १० जन्म की सफलता	३३६
,, ११ गुरुमुख मन	३३७
,, १२ दुर्लभ गुरुमुख	३३७
,, १३ गुरुमुख का आचरण	३३८
,, १४ गुरुमुख प्रभु-इच्छा के पुतले हैं	३३९
,, १५ गुरुमुख के गुण	३३९
,, १६ गुरुमुख होने से प्राप्ति	३४०
,, १७ गुरुमुखों से लाभ	३४०
,, १८ गुरुमुख का स्वरूप	३४१
,, १९ बेपरवाह गुरुमुख	३४२
,, २० गंभीर स्थिर गुरुमुख	३४२
,, २१ गुरुमुख निज में स्थिर	३४३

वार २० ३४४-३५५

विषय	पृष्ठ
पउड़ी १ मंगलाचरण, गुरु-वर्णन	३४४
,, २ सारे गुरुओं में एक ही ज्योति है	३४४
,, ३ गुरुमुख की महिमा	३४५

		विषय	पृष्ठ
पउड़ी	४	असह्य प्रेमप्याला गुरुमुख ही धारते	३४५
''	५	गुरुमुख की दिनचर्या	३४६
''	६	गुरुसिक्ख की साधना	३४७
''	७	गुरुसिक्खों का मिलाप	३४८
''	८	शकुन-विचार	३४८
''	९	साधुसंगति-सत्यखंड	३४८
''	१०	साधुसंगति की सेवा	३४९
''	११	बुरे के साथ भला	३४९
''	१२	वृक्ष अवगुणों को सहकर भी भला करता है	३५०
''	१३	सद्गुरु की आज्ञा	३५१
''	१४	शिष्य से प्रेम	३५१
''	१५	गुरुसिक्ख-योग-युक्ति	३५२
''	१६	गुरुशिष्य योग-साधन	३५२
''	१७	अन्य साधन	३५३
''	१८	संसार रूपी चौपड़	३५३
''	१९	शतरंज का खेल	३५४
''	२०	गुरुमुख भय में रहकर प्रभु को प्राप्त करते हैं	३५४
''	२१	गुरु-स्तुति में	३५५
वार	**२१**		**३५६-३६७**
पउड़ी	१	मंगलाचरण, परमात्मा और सद्गुरु की महिमा	३५६
''	२	आदिपुरुष की महिमा	३५६
''	३	आदिपुरुष की महिमा	३५७
''	४	कर्त्ता के कर्म को नहीं जानते	३५७
''	५	रसिक उसके महल से दूर हैं	३५८
''	६	द्वंद्व और एकता	३५९
''	७	प्रेम, भक्ति बिना व्यर्थ	३५९
''	८	प्रेम-भक्ति के बिना सब भुलावा है	३६०
पउड़ी	९	वही	३६०
''	१०	भावभक्ति के बिना अन्य सब प्रपंच	३६१
''	११	वही	३६२
''	१२	अहम् के दुख और संतुष्टि के सुख	३६२
''	१३	अहम् मिटाने से सुगति	३६३
''	१४	मायावी डरावने हैं	३६३
''	१५	पाखंड नहीं चलता	३६४
''	१६	प्रभु-दरबार का सेवक सबसे ऊँचा है	३६४
''	१७	वाहिगुरु-प्रभु की सृष्टि	३६५
''	१८	स्वयं निर्लिप्त है	३६६
''	१९	कर्त्ता और उसकी सृष्टि अनन्त हैं	३६६
''	२०	गुरु-प्रसाद ही इच्छा	३६७
वार	**२२**		**३६८-३८३**
पउड़ी	१	मंगलाचरण, ईश्वरीय रचना	३६८
''	२	ईश्वरीय शक्ति	३६९
''	३	वही	३६९
''	४	सृष्टि-रचना	३७०
''	५	रचना	३७१
''	६	साधु-लक्षण	३७२
''	७	योग	३७२
''	८	गुरु एवं सिक्ख	३७३
''	९	ईश्वरीय स्तुति	३७४
''	१०	गुरुमुख-मार्ग	३७५
''	११	गुरुमुख परम-पद	३७५
''	१२	गुरु अंगददेव	३७६
''	१३	गुरुमुखों के लक्षण और धूलि का प्रताप	३७७

	विषय	पृष्ठ
पउड़ी १४	गुरुमुखों के लक्षण और धूलि का प्रताप	३७८
'' १५	वाहिगुरु-परमात्मा अकथनीय है	३७८
'' १६	गुरुमुखों का आचरण	३७९
'' १७	सद्गुरु की महिमा	३८०
'' १८	साधुसंगति सत्य देश है	३८०
'' १९	सिक्ख का आचरण	३८१
'' २०	गुरुमुखों का आचरण	३८२
'' २१	गुरुमुख का स्वरूप	३८२
वार २३		**३८४-३९९**
पउड़ी १	मंगलाचरण	३८४
'' २	तीर्थ साधु	३८४
'' ३	धूलि	३८५
'' ४	गंगा-दृष्टांत-उपदेश	३८६
'' ५	गुरुमुखों के सुखफल की महिमा	३८७
'' ६	राजा बलि-कथा से चरण-कमल-महिमा	३८७
'' ७	परशुराम-अवतार चरण-कमल-रस-विहीन	३८८
'' ८	रामचन्द्र से चरण-धूलि का उपदेश	३८९
'' ९	कृष्णचन्द्रावतार	३९०
'' १०	अवतार सुलभ, गुरु चरण-दुर्लभ	३९०
'' ११	गुरुचरण सबसे श्रेष्ठ	३९१
'' १२	केवल ऊँचा ही आदरणीय नहीं होता	३९२
'' १३	बकरी से उपदेश	३९३
'' १४	मानव-शरीर	३९३
'' १५	भक्तों के नाम	३९४
'' १६	हिन्दू-मुस्लिम व्यर्थता	३९५
पउड़ी १७	युगों के धर्म	३९५
'' १८	धर्म रूपी बैल-दृष्टांत	३९६
'' १९	गुरुमुख पंथ	३९७
'' २०	राजा-रंक बराबर हैं	३९८
'' २१	विनम्रता के दृष्टांत	३९८
वार २४		**४००-४१८**
पउड़ी १	मंगलाचरण	४००
'' २	जगद्गुरु	४०१
'' ३	सच्चा सम्राट	४०१
'' ४	सच्चा सम्राट	४०२
'' ५	गुरु अंगद-आगमन	४०३
'' ६	गुरु अंगद-प्रकाश	४०४
'' ७	सुपुत्र गुरु अंगद	४०४
'' ८	सुपुत्र गुरु अंगद	४०५
'' ९	गुरु अमरदास	४०६
'' १०	गुरु नानक का पौत्र श्री अमरदास	४०७
'' ११	गुरु अमरदास	४०७
'' १२	गुरु अमरदास	४०८
'' १३	गुरु अमरदास	४०९
'' १४-१७	गुरु रामदास	४१०
'' १८-२०	गुरु अरजनदेव	४१३
'' २१	गुरु अरजनदेव जी से गुरु हरिगोबिंद	४१५
'' २२	गुरु की महिमा	४१५
'' २३	गुरु अरजनदेव जी की ज्योति में लीन	४१६
'' २४	गुरु हरिगोबिंद	४१७
'' २५	छठे गुरुजी का वर्णन	४१७
वार २५		**४१९-४३३**
पउड़ी १	छठे गुरु (मंगलाचरण)	४१९

विषय	पृष्ठ
पउड़ी २ गुरुमुख का मार्ग	४१९
,, ३ गुरुमुखों की उन्नति	४२०
,, ४ भक्त नामदेव	४२१
,, ५ भक्तों की जाति नहीं	४२२
,, ६ नीच स्थानों एवम् उत्तम वस्तुओं के उदाहरण	४२२
,, ७ राजा बलि का प्रसंग	४२३
,, ८ कीड़ी का उदाहरण	४२४
,, ९ विनम्र होने की अनेकों प्रसिद्ध कथाएँ	४२५
,, १० शुकदेव	४२५
,, ११ गुरु-सिक्खों की विशेषता	४२६
,, १२ चरणामृत की विशेषता	४२७
,, १३ ईश्वरीय रचना	४२८
,, १४ साधु-चरण-वंदना	४२८
,, १५ संसार की व्यर्थता और आपसी कलह	४२९
,, १६ दो सम्राट् और बीस फ़कीर	४३०
,, १७ बकरी	४३०
,, १८ गुरुमुख	४३१
,, १९ सत्संग दुष्टों का भी उद्धार करता है	४३२
,, २० संगति के गुण	४३३
वार २६ ४३४-४५९	
पउड़ी १,२ मंगलाचरण	४३४
,, ३ वाहिगुरु-परमात्मा की स्तुति	४३५
,, ४ सद्गुरु का उपकार	४३६

विषय	पृष्ठ
पउड़ी ५ गुरु-स्तुति	४३७
,, ६ गुरु-स्तुति	४३७
,, ७ चार युगों के धर्म	४३८
,, ८ कलियुग का धर्म	४३९
,, ९ जीतकर हारना	४३९
,, १० जैसी भावना वैसा फल	४४०
,, ११ अवगुण को गुण बनाना	४४१
,, १२ गन्ने का दृष्टांत	४४२
,, १३ गुरु-दरिया	४४२
,, १४ ईश्वर अनन्त है	४४३
,, १५ विनम्रता के गुण	४४४
,, १६ पूर्णगुरु	४४४
,, १७ सद्गुरु जागृत देव है	४४५
,, १८ सच्च सच्चा, झूठा झूठ	४४६
,, १९ सद्गुरु महिमा	४४६
,, २० सद्गुरु	४४७
,, २१,२२ सद्गुरु नानकदेव	४४८
,, २३ चौदह रत्न	४४९
,, २४ गुरु हरगोबिंद जी में तथ्य और दर्शन	४५०
,, २५ प्रेम-रस कठिनाई से प्राप्त होता है	४५१
,, २६ गुरु की समाधि में लीन मृत शिष्य	४५२
,, २७ गुरुसिक्खों का वंश	४५२
,, २८ गुरुसिक्खों का वंश	४५३
,, २९ दावा कोका	४५४
,, ३० सद्गुरु की परीक्षा में सिक्ख पूरे उतरते हैं	४५५
,, ३१ सांसारिक और सच्चे ब़ादशाहों में अन्तर	४५५
,, ३२ गुरु-विमुख की दुर्दशा	४५६
,, ३३ गुरु-वंश का अहम्	४५७
,, ३४ गुरुत्व की पीढ़ी	४५८

विषय पृष्ठ

पउड़ी ३५ परमात्मा की शक्ति ४५८

वार २७ ४६०-४७३

पउड़ी १ लैला मजनूँ आदि प्रेमी ४६०
,, २ शिष्यों की प्रीति ४६०
,, ३ शिष्यों की प्रीति ४६१
,, ४ गुरु-सिक्ख की प्रीति ४६२
,, ५ गुरु-शिष्य की प्रीति ४६२
,, ६ पीर-मुरीद का प्यार ४६३
,, ७ सच्चा सम्बन्ध ४६३
,, ८ सच्चा काम ४६४
,, ९ सच्चा भोग ४६५
,, १० अंगों की सफलता ४६५
,, ११ सच्ची लगन ४६६
,, १२ सच्ची लगन ४६६
,, १३ गुरु की प्रीति का रूप ४६७
,, १४ गुरु-प्रीति का रूप ४६८
,, १५ गुरु सर्वाधिक समर्थ ४६८
,, १६ गुरु प्रीति सबसे ऊँची ४६९
,, १७ गुरु-प्रेम-बिना सब व्यर्थ ४६९
,, १८ गुरु-प्रीति अहम् का नाश करती है ४७०
,, १९ शिष्यों की सेवा-रूप ४७०
,, २० गुरु-सेवा का फल ४७१
,, २१ शिष्य सद्रूप कैसे ? ४७२
,, २२ आत्माप्राप्ति युक्ति ४७२
,, २३ सिर देने में तनिक न हिचकिचाओ ४७३

वार २८ ४७४-४८९

पउड़ी १ सिक्ख-धर्म कठिन पर अमूल्य है ४७४

विषय पृष्ठ

पउड़ी २ सिक्खजीवन निष्काम ४७५
,, ३ सिक्ख-जीवन अमूल्य ४७५
,, ४ सिक्ख-जीवन की शिक्षा और रस ४७६
,, ५ सिक्ख-जीवन की प्राप्ति का प्रकार ४७७
,, ६ सिक्ख-जीवन-मार्ग ४७७
,, ७ सिक्ख-जीवन अमूल्य ४७८
,, ८ सिक्ख-जीवन प्राप्तकर ऊँचा हुआ जाता है ४७९
,, ९ सिक्ख-जीवन-कर्तव्य ४७९
,, १० सिक्खी-जीवन का कर्म ४८०
,, ११ गुरु-शक्ति एवं गुण ४८१
,, १२ सिक्ख परोपकारी ४८२
,, १३,१४ सिक्ख विनम्र एवं परोपकारी ४८२
,, १५ सिक्ख की नित्यचर्या ४८४
,, १६ सिक्ख-नित्यचर्या ४८४
,, १७ बिरले सिक्ख ४८५
,, १८ सिक्ख जीवन शिरोमणि ४८६
,, १९ गुरु बिना गति नहीं ४८६
,, २० गुरुमत पर बिरले मनुष्य ही चलते हैं ४८७
,, २१ गुणहीन गुरु ४८८
,, २२ सिक्ख-जीवन एवं शिरोमणि है ४८८

वार २९ ४९०-५०४

पउड़ी १ मंगलाचरण ४९०
,, २ सद्गुरु द्वारा अलक्ष्य का साक्षात्कार ४९०
,, ३ असाध विषयों को साध लिया ४९१
,, ४ सिक्ख का आचरण ४९२

विषय		पृष्ठ
पउड़ी ५	साधुसंगति में वे सफल व्यापार करते हैं	४९३
'' ६	साधुसंगति में गुरुभाई शोभायमान होते हैं	४९३
'' ७	गुरुमुख, साधुसंग—छः की गिनती	४९४
'' ८	शब्द साधना, साधुसंग—सात संख्या	४९५
'' ९	साधुसंग—आठ संख्या	४९५
'' १०	गुरुमत, साधुसंग—नौ संख्या	४९६
'' ११	सिक्ख क्या करे ?	४९७
'' १२	गुरुमुख की अवस्था	४९७
'' १३	साधुसंगति में मिलकर प्रभु-रज़ा मानो	४९८
'' १४	साधुसंगति में एक ही प्रभु की आराधना	४९९
'' १५	गुरुसिख योगी	५००
'' १६	साधुसंगति के प्रेमी बनकर देखो	५००
'' १७	मन को जीतने से ही संसार जीता-जाता है	५०१
'' १८	गुरु केवट साधुसंग	५०२
'' १९	गुरुमुख को सूझ प्राप्त	५०२
'' २०	सद्गुरु और सिक्ख, साधुसंग	५०३
'' २१	गुरु-शिष्य का मिलाप	५०४

वार ३० ५०५-५१९

पउड़ी १	मंगलाचरण	५०५
'' २-५	गुरुमुख,स्वेच्छाचारी, सत्य और झूठ	५०५
'' ६-१०	सत्य और झूठ	५०८
'' ११	सत्य-झूठ का निर्णय	५१२
पउड़ी १२-१३	सत्य झूठ का अन्त	५१३
'' १४	सत्य, सच्चा सिक्ख, सच्चा गुरु	५१४
'' १५	साधुसंगति	५१५
'' १६	झूठा गाँव	५१६
'' १७	सत्य में झूठ नहीं समा सकता	५१६
'' १८	सत्य को झूठ मिटा नहीं सकता	५१७
'' १९	झूठ अन्त में उघड़ता	५१८
'' २०	झूठ का अन्त बुरा	५१८

वार ३१ ५२०-५३४

पउड़ी १	गुण-अवगुण की गति	५२०
'' २	खोजी और विवादी	५२१
'' ३	खोटे पुरुष सुख में भी दुःखी रहते हैं	५२१
'' ४	भला और बुरा	५२२
'' ५	धर्मराज की कथा	५२३
'' ६	शुद्ध दर्पण	५२४
'' ७	गुरु पहरेदार	५२४
'' ८	संग-स्वभाव	५२५
'' ९	पूतना	५२६
'' १०	पाप की नक़ल बुरी	५२७
'' ११	गुरुमुख एवं स्वेच्छाचारी का अंतर केवल कर्मों के कारण है	५२७
'' १२-१३	कर्म के कारण यश अथवा अपयश	५२८
'' १४-१५	भला बुरा	५३०
'' १६	भले-बुरे की स्वाभाविक नेकी-बदी	५३१
'' १७	भले-बुरे की कहानी	५३२
'' १८	राम और रावण	५३३

विषय	पृष्ठ
पउड़ी १९ रावण की जगत-प्रसिद्ध कथा	५३३
,, २० श्रीरामचन्द्र की लोक-प्रसिद्ध कथा	५३४
वार ३२	**५३५-५४९**
पउड़ी १ गुरुमुख के लक्षण	५३५
,, २ गुरुमुख शक्ति होते हुए भी निर्बलता प्रदर्शित करता है	५३६
,, ३ स्वेच्छाचारी, मूर्ख, हीन एवं अकेला है	५३६
,, ४ मूर्ख उल्लू का दृष्टांत	५३७
,, ५ मूर्ख अन्धे को दर्पण	५३८
,, ६ मूर्ख को सँवारना	५३८
,, ७ मूर्ख पत्थर है, संगति में रहकर भी कुसंगी	५३९
,, ८ मूर्ख की संगति नहीं	५४०
,, ९ मूर्ख के साथ अनजान बने रहो	५४१
,, १० मूर्ख बेढंगा और अवगुणग्राही है	५४१
,, ११ मूर्ख स्वयं ही फँसता है और झूठा होता है	५४२
,, १२ मूर्ख सत्य का मित्र नहीं	५४३
,, १३ मूर्ख गुणविहीन होने पर भी गर्व करता है	५४३
,, १४ मूर्ख कौन है ?	५४४
,, १५ मूर्ख की पहचान	५४५
,, १६ मूर्ख का अंत	५४५
,, १७ मूर्ख नकल करने का फल भोगता है	५४६
,, १८ पंडित भी मूर्ख हो सकता है	५४७
पउड़ी १९ मूर्ख-संगति-फल	५४८
,, २० मूर्ख से कैसे निपटें	५४८
वार ३३	**५५०-५६६**
पउड़ी १ गुरुमुख-स्वेच्छाचारी	५५०
,, २ हिन्दू-मुसलमान	५५०
,, ३ जारज-पुत्र पर दर्पण	५५१
,, ४ गुरु का सिक्ख प्रधान	५५२
,, ५ चरखे का दृष्टांत	५५३
,, ६ व्यभिचारिन स्त्री	५५३
,, ७ द्वैतभाव एवं सिक्ख	५५४
,, ८ स्वेच्छाचारी और सर्प	५५५
,, ९ वेश्या का दृष्टांत	५५६
,, १० दुविधाग्रस्त	५५६
,, ११ दुविधाग्रस्त दुखी है	५५७
,, १२ द्वैतभाव से पराजय है	५५८
,, १३ द्वैतभाव से कष्ट	५५९
,, १४ दुविधाग्रस्त व्यक्ति सुधरता नहीं	५५९
,, १५ द्वैतभाववाले का अन्त	५६०
,, १६ दुबिधाग्रस्त की विनम्रता भी बुरी है	५६१
,, १७ दुबिधाग्रस्त कभी स्वयं नहीं झुकता	५६२
,, १८ दुबिधाग्रस्त दुखदायी	५६२
,, १९ चीड़ की दुष्टता	५६३
,, २० दुष्टता और भलाई पर दृष्टांत-तिल, सनई और कपास	५६४
,, २१ द्वैतभाव बबूल और धरेक वृक्ष की तरह है	५६५
,, २२ द्वैतभाव का इलाज	५६५

विषय		पृष्ठ
वार ३४		**५६७-५७९**
पउड़ी १	सद्गुरु की महिमा, सम्मुख और विमुख का परिणाम	५६७
'' २-३	गुरु न बतानेवाला, छिपानेवाला शिष्य	५६७
'' ४	विमुख व्यक्ति आनन्द नहीं लेता	५६९
'' ५	विमुख व्यक्ति दुखी रहता है	५६९
'' ६	विमुख गीदड़-अंगूर की तरह है	५७०
'' ७	विमुख व्यक्ति की संगति का फल	५७१
'' ८	विमुख व्यक्ति स्वयं दोषी है	५७२
'' ९	विमुख व्यक्ति की कमाई दूषित है	५७२
'' १०	विमुखव्यक्ति का मस्तक	५७२
'' ११	विमुख व्यक्ति झूठा है	५७३
'' १२	विमुख व्यक्ति थोथा	५७४
'' १३	विमुख व्यक्ति को कैसे ठीक किया जाए	५७४
'' १४	विमुख व्यक्ति का सब कुछ उलटा है	५७५
'' १५	विमुख व्यक्ति की संगति का फल	५७५
'' १६	विमुख व्यक्ति घोरपापी	५७६
'' १७	विमुखता का पाप छूटता नहीं	५७७
'' १८	सद्गुरु-बिन सुख नहीं	५७७
'' १९	विमुख व्यक्ति नेत्र-विहीन है	५७८
'' २०	झूठा अहंकारी भूत है	५७८
पउड़ी २१	विमुख व्यक्तियों के साथ झगड़ना निष्फल है	५७९
वार ३५		**५८०-५९४**
पउड़ी १-३	निन्दक	५८०
'' ४	गुरु-निन्दा	५८२
'' ५	गुरु-निन्दा के दृष्टांत	५८२
'' ६	गुरु को दोष देनेवाला	५८३
'' ७	गुरु-निन्दक का जन्म निरर्थक है	५८४
'' ८	कृतघ्न	५८४
'' ९	कृतघ्न का दृष्टांत	५८५
'' १०	नमकहराम	५८५
'' ११	नमकहलाल-गिनती	५८६
'' १२	धर्मशाला पर आँख लगाना	५८७
'' १३	पूजा के धन-धान्य की तृष्णा	५८७
'' १४	पूजा का धन-धान्य	५८८
'' १५	पूजा का धन-धान्य कैसे पचे	५८९
'' १६	धर्मशाला की ओर आँख लगाए रखने-वालों के लक्षण	५८९
'' १७	साधु-असाधु परीक्षा	५९०
'' १८	चारों वर्ण में साधु	५९०
'' १९	स्वाँगी साधु	५९१
'' २०	गुरु की लीला कौतुक	५९२
'' २१	लीला में कोई विरला ही खरा उतरता है	५९२
'' २२	यदि गुरु ही कोई लीला खेल दे तो भला सिक्ख क्या कर सकता है ?	५९३

		विषय	पृष्ठ
वार	३६		५९५-६०८
पउड़ी	१	स्वार्थी-मुँह-काला	५९५
''	२	कपटी का झूठा पोल खुल जाएगा	५९५
''	३	कपटी सच्ची संगति नहीं बना सकता	५९६
''	४	कपटी अन्ततः यमपुरी को जाएगा	५९७
''	५	कपटी की संगति खोटी और दुखदायी है	५९७
''	६	कपटी का मार्ग नरक में ले जाता है	५९८
''	७	कपटी की संगति निराश करती है	५९८
''	८	कपटी, गुरु द्वारा तिरस्कृत होते	५९९
''	९	गुरु-हीन होकर गुरु कहलवाना	६००
''	१०	गुरु-विहीनों के चेले निराश होते हैं	६००
''	११	गुरु-विहीन नपुंसक हैं	६०१
''	१२	प्रिय सेवा करने से प्राप्त होता है	६०१
''	१३	मुक्ति के सारे साधन निष्फल हैं	६०२
''	१४	तप, हठ और वेशों से मुक्ति नहीं	६०३
''	१५	मुक्ति के लिए अपने साधन व्यर्थ हैं	६०३
''	१६	गुरु-बिन-मुक्ति नहीं	६०४
''	१७	झूठ का पोल झूठ ही है	६०५
''	१८	गुण न होने पर भी अपने गुण गिनाने वाला मूर्ख है	६०५
पउड़ी	१९	वही	६०६
''	२०	गुरु की परख "सत्य"	६०७
''	२१	मुझमें सभी अवगुण हैं	६०७
वार	३७		६०९-६३१
पउड़ी	१	मंगलाचरण	६०९
''	२	ईश्वरीय शक्ति	६१०
''	३	रचना की विचित्रता	६१०
''	४	रचना की विचित्रता	६११
''	५	रचना में मानव-देह ही पार उतारने योग्य	६१२
''	६	मानव जन्म और भूल	६१२
''	७	मानव जन्म-माया-जाल	६१३
''	८	बालक-बुद्धि अचेत है	६१४
''	९	बालक-विचार-हीनता	६१५
''	१०	माता का उपकार	६१५
''	११	माता का उपकार और पुत्र का अपकार	६१६
''	१२	माता-पिता का उपकार विस्मृत करना पाप है	६१७
''	१३	माता-पिता के अपकारी के जप-तप निष्फल हैं	६१७
''	१४	उपकारी कर्त्ता की पहचान	६१८
''	१५	जैसी सुरति जागृत अवस्था में वैसी स्वप्न में	६१९
''	१६	दुर्बुद्धि व्यक्ति उपकार करने पर भी नहीं सँवरता	६२०
''	१७	अनेक में व्याप्त एक	६२०
''	१८	अनेकता में एक कर्त्ता का कृत जीव स्मरण नहीं करता	६२१

		विषय	पृष्ठ
पउड़ी	१९	स्वेच्छाचारी अंधे हैं	६२२
''	२०	स्वेच्छाचारी भलाई करने पर भी बुराई करता है	६२२
''	२१	गुरु-विहीन मनोन्मुख व्यक्ति वश में नहीं आ सकता	६२३
''	२२	द्वैतभाव खोटा दाँव है	६२४
''	२३	मनमुख व्यक्ति कृतघ्न	६२५
''	२४-२५	गुरु-विहीन प्राणी सबसे बुरा	६२५
''	२६	जुआरी का जन्म हारना	६२७
''	२७	चौपड़ के खेल की तरह गुरुमुख निभते हैं	६२८
''	२८	यदि अंधा पथ-प्रदर्शक बन जाए	६२८
''	२९,३०	नम्रता का उत्तम उपदेश	६२९
''	३१	गुरु-दरबार का कुत्ता	६३१

वार ३८ ६३२-६४३

पउड़ी	१	विकार गुरुसिक्ख को स्पर्श नहीं करते	६३२
''	२	गुरु के सिक्ख को काम स्पर्श नहीं करता	६३२
''	३	गुरुसिक्ख अहंकार की मार से परे हैं	६३३
''	४	गुरु का सिक्ख लोभ के वश में नहीं होता	६३३
''	५	गुरु का सिक्ख मोह विहीन है	६३४
''	६	गुरु सिक्ख स्वयं ही खाली	६३५
पउड़ी	७	निरभिमानी	६३५
''	८	गुरु का सिक्ख सत्याचारी है	६३६
''	९	गुरु का सिक्ख हिन्दू-मुसलमान भावना से ऊँचा है	६३७
''	१०	गुरुसिक्ख सब मत-मतांतरों से ऊँचा है	६३७
''	११	गुरुसिक्ख अन्य देशी और अन्य धर्म वालों ऊँचा है	६३८
''	१२	गुरु का सिक्ख कर्म-धर्म से ऊँचा सुख-फल में है	६३९
''	१३	प्रतापी और चिरजीवी लोगों से गुरुसिक्ख श्रेष्ठ	६३९
''	१४	गुरुसिक्ख इन्द्रिय सुखों से ऊपर सुखफल में है	६४०
''	१५	गुरुसिक्ख मन-बुद्धि के सुखों से ऊँचे सुख में	६४१
''	१६,१७	गुरुसिक्ख आत्मिक सुखों से ऊँचा प्रेम-रस में रहता है	६४१
''	१८	गुरुमुख का प्रेम-रस आश्चर्य से भी ऊँचा है	६४२
''	१९	प्रेमरस-प्राप्ति का साधन गुरु, सत्संग, नाम एवं अहम् त्याग	६४२
''	२०	छ: गुरु-स्तुति	६४३

वार ३९ ६४४-६६२

पउड़ी	१	मंगलाचरण	६४४
''	२	पाँच गुरु	६४५
''	३	गुरु हरिगोबिंद साहिब	६४६
''	४	गुरु-चरणोदक-महिमा	६४७

		विषय	पृष्ठ
पउड़ी	५	उपकारी महापुरुष	६४७
''	६	सब कुछ सत्य से नीचे	६४९
''	७	गुरुमुखों में गुरु ही व्यवहरित होता है	६५०
''	८	रसिक गुरुसिक्ख एवं खोखले ज्ञानी	६५१
''	९	प्रभु रसिकों को ही प्रेम-रस देता है	६५२
''	१०	नशा-विहीन खोखले ज्ञानियों का हाल	६५३
''	११	विशिष्ट रसिकों का हाल	६५३
''	१२	सद्गुरु का निवास सद्संगति में	६५४
''	१३	सत्संग-सत्यदेश है	६५५
''	१४	ब्रह्मा के कार्य	६५६
''	१५	विष्णु के कार्य	६५७
''	१६	शिव के कार्य	६५८
''	१७	सच्ची मर्यादा और मुक्ति-मार्ग	६५८
''	१८	गुरुमुख पीढ़ी	६५९
''	१९	गुरुसिक्खों का रिश्ता सच्चा रिश्ता है	६६०
''	२०	सद्गुरु का प्यार	६६१
''	२१	वही	६६२
वार	**४०**		**६६३-६७९**
पउड़ी	१	मंगलाचरण सद्गुरु	६६३
''	२	साधुसंगति	६६३
''	३	सद्गुरु-सेवा सभी फल-प्रदायक	६६४
पउड़ी	४	सद्गुरु की श्रेष्ठता	६६५
''	५	साधुसंग बलिहार	६६६
''	६	साधुसंगति धन्य है	६६६
''	७	सद्गुरु के ग्राहक	६६७
''	८	गुरु के बिना गति नहीं	६६८
''	९	सभी दान ओअंकार की कृपा है	६६८
''	१०	मनुष्य-जन्म की श्रेष्ठता	६६९
''	११	गुरुमुख का राजमार्ग अथवा नित्यकर्म	६७०
''	१२	सृष्टि	६७१
''	१३	गुरुसिक्खों के बिना सभी, भ्रमों में भटक रहे हैं	६७१
''	१४	सद्गुरु की शिक्षा	६७२
''	१५	विरले सेवक	६७३
''	१६	आदिपुरुष	६७४
''	१७	कर्म-निषेध	६७४
''	१८	सुखफल की विशेषता	६७५
''	१९	गुरु की शिष्यता	६७६
''	२०	गुरुफल	६७६
''	२१	सद्गुरु-महिमा	६७७
''	२२	मूल वर्णन	६७८
वार	**४१**		**६८०-७००**
		(वार स्री भगउती जी की पातिसाही दसवीं की)	६८०
		बोलना भाई गुरदास का	६८०

* * *

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।।

वारां ग्यान रतनावली

क्रित–भाई गुरदास जी

(नागरी लिपि में)

हिन्दी अनुवाद सहित

वार १

पउड़ी १

(मंगलाचरण)

नमसकारु गुरदेव को सतिनामु जिसु मंतु सुणाइआ ।
भवजल विचों कढि कै मुकति पदारथि माहि समाइआ ।
जनम मरण भउ कटिआ संसा रोगु वियोगु मिटाइआ ।
संसा इहु संसारु है जनम मरन विचि दुखु सवाइआ ।

पउड़ी १

(मंगलाचरण)

गुरुदेव (गुरु नानकदेव) को मैं नमस्कार करता हूँ जिसने " सतिनामु" मंत्र (संसार को) सुनाया है । (जीवों को) संसार - सागर से पार कराकर मोक्ष - पदार्थ में समाहित (लीन) करा दिया है । आवागमन के भय को छिन्न - भिन्न कर रोग और वियोग के संशय को भी मिटा दिया है । यह संसार मात्र भ्रम है और इसमें जन्म, मरण और दुःख अत्यधिक है ।

जम दंडु सिरौं न उतरै साकति दुरजन जनमु गवाइआ ।
चरन गहे गुरदेव दे सति सबदु दे मुकति कराइआ ।
भाउ भगति गुरपुरबि करि नामु दानु इसनानु द्रिढ़ाइआ ।
जेहा बीउ तेहा फलु पाइआ ।। १ ।।

पउड़ी २

(जगत उतपत्ती)

प्रिथमै सासि न मास सनि अंध धुंध कछु खबरि न पाई ।
रकति बिंद की देहि रचि पंचि तत की जड़ित जड़ाई ।
पउण पाणी बैसंतरो चउथी धरती संगि मिलाई ।
पंचमि विचि आकासु करि करता छटमु अदिसटु समाई ।
पंच तत पंचीसि गुनि सत्रु मित्र मिलि देहि बणाई ।

यमदंड (का भय) सिर पर से उतरता नहीं और शक्ति (वामाचारी) दुर्जनों ने अपना जन्म व्यर्थ में ही गँवा लिया है।(जिन्होंने) गुरुदेव के चरण पकड़ लिये हैं उन्हें उसने "सत्य शब्द'' के माध्यम से मुक्त करा दिया है । वे (मुक्त) व्यक्ति अब प्रेम-भक्ति से गुरुपर्व मनाकर नाम-स्मरण, दान एवं स्नान कर अन्यों को भी इस ओर प्रेरित करते हैं । जैसा बीज कोई बोता है वैसा ही फल पाता है ।। १ ।।

पउड़ी २

(जगत-उत्पत्ति)

सर्वप्रथम जब श्वास और मांसपिंड का शरीर नहीं था तब घोर अंधकार में कुछ भी सुझाई नहीं पड़ता था । (माता के) रक्त और (पिता के) बिंदु से देहरचना कर पाँचों तत्त्वों को यथास्थान संयुक्त किया गया । पवन, पानी, अग्नि और चौथे तत्त्व धरती को साथ मिलाया गया । पाँचवाँ तत्त्व आकाश (शून्य) बीच में रखा गया और छठा वह कर्त्ता स्वयं अदृष्ट रूप से उसमें व्याप्त हो गया । पाँच तत्त्व और पचीस परस्पर विरोधी (शत्रु-मित्र) गुणों को मिलाकर (मानव) देह की रचना की गयी ।

खाणी बाणी चलितु करि आवागउणु चरित दिखाई ।
चउरासीह लख जोनि उपाई ।। २ ।।

पउड़ी ३

(मनुख जनम दी उत्तमता)

चउरासीह लख जोनि विचि उतमु जनमु सु माणसि देही ।
अखी वेखणु करनि सुणि मुखि सुभि बोलणि बचन सनेही ।
हथी कार कमावणी पैरी चलि सतिसंगि मिलेही ।
किरति विरति करि धरम दी खटि खवालणु कारि करेही ।
गुरमुखि जनमु सकारथा गुरबाणी पढ़ि समझि सुणेही ।
गुरभाई संतुसटि करि चरणाम्रितु लै मुखि पिवेही ।
पैरी पवणु न छोडीऐ कली कालि रहरासि करेही ।
आपि तरे गुर सिख तरेही ।। ३ ।।

चारों उत्पत्ति-स्त्रोतों (अंडज, जेरज, स्वेदज, उदभिद), चारों वाणियों (परा, पश्यन्ति, मध्यमा, वैखरी) का अन्तर्भुक्त कर आवागमन का प्रपंच बना दिखाया । इस प्रकार चौरासी लाख योनिज प्राणियों की उत्पत्ति हो गयी ।। २ ।।

पउड़ी ३

(मनुष्य-जन्म की उत्तमता)

चौरासी लाख योनियों में मानव-योनि में जन्म लेना उत्तम है। आँखें देखती हैं, कान सुनते हैं और मुख से मधुर वचन बोले जाते हैं। हाथों से आजीविका अर्जन की जाती है और पाँव से चलकर सत्संगति को प्राप्त हुआ जाता है। (मानव-जन्म में ही) धर्म की कमाई करके अर्जित (धन-धान्य) में से (अन्यों को) खिलाया जाता है। मानव गुरुमुख बनकर जन्म को सार्थक बनाता है; ' गुरुवाणी' पढ़ता है एवं समझकर दूसरों को भी सुनाता है। गुरुभाइयों को संतुष्ट कर उनका चरणामृत पान करता है अर्थात् अत्यन्त विनम्रता धारण करता है। विनम्र चरण-वन्दना का त्याग नहीं करना चाहिए, क्योंकि कलियुग में (व्यक्तित्व की) यही पूँजी है। इस प्रकार के (आचरण वाले ही) स्वयं पार होंगे और गुरु के अन्य शिष्यों को भी पार करा देंगे ।। ३ ।।

पउड़ी ४

(जगत उतपत्ती कारण)

ओअंकारु आकारु करि एक कवाउ पसाउ पसारा ।
पंज तत परवाणु करि घटि घटि अदरि त्रिभवणु सारा ।
कादरु किने न लखिआ कुदरति साजि कीआ अवतारा ।
इक दू कुदरति लख करि लख बिअंत असंख अपारा ।
रोमि रोमि विचि रखिओनि करि ब्रहमंडि करोड़ि सुमारा ।
इकसि इकसि ब्रहमंडि विच दसि दसि करि अवतार उतारा ।
केते बेदि बिआस करि कई कतेब मुहंमद यारा ।
कुदरति इकु एता पासारा ।। ४ ।।

पउड़ी ५

(जुग आदिक)

चारि जुगि करि थापना सतिजुगु त्रेता दुआपर साजे ।
चउथा कलिजुगु थापिआ चारि वरनि चारों के राजे ।

पउड़ी ४

(जगत-उत्पत्ति का कारण)

रूपमान ॐकार ने एक ही शब्द से सारी सृष्टि-रचना का प्रसार कर दिया । पाँचों तत्वों के माध्यम से वह तीनों लोकों के सार-रूप में घट-घट में अवस्थित हो गया। उस कर्त्ता को कोई भी न देख पाया जिसने प्रकृति का सृजन कर उसे (अनन्त विस्तार के लिए) अवतरित किया । उसने एक प्रकृति के लाखों अनेकों असंख्य रूप बनाए । अपने एक-एक रोम में उसने करोड़ों ब्रह्मांडों को समेट रखा है और फिर एक-एक ब्रह्मांड में दसियों रूपों में स्वयं अवतरित होता हैं। उसने अनेकों वेद, व्यासों, कतेबों और मुहम्मद जैसे प्रिय व्यक्तित्वों की रचना की । एक प्रकृति और उसका इतना विशाल प्रसार किया गया ।। ४ ।।

पउड़ी ५

(युग आदि)

चार युगों को स्थापित कर (प्रभु ने) सतयुग, त्रेता, द्वापर नाम से उन्हें विभूषित किया ।

ब्रहमणि, छत्री, वैसि, सूद्रि, जुगु जुगु एको वरन बिराजे ।
सतिजुगि हंसु अउतारु धरि सोहं ब्रहमु न दूजा पाजे ।
एको ब्रहमु वखाणीऐ मोह माइआ ते बेमुहताजे ।
करनि तपसिआ बनि विखै वखतु गुजारनि पिंनी सागे ।
लखि वर्‍हिआँ दी आरजा कोठे कोटि न मंदरि साजे ।
इक बिनसै इक असथिरु गाजे ॥ ५ ॥

पउड़ी ६

(तथा च)

त्रेते छत्री रूप धरि सूरज बंसी वडि अवतारा ।
नउ हिसे गई आरजा माइआ मोहु अहंकारु पसारा ।
दुआपुरि जादव वंस करि जुगि जुगि अउध घटै आचारा ।
रिगबेद महि ब्रहम क्रिति पूरब मुखि सुभ करम बिचारा ।

~~~~~~

चौथा कलियुग बनाया और चारों वर्ण चारों युगों के राजा बने । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र नामक चारों वर्ण एक-एक युग में सुशोभित हुए । सतयुग में विष्णु ने हंसावतार-रूप में (ब्रह्मा को चिन्तातुर करनेवाले सनकादि के) तत्वज्ञान से सम्बन्धित प्रश्नों की व्याख्या की (यह कथा भागवत के ग्यारहवें स्कंध के तेरहवें अध्याय में है) और एक सोऽहं ब्रह्म के अतिरिक्त किसी अन्य के चिन्तन का प्रपंच नहीं होता था । लोग माया से उदासीन होकर केवल एक ब्रह्म का गुणानुवाद करते थे । वनों में तपस्या करते थे और कन्द-मूल आदि खाकर निर्वाह करते थे । लाखों वर्षों की आयु होने के बावजूद महल, किले और अट्टालिकाएँ नहीं बनाते थे । एक ओर संसार विनष्ट होता चला जाता था, परन्तु फिर भी जीवन-प्रवाह स्थिर गति से चलता ही चला जाता था ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(युग आदि)

त्रेता में क्षत्रिय-रूप धारण कर सूर्यवंश में (श्रीराम का) महान अवतार हुआ । आयु के नौ भाग अब कम हो गये और माया, मोह, अहंकार का प्रसार बढ़ गया । द्वापर में यादव-वंश का उत्थान किया अर्थात् यादववंशी श्रीकृष्ण का अवतार हुआ, परन्तु आचरण की कमियों के कारण युग-युगान्तर में (व्यक्ति की) आयु भी कम होती गई ।
~~~~~~

खत्री थापे जुजरुवेदि दखण मुखि बहु दान दातारा ।
वैसों थापिआ सिआम वेदु पछमु मुखि करि सीसु निवारा ।
रिगि नीलंबरि जुजरपीत स्वेतंबरि करि सिआम सुधारा ।
तिहु जुगी तै धरम उचारा ॥ ६ ॥

पउड़ी ७

(तथा च)

कलिजुगु चउथा थापिआ सूद्र बिरति जग महि वरताई ।
करम सु रिगि जुजर सिआम के करे जगतु रिदि बहु सुकचाई ।
माइआ मोही मेदनी कलि कलिवाली सभि भरमाई ।
उठी गिलानि जगत्रि विचि हउमै अंदरि जलै लुकाई ।
कोइ न किसै पूजदा ऊच नीच सभि गति बिसराई ।
भए बिअदली पातसाह कलि काती उमराइ कसाई ।

ऋग्वेद में ब्राह्मणों के कर्तव्य कर्म और पूर्व की ओर मुख करके शुभ कर्मों के विचार के बारे में बताया गया । क्षत्रिय यजुर्वेद से सम्बद्ध हो गये और दक्षिण दिशा की ओर मुख करके दान करने लगे । सामवेद को वैश्यों ने अपनाया और पश्चिम दिशा की ओर सिर झुकाया । ऋग्वेद के लिए नीले वस्त्र, यजुर्वेद के लिए पीले और सामवेद के गान के लिए श्वेत वस्त्र पहना जाने लगा । इस प्रकार तीनों युगों के तीन युगधर्मों का उच्चारण किया जाने लगा ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(युग आदि)

कलियुग चौथे युग के रूप में प्रचलित हुआ जिसमें सारे संसार में शूद्रवृत्ति व्याप्त हो गई । व्यक्ति अब ऋग् , यजुर्वेद एवं सामवेद विहित कर्मों को करने में अत्यन्त सकुचाने लगे । सारी पृथ्वी माया-वश हो गयी और कलियुग की कलाबाजियों ने सबको भ्रम में डाल दिया । सारे जगत में घृणा और ग्लानि छा गई और सभी लोग अहंकारभाव में जलने-से लगे । अब कोई किसी की पूजा नहीं करता और ऊँच-नीच का व्यवहार भुला दिया गया । कैंची रूपी कलियुग में सम्राट् अन्यायी और उनके उमराव (मुसाहिब) कसाई बन गये । तीनों युगों का न्याय लुप्त

रहिआ तपावसु त्रिहु जुगी चउथे जुगि जो देइ सु पाई ।
कर भ्रिसटि सभि भई लोकाई ।। ७ ।।

पउड़ी ८

(खट शासत्र)

चहुँ बेदाँ के धरम मथि खटि सासत्र कथि रिखि सुणावै ।
ब्रहमादिक सनकादिका जिउ तिहि कहा तिवै जगु गावै ।
गावनि पड़नि बिचारि बहु कोटि मधे विरला गति पावै ।
इहि अचरजु मन आवदी पड़ति गुणति कछु भेदु न पावै ।
जुग जुग एको वरन है कलिजुगि किउ बहुते दिखलावै ।
जंद्रे वजे त्रिहु जुगी कथि पढ़ि रहै भरमु नहि जावै ।
जिउ करि कथिआ चारि बेदि खटि सासत्रि संगि साखि सुणावै ।
आपो आपणे मति सभि गावै ।। ८ ।।

हो गया और अब तो जो कुछ देता है वही (न्याय) पाता है । सब लोगों के कर्म भ्रष्ट हो गये हैं ।। ७ ।।

पउड़ी ८

(छः शास्त्र)

चारों वेदों के धर्म का मंथन कर ऋषियों ने छः शास्त्रों का प्रतिपादन किया । ब्रह्मा, सनक आदि ने जैसा निरूपित किया, लोग उसी भाँति गायन करने लगे । गाते, पढ़ते और चिन्तन तो अनेकों करते हैं, पर करोड़ों में कोई बिरला ही मर्म को समझता है । मन में यह आश्चर्य ही होता है कि पढ़ते, सुनते, मनन करते भी किसी रहस्य को नहीं जाना जा सकता । प्रत्येक युग में तो एक ही वर्ण की बहुलता थी, पर कलियुग में क्यों अनेकों वर्ण दिखाई पड़ते हैं ? तीनों युगों के धर्मों पर तो तालाबंदी कर दी गयी अर्थात् उन्हें त्याग दिया गया है । इस बात को सब कहते-सुनते भी हैं परन्तु फिर भी भ्रम मिटता नहीं । जिस प्रकार चारों वेदों का कथन किया गया है वैसे ही छः शास्त्र भी साक्षी रूप में सुना दिए गये हैं । सभी अपने-अपने मत का बखान करते हैं ।। ८ ।।

पउड़ी ९

(न्याय)

गोतमि तपे बिचारि कै रिगिवेद की कथा सुणाई ।
निआइ सासत्रि कौ मथि करि सभि बिधि करते हथि जणाई ।
सभ कछु करते वसि है होरि बाति विचि चले न काई ।
दुही सिरी करतारु है आपि निआरा करि दिखलाई ।
करता किनै न देखिआ कुदरति अंदरि भरमि भुलाई ।
सोहं ब्रहमु छपाइ कै पड़दा भरमु करतारु सुणाई ।
रिगि कहै सुणि गुरमुखहु आपे आपि न दूजी राई ।
सतिगुर बिना न सोझी पाई ॥ ९ ॥

पउड़ी ९

(न्याय)

गौतम ऋषि ने विचारपूर्वक ऋग्वेद की वार्त्ता कह सुनाई है । विचारों के मंथन के बाद न्यायशास्त्र में सभी कारणों का निमित्तकर्त्ता पुरुष बताया है । सभी कुछ उस कर्त्ता के वश में है और (उसके विधान में) अन्य किसी का आदेश नहीं माना जा सकता । आदि-अंत के दोनों छोरों पर वही कर्त्ता है पर फिर भी (इस शास्त्र में) उसे इस सृष्टि से अलग भी माना (दिखाया) गया है (न्यायशास्त्र की यह मुख्य प्रमेय है कि ईश्वर सृष्टि का निमित्त कारण है, उपादान कारण नहीं)। उस कर्त्ता को तो किसी ने नहीं देखा, जाना अपितु प्रकृति के विस्तार भ्रम में ही सब उलझकर रह गये हैं । उस सोऽहं ब्रह्म को न अनुभव कर भ्रमवश जीव उस प्रभु को मनुष्य-जैसा (त्रूटिपूर्ण) कर्त्ता बताता है । ऋग्वेद बताता है कि हे गुरु की ओर उन्मुख व्यक्तियो (गुरुमुख जनो) ! वह परमात्मा ही सब कुछ स्वयं है, अन्य कोई नहीं । सच्चे गुरु के बिना यह रहस्य समझ में नहीं आता ।। ९ ।।

पउड़ी १०

(मीमांसा)

फिरि जैमनि रिखु बोलिआ जुजरिवेदि मथि कथा सुणावै ।
करमा उते निबड़ै देही मधि करे सो पावै ।
थापसि करम संसार विचि करम वास करि आवै जावै ।
सहसा मनहु न चुकई करमां अंदरि भरमि भुलावै ।
करमि वरतणि जगति की इको माइआ ब्रह्म कहावै ।
जुजरिवेदि को मथनि करि तत ब्रहमु विचि भरमु मिलावै ।
करम द्रिड़ाइ जगत विचि करम बंधि करि आवै जावै ।
सतिगुर बिना न सहसा जावै ।। १० ।।

पउड़ी ११

(वेदांत)

सिआम वेद कउ सोधि करि मथि वेदांतु बिआसि सुणाइआ ।
कथनी बदनी बाहरा आपे अपणा ब्रहमु जणाइआ ।

पउड़ी १०

(मीमांसा)

फिर जैमिनी ऋषि ने यजुर्वेद का मंथन कर (अपने सिद्धान्त रूपी) कथा सुनाई कि अन्तिम निर्णय कर्मों के आधार पर ही होगा और यह शरीर जैसा कर्म करेगा वैसे ही फल प्राप्त करेगा । उसने कर्मसिद्धान्त की स्थापना की और बताया कि आवागमन कर्मो के वश में ही है । कर्मसिद्धान्त के (अनवस्था दोष के कारण) संशय की समाप्ति नहीं होती और (जीव) कर्मों की भूलभुलैया में ही भूला रहता है। कर्म तो संसार का व्यवहार है तथा वह एक परमतत्त्व ही माया और ब्रह्म कहलाता है । (यह शास्त्र) यजुर्वेद का मंथन कर तत्त्वब्रह्म में भ्रम की मिलावट कर देता है और संसार में कर्मकाण्ड दृढ़तापूर्वक स्थापित कर सांसारिक आवागमन को कर्मबंधन का प्रभाव मानता है । सच्चे गुरु (के द्वारा दिये ज्ञान के) बिना कर्मसंशय का उन्मूलन नहीं होता ।। १० ।।

पउड़ी ११

(वेदांत)

सामवेद का विचारपूर्ण मंथन कर (बादरायण) व्यास ने लोगों को वेदान्त सुनाया ।

नदरी किसै न लिआवई हउमै अंदरि भरमि भुलाइआ ।
आपु पुजाइ जगत विचि भाउ भगति दा मरमु न पाइआ ।
त्रिपति न आवी वेदि मथि अगनी अंदरि तपति तपाइआ ।
माइआ डंड न उतरे जम डंडै बहु दुखि रूआइआ ।
नारदि मुनि उपदेसिआ मथि भागवत गुनि गीत कराइआ ।
बिनु सरनी नहिं कोइ तराइआ ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(सांखि)

दुआपरि जुगि बीतत भए कलजुगि के सिरि छत्र फिराई ।
वेद अथरवणि थापिआ उतरि मुखि गुरमुखि गुन गाई ।
कपल रिखीसुरि सांखि मथि अथरवणि वेद की रिचा सुणाई ।
गिआन महा रस पीअ कै सिमरे नित अनित निआई ।

~~~~~~

उसने स्वयं (आत्मा) को अनिर्वचनीय ब्रह्म-रूप में लोगों के समक्ष प्रस्तुत किया । वह किसी को भी दृष्टिगत नहीं होता और जीव अहम् के भ्रम में ही भूला फिरता है । वह स्वयं को ब्रह्म प्रतिष्ठित कर स्वयं को ही पूज्य बना गया, परन्तु प्रेम-भक्ति के रहस्य को न जान सका । वेदों का मंथन करके भी शांति प्राप्त न हुई और अपने अहम् की अग्नि में सबको तपाने लगा । माया का दंड सदैव सिर पर बना रहा और यम-दंड के कारण अत्यन्त दु:ख को प्राप्त हुआ । नारद से ज्ञान प्राप्तकर भागवत का उच्चारण किया और इस तरह प्रभु का गुणानुवाद किया । बिना (गुरु की) शरण में आये कोई भी (भवसागर से) पार नहीं हो सका है ।। ११।।

पउड़ी १२

(सांख्य)

द्वापर युग बीत गया और राजछत्र कलियुग के सिर पर झूलने लगा । अथर्ववेद की प्रतिष्ठा हुई और गुरुमुख व्यक्ति उत्तर दिशा की ओर मुँह कर गुणानुवाद करने लगे । कपिल ऋषि ने तत्वरूप में अथर्ववेद की ऋचाएँ लोगों को सुनाईं । ज्ञान रूपी महारस का पान करो, सदैव नित्य-अनित्य का चिन्तन करते रहने की बात कही। करोड़ों प्रयत्नों के बावजूद ज्ञान के बिना प्राप्ति नहीं हो सकती।
~~~~~~

गिआन बिना नहि पाईऐ जो कोई कोटि जतनि करि धाई ।
करमि जोग देही करे सो अनित खिन टिके न राई ।
गिआनु मते सुखु ऊपजै जनम मरन का भरमु चुकाई ।
गुरमुखि गिआनी सहजि समाई ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(वैशेखक)

बेद अथरबनु मथनि करि गुरमुखि बासेखिक गुन गावै ।
जेहा बीजै सो लुणै समे बिना फलु हथि न आवै ।
हुकमै अंदरि सभु को मंनै हुकमु सो सहजि समावै ।
आपो कछू न होवई बुरा भला नहि मंनि वसावै ।
जैसा करि तैसा लहै रिखि कणादिक भाखि सुणावै ।
सतिजुगि का अनिआइ सुणि इक फेड़े सभु जगत मरावै ।

~~~~~~

कर्म और योग देह के व्यापार हैं और ये दोनों ही अनित्य हैं, क्षणभंगुर हैं । ज्ञान-बुद्धि से ही परम सुख उत्पन्न होता है और जन्म-मरण का भ्रम समाप्त होता है । गुरुमुख ज्ञानवान, सहज रूप (निज स्वरूप) में समाहित हो जाते हैं ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(वैशेषिक)

अथर्ववेद को मथकर गुरुमुख (कणाद्) ने वैशेषिक में " गुणों" का गायन किया । करनी-भरनी का सिद्धान्त प्रस्तुत किया और बताया कि समय आने पर ही फल हाथ लगेगा । हुक्म (जिसे वह अपूर्व कहता है) के अन्तर्गत ही सब कुछ है और जो हुक्म (प्रभु-इच्छा) को मान लेता है, वह सहज भाव में स्थिर हो जाता है । जीव यह समझ ले कि अपने आप कुछ नहीं होता है (और बुरे भले के हम स्वयं उत्तरदायी हैं), इसलिए किसी के बुरे भले को अपने मन में स्थान न दे । ऋषि कणाद् ने कहा कि जैसा करोगे वैसा (अवश्य) भरोगे। सतयुग का तो यह अन्याय सुनो कि बुरा तो एक करता था और सारा जगत कष्ट उठाता था; त्रेता में एक के बुरा करने पर सारा नगर फल भोगता था तथा द्वापर में यह कष्टों का भोगना केवल वंश तक ही सीमित रह गया और मात्र वंश की ही बदनामी होती थी ।
~~~~~~

त्रेते नगरी पीड़ीऐ, दुआपरि वंसु कुवंस कुहावै ।
कलिजुग जो फेड़े सो पावै ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(नाग-शेशनाग, पातंजल)

सेखनाग पातंजल मथिआ गुरमुखि सासत्र नागि सुणाई ।
वेद अथरवण बोलिआ जोग बिना नहि भरमु चुकाई ।
जिउ करि मैली आरसी सिकल बिना नहि मुखि दिखाई ।
जोगु पदारथ निरमला अनहद धुनि अंदरि लिव लाई ।
असट दसा सिधि नउ निधी गुरमुखि जोगी चरन लगाई ।
त्रिहु जुगां की बासना कलिजुग विचि पातंजलि पाई ।
हथो हथी पाईऐ भगति जोग की पूर कमाई ।
नाम दानु इसनानु सुभाई ।। १४ ।।

~~~~~~

कलियुग में तो अब जो बुरा करता है वही उसका फल भोगता है ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(नाग अर्थात् शेषनाग के अवतार पतंजलि)

हे गुरुमुखो ! शेषनाग (के अवतार) पतंजलि ने विचार पूर्वक नाग-शास्त्र– योगशास्त्र (पातंजल-योगसूत्र) कह सुनाया। अथर्ववेद के आधार पर वह बोला कि योग के बिना भ्रम-निवृत्ति नहीं हो सकती । यह ठीक वैसा ही है जैसा कि दर्पण को साफ किए बिना उसमें चेहरा नहीं दिखाई देता । योग निर्मल साधना है जिसके माध्यम से सुरति अनहद शब्द में लीन हो जाती है । अठारह सिद्धियाँ और नव निधियाँ गुरुमुख योगी के चरणों में आ गिरती हैं । तीनों युगों में न पूरी हो सकी अभीप्सा के योग द्वारा पूरी हो सकने की बात पतंजलि ने कलियुग में कही । योग की यही उपलब्धि है कि सब कुछ हाथोंहाथ प्राप्त हो जाता है । जीव को चाहिए कि नाम-स्मरण, दान और स्नान (आंतरिक एवं बाह्य) को अपना स्वभाव बना ले ।। १४ ।।
~~~~~~

पउड़ी १५

(जुगां बावत प्रचलित खिआल)

जुगि जुगि मेरु सरीर का बासना बधा आवै जावै ।
फिरि फिरि फेरि वटाईऐ गिआनी होइ मरमु कउ पावै ।
सतिजुगि दूजा भरमु करि त्रेते विचि जोनी फिरि आवै ।
त्रेते करमां बाँधते दुआपरि फिरि अवतार करावै ।
दुआपरि ममता अहं करि हउमै अंदरि गरबि गलावै ।
त्रिहु जुगां के करम करि जनम मरन संसा न चुकावै ।
फिरि कलिजुग अंदरि देहि धरि करमां अंदरि फेरि फसावै ।
अउसरु चुका हथ न आवै ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(कलिजुग के करम)

कलिजुग की सुण साधना करम किरति की चलै न काई ।
बिना भजन भगवान के भाउ भगति बिनु ठउड़ि न पाई ।

पउड़ी १५

(युगादि से संबंधित प्रचलित विचारधारा)

युगों-युगान्तरों से शरीर में श्रेष्ठ तत्त्व जीवात्मा अपनी अपूर्ण वासनाओं से बँधा आवागमन में पड़ा है । बारम्बार देह-परिवर्तन होता है पर इस परिवर्तन के मर्म को कोई ज्ञानवान् बनकर ही जान सकता है । सतयुग में द्वैतभाव में पड़ा यह जीव त्रेतायुग में योनि में आया । त्रेता के कर्मबंधन में बँधकर इसने द्वापर में अवतार लिया तथा द्वापर के ममत्व, अहंकार एवं अभिमान में तड़पता रहा । तीनों युगों के कर्मों-धर्मों (कर्त्तव्यों) को करते रहने पर भी जन्म-मरण का भय चुकता नहीं । पुन: यह कलियुग में देह धारण करता है और फिर कर्मों में फँस जाता है । हाथ से निकला अवसर फिर हाथ नहीं लगता ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(कलियुग के कर्म)

अब कलियुग की साधना सुनो । इसमें कर्मकाण्ड को कोई नहीं पूछता ।

लहे कमाणा एत जुगि पिछली जुगीं करी कमाई ।
पाइआ मानस देहि कउ ऐथौ चुकिआ ठौर न ठाई ।
कलिजुगि के उपकारि सुणि जैसे बेद अथरवण गाई ।
भाउ भगति परवान है जग होम गुरपुरबि कमाई ।
करि के नीच सदावणा तां प्रभु लेखै अंदरि पाई ।
कलिजुगि नावै की वडिआई ॥ १६ ॥

पउड़ी १७

(जुग गरदी)

जुगि गरदी जब होवहे उलटे जुगु किआ होइ वरतारा ।
उठे गिलानि जगति विचि वरते पाप भ्रिसटि संसारा ।
वरनावरन न भावनी खहि खहि जलन बाँस अंगिआरा ।
निंदिआ चले वेद की समझनि नहि अगिआनि गुबारा ।

~~~~~~

भगवद्भजन और प्रेमाभक्ति के बिना कहीं स्थान प्राप्त नहीं होगा । पिछले युगों की साधना का फल इस युग में मिला है और मनुष्य देह प्राप्त हुई है । अब इस अवसर से चूक गया तो कहीं भी ठौर-ठिकाना नहीं मिलेगा । जैसा कि अथर्ववेद ने गायन किया है, कलियुग के उपकारों को सुनो । अब तो भाव-पूर्ण भक्ति ही स्वीकार है; यज्ञ, होम और (देहधारी) गुरु-पूजा तो पूर्व युगों की साधना थी । अब तो कुछ करके भी (अकर्ता-भाव से) नीच कहलाया जाय तो प्रभु की दृष्टि में चढ़ा जा सकता है। कलियुग में तो नाम-स्मरण को ही बड़प्पन मिलता है ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(युगों की अंधेरगर्दी)

जब युग का पतन होता है तो बस युग-धर्म के विपरीत कर्म होना प्रारम्भ हो जाते हैं । जगत ग्लानि और घृणा से ढ़क जाता है और संसार में भ्रष्टता तथा पाप का ही व्यवहार हो जाता है । वर्ण-अवर्ण परस्पर एक-दूसरे को भाते नहीं और आपसी मुठभेड़ों में इस प्रकार समाप्त हो जाते हैं जैसे बाँसों की आपसी रगड़ से उत्पन्न अंगारे सब बाँसों को जलाकर नष्ट कर देते हैं । वेद (ज्ञान) निंदा प्रारम्भ हो जाती है और अज्ञान-अंधकार में कुछ सुझाई नहीं पड़ता । जिनके पीछे लगकर भवसागर को पार करना होता है ,
~~~~~~

वेद गिरंथ गुर हटि है जिसु लगि भवजल पारि उतारा ।
सतिगुर बाझु न बुझीऐ जिचरु धरे न प्रभु अवतारा ।
गुर परमेसरु इकु है सचा साहु जगतु बणजारा ।
चड़े सूर मिटि जाइ अंधारा ॥ १७ ॥

पउड़ी १८

(बोध मत्त)

कलिजुगि बोधु अउतारु है बोधु अबोधु न द्रिसटी आवै ।
कोइ न किसै वरजई सोई करे जोई मनि भावै ।
किसे पुजाई सिला सुंनि कोई गोरी मढ़ी पुजावै ।
तंत्र मंत्र पाखंड करि कलहि क्रोधु बहु वादि वधावै ।
आपो धापी होइ कै निआरे निआरे धरम चलावै ।
कोई पूजै चंदु सूरु कोई धरति अकासु मनावै ।
पउणु पाणी बैसंतरो धरमराज कोई त्रिपतावै ।
फोकटि धरमी भरमि भुलावै ॥ १८ ॥

उस वेद-ज्ञान के ग्रंथों के मार्ग से विद्वान लोग भी दूर हट जाते हैं । सच्चे गुरु के बिना, जो कि प्रभु-रूप में अवतार लेता है, इस रहस्य को समझा-बूझा नहीं जा सकता । गुरु और परमेश्वर एक ही है; वह सच्चा स्वामी है और सारा संसार उसका तलबगार है । वह सूर्य की तरह उदित होता है और अंधकार समाप्त हो जाता है ।। १७ ।।

पउड़ी १८

(बौद्धिक मत)

कलियुग में बौद्धिकता का अवतार हुआ है, परन्तु ज्ञान-अज्ञान का यहाँ कुछ पता नहीं चलता । कोई किसी को रोकता नहीं और जिसके जो मन आता है वह करता है। किसी ने जड़ शिलाओं की पूजा प्रारम्भ करवा दी और किसी ने लोगों को श्मशान और कब्रों की पूजा बता दी । तंत्र-मंत्रादि के पाखंडों के कारण कलह, क्रोध और वाद-विवाद अत्यधिक बढ़ गया है । सब आपा-धापी में है और न्यारे-न्यारे धर्म चला दिए गये हैं । कोई चन्द्र की, कोई सूर्य की और धरती-आकाश की पूजा कर रहा है । कोई पवन, पानी, अग्नि और कोई धर्मराज को तृप्त कर रहा है । ये सब खोखले धार्मिक व्यक्ति हैं और भ्रमों में भूले हुए हैं ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(भेख-निरणाय)

भई गिलानि जगत्ति विचि चारि वरनि आस्रम उपाए ।
दसि नामि संनिआसीआ जोगी बारह पंथि चलाए ।
जंगम अते सरेवड़े दगे दिगंबरि वादि कराए ।
ब्रहमणि बहु परकारि करि सासत्ति वेद पुराणि लड़ाए ।
खटु दरसन बहु वैरि करि नालि छतीसि पखंड रलाए ।
तंत मंत रासाइणा करामाति कालखि लपटाए ।
इकसि ते बहु रूपि करि रूपि कुरूपी घणे दिखाए ।
कलिजुगि अंदरि भरमि भुलाए ॥ १९ ॥

पउड़ी २०

(मुसलमानी मत)

बहु वाटी जगि चलीआ तब ही भए मुहंमदि यारा ।
कउमि बहतरि संगि करि बहु बिधि वैरु विरोधु पसारा ।

पउड़ी १९

(वेश-निर्णय)

जगत में कुकर्मों की ग्लानि के कारण चार वर्ण और चार आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास) की व्यवस्था की गई । तत्पश्चात् संन्यासियों के दस और योगियों के बारह पंथ चल निकले । तब जंगम (सदैव चलते-फिरते रहनेवाले साधु) श्रमण, दिगंबरादि प्रस्तुत हुए और वाद-विवादों में लग गये । अनेक प्रकार के ब्राह्मण पैदा हो गये और उन्होंने शास्त्र, वेद और पुराणों को ही परस्पर लड़ा दिया । षट्-दर्शनों की परस्पर ईर्ष्या (खंडन-मंडन) ने अनेकों पाखंड साथ में और मिला दिए । लोग तंत्र-मंत्र, रसायन-सिद्धि और चमत्कारों की कालिमा को ही ओढ़ने-बिछाने लगे । एक से अनेक रूपों में बँटकर अत्यन्त कुरूप होकर दिखने लगे । सब लोग ही कलियुग की भूलभुलैया में खो गये ।। १९ ।।

पउड़ी २०

(इस्लाम-मत)

जब संसार में अनेकों पंथ चल निकले तो खुदा का प्यारा मुहम्मद पैदा हुआ ।

रोजे ईद निमाजि करि करमी बंदि कीआ संसारा ।
पीर पैकंबरि अउलीए गउसि कुतब बहु भेख सवारा ।
ठाकुर दुआरे ढाहि कै तिहि ठउड़ी मासीति उसारा ।
मारनि गऊ गरीब नो धरती उपरि पापु बिथारा ।
काफरि मुलहदि इरमनी रूमी जंगी दुसमणि दारा ।
पापे दा वरतिआ वरतारा ।। २० ।।

पउड़ी २१

(हिंदू-मुसलमान दा टाकरा)

चारि वरनि चारि मजहबाँ जगि विचि हिंदू मुसलमाणे ।
खुदी बखीलि तकबरी खिंचोताणि करेनि धिङाणे ।
गंग बनारसि हिंदूआँ मका काबा मुसलमाणे ।
सुंनति मुसलमाण दी तिलक जंञु हिंदू लोभाणे ।

कौम बहत्तर किस्मों में बँट ही गई और कई प्रकार की शत्रुता एवं विरोध बढ़ गये। संसार को रोज:, ईद, नमाज आदि के कर्मों में प्रतिबद्ध कर दिया गया । कई वेशों में पीर-पैगम्बर, औलिया, गौस एवं कुतुब आदि पैदा हो गये । ठाकुरद्वारों (मंदिरों) को गिराकर उनकी जगह मस्जिदें बना दी गयीं । गऊ-गरीब को मारा जाने लगा और इस प्रकार धरती पर पाप फैल गया । आर्मेनियन, रूमी लोगों को धर्म से विमुख (काफिर) करार दे दिया गया और युद्धों में दुश्मनों की भाँति उन्हें चीर-फाड़ डाला गया । चारों तरफ पाप का व्यवहार और बोल-बाला हो गया ।। २० ।।

पउड़ी २१

(हिन्दू-मुस्लिम तुलना)

इस संसार में हिन्दू और मुस्लिम क्रमश: चार वर्णों और चार मजहबों (शीया, सुन्नी, राफजी और इमामसाफी)में बँटे हुए हैं । ये सभी अहंकार और निंदा में फँसे हुए परस्पर खींचतान में लगे हुए हैं। हिन्दू गंगा और काशी को तथा मुसलमान मक्का, काबा को मानते हैं। मुसलमान सुन्नत करवाते हैं और हिन्दू तिलक-जनेऊ में मग्न हैं। एक राम कहता है, दूसरा रहीम कहता है। ये दोनों नाम एक ही (परमतत्व के) हैं परन्तु लोग दोनों राहों पर (अलग-अलग) भटक रहे हैं।

राम रहीम कहाइदे इकु नामु दुइ राह भुलाणे ।
वेद कतेब भुलाइकै मोहे लालच दुनी सैताणे ।
सचु किनारे रहि गिआ खहि मरदे बाम्हणि मउलाणे ।
सिरो न मिटे आवणि जाणे ॥ २१ ॥

पउड़ी २२

(वाहगुरू जी दा निआउँ)

चारे जागे चहु जुगी पंचाइणु प्रभु आपे होआ ।
आपे पटी कलमि आपि आपे लिखणिहारा होआ ।
बाझु गुरू अंधेरु है खहि खहि मरदे बहु बिधि लोआ ।
वरतिआ पापु जगत्रि ते धउलु उडीणा निसिदिनि रोआ ।
बाझु दइआ बलहीण होउ निघरु चलौ रसातलि टोआ ।
खड़ा इकते पैरि ते पाप संगि बहु भारा होआ ।
थंमे कोइ न साधु बिनु साधु न दिसै जगि विच कोआ ।
धरम धउलु पुकारै तलै खड़ोआ ॥ २२ ॥

वेद और कतेबों को भुलाकर लोग शैतानों की तरह दुनियादारी के लालचों में फँसे हुए हैं । सत्य तो कहीं दूर किनारे पर रह गया है और ये ब्राह्मण और मौलवी आपस में ही भिड़कर मर रहे हैं । आवागमन का चक्र जो भाग्य में है वह (ऐसे) नहीं समाप्त होता ।। २१ ।।

पउड़ी २२

(परमात्मा का न्याय)

इन चारों युगों के प्रबल युगधर्मों के झगड़े निपटानेवाला पंच प्रभु स्वयं ही है। वह स्वयं ही पत्र (कागज), स्वयं ही कलम और स्वयं ही लेखक भी है। गुरु के बिना अँधेरा है और लोग विभिन्न तरीकों से आपस में लड़-लड़कर मर रहे हैं। सारे जगत में पाप व्याप्त हो गया है और (धरती का आश्रय) बल रात-दिन रो-रोकर उदास हो रहा है। वह भी दया के अभाव में बलहीन होकर रसातल की ओर गर्क होने जा रहा है। एक ही पैर पर खड़ा होकर वह पाप का अत्यन्त बोझ अनुभव कर रहा है। अब इस धरती को साधु पुरुषों के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं थाम सकता और साधु इस संसार में कहीं दिखाई नहीं पड़ता। धर्म रूपी बैल नीचे खड़ा दुहाई दे रहा है।। २२ ।।

पउड़ी २३

(गुरु अवतार)

सुणी पुकारि दातार प्रभु गुरु नानक जग माहि पठाइआ ।
चरन धोइ रहरासि करि चरणाम्रितु सिखां पीलाइआ ।
पारब्रहमु पूरन ब्रहमु कलिजुगि अंदरि इकु दिखाइआ ।
चारे पैर धरम्म दे चारि वरनि इकु वरनु कराइआ ।
राणा रंकु बराबरी पैरी पावणा जगि वरताइआ ।
उलटा खेलु पिरंम दा पैरा उपरि सीसु निवाइआ ।
कलिजुगु बाबे तारिआ सतिनामु पढ़ि मंत्रु सुणाइआ ।
कलि तारणि गुरु नानकु आइआ ।। २३ ।।

पउड़ी २४

(गुरु नानकदेव जी दा प्रथम प्रसंग)

पहिला बाबे पाया बखसु दरि पिछोदे फिरि घालि कमाई ।
रेतु अक्कु आहारु करि रोड़ा की गुर कीअ विछाई ।

पउड़ी २३

(गुरु-अवतार)

दाता प्रभु ने पुकार को सुना और गुरु नानक को इस संसार में भेजा । उन्होंने चरण धोकर प्रभु की स्तुति की और चरणामृत शिष्यों को पिलाया । ब्रह्म (सगुण) परब्रह्म (निर्गुण) एक ही परमतत्व है, यह उन्होंने कलियुग में उपदेश देया । धर्म के चारों पैरों को स्थापित किया और चारों वर्णों को (भाईचारे का) एक ही वर्ण बना दिया । राजा-रंक को बराबर करके विनम्रतापूर्वक चरण छूने का शिष्टाचार संसार में चला दिया । उस प्रिय का उलटा ही खेल है; उसने (गर्व से) ऊँचे सिरों को चरणों में झुका दिया । बाबा (नानक) ने कलियुग का उद्धार किया और "सतिनाम" का मंत्र सबको सुनाया । गुरु नानक कलियुग को पार उतारने आ गया ।। २३ ।।

पउड़ी २४

(गुरु नानकदेव जी की प्रथम वार्त्ता)

पहले बाबा (नानक) ने प्रभु-कृपा के द्वार को प्राप्त किया और

भारी करी तपसिआ वडे भागि हरि सिउ बणि आई ।
बाबा पैधा सचि खंडि नउ निधि नामु गरीबी पाई ।
बाबा देखै धिआनु धरि जलती सभि प्रिथवी दिसि आई ।
बाझु गुरू गुबारु है, है है करदी सुणी लुकाई ।
बाबे भेख बणाइआ उदासी की रीति चलाई ।
चढ़िआ सोधणि धरति लुकाई ।। २४ ।।

पउड़ी २५

(तीरथाँ पर प्रेम-भाव दी घाट)

बाबा आइआ तीरथै तीरथि पुरबि सभे फिरि देखै ।
पुरब धरमि बहु करमि करि भाउभगति बिनु कितै न लेखै ।
भाउ न ब्रहमै लिखिआ चारि बेद सिंम्रिति पढ़ि पेखै ।
ढूँडी सगली प्रिथवी सतिजुगि आदि दुआपरि त्रेतै ।

फिर साधना और कमाई की । रेत और आक का आहार किया और नुकीले पत्थरो को शय्या बनाया (अर्थात् गरीबी में भी आनंदपूर्वक रहे)। घोर तप किया, तब कहीं सौभाग्य से प्रभु से मित्रता बन पड़ी । बाबा (नानक) को सत्यस्वरूप परमात्मा की ओर से नवनिधियों का भंडार 'नाम' और विनम्रता प्राप्त हुई । बाबा ने अंतर्धान हो देखा तो उसे सारी पृथ्वी जलती हुई दिखाई दी । गुरु के बिना घोर अन्धकार है । उसने जनसामान्य के हाहाकार को सुना । बाबा ने वेश बनाया और (दु:ख-सुख से) उदासीन रहने की परम्परा डाली । इस प्रकार वह धरती के शुद्धिकरण के लिए निकल पड़ा ।।२४।।

पउड़ी २५

(तीर्थों में प्रेम-भावना का अभाव)

बाबा तीर्थस्थानों पर आया और उसने तीर्थों तथा उनसे संबंधित पर्वों में भाग लेकर उन्हें देखा । लोग पूर्व युगों के धर्म-कर्म कर रहे थे, पर चूँकि वे प्रेम-भक्ति से विहीन थे अत: किसी काम के नहीं थे । चारों वेद, स्मृतियाँ आदि पढ़कर देखीं पर पाया कि ब्रह्मा ने भी कहीं प्रेम-भाव के बारे में नहीं लिखा । प्रेम का पाठ ढूँढ़ने के लिए उसने सम्पूर्ण पृथ्वी, सतयुग, त्रेता, द्वापर को भी छान मारा । कलियुग तो घोर अंधकार है, जिसमें छल और विभिन्न प्रकार के वेश चल निकले हैं

कलिजुगि धुंधूकारु है भरमि भुलाई बहु बिधि भेखै ।
भेखी प्रभू न पाईऐ आपु गवाए रूप न रेखै ।
गुरमुखि वरनु अवरनु होइ निवि चलणा गुरसिखि विसेखै ।
ता किछु घालि पवै दरि लेखै ॥ २५ ॥

पउड़ी २६

(उस समें दी हालत)

जती सती चिरूजीवणे साधिक सिध नाथ गुरु चेले ।
देवी देव रिखीसुरा भैरउ खेत्रपालि बहु मेले ।
गण गंधरब अपसरा किंनर जक्ख चलिति बहु खेले ।
राकसि दानो दैत लखि अंदरि दूजा भाउ दुहेले ।
हउमै अंदरि सभि को डुबे गुरू सणे बहु चेले ।
गुरमुखि कोइ न दिसई ढूँडे तीरथि जात्री मेले ।
डिठे हिंदू तुरकि सभि पीर पैकंबरि कउमि कवेले ।
अंधी अंधे खूहे ठेले ॥ २६ ॥

ेष धारण करने से प्रभु-प्राप्ति नहीं होती । यह अहम् को और वर्ण-चिह्नों (के अभिमान) को गँवाने से होती है । गुरु के सिक्ख की विशिष्टता है कि रूढ़ वर्णव्यवस्था से ऊपर उठे और नम्रता का व्यवहार करे । तब कुछ किया हुआ उस प्रभु को स्वीकार्य हो सकता है ।। २५ ।।

पउड़ी २६

(तत्कालीन परिस्थितियाँ)

यति, तपी, चिरंजीव साधक, सिद्ध एवं नाथ गुरु-चेले उस समय बहुत थे । देवी, देवता, मुनीश्वर, भैरव, क्षेत्रपाल आदि का मानों जमघट लगा हुआ था । (शिव के) गण, गंधर्व, अप्सराएँ, किन्नर, यक्ष आदि (के नाम पर) अनेकों प्रपंच तमाशे होते थे । राक्षस, दानव, दैत्यों आदि को (कल्पना में देखकर) सभी द्वैतभाव में फँसे हुए थे । सभी अहंकार में लीन थे और चेले गुरुजनों के समेत डूबे पड़े थे। 'गुरमुख' (आदर्श व्यक्ति जो गुरु की शिक्षाओं पर चलनेवाला) तीर्थयात्राओं और मेलों में ढूँढ़ने पर भी नहीं दिखाई देता । मैंने हिन्दू-तुर्कों के पीर, पैगम्बर और उनके सम्प्रदायों को भी देख लिया है । अंधी जनता को अंधे मार्गदर्शन दे रहे हैं ॥ २६ ॥

पउड़ी २७

(गुरू नानक सूरयोदय)

सतिगुरु नानकु प्रगटिआ मिटी धुंधु जगि चानणु होआ ।
जिउ करि सूरजु निकलिआ तारे छपि अंधेरु पलोआ ।
सिंघु बुके मिरगावली भंनी जाइ न धीरि धरोआ ।
जिथे बाबा पैरु धरि पूजा आसणु थापणि सोआ ।
सिधासणि सभि जगति दे नानक आदि मते जे कोआ ।
घरि घरि अंदरि धरमसाल होवै कीरतनु सदा विसोआ ।
बाबे तारे चारि चकि नउ खंडि प्रिथवी सचा ढोआ ।
गुरमुखि कलि विचि परगटु होआ ॥ २७ ॥

पउड़ी २८

(सुमेरु परबत पर जाणा)

बाबे डिट्ठी पिरथमी नवै खंडि जिथै तकि आही ।
फिरि जाइ चढ़िआ सुमेर परि सिधि मंडली द्रिसटी आई ।

पउड़ी २७

(गुर नानक सूर्योदय)

सच्चे गुरु नानक के प्रकट होने से जगत से धुंध मिट गई और प्रका हो गया। मानों सूर्य निकला हो और तारागण छिप गये हों तथा अंधका भाग गया हो । जंगल में शेर के गरजने से मृगों के भागे जाते झुंडों व धैर्य नहीं बँधता । जहाँ-जहाँ भी बाबा (नानक) ने पाँव रखा वहाँ-व पूज्य स्थान शोभायमान है । संसार भर के सिद्धों के स्थान अब नानक मत के नाम पर हो गये । घर-घर अब धर्मशाला बन गया जहाँ बैशाख पर्व के उत्साह की भाँति रोज भजन-कीर्तन होने लगा । बाबा नानक चारों दिशाओं और नवखंड पृथ्वी का सत्यनाम के आधार पर उद्धार क दिया । कलियुग में 'गुरमुख' (नानक) प्रकट हुआ ।। २७ ।।

पउड़ी २८

(सुमेरु पर्वतारोहण)

बाबा ने जहाँ तक भी फैली नवखंड पृथ्वी है उसे देखा

चउरासीह सिधि गोरखादि मन अंदरि गणती वरताई ।
सिधि पुछणि सुणि बालिआ कउणु सकति तुहि एथे लिआई ।
हउ जपिआ परमेसरो भाउ भगति संगि ताड़ी लाई ।
आखनि सिधि सुणि बालिआ ! अपना नाउ तुम देहु बताई ।
बाबा आखे नाथ जी ! नानक नाम जपे गति पाई ।
नीचु कहाइ ऊच घरि आई ॥ २८ ॥

पउड़ी २९

(सिद्धाँ नाल प्रशनोत्तर)

फिरि पुछणि सिध नानका मात लोक विचि किआ वरतारा ?
सभ सिधी इह बुझिआ कलि तारनि नानक अवतारा ।
बाबे आखिआ, नाथ जी ! सचु चंद्रमा कूड़ु अंधारा ।
कूड़ु अमावसि वरतिआ हउ भालणि चढ़िआ संसारा ।

फिर वह सुमेरु पर्वत पर जा चढ़ा जहाँ सिद्धमंडली नजर आयी । (बाबा नानक को देखकर) गोरख आदि चौरासी सिद्धों के मन में आश्चर्य और संशय व्याप्त हो गया। वे सिद्ध पूछने लगे कि हे बालक ! तुझे कौन सी शक्ति यहाँ तक लेकर आयी है? (नानक ने उत्तर दिया-) मैंने प्रेमभक्ति से परमेश्वर का जाप किया और ध्यान लगाया है। जब सिद्ध पुन: कहने लगे कि हे बालक ! तुम अपना नाम बताओ तो बाबा ने कहा कि हे नाथ जी ! (मुझ) नानक को नाम-स्मरण से ही यह गति प्राप्त हुई है। उच्च स्थान पर पहुँचकर भी (नानक ने) अपने आपको नीच ही कहलाया।। २८ ।।

पउड़ी २९

(सिद्धों के साथ प्रश्नोत्तर)

सिद्ध पुन: पूछने लगे कि हे नानक ! मातृलोक में आजकल कैसा व्यवहार चल रहा ? अब तक सभी सिद्ध यह जान गये कि नानक ने कलियुग का उद्धार करने के लिए अवतार लिया है । बाबा ने कहा कि हे नाथ जी ! सत्य इस समय चन्द्रमा के समान (मद्धिम) है और झूठ अंधकार के समान (व्याप्त) है । झूठ की अमावस का अंधकार चारों ओर फैला हुआ है और इसमें मैं सत्य को ढूँढ़ने के लिए संसार-यात्रा पर निकला हूँ ।

पापि गिरासी पिरथमी धउलु खड़ा धरि हेठ पुकारा ।
सिध छपि बैठे परबती कउणु जगति कउ पारि उतारा ।
जोगी गिआन विहूणिआ निसदिनि अंगि लगाए छारा ।
बाझु गुरू डुबा जगु सारा ॥ २९ ॥

पउड़ी ३०

(भारत दी दुरदशा)

कलि आई कुते मुही खाजु होइआ मुरदार गुसाई ।
राजे पापु कमांवदे उलटी वाड़ खेत कउ खाई ।
परजा अंधी गिआन बिनु कूड़ कुसतु मुखहु आलाई ।
चेले साज वजाइदे नचनि गुरू बहुतु बिधि भाई ।
चेले बैठनि घराँ विचि गुरि उठि घरीं तिनाड़े जाई ।
काजी होए रिसवती वढी लै कै हकु गवाई ।

पृथ्वी पाप से ग्रस्त है और बैल (धर्म) उसके नीचे खड़ा (बचाव के लिए) चीत्कार कर रहा है । ऐसी हालत में सिद्धगणों (आप जैसे ज्ञानवान निवृत्तिमार्गी बनकर) के पर्वतों में आ छिप बैठने से भला जगत का उद्धार कैसे होगा । योगीगण भी ज्ञान से विहीन हैं और रात-दिन शरीर में मात्र भभूत मलकर (मस्त) पड़े रहते हैं (और सामान्य जन के कष्टों के प्रति पूर्णत: उदासीन हैं) । (सच्चे) गुरु के बिना तो सारा संसार ही डूब चला है ।। २९ ।।

पउड़ी ३०

(भारत की दुर्दशा)

हे गोसाईं ! कलियुगी जीवों की चित्तवृत्ति कुत्ते के मुँह के समान (लालचपूर्ण) हो गयी है। राजा पाप कमा रहे हैं मानों बाड़ उलटा (रखवाली करने की बजाय) खेत को खुद ही खा रही है । ज्ञान से वंचित अंधी प्रजा झूठ आलाप रही है । चेला अब वाद्य बजा रहे हैं और गुरुगण अनेकों प्रकार की (लोभपूर्ण) नृत्य - मुद्राएँ अपना रहे हैं । चेले तो अब घरों में बैठते हैं और (धन के लोभी) गुरु अब उठकर उनके घरों तक जाते हैं । काजी भी रिश्वतखोर हो गये हैं और रिश्वतें लेकर वे अपने ऊँचे सम्मान को गँवा बैठे हैं।

इसत्री पुरखै दामि हितु भावै आइ किथाऊँ जाई।
वरतिआ पापु सभसि जगि माँही ॥ ३० ॥

पउड़ी ३१

(गुरू परीखिआ)

सिधी मने बीचारिआ किवै दरसनु ए लेवै बाला।
ऐसा जोगी कली महि हमरे पंथु करे उजिआला।
खपरु दिता नाथ जी पाणी भरि लैवणि उठि चाला।
बाबा आइआ पाणीऐ डिठे रतन जवाहर लाला।
सतिगुर अगम अगाधि पुरखु केहड़ा झले गुरू दी झाला।
फिरि आइआ गुर, नाथ जी पाणी ठउड़ नाही उसि ताला।
सबदि जिती सिधि मंडली कीतोसु अपणा पंथु निराला।
कलिजुगि नानक नामु सुखाला ॥ ३१ ॥

~~~~~~

पुरुष और स्त्री का केवल धन के कारण ही परस्पर प्यार है, यह धन चाहे कहीं से और कैसे भी आये । सारे जगत में पाप ही पाप व्याप्त हो गया है ।। ३० ।।

पउड़ी ३१

(गुरु-परीक्षा)

सिद्धों ने मन में विचार किया कि कैसे भी हो , यह बालक हमारे दर्शन-सिद्धान्त को अपना ले । ऐसा योगी तो कलियुग में हमारे योगमार्ग को प्रकाशित कर देगा । नाथ ने (बाबा नानक को) अपना खप्पर दिया और (नानक) पानी ले आने के लिए चल पड़ा । जब बाबा पानी के पास आया तो उसने पानी के स्थान पर रत्न, जवाहर और लाल देखे । सतगुरु (नानक) पहले ही अगम्य और अगाध पुरुष था । उसके तेज को भला कौन सह सकता था । वह (अप्रभावित बना रहकर ही) वापस लौट आया और कहने लगा, हे नाथ जी ! पानी तो वहाँ नहीं है । शब्द-वाणी से सिद्धमंडली को जीता और अपने निराले पंथ (सिद्धान्त) का प्रतिपादन किया । उन्हें बताया कि कलियुग में योग की अपेक्षा प्रभु-नाम-स्मरण ही सरल मार्ग है ।। ३१ ।।
~~~~~~

पउड़ी ३२

(मक्के जाणा)

बाबा फिरि मक्के गइआ नील बसत्र धारे बनवारी ।
आसा हथि किताब कछि कूजा बाँग मुसल्ला धारी ।
बैठा जाइ मसीत विचि जिथै हाजी हजि गुजारी ।
जा बाबा सुता राति नो वलि महराबे पाइ पसारी ।
जीवणि मारी लति दी केहड़ा सुता कुफर कुफारी ?
लता वलि खुदाइ दे किउ करि पइआ होइ बजिगारी ।
टंगो पकड़ि घसीटिआ फिरिआ मक्का कला दिखारी ।
होइ हैरानु करेनि जुहारी ॥ ३२ ॥

पउड़ी ३३

(काज़ीआँ-मुल्लाँ नाल प्रशनोत्तर)

पुछनि गल ईमान दी काजी मुलाँ इकठे होई ।
वडा साँग वरताइआ लखि न सकै कुदरति कोई ।

पउड़ी ३२

(मक्का-गमन)

फिर बाबा मक्का गया । उस बनवारी ने नीले वस्त्र धारण कर लिये, हाथ में डंडा, बगल में किताब दबा ली और लोटा तथा नमाज के लिए चटाई पकड़ ली। वह अब जाकर मस्जिद में बैठ गया जहाँ सभी हाजी हज में शामिल होने के लिए एकत्र हुए थे । जब बाबा (नानक) रात में काबा की मेहराब की तरफ पाँव पसारकर लेट गया तो जीवन नामक काजी ने यह सोचकर उसे लात मारी कि यह कौन काफिर कुफ्र फैला रहा है । खुदा की तरफ पाँव पसार कर यह पापी क्यों लेटा हुआ है ? (बाबा नानक को) उसने टाँग से पकड़कर घसीट दिया तो (साथ ही) मक्का भी घूमता हुआ दृष्टिगत होने का चमत्कार दिखाई दिया । सभी हैरान होकर प्रणाम करने लगे ।। ३२ ।।

पउड़ी ३३

(काजी-मुल्लाओं के साथ प्रश्नोत्तर)

काजी और मुल्ला इकट्ठे होकर धर्म-चर्चा करने लगे । (वे कहने लगे –) ये तुमने महान् कौतुक किया है । इस मर्म को कोई नहीं जान पाया है ।

पुछनि फोलि किताब नो हिंदू वडा कि मुसलमानोई ?
बाबा आखे हाजीआ सुभि अमला बाझहु दोनो रोई ।
हिंदू मुसलमान दुइ दरगह अंदरि लहनि न ढोई ।
कचा रंगु कुसंभ दा पाणी धोतै थिरु न रहोई ।
करनि बखीली आपि विचि राम रहीम कुथाइ खलोई ।
राहि सैतानी दुनीआ गोई ॥ ३३ ॥

पउड़ी ३४

(मक्के दी बिजय)

धरी नीसानी कउसि दी मके अंदरि पूज कराई ।
जिथै जाइ जगति विचि बाबे बाझु न खाली जाई ।
घरि घरि बाबा पूजीऐ हिंदू मुसलमान गुआई ।
छपे नाहि छपाइआ चड़िआ सूरजु जगु रुसनाई ।
बुकिआ सिंघ उजाड़ विचि सभि मिरगावलि भंनी जाई ।
चड़िआ चंदु न लुकई कढि कुनाली जोति छपाई ।

वे कहने लगे कि अपनी किताब को उलट-पलटकर बताओ कि हिन्दू बड़ा है अथवा मुसलमान । बाबा ने हाजियों को उत्तर दिया कि शुभ कर्मों से विहीन रहने पर दोनों ही रोएँगे । केवल हिन्दू या मुसलमान होने मात्र से किसी को (प्रभु की) दरगाह में स्थान नहीं मिलेगा । जैसे कुसुंभ रंग कच्चा होता है और पानी में धोने से नष्ट हो जाता है (ऐसे ही मजहबी रंग तो कच्चे होते हैं) । (दोनों ही धर्मोंवाले) अपनी कथाओं में राम और रहीम की निन्दा करते हैं । सारी दुनिया ही शैतान के मार्ग पर चल रही है ।। ३३।।

पउड़ी ३४

(मक्का में सम्मान)

खड़ाऊँ यादगार के तौर पर वहाँ रखी और मक्का में पूजा करवाई । संसार में जहाँ भी जाएँ बाबा के नाम से अछूता कोई स्थान नहीं है । बिना हिन्दू-मुसलमान के भेदभाव के, घर-घर में बाबा की पूजा होती है । इस निकले हुए सूर्य की रौशनी छिपाने से भी नहीं छिपती । मानों जंगल में सिंह ने गर्जना की हो और मृगों के झुंड भाग खड़े हुए हैं । यदि परात से कोई चन्द्र को छिपाना चाहे तो वह छिप नहीं सकता ।

उगवणहु ते आथवणो नउ खंड प्रिथमी सभ झुकाई ।
जगि अंदरि कुदरति वरताई ॥ ३४ ॥

पउड़ी ३५

(बगदाद-गमन)

फिरि बाबा गइआ बगदादि नो बाहरि जाइ कीआ असथाना ।
इकु बाबा अकाल रूपु दूजा रबाबी मरदाना ।
दिती बाँगि निवाजि करि सुनि समानि होआ जहाना ।
सुंन मुंनि नगरी भई देखि पीर भइआ हैराना ।
वेखै धिआनु लगाइ करि इकु फकीरु वडा मसताना ।
पुछिआ फिरिकै दसतगीर कउण फकीरु किसका घरिआना ।
नानक कलि विचि आइआ रबु फकीरु इको पहिचाना ।
धरति आकास चहू दिसि जाना ॥ ३५ ॥

~~~~~~

उदयाचल से अस्ताचल अर्थात् पूर्व से पश्चिम तक नवखंड पृथ्वी को बाबा ने झुका लिया है । सारे जगत में अपनी कला व्याप्त कर दी है ।। ३४ ।।

पउड़ी ३५

(बगदाद-गमन)

मक्का से चलकर बाबा बगदाद को गया और नगर से बाहर ही डेरा लगा दिया । एक तो बाबा स्वयं अकाल-रूप था और दूसरा उसके साथ रबाबवादक मरदाना था । नमाज के लिए (बाबा ने अपने ढंग से) अजान दी जिसे सुनकर सारा संसार मानों सन्नाटा बन गया हो । सारी नगरी सुन्न हो गई जिसे देखकर वहाँ का पीर हैरान रह गया । उसने ध्यान लगाकर देखा तो उसे (बाबा नानक के रूप में) एक बड़ा मस्ताना फकीर दिखाई दिया । दस्तगीर नामक उस पीर ने उससे पूछा कि तुम कौन फकीर हो और तुम्हारा कौन घराना है ? (तब मरदाना ने उत्तर दिया –) यह नानक कलियुग में आया है जिसने परमात्मा और उसके (सच्चे) फकीरों को एक ही माना है । धरती-आकाश और चारों दिशाएँ इसको जानती हैं ।। ३५ ।।
~~~~~~

पउड़ी ३६

(ज़ाहरी कला)

पुछे पीर तकरार करि एहु फकीरु वडा अताई ।
एथे विचि बगदाद दे वडी करामाति दिखलाई ।
पाताला आकास लखि ओड़कि भाली खबरि सुणाई ।
फेरि दुराइन दसतगीर असी भि वेखा जो तुहि पाई ।
नालि लीता बेटा पीर दा अखी मीटि गइआ हवाई ।
लख आकास पताल लख अखि फुरक विचि सभि दिखलाई ।
भरि कचकौल प्रसादि दा धुरो पतालो लई कड़ाही ।
ज़ाहर कला न छपै छपाई ।। ३६ ।।

पउड़ी ३७

(सतिनामु चक्कर)

गड़ बगदादु निवाइ कै मका मदीना सभे निवाइआ ।
सिध चउरासीह मंडली खटि दरसनि पाखंडि जिणाइआ ।

पउड़ी ३६

(प्रत्यक्ष कौतुक)

पीर ने वाद-विवाद किया और जान लिया कि आगन्तुक फकीर अत्यधिक शक्तिमान है । इसने यहाँ बगदाद में बहुत बड़ी करामात दिखाई है । इतने में (बाबा नानक ने) लाखों पातालों-आकाशों के बारे में बातचीत की । तब दस्तगीर ने कहा कि जो तुमने देखा है वह मुझे भी दिखाओ। (बाबा नानक ने) पीर का बेटा साथ लिया और पवन-रूप हो गये तथा पलक झपकते ही लाखों पाताल-आकाश दिखा दिए। सुदूर पाताल से प्रसाद का भरा कटोरा लाकर पीर को दे दिया। अब यह स्पष्ट चमत्कार छिपाने से नहीं छिपता ।।३६ ।।

पउड़ी ३७

(सत्नाम का चक्र)

(पीरों के गढ़) बगदाद को झुका, मक्का-मदीना सबको विनम्र बनाया । चौरासी सिद्धों की मंडली और षट्दर्शन के पाखंडों को भी जीत लिया ।

पाताला आकास लख जीती धरती जगत सबाइआ ।
जीते नव खंड मेदनी सतिनामु दा चक्र फिराइआ ।
देव दानो राकसि दैत सभ चिति गुपति सभि चरनी लाइआ ।
इंद्रासणि अपछरा राग रागनी मंगलु गाइआ ।
भइआ अनंद जगतु विचि कलि तारन गुरु नानक आइआ ।
हिंदू मुसलमाणि निवाइआ ।। ३७ ।।

पउड़ी ३८

(करतारपुर आगमन)

फिरि बाबा आइआ करतारपुरि भेखु उदासी सगल उतारा ।
पहिरि संसारी कपड़े मंजी बैठि कीआ अवतारा ।
उलटी गंग वहाईओनि गुर अंगदु सिरि उपरि धारा ।
पुतरी कउलु न पालिआ मनि खोटे आकी नसिआरा ।
बाणी मुखहु उचारीऐ हुइ रुसनाई मिटै अंधारा ।
गिआनु गोसटि चरचा सदा अनहदि सबदि उठे धुनकारा ।

लाखों पाताल, आकाश, धरतियाँ और सारे विश्व को जीत लिया। नवखंड पृथ्वी जीतकर उस पर सत्नाम का चक्र फिरा दिया। देव, दानव, राक्षस, दैत्य, चित्रगुप्त आदि सबको चरणों पर झुका लिया। इन्द्र और उसकी अप्सराओं, राग-रागिनियों ने मंगलगान किया। सारा जगत आनंदित हो उठा, क्योंकि कलियुग के उद्धार के लिए गुरु नानक आया है। उसने हिन्दू-मुसलमान सबको विनम्र बना लिया है ।। ३७ ।।

पउड़ी ३८

(करतारपुर-आगमन)

फिर बाबा करतारपुर आया और उसने सारा उदासीन-वेश उतार दिया। सांसारिक (गृहस्थियों के) वस्त्र धारण कर पलंग पर बैठकर शोभायमान हुआ। उसने उलटी गंगा बहा दी, क्योंकि उसने (पुत्रों को छोड़कर शिष्य) अंगद के सिर गुरुत्व का छत्र धर दिया। पुत्रों ने बाबा के बचनों का पालन नहीं किया और उनका मन चलायमान तथा विरोधी बन बैठा । बाबा नानक मुख से वाणी का उच्चारण करते थे तो अंधकार मिट जाता था तथा (ज्ञान) प्रकाश हो जाता था। ज्ञान-गोष्ठियाँ,चर्चा और अनहद शब्द का नाद वहाँ नित्य सुनाई पड़ता रहता था।

सो दरु आरती गावीऐ अंम्रित वेले जापु उचारा ।
गुरमुखि भारि अथरबणि तारा ॥ ३८ ॥

पउड़ी ३९

(बटाले शिवराती दा मेला)

मेला सुणि सिवराति दा बाबा अचल वटाले आई ।
दरसनु वेखणि कारने सगली उलटि पई लोकाई ।
लगी बरसणि लछमी रिधि सिधि नउ निधि सवाई ।
जोगी देखि चलित्त नो मन विचि रिसकि घनेरी खाई ।
भगतीआ पाई भगति आणि लोटा जोगी लइआ छपाई ।
भगतीआ गई भगति भुलि लोटे अंदरि सुरति भुलाई ।
बाबा जाणी जाण पुरख कढिआ लोटा जहा लुकाई ।
वेखि चलित्ति जोगी खुणिसाई ॥ ३९ ॥

~~~~~~

सोदर आरती का गायन होता था और भोर में ' जपु ' का उच्चारण होता था । उस गुरमुख (नानक) ने लोगों का अथर्ववेद के तंत्र-मंत्र के बोझ से उद्धार कर दिया अर्थात् उन्हें बचा लिया ।। ३८ ।।

पउड़ी ३९

(बटाला नगर में शिवरात्रि का मेला)

शिवरात्रि के मेले के बारे में सुनकर बाबा बटाला नगर के अच्चल (गाँव) में आया । उसका दर्शन करने के लिए तो सारी दुनिया उमड़ पड़ी । धन की वर्षा ऋद्धियों-सिद्धियों और नव-निधियों से भी बढ़कर होने लगी । योगीगण इस कौतुक को देखकर मन में अत्यधिक क्रोधित हो उठे । जब कुछ भक्तों ने (गुरुजी के सम्मुख) भक्तिभाव का प्रदर्शन किया तो योगियों ने उनका लोटा छिपा लिया । बाबा अन्तर्यामी था, उसने छिपाए हुए लोटे को निकाल सामने रख दिया । यह चमत्कार देखकर योगी क्षुब्ध हो उठे ।। ३९ ।।
~~~~~~

पउड़ी ४०

(सिद्धाँ नाल गोशटि)

खाधी खुणसि जोगीसराँ गोसटि करनि सभे उठि आई ।
पुछे जोगी भंगर नाथु, 'तुहि दुध विचि किउ कांजी पाई ?
फिटिआ चाटा दुध दा रिड़किआ मखणु हथि न आई ।
भेख उतारि उदासि दा, वति किउ संसारी रीति चलाई ?'
नानक आखे, 'भंगरिनाथ ! तेरी माउ कुचजी आही ।
भांडा धोइ न जातिओनि भाइ कुचजे फुलु सड़ाई ।
होइ अतीतु ग्रिहसति तजि फिरि उनहु के घरि मंगणि जाई ।
बिनु दिते कछु हथि न आई' ॥ ४० ॥

पउड़ी ४१

(सिद्धाँ दी करामात)

इहि सुणि बचनि जोगीसराँ, मारि किलक बहु रूइ उठाई ।
खटि दरसन कउ खेदिआ कलिजुगि नानक बेदी आई ।

पउड़ी ४०

(सिद्धों के साथ गोष्ठी)

सभी योगीगण चिढ़कर वाद-विवाद करने के लिए आ पहुँचे । योगी भंगरनाथ पूछने लगा, " तुमने दूध में यह खटाई क्यों डाली है? दूध जब फट जाता है तो मक्खन हाथ नहीं लगता । तुमने उदासीनों का वेश त्यागकर अब फिर सांसारिकों की राह क्यों पकड़ लिया है ? " नानक कहने लगे, " हे भंगरनाथ ! तेरी माँ अर्थात् तेरे शिक्षक की बुद्धि उलटी है जिसने तेरे अन्त:करण रूपी बर्तन को धोया नहीं है । उसी उलटी भावना ने तेरे (ज्ञान रूपी) फल को भी जला डाला है । तुम विरक्त बनकर गृहस्थ से दूर रहकर पुन: उन्हीं गृहस्थियों के घर ही खाने के लिए माँगने जाते हो । बिना उनकी भिक्षा के तुम्हारे हाथ कुछ नहीं लगता" ।। ४० ।।

पउड़ी ४१

(सिद्धों की करामात)

यह कथन सुनकर योगियों ने भीषण प्रलाप करते हुए बहुत सी आत्माओं का आवाहन किया। वे कहने लगे, "कलियुग में नानक बेदी ने छ: दर्शनों को रौंद डाला है"।

**सिधि बोलनि सभि अवखधीआ तंत्र मंत्र की धुनो चढ़ाई ।
रूप वटाए जोगीआँ सिंघ बाघि बहु चलिति दिखाई ।
इकि परि करि कै उडरनि पंखी जिवै रहे लीलाई ।
इक नाग होइ पउण छोड़िआ इकना वरखा अगनि वसाई ।
तारे तोड़े भंगरिनाथ इक चड़ि मिरगानी जलु तरि जाई ।
सिधा अगनि न बुझै बुझाई ।। ४१ ।।**

पउड़ी ४२

(सिद्धाँ दे प्रशनोत्तर)

**सिधि बोलनि, 'सुणि नानका ! तुहि जग नो करामाति दिखाई ।
कुझु विखालें असाँ नो तुहि किउँ ढिल अवेही लाई' ?
बाबा बोले, 'नाथ जी ! असि वेखणि जोगी वसतु न काई ।
गुरु संगति बाणी बिना दूजी ओट नही है राई ।
सिव रूपी करता पुरखु चले नाही धरति चलाई ।'
सिधि तंत्र मंत्रि करि झड़ि पए सबदि गुरू के कला छपाई ।**

ऐसा कहते हुए सिद्ध सब प्रकार ओषधियों के नाम लेने लगे और तंत्र-मंत्र की ध्वनियाँ निकालने लगे । योगी रूप बदलकर सिंह, बाघ बनकर प्रपंच दिखाने लगे। कोई पंख लगाकर उड़ने लगे और पक्षियों की तरह आकाश में फैल गये । कोई नाग बनकर फुफकारने लगा और किसी ने अग्निवर्षा प्रारम्भ कर दी । भंगरनाथ ने आकाश के तारे तोड़ लिये और कई हिरण के खालों पर सवार हो जल पर तैरने लगे। सिद्धगणों की (तृष्णा की) अग्नि बुझाने से भी बुझनेवाली नहीं थी ।। ४१ ।।

पउड़ी ४२

(सिद्धों के साथ प्रश्नोत्तर)

सिद्धों ने कहा, "हे नानक ! सुनो । तुमने जगत को करामातें दिखाई हैं; कुछ हम लोगों को भी दिखाओ, क्यों देर लगाई है?'' बाबा बोला, "नाथ जी ! मैंने देख लिया है कि यहाँ देखने-दिखाने योग्य कुछ भी वस्तु नहीं है । मुझे तो गुरु (परमात्मा) संगत (धर्मसापेक्ष व्यक्तियों का समूह) और (प्रभु की दी) वाणी का ही आश्रय है, अन्य किसी का नहीं ।

ददे दाता गुरू है कके कीमति किनै न पाई ।
सो दीन नानक सतिगुरु सरणाई ॥ ४२ ॥

पउड़ी ४३

(सतिनामु दा प्रताप)

बाबा बोले नाथ जी ! सबदु सुनहु सचु मुखहु अलाई ।
बाझो सचे नाम दे होरु करामाति असाँ ते नाही ।
बसतरि पहिरौ अगनि कै बरफ हिमाले मंदरु छाई ।
करौ रसोई सारि दी सगली धरती नथि चलाई ।
ए वडु करी विथारि कउ सगली धरती हकी जाई ।
तोली धरति अकासि दुइ पिछे छाबे टंकु चड़ाई ।
इहि बलु रखा आपि विचि जिसु आखा तिसु पासि कराई ।
सतिनामु बिनु बादरि छाई ॥ ४३ ॥

वह सर्वकल्याणकारी (शिव-रूप) परमात्मा अचल और स्थिर है पर धरती (और इसके पदार्थ) चलायमान हैं । '' सिद्धगण तंत्र-मंत्र का प्रयोग कर थक गये, पर गुरु-शब्द ने उनकी शक्ति को प्रकट नहीं होने दिया । अन्ततः योगी दीनभाव से (गुरु नानकदेव की) शरण में आ गये ।। ४२ ।।

पउड़ी ४३

(सतिनाम का प्रताप)

बाबा बोला, '' नाथ जी! मैं सच्ची बात कहता हूँ , उसे सुनो । (उस प्रभु के) सच्चे नाम के बिना हमारे पास अन्य कोई चमत्कार नहीं है । मैं अग्नि के वस्त्र पहन लूँ और हिमालय की बर्फ का घर बना लूँ । लोहा भी खा सकूँ और सारी धरती को अपने आदेश के अनुसार चलाऊँ । अपना इतना अधिक। विस्तार कर लूँ कि धरती अपने आप धकेली जाय । एक छटाँक भर के बाट पर सारी धरती-आकाश को तौल दूँ । इतना बल रखूँ कि कहने मात्र से जिसे चाहूँ मार डालूँ तब भी सतिनाम (प्रभु के सच्चे नाम) के बिना ये सब शक्तियाँ बादल की छाया के समान ही क्षण-भंगुर एवं तुच्छ हैं ।। ४३ ।।

पउड़ी ४४

(सिद्ध गोशटि ते मुलतान-फेरी)

**बाबे कीती सिधि गोसटि सबदि साँति सिधाँ विचि आई ।
जिणि मेला सिवराति दा खट दरसनि आदेसि कराई ।
सिधि बोलनि सुभि बचनि धंनु नानक तेरी वडी कमाई ।
वडा पुरखु परगटिआ कलिजुगि अंदरि जोति जगाई ।
मेलिओ बाबा उठिआ मुलताने दी जारति जाई ।
अगों पीर मुलतान दे दुधि कटोरा भरि लै आई ।
बाबे कढि करि बगल ते चंबेली दुधि विचि मिलाई ।
जिउ सागरि विचि गंग समाई ॥ ४४ ॥**

पउड़ी ४५

(गुरू अंगद)

**जारति करि मुलतान दी फिरि करतारिपुरे नो आइआ ।
चढ़े सवाई दिहि दिही कलिजुगि नानक नामु धिआइआ ।**

पउड़ी ४४

(सिद्धगोष्ठी एवं मुलतान-गमन)

बाबा ने सिद्धों के साथ गोष्ठी की और उन सिद्धों को ' शब्द ' के प्रभाव से शान्ति प्राप्त हुई । शिवरात्रि के मेले को जीतकर (बाबा ने) षट्दर्शनों (के ज्ञाता लोगों) से प्रणाम करवाया । सिद्ध अब शुभवचन बोलते हुए कहने लगे कि " हे नानक ! तेरी साधना धन्य है । तुमने महान् पुरुष के रूप में प्रकट हो कलियुग में (ज्ञान का) प्रकाश किया है। '' बाबा मेले से उठकर अब मुलतान की जियारत के लिए चल दिया । आगे से मुलतान के पीर ने दूध का लबालब भरा कटोरा प्रस्तुत किया (और सांकेतिक रूप से कहा कि यहाँ अब और अधिक पीरों के लिए स्थान नहीं है)। बाबा ने अपनी झोली से चमेली का फूल निकालकर दूध पर ऐसे तैरा दिया (और संकेत से बताया कि मैं किसी पर भी बोझ नहीं बनूँगा) जैसे मानों गंगा शांतिपूर्वक समुद्र में समा जाती है ।। ४४ ।।

पउड़ी ४५

(गुरु अंगददेव)

मुलतान की यात्रा करके (बाबा) फिर करतारपुर आ गया।

विणु नावै होरु मंगणा सिरि दुखाँ दे दुख सबाइआ ।
मारिआ सिका जगति विचि नानक निरमल पंथु चलाइआ ।
थापिआ लहिणा जींवदे गुरिआई सिरि छतु फिराइआ ।
जोती जोति मिलाइकै सतिगुर नानकि रूपु वटाइआ ।
लखि न कोई सकई आचरजे आचरजु दिखाइआ ।
काइआ पलटि सरूपु बणाइआ ।। ४५ ।।

पउड़ी ४६

(गुरू अमरदास जी)

सो टिका सो छतु सिरि सोई सचा तखतु टिकाई ।
गुर नानक हंदी मुहरि हथि गुर अंगद दी दोही फिराई ।
दिता छोड़ि करतारपुरु बैठि खडूरे जोति जगाई ।
जंमे पूरबि बीजिआ विचि विचि होरु कूड़ी चतुराई ।

दिन-ब-दिन उनका प्रभाव बढ़ता ही गया । बाबा नानक ने कलियुगी जीवों को " नाम'' स्मरण करवाया । उस प्रभु-नाम के बिना कुछ भी अन्य माँगना मानों अपने दुखों को सवाया करना अर्थात् बढ़ाना है । जगत में (गुरु नानक ने) अपने उपदेश का सिक्का बिठा दिया और अहंकार-भावना से विहीन 'पंथ' चलाया । अपने जीते जी ही लहणा जी (गुरु अंगददेव) के सिर पर गुरुगद्दी का छत्र झुला दिया और अपनी ज्योति उसमें मिलाकर अब गुरु नानक ने मानों अपना स्वरूप बदल लिया हो, इस रहस्य को कोई नहीं जान सकता कि आश्चर्यचकित करने वाले (नानक ने) आश्चर्यपूर्ण कार्य किया है । अपनी काया को पलट कर (गुरु अंगद जी के रूप में) नया स्वरूप धारण किया है ।। ४५ ।।

पउड़ी ४६

(गुरु अमरदास)

वही टीका, वही छत्र और उसी तख्त पर शोभायमान हैं। जो शक्ति गुरुनानक के पास थी वह अब गुरु अंगद के पास है- यह बात चारों ओर फैल गई । गुरु अंगद ने करतारपुर छोड़ दिया और खडूर साहिब नामक स्थान पर बैठकर अपनी ज्योति का प्रकाश फैलाया। पूर्वकाल के बोये कर्म-बीज ही उगते हैं अन्य सब चतुराइयाँ झूठी हैं। लहणे ने नानक से जो पाया था अब वह अमरदास के घर आ गया।

लहणे पाई नानको देणी अमरदासि घरि आई ।
गुरु बैठा अमरु सरूप होइ गुरमुखि पाई दादि इलाही ।
फेरि वसाइआ गोइंदवालु अचरजु खेलु न लखिआ जाई ।
दाति जोति खसमै वडिआई ।। ४६ ।।

पउड़ी ४७

(गुरू रामदास ते गुरू अरजनदेव)

दिचै पूरबि देवणा जिस दी वसतु तिसै घरि आवै ।
बैठा सोढी पातिसाहु रामदासु सतिगुरू कहावै ।
पूरनु तालु खटाइआ अंम्रितसरि विचि जोति जगावै ।
उलटा खेलु खसंम दा उलटी गंग समुंद्रि समावै ।
दिता लईये आपणा अणिदिता कछु हथि न आवै ।
फिरि आई घरि अरजणे पुतु संसारी गुरू कहावै ।

अब दैवी दान (गुरु अंगद से प्राप्त कर) गुरु अमरस्वरूप होकर विराजमान है। फिर (गुरु अमरदास ने) गोइंदवाल बसाया। इस आश्चर्यपूर्ण खेल को भी नहीं जाना जा सकता । दान में पूर्व गुरुजनों से मिली ज्योति ने परमात्मा के बड़प्पन को और बढ़ाया ।। ४६ ।।

पउड़ी ४७

(गुरु रामदास और गुरु अर्जुनदेव)

पूर्वजन्मों की देनदारी चुकता करनी पड़ती है और जिसकी वस्तु हो उसी के घर वापस आती है। (बचित्र नाटक में बाद में गुरु गोबिन्दसिंह द्वारा वर्णित कालराय और कालकेतु के प्रसंग की पूर्वपीठिका के रूप में भाई गुरुदास यहाँ संकेत करते हैं।) अब गुरुगद्दी पर सोढ़ी पातशाह के रूप में गुरु रामदास बैठकर सत्गुरु कहलाने लगे । पूरा सरोवर उन्होंने खुदवाया और अमृतसर में ही बैठकर अपनी ज्योति को प्रकाशित करने लगे । प्रभु पिता का खेल अजीव है। वह चाहे तो उलटी अर्थात समुद्र से विपरीत दिशा में बहती गंगा को भी समुद्र तक पहुँचाकर उसमें विलीन कर देता है। कुछ दिया हो वही हाथ आता है । बिना दिये कुछ प्राप्त नहीं होता अर्थात् अच्छे कर्म करने से ही अच्छा स्थान प्राप्त होता है, अन्यथा नहीं । अब गुरुगद्दी अर्जुन के घर आ गई जो कहने को तो सांसारिक रूप से पुत्र था परन्तु शुभ कर्मों के बल पर उसने अपने आपको गद्दी का अधिकारी सिद्ध कर दिया था और अब गुरु जाना जाता था ।

जाणि न देसाँ सोढीओं होरसि अजरु न जरिआ जावै ।
घर ही की वथु घरे रहावै ॥ ४७ ॥

पउड़ी ४८

(गुरू हरिगोबिंद)

पंजि पिआले पंजि पीर छठमु पीरु बैठा गुरु भारी ।
अरजनु काइआ पलटि कै मूरति हरिगोबिंद सवारी ।
चली पीड़ी सोढीआ रूपु दिखावणि वारो वारी ।
दलिभंजन गुरु सूरमा वड जोधा बहु परउपकारी ।
पुछनि सिख अरदासि करि छिअ महलाँ तकि दरसु निहारी ।
अगम अगोचर सतिगुरू बोले मुख ते सुणहु संसारी ।
कलिजुगु पीड़ी सोढीआँ निहचल नींव उसारि खलारी ।
जुगि जुगि सतिगुरु धरे अवतारी ॥ ४८ ॥

अब इस गुरुगद्दी को सीढ़ी वंश में से नहीं जाने दिया जायेगा क्योंकि यह असह्य भार है जो अन्य किसी से सहन नहीं हो सकेगा ।। ४७ ।।

पउड़ी ४८

(गुरु हरगोबिन्द)

(सत्य, संतोष, दया, धर्म और विचार रूपी) पाँच प्यालों का पान करनेवाले पाँच पीर (गुरु नानक से लेकर गुरु अर्जुनदेव) हो चुके,अब यह छठा भारी पीर के रूप में गद्दी पर बैठा । अर्जुन ने काया बदल कर हरगोबिन्द नामक मूर्ति में अपने आपको शोभायमान किया । अब सोढ़ी वंश चल पड़ा है और सब बारी-बारी से अपना स्वरूप दिखायेंगे । यह गुरुदलों का नाश करनेवाला, बड़ा शूरवीर और परोपकारी है । अब सिक्खों ने प्रार्थना की और पूछा कि छः गुरुजनों के तो हम लोगों ने दर्शन कर लिये (अब आगे और कितने गुरु होंगे) । अगम्य-अगोचर के जाननेवाले सत्गुरु बोले कि ऐ संसार के लोगो ! सुनो । कलियुग में सोढ़ी वंश की नींव स्थिर रहेगी पर युग २ एवं युग २ अर्थात् चार गुरु और अवतार लेंगे ।। ४८ ।।

पउड़ी ४९

(वाहगुरू मंत्र)

सतिजुगि सतिगुर वासदेव ववा विसना नामु जपावै ।
दुआपरि सतिगुर हरी क्रिशन हाहा हरि हरि नामु जपावै ।
तेते सतिगुर राम जी रारा राम जपे सुखु पावै ।
कलिजुगि नानक गुर गोबिंद रागा गोबिंद नामु अलावै ।
चारे जागे चहु जुगी पंचाइण विचि जाइ समावै ।
चारो अछर इकु करि वाहगुरू जपु मंतु जपावै ।
जहा ते उपजिआ फिरि तहा समावै ॥ ४९ ॥ १ ॥

पउड़ी ४९

(वाहिगुरु मंत्र)

सतयुग में वासुदेव रूपी विष्णु का अवतार था और (वाहिगुरु का) ' व ' विष्णु के नाम का स्मरण कराता है । द्वापर के सत्यगुरु हरिकृष्ण थे और (वाहिगुरु का) ' ह ' हरि नाम का स्मरण कराता है । त्रेता में अवतार राम थे और (वाहिगुरु का) ' र ' बताता है कि राम स्मरण से सुख प्राप्त होगा । कलियुग में गोविन्द रूप नानक गुरु हैं और (वाहिगुरु का) ' ग ' गोविन्द नाम का उच्चारण करवाता है । चारों युगों के जाप ' पंचायत ' अर्थात सर्वसाधारण की परम आत्मा में ही समाहित हो जाते हैं । चारों अक्षरों को एक करके ' वाहिगुरु ' मंत्र का जाप किया जाता है । तब जीव जहाँ से उत्पन्न हुआ है, पुनः उसी स्रोत में समा जाता है ।। ४९ ।। १ ।।

* * *

वार २

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।।

पउड़ी १

(वसतू निरदेश मंगलाचरण)

आपनड़ै हथि आरसी आपे ही देखै ।
आपे देखि दिखाइदा छिअ दरसनि भेखै ।
जेहा मूहु करि भालिदा तेवेहै लेखै ।
हसदे हसदा देखीऐ सो रूप सरेखै ।
रोदै दिसै रोवदा होए निमख निमेखै ।
आपे आपि वरत्तदा सतिसंगि विसेखै ॥ १ ॥

पउड़ी २

(बजंत्री दा द्रिशटांत)

जिउ जंत्री हथि जंत्र लै सभि राग वजाए ।
आपे सुणि सुणि मगनु होइ आपे गुण गाए ।

पउड़ी १

(वस्तुनिर्देश मंगलाचरण)

(संसार रूपी) दर्पण हर व्यक्ति के हाथ में है अर्थात् सामने है । वह प्रभु इसी (दर्पण) में षट्-दर्शन के वेश में संप्रदाय देखता और दिखाता है । इसमें जिस वृत्ति को लेकर कोई झाँकता है वैसा ही प्रतिबिंबित होता है । हँसते हुए को हँसते हुए के समान स्वरूप नजर आता है, और रोते हुए को रोता हुआ तथा पलकें मटकानेवाले अर्थात् चतुर व्यक्ति को वैसा ही दिखता (संसार से व्यवहार मिलता) है । वह प्रभु तो (इस संसार रूपी दर्पण में) स्वयं व्याप्त है, परन्तु सत्संगति में वह विशेष रूप से प्रत्यक्ष होता है ।। १ ।।

पउड़ी २

(वादक का दृष्टांत)

(वह प्रभु) उस वादक के समान है, जो वाद्य को हाथ में लेकर

सबदि सुरति लिव लीणु होइ आपि रीझि रीझाए ।
कथता बकता आपि है सुरता लिव लाए ।
आपे ही विसमादु होइ सरबंगि समाए ।
आपे आपि वरत्तदा गुरमुखि पतीआए ॥ २ ॥

पउड़ी ३

(आपे रसीआ आपि रसु)

आपे भुखा होइकै आपि जाइ रसोई ।
भोजनु आपि बणाइदा रस विचि रस गोई ।
आपे खाइ सलाहि कै होइ त्रिपति समोई ।
आपे रसीआ आपि रसु रसु रसना भोई ।
दाता भुगता आपि है सरबंगु समोई ।
आपे आपि वरत्तदा गुरमुखि सुखु होई ॥ ३ ॥

सभी राग उस पर बजाता है । वह स्वयं ही सुन-सुनकर मग्न होता हुआ गुणानुवाद करता है । शब्द में सुरति लीन कर वह स्वयं प्रसन्न होता है और अन्यों को भी रिझा लेता है । वह स्वयं ही कथन करनेवाला वक्ता और स्वयं श्रोता बनकर समाधिस्थ होनेवाला है । वह स्वयं ही आत्मविभोर हो घट-घट में बसता है । इस रहस्य को कोई गुरुमुख ही अनुभव करता है कि वह (प्रभु) स्वयं ही सब जगह व्याप्त होता है ।। २ ।।

पउड़ी ३

(स्वयं ही रसिया और स्वयं ही रस)

वह स्वयं ही भूखा बनकर रसोई में जाता है और स्वयं ही सब रसों के रसत्व के रूप में भोजन बनाता है । स्वयं ही खाता है और तृप्त हो भोजन की प्रशंसा करता है । वह देनेवाला और उपभोक्ता भी स्वयं है और सबमें पूर्ण रूप से समाहित है । ' गुरुमुखों को इस तथ्य से परम संतुष्टि प्राप्त होती है कि वह स्वयं ही (सारे विश्व में) व्यवहृत है ।। ३ ।।

पउड़ी ४

(उह हा)

आपे पलंघु विछाइ कै आपि अंदरि सउंदा ।
सुहणे अंदरि जाइ कै देसंतरि भउंदा ।
रंकु राउ राउ रंकु होइ सुख दुख विचि पउंदा ।
तता सीअरा होइ जलु आवटणु खउंदा ।
हरख सोग विचि धांवदा चावाए चउंदा ।
आपे आपि वरत्तदा गुरमुखि सुखु रउंदा ॥ ४ ॥

पउड़ी ५

(अधिकारी भेद)

समसरि वरसै स्वांत बूँद जिउ सभनी थाई ।
ज़ल अंदरि जलु होइ मिलै धरती बहु भाई ।
किरख बिरख रस कस घणे फलु फुलु सुहाई ।

पउड़ी ४

(वही)

वह (मानव-रूप में) स्वयं पलंग बिछाता और स्वयं ही उस पर सोता है । वह स्वयं ही स्वप्न-अवस्था में प्रविष्ट हो देश-देशान्तरों में घूम आता है । राजा को निर्धन और निर्धन को राजा बनाकर उन्हें सुख-दु:ख में डालता है । वह जल-रूप में स्वयं शीतल होता है और स्वयं ही गर्म होकर उफनता है । हर्ष-शोक में दौड़ता है और जैसा कोई बुलाए वैसा ही बोलता है । गुरुमुख व्यक्ति उसके इस सर्वव्यापी व्यवहार को देखकर परमसुख प्राप्त करता है ।। ४ ।।

पउड़ी ५

(अधिकारी-भेद)

स्वाति (नक्षत्र में बरसी) बूँद सब जगह समान रूप से बरसती है । जल में वह जल और धरती पर गिरकर धरती-रूप हो जाती है । कहीं वह कृषि-रूप, कहीं वृक्ष-रूप, कहीं रस-रूप और कहीं कषाय हो जाती है ।

केले विचि कपूरु होइ सीतलु सुखुदाई ।
मोती होवै सिप मुहि बहु मोल मुलाई ।
बिसीअर दे मुहि कालकूट चितवे बुरिआई ।
आपे आपि वरत्तदा सतिसंगि सुभाई ॥ ५ ॥

पउड़ी ६

(संगत दा असर)

सोई ताँबा रंग संगि जिउ कैहाँ होई ।
सोई ताँबा जिसत मिलि पितल अवलोई ।
सोई सीसे संगती भंगार भुलोई ।
ताँबा पारसि परसिआ होइ कंचन सोई ।
सोई ताँबा भसम होइ अउखध करि भोई ।
आपे आपि वरत्तता संगति गुण गोई ॥ ६ ॥

कहीं वह फल-फूलों के रूप में शोभायमान होती है । केले के पत्ते पर पड़े तो वह शीतल सुखदायक कपूर के रूप में परिणित हो जाती है । वही जब सीप में गिरती है तो मोती बन जाती है और मूल्यवान बन जाती है । सर्प के मुँह में पड़कर वही कालकूट विष बन जाती है और सबका बुरा करना सोचती है । वह प्रभु सब जगह व्याप्त है, इसलिए सत्संग ही करना चाहिए (और अच्छा बनना चाहिए) ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(संगति का प्रभाव)

ताँबा राँगे के साथ मिलने पर कांस्य बन जाता है । वही ताँबा जिस्त के साथ मिलने पर पीतल दिखाई देता है । वह ताँबा सीसे के साथ मिलने पर एक भुरभुरी धातु (भरथ) में परिवर्तित हो जाता है । वही ताँबा पारस के स्पर्श से कंचन बन जाता है । वह ताँबा भस्म बनकर ओषधि बन जाता है । वैसे ही वह प्रभु " सभी घटों में स्वयं बसता है, पर फिर भी संगति का गुण (अवश्य) भिन्न होता है" – यह जानकर ही संत-संग में उस प्रभु का गुणानुवाद किया जाता है ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(जल दा द्रिशटांत)

पाणी काले रंगि विचि जिउ काला दिसै ।
रता रते रंगि विचि मिलि मेलि सलिसै ।
पीलै पीला होइ मिलै हितु जेही विसै ।
सावा सावे रंगि मिलि सभि रंग सरिसै ।
तता ठंढा होइकै हित जिसै तिसै ।
आपे आपि वरत्तदा गुरमुखि सुखु जिसै ॥ ७ ॥

पउड़ी ८

(होर द्रिशटांत)

दीवा बलै बैसंतरहु चानणु अन्हेरे ।
दीपक विचहुँ मसु होइ कंम आइ लिखेरे ।
कजलु होवै कामणी संगि भले भलेरे ।

पउड़ी ७

(जल का दृष्टांत)

पानी जैसे काले रंग में काला दिखता है और लाल रंग में मिलने पर लाल हो जाता है; पीले रंग में मिलने पर पीले हेतु जैसा ही हो जाता है; हरे रंग में मिलने पर सरस हरे रंग जैसा हो जाता है; कारण के अनुरूप ही ठंडा अथवा गर्म हो जाता है; वैसे ही वह प्रभु सब स्थानों में आवश्यकता के अनुरूप व्यवहृत है । जो गुरु की ओर उन्मुख है वही (इस रहस्य को समझता है और) सुखी है ।। ७ ।।

पउड़ी ८

(अन्य दृष्टांत)

अग्नि से दीपक जलता है और अंधकार में प्रकाश हो जाता है। दीपक में से स्याही निकलती है जो लेखक के काम आती है। उसी में कामिनी (स्त्री) को काजल प्राप्त होता है। इस प्रकार भले लोगों के साथ रहकर भले कामों में लगा जाता है । उसी स्याही से हरि-यश लिखा जाता है और मुंशी व्यक्ति उसी से दुनियादारी के हिसाब अपने दफ्तर में लिखते हैं ।

मसवाणी हरि जसु लिखै दफतर अगलेरे ।
आपे आपि वरत्तदा गुरमुखि चउफेरे ॥ ८ ॥

पउड़ी ९
(अनेकता विच्च एकता)

बिरखु होवै बीउ बीजीऐ करदा पासारा ।
जड़ अंदरि पेड बाहरा बहु डाल बिसथारा ।
पत फुल फल फलीदा रस रंग सवारा ।
वासु निवासु उलासु करि होइ वड परवारा ।
फल विचि बीउ संजीउ होइ फल फलो हजारा ।
आपे आपि वरत्तदा गुरमुखि निसतारा ॥ ९ ॥

पउड़ी १०
(सूत दा द्रिशटांत)

होवे सूतु कपाह दा करि ताणा वाणा ।
सूतहु कपडु जाणीऐ आखाण वखाणा ।

वह प्रभु स्वयं ही सब जगह व्याप्त होता है और केवल ' गुरुमुख ' ही अपने चारों ओर उसको अनुभव करता है ।। ८ ।।

पउड़ी ९
(अनेकता में एकता)

बीज से वृक्ष होता है और फिर उसका प्रसार होता है । जड़ धरती में, तना बाहर और डालियों का विस्तार होता है । वह पत्तों, फूलों, फलों से भर जाता है और रस-रंग में शोभायमान होता है । उन फलों-फूलों में सुगंध और आनन्द का निवास होता है और वह वृक्ष बड़े परिवार वाला बन जाता है । फल से पुन: बीज पैदा होकर एक फल से हजारों फल पैदा करने का हेतु बन जाता है । वह स्वयं ही सबमें व्याप्त है, इस तथ्य को हृदयंगम करके ही ' गुरुमुखों ' का उद्धार होता है ।। ९ ।।

पउड़ी १०
(धागे का दृष्टांत)

कपास से सूत्र (धागा) और फिर उसका ताना-बाना बनाया जाता है ।

चउसी तै चउतार होइ गंगा जलु जाणा ।
खासा मलमल सिरीगाफुं तन सुख मनि भाणा ।
पग दुपटा चोलणा पटुका परवाणा ।
आपे आपि वरत्तदा गुरमुखि रंग माणा ॥ १० ॥

पउड़ी ११

(सोने दा द्रिशटांत)

सुनिआरा सुइना घड़ै गहणे सावारे ।
पिपल वतरे वालीआ तानउड़े तारे ।
वेसरि नथि वखाणीऐ कंठ माला धारे ।
टीकति मणीआ मोतिसर गजरे पासारे ।
दुर्रे बहुट्टा गोल छाप करि बहु परकारे ।
आपे आपि वरत्तदा गुरमुखि वीचारे ॥ ११ ॥

उस धागे से कपड़ा जाना जाता है– ऐसा जगत्-प्रसिद्ध है । यथा – चहुसूत्री को चौसी, गंगाजली आदि कहा जाता है । उसी से उत्तम वस्त्र, मलमल, सिरीसाफ आदि बनकर तन-मन को सुख देता है । पगड़ी, दुपट्‌टा,चोला, अंग-वस्त्र आदि बनकर परवान चढ़ता है वह प्रभु स्वयं ही सब जगह व्याप्त है । गुरुमुख उसके प्रेम को ही भोगकर आनंदित होते हैं ।। १० ।।

पउड़ी ११

(सोने का दृष्टांत)

सुनार सजा-सँवार कर सोने के गहने बनाता है । उसमें कई पीपल के पत्ते के समान, कर्णाभूषण और कई तारों वाले गहने होते हैं । बेसर, नथनी और कंठमालाएँ भी बनायी जाती हैं । माथे का टीका मणियुक्त हार, मोतियों की माला आदि बनती हैं। विभिन्न प्रकार के बाजूबद, गोल अँगूठियाँ आदि बनाई जाती हैं। (उसी सोने के समान) वह सबमें व्याप्त है, इस तथ्य को कोई ' गुरुमुख ' ही विचारता है ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(गंने दा द्रिशटांत)

गंना कोलू पीड़ीऐ रसु दे दरहाला ।
कोई करे गुड़ु भेलीआँ को सकर वाला ।
कोई खंड सवारदा मक्खण मस्साला ।
होवै मिसरी कलीकंद मिठिआई ढाला ।
खावै राजा रंकु करि रस भोग सुखाला ।
आपे आपि वरत्तदा गुरमुखि सुखाला ॥ १२ ॥

पउड़ी १३

(गाँ दे दुद्ध दा द्रिशटांत)

गाई रंग बिरंग बहु दुधु उजलु वरणा ।
दुधहु दही जमाईऐ करि निहचलु धरणा ।
दही विलोइ अलोईऐ छाहि मखण तरणा ।
मखणु ताइ अउटाइ कै घिउ निरमल करणा ।

पउड़ी १२

(गन्ने का दृष्टांत)

गन्ने को कोल्हू में पेरा जाता है तो तुरन्त रस देता है । कोई उस रस से गुड़ की भेली बनाता है, कोई शक्कर बनाता है । कोई उसकी खाँड़ बनाता है और मखाना वगैर: डालकर मसालेदार गुड़ बनाता है । कोई मिश्री, कलाकंद और मिठाई के रूप में उसे ढाल लेता है। राजा-रंक दोनों ही उसे भोग्य रस के रूप में खाते हैं। वह (प्रभु) सब जगह व्याप्त है; गुरुमुखों के लिए वही सुखों का घर है।। १२ ।।

पउड़ी १३

(गाय के दूध का दृष्टांत)

गाय अनेक रंगों की होती है परन्तु दूध सबका सफेद होता है । दूध से दही बनाना हो तो उसमें जामन (थोड़ा सा दही) मिलाकर उसे स्थिर रख दिया जाता है। दही को बिलोकर देखा जाय तो लस्सी पर मक्खन तैरता दिखाई देता है । मक्खन को औटाकर निर्मल घी बनाया जाता है । फिर उस घी को होम, यज्ञ, नैवेद्य आदि कार्यों में प्रयुक्त किया जाता है ।

होम जग नईवेद करि सभ कारज सरणा ।
आपे आपि वरत्तदा गुरमुखि होइ जरणा ॥ १३ ॥

पउड़ी १४

(सूरज दा द्रिशटांत)

पल घड़ीआ मूरति पहरि थित वार गणाए ।
दुइ पख बारह माह करि संजोग बणाए ।
छिअ रुती वरताईआँ बहु चलित बणाए ।
सूरजु इकु वरतदा लोकु वेद अलाए ।
चारि वरन छिअ दरसनाँ बहु पंथि चलाए ।
आपे आपि वरत्तदा गुरमुखि समझाए ॥ १४ ॥

(जैसे वह घी विभिन्न पूर्व रूपों में से काफी लंबी यात्रा के बाद यज्ञ-नैवेद्य में प्रयुक्त होने लायक निर्मल घी बनता है वैसे ही) ' गुरुमुख ' यह मानता है कि वह प्रभु स्वयं ही सब जगह व्याप्त है, पर उस तक पहुँचने के लिए संतोष और साधना का जीवन अपनाया जाता है ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(सूर्य का दृष्टांत)

पल से घड़ियाँ, मूहूर्त, प्रहर, तिथियाँ और वार बनाये गये हैं । फिर दो पक्ष (शुक्ल व कृष्ण), बारह मास एक-दूसरे में संयुक्त करके बनाए हैं। फिर छः ऋतुओं का प्रसार कर अनेकों आश्चर्यचकित करनेवाले दृश्य बना दिए । परन्तु इन संबमें सूर्य एक ही कार्यशील है, ऐसा सभी ज्ञानी कहते (समझते) हैं । छः दर्शनों और चार वर्णों के प्रबंध लोगों ने किये हैं, परन्तु ' गुरुमुख ' व्यक्ति यह समझता और समझाता है कि एक प्रभु सबमें व्याप्त है (इसलिए परस्पर लड़ो मत और इस रहस्य को समझो)।। १४ ।।

पउड़ी १५

(उही भाव, बैसंतर दा द्रिशटांत)

इकु पाणी इक धरति है बहु बिरख उपाए ।
अफल सफल परकार बहु फल फुल सुहाए ।
बहु रस रंग सुवासना परकिरति सुभाए ।
बैसंतरु इकु वरन होइ सभ तरवर छाए ।
गुपतहु परगट होइ कै भसमंत कराए ।
आपे आपि वरत्तदा गुरमुखि सुख पाए ॥ १५ ॥

पउड़ी १६

(बिरद पालन)

चंदन वास बणासपति सभ चंदन होवै ।
असट धातु इक धातु होइ संगि पारसि ढोवै ।
नदीआ नाले वाहड़े मिलि गंग गंगोवै ।
पतित उधारणु साधसंगु पापाँ मलु धोवै ।

पउड़ी १५

(वही भाव--अग्नि का दृष्टांत)

पानी एक और यह धरती भी एक है, परन्तु वृक्ष अनेकों प्रकार के हैं । कई फल-विहीन और कई अनेक प्रकार के फलों-फूलों से शोभायमान हैं । उनकी विभिन्न प्रकार की सुगंध है और विभिन्न प्रकार के रसों से वे प्रकृति की शोभा बढ़ाते हैं । एक ही प्रकार की अग्नि सभी वृक्षों में स्थित है । वह गुप्त अग्नि प्रकट होकर सबको भस्मीभूत कर देती है। वैसे ही वह स्वयं ही सबमें व्यवहृत है, ' गुरुमुख ' इसी बात पर आनंदित हो रहे हैं ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(बिरद-पालन)

चन्दन के पास रहनेवाली सारी वनस्पति चंदन की तरह सुगंध देनेवाली बन जाती है । पारस के साथ मिलने पर अष्टधातुएँ एक धातु (सोना) हो जाती है । नदी, नाले गंगा के साथ मिलकर गंगा नाम से ही जाने जाते हैं । पतितों का उद्धार करनेवाली साधु-संगति है, जो पापों के मैल को धो देती है ।

नरक निवार असंख होइ लख पतित संगोवै ।
आपे आपि वरत्तदा गुरमुखि अलोवै ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(प्रेम)

दीपक हेतु पतंग दा जल मीन तरंदा ।
मिरगु नाद विसमादु है भवर कवलि वसंदा ।
चंद चकोर परीति है देखि धिआनु धरंदा ।
चकवी सूरज हेतु है संजोगु बणंदा ।
नारि भतार पिआरु है माँ पुतु मिलंदा ।
आपे आपि वरत्तदा गुरमुखि परचंदा ।। १७ ।।

पउड़ी १८

(अक्खां दा द्रिशटांत)

अखी अंदरि देखदा सभ चोज विडाणा ।
कंनी सुणदा सुरति करि आखाणि वखाणा ।

लाखों पतितों और नर्कों का उद्धार सत्संगति के माध्यम से हो गया है । गुरुमुख देखता-समझता है कि वह प्रभु स्वयं ही सब कार्यों में व्याप्त है ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(प्रेम)

दीपक से पतंगे का प्रेम है और मछली प्रेमवश ही पानी में तैरती रहती है। मृग के लिए नाद आत्मविभोर कर्ता है और भँवरा प्रेमवश कमल में ही बस जाता है। चकोर की प्रीति चन्द्रमा के साथ है जिसे वह टकटकी लगाकर देखता रहता है। चकवी का प्रेम सूर्य से है और सूर्य निकलने पर ही उसे उससे मिलने का संयोग बनता है। स्त्री का पति से प्यार है और बेटा प्रेमवश होकर माँ से जा मिलता है। गुरुमुख इन सब रूपों में प्रभु को ही व्यवहृत देखकर संतोष का अनुभव करते हैं।। १७ ।।

पउड़ी १८

(आँखों का दृष्टांत)

(संसार की) आँखों के माध्यम से वह (प्रभु) सारे आश्चर्यकारी कृत्यों को देखता है । बताए जा रहे आख्यानों को वह कानों के द्वारा सुनता है ।

जीभै अंदरि बोलदा बहु साद लुभाणा ।
हथीं किरति कमाँवदा पगि चलै सुजाणा ।
देही अंदरि इकु मनु इंद्री परवाणा ।
आपे आपि वरत्तदा गुरमुखि सुखु माणा ॥ १८ ॥

पउड़ी १९

(त्रिशटी ते त्रिशटे दा प्रबंध)

पवण गुरु गुरू सबदु है राग नाद वीचारा ।
मात पिता जलु धरति है, उतपति संसारा ।
दाई दाइआ राति दिहु वरते वरतारा ।
सिव सकती दा खेलु मेलु परकिरति पसारा ।
पारब्रहम पूरन ब्रहमु घटि चंदु अकारा ।
आपे आपि वरत्तदा गुरमुखि निरधारा ॥ १९ ॥

जीभ के माध्यम से वही बोलता और अनेकों स्वादों का अनुभव करता है। हाथों से वही कार्य करता है और पाँवों के माध्यम से वही सुजान (प्रभु) चलता है। मानव-देह में वही एक मन-रूप है जिसका आदेश सभी इंद्रियाँ मानती हैं। वह प्रभु ही सब जगह व्याप्त है, गुरुमुख जन इसी को अनुभव कर आनंदित हैं ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(सृष्टि और स्रष्टा का संबंध)

(दृश्य जगत का मूल) पवन (गैसें) है और 'शब्द' ज्ञान-गुरु है जिससे सब राग, नाद और विचार आगे चलते हैं। माता-पिता धरती और जल के रूप में सृजन शक्तियाँ हैं जिससे सारे संसार की उत्पत्ति होती है । रात-दिन धाय (सुलानेवाली) और क्रीड़ा करवाने वाले हैं और इसी प्रकार सारे संसार का व्यवहार चल रहा है । शिव (चैतन्यशक्ति) और शक्ति (जड़-प्रकृति) के मेल के खेल का प्रसार ही यह सारा संसार है। वह परब्रह्म, पूर्णब्रह्म सब जगह वैसे ही है जैसे एक ही चन्द्रमा पानी से करे सभी घड़ों में प्रतिबिम्बित होता है । वह किसी भी आधार से परे रहनेवाला परमात्मा गुरुमुखों का आधार है और और स्वयं ही सब जगह व्यवहृत होता है ।। १९ ।।

पउड़ी २०

(आप ही आप)

फुलाँ अंदरि वासु है होइ भवरु लुभाणा ।
अंबाँ अंदरि रस धरे, कोइल रसु माणा ।
मोर बबीहा होइ कै घण वरस सिञाणा ।
खीर नीर संजोग होइ कलीकंद वखाणा ।
ओअंकारु आकारु करि, होइ पिंड पराणा ।
आपे आपि वरत्तदा गुरमुखि परवाणा ।२०।।२।।

पउड़ी २०

(आप ही आप)

वह प्रभु फूलों में सुगंध है और भँवरा बन भी स्वयं ही लोभियों की तरह व्यवहार कर रहा है। आमों में रस भी है और कोयल बनकर वही उस रस का आनन्द लेता है। मोर, पपीहा बनकर वही बादलों के बरसने के आनंद को पहचानता है। दूध और पानी स्वयं ही बनकर कलाकंद जैसी मिठाई के रूप में परिवर्तित हो जाता है। वही ॐकार आकार धारण कर सभी शरीरों में रमण कर रहा है । वह स्वयं ही सब जगह सब व्यवहारों में वर्तमान बना रहता है और गुरुमुख उसकी इस अवस्था को स्वीकार करते हैं ।। २० ।। २ ।।

* * *

वार ३

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।।

पउड़ी १

(नमसकारातमक मंगलाचरण)

आदि पुरख आदेसु, आदि वखाणिआ ।
सो सतिगुरु सचा वेसु, सबदि सिञाणिआ ।
सबदि सुरति उपदेसु, सचि समाणिआ ।
साध संगति सचु देसु, घरु परवाणिआ ।
प्रेम भगति आवेसु सहजि सुखाणिआ ।
भगति वछलु परवेसु माणु निमाणिआ ।
ब्रहमा बिसनु महेसु अंतु न जाणिआ ।
सिमरि सहसि फण सेसु तिलु न पछाणिआ ।
गुरमुखि दर दरवेसु सचु सुहाणिआ ।। १ ।।

पउड़ी १

(नमस्कारात्मक मंगलाचरण)

उस आदिपुरुष को प्रणाम है जिसे सबका आदिकारण बताया गया है। वह सत्यगुरु सत्यस्वरूप वाला है जिसे ' शब्द' के माध्यम से अनुभव किया जाता है । उन्होंने ही अनुभव किया है जिनकी सुरति ने शब्द का उपदेश मानकर सत्य में अपने आपको समाहित किया है । सत्संगति ही सत्य का धाम और प्रामाणिक अधिष्ठान है जहाँ प्रेम-भक्ति से आवेष्ठित होकर जीव सहज-सुख का उपभोग करता है। वह भक्त-वत्सल और दीनों का गौरव प्रभु भी सत्संगति में ही अंतर्भुक्त रहता है। ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश भी उसका रहस्य नहीं जान सके । शेषनाग सहस्रों फणों से उसका स्मरण करके भी उसे नहीं पहचान सका । जो गुरुमुख उस सत्संगति के द्वार के दरवेश (भिक्षुक) बन गये, सत्य उन्हें ही सुहावना लगता है ।। १ ।।

पउड़ी २

(गुरु चेला)

गुरु चेले रहरासि अलखु अभेउ है ।
गुरु चेले साबासि नानक देउ है ।
गुरमति सहजि निवासु सिफति समेउ है ।
सबदि सुरति परगास अछल अछेउ है ।
गुरमुखि आस निरास मति अरखेउ है ।
काम करोध विणासु सिफति समेउ है ।
सति संतोख़ उलास सकति न सेउ है ।
घर ही विचि उदासु सचु सुचेउ है ।
वीह इकीह अभिआसु गुर सिख देउ है ॥ २ ॥

पउड़ी ३

(गुरु चेला)

गुर चेला परवाणु गुरमुखि जाणीऐ ।
गुरमुखि चोजि विडाणु अकत्थ कथाणीऐ ।

पउड़ी २

(गुरु-चेला)

गुरु और शिष्य की मर्यादा भी रहस्यपूर्ण एवं अलक्ष्य है । गुरु (नानक) और शिष्य (अंगद) दोनों ही धन्य हैं (क्योंकि दोनों एक रूप हैं)। इनका निवास गुरुमत द्वारा प्रतिपादित सहज पद में है और ये प्रभु गुणानुवाद में सराबोर हैं । इनकी सुरति शब्द से प्रकाशित, अछल एवं अक्षय हो गयी है और ये आशाओं से उदासीन सूक्ष्म बुद्धि (पराबुद्धि) से संयुक्त हो गये हैं । काम, क्रोध को जीतकर ये प्रभु गुणानुवाद में समाहित हैं । ये शिव और शक्ति के मंडलों से ऊँचे सत्य, संतोष और आनंद के मंडल में जा पहुँचे हैं। ये घर में ही उदास और सत्योन्मुख हैं । गुरु और शिष्य तो अब क्रमशः बीस और इक्कीस के अनुपात वाले हो गये हैं अर्थात शिष्य गुरु से भी आगे निकल गया है ।। २।।

पउड़ी ३

(गुरु -चेला)

गुरु के आदेश को शिष्य माने तो उसे गुरुमुख कहा जाता है।

कुदरति नो कुरबाणु कादरु जाणीऐ ।
गुरमुखि जगि मिहमाणु जगु मिहमाणीऐ ।
सतिगुर सति सुहाणु आखि वखाणीऐ ।
दरि ढाढी दरवाणु चवै गुरबाणीऐ ।
अंतरिजामी जाणु हेतु पछाणीऐ ।
सचु सबदु नीसाणु सुरति समाणीऐ ।
इको दरि दीबाणु सबदि सिञाणीऐ ।। ३ ।।

पउड़ी ४
(गुरु चेला)

सबदु गुरु गुरू वाहु गुरमुखि पाइआ ।
चेला सुरति समाहु अलखु लखाइआ ।
गुर चेले वीवाहु तुरी चड़ाइआ ।
गहिर गंभीर अथाहु अजरु जराइआ ।
सचा बेपरवाहु सचि समाइआ ।

उस गुरुमुख के कार्य भी आश्चर्यजनक होते हैं और उसकी महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता। वह कुदरत को कर्ता का रूप जानकर उस पर बलिहारी जाता है। जगत में अपने आपको अतिथि और संसार को अतिथिगृह समझता है। उसका सच्चा गुरु सत्य है जिसे वह सदैव कहता-सुनता है। वह सत्संगति के द्वार पर भाट की तरह गुरुवाणी का उच्चारण करता है। सत्संगति को वह अंतर्यामी प्रभु की पहचान का हेतु मानता है और सत्य-शब्द रूपी कृपा-चिह्न में उसकी सुरति लवलीन बनी रहती है। वह सत्संगति को ही एक सच्ची न्यायशाला मानता है और 'शब्द' के माध्यम से उसकी सच्ची पहचान मन में बैठाता है ।। ३।।

पउड़ी ४
(गुरु-चेला)

गुरुमुख गुरु से उस विस्मयविभोरकारी शब्द गुरु की प्राप्ति करता है और शिष्य-रूप में सुरति को उसमें लीन कर अलक्ष्य प्रभु का साक्षात् करता है। गुरु के मिलन से शिष्य तुरीय अवस्था को प्राप्त कर लेता है और गहरे, गंभीर, अथाह एवं असह्य प्रभु को मन में सँभालता है। वह सच्चा शिष्य बेपरवाह होकर स्वयं सत्य में समा जाता है और सम्राटों का सम्राट बनकर आदेशों का पालन करवाता है।

पातिसाहा पातिसाहु हुकमु चलाइआ ।
लउबाली दरगाहु भाणा भाइआ ।
सची सिफति सलाहु अपिउ पीआइआ ।
सबदु सुरति असगाहु अघड़ घड़ाइआ ।। ४ ।।

पउड़ी ५

(गुरमुखि पंथी)

मुलि न मिलै अमोलु, न कीमति पाईऐ ।
पाइ तराजू तोलु, न अतुलु तुलाईऐ ।
निज घरि तखतु अडोलु, न डोलि डोलाईऐ ।
गुरमुखि पंथ निरोलु न रले रलाईऐ ।
कथा अकथ अबोलु न बोल बुलाईऐ ।
सदा अभुलु अभोलु, न भोलि भुलाईऐ ।
गुरमुखि पंथु अलोलु, सहजि समाईऐ ।
अमिउ सरोवर झोलु गुरमुखि पाईऐ ।
लख टोली इक टोलु न आपु गणाईऐ ।। ५ ।।

उसे ही अभय प्रभु का हुक्म अच्छा लगा है और उसने ही प्रभु गुणानुवाद रूपी अमृत का पान किया है। उसी ने सुरति को शब्द की गहनता में जाकर अघड़ मन को सँवारा है ।। ४ ।।

पउड़ी ५

(गुरुमुख-पंथी)

गुरुमुखों का जीवन-मार्ग अमूल्य है, उसे खरीदा नहीं जा सकता। वह तराजू-बाटों से तौला नहीं जा सकता। वह जीवन-मार्ग स्वयं में स्थित होना और चंचल न होना है। यह मार्ग निराला है और किसी में मिलकर मलीन नहीं होता। इसकी कथा तो निराली है जो बोली-सुनी नहीं जा सकती । यह भूल-चूक से परे और भ्रमों में पड़नेवाला नहीं है। सहज में लीन यह गुरुमुख मार्ग एक स्थिरता प्रदान करनेवाला मार्ग है। अमृत के सरोवर का रस गुरुमुख पीता है। लाखों बातों की एक बात यह है कि गुरुमुख अपने अहम् का प्रदर्शन नहीं करता ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(गुरसिक्खी दा सौदा)

सउदा इकतु हटि सबदि विसाहीऐ ।
पूरा पूरे वटि कि आखि सलाहीऐ ।
कदे न होवै घटि सची पतिसाहीऐ ।
पूरे सतिगुर खटि अखुटु समाहीऐ ।
साधसंगति परगट्टि सदा निबाहीऐ ।
चावल इकते सटि न दूजी वाहीऐ ।
जम दी फाही कटि दादि इलाहीऐ ।
पंजे दूत संघटि ढेरी ढाहीऐ ।
पाणी जिउ हरिहटि सु खेति उमाहीऐ ॥ ६ ॥

पउड़ी ७

(सतिगुरू)

पूरा सतिगुरु आपि न अलखु लखावई ।
देखै थापि उथापि जिउ तिसु भावई ।

पउड़ी ६

(गुरु-सिक्खी का सौदा)

एक प्रभु-नाम रूपी सौदा सत्संगति रूपी दुकान से शब्द के माध्यम से खरीदा जाता है। उस पूर्णप्रभु के मानदंड पूर्ण हैं उसकी क्या प्रशंसा की जाय। उस सत्यसम्राट के भंडार में कभी कमी नहीं आती। पूर्णगुरु को प्राप्त कर जो उसके माध्यम से कमाई करते हैं वे अक्षय भंडार में लीन हो जाते हैं। साधुसंगति प्रकट रूप से महान् है, सदैव इसके साथ लगे रहना चाहिए और जीवन रूपी चावलों को इसी जीवन में साधना की चोट से माया रूपी भूसे से अलग कर लो ताकि दूसरे जन्म धारण न करने पड़ें और दुबारा चोटें न लगानी पड़ें। प्रभु-कृपा से यम-पाश काट दो और पाँचों दूतों (काम-क्रोध आदि) को घेरकर ढेर कर दो। जैसे कुएँ का पानी खेत को हरा-भरा रखता है वैसे ही सुरति रूपी खेत को (शब्द के सहारे) हरा-भरा रखो ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(सच्चा गुरु)

सच्चा गुरु वह प्रभु स्वयं है जो अलक्ष्य है। वह स्वयं अपनी इच्छानुसार स्थापन-विस्थापन करता है। उत्पन्न और लय करने का तनिक भर भी पुण्य-पाप उसे नहीं छूता। वह अपने आपको जताता नहीं और वर-शाप उसे नहीं लगता।

लेपु न पुंनि न पापि उपाइ समावई ।
लागू वरु न सराप न आप जणावई ।
गावै सबदु अलापि अकथु सुणावई ।
अकथ कथा जपु जापि न जगतु कमावई ।
पूरै गुर परतापि आपु गवावई ।
लाहे तिंने तापि संताप घटावई ।
गुरबाणी मन ध्रापि निज घरि आवई ॥ ७ ॥

पउड़ी ८

(गुरसिक्खाँ लई साधन, दशा ते वरतन)

पूरा सतिगुर सति गुरमुखि भालीऐ ।
पूरी सतिगुर मति सबदि सम्हालीऐ ।
दरगह धोईऐ पति हउमै जालीऐ ।
घर ही जोग जुगति बैसणि धरमसालीऐ ।
पावण मोख मुकति गुर सिखि पालीऐ ।

सच्चा गुरु शब्द का आलाप लेता है और उस अकथनीय प्रभु की महिमा सुनाता है। उस अकथनीय का गुणानुवाद करता हुआ वह जगत् के छल-प्रपंच की कमाई नहीं करता । पूर्णगुरु के तेज के फलस्वरूप ही जिज्ञासुओं का अहंभाव नष्ट होता है। वह तीनों पापों (आधिदैविक, आधिभौतिक व आध्यात्मिक) को मिटाकर जीव का संताप कम करता है । जीव इस प्रकार के गुरु की वाणी से तृप्त होकर निज घर अर्थात् अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है ।। ७ ।।

पउड़ी ८

(गुरु-सिक्खों के लिए साधन, दशा और व्यवहार)

पूरा गुरु सत्यस्वरूप है, जिसकी खोज गुरुमुख बनकर की जाती है । सच्चे गुरु का आदेश यही है कि ' शब्द' की सँभाल की जानी चाहिए । ताकि अहंकार को जलाकर प्रभु दरबार में सम्मान पाया जा सके। घर को ही धर्म-अर्जन का स्थान अर्थात् धर्मशाला समझकर उस प्रभु के साथ संयुक्त होने की युक्ति को सीखना चाहिए। जो गुरु की शिक्षा का पालन करते हैं, वे निश्चित मोक्ष प्राप्त करते हैं। उनके अंदर प्रेम-भक्ति होती है और वे प्रभु-कृपा से गद्गद बने रहते हैं। वे ही एकछत्र सम्राट् और सुखी बने रहते हैं ।

अंतरि प्रेम भगति नदरि निहालीऐ ।
पतिसाही इक छति खरी सुखालीऐ ।
पाणी पीहणु घति सेवा घालीऐ ।
मसकीनी विचि वति चाले चालीऐ ॥ ८ ॥

पउड़ी ९

(गुरमुखाँ दे लच्छण)

गुरमुखि सचा खेलु गुर उपदेसिआ ।
साधसंगति दा मेलु सबदि अवेसिआ ।
फुलीं तिलीं फुलेल संगि सलेसिआ ।
गुर सिख नक नकेल मिटै अंदेसिआ ।
न्हावणु अंम्रित वेल वसण सुदेसिआ ।
गुर जपु रिदै सुहेलु गुर परबेसिआ ।
भाउ भगति भउ भेलु साध सरेसिआ ।

(राजा सगली स्रिसटि का हरि नाम मनु भिंना--गुरूग्रन्थ साहिब) । वे अहं-विहीन होकर (साधु-संगत के लंगर के लिए) पानी भरते, अनाज पीसते और अन्य सेवाएँ करते हैं । वे अकिंचनता में मस्ती से निराला ही जीवन व्यतीत करते हैं ।। ८।।

पउड़ी ९

(गुरुमुखों के लक्षण)

गुरुमुख को गुरु का उपदेश है कि वह सच्चा व्यवहार करे। सत्संगति में मिलकर वह शब्द में लीन रहता है । फूलों के संसर्ग में तिल का तेल भी फुलेल हो जाता है। गुरु के शिष्य के नाक में प्रभु-इच्छा की नकेल पड़ी रहती है अर्थात् वह सदैव प्रभु - आज्ञा के अधीन बना रहता है । वह अमृत - वेला में स्नान कर प्रभु के सुन्दर देश में लीन हो जाता है अर्थात् प्रभु में ध्यान लगा लेता है। वह हृदय में गुरु (प्रभु) का जाप कर गुरु में ही एकात्मभाव स्थापित कर लेता है। वह भाव, भक्ति और प्रभु-भय में विचरण करता है, इसलिए श्रेष्ठ साधु माना जाता है ।

नित नित नवल नवेल गुरमुखि भेसिआ ।
खैर दलाल दलेल सेव सहेसिआ ॥ ९ ॥

पउड़ी १०

(चरन धूड़ि)

गुर मूरति करि धिआन सदा हजूर है ।
गुरमुखि सबदु गिआनु नेड़ि न दूर है ।
पुरबि लिखतु नीसाणु करम अंकूर है ।
गुर सेवा परधानु सेवक सूर है ।
पूरन परम निधान सद भरपूर है ।
साधसंगति असथानु जगमग नूर है ।
लख लख ससीअर भानु किरणि ठरूर है ।
लख लख बेद पुराणि कीरतन चूर है ।
भगति वछल परवाणु चरणा धूर है ॥ १० ॥

ऐसे गुरुमुख पर प्रभु-रंग सदैव नये रूप में चढ़ता जाता है। वह ही परमसुख को दिलानेवाला, अभय एवं उस प्रभु के साथ सदैव बना रहनेवाला है ।। ९ ।।

पउड़ी १०

(चरण-धूलि)

गुरु-मूर्ति (गुरु-शब्द) का ध्यान कर, वह सदा तुम्हारे साथ है। गुरुमुख को शब्द के ज्ञान के कारण वह प्रभु सदैव पास ही दिखायी देता है और दूर नहीं लगता। परन्तु कर्मों का अंकुर तो पूर्व कर्मों के अनुरूप ही फूटता है । शूर सेवक गुरु-सेवा में अग्रणी हो जाता है। पर परम भण्डाररूपी प्रभु सदैव पूर्ण है और सर्वत्र व्याप्त है। साधु-संगति में उसका तेज जगमगाता है। सत्संगति के प्रकाश के सम्मुख लाखों चन्द्र और सूर्य-किरणों का प्रकाश ठंडा है। लाखों वेद-पुराण प्रभु-स्तुति - कीर्तन के आगे तुच्छ हैं। जो प्रभु का प्यारा बन चुका, उसकी चरण-धूलि भी उस भक्त-वत्सल को प्रिय है ।। १० ।।

पउड़ी ११

(गुरसिख अभेद)

गुर सिखु सिखु गुर सोइ अलखु लखाइआ ।
गुर दीखिआ लै सिखि सिखु सदाइआ ।
गुर सिख इक्को होइ जो गुर भाइआ ।
हीरा कणी परोइ हीरु बिधाइआ ।
जल तरंगु अवलोइ सलिल समाइआ ।
जोती जोति समोइ दीपु दीपाइआ ।
अचरज अचरजु ढोइ चलितु बणाइआ ।
दूधहु दही विलोइ घिउ कढाइआ ।
इकु चानणु तिहु लोइ प्रकटी आइआ ॥ ११ ॥

पउड़ी १२

(उप्परले भाव पर है)

सतिगुर नानक देउ गुरा गुरु होइआ ।
अंगदु अलखु अभेउ सहजि समोइआ ।

पउड़ी ११

(गुरु-सिक्ख एकात्मता *)

गुरु ने सिक्ख और सिक्ख ने गुरु के साथ एकात्म होकर उस अलक्ष्य प्रभु के दर्शन करा दिये हैं। गुरु से दीक्षा लेकर ही सिक्ख शिष्य बना है। गुरु की इच्छा में गुरु और सिक्ख एक ही हो गये हैं। ऐसा लगता है मानो हीरे ने हीरे को वेधकर एक सूत्र में पिरो दिया है अथवा जल की तरंग जल में ही समाहित हो गई हो अथवा एक दीपक की ज्योति दूसरे दीपक में आ गयी हो। महान् विस्मयकारी कार्य चरित्र-रूप में परिणित दिखायी देता हैं। ऐसा लगता है मानो दूध के दही का मंथन कर पवित्र घी निकाला हो। एक ही प्रकाश तीनों लोकों में प्रकट हुआ है ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(उपर्युक्त भाव पर ही)

सत्यगुरु नानक देव गुरुओं के भी गुरु हुए हैं। उन्होंने अंगददेव को 'सहज' के अलक्ष्य एवं रहयपूर्ण पद पर विराजमान कर दिया है ।

---

* इस पउड़ी में भाई गुरदास जी ने गुरु नानकदेव की अपने शिष्य गुरु अंगददेव के साथ अभेदता की ओर संकेत किया है ।

अमरहु अमर समेउ अलखु अलोइआ ।
राम नाम अरिखेउ अंम्रितु चोइआ ।
गुर अरजन करि सेउ ढोऐ ढोइआ ।
गुर हरिगोबिंदु अमेउ अमिउ विलोइआ ।
सचा सचि सुचेउ सचि खलोइआ ।
आतम अगह गहेउ सबदु परोइआ ।
गुरमुख अभर भरेउ भरम भउ खोइआ ।। १२ ।।

पउड़ी १३
(गुरमुख)

साधसंगति भउ भाउ सहजु बैरागु है ।
गुरमुखि सहजि सुभाउ सुरति सु जागु है ।
मधुर बचन आलाउ हउमै तिआगु है ।
सतिगुर मति परथाउ सदा अनुरागु है ।
पिरम पिआले साउ मसतकि भागु है ।

अमरदास को उस चिरतन प्रभु में समाहित कर उस अदृष्ट के दर्शन करा दिये। रामदास को आर्ष (उत्तम) अमृत-रस का पान कराया। गुरु अर्जुन को (गुरु रामदास की ओर से) सेवा का दान प्राप्त हुआ। गुरु हरगोबिंद ने भी (शब्दामृत के) सागर का मंथन किया और इन सब सत्यपुरुषों की कृपा और श्रम से वह सत्यपुरुष प्रभु सामान्यजनों के हृदय में बस गया, जिन्होंने पुन: शब्द में अपनी आत्मा को लगा दिया है, उसमें पिरो दिया है। इन गुरुमुखों ने भरे न जा सकने वाले हृदयों को शब्द से सराबोर करके उनके भ्रमों और भय को नष्ट कर दिया है ।। १२ ।।

पउड़ी १३
(गुरुमुख)

सत्संगति में (प्रभु) भय और (मानव) प्रेम व्याप्त रहने से स्वत: ही वैराग्य-अवस्था बनी रहती है। गुरुमुख स्वभावत: ही सुरित-रूप से जाग्रत् रहते हैं अर्थात् उनका ध्यान शब्द में जुड़ा रहता है। वे मधुर वचन बोलते हैं और अहं को त्याग चुके होते हैं। सच्चे गुरु के मतानुसार ही वे सदा अनुरागी बने रहते हैं। वे प्रिय (प्रभु) के प्रेम-प्याले का अहोभाग्यपूर्ण होकर पान करते हैं।

ब्रहम जोति ब्रहमाउ गिआनु चरागु है ।
अंतरि गुरमति चाउ अलिपतु अदागु है ।
वीह इकीह चढ़ाउ सदा सुहागु है ॥ १३ ॥

पउड़ी १४

(उपरले भाव)

गुरमुखि सबद सम्हाल सुरति समालीऐ ।
गुरमुखि नदरि निहाल नेह निहालीऐ ।
गुरमुखि सेवा घालि विरले घालीऐ ।
गुरमुखि दीन दइआल हेतु हिआलीऐ ।
गुरमुखि निबहै नालि गुरसिख पालीऐ ।
रतन पदारथ लाल गुरमुखि भालीऐ ।
गुरमुखि अकल अकाल भगति सुखालीऐ ।
गुरमुखि हंसा ढालि रसिक रसालीऐ ॥ १४ ॥

परब्रह्म की ज्याति को अंतर्मन में अनुभव कर वे ब्रह्मादिक को भी ज्ञान-दीपक से प्रकाशमान करनेवाले हो जाते है। उनके अंदर गुरुमत के कारण अपरिमित उत्साह रहता है, जिसके कारण वे माया से निर्लिप्त और विषय-विकारों के दाग से अछूते बने रहते हैं। वे संसार के सदंर्भ में आत्म-रूप में ही सदैव उदात्त अवस्था में विचरण करते हैं अर्थात् संसार यदि बीस हैं तो वे इक्कीस हैं ।। १३।।

पउड़ी १४

(वही भाव)

गुरुमुखों के कथन को अपनाकर सदैव अपनी सुरति में रखना चाहिए । गुरुमुख की कृपा दृष्टि से धन्य-प्रसन्न हुआ जाता है । गुरुमुख-जैसी साधना-सेवा किसी बिरले को ही प्राप्त होती है । गुरुमुख दीनदयालु और हृदय में प्रेम रखनेवाले होते हैं । गुरुमुख अंत तक साथ देते हैं अत: गुरु-शिक्षा का पालन करना चाहिए । गुरुमुखों के पास ही रत्न-पदार्थ लाल आदि खोजने चाहिए अर्थात् उनके द्वारा सब प्राप्तियाँ होती हैं । गुरुमुख प्रपंच-विहीन और काल की मार से बचे रहनेवाले तथा भक्ति में सुख अनुभव करनेवाले होते हैं । गुरुमुख हंस के समान नीर-क्षीर विवेकवाले और तन-मन से प्रेमी होते हैं ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(मूल मंत्र दा गुज्झा भेद)

एका एकंकारु लिखि देखालिआ ।
ऊड़ा ओअंकारु पासि बहालिआ ।
सतिनामु करतारु निरभउ भालिआ ।
निरवैरहु जैकारु अजूनि अकालिआ ।
सचु नीसाणु अपारु जोति उजालिआ ।
पंज अखर उपकार नामु समालिआ ।
परमेसुर सुखु सारु नदरि निहालिआ ।
नउ अंगि सुंन सुमारु संगि निरालिआ ।
नील अनील वीचारि पिरम पिआलिआ ॥ १५ ॥

पउड़ी १५

(मूलमंत्र का रहस्य)

मूलमंत्र में सर्वप्रथम १ (एक) लिखकर दिखा दिया गया है कि वह प्रभु जो सर्व अ कारों की अंतर्भुक्त करनेवाला 'एकंकार' है, केवल एक है । उ (ऊड़ा–पंजाबी) को ॐकार-रूप में पास रखकर उस 'एक' प्रभु की विश्व-नियामक शक्ति का परिचय दिया है । उस प्रभु को सत्यनाम, कर्त्ता और निर्भय रूप से जाना । वह वैर-विहीन, अकाल एवं अयोनि है । उसकी ही जय है । उसका चिह्न सत्य है और वह अपार ज्योति-रूप में प्रकाशमान है । पाँच अक्षर (१ ओअंकार) परोपकारी है और उस प्रभु की नाम रूपी शक्ति को अपने अंदर सँभाले हुए है । इनके मर्म को समझनेवाला व्यक्ति सुखों के सार प्रभु की कृपा-दृष्टि से धन्य हो जाता है । जिस प्रकार १ से ९ तक अक्षर शून्य के साथ जुड़ने से निराले और नील-अनील गिनती तक पहुँच जाते हैं, उसी प्रकार प्रिय के प्रेम-प्याले को पीकर जीव अनन्त बलशाली हो जाता है ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(चार वरन दे एको भाई)

चार वरन सतिसंगु गुरमुखि मेलिआ ।
जाण तंबोलहु रंगु गुरमुखि चेलिआ ।
पंजे सबद अभंग अनहद केलिआ ।
सतिगुर सबदि तरंग सदा सुहेलिआ ।
सबद सुरति परसंग गिआन संग मेलिआ ।
राग नाद सरबंग अहिनिसि भेलिआ ।
सबद अनाहदु रंग सुझ इकेलिआ ।
गुरमुखि पंथु निपंगु बारह खेलिआ ॥ १६ ॥

पउड़ी १७

(गुरमुख अंजन)

होई आगिआ आदि आदि निरंजनो ।
नादै मिलिआ नादु हउमै भंजनो ।

पउड़ी १६

(चार वर्ण में एकरूपता)

चारों वर्णों के लोग गुरुमुखों की सत्संगति में मिलकर बैठते हैं । सभी शिष्य उसी प्रकार मिलकर गुरुमुख हो जाते हैं जैसे पान में पत्ता, चूना, कत्था आदि मिलकर एक ही लाल रंगवाले हो जाते हैं । पाँचों प्रकार के शब्द (गुरुमुखों को) आनन्दित रखते हैं । सच्चे गुरु के शब्द की तरंग में गुरुमुख सदैव सुखी रहते हैं । वे गुरु-उपदेश में सुरति के संग साथ के कारण ज्ञानवान बने रहते हैं । वे सर्व अंगों-सहित राग-स्वरूप 'नाद' गुरुवाणी में रात-दिन लीन रहते हैं। शब्द के असीम रंग में डूबे हुओं को केवल एक (परमात्मा) ही अनुभव होता है । बारह पंथों (योगियों के बारह पंथ) में से गुरुमुखों का मार्ग शुद्ध मार्ग है ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(गुरुमुख-अंजन)

सर्वप्रथम अनादिकाल में परमात्मा का हुक्म हुआ । फिर गुरु का शब्द उस शब्द ब्रह्म से मिला और जीव के अहम् का नाश हुआ ।

बिसमादै बिसमादु गुरमुखि अंजनो ।
गुरमति गुरप्रसादि भरमु निखंजनो ।
आदि पुरखु परमादि अकाल अगंजनो ।
सेवक सिव सनकादि क्रिपा करंजनो ।
जपीऐ जुगहु जुगादि गुर सिख मंजनो ।
पिरम पिआले सादु परम पुरंजनो ।
आदि जुगादि अनादि सरब सुरंजनो ।। १७ ।।

पउड़ी १८

(मुरीद)

मुरदा होइ मुरीदु न गली होवणा ।
साबरु सिदकि सहीदु भरम भउ खोवणा ।
गोला मुल खरीदु कारे जोवणा ।
ना तिसु भूख न नीद न खाणा सोवणा ।
पीहणि होइ जदीद पाणी ढोवणा ।

यही शब्द परम विस्मयकारक और गुरुमुखों का अंजन है । गुरुमत को धारण करने से गुरु की कृपा से भ्रम का क्षय हो जाता है । वह आदिपुरुष परम, अकाल और नष्ट न होनेवाला है । वही शिव, सनकादि सेवकों पर कृपा करनेवाला है । युग-युगान्तर में उसी का जाप किया जाता है और वही गुरु सिक्खों का स्नान-ध्यान है । प्रेम-प्याले के स्वाद के कारण ही उस परम ईश्वर को जाना जाता है । वह प्रभु आदि, युगादि, अनादि काल से सबका रजन कर रहा है अर्थात् सबको आनंदित कर रहा है ।। १७ ।।

पउड़ी १८

(मुरीद अर्थात् सच्चा शिष्य)

सच्चा शिष्य संसार से मरकर अर्थात् पूर्ण उदासीन होकर ही बना जा सकता है, केवल बातों से नहीं । सत्य, संतोष पर कुर्बान होकर, भ्रम, भय को त्यागकर ही ऐसा बना जा सकता है । सच्चा सिक्ख तो खरीदा हुआ गुलाम होता है, जो हर समय सेवा में तल्लीन रहता है । न उसे भूख, न नींद, न खाना और न सोना ही याद रहता है । वह ताजा आटा पीसता है (लंगर के लिए) और पानी ढोने की सेवा करता है । वह पंखा डुलाता है और (गुरु के) चरण मल-मलकर धोता है ।

पखे दी तागीद पग मलि धोवणा ।
सेवक होइ संजीदु न हसणु रोवणा ।
दर दरवेस रसीदु पिरम रसु भोवणा ।
चंद मुमारखि ईद पुगि खलोवणा ॥ १८ ॥

पउड़ी १९

(मुरीद की करे ?)

पैरी पै पा खाकु मुरीदै थीवणा ।
गुर मूरति मुसताकु मरि मरि जीवणा ।
परहरि सभे साक सुरंग रंगीवणा ।
होर न झखणु झाक सरणि मनु सीवणा ।
पिरम पिआला पाक अमिअ रसु पीवणा ।
मसकीनी अउताक असथिरु थीवणा ।
दस अउराति तलाक सहजि अलीवणा ।

सच्चा सेवक गंभीर बना रहता है और हँसने-रोने से सरोकार नहीं रखता अर्थात् गुरु की आज्ञा को प्रसन्नतापूर्वक शिरोधार्य करता है । इस प्रकार जो गुरु-द्वार का दरवेश (फकीर) बन जाए, वही प्रेम के रस में भीगेगा । उसे ही ईद के चाँद की तरह लोग देखेंगे और वही अंत में पूरा उतरेगा ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(सेवक क्या करे ?)

सेवक को चाहिए कि वह गुरु-चरणों में रहे और चरण-धूलि बनकर मुरीद बना रहे । गुरु के (सत्य-) स्वरूप शब्द का आशिक बना रहे और लोभ-मोह-विकारादि की ओर से मरकर संसार में जीवित रहे । सभी सांसारिक सम्बन्धों का त्याग कर प्रभु-रंग में रँगा रहे । किसी अन्य की शरण न देखे और गुरु-शरण में ही मन को लीन रखे । प्रिय के प्रेम का प्याला ही पवित्र है, वह इसी के अमृत का पान करे । ग़रीबी (विनम्रता) को घर बनाये और स्थिर हो जाए । दसों इन्द्रियों को तलाक दे दे अर्थात् उनके जाल में न फँसे और इस प्रकार सहज अवस्था की प्राप्ति करे ।

सावधान गुर वाक न मन भरमीवणा ।
सबद सुरति हुसनाक पारि परीवणा ॥ १९ ॥

पउड़ी २०

(सफल सिक्ख कौण है ?)

सतिगुर सरणी जाइ सीसु निवाइआ ।
गुर चरणी चितु लाइ मथा लाइआ ।
गुरमति रिदै वसाइ आपु गवाइआ ।
गुरमुखि सहजि सुभाइ भाणा भाइआ ।
सबदि सुरति लिव लाइ हुकमु कमाइआ ।
साधसंगति भै भाइ निज घरु पाइआ ।
चरण कवल पतीआइ भवरु लुभाइआ ।
सुख संपट परचाइ आपिओ पीआइआ ।
धंनु जणेदी माइ सहिला आइआ ॥ २०॥३॥

गुरु-वाक्यों (शब्द) में सावधान बना रहे और मन को भ्रम में न फँसने दे । सुरति की शब्द में तल्लीनता उसे सुन्दर बनाती है और इस प्रकार भव-सागर से पार हुआ जाता है ।। १९ ।।

पउड़ी २०

(स्वीकार्य सिक्ख कौन है ?)

जो सच्चे गुरु की शरण में जाकर सिर झुकाता है । गुरु के चरणों में जो मन और मस्तक लगाता है । जिसने गुरु के उपदेश को मन में बसाकर अहंभाव त्याग दिया है । गुरु की ओर उन्मुख बने रहकर जिसने सहज स्वभाव प्राप्त किया और प्रभु-इच्छा को प्रेम किया । जिसने शब्द में सुरति को लीन कर ' हुकुम' (आदेश) के अनुसार ही कार्य किया । साधु-संगति के भय-प्रेम के फलस्वरूप ही वह अपने आत्मस्वरूप को प्राप्त करता है । वह गुरु-चरण-कमलों में भँवरे की तरह लीन रहता है । वह इसी सुख में ढँका हुआ लीन रहकर अमृतपान करता रहता है । ऐसे व्यक्ति की जननी धन्य है । उसी का इस संसार में आना सफल है ।। २० ।। ३ ।।

* * *

वार ४

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।।

पउड़ी १

(वसतू त्रिदेश मंगल-मनुक्खा देह सफल किवें होवे ?)

ओअंकारि अकारु करि पउणु पाणी बैसंतरु धारे ।
धरति अकास विछोड़िअनु चंदु सूरु दे जोति सवारे ।
खाणी चारि बंधान करि लख चउरासीह जूनि दुआरे ।
इकस इकस जूनि विचि जीअ जंतु अणगणत अपारे ।
माणस जनमु दुलंभु है सफल जनमु गुर सरणि उधारे ।
साधसंगति गुर सबदि लिव भाइ भगति गुर गिआन वीचारे ।
परउपकारी गुरू पिआरे ।। १ ।।

पउड़ी २

(निंम्रता)

सभ दूं नीवी धरति है आपु गवाइ होई ओडीणी ।
धीरजु धरमु संतोखु द्रिड़ु पैरा हेठि रहै लिव लीणी ।

पउड़ी १

(दुर्लभ मनुष्य-जीवन)

ॐकार (ओअंकार) ने आकार-रूप में परिवर्तित हो पवन, पानी और अग्नि की रचना की । फिर चाँद, सूरज नामक दो ज्योतियों को धरती और आकाश में छोड़ा । फिर चार जीवन-स्रोतों (चार खानें) को बनाकर चौरासी लाख योनियों का सृजन किया । एक-एक योनि में अगणित जीव-जन्तु पैदा किये । इन सबमें मानव-जीवन दुर्लभ है । इस जन्म में ही गुरु की शरण में आकर अपना उद्धार कर लेना चाहिए । सत्संग करना चाहिए, गुरु के शब्द में सुरति लीन करनी चाहिए, प्रेम-भक्ति की कमाई करनी चाहिए और गुरु के बताये मार्ग का अनुसरण करना चाहिए । जीव परोपकारी बने और गुरु को प्यार करे ।। १ ।।

पउड़ी २

(विनम्रता)

धरती सबसे अधिक विनम्र है, जो अहम्-भाव गँवाकर आश्चर्य-रूप से स्थित है। धैर्य, धर्म, संतोष में दृढ़ बनी रहकर पाँव के नीचे ही लीन बनी रहती है ।

साध जनाँ दे चरण छुहि आढीणी होई लाखीणी ।
अंम्रित बूँद सुहावणी छहबर छलक रेणु होइ रीणी ।
मिलिआ माणु निमाणीऐ पिरम पिआला पीइ पतीणी ।
जो बीजै सोई लुणै सभ रस कस बहु रंग रंगीणी ।
गुरमुखि सुख फलु है मसकीणी ॥ २ ॥

पउड़ी ३

(चरनाँ दा द्रिशटांत)

माणस देह सु खेह है तिसु विचि जीभै लई नकीबी ।
अखी देखनि रूप रंग राग नाद कंन करनि रकीबी ।
नकि सुवासु निवासु है पंजे दूत बुरी तरतीबी ।
सभ दूँ नीवे चरण होइ आपु गवाइ नसीबु नसीबी ।
हउमै रोगु मिटाइ दा सतिगुर पूरा करै तबीबी ।

संत-चरणों को स्पर्श कर वह आधी कौड़ी की भी न होकर लाखों के मूल्य की बन जाती है । प्रेमामृत की वर्षा से ही धरती छलकती और संतुष्ट होती है । विनम्र को ही गौरव मिलता है और वह प्रभु-प्रेम का प्याला पीकर अघा जाती है। अनेकों रसों, कषायों एवं रंगों से भरी हुयी धरती पर जैसा कोई बोता है वैसा ही फल काटता है । गुरुमुख (जो धरती के समान हैं) विनम्रता में ही सुख रूपी फल पाते हैं ।। २ ।।

पउड़ी ३

(चरणों का दृष्टांत)

मनुष्य शरीर मिट्टी के समान है, पर उसमें जिह्वा का कार्य स्तुति करना है । आँखें रूप-रंग देखती हैं, कान राग-नाद का ध्यान रखते हैं । नाक सुगंध का आवास है और इस प्रकार पाँचों दूत बुरे व्यवहार में लीन रहते हैं अर्थात् ये इन्द्रियाँ इन्हीं रसों में लिप्त रहती हैं । इन सबसे निचले स्थान पर पाँव हैं जो अपने अहम् को गँवाकर भाग्यशाली बने हुए हैं । सच्चा गुरु अपने उपचार के द्वारा अहम् के रोग को मिटा देता है । गुरु के सच्चे शिष्य चरण छूकर वंदना करते हैं और गुरु का कहना मानते हैं ।

पैरी पै रहरासि करि गुर सिख सुणि गुर सिख मनीबी ।
मुरदा होइ मरीदु गरीबी ॥ ३ ॥

पउड़ी ४

(चीची अंगुली आदि का द्रिशटांत)

लहुड़ी होइ चीचुंगली पैधी छापि मिली वडिआई ।
लहुड़ी घनहर बूँद हुइ परगटु मोती सिप समाई ।
लहुड़ी बूटी केसरै मथै टिका सोभा पाई ।
लहुड़ी पारस पथरी असट धातु कंचनु करवाई ।
जिउ मणि लहुड़े सप सिरि देखै लुकि लुकि लोक लुकाई ।
जाणि रसाइणु पारिअहु रती मुलि न जाइ मुलाई ।
आपु गवाइ न आपु गणाई ॥ ४ ॥

पउड़ी ५

(अग्ग अते जल तों निंम्रता)

अगि तती जलु सीअरा कितु अवगुणि कितु गुण वीचारा ।
अगी धूआ धउलहरु जलु निरमल गुर गिआन सुचारा ।

जो विनम्र और सभी इच्छाओं के प्रति मृत बन जाए , वही सच्चा मुरीद अथवा सेवक है ।। ३ ।।

पउड़ी ४

(कनिष्ठा उँगली का दृष्टांत)

सबसे छोटी अँगुली (कनिष्ठा) को ही अँगूठी पहनाई जाती है और उसे ही आदर प्राप्त होता है । बादल की बूँद छोटी होती है पर वही सीप में गिरकर मोती बन जाती है । केसर पौधा छोटा होता है पर वही केसर माथे पर टीके के रूप में शोभायमान होता है । पारस पत्थर छोटा होता है पर अष्टधातुओं को सोना बना देता है । छोटे से साँप के ही सिर में मणि होती है, जिसे सब लोग देखते रह जाते हैं । पारे से जो थोड़ी सी रसायन तैयार होती है, उसकी कीमत नहीं आँकी जा सकती । जो अपने अहम् को नष्ट कर देते हैं, वे अपने आपको कभी जताते नहीं ।। ४ ।।

पउड़ी ५

(अग्नि और जल से नम्रता)

आग किस अवगुण के कारण गर्म है और जल किस गुण के कारण शीतल है । आग भवन को अपने धुँए से मैला करती है और जल उसे स्वच्छ करता है ।

कुल दीपकु बैसंतरहु जल कुल कवलु वडे परवारा ।
दीपक हेतु पतंग दा कवल भवर परगटु पाहारा ।
अगी लाट उचाट है सिरु उचा करि करै कुचारा ।
सिरु नीवा नीवाणि वासु पाणी अंदरि परउपकारा ।
निव चलै सो गुरू पिआरा ॥ ५ ॥

पउड़ी ६

(मजीठ-कसुंभे तों उपदेश)

रंगु मजीठ कसुंभ दा कचा पका कितु वीचारे ।
धरती उखणि कढीऐ मूल मजीठ जड़ी जड़तारे ।
उखल मुहले कुटीऐ पीहणि पीसै चकी भारे ।
सहै अवट्टणु अग्गि दा होइ पिआरी मिलै पिआरे ।

इस तथ्य को गुरु के ज्ञान के माध्यम से विचारा जाए । अग्नि का परिवार एवं वंश दीपक है और जल का कुल बड़े परिवार वाला कमल माना जाता है । यह सारे संसार में प्रकट है कि अग्नि को प्रेम करनेवाला पतंगा है (जो जल मरता है) और कमल को प्रेम करनेवाला भँवरा है (जो उसे अपनी बाँहों अर्थात् पंखुड़ियों में विश्राम करवाता है)। अग्नि की लपट ऊँची उठती है और गर्वपूर्वक अनाचार करती है । पानी निचले स्तर की ओर जाता है और पानी में परोपकार करने की वृत्ति है । जो विनम्र होकर चलता है, वही गुरु को प्यारा होता है ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(मजीठ-कुसंभ से उपदेश)

क्यों मजीठ का रंग पक्का और कुसुम्भ का रंग कच्चा होता है । मजीठ की धरती के अन्दर फैली जड़ को पहले धरती में से उखाड़ा जाता है, फिर उसे ओखली में डालकर मूसलों से कूटा जाता है तथा फिर भारी चक्की में डालकर पीसा जाता है । फिर (पानी में डालकर) आग पर पकाये जाने का तथा उबाले जाने का कष्ट उसे सहना पड़ता है, तब वह प्रिय के कपड़े पर (रंग के रूप में) शोभायमान होता है । कुसुम्भ का फूल तो पौधे के ऊपरी भाग में से सिर निकालकर गहरा रंग देता है । खटास डालकर उसे रँगा जाता है और कपटपूर्वक वह चार दिन तक ही चलता है ।

पोहलीअहु सिरु कढिकै फुलु कसुंभ चलुंभ खिलारे ।
खट तुरसी दे रंगीऐ कपट सनेहु रहै दिह चारे ।
नीवा जिणै उचेरा हारे ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(कीड़ी-मक्कड़ी आदि)

कीड़ी निकड़ी चलित करि भ्रिंगी नो मिलि भ्रिंगी होवै ।
निकड़ी दिसै मकड़ी सूतु मुहहु कढि फिरि संगोवै ।
निकड़ी मखि वखाणीऐ माखिओ मिठा भागनु होवै ।
निकड़ा कीड़ा आखीऐ पट पटोले करि ढंग ढोवै ।
गुटका मुह बिचि पाइ कै देस दिसंतरि जाइ खड़ोवै ।
मोती माणक हीरिआ पातिसाहु लै हारु परोवै ।
पाइ समाइणु दही बिलोवै ।। ७ ।।

नीच माना जानेवाला अन्त में जीत जाता है और ऊँचा समझनेवाला अन्त में हार जाता है ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(कीड़ी-मकड़ी आदि)

छोटी कीड़ी भृंगी नामक कीड़े के साथ मिलकर भृंगी ही बन जाती है । दिखने में मकड़ी छोटी लगती है, पर (सैकड़ों गज) सूत मुँह से निकालकर फिर निगल लेती है । शहद की मक्खी छोटी होती है, पर उसका मीठा शहद साहूकारों के यहाँ ही मिलता है । रेशम का कीड़ा छोटा है, पर उसके रेशम के बने वस्त्र लोग शादी-ब्याह के मौक़ों पर पहनते-देते हैं । योगीगण मुँह में छोटा सा गुटका डालकर जहाँ चाहें प्रकट-लुप्त हो जाते हैं । मोती-माणिक एवं हीरों के हार तो शाह-बादशाह पहनते हैं । और फिर थोड़ा सा दही मिलाकर ही लोग कितने भी अधिक दूध को दही बनाकर उसे बिलोते हैं (और मक्खन प्राप्त करते हैं) ।। ७ ।।

पउड़ी ८

(घाह)

लताँ हेठि लताड़ीऐ घाहु न कढै साहु विचारा ।
गोरसु दे खडु खाइ कै गाइ गरीबी परउपकारा ।
दुधहु दही जमाईऐ दईअहु मखणु छाहि पिआरा ।
घिअ ते होवनि होम जग ढंग सुआरथ चज अचारा ।
धरम धउलु परगुट होइ धीरजि वहै सहै सिरि भारा ।
इकु इकु जाउ जणेदिआँ चहु चका विचि वग हजारा ।
त्रिण अंदरि वडा पासारा ।। ८ ।।

पउड़ी ९

(तिल)

लहुड़ा तिलु होई जंमिआ नीचहु नीचु न आपु गणाइआ ।
फुला संगति वसिआ होइ निरगंधु सुगंधु सुहाइआ ।

पउड़ी ८

(घास)

घास को पाँव-तले रौंदा जाता है, पर वह फिर भी साँस तक रोके रखती है अर्थात् कुछ नहीं कहती । गाय घास खाकर भी गरीबों पर परोपकार करने के लिए उन्हें दूध देती है । दूध से दही जमाया जाता है और फिर दही से मक्खन, लस्सी आदि सुन्दर पदार्थ बनाये जाते हैं । उसी घी से होम, यज्ञादि अच्छे सामाजिक और व्यक्तिगत पर्वों आदि के लिऐ किये जाते हैं । धर्म रूपी बैल इस संसार में प्रकट होकर धैर्यपूर्वक सारे विश्व के कार्य-कलाप के भार को सहन करता है । एक-एक बच्चे के पैदा होने से चारों दिशाओं में हजारों की संख्या में झुंड प्रकट हो जाते हैं । एक घास के तिनके का भी अनन्त विस्तार है अर्थात् विनम्रता ही सारे संसार का आधार बन जाती है ।। ८ ।।

पउड़ी ९

(तिल)

छोटा सा तिल का दाना पैदा हुआ और उस नीच ने अपनी कहीं भी गिनती नहीं करवायी। जब फूलों की संगत में यह दाना आया तो निर्गंध होने पर भी यह सुगंध से भरपूर हो गया।

कोलू पाइ पीड़ाइआ होइ फुलेलु खेलु वरताइआ ।
पतितु पवित्र चलित्तु करि पतिसाह सिरि धरि सुखु पाइआ ।
दीवै पाइ जलाइआ कुल दीपकु जगि बिरदु सदाइआ ।
कजलु होआ दीविअहु अखी अंदरि जाइ समाइआ ।
बाला होइ न वडा कहाइआ ।। ९ ।।

पउड़ी १०
(वड़ेवाँ)

होइ वड़ेवाँ जग विचि बीजे तनु खेह नालि रलाइआ ।
बूटी होइ कपाह दी टींडे हसि हसि आपु खिड़ाइआ ।
दुहु मिलि वेलणु वेलिआ लूँ लूँ करि करि तुंबु तुंबाइआ ।
पिंञणि पिंञ उडाइआ करि करि गोड़ी सूत कताइआ ।
तणि वुणि खुंबि चड़ाइकै दे दे दुखु धुआइ रंगाइआ ।

कोल्हू में जब इसे पेरा गया तो यह फुलेल के रूप में शोभायमान हुआ । पापियों को पवित्र करनेवाले परमात्मा ने ऐसा कौतुक किया कि उस फुलेल को बादशाह ने शिर पर मलकर सुख प्राप्त किया । जब उसे दीपक में डाल कर जलाया गया तो उसी का नाम कुलदीपक जाना गया । दीपक से वह काजल बना और आँखों में जा समाया । परन्तु उसने बड़ा होकर भी अपने आपको बड़ा नहीं कहलाया ।। ९ ।।

पउड़ी १०
(बिनौला)

बिनौले ने इसी संसार में बीज-रूप में अपने आपको मिट्टी में मिलाया । उसी से कपास का पौधा हुआ, जिसमें फूल लगकर हँस-हँसकर खिलखिलाने लगे । दो बेलनों के बीच में उसे बेला गया और फिर उसे खंड-खंड किया गया । रुई धुननेवाले धुनिया ने उस रुई को धुना और बाद में उसी की पूनी बनाकर उसे काता गया तथा उसका सूत बनाया गया । तब ताना-बाना लगाकर उसे बुना गया और आग पर चढ़ाकर उसे रँगा गया। फिर कैंची से काटा गया और सुई-धागे से जोड़कर उसे सी डाला गया ।

कैंची कटणि कटिआ सूई धागे जोड़ि सीवाइआ ।
लज्जणु कज्जणु होइ कजाइआ ॥ १० ॥

पउड़ी ११

(अनारदाना)

दाणा होइ अनार दा होइ धूड़ि धूड़ी विचि धस्सै ।
होइ बिरखु हरीआवला लाल गुलाला फल विगस्सै ।
इकतु बिरख सहस फल, फल फल इक दू इक सरस्सै ।
इक दू दाणे लख होइ फल फल दे मन अंदरि वस्सै ।
तिसु फल तोटि न आवई गुरमुखि सुखु फलु अंम्रितु रस्सै ।
जिउजिउ लख्यनि तोड़ि फलि तिउतिउ फिरि फिर फलीऐ हस्सै ।
निव चलणु गुर मारगु दस्सै ॥ ११ ॥

पउड़ी १२

(शुद्ध मोहर)

रेणि रसाइण सिझीऐ रेतु हेतु करि कंचनु वसै ।
धोइ धोइ कण कठीऐ रती मासा तोला हसै ।

अब वह दूसरों की भी लज्जा को ढाँपने का साधन वस्त्र बना (और सबको सुख देने लगा) ।। १० ।।

पउड़ी ११

(अनारदाना)

अनार का दाना धूल बनकर धूल में धँस जाता है । वही हरा वृक्ष बनकर गाढ़े लाल रंग के फूलों से शोभायमान होता है । एक वृक्ष में ही हजारों फल लगते हैं और ये फल एक से बढ़कर एक रसीले होते हैं । एक दाने से लाखों दाने बनकर फलों के अन्तर में बसते हैं । अब उस वृक्ष के फलों की कभी कमी उसी तरह नहीं आती जिस प्रकार गुरुमुख व्यक्ति को अमृत के सुख की कभी कमी अनुभव नहीं होती। जैसे-जैसे फलों को तोड़ा जाता है वे अन्य वृक्षों के रूप में उतना ही खिलखिलाकर हँसते हैं । इस प्रकार (श्रेष्ठ) गुरुजन विनम्रतापूर्वक चलने का मार्ग दिखाते हैं ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(शुद्ध मुहर)

रेत की धूल को, जिसमें सोना मिला रहता है, रसायन से संयुक्त किया जाता है । फिर धो-धोकर उसमें से सोने के कण निकाले जाते हैं

पाइ कुठाली गालीऐ रैणी करि सुनिआरि विगसै ।
घड़ि घड़ि पत्र पखालीआनि लूणी लाइ जलाइ रहसै ।
बारह वंनी होइ कै लगै लवै कसउटी कसै ।
टकसालै सिका पवै घण अहरणि विचि अचलु सरसै ।
सालु सुनईआ पोतै पसै ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(खसखास दाणा)

खसखस दाणा होइ कै खाक अंदरि होइ खाक समावै ।
दोसतु पोसतु बुटु होइ रंग बिरंगी फुल्ल खिड़ावै ।
होडा होडी डोडीआ इक दूँ इक चढ़ाउ चढ़ावै ।
सूली उपरि खेलणा पिछों दे सिरि छत्र धरावै ।
चुखु चुखु होइ मलाइ कै लोहू पाणी रंगि रँगावै ।

जो वजन में रत्ती से माशा और फिर तोले के वज़न के हो जाते हैं फिर उसे कुठाली में डालकर गलाया जाता है, जिसे डली बनाकर सुनार प्रसन्न होता है । फिर वह उसके पत्र बना-बनाकर उन्हें मसाले लगाकर धोता है और खुश होता है । फिर वह बिलकुल शुद्धतम अवस्था में आकर नर्म हो जाता है और कसौटी पर कसने लायक बन जाता है । अब वह टकसाल में सिक्के के रूप में ढाला जाता है और नेहाई पर हथौड़े की चोट के नीचे भी वह खुश बना रहता है । अब वह शुद्ध सुनहरी मुहर बनकर ख़ज़ाने में जमा हो जाता है अर्थात् सोना जो रेत के कण में मिला था यानी अत्यन्त विनम्र था वह अन्त में ख़ज़ाने की मुहर बन गया ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(खस का दाना)

खस का दाना धूल बनकर धूल में समा जाता है । अब वह पोस्ते का प्यारा पौधा बन जाता है। होड़ में उसकी फूलों की डोडियाँ एक से बढ़कर एक दिखाई देती हैं। पहले वह पोस्ता शूल पर खेलता है पर बाद में छत्राकार होकर छत्र धारण करता है । मसलने पर यह अब टुकड़े-टुकड़े हो जाता है और अपनी नमी (पानी) को रक्त के रंग का कर देता है।

पिरम पिआला मजलसी जोग भोग संजोग बणावै ।
अमली होइ सु मजलस आवै ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(कमाद)

रस भरिआ रसु रखदा बोलण अणुबोलण अभिरिठा ।
सुणिआ अणसुणिआ करै करे वीचारि डिठा अणडिठा ।
अखी धूड़ि अटाईआ अखी विचि अंगूरु बहिठा ।
इक दू बाहले बूट होइ सिर तलवाइआ इठहु इठा ।
दुहु खुंढा विचि पीड़ीऐ टोटे लाहे इतु गुणि मिठा ।
वीह इकीह वरतदा अवगुणिआरे पाप पणिठा ।
मंनै गंनै वांग सुधिठा ।। १४ ।।

फिर वह महफिलों में प्रेम का प्याला बनकर योग और भोग में संयोग का कारण बनता है । उसके प्यारे उसका पान करने के लिए महफिलों में आ बैठते हैं ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(गन्ना)

(गन्ना) रस का भरा हुआ स्वादिष्ट होता है और बोलने न बोलने अर्थात् दोनों दशाओं में मीठा होता है । सुनी हुई बात को अनसुनी करता है और देखे हुए को अनदेखा करता है अर्थात् गन्ने के खेत में बात भी सुनाई नहीं पड़ती और व्यक्ति छिपा हुआ भी दिखाई नहीं पड़ता । जब बीज-रूप में गन्ने की आँखें मिट्टी में दबाई जाती हैं तो उन्हीं आँखों से अंकुर फूटते हैं । फिर एक पौधे से ऊपर-नीचे से अनेकों पौधे पैदा होते हैं और प्रिय लगते हैं । दो बेलनों में डालकर उसे पेरा जाता है और रस के कारण वह मीठा लगता है । सांसारिक व्यक्ति इसे शुभ अवसरों पर उपयोग में लाते हैं और पापाचारी भी (शराब वगैरः बनाकर) इसका उपयोग करते हैं और स्वयं नष्ट हो जाते हैं । जो लोग गन्ने की तरह का स्वभाव बनाते हैं अर्थात् विपत्ति में भी अपनी मिठास नहीं छोड़ते वे वास्तव में दृढ़ व्यक्ति हैं (और मुक्त हो जाते हैं) ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(स्वाँती बूँद ते सिप्प)

घणहर बूँद सुहावणी नीवी होइ अगासहु आवै ।
आपु गवाइ समुंदु वेखि सिपै दे मुहि विचि समावै ।
लैदो ही मुहि बूँद सिपु चुंभी मारि पतालि लुकावै ।
फड़ि कढै मरुजीवड़ा पर कारज नो आपु फड़ावै ।
परवसि परउपकार नो पर हथि पथर दंद भनावै ।
भुलि अभुलि अमुलु दे मोती दान न पछोतावै ।
सफल जनमु कोई वरुसावै ॥ १५ ॥

पउड़ी १६

(हीरे कणी तों सिक्ख गुरू दा मेल)

हीरे हीरा बेधीऐ बरमे कणी अणी होइ हीरै ।
धागा होइ परोईऐ हीरै माल रसाल गहीरै ।
साधसंगति गुरु सबद लिव हउमै मारि मरै मनु धीरै ।

पउड़ी १५

(स्वाति-बूँद एवं सीपी)

बादल की सुहावनी बूँद झुककर आकाश में से निकलती है और अपने अहम् को समाप्त कर समुद्र में सीपी के मुख में जा समाती है । सीप बूँद को मुँह में लेते ही गोता लगाकर पाताल में जा छिपती है । उसे गोताखोर पकड़ निकालता है और वह भी परकार्य के लिए अपने आपको पकड़वा देता है । परोपकार के वशीभूत हो वह अपने आपको पत्थर पर तुड़वाता है । जाने-अनजाने में ही वह मोती का दान देकर भी पछताता नहीं । इस प्रकार का सफल जन्म किसी-किसी को ही मिलता है ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(हीरक-कण से सिक्ख-गुरु का मिलाप)

बरमे की हीरक कोर से हीरे के टुकड़े को धीरे-धीरे काटा जाता है अर्थात् गुरु-शब्द रूपी हीरे के कण से मन रूपी हीरे का भेदन करता है ।

मन जिणि मनु दे लए मन गुणि विचि गुण गुरमुखि सरीरै ।
पैरी पै पा खाकु होइ कामधेनु संत रेणु न नीरै ।
सिला अलूणी चटणी लख अंम्रित रस तरसन सीरै ।
विरला सिख सुणै गुर पीरै ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(जीवन मुकति दी करनी)

गुर सिखी गुर सिख सुणि अंदरि सिआणा बाहरि भोला ।
सबदि सुरति सावधान होइ विणु गुरसबदि न सुणई बोला ।
सतिगुर दरसनु देखणा साधसंगति विणु अंन्हा खोला ।
वाहगुरू गुरु सबदु लै पिरम पिआला चुपि चबोला ।
पैरी पै पा खाक होइ चरणि धोइ चरणोदक झोला ।

(प्रेम-रूपी) धागे से हीरे की सुन्दर माला को पिरोया जाता है । साधु-संगति में अर्थात् सत्संगति में गुरु-शब्द में सुरति को लगाकर, अहम् को मारकर मन को शान्त किया जाता है । मन को जीतकर (गुरु को) अर्पण कर दें और मन में गुरुमुखों के गुणों को धारण करे । वह चरणों में गिर पड़े क्योंकि कामधेनु भी संतों की चरण-धूलि के बराबर नहीं बैठती । यह कार्य अर्थात् सत्संगति में सेवा आदि तो स्वादहीन पत्थर चाटने के समान कठिन कार्य है । लाखों अमृत-समान रस भी उसके लिये लालायित रहते हैं । कोई बिरला सिक्ख ही गुरु की शिक्षा को सुनता (और मानता) है ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(जीवन-मुक्त का कर्म)

गुरु का सिक्ख गुरु की शिक्षा सुनकर अन्दर से समझदार और बाहर से भोला बना रहता है । वह अपनी सुरति को शब्द में सावधानीपर्वूक जोड़े रहता है और गुरु-शब्द के बिना अन्य किसी बोल को सुनता नहीं है । वह सत्गुरु के दर्शन करता है और साधु-संगति के बिना अपने आपको अंधा-बहरा अनुभव करता है । वह वाहिगुरु शब्द गुरु से लेता है और अपने प्रेम-प्याले में चुपचाप मस्त रहता है । वह चरण-वन्दना करके स्वयं धूल के समान बन जाता है और

चरण कवल चितु भवरु करि भवजल अंदरि रहै निरोला ।
जीवणि मुकति सचावा चोला ॥ १७ ॥

पउड़ी १८

(बाल दा द्रिशटांत)

सिरि विचि निकै वाल होइ साधू चरण चवल करि ढालै ।
गुर सर तीरथ नाइकै अंझू भरि भरि पैरि पखालै ।
काली हूँ धउले करे चलणा जाणि नीसाणु सम्हालै ।
पैरी पै पा खाक होइ पूरा सतिगुरु नदरि निहालै ।
काग कुमंतहुँ परम हंसु उजल मोती खाइ खवालै ।
वालहु निकी आखीऐ गुर सिखी सुणि गुरसिख पालै ।
गुरसिखु लंघै पिरम पिआलै ॥ १८ ॥

चरणामृत का पान करता है (गुरु के) चरण-कमलों में भँवरे के समान लिप्त रहता है और इस प्रकार इस भवसागर में रहते हुए भी निर्मल बना रहता है । उसी का जीवन वास्तव में जीवन-मुक्त का जीवन है ।। १७ ।।

पउड़ी १८

(केश का दृष्टांत)

(गुरुमुख व्यक्ति) सिर के छोटे-छोटे बालों का भी चँबर बनाकर साधु चरणों पर डुलाये अर्थात् अत्यन्त विनम्र हो । गुरु रूपी तीर्थ पर स्नान कर प्रेम रूपी आँसुओं से गुरु-चरणों को धो दे । बाल काले से सफ़ेद कर दे अर्थात् जीवन बिता दे और तब चलने का अन्तिम समय जानकर परमात्मा के (प्रेम रूपी) चिह्न को मन में सम्हाले । जब चरणों में गिरकर व्यक्ति स्वयं धूल बन जाता है अर्थात् अहम् का पूर्णतया त्याग कर देता है तो सच्चा गुरु भी कृतार्थ कर देता है । कौवे के समान काली बुद्धि को परमहंस के समान उज्ज्वल करे और मोती जैसे अमूल्य कार्यों को करे तथा कराये । गुरु सिक्खी अर्थात् गुरु की शिक्षा बाल से भी महीन कही जाती है । गुरु का सिक्ख सदैव उसका पालन करे । गुरु के सिक्ख ही अपने प्रेम के प्याले के कारण भवसागर को लाँघ जाते हैं ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(गुलर दा द्रिशटांत)

गुलर अंदरि भुणहणा गुलर नों ब्रहमंडु वखाणै ।
गुलर लगणि लख फल इक दू लख अलख न जाणै ।
लख लख बिरख बगीचिअहु लख बगीचे बाग बबाणै ।
लख बाग ब्रहमंड विचि लख ब्रहमंड लूअ विचि आणै ।
मिहरि करे जे मिहरिवानु गुरमुखि साधसंगति रंगु माणै ।
पैरी पै पा खाकु होइ साहिबु दे चलै ओहु भाणै ।
हउमै जाइ त जाइ सिञाणै ।। १९ ।।

पउड़ी २०

(दूज दे चंद तों उपदेश)

दुइ दिहि चंदु अलोपु होइ तीऐ दिह चढ़दा होइ निका ।
उठि उठि जगतु जुहारदा गगन महेसुर मसतकि टिका । सोलह

पउड़ी १९

(गूलर का दृष्टांत)

गूलर के अन्दर का कीड़ा गूलर को ही ब्रह्माण्ड मानता है, परन्तु वृक्ष में लाखों फल लगते हैं और उनसे और भी अनेक फल हो जाते हैं । लाखों वृक्षों के बगीचे हैं और इसी प्रकार के लाखों बाग़-उद्यान हैं । लाखों बाग़ ब्रह्माण्ड हैं और इस प्रकार के लाखों ब्रह्माण्ड परमात्मा के एक रोम (बाल) में हैं । वह मेहरबान परमात्मा यदि अपनी कृपा करे, तभी गुरुमुख साधुसंगति का आनन्द ले सकता है । तभी वह चरणों में गिरकर स्वयं धूल बनकर अर्थात् अत्यन्त विनम्र होकर उस "साहिब" के हुक्म के अनुसार अपने आपको ढाल सकता है । जब अहम् नष्ट हो जाता है, तभी उसे इस तथ्य की पहचान हो पाती है ।। १९ ।।

पउड़ी २०

(दूज के चाँद के उपदेश)

दो दिनों तक चन्द्रमा लोप रहकर तीसरे दिन वह छोटे रूप में दिखाई पड़ता है । आकाश रूपी महेश के मस्तक पर टिका हुआ माना जानेवाला चाँद सारा संसार बार-बार देखता है और उसके समक्ष सिर झुकाता है ।

कला संघारीऐ सफलु जनमु सोहै कलि इका ।
अंम्रित किरणि सुहावणी निझरु झरै सिंजै सहसिका ।
सीतलु सांति संतोखु दे सहज संजोगी रतन अमिका ।
करै अनेरहु चानणा डोर चकोर धिआनु धरि छिका ।
आपु गवाइ अमोल मणिका ॥ २० ॥

पउड़ी २१

होइ निमाणा भगति करि गुरमुखि ध्रू हरि दरसनु पाइआ ।
भगति वछलु होइ भेटिआ माणु निमाणे आपि दिवाइआ ।
मात लोक विचि मुकति करि निहचलु वासु अगासि चड़ाइआ ।
चंदु सूरज तेतिस करोड़ि परदखणा चउफेरि फिराइआ ।
वेद पुराण वखाणदे परगटु करि परतापु जणाइआ ।
अबिगति गति अति अगम है अकथ कथा वीचारु न आइआ ।
गुरमुखि सुख फलु अलखु लखाइआ ॥ २१ ॥ ४ ॥

सोलह कला सम्पूर्ण होने पर अर्थात् पूर्णमासी के दिन उसका संहार होता है अर्थात् वह फिर घटने लगता है और फिर प्रतिपदा के दिन वाले रूप में आ जाता है और लोगों से प्रणाम करवाता है । उसकी किरणों से अमृत झरता है और सब वृक्षों, खेतों को सींचता है । वह शान्ति, संतोष और ठंडक प्रदान करता है जो कि अमूल्य रत्न है । अँधेरे में प्रकाश करता है और चकोर को ध्यान की डोरी प्रदान करता है । वह अहम्-भाव गँवाने पर ही अमूल्य माणिक के समान बन जाता है ।। २० ।।

पउड़ी २१

गुरुमुख ध्रुव ने विनम्र होकर ही प्रभु का दर्शन पाया । परमात्मा ने भी भक्तवत्सल बनकर उसे गले से लगाया और मान-विहीन ध्रुव को गौरवान्वित किया। इस मृत्युलोक में ही उसे मुक्ति प्रदान की और फिर आकाश में एक स्थिर आवास प्रदान किया । चाँद, सूरज और तेंतीस करोड़ देवगण उसकी परिक्रमा करते उसके चारों ओर घूमते हैं । वेद-पुराणादि में उसके प्रताप का स्पष्ट वर्णन किया गया है। उस अव्यक्त प्रभु की कथा तो परम गूढ़, अकथनीय एवं विचारातीत है । गुरुमुख ही उस परम सुखी करनेवाले अलक्ष्य प्रभु का दर्शन करते हैं ।। २१ ।। ४ ।।

* * *

वार ५

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।।

पउड़ी १

(गुरमुखाँ दे लच्छण)

गुरमुखि होवै साधसंगु होरतु संगि कुसंगि न रचै ।
गुरमुखि पंथु सुहेलणा बारह पंथ न खेचल खचै ।
गुरमुखि वरन अवरन होइ रंग सुरंगु तंबोल परचै ।
गुरमुखि दरसनु देखणा छिअ दरसन परसण न सरचै ।
गुरमुखि निहचल मति है दूजै भाइ लुभाइ न पचै ।
गुरमुखि सबदु कमावणा पैरी पै रहरासि न हचै ।
गुरमुखि भाइ भगति चहमचै ।। १ ।।

पउड़ी २

(गुरमुखाँ दे लच्छण)

गुरमुखि इकु अराधणा इकु मन होइ न होइ दुचिता ।
गुरमुखि आपु गवाइआ जीवनु मुकति न तामस पिता ।

पउड़ी १

(गुरुमुखों के लक्षण)

साधुसंगति में गुरुमुख पद को प्राप्त व्यक्ति किसी भी कुसंगति में मन नहीं लगाता । गुरुमुखों का मार्ग सरल है और वे योगियों के बारह पंथों में लिप्त नहीं होते । गुरुमुख वर्ण-अवर्ण के बंधनों से परे होते हुए सबमें पान की लाली की तरह समान रूप से रमण करते हैं । गुरुमुखों का जो दर्शन भी कर लेते हैं वे छः शास्त्रों के वाद-विवाद में नहीं फँसते । गुरुमुख शान्त-स्थिर मति वाले होते हैं और द्वैत-भावना की अग्नि में दग्ध नहीं होते । गुरुमुख शब्द की साधना करते हैं और चरण-स्पर्श अर्थात् विनम्र होने के स्वभाव से दूर नहीं हटते । गुरुमुखगण प्रेमभक्ति में ही प्रसन्न बने रहते हैं ।। १ ।।

पउड़ी २

(गुरुमुखों के लक्षण)

गुरुमुख एक मन से एक प्रभु की आराधना करते हैं और दुबिधा में नहीं रहते।

गुर उपदेसु अवेसु करि सणु दूता विखड़ा गड़ु जिता ।
पैरी पै पा खाकु होइ पाहुनड़ा जगि होइ अथिता ।
गुरमुखि सेवा गुर सिखा गुरसिख मा पिउ भाई मिता ।
दुरमति दुबिधा दूरि करि गुरमति सबद सुरति मनु सिता ।
छडि कुफकड़ु कूड़ु कुधिता ॥ २ ॥

पउड़ी ३

(गुरसिक्ख सहिचारीआँ दा द्रिशटांत)

अपणे अपणे वरन विचि चारि वरन कुल धरम धरंदे ।
छिअ दरसन छिअ सासत्रा गुर गुरमति खटु करम करंदे ।
अपणे अपणे साहिबै चाकर जाइ जुहार जुड़ंदे ।
अपणे अपणे वणज विचि वापारी वापार मचंदे ।
अपणे अपणे खेत विचि बीउ सभै किरसाणि बीजंदे ।
कारीगरि कारीगरा कारिखाने विचि जाइ मिलंदे ।
साधसंगति गुरसिख पुजंदे ॥ ३ ॥

वे अहम्भाव को गँवाकर जीवनमुक्त हो जाते हैं तथा हृदय में तमस्‌गुण का निवास नहीं होने देते । गुरु-उपदेश से आवेष्ठित होकर वे पंचदूतों-समेत शरीर रूपी किले को जीत लेते हैं । वे चरणों में गिरकर चरणधूलि बनकर स्वयं को इस जगत में एक अतिथि के समान समझते हैं और इसलिए जगत के लिए आतिथ्य-सत्कार के पात्र होते हैं । गुरुमुख व्यक्ति गुरु के सिक्खों की सेवा कर उन्हें ही माता-पिता, भाई-मित्र आदि मानते हैं । वे दुर्मति और दुविधा को समाप्त कर गुरु-उपदेश और शब्द में अपनी सुरति लीन रखते हैं । वे खोटे काम और हुज्जतबाज़ी को त्याग देते हैं ।। २ ।।

पउड़ी ३

(गुरु-सिक्ख सहचारियों का दृष्टांत)

अपने-अपने वर्ण में चारों वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) अपने-अपने कुलाचार का पालन करते हैं। छः शास्त्रों के छः दर्शनों को धारण कर गुरु के उपदेश के अनुसार लोग षट्कर्मादि किया करते हैं। सभी सेवक अपने-अपने स्वामी को प्रणाम किया करते हैं। व्यापारी-गण भी अपने-अपने व्यापार में लगे रहते हैं। अपने-अपने खेत में सभी किसान बीज बोया करते हैं। जैसे एक कारीगर दूसरे को कारखाने में जा मिलता है वैसे ही गुरु के सिक्ख भी " साधुसंगति" में आ पहुँचते हैं ।। ३ ।।

पउड़ी ४

(सहिचारीआँ दा द्रिशटांत)

अमली रचनि अमलीआ सोफी सोफी मेलु करंदे ।
जूआरी जूआरीआ वेकरमी वेकरम रचंदे ।
चोरा चोरा पिरहड़ी ठग ठग मिलि देस ठगंदे ।
मसकरिआ मिलि मसकरे चुगला चुगल उमाहि मिलंदे ।
मनतारू मनतारूआँ तारू तारू तार तरंदे ।
दुखिआरे दुखिआरिआँ मिलि मिलि अपणे दुख रुवंदे ।
साधसंगति गुरसिखु वसंदे ॥ ४ ॥

पउड़ी ५

(होर स्रिशटी ते गुरमुखाँ दा फ़रक)

कोई पंडितु जोतिकी को पाधा को वैदु सदाए ।
कोई राजा राउ को को महता चउधरी अखाए ।

पउड़ी ४

(सहचारियों का दृष्टांत)

नशेबाज़ नशेबाज़ों में और न पीनेवाले न पीनेवालों में प्रसन्न रहते हैं । जुआरी जुआरियों में और दुराचारी दुराचारियों में मस्त रहते हैं । चोरों चोरों में मित्रता रहती है और ठग ठगों के साथ मिलकर देश भर को ठगते हैं । भाँड़ भाँड़ों से आ मिलते हैं । चुगुलखोर चुगुलखोर को उत्साहपूर्वक मिलता है । न तैरना जाननेवाले ऐसे ही व्यक्तियों के साथ मिलते हैं और तैराक तैराकों के साथ मिलकर पार होते और पार करते हैं । दुखी व्यक्ति दुखी व्यक्तियों से मिलकर अपने दुख रोता है । इसी प्रकार गुरु के सिक्ख "साधुसंगति" में प्रसन्न हो बसते हैं ।। ४ ।।

पउड़ी ५

(अन्य जीवों और गुरुमुखों में अंतर)

कोई पंडित, कोई ज्योतिषी, कोई पुरोहित और कोई वैद्य कहलाता है। कोई राजा, राव, मुखिया अथवा चौधरी कहलाता है । कोई बजाज (वस्त्र-विक्रेता), सर्राफ अथवा जौहरी पुकारा जाता है ।

कोई बजाजु सराफु को को जउहरी जड़ाउ जड़ाए ।
पासारी परचूनीआ कोई दलाली किरसि कमाए ।
जाति सनात सहंस लख किरति विरति करि नाउ गणाए ।
साधसंगति गुरसिखि मिलि आसा विचि निरासु वलाए ।
सबदु सुरति लिव अलखु लखाए ॥ ५ ॥

पउड़ी ६

(होर स्रिशटी ते गुरमुखाँ दा फरक)

जती सती चिरु जीवणे साधिक सिध नाथ गुर चेले ।
देवी देव रिखीसुरा भैरउ खेत्रपाल बहु मेले ।
गण गंधरब अपछरा किंनर जछ चलित बहु खेले ।
राखस दानों दैत लख अंदरि दूजा भाउ दुहेले ।
हउमै अंदरि सभ को गुरमुखि साधसंगति रस केले ।
इक मन इकु अराधणा गुरमति आपु गवाइ सुहेले ।
चलणु जाणि पए सिरि तेले ॥ ६ ॥

कोई पंसारी, परचून-विक्रेता अथवा कोई दलाली का धंधा करता है । नीच जाति के लोग हज़ारों, लाखों हैं, जिनका नाम उनके धंधों के आधार पर है । गुरु का सिक्ख "साधुसंगति" में रहकर सुख में भी तटस्थ बना रहता है । वह सुरति को शब्द में लीन कर उस अलक्ष्य प्रभु का दर्शन करता है ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(पूरी सृष्टि में गुरुमुख का अंतर)

कई यति, सती, चिरंजीव, साधक, सिद्ध, नाथ और गुरु-चेले हैं । अनेकों ही देवियाँ, देव, ऋषि, भैरव और क्षेत्रपाल आदि हैं । गण, गंधर्व, अप्सराएँ, किन्नर, यक्ष आदि अनेकों प्रपंच दिखानेवाले हैं । लाखों ही दानव, दैत्य द्वैतभाव में ग्रस्त हैं । सभी अहम् के वश में हैं, केवल गुरुमुख ही "साधुसंगति" के रस में मस्त हैं । वे एक मन से एक प्रभु की आराधना करते हैं और "गुरुमत" के माध्यम से अहम्-भाव का त्याग करते हैं । (ससुराल जाने से पूर्व जब आखिरी बार कन्या सिर में तेल लगाती है तो समझ लेती है कि अब उसे मायका छोड़ जाना है, उसी प्रकार) गुरुमुख सिर में तेल डाले रहते हैं अर्थात् सदैव संसार से अलग होने को तैयार रहते हैं ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(जगत दे रुझेवें ते गुर शबद)

जत सत संजम होम जग जपु तपु दान पुंन बहुतेरे ।
रिधि सिधि निधि पाखंड बहु तंत्र मंत्र नाटक अगलेरे ।
वीराराधण जोगणी मढ़ी मसाण विडाण घनेरे ।
पूरक कुंभक रेचका निवली करम भुइअंगम घेरे ।
सिधासण परचे घणे हठ निग्रह कउतक लख हेरे ।
पारस मणी रसाइणा करामात कालख आन्हेरे ।
पूजा वरत उपारणे वर सराप सिव सकति लवेरे ।
साधसंगति गुर सबद विणु थाउ न पाइनि भले भलेरे ।
कूड़ इक गंढी सउ फेरे ।। ७ ।।

पउड़ी ८

(सउण शगन ते गुरमुखता)

सउण सगुन वीचारणे नउ ग्रिह बारह रासि वीचारा ।
कामण टूणे अउसीआ कणसोई पासार पसारा ।

पउड़ी ७

(जगत-प्रपंच और गुरु-शब्द)

हठ, संयम, होम-यज्ञ, जाप, तप, दान, पुण्य आदि अनेकों हैं । ऋृद्धियाँ, सिद्धियाँ, निधियाँ, पाखंड, तंत्र-मंत्र आदि अनेकों नाटक हैं । तांत्रिकों द्वारा वीर-साधना, योगिनी वश में करना, श्मशान-साधना आदि अनेकों आश्चर्य में डालनेवाले कार्य हैं । इसी प्रकार योग के पूरक, कुंभक, रेचक, न्यौली और भुयंगम आदि अनेकों पेंचदार क्रियायँ हैं । अनेकों सिद्ध आसनों में मस्त हैं और लाखों हठ-निग्रह के कौतुकों में लिप्त हैं । इसी प्रकार पारसमणियाँ, रसायनें और काले जादू की अनेकों करामातें हैं । पूजा-व्रत, वरदान, शाप, शिव-शक्तियाँ आदि भी व्यक्ति के चारों ओर उसे घेरे रहती हैं, परन्तु साधुसंगति और गुरु-शब्द के बिना बड़े-बड़े लोगों को कहीं स्थान नहीं मिलता । झूठ तो एक ही होता है पर उसे चलाने के लिए सैकड़ों झूठ की गाँठें उसे देनी पड़ती हैं अर्थात् सैकड़ों झूठ उसमें और मिलाने पड़ते हैं ।। ७ ।।

पउड़ी ८

(शकुन और गुरुमुखता)

कई व्यक्ति ज्योतिष्-शास्त्र के अनुसार शकुन, नवग्रह, बारह राशि आदि का विचार करते हैं।

गदहु कुते बिलीआ इल मलाली गिदड़ छारा ।
नारि पुरखु पाणी अगनि छिक पद हिडकी वरतारा ।
थिति वार भद्रा भरम दिसासूल सहसा सैसारा ।
वलछल करि विसवास लख बहु चुखी किउ रवै भतारा ।
गुरमुखि सुख फलु पार उतारा ॥ ८ ॥

पउड़ी ९

(गुरमुख मारग दी पावनता)

नदीआ नाले वाहड़े गंगि संगि गंगोदक होई ।
असट धातु इक धातु होइ पारस परसै कंचनु सोई ।
चंदन वासु वणासपति अफल सफल कर चंदनु गोई ।
छिअ रुति बारह माह करि सुझै सुझ न दूजा कोई ।

स्त्रियाँ टोना, ' अवनिसीता' (धरती पर बिना गिनती गिने लकीरें खींचकर जोड़ा बनाकर अथवा न बनने पर शकुन-अपशकुन का विचार करने की क्रिया, जिसे पंजाबी में ' औंसी' कहते हैं) एवं इधर-उधर सूँघने की क्रियाएँ किया करती हैं। कई गदहों, कुत्ते, बिल्लियों, चील, मैना, गीदड़ आदि का शकुन-अपशकुन विचार किया करते हैं । (यात्रा जाते समय) नारी अथवा पुरुष, पानी अथवा अग्नि का मिलना, छींक, अपानवायु-निष्कासन, हिचकी आदि से भी शकुन-अपशकुन का लोग विचार किया करते हैं । इसी प्रकार तिथि, वार, हजामत एवं दिशाशूल आदि के भ्रम से भी संसार ग्रसित है । इस प्रकार के छल-कपट और लाखों (अंध-) विश्वास करनेवाली वेश्या रूपी स्त्री भला प्रियतम के साथ रमण कैसे कर सकती है ? गुरुमुख होना ही सुख-फल की प्राप्ति और भवसागर पार उतरने का साधन है ।। ८ ।।

पउड़ी ९

(गुरुमुख मार्ग की पवित्रता)

नदी-नाले गंगा के साथ मिलकर गंगाजल बन जाते हैं । पारस के स्पर्श से आठों धातुएँ सोना बन जाती हैं। वनस्पति चाहे फलदार हो अथवा फलरहित, चंदन की गंध सबमें समाकर उन्हें चंदन बना देती है । छः ऋतुओं और बारह महीनों में केवल एक ही सूर्य प्रमुख रहता

चारि वरनि छिअ दरसना बारस वाट भवै सभु लोई ।
गुरमुखि दरसनु साधसंगु गुरमुखि मारगि दुबिधा खोई ।
इक मनि इकु अराधनि ओई ।। ९ ।।

पउड़ी १०

(कुलाधरम ते गुरमुख मारग)

नानक दादक साहुरै विरतीसुर लगाइत होए ।
जंमणि भदणि मंगणै मरणै परणे करदे ढोए ।
रीती रूड़ी कुल धरम चजु अचार वीचार विखोए ।
करि करतूति कुसूत विचि पाइ दुलीचे गैण चंदोए ।
जोध जठेरे मंनीअनि सतीआँ सउत टोभड़ी टोए ।
साधसंगति गुर सबद विणु मरि मरि जंमनि दई विगोए ।
गुरमुखि हीरे हारि परोए ।। १० ।।

है । इस संसार में चार वर्ण, छः दर्शन और योगियों के बारह पंथ हैं, परन्तु गुरुमुखों के मार्ग पर चलने पर उक्त सब पंथों की दुविधाएँ समाप्त हो जाती हैं । वे ही अर्थात् गुरुमुखों के मार्ग पर चलनेवाले सब स्थिरमन होकर उस एक प्रभु की ही आराधना करते हैं ।। ९ ।।

पउड़ी १०

(कुल-धर्म में गुरुमुख-मार्ग)

ननिहाल, ससुराल और दादी के घर पर अनेकों पुरोहित और सेवक होते हैं । वे जन्म, मुंडन, सगाई, मृत्यु और विवाह आदि अवसरों पर संदेश पहुँचाते हैं । कुल-धर्म की रीति-रस्मों के कार्य और कर्म करते दिखाई देते हैं । यज्ञोपवीत आदि अवसरों पर अनेकों प्रपंच कर वे यजमान का व्यय करवाते हैं और उसे यह बताते हैं कि तुम्हारा यश आकाश की तरह महान और विस्तृत हो रहा है । यजमान भी भ्रम में भूलकर गुजर चुके ज्येष्ठ जनों की पूजा तथा सतियों, सौतों को मानते और अनेक तालाबों, गड़हों की पूजा, अर्चना तथा उनमें स्नान आदि करते हैं । ऐसे व्यक्ति "साधुसंगति" और गुरु-शब्द के बिना मर-मरकर जन्म लेते हैं अर्थात् आवागमन के चक्र में ही नष्ट होते रहते हैं । केवल गुरुमुख रूपी हीरे व्यक्ति (प्रभु को समर्पित होनेवाले) ही हार में पिरोए जाते हैं । अर्थात् गुरुमुख व्यक्ति एक प्रभु में लीन रहते हैं और बाह्याडंबरों में विश्वास नहीं रखते ।। १० ।।

पउड़ी ११

(शाहज़ादे राजकँवर)

लसकर अंदरि लाडुले पातिसाहा जाए साहजादे ।
पातिसाह अगै चड़नि पिछै सभ उमराउ पिआदे ।
बणि बणि आवणि ताइफे ओइ सहजादे साद मुरादे ।
खिजमतिगार वडीरीअनि दरगह होनि खुआर कुवादे ।
अग्गै ढोई से लहनि सेवा अंदरि कार कुसादे ।
पातिसाहाँ पातिसाहु सो गुरमुखि वरतै गुर परसादे ।
साह सुहेले आदि जुगादे ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(होर द्रिशटांत)

तारे लख अन्हेर विचि चढ़िऐ सुझि न सुझै कोई ।
सीहि बुके मिरगावली भंनी जाइ न आइ खड़ोई ।

पउड़ी ११

(शहज़ादे, राजकुमार)

सेनाओं में सम्राटों के लाडले राजकुमार भी हुआ करते हैं । बादशाह आगे होता है और पीछे-पीछे सभी उमराव और प्यादे चलते हैं । वेश्याएँ तो उन सबके सामने खूब बन-ठनकर आती हैं पर वे शहज़ादे सीधे-सादे ही बने रहते हैं । बादशाह के सेवक तो प्रशंसा के पात्र होते हैं परन्तु आगे से जवाब देनेवाले लोग बादशाह के दरबार में तिरस्कृत होते हैं । बादशाह के दरबार में आश्रय उन्हें ही मिल पाएगा जो सेवा में भली प्रकार लीन रहते हैं । गुरु के प्रसाद से ऐसे गुरुमुख व्यक्ति बादशाहों के भी बादशाह हो जाते हैं और आदि-अंत दोनों समय में ऐसे ही व्यक्ति सदैव सुखी रहते हैं ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(अन्य दृष्टांत)

अंधकार में लाखों तारागण होते हैं पर सूर्य के चढ़ते ही कोई भी दिखाई नहीं देता । सिंह की गर्जना के सामने मृगों की पंक्तियाँ भाग खड़ी होती हैं ।

बिसीअर गरड़ै डिठिआ खुडी वड़िदे लख पलोई ।
पंखेरू साहबाज देखि ढुकि न हंघनि मिलै न ढोई ।
चार वीचार संसार विचि साधसंगति मिलि दुरमति खोई ।
सतिगुर सचा पातिसाहु दुबिधा मारि मवासा गोई ।
गुरमुखि जाता जाणु जणोई ॥ १२ ॥

पउड़ी १३

(गाडी राह गुरमुख मारग)

सतिगुर सचा पातिसाहु गुरमुखि गाडी राहु चलाइआ ।
पंजि दूति करि भूत वसि दुरमति दूजा भाउ मिटाइआ ।
सबद सुरति लिवि चलणा जमु जागाती नेड़ि न आइआ ।
बेमुखि बारह वाट करि साधसंगति सचु खंडु वसाइआ ।
भाउ भगति भउ मंत्र दे नामु दानु इसनानु द्रिड़ाइआ ।

गरुड़ को देखकर लाखों सर्प रेंगकर बिल में जा घुसते हैं । पक्षी बाज़ को देखकर ऐसा दौड़ते हैं कि उन्हें छिपने के लिए जगह नहीं सुझाई पड़ती । आचरण और विचार से युक्त जगत में साधुसंगति में ही दुर्बुद्धि समाप्त हो जाती है । सच्चा गुरु ही सच्चा बादशाह है जो दुबिधा का नाश कर देता है और अड़ियल काम-क्रोधादि भागकर छिप जाते हैं । गुरुमुख जिस ज्ञान को स्वयं प्राप्त करते हैं, उसे दूसरों तक भी अवश्य पहुँचा देते हैं अर्थात् वे स्वार्थी नहीं होते ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(सरल स्पष्ट रास्ता गुरुमुख-मार्ग)

सच्चे गुरु ने गुरुमुखों के लिए सरल रास्ता बनाया है । भूतों के समान आचरण करनेवाले पाँचों दूतों (काम, क्रोध आदि) को वश में करके (गुरुमुखों ने) दुबिधा-भाव को मिटा दिया है । शब्द में सुरति लीन करके चलने से यम रूपी कर उगाहनेवाला पास तक नहीं फटकता । (प्रभु से) विमुख व्यक्ति योगियों के बारह पंथों में भटकते हैं पर साधुसंगति (सत्संगति) में आनेवाले को प्रभु सत्यलोक में बसा देता है । वह प्रभु उन्हें प्रेम, भक्ति, भय का मंत्र देकर नाम, दान और (अंतर्मन के) स्नान में दृढ़ करा देता है ।

जिउ जल अंदरि कमल है माइआ विचि उदासु रहाइआ ।
आपु गवाइ न आपु गणाइआ ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(सचा सोहिला)

राजा परजा होइ कै चाकर कूकर देसि दुहाई ।
जंमदिआ रुणिझुंझणा नानक दादक होइ वधाई ।
वीवाहा नो सिठणीआ दुही वली दुइ तूर वजाई ।
रोवणु पिटणु मुइआ नो वैणु अलाहणि धुम धुमाई ।
साधसंगति सचु सोहिला गुरमुखि साधसंगति लिव लाई ।
बेद कतेबहु बाहरा जंमणि मरणि अलिपतु रहाई ।
आसा विचि निरासु वलाई ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(गुरमुख मनमुख)

गुरमुखि पंथु सुहेलड़ा मनमुख बारह वाट फिरंदे ।
गुरमुखि पारि लंघाइदा मनमुख भवजल विचि डुबंदे ।

वे जल में कमल के समान माया में रहकर भी उससे उदासीन बने रहते हैं । वे अहम् को गँवा देते हैं और अपने आपको किसी गिनती में नहीं रखते ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(सत्य कर्म)

राजा की प्रजा बनकर व्यक्ति उसके सेवकों के रूप में देश-देशान्तर में उसका हुक्म बजा लाते हैं । व्यक्ति के पैदा होने पर ननिहाल और दादा के घर के लोग बधाई देते हैं । विवाह के समय गालियों का गान सुनने को मिलता है और समधियों के घरों में दोनों ओर बाजे बजाए जाते हैं । मरने पर रोना, पीटना और सुना-सुनाकर चीत्कार किया जाता है । लेकिन सच्चा कर्म तो साधुसंगति (सत्संगति) है। गुरुमुख उसी में लीन रहते हैं । वे मानते हैं कि प्रभु वेद-कतेबादि से भी परे है और जन्म-मरण के चक्कर में नहीं पड़ता अर्थात् इस सबसे दूर रहता है। वे (गुरुमुख जन) आशाओं से (भरे संसार में भी उनसे) उदासीन बने रहते हैं ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(गुरुमुख-मनमुख)

गुरुमुख सीधे रास्ते पर और मनमुख (मन के पीछे चलनेवाला) बारहों दिशाओं अर्थात् इधर - उधर भटकते फिरते हैं ।

गुरमुखि जीवन मुकति करि मनमुख फिरि फिरि जनमि मरंदे ।
गुरमुखि सुख फलु पाइदे मनमुखि दुख फलु दुख लहंदे ।
गुरमुखि दरगह सुरखरू मनमुखि जमपुरि डंडु सहंदे ।
गुरमुखि आपु गवाइआ मनमुखि हउमै अगनि जलंदे ।
बंदी अंदरि विरले बंदे ॥ १५ ॥

पउड़ी १६

(सुहागण दे रूप विच गुरसिख)

पेवकड़ै घरि लाडुली माऊ पीऊ खरी पिआरी ।
विचि भिरावाँ भैनड़ी नानक दादक सपरवारी ।
लखाँ खरच विआहीऐ गहणे दाजु साजु अति भारी ।
साहुरड़ै घरि मंनीऐ सणखती परवार सधारी ।
सुख माणै पिरु सेजड़ी छतीह भोजन सदा सीगारी ।

गुरुमुख पार उतर जाता है पर मनमुख संसार-सागर में ही डूब जाता है । गुरुमुख का जीवन मुक्ति का सरोवर है परन्तु मनमुख पुन: पुन: जन्मते और मरते हैं । गुरुमुख सुख रूपी फल और मनमुख दु:ख रूपी फल को प्राप्त करते हैं । गुरुमुख का मुख प्रभु-दरबार में उज्ज्वल होता है जबकि मनमुख यमलोक में दंड भोगते हैं । गुरुमुख अहम् को गँवा देता है जबकि मनमुख अहंकार की अग्नि में जलता रहता है। माया के बंधनों में विचरण करते हुए भी कोई बिरला ही प्रभु का बंदा बनकर रहता है ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(सुहागिन के रूप में गुरुमुख)

मायके में कन्या लाडली होती है और माँ-बाप को अत्यन्त प्यारी लगती है । वह भरे-पूरे परिवार में, भाई में, बहन के रूप में ननिहाल और दादा-दादी के पास रहती है । फिर लाखों रुपये खर्च कर गहने, दहेज आदि को देकर उसका विवाह किया जाता है । ससुराल में भी सुहागिन के रूप में वह सारे परिवार में स्वीकृत होती है । अपने प्रिय पति के साथ वह सुख भोगती है, छत्तीस प्रकार के व्यंजन खाती है और सदैव श्रृंगार किए रहती है । लोक-मर्यादा और गुणज्ञ ज्ञानियों के अनुसार नारी अर्द्धांगिनी है और मुक्ति का द्वार है ।

लोक वेद गुणु गिआन विचि अरध सरीरी मोख दुआरी ।
गुरमुखि सुख फल निहचउ नारी ॥ १६ ॥

पउड़ी १७

(बेशवा दे रूप बिच मनमुख)

जिउ बहु मिती वेसुआ सभि कुलखण पाप कमावै ।
लोकहु देसहु बाहरी तिहु पखाँ नो अउलंगु लावै ।
डुबी डोबै होरना महुरा मिठा होइ पचावै ।
घंडा हेड़ा मिरग जिउ दीपक होइ पतंग जलावै ।
दुही सराई जरदरू पथर बेड़ी पूर डुबावै ।
मनमुख मनु अठ खंड होइ दुसटा संगति भरमि भुलावै ।
वेसुआ पुतु निनाउ सदावै ॥ १७ ॥

पउड़ी १८

(बालक, जवान, बिरध अवसथा)

सुधि न होवै बाल बुधि बालक लीला विचि विहावै ।
भर जोबनि भरमाईऐ पर तन धन पर निंद लुभावै ।

गुरुमुख रूपी पतिव्रता स्त्री अर्थात् एक प्रभु-पति पर निष्ठा रखनेवाली स्त्री ही परमसुख रूपी फल प्राप्त करती है ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(वेश्या के रूप में मनमुख)

जैसे अनेकों मित्रों वाली वेश्या सब प्रकार के कुलक्षणों से युक्त पाप कमाती है । वह लोकलाज और देश-देशान्तर की परवाह न करनेवाली और तीनों पक्षों अर्थात् ननिहाल, ससुराल और दादा के घर को कलंक लगाती है । वह स्वयं तो डूबी हुई है परन्तु अन्यों को भी विषय-विकार रूपी मीठा जहर खिला देती है । नाद की ओर खिंचे मृग की तरह और दीपक के पतंग की तरह वह लोगों को अपनी ओर खींचती है । दोनों लोकों में उसका मुख अपने किये कुकर्मों के कारण पीला पड़ा रहता है और पत्थर की नाव बनकर सबको डुबा देती है । मनमुख व्यक्ति का मन आठ टुकड़ों में बँटकर दुष्टों की संगति में पड़कर भ्रमों में भूला रहता है । वेश्या का पुत्र भी अनाम ही होता है ।। १७ ।।

पउड़ी १८

(बालक, यौवन और वृद्धावस्था)

बालक-बुद्धि को तनिक भी होश नहीं रहता और बालक खेल में ही मस्त रहता है । यौवनावस्था में वह जवान शरीर में लीन रहता है

बिरधि होआ जंजाल विचि महा जालु परवारु फहावै ।
बल हीणा मति हीणु होइ नाउ बहतरिआ बरड़ावै ।
अंन्हा बोला पिंगला तनु थका मनु दह दिसु धावै ।
साधसंगति गुर सबद विणु लख चउरासीह जूनि भवावै ।
अउसरु चुका हथि न आवै ॥ १८ ॥

पउड़ी १९

(हंस, बगुला, गुरमुख, मनमुख)

हंसु न छड्डै मानसर बगुला बहु छपड़ फिरि आवै ।
कोइल बोलै अंब वणि वणि वणि काउ कुथाउ सुखावै ।
वग न होवनि कुतीआँ गाईं गोरसु वंसु वधावै ।
सफल बिरख निहचल मती निहफल माणस दह दिसि धावै ।
अगि तती जलु सीअला सिरु उचा नीवाँ दिखलावै ।

और उसे पराया तन, धन और निंदा अच्छी लगती है । वृद्धावस्था में वह परिवार के महाजाल में फँसा रहता है । अब वह बहत्तर वर्षों का हो, बलहीन और मतिहीन हो जाता है तथा नींद में भी बड़बड़ाता रहता है । अन्ततः अंधा, बहरा, लँगड़ा हो जाता है । उसका तन तो थक जाता है पर मन अभी भी दसों दिशाओं में दौड़ता रहता है । सत्संगति के बिना गुरु-शब्द से विहीन वह चौरासी लाख योनियों में घूमता रहता है, क्योंकि बीता हुआ अवसर फिर हाथ नहीं आता ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(हंस-बगुला, गुरुमुख-मनमुख)

हंस कभी मानसरोवर नहीं छोड़ता और बगुला बार-बार गंदे तालाब की तरफ़ ही आता है । कोयल वन के आम पर ही बोलती है, पर कौआ वन में निकृष्ट जगह को ही आरामदायक मानता है । कुतियों के (गायों के समान) झुंड नहीं होते और गायें ही दूध देकर (उपयोगी) वंश की बढ़ोत्तरी करती हैं । वृक्ष फल धारण करके धन्य हो जाता है, क्योंकि वह इधर-उधर नहीं दौड़ता परन्तु निष्फल जीवन वाला मनुष्य इधर-उधर दौड़ा भागा ही करता है । आग गर्मी (घमंड) वाली है इसलिए सिर ऊँचा उठाए रहती है, परन्तु जल ठंडा है और सदैव नीचे की ओर बहता है ।

गुरमुखि आपु गवाइआ मनमुखु मूरखि आपु गणावै ।
दूजा भाउ कुदाउ हरावै ॥ १९ ॥

पउड़ी २०

(पंज जंतूआँ दुआरा मनमुख)

गज म्रिग मीन पतंग अलि इकतु इकतु रोगि पचंदे ।
माणस देही पंजि रोग पंजे दूत कुसूतु करंदे ।
आसा मनसा डाइणी हरख सोग बहु रोग वधंदे ।
मनमुख दूजै भाइ लगि भंभलभूसे खाइ भवंदे ।
सतिगुर सचा पातसाह गुरमुखि गाडी राहु चलंदे ।
साधसंगति मिलि चलणा भजि गए ठग चोर डरंदे ।
लै लाहा निजि घरि निबहंदे ॥ २० ॥

गुरुमुख अहंभाव को गँवा देता है पर मनमुख मूर्ख व्यक्ति अपने आपको ही सर्वप्रथम गिनता है । द्वैतभावना अच्छा व्यवहार नहीं है और इससे सदैव हार ही होती है ।। १९ ।।

पउड़ी २०

(पाँच जन्तु और मनमुख)

हाथी, मृग, मछली, पतंगे और भौंरे को क्रमशः काम, शब्द, रस, रूप और गंध नामक एक-एक रोग ही है । परन्तु मनुष्य को तो पाँचों रोग हैं और ये पाँचों रोग अनेकों उपद्रव किया करते हैं । आशा, तृष्णा रूपी डायनें और हर्ष, शोक इन रोगों को और भी अधिक बढ़ा देते हैं । मनमुख व्यक्ति द्वैतभावना के अधीन हो भ्रम में इधर-उधर दौड़ते फिरते हैं । सत्गुरु सच्चा बादशाह है और गुरुमुख उसके बताए सरल रास्ते पर चलते हैं । साधुसंगति के साथ मिलकर चलने से विषय-वासना रूपी ठग-चोर भाग जाते हैं । गुरुमुख व्यक्ति इस जन्म का लाभ उठाकर अपने स्थिर घर में अर्थात् निजस्वरूप में अवस्थित हो जाते हैं ।। २० ।।

पउड़ी २१

(सतिगुर सच्चा पातशाह)

बेड़ी चाड़ि लंघाइदा बाहले पूत माणस मोहाणा ।
आगू इकु निबाहिदा लसकर संग साह सुलताणा ।
फिरै महलै पाहरू होइ निचिंद सवनि परधाणा ।
लाड़ा इकु वीवाहीऐ बाहले जाञीं करि मिहमाणा ।
पातिसाहु इकु मुलक विचि होरु प्रजा हिंदू मुसलमाणा ।
सतिगुरु सचा पातिसाहु साधसंगति गुरु सबदु नीसाणा ।
सतिगुर परणै तिन कुरबाणा ।। २१ ।। ५ ।।

पउड़ी २१

(सत्गुरु सच्चा बादशाह)

एक ही व्यक्ति अनेकों व्यक्तियों को नाव में चढ़ाकर पार लगा देता है । बादशाहों की सेना का एक ही मार्गदर्शक (सेनापति) सारा काम सिरे चढ़ा लेता है । मुहल्ले में एक ही पहरेदार होता है जिसके कारण सभी धनी निश्चिंत होकर सोते हैं। बाराती मेहमान तो कई होते हैं पर शादी एक की ही होती है । देश में बादशाह एक होता है, बाकी हिन्दू, मुसलमान के रूप में प्रजा होती है । इसी प्रकार सत्गुरु सच्चा बादशाह एक है और सत्संगति तथा गुरु-शब्द उसका पहचान-पत्र है । जो सच्चे गुरु का आश्रय लेते हैं मैं उन पर बलिहारी जाता हूँ ।। २१ ।। ५ ।।

* * *

वार ६

१ओं सतिगुर प्रसादि ।।

पउड़ी १

(मंगलाचरण वसतू निरदेश)

पूरा सतिगुरु जाणीऐ पूरे पूरा थाटु बणाइआ ।
पूरे पूरा साधसंगु पूरे पूरा मंत्र द्रिड़ाइआ ।
पूरे पूरा पिरम रसु पूरा गुरमुखि पंथु चलाइआ ।
पूरे पूरा दरसणो पूरे पूरा सबदु सुणाइआ ।
पूरे पूरा बैहणा पूरे पूरा तखतु रचाइआ ।
साधसंगति सचु खंडु है भगति वछलु होइ वसगति आइआ ।
सचु रूपु सचु नाउ गुर गिआनु धिआनु सिखा समझाइआ ।
गुर चेले परचा परचाइआ ।। १ ।।

पउड़ी १

(मंगलाचरण वस्तु-निर्देश)

परिपूर्ण सच्चे गुरु को जाना जाए जिसने (रचना का) पूरा ठाट बनाया है । पूर्ण ने पूर्ण साधुसंगति की संरचना की और उसी पूरे ने पूर्णमंत्र सबको स्मरण कराया है । पूर्ण ने पूर्ण प्रेम-रस का सृजन किया और पूर्ण गुरुमुख मार्ग बनाया है । पूर्ण का दर्शन भी पूर्ण है और उसी पूर्ण ने ही पूर्ण शब्द सुनाया है । पूर्ण का आसन भी पूर्ण है और सिंहासन (तख्त) भी पूर्ण है। "साधु-संगति" सत्यखण्ड है और वह पूर्ण भक्तवत्सल होने के कारण भक्तों के वश में आता है । गुरु ने प्रेमवश होकर ही उस प्रभु का सत्यस्वरूप, सत्य नाम और ज्ञान-ध्यान सिक्खों को समझाया है । गुरु ने शिष्य को प्रेम-मार्ग में लीन कर दिया है ।। १ ।।

पउड़ी २

(उह ही)

करण कारण समरथु है साधसंगति दा करै कराइआ ।
भरै भंडार दातारु है साधसंगति दा देइ दिवाइआ ।
पारब्रहम गुर रूपु होइ साधसंगति गुर सबदि समाइआ ।
जग भोग जोग धिआनु करि पूजा परै न दरसनु पाइआ ।
साधसंगति पिउ पुतु होइ दिता खाइ पैन्है पैन्हाइआ ।
घरबारी होइ वरतिआ घरबारी सिख पैरी पाइआ ।
माइआ विचि उदासु रखाइआ ॥ २ ॥

पउड़ी ३

(गुरमुखाँ दी नित्त क्रिया)

अंम्रित वेले उठिकै जाइ अंदरि दरीआउ न्हवंदे ।
सहजि समाधि अगाधि विचि इक मनि होइ गुर जापु जपंदे ।

पउड़ी २

(वही)

वह समर्थ प्रभु कर्त्ता और करण स्वयं ही है, परन्तु करता वही है, जिसे सत्संगति किया चाहती है । प्रभु के भंडार तो भरे हैं पर देता वह सत्संगति वाले लोगों को ही । वही परब्रह्म गुरु-रूप होकर " साधु-संगति'' को गुरु-शब्द (शब्द-ब्रह्म) में लीन करती है। यज्ञ, भोग, योग, ध्यान, पूजा, स्नान आदि साधनों से उसका दर्शन नहीं पाया जा सकता । सत्संगति के सदस्य गुरु से पिता-पुत्र का सम्बन्ध रखते हैं और जो पहनने को देता है, खाते-पहनते हैं । गुरु भी गृहस्थ-मार्ग में रहता है और गृहस्थी को ही अपना शिष्य बनाता है । वह माया में रहकर भी निर्लिप्त बना रहता है ।। २ ।।

पउड़ी ३

(गुरुमुखों का नित्यकर्म)

वे भोर में ही उठकर जाकर नदी (जल) में स्नान करते हैं । फिर सहज-समाधि में लीन होकर एक मन से गुरु-यश का जाप करते हैं ।

मथै टिके लाल लाइ साधसंगति चलि जाइ बहंदे ।
सबदु सुरति लिव लीणु होइ सतिगुर बाणी गाइ सुणंदे ।
भाइ भगति भै वरतिमानि गुर सेवा गुरपुरब करंदे ।
संझै सोदरु गावणा मन मेली करि मेलि मिलंदे ।
राती कीरति सोहिला करि आरती परसादु वंडंदे ।
गुरमुखि सुख फलु पिरम चखंदे ॥ ३ ॥

पउड़ी ४

(साधसंगति – सचखंड)

इक कवाउ पसाउ करि ओअंकारि अकारु पसारा ।
पउण पाणी बैसंतरो धरति अगासु धरे निरधारा ।
रोम रोम विचि रखिओनु करि वरभंड करोड़ि अकारा ।
पारब्रहमु पूरन ब्रहमु अगम अगोचरु अलख अपारा ।
पिरम पिआलै वसि होइ भगति वछल होइ सिरजणहारा ।
बीउ बीजि अति सूखमो तिदूँ होइ वड बिरख विथारा ।

माथे पर प्रेम का लाल टीका लगाकर वे " साधुसंगति" में जा बैठते हैं । शब्द में सुरति लीन कर सच्चे गुरु की वाणी गाते और सुनते हैं । भावपूर्ण भक्ति में लीन हो वे गुरु की सेवा करते हैं और गुरु-पर्वों को मनाते हैं । संध्या को " सोदर" वाणी का गायन कर मन को (अच्छी ओर) मिलानेवालों के साथ मेल करते हैं । रात्रि में " कीरतन सोहिला" का पाठ कर आरती आदि के बाद प्रसाद बाँटते हैं । गुरुमुख लोग (इस क्रिया के फलस्वरूप) सुख-रूपी प्रेम-फल चखते हैं ।। ३ ।।

पउड़ी ४

(साधुसंगति–सत्यखंड)

ॐकार प्रभु ने एक ध्वनि के साथ समस्त आकारों की संरचना कर दी । पवन, पानी, अग्नि, आकाश और धरती को उसने आधारातीत (अपने हुक्म में) स्थापित किया । उसके एक-एक रोम (छोटे बाल) में करोड़ों ब्रह्मांड स्थित हैं । पर परब्रह्म पूर्णब्रह्म है और अगम्य, अगोचर, अलक्ष्य एवं अपार है । वह परमप्रेम के वश में होता है और भक्तवत्सल बनकर सृजन करता है । बीज रूपी प्रभु से रचना रूपी बड़े वृक्ष का विस्तार होता है ।

फल विचि बीउ समाइकै इक दूँ बीअहु लख हजारा ।
गुरमुखि सुख फल पिरम रसु गुरसिखाँ सतिगुरू पिआरा ।
साधसंगति सचु खंड विचि सतिगुर पुरखु वसै निरंकारा ।
भाइ भगति गुरमुखि निसतारा ॥ ४ ॥

पउड़ी ५

(जपु जी दे ३८वें सलोक ' पवण गुरू पाणी पिता.... ' दा अरथ)

पउणु गुरू गुर सबदु है वाहगुरू गुर सबदु सुणाइआ ।
पाणी पिता पवित्तु करि गुरमुखि पंथ निवाणि चलाइआ ।
धरती मात महतु करि ओति पोति संजोगु बणाइआ ।
दाई दाइआ राति दिहु बाल सुभाइ जगत्तु खिलाइआ ।
गुरमुखि जनमु सकारथा साधसंगति वसि आपु गवाइआ ।
जंमण मरणहु बाहरे जीवन मुकति जुगति वरताइआ ।
गुरमति माता मति है पिता संतोख मोख पदु पाइआ ।
धीरजु धरमु भिराव दुइ जपु तपु जतु सतु पुत जणाइआ ।

फलों में बीज होते हैं और एक बीज से हज़ारों बीज बन जाते हैं । गुरुमुखों को तो प्रेम रूपी सुख फल की प्राप्ति होती है और उन्हें सच्चे गुरु से ही प्रेम बना रहता है। साधुसंगति रूपी सत्य देश में सत्यगुरु पुरुष रूपी निराकार (परमात्मा) बसता है । प्रेमाभक्ति से ही गुरुमुखों का उद्धार हो जाता है ।। ४ ।।

पउड़ी ५

(जपु जी के ३८ वें पद " पवण गुरु पाणी पिता................"का अर्थ)

गुरु-शब्द ही पवन रूपी गुरु है और गुरु-शब्द " वाहिगुरु" है । जीव का पिता पानी है जो पवित्र है और नीचे की ओर बढ़कर विनम्रता का पाठ सिखाता है । धरती माँ के समान सहनशील होने के कारण माता है और जीवों के संयोग-वियोग का अधिष्ठान है । रात और दिन धाय हैं जो बालक-मतिवाले सारे संसार को खेल में लीन रखते हैं । गुरुमुख का जन्म सार्थक है क्योंकि उसी ने " साधुसंगति" में अहम्-भाव को गँवाया है। वे ही जीवन्मुक्त बनकर आवागमन से बाहर आ जाने की युक्ति के माध्यम से जगत में व्यवहार करते हैं। गुरुमुखों की माँ गुरुमति है और पिता उनका संतोष है, जिसके माध्यम से वे मुक्ति-पद प्राप्त करते हैं।

गुर चेला चेला गुरू पुरखहु पुरख चलतु वरताइआ ।
गुरमुखि सुख फलु अलखु लखाइआ ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(निरलेपता पुर द्रिशटि)

पर घर जाइ पराहुणा आसा विचि निरासु वलाए ।
पाणी अंदरि कवल जिउ सूरज धिआनु अलिपतु रहाए ।
सबद सुरति सतिसंगि मिलि गुर चेले दी संधि मिलाए ।
चारि वरन गुरसिख होइ साधसंगति सच खंड वसाए ।
आपु गवाइ तंबोल रसु खाइ चबाइ सु रंग चढ़ाए ।
छिअ दरसन तरसन खड़े बारह पंथि गिरंथ सुणाए ।
छिअ रुति बारह मास करि इकु इकु सूरजु चंदु दिखाए ।
बारह सोलह मेलि कै ससीअर अंदरि सूर समाए ।

धैर्य और कर्त्तव्य उनके भाई हैं और जप, तप और यतीत्व उनके पुत्र हैं । गुरु चेला और चेला गुरु में समरस-रूप से एक हैं । वे दोनों उस पूर्णपुरुष का विस्तार ही हैं । गुरुमुखों ने अलक्ष्य सुख-फल स्वयं देखा है और अन्यों को भी उसका साक्षात्कार कराया है ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(निर्लिप्त दृष्टि)

किसी अन्य के घर में जाकर अतिथि व्यक्ति तमाम आशाओं के बीच भी उदासीन-रूप से तटस्थ बना रहता है । कमल भी पानी में रहकर सूर्य की ओर ध्यान लगाये रहता है और जल से अप्रभावित बना रहता है । उसी प्रकार साधुसंगति में गुरु-शिष्य का मिलाप शब्द और सुरति के माध्यम से होता है । चारों वर्णों के व्यक्ति गुरु के शिष्य बनकर साधुसंगति के माध्यम से सत्य देश में निवास करते हैं । पान के रस की तरह गुरुसिक्ख से अपना अहम् भाव गँवाकर प्रभु के एक ही रंग वाले हो जाते हैं और उनका वही रंग सब पर चढ़ता है । छः दर्शन और योगियों के बारह पंथ दूर खड़े ललचाते हैं (पर अपने अहंकार के कारण इस पद को प्राप्त नहीं कर सकते) । वे छः ऋतुओं और बारहों महीनों का एक-एक सूर्य और चन्द्र दिखाते हैं, परन्तु गुरुमुख व्यक्ति ने सूर्य और चन्द्र को अर्थात् सत्त्व और रजस् गुणों को आपस में मिला दिया है ।

सिव सकती नो लंघि कै गुरमखि इकु मनु इकु धिआए ।
पैरी पै जगु पैरी पाए ॥ ६ ॥

पउड़ी ७

(गुरमुख-रहिणी)

गुर उपदेस अदेसु करि पैरी पै रहरासि करंदे ।
चरण सरणि मसतकु धरनि चरन रेणु मुखि तिलक सुहंदे ।
भरम करम दा लेखु मेटि लेखु अलेख विसेख बणंदे ।
जगमग जोति उदोतु करि सूरज चंद न लख पुजंदे ।
हउमै गरबु निवारि कै साधसंगति सर मेलि मिलंदे ।
साधसंगति पूरन ब्रहमु चरण कवल पूजा परचंदे ।
सुख संपटि होइ भवर वसंदे ॥ ७ ॥

पउड़ी ८

(गिआनी दे लच्छण)

गुर दरसनु परसणु सफलु छिअ दरसनु इक दरसनु जाणै ।
दिब दिसटि परगासु करि लोक वेद गुर गिआनु पछाणै ।

गुरुमुख व्यक्ति शिव-शक्ति की माया को पारकर एक मन से उस एक की आराधना करते हैं । वे चरणों में गिरकर सारे संसार को अपने चरणों में झुका लेते हैं ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(गुरुमुख-दिनचर्या)

गुरु के उपदेश को आदेश के रूप में मानकर वे विनम्र होने की मर्यादा निभाते हैं । (गुरु) चरणों की शरण को सिर पर धारण करते हैं और चरण-धूलि को माथे पर लगाते हैं । कर्मो का भ्रमपूर्ण लेख मिटाकर वे अलेख परमात्मा से विशिष्ट प्रीति पैदा करते हैं । उनकी जगमगाती ज्योति तक लाखों सूर्य-चन्द्र भी नहीं पहुँच सकते । अहम्-भाव को त्यागकर वे सत्संगति रूपी सरोवर में स्नान करते है । 'साधुसंगति' पूर्णब्रह्म का निवास है और वे प्रभु-चरणों की पूजा में ही मन लीन रखते हैं। वे सुख के खजाने में भँवरा बनकर निवास करते हैं ।। ७ ।।

पउड़ी ८

(ज्ञानी का लक्षण)

गुरु का दर्शन और स्पर्श धन्य है, क्योंकि वह छः दर्शनों में एक ही दर्शन अर्थात् प्रभु के दर्शन करता है । ज्ञान की दृष्टि से प्रकाशित हो वह लोक - धर्म में भी गुरु - उपदेश की पहचान करता है ।

एका नारी जती होइ, पर नारी धी भैण वखाणै ।
पर धनु सूअर गाइ जिउ मकरूह हिंदू मुसलमाणै ।
घर बारी गुर सिखु होइ सिखा सूत्र मल मूत्र विडाणै ।
पारब्रहमु पूरन ब्रहमु गिआनु धिआनु गुरसिख सिञाणै ।
साधसंगति मिलि पति परवाणै ॥ ८ ॥

पउड़ी ९

(ईश्वरीय शकती)

गाई बाहले रंग जिउ खड़ु चरि दुधु देनि इक रंगी ।
बाहले बिरख वणासपति अगनी अंदरि है बहुरंगी ।
रतना वेखै सभु को रतन पारखू विरला संगी ।
हीरे हीरा बेधिआ रतन माल सतिसंगति चंगी ।
अंम्रितु नदरि निहालिओनु होइ निहालु न होर सु मंगी ।

वह एक ही स्त्री से संसर्ग रखता हुआ यति बना रहता है और पराई स्त्री को पुत्री अथवा बहन मानता है। पराये धन को वह मुसलमान और हिन्दू के लिए क्रमश: सूअर और गाय के मांस के तुल्य अखाद्य अथवा अस्वीकृत मानता है। गृहस्थी सिक्ख शिखा और जनेऊ आदि को मल-मूत्र की तरह त्याज्य मानते हैं। गुरु के सिक्ख परब्रह्म को ही पूर्णब्रह्म और ज्ञान-ध्यान का स्रोत मानते हैं। ऐसे व्यक्तियों की सत्संगति में आनेवाला कोई भी व्यक्ति प्रामाणित अर्थात् सम्मानित व्यक्ति बन जाता है ।। ८ ।।

पउड़ी ९

(ईश्वरीय शक्ति)

गाय अनेक रंगों की होकर भी घास चरकर दूध एक ही रंग का देती है । वनस्पति में अनेकों वृक्ष होते हैं, पर क्या उनमें निहित अग्नि अनेकों रंगों की होती है ? (अर्थात् अग्नि का रंग एक ही होता है ।) रत्नों को देखनेवाले तो अनेकों होते हैं, पर उनकी परख करनेवाला कोई बिरला ही होता है । जैसे हीरा हीरे द्वारा बिंधकर रत्नों की सत्संगति में चला जाता है अर्थात् माला में पिरो दिया जाता है, उसी प्रकार मन रूपी हीरा गुरु-शब्द रूपी हीरे से बिंधकर सत्संगति रूपी माला में आ बैठता है । ज्ञानवान व्यक्ति गुरु की अमृत-दृष्टि से धन्य हो जाते हैं तथा अन्य किसी भी पदार्थ की इच्छा नहीं रखते ।

दिब देह दिब दिसटि होइ पूरन ब्रहम जोति अंग अंगी ।
साधसंगति सतिगुर सहलंगी ॥ ९ ॥

पउड़ी १०

(गुरमुख-धारना)

सबद सुरति लिव साधसंगि पंच सबद इक सबद मिलाए ।
राग नाद लख सबद लखि भाखिआ भाउ सुभाउ अलाए ।
गुरमुखि ब्रहम धिआनु धुनि जाणै जंत्री जंत्र वजाए ।
अकथ कथा वीचारि कै उसतति निंदा वरजि रहाए ।
गुर उपदेसु अवेसु करि मिठा बोलणु मन परचाए ।
जाइ मिलनि गुड़ कीड़िआँ रखै रखणहारु लुकाए ।
गंना होइ कोलू पीड़ाए ॥ १० ॥

उनकी दृष्टि और देह दिव्य हो जाती है और उनके अंग-अंग में पूर्णब्रह्मज्योति झलकती है। उनके सम्बन्ध तो सच्चे गुरु की सत्संगति के साथ ही बन जाते हैं ।।९ ।।

पउड़ी १०

(गुरुमुख की अवधारणा)

गुरुमुख शब्द में सुरति को लीन करता हुआ पंच शब्दों (तंत, वृत, घन, नाद, सुषिर अर्थात् फूँक मारकर बजाए जानेवाले) में भी एक (वाहिगुरु) शब्द का ही जाप करता है । रागों और नादों को संवाद का माध्यम भर मानकर गुरुमुख प्रेमपूर्वक ही ज्ञान-चर्चा और आलाप भी प्रेमपूर्वक ही लेते हैं । गुरुमुख व्यक्ति ही ब्रह्म-ज्ञान की ध्वनि को समझते हैं जैसे वादक ही वाद्य की ध्वनि की ठीक पहचान रखता है । वे स्तुति-निंदा के विचार को त्यागकर उस प्रभु की अकथनीय कथा का मनन करते हैं । गुरु के उपदेश को धारण कर वे मीठा बोलकर प्रत्येक व्यक्ति का मन जीत लेते हैं । रखनेवाला चाहे उन्हें कहीं छुपाकर रखे, लोग उन्हें वैसे ही ढूँढ़ लेते हैं जैसे कीड़े गुड़ को ढूँढ़ लेते हैं । वे परोपकार में ऐसे लीन रहते हैं जैसे कोल्हू में गन्ना पूर्णरूप से पेरा जाता है और समर्पित रहता है ।। १० ।।

पउड़ी ११

(गुरमुख-धारना)

चरण कमल मकरंदु रसि होइ भवरु लै वासु लुभावै ।
इड़ा पिंगुला सुखमना लंघि त्रिबेणी निज घरि आवै ।
साहि साहि मनु पवण लिव सोहं हंसा जपै जपावै ।
अचरज रूप अनूप लिव गंध सुगंधि अवेसु मचावै ।
सुखसागर चरणारबिंद सुख संपट विचि सहजि समावै ।
गुरमुखि सुखफल पिरम रसु देह बिदेह परम पदु पावै ।
साधसंगति मिलि अलखु लखावै ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(हत्थाँ दी सफलता)

गुरमुखि हथि सकथ हनि साधसंगति गुर कार कमावै ।
पाणी पखा पीहणा पैर धोइ चरणामतु पावै ।

पउड़ी ११

(गुरुमुख)

गुरु के चरण-कमलों पर भौंरे की तरह समर्पित होकर वे रस चूसते हैं और प्रसन्न बने रहते हैं । वे इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना की त्रिवेणी को लांघकर निज स्वरूप में विराजमान होते हैं । वे श्वास,प्रतिश्वास, मन और प्राणों की लौ लगाकर सोऽहं और हंसा जाप जपते-जपाते हैं । सूरति का स्वरूप आश्चर्यकारी रूप से गंध, सुगंधों के समान आवेष्टित करनेवाला है । गुरुमुख व्यक्ति गुरुचरणों के सुख-सागर में सहज रूप से ही लीन हो जाते हैं । वे जब सुखफल-रूप में परमरस को प्राप्त करते हैं तो देह विदेह होने के बंधनों से परे होते हुए वे परमपद पा लेते हैं । ऐसे ही गुरुमुख व्यक्ति 'साधु-संगति' में अदृष्ट प्रभु का दर्शन कर लेते हैं ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(हाथों की सार्थकता)

गुरुमुखों के हाथ सार्थक हैं, जो साधु-संगति में गुरु - सेवा करते हैं । सार्थक हाथ पानी पिलाते, पंखा डुलाते, लंगर के लिए अनाज पीसते और चरणामृत को अपने मुख में डालते हैं ।

गुरबाणी लिखि पोथीआ ताल म्रिदंग रबाब वजावै ।
नमसकार डंडउत करि गुरभाई गलि मिलि गलि लावै ।
किरति विरति करि धरम दी हथहु दे कै भला मनावै ।
पारसु परसि अपरसि होइ पर तन पर धन हथु न लावै ।
गुर सिख गुर सिख पूज कै भाइ भगित भै भाणा भावै ।
आपु गवाइ न आपु गणावै ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(चरण-सफलता)

गुरमुखि पैर सकारथे गुरमुखि मारगि चाल चलंदे ।
गुरू दुआरै जानि चलि साधसंगति चलि जाइ बहंदे ।
धावन परउपकार नो गुरसिखा नो खोजि लहंदे ।
दुबिधा पंथि न धावनी माइआ विचि उदासु रहंदे ।
बंदि खलासी बंदगी विरले केई हुकमी बंदे ।

वे गुरुवाणी (गुरुमत) साहित्य लिखते और मृदंग, रबाब आदि तालपूर्वक बजाते हैं । वे विनम्रता से नमस्कार , दंडवत् आदि करते हैं और गुरुभाइयों को गले लगाते हैं । धर्म की कमाई करते हैं और पास से दूसरे को देकर उसका भला माँगते हैं । चरण रूपी पारस के संपर्क में आने के कारण वे स्वयं सबसे उदासीन बन जाते हैं और पराए धन को छूते तक नहीं । गुरु-सिक्खों की वन्दना करके वे भावनापूर्ण भक्ति की मर्यादा को आगे बढ़ाते हैं । वे अहम् को गँवाकर अपने-आपको बिलकुल ही नहीं गिनाते ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(चरणों की सार्थकता)

गुरुमुखों के पाँव सार्थक हैं, जो गुरुमुख द्वारा बताए मार्ग पर चलते हैं । ये पाँव चलकर गुरुद्वारे पहुँचते हैं और ' साधुसंगति' में जा बैठते हैं । वे परोपकार के लिए दौड़ पड़ते हैं और गुरु के सिक्खों को खोज निकालते हैं । वे दुविधा अर्थात् द्वैतभाव के मार्ग पर नहीं चलते हैं और माया में रहकर भी निर्लिप्त बने रहते हैं । खुदा की बंदगी में ही मुक्ति प्राप्त करनेवाले कोई विरले ही व्यक्ति होते हैं ।

गुर सिखा परदखणाँ पैरी पै रहरासि करंदे ।
गुर चेले परचै परचंदे ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(गुरमुख परोपकारी)

गुरसिख मनि परगासु है पिरम पिआला अजरु जरंदे ।
पारब्रहमु पूरन ब्रहमु ब्रहमु बिबेकी धिआनु धरंदे ।
सबद सुरति लिव लीण होइ अकथ कथा गुर सबदु सुणंदे ।
भूत भविखहुँ वरतमान अबिगति गति अति अलख लखंदे ।
गुरमुखि सुख फलु अछलु छलु भगतिवछलु करि अछलु छलंदे ।
भवजल अंदरि बोहिथै इकस पिछे लख तरंदे ।
परउपकारी मिलनि हसंदे ।। १४ ।।

सार्थक पाँव गुरु-सिक्खों की परिक्रमा कर विनम्रतापूर्वक चरण-वंदना करते हैं । गुरु और शिष्य को एक-दूसरे से मिलाते और मिलते हैं ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(गुरुमुख परोपकारी)

गुरु-सिक्खों के मन में (ज्ञान) प्रकाश होता है और वे असह्य प्रेम के प्याले को पीकर पचाते हैं । वे पूर्णपरब्रह्म में ब्रह्म-विवेक से युक्त हो ध्यान लगाते हैं । शब्द में सुरति को लीन कर वे गुरु-शब्द की अकथनीय कथा सुनते हैं । वे भूत, भविष्य, वर्तमान की अव्यक्त गति को देखने की क्षमता रखते हैं । गुरुमुखों को आत्मा रूपी सुख-फल प्राप्त होता है और वे स्वयं किसी से छले नहीं जाते । भक्तवत्सल भगवान की कृपा से वे कामादिक विषय-वासनाओं को छल लेते हैं । संसार-सागर में वे जहाज़ के समान काम करते हैं और एक गुरुमुख को अनुसरण करनेवाले लाखों लोग पार उतर जाते हैं। परोपकारी व्यक्ति सदैव प्रसन्न मुद्रा में मिलते हैं ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(घर बारी सिक्ख दी रहणी)

बाबन चंदन आखीऐ बहले बिसीअरु तिसु लपटाही ।
पारसु अंदरि पथरा पथर पारसु होइ न जाही ।
मणी जिन्हाँ सपाँ सिरीं ओइ भि सपाँ विचि फिराही ।
लहरी अंदरि हंसुले माणक मोती चुगि चुगि खाही ।
जिउँ जलि कवल अलिपतु है घरिबारी गुरसिखि तिवाही ।
आसा विचि निरासु होइ जीवनु मुकति जुगति जीवाही ।
साधसंगति कितु मुहि सालाही ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(सतिगुर अते सिक्ख उसतुति)

धनु धंनु सतिगुर पुरखु निरंकारि आकारि बणाइआ ।
धंनु धंनु सतिगुर सिख सुणि चरणि सरणि गुरसिख जुआइआ ।
गुरमुखि मारगु धंनु है साधसंगति मिलि संगु चलाइआ ।
धंनु धंनु सतिगुर चरण धंनु मसतकु गुर चरणी लाइआ ।

पउड़ी १५

(घरबारी सिक्ख की चर्या)

चंदन पर अनेकों साँप लिपटे कहे जाते हैं (पर वह सर्पों के विष को ग्रहण नहीं करता) । पारस स्वयं पत्थरों में ही रहता है पर फिर भी पत्थरों के गुण नहीं अपनाता । मणि वाले विशिष्ट सर्प भी आम सर्पों में ही घूमते हैं । सरोवर की लहरों में से हंस केवल मोती-माणिक्य ही खाते हैं । जैसे कमल जल में अलिप्त रहता है, वैसे ही घरबारी गुरु-सिक्ख भी माया में अलिप्त बना रहता है । वह तमाम आशाओं-तृष्णाओं के बीच भी जीवन-मुक्त की युक्ति को अपनाकर जीता रहता है। साधुसंगति' की महिमा भला किस मुँह से की जाय ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(सत्गुरु और सिक्ख-स्तुति)

सत्गुरु पुरुष धन्य है, जिसका निराकार प्रभु ने आकार धारण किया है । गुरु का सिक्ख भी धन्य है, जो गुरु की शिक्षा सुनकर गुरु-चरणों में आ बैठा है । गुरुमुखों का मार्ग धन्य है, जिस पर साधुसंगति के माध्यम से चला जाता है । सत्गुरु के चरण धन्य हैं और वह माथा धन्य है, जो गुरु के चरणों पर टिका हुआ है ।

सतिगुर दरसनु धंनु है धंनु धंनु गुरसिख परसणि आइआ ।
भाउ भगति गुरसिख विचि होइ दइआल गुरु मुहि लाइआ ।
गुरमति दूजा भाउ मिटाइआ ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(सफल समें)

धंनु पलु चसा घड़ी पहरु धंनु धंनु थिति सु वार सभागे ।
धंनु धंनु दिहु राति है पखु माह रुति संमति जागे ।
धंनु अभीचु निछत्रु है कामु क्रोध अहंकार तिआगे ।
धंनु धंनु संजोगु है अठसठि तीरथ राज पिरागे ।
गुरु दुआरै आइकै चरण कवल रस अंम्रितु पागे ।
गुर उपदेसु अवेसु करि अनभै पिरम पिरी अनुरागे ।
सबदि सुरति लिव साधसंगि अंगि अंगि इक रंगि समागे ।
रतनु मालु करि कचे धागे ।। १७ ।।

सत्गुरु के दर्शन भी महान् हैं और गुरु-सिक्ख भी धन्य है, जो दर्शन करने आया है। गुरु-सिक्ख भी भावना-भक्ति को ही सत्गुरु प्रसन्न हो तो मुँह लगाते हैं अर्थात् उसे प्यार करते हैं । (गुरु-सिक्ख के) मिलन से द्वैतभावना नष्ट हो जाती है ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(सार्थक समय)

(प्रभु-स्मरण का) पल, निमिष, घड़ी, प्रहर, तिथि, वार आदि समय धन्य है । दिन-रात, पक्ष, मास, ऋतु, संवत् आदि धन्य हैं, जिनमें (मन को) जागरण प्राप्त होता है । वह अभिजित् नक्षत्र धन्य है जिसमें काम, क्रोध, अहंकार आदि विषयों का त्याग होता है । वह समय धन्य है, जिसमें (प्रभु-स्मरण के द्वारा) अड़सठ तीर्थों और प्रयागराज-स्नान के फल की प्राप्ति होती है । गुरुद्वारे पहुँचकर मन चरण-कमलों के रस में लीन हो जाता है । गुरु-उपदेश को धारणकर अभय और परम प्रेम-लीनता की अवस्था प्राप्त हो जाती है । 'साधुसंगति' में शब्द में सुरति लीनकर अंग-अंग में एक प्रभु के रंग का निखार छा जाता है । गुरु सिक्खों ने कच्चे धागे रूपी श्वासों को रत्नों की माला बनाया है (और उसका वे सदुपयोग करते हैं) ।। १७ ।।

पउड़ी १८

(घरबारी जीवन-मुकत)

गुरमुखि मिठा बोलणा जो बोलै सोई जपु जापै ।
गुरमुखि अखी देखणा ब्रहम धिआनु धरै आपु आपै ।
गुरमुखि सुनणा सुरति करि पंच सबदु गुर सबदि अलापै ।
गुरमुखि किरति कमावणी नमसकारु डंडउति सिञापै ।
गुरमुखि मारगि चलणा परदखणा पूरन परतापै ।
गुरमुखि खाणा पैनणा जग भोग संजोग पछापै ।
गुरमुखि सवणु समाधि है आपे आपि न थापि उथापै ।
घरबारी जीवन मुकति, लहरि न भवजल भउ न बिआपै ।
पारि पए लंघि वरै सरापै ।। १८ ।।

पउड़ी १८

(गृहस्थी जीवन–मुक्त)

गुरुमुख मीठा बोलते हैं और जो बोलते हैं उसी जाप का निर्वाह करते हैं । गुरुमुख आँखों से तो देखते हैं पर अंदर ही अंदर ब्रह्म-ध्यान में लीन रहते हैं । पाँचों शब्दों के माध्यम से गुरु-शब्द के अलाप को गुरुमुख ध्यान लगाकर सुनते हैं । गुरुमुख हाथों से कार्य करते हैं और विनम्रतापूर्वक झुककर दंडवत् करते हैं । गुरुमुख पैदल गुरु-मार्ग पर चलते हैं और पूर्ण-गुरुजनों की परिक्रमा करते हैं । गुरुमुख व्यक्ति खाने, पहनने, योग, भोग और संयोग की विधियों को भली प्रकार पहचानते हैं अर्थात् इन क्रियाओं में संतुलन के महत्त्व को समझते हैं । गुरुमुखों की निद्रा ही समाधि है अर्थात् वे स्व-रूप में लीन रहते हैं और किसी जोड़-तोड़ में नहीं लगे रहते । घरबारी (गृहस्थ) जीवन ही मुक्ति है और ऐसे व्यक्तियों को संसार-सागर की लहरों का भय नहीं सताता । वे वरदान और शाप की अवस्थाओं को पार कर गये होते हैं ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(गुरमुख दी धारना)

सतिगुर सति सरूपु है धिआन मूलु गुर मूरति जाणै ।
सतिनामु करता पुरखु मूल मंत्र सिमरणु परवाणै ।
चरण कवल मकरंद रसु पूजा मूलु पिरम रसु माणै ।
सबद सुरति लिव साधसंगि गुर किरपा ते अंदरि आणै ।
गुरमुखि पंथु अगंमु है गुरमति निहचलु चलणु भाणै ।
वेद कतेबहुँ बाहरी अकथ कथा कउणु आखि वखाणै ।
वीह इकीह उलंघि सिञाणै ।। १९ ।।

पउड़ी २०

(मनमुख गती)

सीसु निवाए ढींगुली गलि बंधे जलु उचा आवै ।
घुघू सुझु न सुझई चकई चंदु न डिठा भावै ।

पउड़ी १९

(गुरुमुखों की अवधारणा)

सत्गुरु सत्यस्वरूप है और ध्यान के मूल शुरू की इस मूर्ति को गुरुमुख व्यक्ति जानता है । गुरुमुख को " सतिनामु करता पुरखु" मूल मंत्र ही स्वीकृत होता है । वह (प्रभु-) चरण-कमलों के मकरंद-रस को पूजा का मूल स्रोत जानकर प्रेम का रसास्वादन करता है । गुरु और साधुसंगति की कृपा से शब्द-सुरति लीनता में प्रविष्ट होता है । गुरुमुख का मार्ग मन, वचन से परे है । वह 'गुरमति' के अनुसार अटल निश्चय से उस पर चलता है । यह सब वेद-कतेबादि से परे के कथन हैं, इनका वर्णन भला कौन कर सकता है । इस मार्ग की पहचान बीस-इक्कीस की गणनाओं अर्थात् सांसारिक चिंताओं से परे जाकर ही प्राप्त होती है ।। १९ ।।

पउड़ी २०

(मनमुख-गति)

गड़हे में से पानी निकालने के यंत्र (पंजाबी ढींगुली) को गला पकड़ कर नीचा किया जाता है ताकि पानी निकाला जा सके अर्थात् उसे धक्के से ही झुकाया जाता है, वह स्वयं नहीं झुकती ।

सिंमल बिरखु न सफलु होइ चंदन वासु न वांसि समावै ।
सपै दुधु पीआलीऐ तुमे दा कउड़तु न जावै ।
जिउ थणि चंबड़ि चिचुड़ी लोहू पीऐ दुधु न खावै ।
सभ अवगुण मै तनि वसनि गुण कीते अवगुण नो धावै ।
थोम न वासु कथूरी आवै ॥ २० ॥ ६ ॥

उल्लू को सूर्य अच्छा नहीं लगता और चकवी को चाँद नहीं भाता । सेंबल के वृक्ष को फल नहीं लगते और बाँस में चंदन की गंध नहीं समाती । साँप को चाहे दूध पिलाया जाय पर उसका विष नहीं जाता और ठीक वैसे ही आक का कड़वापन नष्ट नहीं होता । गाय-भैंसों के थनों में लगे चीचड़ (कीड़े) खून ही पीते हैं, दूध नहीं पीते । (भाई गुरदास कहते हैं–) मेरे शरीर में सभी अवगुणों का निवास है और मेरा शरीर गुणयुक्त काम करते-करते भी अवगुणों की तरफ़ दौड़ निकलता है । लहसुन में से कभी भी कस्तूरी की गंध नहीं आ सकती ।। २० ।। ६ ।।

* * *

वार ७

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।।

पउड़ी १

(मंगलाचरण)

सतिगुरु सचा पातिसाहु साधसंगति सचु खंडु वसाइआ ।
गुर सिख लै गुरसिख होइ आपु गवाइ न आपु गणाइआ ।
ग़ुरसिख सभो साधना साधि सधाइ साधु सदवाइआ ।
चहु वरणा उपदेस दे माइआ विचि उदासु रहाइआ ।
सचहु ओरै सभु किहु सचु नाउ गुरमंतु दिड़ाइआ ।
हुकमै अंदरि सभ को मंनै हुकमु सु सचि समाइआ ।
सबद सुरति लिव अलखु लखाइआ ।। १ ।।

पउड़ी १

(मंगलाचरण)

सत्गुरु सच्चा सम्राट् है जिसने 'साधुसंगति' रूपी सत्य-देश बसा दिया है । उसमें बसनेवाले सिक्ख गुरु की शिक्षा लेकर अहम्-भाव गँवाते हैं और अपने आपकी गणना कहीं नहीं करवाते । गुरु-सिक्ख सभी (सहज) साधनाओं को साधकर सही अर्थों में अपने-आपको साधु कहलवाते हैं । वे चारों वर्णों को उपदेश देकर स्वयं माया में भी तटस्थ बने रहते हैं । वे चरितार्थ करके बताते हैं कि सारा जगत प्रपंच भी सत्य के इस पार ही है अर्थात् सत्यनाम सर्वोच्च है और इसी गुरुमंत्र का दृढ़तापूर्वक मनन करना चाहिए । सब कुछ उस प्रभु की आज्ञा के अंतर्गत है और जो उसकी आज्ञा को शिरोधार्य करता है वह सत्य में समाहित हो जाता है । शब्द में लीन सुरति वाली मति उस अलक्ष्य प्रभु के भी दर्शन करा देती है ।। १ ।।

पउड़ी २

(दो दी गिणती, गुरमुख महिमा)

सिव सकती नो साधि कै चंदु सूरजु दिहुँ राति सधाए ।
सुख दुख साधे हरख सोग नरक सुरग पुंन पाप लंघाए ।
जनम मरण जीवनु मुकति भला बुरा मित्र सत्रु निवाए ।
राज जोग जिणि वसि करि साधि संजोगु विजोगु रहाए ।
वसगति कीती नींद भूख आसा मनसा जिणी घरि आए ।
उसतति निंदा साधि कै हिंदू मुसलमाण सबाए ।
पैरी पै पा खाक सदाए ।। २ ।।

पउड़ी ३

(तिंन दी गिणती-गुरमुख)

ब्रहमा बिसनु महेसु त्रै लोक वेद गुण गिआन लंघाए ।
भूत भविखहु वरतमानु आदि मधि जिणि अंति सिधाए ।

पउड़ी २

(दो की गिनती-गुरुमुख-महिमा)

(गुरुमुखों ने) शिव-शक्ति अर्थात् सत्त्व और तमस् पर विजय प्राप्त कर चन्द्र-सूर्य (इड़ा-पिंगला) और समय, जो कि दिन-रात होने से पता चलता है, भी साध लिया है । उन्होंने सुख-दुख, हर्ष-शोक पर विजय प्राप्त कर नरक-स्वर्ग, पाप-पुण्य को भी पार कर लिया है । जीवन, मृत्यु, जीवन-मुक्ति, भला-बुरा, मित्र-शत्रु आदि सबको उन्होंने झुका लिया है । राज और योग को जीतकर संयोग और वियोग की भी साधना कर ली है । उन्होंने नींद, भूख, आशा, तृष्णा आदि सबको जीतकर अपने निज स्वरूप में निवास कर लिया है । प्रशस्ति और निंदा से परे होकर वे मुसलमान-हिन्दू सबके हो गये हैं । वे सबकी चरण-वन्दना कर स्वयं को धूल के बराबर गिनवाते हैं ।। २ ।।

पउड़ी ३

(तीन की गिनती-गुरुमुख)

(गुरुमुख व्यक्ति) ब्रह्मा, विष्णु, महेश, तीनों लोकों, तीनों गुणों के ज्ञान से भी आगे जा पहुँचे हैं । वे भूतकाल, भविष्य और वर्तमानकाल तीनों के आदि, मध्य और अन्त का रहस्य जानते हैं ।

मन बच करम इकत्र करि जंमण मरण जीवण जिणि आए ।
आधि बिआधि उपाधि साधि सुरग मिरत पाताल निवाए ।
उतमु मधम नीच साधि बालक जोबन बिरधि जिणाए ।
इड़ा पिंगुला सुखमना त्रिकुटी लंघि त्रिबेणी न्हाए ।
गुरमुखि इकु मनि इकु धिआए ॥ ३ ॥

पउड़ी ४

(चौकड़ी दा वरणन, गुरमुख)

अंडज जेरज साधि कै सेतज उतभुज खाणी बाणी ।
चारे कुंडाँ चारि जुग चारि वरनि चारि वेदु वखाणी ।
धरमु अरथु कामु मोखु जिणि रज तम सत गुण तुरीआ राणी ।
सनकादिक आस्रम उलंघि चारि वीर वसगति करि आणी ।

वे मन, वचन और कर्म में एकात्मता रखते हैं और जन्म, मरण और जीवन तीनों को जीत लेते हैं । उन्होंने आधियों, व्याधियों और उपाधियों को जीतकर स्वर्ग, मृत्यु और पाताललोक को भी झुका लिया है । वे उत्तम, मध्यम और निकृष्ट अवस्थाओं पर विजय प्राप्त कर बचपन, यौवन और बुढ़ापे को भी जीत चुके हैं । वे इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना की त्रिकुटी को लाँघ कर 'सहज' रूपी त्रिवेणी में स्नान कर चुके हैं । गुरुमुख एकाग्रचित्त हो एक परमात्मा की आराधना करते हैं ।। ३ ।।

पउड़ी ४

(चौकड़ी का वर्णन–गुरुमुख)

(गुरुमुख व्यक्ति) उत्पत्ति के चार स्रोतों अर्थात् अंडज, जेरज, स्वेदज, उद्भिद तथा चारों वाणियों (परा, पश्यन्ति, मध्यमा, वैखरी) की भी साधना कर लेते हैं अर्थात् उन्हें अपने वश में कर लेते हैं । चार ही दिशाएँ हैं, चार युग हैं, चार वर्ण हैं और चार ही वेदों का वर्णन मिलता है । धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को जीतकर वे रज, तम, सत् अवस्थाओं को लाँघकर तुरीयावस्था में प्रवेश करते हैं । सनक, सनंदन, सनातन, सनत्कुमार चार आश्रम, चारों वीरों अर्थात् दानवीरों, धर्मवीरों, दयावीरों और युद्धवीरों को भी वे वश में कर लेते हैं । जिस प्रकार चौपड़ में अकेले को मारा जाता है और दो गोटियों को नहीं मारा जाता, उसी प्रकार गुरुमुख व्यक्ति एक प्रभु के साथ मिलकर जोड़ा बना लेते हैं और अजेय बन जाते हैं ।

चउपड़ि जिउ चउसार मारि जोड़ा होइ न कोइ रञाणी ।
रंग बिरंग तंबोल रस बहु रंगी इकु रंगु नीसाणी ।
गुरमुखि साधसंगति निरबाणी ॥ ४ ॥

पउड़ी ५

(पंच हर संख्या–गुरमुख)

पउणु पाणी बैसतंरी धरति अकासु उलंघि पइआणा ।
कामु क्रोध विरोधु लंघि लोभु मोहु अहंकारु विहाणा ।
सति संतोख दइआ धरमु अरथु सु गरंथु पंच परवाणा ।
खेचर भूचर चाचरी उनमन लंघि अगोचर बाणा ।
पंचाइण परमेसरो पंच सबद घनघोर नीसाणा ।
गुरमुखि पंच भूआतमा साधसंगति मिलि साध सुहाणा ।
सहज समाधि न आवण जाणा ॥ ५ ॥

ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि बहुरंगी पान के एक रंग की तरह गुरुमुखों ने वैविध्य में से एक प्रभु के प्रेम का रंग पकड़ लिया होता है । गुरुमुख व्यक्ति साधुसंगति के कारण सांसारिकता में लीन न होकर निर्वाण-पद प्राप्त करते हैं ।। ४ ।।

पउड़ी ५

(पाँच संख्या–गुरुमुख)

(गुरुमुख व्यक्ति) पवन, पानी, अग्नि, धरती और आकाश सबको लाँघ जाता है । काम-क्रोध के विरोध को पार कर वह लोभ, मोह अहंकार को भी पार कर जाता है । वह सत्य, संतोष, दया, धर्म और धैर्य को अपनाता है । वह खेचर, भूचर, चाचरी, उन्मन और अगोचर मुद्राओं से ऊपर उठकर उस प्रभु में ध्यान लगाता है । वह पंचों में परमेश्वर देखता है और पंच शब्दों के घनघोर नाद उसका विशिष्ट चिह्न बन जाते हैं । पंचभूतों का मूल अन्त:करण गुरुमुख 'साधुसंगति' में साध लेता है । इस प्रकार वह सहज समाधि में लीन होकर आवागमन से मुक्त हो जाता है ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(छे दी गिणती–गुरमुख)

छिअ रुती करि साधनाँ छिअ दरसन साधै गुरमती ।
छिअ रस रसना साधि कै राग रागणी भाइ भगती ।
छिअ चिरजीवी छिअजती चक्रवरति छिअ साधि जुगती ।
छिअ सासत्र छिअ करम जिणि छिअ गुराँ गुर सुरति निरती ।
छिअ वरतारे साधिकै छिअ छक छती पवण परती ।
साधसंगति गुर गुर सबद सुरती ॥ ६ ॥

पउड़ी ७

(सपत संख्या–गुरमुख)

सत समुंद उलंघिआ दीप सत इकु दीपकु बलिआ ।
सत सूत इक सूति करि सते पुरीआ लंघि उछलिआ ।
सत सती जिणि सपत रिखि सतिसुरा जिणि अटलु न टलिआ ।
सते सीवाँ साधि कै सतीं सीवीं सुफलिओ फलिआ ।

पउड़ी ६

(छः की गिनती–गुरुमुख)

(गुरुमुख व्यक्ति) छः ऋतुओं की साधना कर गुरुमत के अनुसार छः दर्शनों को भी आत्मसात् करता है । जीभ के छः रसों (खट्टा, मीठा, कसैला, कड़वा, तीखा और नमकीन) को जीत लेता है और छः प्रमुख रागों की रागिनियों–समेत प्रेमाभक्ति में समर्पित हो जाता है । छः चिरंजीव (मार्कण्डेय, काकभुसुंडि, लोमस आदि), छः यतियों, छः चक्रों आदि की युक्तिपूर्वक साधना कर लेता है । संसार के छः व्यवहारों को, छः शास्त्रों को जीतकर इनके छः गुरुओं के साथ मित्रता पैदा करता है । पाँच कर्मेन्द्रियों और छठे मन को साधकर छत्तीस प्रकार के पाखंडों की ओर से वह मुँह मोड़ लेता है । गुरुमुख व्यक्ति की सुरति सत्संगति में पहुँचकर गुरु के शब्द में लीन हो जाती है ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(सात संख्या–गुरुमुख)

सात समुद्रों और सातों द्वीपों से ऊँचा उठकर गुरुमुख व्यक्ति ज्ञान का एक दीप जलाता है । वह शरीर के सात सूत्रों (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन और बुद्धि) को एक सूत्र में बाँधकर सातों पुरियों को पार कर गया है ।

सत अकास पताल सत वसिगति करि उपरेरै चलिआ ।
सते धारी लंघि कै भैरउ खेत्रपाल दल मलिआ ।
सते रोहणि सति वार सति सुहागणि साधि न ढलिआ ।
गुरमुखि साधसंगति विचि खलिआ ॥ ७ ॥

पउड़ी ८

(अशट संख्या–गुरमुख)

अठै सिधी साधि के साधिक सिख समाधि फलाई ।
असटकुली बिखु साधना सिमरणि सेख न कीमति पाई ।
मणु होइ अठ पैसेरीआ पंजू अठे चालीह भाई ।
जिउ चरखा अठ खंभीआ इकतु सूति रहै लिव लाई ।
अठ पहिर असटांगु जोगु चावल रती मासा राई ।
अठ काठा मनु वस करि असट धातु इकु धातु कराई ।
साधसंगति वडी वडिआई ॥ ८ ॥

सातों सतियों, सातों ऋषियों और सातों स्वरों के मर्म को समझ वह अपने निश्चय में अटल रहता है । ज्ञान की सातों भूमिकाओं को पार कर गुरुमुख सातों भूमिकाओं के मूल ब्रह्मज्ञान के फल को प्राप्त करता है । वह सातों पातालों, आकाशों को वश में करके उनसे ऊपर चला जाता है । सातों धाराओं को लाँघकर वह भैरव आदि क्षेत्रपालों के दलों को नष्ट कर देता है । सातों रोहणियों, सातों दिनों और सातों सुहागिनों के कर्मकाण्ड उसे उलझा नहीं सकते । गुरुमुख व्यक्ति सदैव सत्संगति में स्थिर रहता है ।। ७ ।।

पउड़ी ८

(अष्ट संख्या–गुरुमुख)

आठों सिद्धियों की साधना करके गुरुमुख व्यक्ति ने सिद्ध-समाधि का फल प्राप्त किया है । शेषनाग की आठों कुलों की साधना भी स्मरण कर उसका रहस्य नहीं समझ पाई । एक मन आठ पसेरी का होता है, क्योंकि हे भाई ! पाँच अट्ठे चालीस होते हैं । आठ खंभों वाला चरखा एक सूत्र बनाने में अपनी सुरति लगाये रहता है । आठ प्रहर, अष्टांग योग और चावल, रत्ती, राई, माशा में आठ का संबंध है अर्थात् आठ राई को एक चावल, आठ चावल की एक रत्ती, आठ रत्ती का एक माशा होता है । अष्ट वृत्तियों वाले मन को वश में करके गुरुमुख ने उसी भांति सम-रस कर दिया है जैसे अष्टधातु मिलकर एक धातु बन जाती है । सत्-संगति की महिमा महान् है ।। ८ ।।

पउड़ी ९

(नव संख्या–गुरमुख)

नथि चलाए नवै नाथि नाथा नाथु अनाथ सहाई ।
नउ निधान फुरमान विचि परम निधान गिआन गुरभाई ।
नउ भगती नउभगति करि गुरमुखि प्रेम भगति लिव लाई ।
नउग्रिह साध ग्रिहसत विचि पूरे सतिगुर दी वडिआई ।
नउखंड साध अखंड होइ नउ दुआरि लंघि निज घरि जाई ।
नउ अंग नील अनील होइ नउकुल निग्रह सहजि समाई ।
गुरमुखि सुख फलु अलखु लखाई ॥ ९ ॥

पउड़ी १०

(दस संख्या–गुरमुख)

संनिआसी दस नाव धरि सच नाव विणु नाव गणाइआ ।
दस अवतार अकारु करि एकंकारु न अलखु लखाइआ ।

पउड़ी ९

(नौ संख्या–गुरुमुख)

(गुरुमुख व्यक्ति) नौ नाथों को भी अपने अधीन कर लेता है परन्तु स्वयं को अनाथ (विनम्र) और प्रभु को अनाथों का नाथ मानता है । नौ निधियाँ उसकी आज्ञा में चलती हैं और ज्ञान रूपी परम सागर उनका गुरुभाई के समान साथ देता है । नये भक्त तो नवधा भक्ति (कीर्तन, श्रवण, मनन आदि) करते हैं पर गुरुमुख प्रेमाभक्ति में लीन रहते हैं । उसने पूरे सद्गुरु के आशीर्वाद से गृहस्थ में ही रहते हुए नवग्रहों को नियन्त्रण में कर लिया है । वह नवखंड धरती को जीतकर स्वयं छिन्न-भिन्न नहीं होता और नव-द्वारों की माया से ऊपर उठकर निज स्वरूप में आ बसता है । नौ तक की गिनती से ही आगे नील, अनील आदि अनंत गिनतियाँ बनी हैं और शरीर में स्थित नव-रसों का निग्रह कर गुरुमुख सहज भाव में लीन हो जाता है । गुरुमुख ही अप्राप्य सुख फल प्राप्त करते हैं ।। ९ ।।

पउड़ी १०

(दस संख्या–गुरुमुख)

संन्यासियों ने अपने पंथों के दस नाम रखकर वास्तव में सत्यनाम के बिना केवल अपना ही नाम गिनाया है । दस अवतारों ने आकार धारण करके भी उस अलख एक ॐकार के दर्शन न करवाये । तीर्थों के दस पर्वों (अमावस्या, पूर्णमासी, संक्रांति आदि) का मनाया जाना भी वास्तविक गुरुपर्व की महत्ता को नहीं जान पाया।

तीरथ पुरब संजोग विचि दस पुरबीं गुरगुरबि न पाइआ ।
इक मनि इक न चेतिओ साधसंगति विणु दहदिसि धाइआ ।
दस दहीआँ दस अस्वमेध खाइ अमेध निखेधु कराइआ ।
इंदरीआँ दस वसि करि बाहरि जांदा वरजि रहाइआ ।
पैरी पै जगु पैरी पाइआ ।। १० ।।

पउड़ी ११

(एकादश संख्या-गुरमुख)

इक मनि होइ इकादसी गुरमुखि वरतु पतिब्रति भाइआ ।
गिआरह रुद्र समुद्र विचि पल दा पारावारु न पाइआ ।
गिआरह कस गिआरह कसे कसि कसवट्टी कस कसाइआ ।
गिआरह गुण फैलाउ करि कच पकाई अघड़ घड़ाइआ ।
गिआरह दाउ चढ़ाउ करि दूजा भाउ कुदाउ रहाइआ ।
गिआरह गेड़ा सिखु सुणि गुर सिखु लै गुरसिखु सदाइआ ।
साधसंगति गुरु सबदु वसाइआ ।। ११ ।।

इस मन ने एकाग्र होकर उस प्रभु का चिन्तन नहीं किया और सत्संगति के बिना वह दसों दिशाओं में भटकता रहा । मुसलमानों के मुहर्रम के दस दिन और हिन्दुओं के दस अश्वमेघों को गुरुमुख अपवित्र करार देता है । वह दसों इंद्रियों को वश में करके बाहर दौड़ते मन को रोक लेता है । वह स्वयं विनम्रता से चरण-वन्दना करता है और सारा संसार उसके चरणों में आ पड़ता है ।। १० ।।

पउड़ी ११

(ग्यारह संख्या–गुरुमुख)

पतिव्रता स्त्री की तरह मन की एकाग्रता रूपी एकादशी का व्रत गुरुमुख को अच्छा लगता है । ग्यारह रुद्र भी संसार रूपी सागर का रहस्य नहीं समझ पाये । गुरुमुख ने (दस इन्द्रियाँ और ग्यारहवाँ मन) ग्यारहों को ही नियन्त्रण में कर लिया है । उनके ग्यारह विषय भी काबू में कर मन रूपी कंचन को भक्ति की कसौटी पर कस कर शुद्ध किया है । ग्यारह गुणों से संयुक्त कर कच्चे मन को ठोंक-ठोंक कर पक्का किया है । ग्यारह गुणों (सत्य, संतोष, दया, धर्म, संयम, धैर्य, श्रद्धा आदि) को धारण कर दुबिधा और द्वैत-भाव को नष्ट कर दिया है । ग्यारह बार गुरुमंत्र को सुनकर गुरुमुख गुरु की शिक्षा लेकर गुरसिक्ख कहलाता है । सत्-संगति में गुर-शब्द (हृदय में) बसता है ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(द्वादश संख्या-गुरमुख)

बारह पंथ सधाइ कै गुरमुखि गाडी राह चलाइआ ।
सूरज बारह माह विचि ससीअरु इकतु माहि फिराइआ ।
बारह सोलह मेलि करि ससीअर अंदरि सूर समाइआ ।
बारह तिलक मिटाइकै गुरमुखि तिलकु नीसाणु चड़ाइआ ।
बारह रासी साधि कै सचि रासि रहरासि लुभाइआ ।
बारह वंनी होइकै बारह मासे तोलि तुलाइआ ।
पारस पारसि परसि कराइआ ॥ १२ ॥

पउड़ी १३

(त्रियोदश संख्या-गुरमुख)

तेरह ताल अऊरिआ गुरमुख सुख तपु ताल पुराइआ ।
तेरह रतन अकारथे गुर उपदेसु रतनु धनु पाइआ ।

पउड़ी १२

(बारह संख्या-गुरुमुख)

योगियों के बारहों पंथों को जीतकर गुरुमुखों ने (मोक्ष के लिए) सरल रास्ता प्रचलित किया है । सूर्य बारह महीने में धरती की परिक्रमा करता है पर चाँद एक महीने में (पृथ्वी का चक्कर) लगा लेता है अर्थात् तमस् और रजस् गुणी सूर्य जो कार्य बारह महीने में करता है सत्त्व गुणी चन्द्र वह एक महीने में ही कर लेता है। बारह और सोलह के मेल से सूर्य-चन्द्र में समा जाता है अर्थात् रजस् और तमस् सत्त्व गुण में समा जाते हैं । गुरुमुख वैष्णवों के बारह प्रकार के तिलकों को त्यागकर प्रभु-प्रेम की निशानी का तिलक माथे पर लगाता है । गुरुमुख व्यक्ति बारह राशियों को जीतकर सत्य-राशि की मर्यादा में लीन रहता है । बारह माशे का शुद्ध सोना बनकर वे इस संसार रूपी बाज़ार में खरे उतरते हैं । गुरुमुख सच्चे पारस रूपी गुरु को स्पर्श कर स्वयं भी पारस हो जाते हैं ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(तेरह संख्या-गुरुमुख)

राग-विद्या के तेरह ताल अधूरे हैं पर गुरुमुख अपनी (गृहस्थ) साधना के ताल से सुख प्राप्त करता है। तेरह रत्न भी व्यर्थ हैं क्योंकि गुरुमुख गुरु-उपदेश रूपी रत्न-धन प्राप्त करता है। कर्मकांडियों ने तेरह प्रकार के कर्मकांडों के भ्रमों में जगत् को भुला रखा है।

तेरह पद करि जग विचि पितरि करम करि भरमि भुलाइआ ।
लख लख जग न पुजनी गुरसिख चरणोदक पीआइआ ।
जग भोग नईवेद लख गुरमुखि मुखि इकु दाणा पाइआ ।
गुरभाई संतुसटु करि गुरमुखि सुख फलु पिरमु चखाइआ ।
भगतिवछलु होइ अछलु छलाइआ ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(१४-१५-१६ दी गिणती–गुरमुख)

चउदह विदिआ साधि कै गुरमुति अबिगति अकथ कहाणी ।
चउदह भवण उलंघि कै निज घरि वासु नेहु निरबाणी ।
पंद्रह थिती पखु इकु क्रिसन सुकल दुइ पख नीसाणी ।
सोलह सार संघारु करि जोड़ा जुड़िआ निरभउ जाणी ।
सोलह कला संपूरणो ससि घरि सूरजु विरती हाणी ।
नारि सोलह सींगार करि सेज भतार पिरम रसु माणी ।
सिव तै सकति सतारह वाणी ।। १४ ।।

गुरुमुखों के चरणामृत के तुल्य लाखों यज्ञ आदि भी नहीं पहुँच सकते । गुरुमुख का अनाज का एक दाना भी लाखों यज्ञों, भोगों और नैवेद्यों के तुल्य है क्योंकि गुरुमुख अपने गुरुभाइयों के साथ संतुष्टि का अनुभव करते हैं और परमसुख को प्राप्त करते हैं । परमात्मा अछल है पर भक्तिवत्सल होकर वह भक्तों द्वारा छल लिया जाता है ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(१४–१५–१६ की गिनती–गुरुमुख)

चौदहों विद्याओं की साधना कर गुरुमुख व्यक्ति ' गुरुमत' की अकथनीय विद्या को धारण करते हैं । वे चौदह लोकों को लाँघते हुए स्वरूप में निवास करते हैं और निर्वाण-अवस्था में लीन रहते हैं । पंद्रह तिथियों का एक पक्ष होता है और कृष्ण-शुक्ल दो पक्ष हुआ करते हैं । चौपड़ के खेल के समान सोलहों गोटियों को मारकर जोड़े के रूप में संयुक्त होकर ही अभय पद को प्राप्त किया जाता है । सोलह कला संपूर्ण चन्द्रमा (अर्थात् सत्त्व गुण) जब सूर्य में (रजो और तमोगुणों में) प्रविष्ट होता है तो वह कान्तिहीन हो जाता है । स्त्री भी सोलह श्रृंगार करके पति की सेज पर परमसुख का उपभोग करती है । शिव की भक्ति अर्थात् माया की सत्तरह वाणियाँ अर्थात् कलाएँ होती हैं (दस प्राण, पाँच तत्त्व तथा मन, बुद्धि) ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(१८ तों ३४ तक संख्या)

गोत अठारह सोधि कै पड़ै पुराण अठारह भाई ।
उनी वीह इकीह लंघि बाई उमरे साधि निवाई ।
संख असंख लुटाइ कै तेई चौवी पंजीह पाई ।
छबी जोड़ि सताईहा आइ अठाईह मेलि मिलाई ।
उलंघि उणतीह तीह साधि लंघि इकतीह वजी वधाई ।
साध सुलखण बतीहे तेतीह ध्रू चउफेरि फिराई ।
चउतीह लेख अलेख लखाई ॥ १५ ॥

पउड़ी १६

(ईश्वरोपमा)

वेद कतेबहु बाहरा लेख अलेख न लखिआ जाई ।
रूपु अनूपु अचरजु है दरसनु द्रिसटि अगोचर भाई ।

पउड़ी १५

(१८ से ३४ तक संख्या)

अठारह गोत्रों को जीतकर गुरुमुख अठारह पुराणों को भी पढ़ जाते हैं । उन्नीस, बीस, इक्कीस को लाँघकर वे बाईस परगनों के उमरावों को भी झुका लेते हैं । अपना सब कुछ लुटाकर वे तेईस, चौबीस, पचीस की गिनती को सार्थक करते हैं । छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस के नाम पर उस प्रभु से मिलते हैं । उनतीस, तीस को पार कर इकतीस पर पहुँच उसके मन में बधाई बजाई है अर्थात् वे आनंदित हो उठते हैं । बत्तीस लक्षणों की साधना कर वे ध्रुव के समान तेंतीस (करोड़) देवी-देवताओं को भी हिलाकर घुमा देते हैं । चौंतीस पर पहुँच उस अलक्ष्य प्रभु के दर्शन उन्हें हो जाते हैं । अर्थात् गुरुमुख सब संख्याओं से ऊपर उठकर उस निर्गुण प्रभु के प्रेम में मस्त रहते हैं ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(ईश्वरोपमा)

वह प्रभु वेदों-कतेबों से भी परे है और उस अलेख प्रभु को देखा नहीं जा सकता। उसका रूप अनुपम एवं आश्चर्यपूर्ण है। वह इंद्रियों की पहुँच से परे है । उसने एक ही शब्द से सारे ब्रह्मांड का प्रसार कर दिया जिसे किसी भी तराजू पर तौला नहीं जा सकता ।

इकु कवाउ पसाउ करि तोलु न तुलाधार न समाई ।
कथनी बदनी बाहरा थकै सबदु सुरति लिव लाई ।
मन बच करम अगोचरा मति बुधि साधि सोझी थकि पाई ।
अछल अछेद अभेद है भगति वछलु साधसंगति छाई ।
वडा आपि वडी वडिआई ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(गुरमुख सुखफल)

वण वण विचि वणासपति रहै उजाड़ि अंदरि अवसारी ।
चुणि चुणि आंजनि बूटीआ पतिसाही बागु लाइ सवारी ।
सिंजि सिंजि बिरख वडीरीअनि सारि सम्हालि करन वीचारी ।
होनि सफल रुति आईऐ अंम्रित फलु अंम्रित रसु भारी ।
बिरखहु साउ न आवई फल विचि साउ सुगंधि संजारी ।
पूरन ब्रहम जगत्र विचि गुरमुखि साधसंगति निरंकारी ।
गुरमुखि सुख फलु अपर अपारी ।। १७ ।।

वह कथनों से परे है और विभिन्न लोग उसे प्राप्त करने के लिए शब्द में सुरति लगाकर थक चुके हैं (पर उसे नहीं जान सके)। वह मन-वचन-कर्म से परे है जिसे प्राप्त करने की धुन में मति, बुद्धि एवं साधनाएँ भी थक गई हैं। वह प्रभु अछल, अछेद और अभेद है । वह भक्तिवत्सल रूप में सत्संगति में ही व्याप्त रहता है । वह स्वयं बड़ा है और उसका बड़प्पन महान है ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(गुरुमुख सुखफल)

वन-वन में वनस्पति है जो उजाड़ में अनजानी बनी रहती है (माली) चुन-चुनकर उन पौधों को लाते हैं और राजाओं के बाग़ों में लगाते हैं । पानी देकर वृक्षों को बढ़ाया जाता है और विचारवान व्यक्ति उनकी देखभाल करते हैं । ऋतु आने पर वे रसदायक अमृत फल देकर सफल होते हैं । वृक्ष में तो स्वाद नहीं होता पर फल में स्वाद और सुगंधि निहित रहती है । गुरुमुख, सत्संगति और उसमें निहित निराकार प्रभु ही जगत में पूर्णब्रह्म के रूप में अवस्थित हैं । ये गुरुमुख ही अपरंपार सुख रूपी फल हैं ।। १७ ।।

पउड़ी १८

(अंबर वरणन)

अंबरु नदरी आँवदा केवडु वडा कोइ न जाणै ।
उचा केवडु आखीऐ सुंन सरूप न आखि वखाणै ।
लैनि उडारी पंखणू अनल मनल उडि खबरि न आणै ।
ओड़िकु मूलि न लभई सभे होइ फिरनि हैराणै ।
लख अगास न अपड़नि कुदरति कादरु नो कुरबाणै ।
पारब्रहम सतिगुर पुरखु साधसंगति वासा निरबाणै ।
मुरदा होइ मुरीदु सिञाणै ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(गुर महिमा)

गुर मूरति पूरन ब्रहमु घटि घटि अंदरि सूरजु सुझै ।
सूरज कवलु परीति है गुरमुखि प्रेम भगति करि बुझै ।
पारब्रहमु गुर सबदु है निझर धार वरहै गुण गुझै ।
किरखि बिरखु होइ सफलु फलि चंनणि वासु निवासु न खुझै ।

पउड़ी १८

(आकाश-वर्णन)

आकाश दिखाई देता है पर यह कितना बड़ा है कोई नहीं जानता । यह शून्य (आकाश) स्वरूप में कितना ऊँचा है कोई भी बता नहीं सकता । पक्षी उसमें उड़ानें भरते हैं और 'अनलपक्ष' जैसे पक्षी, जो सदैव आकाश में ही उड़ते रहनेवाले माने गये हैं, भी उसके रहस्य को नहीं जान सके । उसके मूल के रहस्य को कोई भी नहीं जान पाया है और सभी हैरान होकर घूम रहे हैं । उस कर्त्ता की कुदरत पर बलिहार जाता हूँ, उसे ऐसे लाखों आकाश भी पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं दे सकते । उस परब्रह्म सत्यपुरुष का निवास तो सत्संगति में ही है । जो सेवक एक दम अहम्-भाव से मृत (दूर) हो जाए वह ही उसकी पहचान कर सकता है ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(गुरु-महिमा)

गुरु पूर्णब्रह्म की मूर्ति है जो घर-घर में एक ही सूर्य के समान प्रकाश कर रहा है । जैसे सूर्य के साथ कमल की प्रीति है वैसे ही गुरुमुख प्रेमाभक्ति के माध्यम से उस प्रभु को जानते हैं । गुरु शब्द ही परब्रह्म है जो एकरस हो गुणों की धारा के रूप में सदैव प्रवाहित होता है ।

अफल सफल समदरस होइ मोहु न धोहु न दुबिधा लुझै ।
गुरमुखि सुख फलु पिरम रसु जीवन मुकति भगति करि दुझै ।
साधसंगति मिलि सहजि समुझै ॥ १९ ॥

पउड़ी २०

(गुर सबद)

सबदु गुरू गुरु जाणीऐ गुरमुखि होइ सुरति धुनि चेला ।
साध संगति सचखंड विचि प्रेम भगति परचै होइ मेला ।
गिआनु धिआनु सिमरणु जुगति कूँज करम हंस वंस नवेला ।
बिरखहुँ फल फलते बिरखु गुरसिख सिखगुर मंतु सुहेला ।
वीहा अंदरि वरतमान होइ इकीह अगोचरु खेला ।
आदिपुरखु आदेसु करि आदि पुरख आदेस वहेला ।
सिफति सलाहणु अंम्रितु वेला ॥ २० ॥ ७ ॥

उस धारा के फलस्वरूप वृक्ष, फल भी फूलते-फलते हैं और चंदन में सुवास की अवस्थिति होती है । क्या फलहीन और क्या फलयुक्त सभी समदर्शी हो जाते हैं और मोह-दुबिधा फिर तंग नहीं करती । गुरुमुख व्यक्ति परमसुख फल और जीवन-मुक्ति भक्ति के माध्यम से प्राप्त करता है । सत्संगति में ही सहज पद की वास्तविक पहचान और जानकारी प्राप्त होती है ।। १९ ।।

पउड़ी २०

(गुरु-शब्द)

गुरु-शब्द को ही गुरु जानो और व्यक्ति गुरुमुख बनकर अपनी सुरति को उस शब्द का शिष्य बनाता है । जब व्यक्ति सत्संगति रूपी सत्यदेश से नेह लगा लेता है तो प्रेमाभक्ति के माध्यम से उसका मिलाप प्रभु से हो जाता है । ज्ञान, ध्यान, सुमिरन की युक्ति में क्रमशः क्रौंच, कछुआ और हंस प्रवीण हैं (पर गुरुमुख में ये तीनों गुण पाए जाते हैं) । जैसे वृक्ष से फल और फल (के बीज) से पुनः वृक्ष होता है वैसे ही गुरु-सिक्ख का भी सफल जीवन-दर्शन है । (परमात्मा--गुरु का शब्द) संसार में भी वर्तमान है पर इससे परे होकर एकंकार (इक्कीस) रूप में भी वह अपने अगोचर खेल में ही लीन है । वह शब्द रूपी शक्ति उस आदिपुरुष को प्रणाम कर उस आदिपुरुष में उसी की आज्ञा में लीन हो जाती है । उसके गुणानुवाद का समय तो भोर की बेला ही है ।। २० ।। ७ ।।

* * *

वार ८

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।।

पउड़ी १

(वसतू निरदेश मंगलाचरण)

इकु कवाउ पसाउ करि कुदरति अंदरि कीआ पासारा ।
पंजि तत परवाणु करि चहुँ खाणी विचि सभ वरतारा ।
केवडु धरती आखीऐ केवडु तोलु अगास अकारा ।
केवडु पवणु वखाणीऐ केवडु पाणी तोलु विथारा ।
केवडु अगनी भारु है तुलि न तुलु अतोलु भंडारा ।
केवडु आखा सिरजणहारा ।। १ ।।

पउड़ी २

(उहो ही)

चउरासीह लख जोनि विचि जलु थलु महीअलु त्रिभवण सारा ।
इकसि इकसि जोनि विचि जीअ जंत अगणत अपारा ।

पउड़ी १

(वस्तु-निर्देश मंगलाचरण)

(परमात्मा के) एक ही शब्द (हुक्म) ने सारी सृष्टि रूपी प्रकृति का प्रसार और स्थापना कर दी । पाँचों तत्त्वों को प्रामाणिक बनाकर चारों उत्पत्ति-स्रोतों (अंडज, जेरज, स्वदेज, उद्‌भिद) के व्यवहार को निश्चित किया । धरती कितनी बड़ी है और आकाश का विस्तार कहाँ तक है, क्या कहा जाए ? पवन को कितना विस्तृत और पानी की तौल कितनी बताई जाए ? अग्नि की मात्रा कितनी है (कुछ कहा नहीं जा सकता) ? उस परमात्मा के भंडार तौले-नापे नहीं जा सकते । जब उसकी बनाई चीज़ें गिनी-तौली नहीं जा सकतीं तो भला कैसे बताया जाए कि वह सृजनहार कितना बड़ा है ! ।। १ ।।

पउड़ी २

(वही)

जल-स्थल और पाताल लोकों में चौरासी लाख योनि वाले जीव भरे पड़े हैं । एक-एक योनि में असंख्य जीव-जन्तु हैं । वह प्रभु करोड़ों ब्रह्मांडों को बनाकर उन्हें हर समय सँभालता रहता है अर्थात् उनका पोषण करता रहता है ।

सासि गिरासि समालदा करि ब्रहमंड करोड़ि सुमारा ।
रोम रोम विचि रखिओनु ओअंकार अकारु विथारा ।
सिरि सिरि लेख अलेखु दा लेख अलेख उपावणुहारा ।
कुदरति कवणु करै वीचारा ॥ २ ॥

पउड़ी ३

(दैवी अते आसुरी सँपदा)

केवडु सतु संतोखु है दया धरमु ते अरथु वीचारा ।
केवडु कामु करोधु है केवडु लोभु मोहु अहंकारा ।
केवडु द्रिसटि वखाणीऐ केवडु रूपु रंगु परकारा ।
केवडु सुरति सलाहीऐ केवडु सबदु विथारु पसारा ।
केवडु वासु निवासु है केवडु गंध सुगंधि अचारा ।
केवडु रस कस आखीअनि केवडु साद नाद ओअंकारा ।
अंतु बिअंतु न पारावारा ॥ ३ ॥

कण-कण में उस प्रभु ने अपना ही विस्तार प्रतिपादित किया है । प्रत्येक जीव-अजीव के माथे पर भाग्य-लेख लिखे हैं केवल यह पैदा करनेवाला ही अलेख है अर्थात् सब गणनाओं से मुक्त है । उसकी महिमा का भला कौन विचार करे ? ।। २ ।।

पउड़ी ३

(दैवी और आसुरी संपदा)

सत्य, सन्तोष, दया, धर्म और अर्थ कितने बड़े हैं ? काम, क्रोध, लोभ, मोह का विस्तार कितना बड़ा है ? दृष्टियाँ कितनी हैं और रूप-रंग कितने प्रकार के हैं ? सुरति कितनी बड़ी है और शब्द का विस्तार प्रसार कितना है ? गंधों के स्रोत कितने बड़े हैं और गंधों-सुगन्धों के व्यवहार कैसे हैं ? रस और कषाय कितने हैं और ॐकार के नाद कितने हैं, बताये नहीं जा सकते । उसके विस्तार का अंत नहीं, वह अनंत हैं ।। ३ ।।

पउड़ी ४

(तथा च)

केवडु दुखु सुखु आखीऐ केवडु हरखु सोगु विसथारा ।
केवडु सचु वखाणीऐ केवडु कूडु कमावणहारा ।
केवडु रुती माह करि दिह राती विसमादु वीचारा ।
आसा मनसा केवडी केवडु नीद भुख अहारा ।
केवडु आखाँ भाउ भउ सांति सहजि उपकार विकारा ।
तोलु अतोलु न तोलणहारा ॥ ४ ॥

पउड़ी ५

(तथा च)

केवडु तोलु संजोगु दा केवडु तोलु विजोगु वीचारा ।
केवडु हसणु आखीऐ केवडु रोवण दा बिसथारा ।
केवडु है निरविरति पखु केवडु है परविरति पसारा ।
केवडु आखा पुंन पापु केवडु आखा मोखु दुआरा ।

पउड़ी ४

(तथा)

दुख-सुख और हर्ष-शोक का विस्तार कितना है ? सत्य का कैसे वर्णन किया जाय और झूठ बोलनेवाले कितने हैं, क्या कहा जाए ? कैसे ऋतुओं को महीनों, दिन और रात में बाँटा गया है ? यह अद्‌भुत विचार है । आशा-तृष्णा कितनी बड़ी है और नींद भूख तथा आहारों का विस्तार कितना बड़ा है ? प्रेम और भय के बारे में क्या कहूँ ? शान्ति, सहज, उपकार और विकारों के बारे में भी क्या कहा जाए ? यह सब अगणित-अनंत है, कोई भी इसको जान नहीं सकता ।। ४ ।।

पउड़ी ५

(तथा)

संयोग और वियोग के विस्तार का कैसे विचार किया जाए, क्योंकि जीव निरन्तर मिलते-बिछुड़ते रहते हैं। हँसने और रोने के विस्तार के बारे में क्या कहा जाए ? निवृत्ति और प्रवृत्ति की क्या सीमा-रेखा है, क्या बताया जाए ?

केवडु कुदरति आखीऐ इकदूँ कुदरति लख अपारा ।
दानै कीमति ना पवै केवडु दाता देवणहारा ।
अकथ कथा अबिगति निरधारा ॥ ५ ॥

पउड़ी ६

(संगति दा सफल)

लख चउरासीह जूनि विचि माणस जनमु दुलंभु उपाइआ ।
चारि वरन चारि मजहबाँ हिंदू मुसलमाण सदाइआ ।
कितड़े पुरख वखाणीअनि नारि सुमारि अगणत गणाइआ ।
त्रै गुण माइआ चलितु है ब्रहमा बिसनु महेसु रचाइआ ।
वेद कतेबाँ वाजदे इकु साहिबु दुह राह चलाइआ ।
सिव सकती विचि खेलु करि जोग भोग बहु चलितु बणाइआ ।
साध ससाध संगति फलु पाइआ ॥ ६ ॥

पाप और पुण्य का क्या बखान किया जाए और मोक्ष-द्वार के बारे में क्या कहा जाए ? प्रकृति का क्या बयान किया जाए, क्योंकि इस एक से आगे लाखों-हज़ारों प्रकारों का विस्तार होता है । उस दानी की कीमत नहीं आँकी जा सकती और यह नहीं बताया जा सकता कि वह दाता कितना बड़ा है ! उसकी अकथ कथा सभी आधारों से परे और अव्यक्त है ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(संगति का फल)

चौरासी लाख योनियों में से मानव-जन्म दुर्लभ है । यह मानव चार वर्णों और चार धर्मों में बँटकर हिन्दू-मुसलमान के नाम से पुकारा जाने लगा । कितने पुरुष और कितनी स्त्रियाँ हैं । इनकी गणना नहीं की जा सकती । यह संसार त्रिगुणात्मक माया का प्रपंच है जिसमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश की भी रचना की गई है । (हिन्दू) वेद और (मुसलमान) कतेब पढ़ते हैं । वह साहिब परमात्मा एक है पर उस तक पहुँचने के राह दो बना दिये गये हैं । शिव-शक्ति अर्थात् माया के खेल में से ही योग और भोग के प्रपंच बनाए गए हैं । साधु और असाधु की संगति का फल भी तदनुसार बना दिया है ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(हिंदू मत)

चारि वरन छिअ दरसनाँ सासत्र बेद पुराणु सुणाइआ ।
देवी देव सरेवदे देवसथल तीरथ भरमाइआ ।
गण गंधरब अपछराँ सुरपति इंद्र इंद्रासण छाइआ ।
जती सती संतोखीआँ सिध नाथ अवतार गणाइआ ।
जप तप संजम होम जग वरत नेम नईवेद पुजाइआ ।
सिखा सूत्रि माला तिलक पितर करम देव करम कमाइआ ।
पुंन दान उपदेसु दिड़ाइआ ।। ७ ।।

पउड़ी ८

(मुहमदी मत)

पीर पिकंबर अउलीए गउस कुतब वलीउलह जाणे ।
सेख मसाइक आखीअनि लख लख दरि दरिवेस वखाणे ।
सुहदे लख सहीद होइ लख अबदाल मलंग मिलाणे ।
सिंधी रुकन कलंदराँ लख उलमाउ मुला मउलाणे ।

पउड़ी ७

(हिन्दू-मत)

(हिन्दू-मत ने) चार वर्ण, छः दर्शन, शास्त्र, वेद और पुराण लोगों को सुनाये-समझाये । व्यक्ति देवी-देवताओं की पूजा करते हैं और देवस्थल तथा तीर्थस्थलों पर घूमते हैं । इसमें गण, गंधर्व, अप्सराएँ, इन्द्र, इन्द्रासन आदि का वर्णन है । इसमें यति, सती, सन्तोषी, सिद्ध, नाथ और अवतार आदि शामिल हैं । जप, तप, संयम, होम, यज्ञ, व्रत, नियम (यम), नैवेद्य के माध्यम से पूजा का प्रबन्ध है । शिखा, सूत्र (जनेऊ), माला, तिलक, पितृकर्म, देवकर्म आदि का विधान है । इसमें पुण्य-दान के उपदेश को बार-बार दुहराया गया है ।। ७ ।।

पउड़ी ८

(मुहम्मदी-मत)

पीर, पैग़ंबर, औलिआ, गौस, कुतब और वलीउल्लाह आदि इस मत में जाने जाते हैं । इसमें लाखों शेख, मशायक (अभ्यास करनेवाले साधक), दरवेश आदि का वर्णन मिलता है । लाखों शोहदे, शहीद, लाखों अब्दाल (फ़क़ीर), मलंग आदि मिलते हैं । लाखों सिंधी रुकन, क़लंदर, उलमा और मौलानागण पाये जाते हैं ।

सरै सरीअति आखीऐ तरक तरीकति राह सिञाणे ।
मारफ़ती मारूफ लख हक हकीकति हुकमि समाणे ।
बुजरकवार हजार मुहाणे ॥ ८ ॥

पउड़ी ९

(ब्रहमण जातॉं)

कितड़े बाहमण सारसुत विरतीसर लागाइत लोए ।
कितड़े गउड़ कनउजीए तीरथ वासी करदे ढोए ।
कितड़े लख सनउढीए पाँधे पंडित वैद खलोए ।
केतड़िआँ लख जोतकी वेद वेदुए लक्ख पलोए ।
कितड़े लख कवीसराँ ब्रहम भाट ब्रहमाउ बखोए ।
केतड़िआँ अभिआगता घरि घरि मंगदे लै कनसोए ।
कितडे सउण सवाणी होए ॥ ९ ॥

कई शरीअत का वर्णन करने वाले और तरीकत के आधार पर तर्क करनेवाले हैं । लाखों ज्ञान के आखिरी स्तर "मारिफत" तक पहुँचकर प्रसिद्ध हो गये हैं और लाखों उसके हुक्म में उस परम हकीकत (सत्य) में समा गये हैं । हज़ारों ही बुजुर्ग (पैदा हुए और) नष्ट हो गये ।। ८ ।।

पउड़ी ९

(ब्राह्मण-जातियाँ)

अनेकों सारस्वत ब्राह्मण, पुरोहित और लिंगायत हुए हैं । कितने ही गौड़, कनौजीआ ब्राह्मण हैं जो तीर्थों पर निवास करते हैं । कितने ही लाख सनाढ्य, पुरोहित, पंडित और वैद्य कहे जाते हैं । कितने ही लाखों ज्योतिषी हैं । कितने ही वेद-वेदांग को जाननेवाले समाप्त हो चुके हैं । कितने ही लाख ब्राह्मण, भाट, कवीश्वर आदि कहलाते हैं । कितने ही अभ्यागत (एक प्रकार के भिक्षुक) बनकर स्थान-स्थान की खबरें लेते हुए माँगते-खाते घूमते हैं । कितने ही शकुन-अपशकुन को बतानेवाले और इस प्रकार से उपजीविका कमानेवाले हैं ।। ९ ।।

पउड़ी १०

(खत्री जाताँ)

कितड़े खत्री बारही केतड़िआँ ही बावंजाही ।
पावाधे पाचाधिआ फलीआँ खोखराइणु अवगाही ।
केतड़ियाँ चउड़ोतरी केतड़ियाँ सेरीण विलाही ।
केतड़िआँ अवतार होइ चक्रवरति राजे दरगाही ।
सूरजवंसी आखीअनि सोमवंस सूरवीर सिपाही ।
धरमराइ धरमातमा धरमु वीचारु न वेपरवाही ।
दानु खड़गु मंतु भगति सलाही ॥ १० ॥

पउड़ी ११

(वैश जाती)

कितड़े वैस वखाणीअनि राजपूत रावत वीचारी ।
तूअर गउड़ पवार लख मलण हास चउहाण चितारी ।
कछवाहे राठउड़ लख राणे राए भूमीए भारी ।
बाघ बघेले केतड़े बलवंड लख बुंदेले कारी ।

पउड़ी १०

(क्षत्री जातियाँ)

कितने ही क्षत्री (पंजाबी खत्तरी) बारह और कितने ही बावन (विशिष्ट) कुलों में से हैं । उनमें कई पाधे, पाचाधे और कई पाली और खुखरान कहे जाते हैं। कितने ही चौड़ोतरी और कितने सरीन हो गुजरे हैं। कितने ही अवतारों के रूप में चक्रवर्ती राजा हो चुके हैं । कइयों को सूर्यवंशी और कइयों को चन्द्रवंशी कहा जाता है । कई धर्मराज की तरह धर्मात्मा, धर्म का विचार करनेवाले और कई किसी की भी परवाह न करनेवाले हो गुज़रे हैं । सफल क्षत्री वह है जो दान देता, खड्ग धारण करता, भक्ति करता और प्रभु का जाप करता है ।। १० ।।

पउड़ी ११

(वैश्य-जाति)

वैश्यों में राजपूत, रावत आदि कितनों ही का विचार किया है । इनमें कितने ही तूअर (तोमर), गौड़, पवार, मल्हन, हास, चौहान आदि याद किये जाते हैं । कछवाहे, राठौर आदि अनेकों राजा और ज़मींदार हो चुके हैं । बाघ, बघेल और अनेकों बलशाली बुंदेले हो गुज़रे हैं । कितने ही भाट (भट्टी) हो चुके हैं जो बड़े-बड़े दरबारों के दरबारी थे।

केतड़िआँ ही भुरटीए दरबाराँ अंदरि दरबारी ।
कितड़े गणी भदउड़ीए देसि देसि वडे इतबारी ।
हउमै मुए, न हउमै मारी ॥ ११ ॥

पउड़ी १२

(गोताँ ते किरत दीआँ जाताँ)

कितड़े सूद सदाइदे कितड़े काइथ लिखणहारे ।
केतड़िआँ ही बाणीए कितड़े भाभड़िआँ सुनिआरे ।
केतड़िआँ लख जट होइ केतड़िआँ छींबै सैसारे ।
केतड़िआँ ठाठेरिआ केतड़िआँ लोहार विचारे ।
कितड़े तेली आखीअनि कितड़े हलवाई बाजारे ।
केतड़िआँ लख पंखीए कितड़े नाई तै वणजारे ।
चहु वरनाँ दे गोत अपारे ॥ १२ ॥

पउड़ी १३

(वरण, मत)

कितड़े गिरही आखीअनि केतड़िआँ लख फिरनि उदासी ।
केतड़िआँ जोगीसुराँ केतड़िआँ होए संनिआसी ।

कितने ही भदौड़ के गुणवान हैं जिनका देश-देशान्तरों में सिक्का जमा हुआ था। परन्तु ये सब अपने अहम् में ही नष्ट हो गये तथा अपने अहम् को न मार सके ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(गोत्र और कार्य-आधृत जातियाँ)

कितने ही सूद कहलाते हैं और कितने ही कायस्थ मुंशी हैं । कितने ही वणिक् (बनिया) हैं और कितने ही जैनी सुनार हैं । इस संसार में लाखों जाट और लाखों ही छीपी हैं । कितने ही ठठेरे हैं और कितने ही लोहारों का विचार किया जाता है । अनेकों तेली हैं और अनेकों ही हलवाई बाज़ारों में विद्यमान हैं। कितने ही संदेशवाहक (हरकारा) हैं, कितने ही नाई हैं और कितने ही व्यापार करनेवाले हैं । चारों वर्णों में अनेकों गोत्र हैं ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(वर्ण-मत)

कितने ही गृहस्थी हैं और लाखों ही उदासीन होकर रह रहे हैं । कितने ही योगेश्वर हैं और कितने ही संन्यासी हैं । संन्यासी दस नामों वाले हैं

संनिआसी दस नाम धरि जोगी ब्रारह पंथ निवासी ।
केतड़िआँ लख परम हंस कितड़े बानप्रसत बनवासी ।
केतड़िआँ ही डंड धार कितड़े जैनी जीअ दैआसी ।
छिअ घरि छिअ गुरि आखीअनि छिअ उपदेस भेस अभिआसी ।
छिअ रुति बारह माह करि सूरजु इको बारह रासी ।
गुरा गुरु सतिगुरू अबिनासी ॥ १३ ॥

पउड़ी १४

(साधु)

कितड़े साध वखाणीअनि साधसंगति विचि परउपकारी ।
केतड़िआँ लख संत जन केतड़िआँ निज भगति भंडारी ।
केतड़िआँ जीवन मुकति ब्रहम गिआनी ब्रहम वीचारी ।
केतड़िआँ समदरसीआँ केतड़िआँ निरमल निरंकारी ।
कितड़े लख बिबेकीआँ कितड़े देह बिदेह अकारी ।
भाइ भगति भै वरतणा सहजि समाधि बैराग सवारी ।
गुरमुखि सुख फलु गरबु निवारी ॥ १४ ॥

और योगी बारह पंथों में विभक्त हैं । कितने ही परमहंस हैं और अनेकों ही वानप्रस्थ वनवासी हैं। कितने ही दंड धारण करनेवाले और कितने ही जीव-दया करनेवाले जैनी हैं । छः शास्त्र हैं , छः उनके गुरु हैं और उनके छः वेश-अभ्यास और उपदेश हैं । छः ऋतुएँ और बारह मास हैं पर एक-एक राशि में घूमनेवाला सूर्य एक ही है। गुरुओं का भी गुरु सच्चा गुरु (परमात्मा) ही अविनाशी है ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(साधु)

सत्संगति में घूमनेवाले और परोपकार करनेवाले कितने ही साधु हैं । कितने लाख संत जन हैं जो अपनी भक्ति के भंडार को भरते रहते हैं । कितने हो जीवन-मुक्त ब्रह्मज्ञानी और ब्रह्म-विचारक हैं । कितने ही सबको समान भाव से देखनेवाले समदर्शी हैं और कितने ही निर्मल निरंकारी हैं । कितने लाख विवेकी वृत्ति वाले हैं और कितने ही देह के रहते हुए भी विदेह रूप वाले हैं । वे भाव -भक्ति में व्यवहार करते हैं और सहज समाधि की सवारी में लीन रहते हैं । गुरुमुख परमसुख का फल अहंकार की निवृत्ति करके ही प्राप्त करते हैं ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(असाधु जन)

कितड़े लख असाध जग विचि कितड़े चोर जार जूआरी ।
वटवाड़े ठगि केतड़े केतड़िआँ निंदक अविचारी ।
केतड़िआँ अकिरतघण कितड़े बेमुख ते अणचारी ।
स्वामि ध्रोही विसवासिघात लूण हरामी मूरख भारी ।
बिखलीपति वेसुआ रवत मद मतवाले वडे विकारी ।
विसट विरोधी केतड़े केतड़िआँ कूड़े कूड़िआरी ।
गुर पूरे बिनु अंति खुआरी ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(यवनी मताँ दे भेद)

कितड़े सुंनी आखीअनि कितड़े ईसाई मूसाई ।
केतड़िआ ही राफजी कितड़े मुलहिद गणत न आई ।
लख फिरंगी इरमनी रूमी जंगी दुशमन दाई ।

पउड़ी १५

(असाधु जन)

इस संसार में अनेकों असाधु, चोर, यार और जुआरी हैं । कितने ही राहजन, ठग, निंदक और विचारशून्य हैं । कितने ही कृतघ्न, प्रभु से विमुख और अनाचारी हैं । स्वामिघातक, विश्वासघाती, नमकहराम और भारी मूर्ख भी अनेकों हैं । कितने ही विषयों में लीन, वेश्यागामी, मद-मतवाले और बड़े विकारी लोग हैं । कई मध्यस्थ बनकर विरोध पैदा करनेवाले और कितने ही मात्र झूठ बोलनेवाले हैं । पूरे गुरु (की शरण में जाए) बिना सभी अन्त में ख्वार ही होंगे ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(यवन-मतों के भेद)

कितने ही सुन्नी, ईसाई, मूसाई कहे जाते हैं । कितने ही राफ़जी और मुलहिद (कियामत का दिन न माननेवाले) हैं। लाखों फिरंगी, आरमीनी, रूमी और दुश्मनों से जंग करनेवाले हैं । दुनिया में कितने ही सैयद और तुर्क के नाम से जाने जाते हैं ।

कितड़े सईयद आखीअनि कितड़े तुरकमान दुनिआई ।
कितड़े मुगल पठाण हनि हबसी तै किलमाक अवाई ।
केतड़िआँ ईमान विचि कितड़े बेईमान बलाई ।
नेकी बदी न लुकै लुकाई ॥ १६ ॥

पउड़ी १७

(अड्ड अड्ड हालताँ)

कितड़े दाते मंगते कितड़े वैद केतड़े रोगी ।
कितड़े सहजि संजोग विचि कितड़े विछुड़ि होइ विजोगी ।
केतड़िआँ भुखे मरनि केतड़िआँ राजे रस भोगी ।
केतड़िआँ दे सोहिले केतड़िआँ दुखु रोवनि सोगी ।
दुनीआँ आवण जावणी कितड़ी होई कितड़ी होगी ।
केतड़िआँ ही सचिआर केतड़िआँ दगाबाज दरोगी ।
गुरमुखि को जोगीसरु जोगी ॥ १७ ॥

कितने ही मुग़ल, पठान, हब्शी और किलमाक (सुलेमानी-मत का एक संप्रदाय) हैं । अनेकों ही ईमान में रहनेवाले और अनेकों ही बेईमानी का जीवन बसर करनेवाले हैं । फिर भी नेकी और बदी छिपाए नहीं छिपती ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(अलग-अलग परिस्थितियाँ)

कितने ही दानी, कितने भिखारी और कितने ही वैद्य और रोगी हैं । कितने ही सहज भाव से (प्रिय से) संयुक्त हैं और कितने ही बिछुड़कर वियोगी बने हुए हैं। कितने ही भूखे मर रहे हैं और कितने ही राजा बनकर राज भोग रहे हैं । कितने खुशी के गीत गा रहे हैं और कितने ही दुखों में दुखी रो रहे हैं । दुनिया तो आनी-जानी है कितनी बार ये बनी है और कितनी बार अभी बनेगी । इस दुनिया में कितने सत्याचारी हैं और कितने ही दग़ाबाज़ और झूठे हैं । कोई बिरला ही गुरुमुख सच्चा योगेश्वर योगी है ।। १७ ।।

पउड़ी १८

(सरीर दीआँ अड्ड अड्ड हालताँ)

कितड़े अंन्हे आखीअनि केतड़िआँ ही दिसनि काणे ।
केतड़िआँ चुन्हे फिरनि कितड़े रतीआने उकताणे ।
कितड़े नकटे गुणगुणे कितड़े बोले बुचे लाणे ।
केतड़िआँ गिल्हड़ गली अंगि रसउली वेंणि विहाणे ।
टुंडे बाँडे केतड़े गंजे लुंजे कोढ़ी जाणे ।
कितड़े लूले पिंगुले कितड़े कुब्बे होइ कुड़ाणे ।
कितड़े खुसरे हीजड़े केतड़िआ गुंगे तुतलाणे ।
गुर पूरे विण आवण जाणे ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(गिणती)

केतड़िआँ पतिसाह जगि कितड़े मसलति करनि वजीरा ।
केतड़िआँ उमराउ लख मनसबदार हजार वडीरा ।
हिकमति विचि हकीम लख कितड़े तरकस बंद अमीरा ।
कितड़े चाकर चाकरी भोई मेठ महावत मीरा ।

पउड़ी १८

(शरीर की विभिन्न अवस्थाएँ)

कितने ही अंधे हैं और कितने ही काने दिखाई पड़ते हैं । कितने चौंधी आँखों वाले और कितने रतौंधी वाले हैं । कितने नकटे, नाक से बोलनेवाले, बहरे और बिना कानों के हैं । कितनों के गले सूजे हुए और कइयों के अंगों में रसौलियाँ हैं । कितने लूले, गंजे, बिना हाथ के और कोढ़ी हैं । कितने लूले, कुबड़े और पिंगले हैं जो दु:ख में रह रहे हैं । कितने हिजड़े और कितने ही गूँगे और तुतलाने वाले हैं । पूरे गुरु के बिना ये सब आवागमन के चक्र में पड़े रहेंगे ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(संख्या)

संसार में कितने ही सम्राट् हैं और कितने ही उनके मंत्री हैं । कितने ही उमराव, मनसबदार और हज़ारों बड़े लोग हैं । लाखों वैद्य वैद्यकी में पारंगत हैं और लाखों ही तरकसबंद अमीर लोग हैं । कितने ही नौकर, घसियारे, दरोग़ा, महावत और मीर लोग हैं । लाखों फराश ऊँटों को चलानेवाले और घोड़ों की देखभाल करनेवाले साइस अफसर हैं ।

लख फराश लख सारवान मीराखोर सईस वहीरा ।
कितड़े लख जलेबदार गाडीवान चलाइ गडीरा ।
छड़ीदार दरवान खलीरा ॥ १९ ॥

पउड़ी २०

(तथा च)

कितड़े लख नगारची केतड़िआँ ढोली सहनाई ।
केतड़िआँ ही ताइफे ढाढी बचे कलावत गाई ।
केतड़िआँ ही बहुरूपीए बाजीगर लख भंड अताई ।
कितड़े लख मसालची सम्मा चराग करनि रुसनाई ।
केतड़िआँ ही कोरची आमलु पोश सिलह सुखदाई ।
केतड़िआँ ही आबदार कितड़े बावरची नानवाई ।
तंबोली तोसकची सुहाई ॥ २० ॥

पउड़ी २१

(तथा च)

केतड़िआ खुसबोइदार केतड़िआ रंगरेज रंगोली ।
कितड़े मेवेदार हनि हुडक हुडकीए लोलणि लोली ।

कितने ही लाखों बादशाही सवारी के निगरान अफसर और गाड़ीवान हैं । अनेकों ही दरबान, छड़ीवान खड़े रहते हैं ।। १९ ।।

पउड़ी २०

(तथा)

कितने ही लाख नगाड़ची, ढोल और शहनाई-वादक हैं । कितनी ही तवायफ़ें, प्रशस्ति-गायक और कव्वाली-गायक हैं । कितने ही बहुरूपिए, बाज़ीगर और लाखों ही भाँड़ आदि हैं । कितने ही लाख मशालची हैं जो रोशनी के लिए शमा जलाते हैं। कितने ही फौजी सामान की देखभाल करनेवाले, हाकिम और सुखदायक ज़िरहबख्तर पहननेवाले हैं । कितने ही भिश्ती और कितने ही बावर्ची हैं जो कि नान आदि पकाते हैं। तंबोली और तोशाखाना के प्रभारी भी शोभायमान हैं ।। २० ।।

पउड़ी २१

(तथा)

कितने ही इत्रवाले गंधी और कितने ही रंगरेज हैं जो रंगोलियाँ बनाते हैं । कितने सेवादार, शर्तें लगानेवाले और चंचल वेश्याएँ हैं । अनेकों आरक्षित दासियाँ, गोलाबारी करनेवाले और तोपें दागने और लाने, ले जानेवाले हैं ।

खिजमतिगार खवास लख गोलंदाज तोपकी तोली ।
केतड़िआँ तहवीलदार मुसरफ़दार दरोगे ओली ।
केतड़िआँ किरसाण होइ करि किरसाणी अतुलु अतोली ।
मुसतौफी बूतात लख मीरसामे बखसी लै कोली ।
केतड़िआँ दीवान होइ करनि करोड़ी मुलक ढंढोली ।
रतन पदारथ मोल अमोली ।। २१ ।।

पउड़ी २२

(तथा च)

केतड़िआँ ही जउहरी लख सराफ बजाज वपारी ।
सउदागर सउदागरी गांधी कासेरे पासारी ।
केतड़िआँ परचूनीए केतड़िआँ दलाल बजारी ।
केतड़िआँ सिकलीगराँ कितड़े लख कमगर कारी ।
केतड़िआँ कुम्हिआर लख कागद कुट घणे लूणारी ।
कितड़े दरजी धोबीआँ कितड़े जर लोहे सिर हारी ।
कितड़े भड़भूँजै भठिआरी ।। २२ ।।

कितने ही तहसीलदार, निगरान अफसर, दारोग़ा और आकलनकर्त्ता हैं। कितने ही किसान हैं जो कृषि-कार्य की अनंत फसल को तौलते-सँभालते हैं । लेखाकार, गृहसचिव, लाखों सुगंध -अधिकारी, वित्तमंत्री और तीर-कमान बनानेवाले लोग हैं । कितने ही जायदाद के अधिकारी बनकर मुल्क का बंदोबस्त करते हैं । कितने ही मूल्यवान और अमूल्य रत्न-पदार्थो का लेखा-जोखा कर जमा करते हैं ।। २१ ।।

पउड़ी २२

(तथा)

कितने ही लाख जौहरी, सर्राफ़, बजाज अर्थात् कपड़े के व्यापारी हैं । सौदागरी करनेवाले सौदागर, गंधी, ठठेरे और पंसारी हैं । कितने ही परचून का सामान बेचनेवाले और कितने ही बाज़ार में दलाली करनेवाले हैं । कितने ही शस्त्र बनानेवाले और कीमियागरी-रसायन संबंधी कार्य करनेवाले हैं । कितने कुम्हार, काग़ज़ कूटनेवाले और नमक बनानेवाले हैं । कितने दर्ज़ी-धोबी और अन्य धातुओं पर सोने का पानी चढ़ानेवाले हैं । कितने ही भड़भूँजे भाड़ झोंकनेवाले हैं ।। २२ ।।

पउड़ी २३

(तथा च)

केतड़िआ कारूँजड़े केतड़िआ दबगर कासाई ।
केतड़िआ मुनिआर लख केतड़िआ चमिआरु अराई ।
भंगहेरे होइ केतड़े बगनीगराँ कलाल हवाई ।
कितड़े भंगी पोसती अमली सोफी घणी लुकाई ।
केतड़िआ कहार लख गुजर लख अहीर गणाई ।
कितड़े ही लख चूहड़े जाति अजाति सनाति अलाई ।
नाव थाव लख कीम न पाई ॥ २३ ॥

पउड़ी २४

(सभ गुरमुख बणे)

उतम मधम नीच लख गुरमुखि नीचहु नीच सदाए ।
पैरी पै पा खाकु होइ गुरमुखि गुरसिखु आपु गवाए ।
साधसंगति भउ भाउ करि सेवक सेवा कार कमाए ।

पउड़ी २३

(तथा)

कितने ही फल बेचनेवाले कुँजड़े और कितने ही कुप्पा आदि बनानेवाले तथा क़साई हैं । कितने ही बच्चों के खेल-खिलौने और चूड़ियाँ बेचने वाले और कितने ही चमार तथा सब्ज़ी आदि उगानेवाले लोग हैं । भाँग पीनेवाले, चावल-जौ की शराब बनानेवाले कलाल और हलवाई भी लाखों हैं । लाखों गूजर, कहार, अहीर आदि भी वर्तमान हैं । लाखों भंगी और जाति बहिष्कृत चांडाल हैं । इस प्रकार लाखों ही नाम और स्थान हैं जिन्हें गिना नहीं जा सकता ।। २३ ।।

पउड़ी २४

(सब गुरुमुख बनो)

उत्तम, मध्यम और नीच लाखों हैं पर गुरुमुख अपने आपको नीचों से भी नीच कहलाता है । वह चरण-धूलि बनकर और गुरुमुख होकर अपने अहम् को नष्ट कर देता है । सत्संगति में प्रेम और आदरपूर्वक जाकर सेवक बनकर सेवा करता है ।

मिठा बोलण निव चलणु हथहु दे कै भला मनाए ।
सबदि सुरति लिव लीणु होइ दरगह माण निमाणा पाए ।
चलणु जाणि अजाणु होइ आसा विचि निरासु वलाए ।
गुरमुखि सुख फलु अलखु लखाए ॥ २४ ॥ ८ ॥

वह मीठा बोलता है, झुककर चलता है और अपने हाथ से कुछ देकर भी वह दूसरे का भला करना चाहता है । शब्द में सुरति लीन कर वह विनम्र पुरुष प्रभु-दरबार में सम्मान प्राप्त करता है । संसार से चले जाने को सत्य मानकर और धूर्तताओं से अनजान बनकर वह आशा-तृष्णाओं में तटस्थ बना रहता है। गुरुमुख व्यक्ति ही सुख-फल, जो कि दृष्टिमान नहीं होता, को देख पा लेता है ।। २४ ।। ८ ।।

* * *

वार ९

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।।

पउड़ी १

(वाहिगुरू, गुरू, शबद, सतिसंग)

गुरमूरति पूरन ब्रहमु अबिगतु अबिनासी ।
पारब्रहमु गुर सबदु है सतसंगि निवासी ।
साधसंगति सचु खंडु है भाउ भगति अभिआसी ।
चहु वरना उपदेसु करि गुरमति परगासी ।
पैरी पै पा खाक होइ गुरमुखि रहिरासी ।
माइआ विचि उदासु गति होइ आस निरासी ।। १ ।।

पउड़ी २

(गुर सिक्खी)

गुर सिखी बारीक है सिल चटणु फिकी ।
त्रिखी खंडे धार है उहु वालहु निकी ।

पउड़ी १

(वाहिगुरु, गुरु, शब्द, सत्संग)

गुरु पूर्णब्रह्म की प्रतिमूर्ति है जो कि अव्यक्त एवं अविनाशी है । गुरु-शब्द (शरीर नहीं) परब्रह्म है जो सत्संगति में निवास करता है । 'साधुसंगति' ही सत्य देश (सचखंड) है जहाँ प्रेमाभक्ति के अभ्यास का अवसर बनता है । यहीं पर चारों वर्णों को उपदेश दिया जाता है और गुरुमत को प्रकाशित किया जाता है । यहीं पर चरण-वंदना कर चरण-धूलि बनकर गुरुमुख मर्यादित मार्ग के अनुगामी हो जाते हैं । आशाओं में भी तटस्थ बने रहकर सत्संगति में ही व्यक्ति मायातीत बने रहते हैं ।। १ ।।

पउड़ी २

(गुरुसिक्खी)

गुरशिष्यता (गुरसिक्खी) अत्यन्त सूक्ष्म कार्य है और लवणहीन शिला चाटने के समान है । वह बाल से भी महीन और खड़गधार से भी तीक्ष्ण है । भूत, भविष्य और वर्तमान में इसके समान अन्य कोई नहीं है ।

भूह भविख न वरतमान सरि मिकणि मिकी ।
दुतीआ नासति एतु घरि होइ इका इकी ।
दूआ तीआ वीसरै सणु कका किकी ।
सभै सिकाँ परहरै सुखु इकतु सिकी ॥ २ ॥

पउड़ी ३

(गुरमुखताई)

गुरमुखि मारगु आखीऐ गुरमति हितकारी ।
हुकमि रजाई चलणा गुर सबद वीचारी ।
भाणा भावै खसम का निहचउ निरंकारी ।
इसक मुसक महकारु है हुइ परउपकारी ।
सिदक सबूरी साबते मसती हुसीआरी ।
गुरमुखि आपु गवाइआ जिणि हउमै मारी ॥ ३ ॥

सिक्खी (सिक्ख-मत) में प्रवृत्त होकर द्वैतभावना नष्ट हो जाती है और उस एक के साथ एक हो जाया जाता है । दूसरा, तीसरा भाव और "कब", "क्यों" आदि बातें भूल जाती हैं । अब सभी तृष्णाएँ त्यक्त हो जाती हैं और केवल एक प्रभु की आशा में सुख प्राप्त होता है ।। २ ।।

पउड़ी ३

(गुरुमुखता)

गुरुमुख-मार्ग वह है जिसमें हितकारी गुरु-मत को अपनाया जाता है । इसमें (प्रभु) हुक्म की रजा में चलना और गुरु-शब्द की विचारणा अंतर्निहित होता है । परमात्मा स्वामी की इच्छा प्यारी लगती है और निश्चय में निराकार प्रभु बसता है । जैसे इश्क और गंध छिपाए नहीं छिपती वैसे ही गुरुमुख भी छिपा नहीं रहता और परोपकार में जुट जाता है । उसमें भरोसा, संतोष, मस्ती, कुशलता आदि सभी गुण आ जाते हैं । गुरुमुख ही अहम् का नाश करता है और उसे जीत लेता है ।। ३ ।।

पउड़ी ४

(सिक्ख दी करनी)

भाइ भगति भै चलणा होइ पाहुणिचारी ।
चलणु जाणि अजाणु होइ गहु गरबु निवारी ।
गुरसिख नित पराहुणे एहु करणी सारी ।
गुरमुखि सेव कमावणी सतिगुरू पिआरी ।
सबदि सुरति लिव लीण होइ परवार सुधारी ।
साधसंगति जाइ सहज घरि निरमलि निरंकारी ॥ ४ ॥

पउड़ी ५

(गुरसिख दी आतम-खेड)

परम जोति परगासु करि उनमनि लिव लाई ।
परम ततु परवाणु करि अनहदि धुनि वाई ।

पउड़ी ४

(सिक्ख का आचरण)

अपने को जगत् में मेहमान समझकर सिक्ख प्रेमभक्ति में जीवन-यापन करता है । वे (प्रपचों से) अनजान बने रहते हैं और पकड़कर गर्व को मन से बाहर निकाल देते हैं । गुरु-सिक्खों का आचरण यह है कि वे सदैव अपने-आपको मात्र अतिथि ही समझते हैं । गुरुमुख का कार्य सेवा करना है और यही सेवा परमात्मा को प्रिय लगती है । वे शब्द में सुरति को लीन करके सारे (जगत रूपी) परिवार का सुधार करते हैं । वे सत्संगति के माध्यम से निर्मल, निराकार होकर सहज पद में स्थित हो जाते हैं ।। ४ ।।

पउड़ी ५

(गुरुसिक्ख का आत्मिक खेल)

गुरुमुख मन में परमज्योति का प्रकाश कर उन्मनि-अवस्था में लीन रहता है। जब वह परमतत्त्व को मन में धारण कर लेता है तो अनहद् ध्वनि बज उठती है ।

परमारथ परबोध करि परमातम हाई ।
गुर उपदेसु अवेसु करि अनभउ पदु पाई ।
साधसंगति करि साधना इक मनि इकु धिआई ।
वीह इकीह चढ़ाउ चढ़ि इउँ निज घरि जाई ॥ ५ ॥

पउड़ी ६

(वाहिगुरू दी व्यापकता दा अनुभव)

दरपणि वाँग धिआनु धरि आपु आप निहालै ।
घटि घटि पूरन ब्रहमु है चंदु जल विचि भालै ।
गोरसु गाई वेखदा घिउ दुधु विचालै ।
फुलाँ अंदरि वासु लै फलु साउ सम्हालै ।
कासटि अगनि चलितु वेखि जल धरति हिआलै ।
घटि घटि पूरनु ब्रहमु है गुरमुखि वेखालै ॥ ६ ॥

पउड़ी ७

(गुरसिक्ख दी रहिणी)

दिब दिसटि गुर धिआनु धरि सिख विरला कोई ।
रतन पारखू होइकै रतना अवलोई ।

परमार्थ में प्रबुद्ध होकर " परमात्मा है'' के भाव को वह मन में बसाता है । वह गुरुमुख गुरु-उपदेश से आवेष्टित होकर अभय पद को प्राप्त करता है। " साधुसंगति'' में साधना कर अर्थात् अपने अहम् को गँवाकर वह एक मन से एक प्रभु की आराधना करता है। इस प्रकार इस संसार से आध्यात्मिक संसार (क्रमश : बीस-इक्कीस) में प्रविष्ट होता हुआ अपने स्वस्वरूप में अवस्थित हो जाता है ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(वाहिगुरु की व्यापकता का अनुभव)

वह दर्पण में दिखने की तरह इस जगत् को ध्यान से स्वयं ही देखता है । वह पूर्णब्रह्म घट-घट में है जिसे चन्द्रमा अपनी परछाई के रूप में जल में खोजता है । वह दूध, गाय और घी सबमें स्वयं ही है । फूलों की गंध लेकर वह स्वयं ही उनमें स्वाद भी बन जाता है । लकड़ी, अग्नि, जल, धरती और हिम में वह उसी का प्रपंच है । वह पूर्णब्रह्म घट-घट में है और किसी गुरुमुख को ही दिखाई देता है ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(गुरु-सिक्ख का आचरण)

दिव्य दृष्टि वाला और गुरु में ध्यान केन्द्रित करनेवाला कोई बिरला ही सिक्ख होता है जो गुण रूपी रत्नों की परख करनेवाला और रत्नों को देखने-परखनेवाला होता है ।

मनु माणकु निरमोलका सतिसंगि परोई ।
रतनमाल गुरसिख जगि गुरमति गुण गोई ।
जीवदिआँ मरि अमरु होइ सुख सहजि समोई ।
ओतिपोति जोती जोति मिलि जाणै जाणोई ॥ ७ ॥

पउड़ी ८

(गुरसिक्ख गुरू नाल अभेद)

राग नाद विसमादु होइ गुण गहिर गंभीरा ।
सबदु सुरति लिव लीण होइ अनहदि धुनि धीरा ।
जंत्री जंत्र वजाइदा मनि उनिमनि चीरा ।
वजि वजाइ समाइ लै गुर सबद वजीरा ।
अंतरिजामी जाणीऐ अंतरिगति पीरा ।
गुर चेला चेला गुरू बेधि हीरै हीरा ॥ ८ ॥

उसका मन माणिक की तरह निर्मल और सत्संगति में लीन बना रहता है । वह जीवित रहते हुए भी विषयों की ओर मृत होता है अर्थात् मुँह फेर लेता है तथा सहज सुख में लीन रहता है । वह परमज्योति में ओतप्रोत होकर अपने आपको जानता है और उस प्रभु को भी समझता है ।। ७ ।।

पउड़ी ८

(गुरुसिक्ख गुरु के साथ अभेद)

गुरुसिक्ख राग और नाद में आत्मविभोर होकर गहन् गंभीर गुणों वाला बन जाता है । उसकी सुरति शब्द में लीन हो जाती है और अनहद् ध्वनि में उसका मन स्थिर हो जाता है । गुरु उपदेश रूपी वाद्य को बजाता है जिसे सुनकर सिक्ख का मन उन्मनि-अवस्था के वस्त्रों को धारण कर लेता है । गुरु का सिक्ख उपदेश रूपी वाद्य-वादन में लीन होकर स्वयं गुरु के शब्द का वादक बन जाता है । अब उसके (विरह) प्रेम की पीड़ा को वह अन्तर्यामी प्रभु ही समझ-बूझ सकता है । अब चेला से गुरु और गुरु-चेला उसी प्रकार बन जाता है जैसे हीरे को काटने वाला भी हीरा ही होता है।।। ८ ।।

पउड़ी ९

(तथा च)

पारसु होइआ पारसहु गुरमुखि वडिआई ।
हीरै हीरा बेधिआ जोती जोति मिलाई ।
सबद सुरति लिव लीणु होइ जंत्र जंत्री वाई ।
गुर चेला चेला गुरू परचा परचाई ।
पुरखहुँ पुरखु उपाइआ पुरखोतम हाई ।
वीह इकीह उलंघि कै होइ सहजि समाई ॥ ९ ॥

पउड़ी १०

(साध संगत सचखंड)

सतिगुरु दरसनु देखदो परमातमु देखै ।
सबद सुरति लिव लीण होइ अंतरिगति लेखै ।
चरन कवल दी वसना होइ चंदन भेखै ।
चरणोदक मकरंद रस विसमादु विसेखै ।

पउड़ी ९

(तथा)

गुरुमुख का बड़प्पन है कि स्वयं पारस-रूप बनकर सबको पारस बना देता है । जैसे हीरे से हीरे का वेधन होता है, वैसे ही उसकी ज्योति परमज्योति में मिल जाती है । उसकी सुरति शब्द में ऐसे ही लीन हो जाती है जैसे वाद्य में वादक का मन लीन हो जाता है । अब चेले-गुरु में भेद नहीं रह जाता । वे एक हो जाते हैं, अभेद हो जाते हैं । पुरुष से पुरुष (नानक से शिष्य अंगद) पैदा हुआ और पुरुषोत्तम बन गया । वह संसार को एक ही छलाँग में पार कर सहज ज्ञान में समा गया ।। ९ ।।

पउड़ी १०

(साधुसंगति सत्यखंड)

जो सच्चे गुरु को देख लेता है वह मानों परमात्मा को देख लेता है । वह सुरति को शब्द में लीन कर अपने अन्तर्मन में ही ध्यान लगाता है । गुरु के चरण-कमलों की गंध लेकर वह चंदन के समान हो जाता है । चरणामृत रूपी मकरंद को पान कर वह एक विशिष्ट विभोर अवस्था में आ जाता है ।

गुरमति निहचलु चितु करि विचि रूप न रेखै ।
साधसंगति सचखंडि जाइ होइ अलख अलेखै ॥ १० ॥

पउड़ी ११

(साखी अवसथा)

अखी अंदरि देखदा दरसन विचि दिसै ।
सबदै विचि वखाणीऐ सुरती विचि रिसै ।
चरण कवल विचि वासना मनु भवरु सलिसै ।
साधसंगति संजोगु मिलि विजोगि न किसै ।
गुरमति अंदरि चितु है चितु गुरमति जिसै ।
पारब्रहम पूरण ब्रहमु सतिगुर है तिसै ॥ ११ ॥

पउड़ी १२

(ईश्वरीय गुण)

अखी अंदरि दिसटि होइ नकि साहु संजोई ।
कंनाँ अंदरि सुरति होइ जीभ सादु समोई ।

अब वह गुरुमत के अनुसार चित्त को स्थिर कर रूप-रेखा, आकार-प्रकार से परे हो जाता है। वह साधुसंगति-रूप सत्यखंड में पहुँचकर स्वयं भी उस अलक्ष्य, अलेख के समान हो जाता है ।। १० ।।

पउड़ी ११

(साक्षी अवस्था)

जो आँखों के अंदर से देखता है वही (प्रभु) वास्तव में बाहर भी दिखाई देता है । वही शब्द के द्वारा वर्णित होता है और सुरति में प्रकाशित होता है । गुरु के चरण-कमल की गंध के लिए मन भँवरे के समान होकर आनन्द अनुभव करता है। जिसे जो भी 'साधुसंगति' से प्राप्त होता है वह फिर उससे वियुक्त नहीं होता । गुरु-उपदेश में चित्त लगाने से चित्त गुरुमत के अनुकूल बन जाता है । उसी निर्गुण परब्रह्म का स्वरूप सच्चा गुरु है ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(ईश्वरीय गुण)

आँखों में वह दृष्टि है और नाक में श्वास बनकर स्थित है । कानों में वह सुरति और जीभ में स्वाद-रूप में समाहित है। हाथों से वह कार्य करता है और पाँवों से मार्ग का साथी बनता है ।

हथी किरति कमावणी पैर पंथु सथोई ।
गुरमुखि सुख फलु पाइआ मति सबदि विलोई ।
परकिरती हू बाहरा गुरमुखि विरलोई ।
साधसंगति चंनण बिरखु मिलि चंनणु होई॥ १२ ॥

पउड़ी १३

(वाहिगुरु मंत्र)

अबिगत गति अबिगत दी किउ अलखु लखाए ।
अकथ कथा है अकथ दी किउ आखि सुणाए ।
अचरज नो आचरजु है हैराण कराए ।
विसमादे विसमादु है विसमादु समाए ।
वेदु न जाणै भेदु किहु सेसनागु न पाए ।
वाहिगुरू सालाहणा गुरु सबदु अलाए ॥ १३ ॥

पउड़ी १४

(गुरमुख दे गुण)

लीहा अंदरि चलीऐ जिउ गाडी राहु ।
हुकमि रजाई चलणा साधसंगि निबाहु ।

गुरुमुख ने मति को शब्द में बिलोकर अर्थात् लीन करके सुखफल प्राप्त किया है । कोई बिरला ही गुरुमुख प्रकृति (माया) के प्रभाव से परे रहता है । "साधुसंगति" तो चंदन-वृक्ष है जिससे जो मिलता है वह चंदन हो जाता है ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(वाहिगुरु मंत्र)

उस अव्यक्त की अव्यक्त गति को भला कैसे देखा जा सकता है। उस अकथनीय की कथा अकथ है, भला कैसे सुनाई जा सकती है। वह आश्चर्य के लिए भी आश्चर्य है। विस्मयादिक अनुभूति में समानेवाले स्वयं आत्मविभोर हो जाते हैं । वेद भी इस रहस्य को नहीं समझते और शेषनाग भी उसका अन्त नहीं पा सके। वाहिगुरु (परमात्मा) की स्तुति गुरु-शब्द (गुरुवाणी) के गायन के माध्यम से होती है ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(गुरुमुख के गुण)

जैसे गाड़ी बने हुए रास्ते की लकीरों पर अपने आप चलती चली जाती है वैसे ही साधुसंगति में हुक्म और रज़ा में चलने के कार्य का निर्वाह हो जाता है।

जिउ धन सोघा रखदा घरि अंदरि साहु ।
जिउ मिरजाद न छडई साइरु असगाहु ।
लता हेठि लताड़ीऐ अजरावरु घाहु ।
धरमसाल है मानसरु हंस गुरसिख वाहु ।
रतन पदारथ गुर सबदु करि कीरतनु खाहु ॥ १४ ॥

पउड़ी १५

(चंनणादि द्रिशटांत)

चनणु जिउ वण खंड विचि ओहु आपु लुकाए ।
पारसु अंदरि परबताँ होइ गुपत वलाए ।
सत समुंदी मानसरु नहि अलखु लखाए ।
जिउ परछिंना पारजातु नहि परगटी आए ।
जिउ जगि अंदरि कामधेनु नहि आपु जणाए ।
सतिगुर दा उपदेसु लै किउ आपु गणाए ॥ १५ ॥

जैसे कुशल व्यक्ति धन को घर में सँभालकर रखता है और गहरा समुद्र अपनी मर्यादा नहीं छोड़ता है; घास को पाँवों के नीचे रौंदा जाता है उसी प्रकार धर्मशाला (धरती) मानसरोवर है और गुरु के शिष्य हंस हैं जो कीर्तन के माध्यम से गुरु-शब्द रूपी रत्न-पदार्थों को खाते हैं ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(चन्दन का दृष्टांत)

जैसे चंदन का पेड़ वन में स्वयं को छिपाने का प्रयत्न करता है (पर छिपा नहीं रहता) । पारस पत्थर पहाड़ों में गुप्त रहकर समय व्यतीत करता है। सात समुद्र प्रकट है पर मानसरोवर अदृष्ट-सा बना रहता है । जैसे पारिजात वृक्ष (कल्पवृक्ष) भी छिपा रहता है, प्रकट नहीं होता । कामधेनु भी इसी जगत में रहती है पर अपने आपको कभी जनाती नहीं, इसी प्रकार सत्गुरु का जिन्होंने उपदेश लिया है वे भला अपने आपको क्यों किसी गणना में शामिल करें ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(गुर चेला, चेला गुरू)

दुइ दुइ अखी आखीअनि इकु दरसनु दिसै ।
दुइ दुइ कंनि वखाणीअनि इक सुरति सलिसै ।
दुइ दुइ नदी किनारिआँ पारावारु न तिसै ।
इक जोति दुइ मूरती इक सबदु सरिसै ।
गुर चेला चेला गुरू समझाए किसै ॥ १६ ॥

पउड़ी १७

(गुरू-चेले दा कंम)

पहिले गुरि उपदेस दे सिख पैरी पाए ।
साधसंगति करि धरमसाल सिख सेवा लाए ।
भाइ भगति भै सेवदे गुरपुरब कराए ।
सबद सुरति लिव कीरतनु सचि मेलि मलाए ।
गुरमुखि मारगु सच दा सचु पारि लंघाए ।
सचि मिलै सचिआर नो मिलि आपु गवाए ॥१७॥

पउड़ी १६

(गुरु चेला, चेला गुरु)

(गुरु और शिष्य की) आँखें तो दो-दो हैं पर वे एक ही (प्रभु) का दर्शन करते हैं । कान उनके दो-दो अर्थात् अलग-अलग कहे जाते हैं, पर सुरति उनकी एक ही कही जाती है । नदी के किनारे दो हैं पर वे (जल के माध्यम से) एक-दूसरे से जुड़े हैं, अलग-अलग नहीं हैं । ये दोनों (गुरु-शिष्य) मूर्तियाँ तो दो हैं पर इनमें शब्द की ज्योति एक ही है । गुरु ही चेला और चेला ही गुरु है, भला कौन किसे क्या समझाए ! ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(गुरु-चेला का कार्य)

पहले गुरु शिष्य को चरणों में बैठाकर उपदेश देता है । 'साधुसंगति' और धर्म-स्थान की पहचान करा सिक्ख को सेवा-कार्य में लगाया जाता है । सेवक प्रेम-भक्ति में सेवा करते हुए गुरुपर्वों को मनाते हैं । शब्द में सुरति लगाकर कीर्तन के माध्यम से सत्य से मेल किया जाता है। इस प्रकार सत्याचारी को सत्य मिलता है और इसके मिलने से अहम् का नाश हो जाता है ।। १७ ।।

पउड़ी १८

(चरनाँ तों निंम्रता दा उपदेश)

सिर उचा नीवें चरण सिरि पैरी पाँदे ।
मुह अखी नकु कंन हथ देह भार उचाँदे ।
सभ चिहन छडि पूजीअनि कउणु करम कमाँदे ।
गुर सरणी साधसंगती नित चलि चलि जाँदे ।
वतनि परउपकार नो करि पारि वसाँदे ।
मेरी खलहु मौजड़े गुरसिख हंढाँदे ।
मसतक लगे साध रेणु वडभागि जिन्हाँदे ॥ १८ ॥

पउड़ी १९

(धरती तों उपदेश)

जिउ धरती धीरज धरमु मसकीनी मूड़ी ।
सभदूँ नीवीं होइ रही तिस मणी न कूड़ी ।

पउड़ी १८

(चरणों से नम्रता का उपदेश)

सिर ऊँचा है, चरण नीचे हैं, पर फिर भी सिर चरणों पर ही झुकते हैं । चरण ही मुँह, आँखों, नाक, कान, हाथ और देह का भार उठाते हैं । सभी अंगों को छोड़कर भला ये कौन सा कर्म करते हैं कि पूजा इन्हीं की की जाती है । ये गुरु की शरण में, सत्संगति में रोज़ चल-चल कर जाते हैं । पुन: परोपकार के लिए ये दौड़ पड़ते हैं और जहाँ तक बन पड़ता है ये उस कार्य को पूरा करते हैं । काश कहीं ऐसा होता कि मेरी खाल के जूते बनते और ऐसे (उपर्युक्त) सिक्ख उन्हें पहनते । ऐसे व्यक्तियों के चरणों की धूल जिनके भी माथे पर लगे उनके बड़े भाग्य हैं अर्थात् वे भाग्यशाली हैं ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(धरती से उपदेश)

जैसे धरती धैर्य, धर्म और विनम्रता का पुंज है; वह सबके नीचे रहती है और उसकी (विनम्रता की) यह मान्यता सत्य है, झूठ नहीं ।

कोई हरिमंदरु करै को करै अरूड़ी ।
जेहा बीजै सो लुणै फल अंब लसूड़ी ।
जीवदिआँ मरि जीवणा जुड़ि गुरमुखि जूड़ी ।
लताँ हेठि लताड़ीऐ गति साधाँ धूड़ी ।। १९ ।।

पउड़ी २०

(जल तों उपदेश)

जिउ पाणी निवि चलदा नीवाणि चलाइआ ।
सभना रंगाँ नो मिलै रलि जाइ रलाइआ ।
परउपकार कमाँवदा उनि आपु गवाइआ ।
काठु न डोबै पालिकै संगि लोहु तराइआ ।
वुठे मीह सुकालु होइ रस कस उपजाइआ ।
जीवदिआ मरि साध होइ सफलिओ जगि आइआ ।। २० ।।

कोई उस पर हरिमंदिर बनाता है और कोई उस पर गंदगी एकत्र करता है । जो इस पर जैसा बोता है तदनुसार आम, लसूहड़ी (एक गोंद के समान चिपकाऊ रस देनेवाला फल) प्राप्त करता है । गुरुमुख व्यक्ति जीवित ही मर के अर्थात् अहम्-भाव त्यागकर सत्संग में गुरुमुखों के साथ जुड़ते हैं । उनकी गति साधु जनों की उस चरण-धूलि के समान है जिसे पाँव तले रौंदा जाता है ।। १९ ।।

पउड़ी २०

(जल से उपदेश)

जैसे पानी नीचे की ओर बहता है और जो भी मिल जाए उसे (विनम्र बनाता) नीचे की ओर ही ले चलता है । पानी में सभी रंग मिल जाते हैं और वह हर एक के साथ एक हो जाता है । वह अहम्-भाव को गँवाकर परोपकार कमाता है । लकड़ी को डुबाता नहीं बल्कि उसके साथ लगे लोहे को भी पार कर देता है । वर्षा के रूप में जब वह बरसता है तो सुकाल कहा जाता है । इसी प्रकार साधु लोग जीवित-मृत हो अर्थात् अहम् त्यागकर संसार में अपना आना सफल करते हैं ।। २० ।।

पउड़ी २१

(ब्रिछ तों उपदेश)

सिर तलवाइआ जंमिआ होइ अचलु न चलिआ ।
पाणी पाला धुप सहि उह तपहु न टलिआ ।
सफलिओ बिरख सुहावड़ा फल सुफलु सुफलिआ ।
फलु देइ वट वगाइऐ करवति न हलिआ ।
बुरे करनि बुरिआईआँ भलिआई भलिआ ।
अवगुण कीते गुण करनि जगि साध विरलिआ ।
अउसरि आप छलाइंदे तिन्हा अउसरु छलिआ ।। २१ ।।

पउड़ी २२

(मुरीद दे लच्छण)

मुरदा होइ मुरीदु सो गुर गोरि समावै ।
सबद सुरति लिव लीणु होइ ओहु आपु गवावै ।

पउड़ी २१

(वृक्ष से उपदेश)

सिर नीचे और पाँव ऊपर करके वृक्ष जम जाता है और अचल रूप में स्थित रहता है । वह पानी, सर्दी, धूप आदि सब सहता है पर अपनी तपस्या से विमुख नहीं होता । ऐसा वृक्ष सफल होता है और अच्छे फलों से लद जाता है । पत्थरों से मारे जाने पर भी फल देता है और आरे के नीचे दे देने पर भी वह हिलता नहीं । बुरे लोग बुराई ही करते हैं पर भले व्यक्ति भलाई में ही लगे रहते हैं । जो व्यक्ति बुराई के बदले भी भलाई ही करें ऐसे साधु-वृत्ति वाले व्यक्ति जगत में बिरले ही होते हैं । आम व्यक्ति तो समय के द्वारा छल लिये जाते हैं अर्थात् समय की मार से बच नहीं पाते, पर साधु व्यक्ति समय को भी छल लेते हैं अर्थात उसके प्रभाव से मुक्त रहते हैं ।। २१ ।।

पउड़ी २२

(सेवक के लक्षण)

जो मुरीद (आशाओं-तृष्णाओं से) वास्तव में मृत रहेगा वह अंत में गुरु रूपी क़ब्र में समा जाएगा । वह शब्द में सुरति को लीन कर देगा और अहम्-भाव को गँवा देगा ।

तनु धरती करि धरमसाल मनु दभु विछावै ।
लताँ हेठि तलाड़ीऐ गुर सबदु कमावै ।
भाइ भगति नीवाणु होइ गुरमति ठहरावै ।
वरसै निझर धार होइ संगति चलि आवै ॥२२॥९॥

वह तन रूपी धरती को धर्मशाला बनाकर उस पर मन रूपी चटाई बिछाएगा। वह पाँवों-तले रौंदा जाएगा पर फिर भी गुरु-उपदेश के अनुसार आचरण करेगा। वह प्रेम-भक्ति में लीन होकर विनम्र बनेगा और गुरुमत में मन को स्थिर करेगा । वह सत्संगति में चलकर आएगा और उस पर प्रभु कृपा-धारा के समान बरस उठेगी ।। २२ ।। ९ ।।

* * *

वार १०

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।।

पउड़ी १

(भगताँ दी कथा–धू भगत)

धू हसदा घरि आइआ करि पिआरु पिउ कुछड़ि लीता ।
बाहरु पकड़ि उठालिआ मन विचि रोसु मतेई कीता ।
डुडहुलिका माँ पुछै तूँ सावाणी है कि सुरीता ? ।
सावाणी हाँ जनम दी, नामु न भगती करमि द्रिढ़ीता ।
किसु उदम ते राजु मिलि सत्रू ते सभि होवनि मीता ?
परमेसरु आराधीऐ जिदू होईऐ पतित पुनीता ।
बाहरि चलिआ करणि तपु मन बैरागी होइ अतीता ।
नारद मुनि उपदेसिआ नाउ निधानु अमिओ रसु पीता ।

पउड़ी १

(भक्तों की कथा–ध्रुव भक्त)

बालक ध्रुव हँसता हुआ घर आया और पिता ने उसे प्यार करते हुए गोदी में बिठा लिया । यह देखकर सौतेली माँ ने गुस्सा किया और ध्रुव को बाँह पकड़कर (गोदी से) उठा दिया । हिचकियाँ लेता हुआ वह अपनी माँ से पूछने लगा कि माँ ! तुम रानी हो या दासी ? (माँ ने उत्तर दिया) बेटा ! मैं रानी तो जन्मजात हूँ पर मैंने परमात्मा के नाम-स्मरण करने का भक्ति-कर्म नहीं किया (तुम्हारी और मेरी इस दुर्दशा का यही कारण है) । (ध्रुव ने पूछा) किस उद्यम से राज मिल सकता है और शत्रु मित्र हो सकते हैं ? (माँ ने कहा–हे पुत्र !) परमेश्वर की आराधना की जानी चाहिए, जिसके फलस्वरूप पापी भी पवित्र हो जाते हैं । (यह सुनकर) ध्रुव मन में अत्यन्त वैराग्यवान होकर तप करने के लिए बाहर चल पड़ा । रास्ते में नारद मुनि ने भक्ति का उपदेश दिया और ध्रुव ने (भक्ति के फलस्वरूप) परमात्मा के नाम के समुद्र में से अमृत पान किया ।

पिछहु राजे सदिआ अबिचलु राजु करहु नित नीता ।
हारि चले गुरमुखि जग जीता ॥ १ ॥

पउड़ी २

(प्रहलाद भगत)

घरि हरणाखस दैत दे कलरि कवलु भगतु प्रहिलादु ।
पढ़न पठाइआ चाटसाल पाँधे चिति होआ अहिलादु ।
सिमरै मन विचि राम नाम गावै सबदु अनाहदु नादु ।
भगति करनि सभ चाटड़ै पाँधे होइ रहे विसमादु ।
राजे पासि रूआइआ दोखी दैति वधाइआ वादु ।
जल अगनी विचि घतिआ जलै न डुबै गुर परसादि ।
कढि खड़गु सदि पुछिआ कउणु सु तेरा है उसतादु ।
थंम्हु पाड़ि परगटिआ नरसिंघ रूप अनूप अनादि ।

(कुछ समय बाद) राजा (उत्तानपाद) ने ध्रुव को बुला भेजा और कहा कि अब तुम सदैव के लिए राज्य करो । जो गुरुमुख हार जाते हैं अर्थात् विषय-विकारों से मुँह मोड़ लेते हैं वे ही संसार को जीत लेते हैं ।। १ ।।

पउड़ी २

(प्रह्लाद भक्त)

हिरण्यकशिपु दैत्य के घर बंजर धरती में कमल उगने के समान प्रह्लाद भक्त ने जन्म लिया । (हिरण्यकशिपु ने) उसे पाठशाला में पढ़ने भेजा तो पुरोहित (अध्यापक) का मन प्रसन्नता से भर उठा (क्योंकि राजपुत्र उसका शिष्य बना था)। (प्रह्लाद) मन में भी राम-नाम का स्मरण करता था और प्रकट में भी प्रभु-गुणानुवाद की ध्वनि किया करता था । अब सभी शिष्य (परमात्मा की) भक्ति करने लगे जिसे देखकर सभी अध्यापक आश्चर्यचकित रह गये । पुरोहित ने राजा के पास जाकर पुकार लगाई (कि राजन् ! तुम्हारा पुत्र प्रभु-भक्ति करता है) । उस दुष्ट दैत्य ने अब विवाद को बढ़ा लिया । प्रह्लाद को उसने पानी में और आग में फेंका पर वह गुरु (परमात्मा) की कृपा से न तो डूबा और न ही जला । तब हिरण्यकशिपु ने खड्ग निकालकर प्रह्लाद से पूछा कि बता तेरा गुरु (परमात्मा) कौन है ? उसी समय परमात्मा नरसिंह-रूप में स्तम्भ फाड़कर प्रकट हुआ ।

बेमुख पकड़ि पछाड़िअनु संत सहाई आदि जुगादि ।
जै जै कार करनि ब्रहमादि ।। २ ।।

पउड़ी ३

(राजा बलि)

बलि राजा घरि आपणै अंदरि बैठा जगि करावै ।
बावन रूपी आइआ चारि वेद मुखि पाठ सुणावै ।
राजे अंदरि सदिआ मंगु सुआमी जो तुधु भावै ।
अछलु छलणि तुधु आइआ सुक्र पुरोहितु कहि समझावै ।
करौ अढाई धरति मंगि पिछहु दे तिहु लोअ न मावै ।
दुइ करवाँ करि तिंन लोअ बलि राजा लै मगरु मिणावै ।
बलि छलि आपु छलाइअनु होइ दइसालु मिलै गलि लावै ।
दिता राजु पताल दा होइ अधीनु भगति जसु गावै ।
होइ दरवान महाँ सुखु पावै ।। ३ ।।

उसका रूप अनुपम और अनादि था। उस दुष्ट हिरण्यकशिपु को उसने पकड़कर पछाड़ मारा और सिद्ध कर दिया कि युगों-युगान्तरों से वह संतों की सहायता करता रहा है । यह सब देखकर ब्रह्मा आदि भी जय-जयकार करने लगे ।। २ ।।

पउड़ी ३

(राजा बलि)

राजा बलि अपने महल में बैठा यज्ञ करवा रहा था । तभी वामन-रूप में एक ब्राह्मण (भिक्षुक) आया जो चारों वेदों का पाठ सुना रहा था । राजा ने उसे अन्दर बुलाया और कहा कि हे स्वामी ! जो चाहो माँग लो । तभी पुरोहित शुक्राचार्य ने (दैत्यराज बलि को) समझाया कि यह तो कभी न छला जा सकनेवाला भगवान है जो तुझे छलने के लिए आया है । उस वामन ने ढाई क़दम धरती का दान माँगा (जो राजा ने दे दिया) और तब अपने शरीर को इतना बढ़ाया कि वह तीनों लोकों में नहीं समा रहा था । तीनों लोकों को जब उसने दो क़दमों में नाप लिया तो तीसरे क़दम के लिए राजा बलि ने अपनी पीठ हाज़िर करके नपवा ली । बलि ने इस छल को जानकर भी अपना आप छला जाने दिया । विष्णु बलि का यह कर्म देखकर उसे गले लगाकर मिले । बलि को

पउड़ी ४

(अंबरीक भगत)

अंबरीक मुहि बरतु है राति पई दुरबासा आइआ ।
भीड़ा ओसु उपारणा ओहु उठि न्हावणि नदी सिधाइआ ।
चरणोदकु लै पोखिआ ओहु सरापु देण नो धाइआ ।
चक्र सुदरसनु काल रूप होइ भीहावलु गरबु गवाइआ ।
बाम्हणु भंना जीउ लै रखि न हंघनि देव सबाइआ ।
इंद्र लोकु सिव लोकु तजि ब्रहम लोकु बैकुंठ तजाइआ ।
देवतिआँ भगवानु सणु सिखि देइ सभनाँ समझाइआ ।
आइ पइआ सरणागती मारीदा अंबरीक छुडाइआ ।
भगति वछलु जगि बिरदु सदाइआ ॥ ४ ॥

उन्होंने पाताल का राज्य दे दिया जहाँ वह अधीन होकर प्रभु-भक्ति करने लगा। अन्ततः विष्णु अत्यन्त प्रसन्न हो बलि के द्वारपाल के रूप में परमसुख प्राप्त करने लगा ।। ३ ।।

पउड़ी ४

(अंबरीष भक्त)

राजा अंबरीष व्रत में था और उसी संध्या को दुर्वासा ऋषि उसके पास आ गया। राजा को व्रत खोलना था पर वह (ऋषि) उठकर स्नान करने के लिए नदी पर चला गया । (राजा ने तिथि बदल जाने पर व्रत के फल के नाश होने के भय से) चरणामृत लेकर व्रत तोड़ दिया । जब दुर्वासा ने यह सुना कि मुझे खिलाए बिना राजा ने खा लिया है तो वह उसे शाप देने के लिए दौड़ा । अब विष्णु ने कालरूप सुदर्शन चक्र छोड़ा जिसने दुर्वासा ने अहंकार का नाश किया । अब ब्राह्मण दुर्वासा अपनी जान लेकर भागा । उसे देवतागण भी शरण न दे सके । इन्द्रलोक, शिवलोक, ब्रह्मलोक, बैकुण्ठलोक सब स्थानों पर उसका त्याग किया गया । अब भगवान समेत देवताओं ने उसे समझाया (कि अंबरीष के सिवा तुम्हें अन्य कोई नहीं बचा सकता) । तब वह अंबरीष की शरण में आया और उस मरते हुए को अंबरीष ने छुड़वाया । इस प्रकार भगवान को जगत् में भक्तवत्सल के नाम से जाना जाने लगा ।। ४ ।।

पउड़ी ५

(राजा जनक)

भगतु वडा राजा जनकु है गुरमुखि माइआ विचि उदासी ।
देव लोक नो चलिआ गण गंधरबु सभा सुखवासी ।
जमपुरि गइआ पुकार सुणि विललावनि जीअ नरक निवासी ।
धरमराइ नो आखिओनु सभना दी करि बंद खलासी ।
करे बेनती धरमराइ हउ सेवकु ठाकुरु अबिनासी ।
गहिणे धरिओनु इकु नाउ पापा नालि करै निरजासी ।
पासंगि पापु न पुजनी गुरमुखि नाउ अतुल न तुलासी ।
नरकहु छुटे जीअ जंत कटी गलहुँ सिलक जम फासी ।
मुकति जुगति नावै दी दासी ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(हरीचंद ते तारा राणी)

सुखु राजे हरीचंद घरि नारि सु तारा लोचन राणी ।
साध संगति मिलि गावदे राती जाइ सुणै गुरबाणी ।

पउड़ी ५

(राजा जनक)

राजा जनक बड़ा भक्त है जो माया में रहते हुए भी उससे उदासीन रहता था। अन्त में वह गण-गंधर्वों के साथ देवलोक को चल पड़ा । वह यमपुरी से नर्क-निवासियों की चीख-पुकार सुनकर वहाँ गया । उसने धर्मराज से कहा कि इन सबकी इस कष्ट से मुक्ति करो । यह सुनकर धर्मराज ने कहा कि मैं अविनाशी ठाकुर का सेवक मात्र हूँ और उनकी आज्ञा के बिना मैं कैसे छोड़ सकता हूँ । तब जनक ने प्रभु-नाम-स्मरण को गिरवी रख दिया ताकि पापों का निरस्तीकरण हो सके । नर्क के सारे पाप उस नाम-स्मरण के महात्म्य के सामने पासंगा भर भी न ठहर सके । गुरुमुख का नाम-स्मरण किसी तराजू में तौला नहीं जा सकता । सभी जीव नर्क से छुटकारा पा गये और सबके गले में पड़ा यमपाश कट गया । मुक्ति और युक्ति सब 'नाम' की दासियाँ हैं ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(हरिश्चन्द्र और तारामती रानी)

राजा हरिश्चन्द्र के घर सुख देने और सुन्दर नेत्रों वाली रानी तारामती थी। वह रात में वहाँ जाकर भजन-कीर्तन सुनती थी जहाँ साधुसंगति में लोग एकत्र होकर गाते थे ।

पिछै राजा जागिआ अधी राति निखंडि विहाणी ।
राणी दिसि न आवई मन विचि वरति गई हैराणी ।
होरतु राती उठि कै चलिआ पिछै तरल जुआणी ।
राणी पहुती संगती राजे खड़ी खड़ाउ नीसाणी ।
साधसंगति आराधिआ जोड़ी जुड़ी खड़ाउ पुराणी ।
राजे डिठा चलितु इहु एह खड़ाव है चोज विडाणी ।
साधसंगति विटहु कुरबाणी ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(बिदर अते दुरयोधन)

आइआ सुणिआ बिदर दे बोलै दुरजोधनु होइ रुखा ।
घरि असाडे छडिकै गोले दे घरि जाहि कि सुखा ।
भीखमु दोणा करण तजि सभा सीगार वडे मानुखा ।
झुंगी जाइ वलाइओनु सभना दे जीअ अंदरि धुखा ।

इधर आधी रात बीतने पर राजा जागा और रानी को न देखकर उसका मन हैरानी से भर उठा । एक रात वह उठकर उस चंचल यौवना के पीछे चल पड़ा। रानी तो सत्संग में पहुँच गई पर राजा ने उसकी एक खड़ाऊँ उठा ली (ताकि वह सुबह रानी को झूठा साबित कर सके) । (चलने पर खड़ाऊँ न देखकर रानी घबरायी नहीं) अपितु उसके साधुसंगति में आराधना की जिसके फलस्वरूप खड़ाऊँ की जोड़ी बन गई । राजा ने यह चमत्कार देखा और समझ लिया कि यह अदभुत् अलौकिक बात है (जो खड़ाऊँ के माध्यम से समझाई गई है)। इसलिए साधुसंगति पर से बलिहारी हुआ जाता है ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(विदुर और दुर्योधन)

विदुर के घर में कृष्ण का आना, ठहरना सुनकर दुर्योधन रुष्ट होकर कृष्ण से कहने लगा कि हमारे घरों को छोड़कर भला तुम्हें एक दास के घर में ठहरने पर क्या सुख मिला? आपने सभाओं के श्रृंगार भीष्म, द्रोणाचार्य, कर्ण जैसे बड़े-बड़े लोगों को भी छोड़ दिया । आप झोंपड़ी में जाकर रहे, इस बात का हम लोगों को बहुत दुःख है।

हसि बोलै भगवान जी सुणिहो राजा होइ सनमुखा ।
तेरे भाउ न दिसई मेरे नाही अपदा दुखा ।
भाउ जिवेहा बिदर दे होरी दे चिति चाउ न चुखा ।
गोबिंद भाउ भगति दा भुखा ॥ ७ ॥

पउड़ी ८

(दरोपती)

अंदरि सभा दुसासणै मथेवालि द्रोपती आँदी ।
दूता नो फुरमाइआ नंग करहु पंचाली बाँदी ।
पंजे पांडो वेखदे अउघटि रुधी नारि जिना दी ।
अखी मीट धिआनु धरि हाहा क्रिसन करै बिललाँदी ।
कपड़ कोटु उसारिओनु थके दूत न पारि वसाँदी ।
हथ मरोड़नि सिरु धुणनि पछोतानि करनि जाहि जाँदी ।

तब भगवान कृष्ण हँसकर कहने लगे, हे राजन् ! ज़रा सामने होकर ध्यान से सुनो । तुम्हारे अन्दर प्रेम मुझे कहीं नहीं दिखाई देता (इसलिए मैं नहीं आया)। वैसे मुझे कोई कष्ट नहीं हैं । जैसे प्रेम विदुर के मन में है अन्य सबमें तो उसके मुक़ाबले रंचमात्र भी नहीं है । गोविन्द (प्रभु) तो प्रेमाभक्ति का भूखा है (किसी अन्य पदार्थ का नहीं) ।। ७ ।।

पउड़ी ८

(द्रौपदी)

दु:शासन द्रौपदी को सिर के बालों से पकड़कर सभा में ले आया और उसने सेवकों से कहा कि दासी पांचाली (पांचाल-नरेश की पुत्री द्रौपदी) को नंगा कर दो । पाँचों पांडव, जिनकी स्त्री द्रौपदी इस समय बुरी तरह फँसी हुई है, उसे देख रहे हैं कि द्रौपदी आँखें बन्द कर हा कृष्ण ! हा कृष्ण ! पुकार रही है । दूतों ने (द्रौपदी के) वस्त्र उतार-उतारकर वस्त्रों के क़िले बना दिए अर्थात् अनंत वस्त्रों के ढेर लगा दिए और थक गए पर कपड़ों का अन्त नहीं कर सके । वे सब (दु:शासन-पक्ष के) लोग अपनी असफलता पर हाथ मरोड़ने और सिर धुनने लगे कि उलटा हम ही लोग बेइज़्ज़त हो गये।

घरि आई ठाकुर मिले पैज रही बोले शरमाँदी ।
नाथाँ अनाथाँ बाणि धुराँदी ॥ ८ ॥

पउड़ी ९

(सुदामा भगत)

बिपु सुदामा दालिदी बाल सखाई मित्र सदाए ।
लागू होई बाम्हणी मिलि जगदीस दलिद्र गवाए ।
चलिआ गणदा गटीआँ किउ करि जाईऐ कउणु मिलाए ।
पहुता नगरि दुआरका सिंघ दुआरि खलोता जाए ।
दूरहु देखि डंडउति करि छडि सिंघासणु हरि जी आए ।
पहिले दे परदखणा पैरी पै के लै गलि लाए ।
चरणोदकु लै पैर धोइ सिंघासणु उते बैठाए ।
पुछे कुसलु पिआरु करि गुर सेवा दी कथा सुणाए ।
लै के तंदुल चबिओनु विदा करे अगै पहुचावै ।
चारि पदारथ सकुचि पठाए ॥ ९ ॥

द्रौपदी घर आई तो (भगवान) कृष्ण मिले और पूछने लगे कि हे द्रौपदी तुम्हारी लाज बच गई । द्रौपदी यह सुन शरमा उठी और बोली हाँ नाथ ! आपका बिरद है कि आदिकाल से ही अनाथों की रक्षा की जाती है ।। ८ ।।

पउड़ी ९

(सुदामा भक्त)

निर्धन सुदामा ब्राह्मण, कृष्ण का बचपन का दोस्त कहा जाता था । उसकी ब्राह्मणी (पत्नी) उसके पीछे ही पड़ गयी कि जगदीश कृष्ण से मिलकर अपनी दरिद्रता दूर क्यों नहीं करते । वह सोच में पड़ा हुआ चल निकला कि कैसे कृष्ण तक पहुँचा जाए और कौन मुलाक़ात करवाएगा । यही सोचता हुआ वह द्वारिका जा पहुँचा और सिंहद्वार पर आ खड़ा हुआ । उसे दूर से ही देखकर दंडवत् करते हुए कृष्ण भगवान सिंहासन छोड़कर चले आये । पहले उन्होंने (विप्र की) परिक्रमा की फिर चरण छूकर उसे गले लगाया । फिर उसके पाँव धोकर चरणामृत लेकर उसे सिंहासन पर बैठाया । फिर प्यार से उसकी कुशलता पूछी और गुरु-सेवा में रहने की कथा-वार्ता चलाई । फिर उससे ब्राह्मणी (पत्नी) द्वारा दिये गये चावल माँगकर खाये और उसे स्वयं बाहर तक आकर विदा दी । चारों पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) उसे दिये और भगवान ऐसा शर्मिन्दा-से हुए मानो कुछ भी नहीं दे रहे हों ।। ९ ।।

पउड़ी १०

(जैदेउ भगत)

प्रेम भगति जैदेउ करि गीत गोविंद सहज धुनि गावै ।
लीला चलित वखाणदा अंतरजामी ठाकुर भावै ।
अखरु इकु न आवड़ै पुसतक बंन्हि संधिआ करि आवै ।
गुण निधानु घरि आइ कै भगत रूपि लिखि लेखु बणावै ।
अखर पढ़ि परतीति करि होइ विसमादु न अंगि समावै ।
वेखै जाइ उजाड़ि विचि बिरखु इकु आचरजु सुहावै ।
गीत गोविंद संपूरणो पति पति लिखिआ अंतु न पावै ।
भगति हेति परगासु करि होइ दइआलु मिलै गलि लावै ।
संत अनंत न भेदु गणावै ।। १० ।।

पउड़ी ११

(नामदेव)

कंम कितै पिउ चलिआ नामदेउ नो आखि सिधाइआ ।
ठाकुर दी सेवा करी दुधु पीआवणु कहि समझाइआ ।

पउड़ी १०

(जयदेव भक्त)

जयदेव नामक भक्त प्रेमाभक्ति में लीन होकर सहज धुन में गोविन्द के गीत गाया करता था ('गीत गोविंद' जयदेव की कृति है) । वह परमेश्वर के कौतुकों का वर्णन किया करता था और भगवान को अत्यन्त प्रिय था । उसे अक्षर तो एक भी नहीं आता था इसलिए संध्या को पुस्तक को बाँधकर वापस घर चला आता था। गुणनिधान प्रभु ने घर आकर भक्त के रूप में स्वयं उसके लिए गीत बनाकर लिखे। जयदेव उन अक्षरों को प्रेमपूर्वक पढ़कर आश्चर्य से फूला नहीं समाता था । फिर उसने जंगल में क्या देखा कि एक वृक्ष शोभायमान है । उसके पत्ते-पत्ते पर गीतगोविंद लिखा हुआ संपूर्ण रूप में विद्यमान है । वह इस रहस्य को नहीं समझ सका । भक्त के प्रेम के कारण प्रभु प्रकाशित हो उसे गले लगाकर मिले। परमेश्वर कभी संतों के साथ कोई पर्दा नहीं रखता ।। १० ।।

पउड़ी ११

(नामदेव)

नामदेव का पिता नामदेव को यह समझाकर किसी कार्यवश बाहर गया कि ठाकुर की सेवा करना और उसे दूध पिलाना ।

नामदेउ इसनानु करि कपल गाइ दुहि कै लै आइआ ।
ठाकुर नो न्हावालि कै चरणोदकु लै तिलकु चढ़ाइआ ।
हथि जोड़ि बिनती करै दुध पीअहु जी गोबिंद राइआ ।
निहचउ करि आराधिआ होइ दइआलु दरसु दिखलाइआ ।
भरी कटोरी नामदेवि लै ठाकुर नो दुधु पीआइआ ।
गाइ मुई जीवालिओनु नामदेव दा छपरु छाइआ ।
फेरि देहुरा रखिओनु चारि वरन लै पैरी पाइआ ।
भगत जना दा करे कराइआ ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(नामदेव अते त्रिलोचन)

दरसनु देखण नामदेव भलके उठि त्रिलोचनु आवै ।
भगति करनि मिलि दुइ जणे नामदेउ हरि चलितु सुणावै ।
मेरी भी करि बेनती दरसनु देखाँ जे तिसु भावै ।
ठाकुर जी नो पुछिओसु दरसनु किवै त्रिलोचनु पावै ।

नामदेव स्नान करके काले स्तनों वाली गाय दुहकर ले आया । उसने ठाकुर को नहलाया और चरणामृत का तिलक लगाया । अब वह हाथ जोड़कर विनती करने लगा कि हे गोविंद राय ! दूध पीओ । दृढ़ निश्चय से उसने आराधना की तो दयालु हो भगवान ने उसे दर्शन दिये । नामदेव ने कटोरा भरकर ठाकुर को दूध पिलाया । पुन: (एक अन्य प्रसंग में)भगवान ने मृत गाय को जीवित किया और नामदेव की झोंपड़ी भी बनाई । फिर (एक अन्य समय में) भगवान ने मंदिर को घुमाकर चारों वर्णों को नामदेव के चरणों में ला डाला । भगवान भी भक्तों का किया हुआ ही स्वयं भी करता है ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(नामदेव और त्रिलोचन)

नामदेव का दर्शन करने के लिए त्रिलोचन रोज प्रात: आया करता था । वे दोनों मिलकर भक्ति किया करते थे और नामदेव उसे हरि के कौतुक सुनाया करता था । (त्रिलोचन ने नामदेव से कहा) मेरी ओर से भी प्रार्थना करो ताकि मैं भी यदि उस प्रभु को स्वीकार हो तो उसके दर्शन कर सकूँ । नामदेव ने ठाकुर से पूछा कि त्रिलोचन को कैसे दर्शन प्राप्त होगा?

हसि कै ठाकुर बोलिआ नामदेउ नो कहि समझावै ।
हथि न आवै भेटु सो तुसि त्रिलोचन मै मुहि लावै ।
हउ अधीनु हाँ भगत दे पहुँचि न हंघाँ भगती दावै ।
इहो विचोला आणि मिलावै ॥ १२ ॥

पउड़ी १३

(धंना अते ब्राहमण)

बाम्हणु पूजै देवते धंना गऊ चरावणि आवै ।
धंनै डिठा चलितु एहु पूछै बाम्हणु आखि सुणावै ।
ठाकुर दी सेवा करै जो इछै सोई फलु पावै ।
धंना करदा जोदड़ी मै भि देह इक जे तुधु भावै ।
पथरु इकु लपेटि करि दे धंनै नो गैल छुडावै ।
ठाकुर नो न्हावालि कै छाहि रोटी लै भोगु चढ़ावै ।
हथि जोड़ि मिनति करै पैरी पै पै बहुतु मनावै ।
हउ भी मुहु न जुठालसाँ तू रुठा मै किहु न सुखावै ।

ठाकुर जी हँसकर बोले और नामदेव को समझाया कि मैं भेंट आदि चढ़ाने पर हाथ नहीं लगाता । मैं तो प्रसन्न होकर ही त्रिलोचन को दर्शन दूँगा । मैं तो भक्तों के अधीन हूँ और उनके भक्तिपूर्ण दावों को कभी अस्वीकृत नहीं कर सकता बल्कि मैं भी उनको समझ नहीं सकता । उनकी भक्तिभावना ही मध्यस्थ बनकर उन्हें मुझसे आ मिलती है ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(धन्ना और ब्राह्मण)

जहाँ एक ब्राह्मण (पत्थर की मूर्तियों के रूप में) बहुत से देवताओं की पूजा किया करता था, वहीं पर धन्ना (जार) गाय चराने आया करता था । धन्ना ने यह सब देखा तो ब्राह्मण से पूछा, यह आप क्या करते हो ? उत्तर मिला कि ठाकुर की सेवा करने से मनचाहा फल प्राप्त होता है । धन्ने ने प्रार्थना की कि हे विप्र ! यदि तुम्हें अच्छा लगे तो मुझे भी एक (ठाकुर) दे दो । ब्राह्मण ने एक पत्थर लपेटकर धन्ने को दे दिया और उससे पीछा छुड़वाया । धन्ने ने ठाकुर को नहलाया और छाछ-रोटी लेकर उसे भोग प्रस्तुत किया । वह हाथ जोड़ पाँव पड़कर उसे मनाने लगा । वह कहने लगा कि मैं भी मुँह जूठा नहीं करूँगा। अगर तुम रूठ गये हो तो भला बताओ मुझे कैसे अच्छा लगेगा ।

गोसाई परतखि होइ रोटी खाहि छाहि मुहि लावै ।
भोला भाउ गोबिंद मिलावै ॥ १३ ॥

पउड़ी १४

(बेणी भगत)

गुरमुखि बेणी भगति करि जाइ इकांतु बहै लिव लावै ।
करम करै अधिआतमी होरसु किसै न अलखु लखावै ।
घरि आइआ जा पुछीऐ राज दुआरि गइआ आलावै ।
घरि सभ वथू मंगीअनि वलु छलु करिकै झथ लंघावै ।
वडा साँगु वरतदा ओह इक मनि परमेसरु धिआवै ।
पैज सवारै भगत दी राजा होइकै घरि चलि आवै ।
देइ दिलासा तुसि कै अणगणती खरची पहुँचावै ।
ओथहु आइआ भगति पासि होइ दइआलु हेतु उपजावै ।
भगत जनाँ जैकारु करावै ॥ १४ ॥

भगवान ने प्रत्यक्ष हाज़िर होकर रोटी खाई और छाछ को पिया । (धन्ने के समान) भोलापन ही भगवान को मिला देता है ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(बेनी भक्त)

गुरुमुख बेनी नामक भक्त एकांत स्थान में बैठकर समाधि लगाता था । वह आध्यात्मिक कर्म करता था और अन्यों पर प्रकट नहीं करता था अर्थात् वह निरभिमानी था । घर लौटने पर जब लोग पूछते तो बताता कि राजद्वार पर गया था (राजद्वार का अर्थ परमेश्वर का घर है) । जब गृहणी घर का सामान माँगती थी तो टालमटोल करके दिन काटे चला जाता था । एक दिन जब वह एक मन से प्रभु-आराधना कर रहा था तो अद्भुत कौतुक हुआ । भक्त की शान बनाये रखने के लिए परमात्मा स्वयं राजा का रूप धारण कर उसके घर आ गया । प्रसन्न होकर सबको दिलासा दिया और अनन्त खर्च के लिए धन पहुँचा दिया । कहाँ से वह भक्त (बेनी) के पास आया और उसे बहुत प्यार किया । वह इस प्रकार भक्तों की जय-जयकार करवाता है ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(कबीर अते रामानंद)

होइ बिरकतु बनारसी रहिंदा रामानंदु गुसाईं ।
अंम्रितु वेले उठि कै जाँदा गंगा न्हावण ताईं ।
अगो ही दे जाइ कै लंमा पिआ कबीर तिथाईं ।
पैरी टुंबि उठालिआ 'बोलहु राम' सिख समझाई ।
जिउ लोहा पारसु छुहे चंदन वासु निंमु महकाई ।
पसू परेतहु देव करि पूरे सतिगुर दी वडिआई ।
अचरज नो अचरजु मिलै विसमादै विसमादु मिलाई ।
झरणा झरदा निझरहु गुरमुखि बाणी अघड़ घड़ाई ।
राम कबीरै भेदु न भाई ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(सैण नाई)

सुणि परतापु कबीर दा दूजा सिखु होआ सैणु नाई ।
प्रेम भगति राती करै भलकै राज दुआरै जाई ।

पउड़ी १५

(कबीर और रामानन्द)

गोसाईं रामानन्द संसार से विरक्त हो काशी में रहता था और भोर बेला में गंगास्नान के लिए जाता था । वहाँ पहले ही जाकर कबीर लेट गया, जिसे पाँव से छूकर रामानन्द ने उठाया और कहा भाई ! "राम बोलो" । कबीर ने इसे उपदेश समझा । जैसे लोहा पारस को छूकर सोना कर देता है और चंदन की गंध से नीम भी महक उठती है । उसी प्रकार सदगुरु की महिमा है कि वह पशु-प्रेतों को भी देवता बना देता है। आश्चर्य (गुरु) को मिलकर शिष्य भी आश्चर्य-रूप से बृहद् आश्चर्य (ईश्वर) के साथ एक हो जाता है । फिर आत्मा के निर्भर से झरना फूटता है और गुरुमुखों की वाणी अघड़ जीवों की भी गढ़न कर देती है अर्थात् उन्हें सँवार देती है । अब राम और कबीर में भेद न रह गया ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(सैन नाई)

कबीर का बड़ा प्रताप सुनकर सैन नाई भी सिक्ख जा बना । रात को यह प्रेमाभक्ति करता और प्रातः राजद्वार पर जा हाजिर होता था ।

आए संत पराहुणे कीरतनु होआ रैणि सबाई ।
छडि न सकै संत जन राज दुआरि न सेव कमाई ।
सैण रूपि हरि जाइकै आइआ राणै नो रीझाई ।
साध जनाँ नो विदा करि राज दुआरि गइआ सरमाई ।
राणै दूरहुँ सदि कै गलहुँ गवाइ खोलि पैन्हाई ।
वसि कीता हउँ तुधु अजु बोलै राजा सुणै लुकाई ।
परगटु करै भगति वडिआई ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(रविदास भगत)

भगतु भगतु जगि वजिआ चहु चकाँ दे विचि चमिरेटा ।
पाण्हा गंढै राह विचि कुला धरम ढोइ ढोर समेटा ।
जिउ करि मैले चीथड़े हीरा लालु अमोलु पलेटा ।
चहु वरना उपदेसदा गिआन धिआनु करि भगति सहेटा ।

एक रात साधु अतिथि आ गये और सारी रात भगवद्कीर्तन चलता रहा । सैन जी संतजनों को छोड़ न सके और प्रात: राजद्वार पर सेवा में उपस्थित न हो सके । हरि सैन का रूप धारण कर पहुँचे और राजा की सेवा करके प्रसन्न किया । भक्तजन सुबह संत जनों को विदा कर सकुचाता हुआ राजद्वार पर पहुँचा । राजा ने दूर से ही आवाज देकर बुलाया और अपनी पोशाक उतारकर भक्त जी को पहना दी । राजा ने कहा कि तुमने मुझे वश में कर लिया है । यह सब लोग भी देख-सुन रहे थे । (परमेश्वर) स्वयं भक्त के बड़प्पन को प्रकट करता है ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(रविदास भक्त)

चारों दिशाओं में चमार (रविदास) भक्त के रूप में प्रसिद्ध हो गया । वह अपने कुल-धर्म के अनुसार रास्ते में बैठकर जूते गाँठा करता था और मृत पशुओं को ढोकर समेटा करता था । ऊपर से तो उसका यह हाल था पर अंदर से ऐसा था मानों चिथड़ों में लाल लपेटा हुआ हो । वह चारों वर्णों को उपदेश देता था और सबको ज्ञान-ध्यान-भक्ति में लीन करता था ।

न्हावणि आइआ संगु मिलि बानारस करि गंगा थेटा ।
कढि कसीरा सउपिआ रविदासै गंगा दी भेटा ।
लगा पुरबु अभीच दा डिढा चलितु अचरजु अमेटा ।
लइआ कसीरा हथु कढि सूतु इकु जिउ ताणा पेटा ।
भगत जनाँ हरि माँ पिउ बैटा ॥ १७ ॥

पउड़ी १८

(अहल्लिआ अते गोतम)

गोतम नारि अहिलिआ तिसनो देइ इंद्र लोभाणा ।
पर घरि जाइ सरापु लै होइ सहस भग पछोताणा ।
सुंञा होआ इंद्र लोकु लुकिआ सरवरि मनि सरमाणा ।
सहस भगहु लोइण सहस लैंदोई इंद्र पुरी सिधाणा ।
सती सतहु टलि सिला होइ नदी किनारै बाझु पराणा ।
रघुपति चरणि छुहंदिआ चली सुरग पुरि बणे बिबाणा ।

एक बार कुछ लोगों का झुंड काशी गंगास्नान के लिए चला । रविदास ने एक धेला (दो धेले का एक पैसा) निकालकर एक व्यक्ति को गंगा की भेंट चढ़ाने के लिए दिया । वहाँ अभिजित् नक्षत्र का महान पर्व चल रहा था, जहाँ लोगों ने अद्भुत कौतुक देखा । (गंगा ने) हाथ निकालकर धेला लिया और सिद्ध कर दिखाया कि सूत के ताने-बाने के समान रविदास गंगा के साथ एकात्म है । भक्तजनों का हरि ही उनकी माँ है और वे उसके पुत्र हैं ।। १७ ।।

पउड़ी १८

(अहल्या और गौतम)

गौतम की पत्नी अहल्या थी जिसे देखकर इन्द्र लुभित (कामातुर) हो उठा। वह पराये घर गया; उसने सहस्र भग का शाप लिया और पछताने लगा। इन्द्रलोक अब सूना हो गया और मन में शर्मिंदा होकर वह सरोवर में छिप गया। जब शाप हटा और सहस्र भगों के स्थान पर नेत्र बन गये तब वह इन्द्रपुरी को लौटा । इधर अहल्या जो अपने पतिव्रत-धर्म में स्थिर न रह सकी शिला बनाकर नदी के किनारे पड़ी रही। वह रघुपति (रामचन्द्र) का चरण-स्पर्श पाते ही विमान पर चढ़कर स्वर्गपुरी की ओर चली गई ।

भगति वछलु भलिआईअहु पतित उधारणु पाप कमाणा ।
गुण नो गुण सभ को करै अउगुण कीते गुण तिसु जाणा ।
अबिगति गति किआ आखि वखाणा ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(बालमीक बटवाड़ा)

वाटै माणस मारदा बैठा बालमीक वटवाड़ा ।
पूरा सतिगुरु भेटिआ मन विचि होआ खिंजो ताड़ा ।
मारन नो लोचै घणा कढि न हंघै हथु उघाड़ा ।
सतिगुर मनूआ राखिआ होइ न आवै उछेहाड़ा ।
अउगुणु सभ परगासिअनु रोजगारु है एहु असाड़ा ।
घर विचि पुछण घलिआ अंतिकाल है कोइ असाड़ा ।
कोड़मड़ा चउखंनीऐ कोइ न बेली करदे झाड़ा ।
सचु द्रिड़ाइ उधारिअनु टपि निकथा उपरं वाड़ा ।
गुरमुखि लंघे पाप पहाड़ा ।। १९ ।।

वह प्रभु भलाई करने के कारण भक्तवत्सल कहलाता है और पाप कमानेवालों का उद्धार करने के कारण पतित-उद्धारक कहलाता है । भला करने पर तो सभी भलाई करते हैं, पर अवगुण करने पर भी यदि कोई भलाई करे तो उसे अच्छा समझा जाता है । उस अव्यक्त की गति का भला क्या वर्णन किया जाय ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(वाल्मीकि बटमार)

राहजन वाल्मीकि रास्ते में लोगों को पकड़कर मारा करता था । एक बार पूरे सद्गुरु के साथ मेल होने पर उसके मन में अपने काम के प्रति दुविधा जाग उठी । लोगों को मारने को उसका मन तो करता था पर हाथ नहीं उठते थे । सद्गुरु ने मन को भी स्थिर कर दिया, अब मन के संकल्प-विकल्प भी समाप्त हो गये । सभी अवगुणों को उसने गुरु को कह सुनाया और कहा कि हे महाराज ! हमारा तो रोजगार ही यही है । सद्गुरु ने उसे घर पूछने के लिए भेजा कि अंत समय में कौन उसका साथ देगा (अर्थात् दुष्कर्मों के फल का भागीदार कौन बनेगा) ? सारा परिवार उस पर न्योछावर होने को कटिबद्ध रहता था पर इस प्रश्न के उत्तर में किसी ने 'हाँ' न कही। जब वह पुन: सद्गुरु के पास आया तो उसने सत्य का उपदेश दृढ़ कराया तथा उसका उद्धार किया । वह छलाँग लगाकर संसार के फंदे से बच निकला अर्थात् मुक्त हो गया । गुरुमुख बनकर व्यक्ति पापों के पहाड़ भी लाँघ जाता है ।। १९ ।।

पउड़ी २०

(अजामल)

पतितु अजामल पापु करि जाइ कलावतणी दे रहिआ ।
गुरु ते बेमुखु होइ कै पाप कमावै दुरमति दहिआ ।
बिरथा जनमु गवाइआ भवजल अंदरि फिरदा वहिआ ।
छिअ पुत जाए वेसुआ पापा दे फल इछे लहिआ ।
पुतु उपंनाँ सतवाँ नाउ धरण नो चिति उमहिआ ।
गुरू दुआरै जाइकै गुरमुखि नाउ नराइणु कहिआ ।
अंतकाल जमदूत वेखि पुत नराइणु बोलै छहिआ ।
जमगण मारे हरि जनाँ गइआ सुरग जमुडंडु न सहिआ ।
नाइ लए दुखु डेरा ढहिआ ।। २० ।।

पउड़ी २१

(गनिका)

गनिका पापणि होइ कै पापाँ दा गलि हारु परोता ।
महाँ पुरख आचाणचक गनिका वाड़े आइ खलोता ।

पउड़ी २०

(अजामिल)

अजामिल नामक एक पापी पाप करके एक वेश्या के यहाँ जा रहा । गुरु से वह विमुख हो गया और पाप करते हुए वह दुर्मति में फँस गया । उसने व्यर्थ ही विषयों में जन्म गँवा दिया और संसार-समुद्र में डूबने-उतराने लगा । वेश्या के घर छः पुत्र पैदा हुए और ऐसा लगा मानो उसे अपने पापों का प्रत्यक्ष फल मिल गया (क्योंकि वे भी एक से बढ़कर एक डकैत बने) । जब सातवाँ पुत्र पैदा हुआ तो उसके नामकरण के लिए मन में उमंग उठी । गुरु के द्वार पर जाकर उसका नाम 'नारायण' रखने का आदेश प्राप्त हुआ । अंतिम समय में यमदूतों को देखकर अजामिल पुत्र नारायण को पुकारने लगा । हरिजनों ने आकर यमदूतों को मार भगाया। अजामिल स्वर्ग में गया और उसे यमदंड सहन नहीं करना पड़ा । (नारायण) नाम लेने से उसके दुखों का पुंज नष्ट हो गया ।। २० ।।

पउड़ी २१

(गणिका)

पापिन गणिका पापों को गले में हार के समान पहने रखती थी । एक बार एक महापुरुष अचानक गणिका के आँगन में आ खड़ा हुआ ।

दुरमति देखि दइआलु होइ हथहु उस नो दितोनु तोता ।
राम नामु उपदेसु करि खेलि गइआ दे वणजु सओता ।
लिव लगी तिसु तोतिअहु नित पढ़ाए करै असोता ।
पतितु उधारणु राम नामु दुरमति पाप कलेवरु धोता ।
अंतकालि जम जालु तोड़ि नरकै विचि न खाधु सु गोता ।
गई बैकुंठि बिबाणि चढ़ि नाउँ रसाइणु छोति अछोता ।
थाउँ निथावें माणु मणोता ।। २१ ।।

पउड़ी २२

(पूतना)

आई पापणि पूतना दुही थणी विहु लाइ वहेली ।
आइ बैठी परवार विचि नेहुँ लाइ नवहाणि नवेली ।
कुछड़ि लए गोविंद राइ करि चेटकु चतुरंग महेली ।
मोहणु मंमे पाइओनु बाहरि आई गरब गहेली ।

उसकी दुर्मति को देखकर महापुरुष ने प्रसन्न होकर उसे अपने हाथ का तोता दे दिया। राम-नाम का उपदेश देकर सौ गुना लाभवाला व्यापार उसे समझाकर वह चला गया । वह गणिका लीन होकर नित्य उस तोते को रात-दिन राम-नाम पढ़ाने लगी । पतितों के उद्धारक राम-नाम ने उस गणिका के दुर्मति के कलेवर को धो दिया और अन्त में यमपाश को तोड़कर उसने नर्क रूपी समद्र में गोता नहीं खाया। नाम-रसायन के कारण वह विमान पर सवार हो बैकुंठ-धाम को पापों से रहित होकर गई । नाम ही निराश्रितों का आश्रय-स्थल है ।। २१ ।।

पउड़ी २२

(पूतना)

व्यभिचारिणी पूतना दोनों स्तनों पर विष का लेप लगाकर आई । वह (नंद के) परिवार में आ बैठी और नई नवेली की तरह परिवार से स्नेह जताने लगी । उस कुटनी स्त्री ने प्रपंच कर कृष्ण को गोद में उठा लिया । कृष्ण को स्तन मुँह में देकर गर्वपूर्वक बाहर ले आई ।

देह वधाइ उचाइअनु तिह चरिआरि नारि अठिखेली ।
तिहुँ लोआँ दा भारु दे चंबड़िआ गलि होइ दुहेली ।
खाइ पछाड़ पहाड़ वाँगि जाइ पई उजाड़ि धकेली ।
कीती माऊ तुलि सहेली ॥ २२ ॥

पउड़ी २३

(स्त्री क्रिशन जी दा बधक हत्थों अंत)

जाइ सुता परभास विचि गोडे उते पैर पसारे ।
चरण कवल विचि पदमु है झिलमिल झलके वाँगी तारे ।
बधकु आइआ भालदा मिरगै जाणि बाणु लै मारे ।
दरसन डिठोसु जाइकै करण पलाव करे पुकारे ।
गलि विचि लीता क्रिशन जी अवगुणु कीता हरि न चितारे ।
करि किरपा संतोखिआ पतित उधारणु बिरदु बीचारे ।
भले भले करि मंनीअनि बुरिआँ दे हरि काज सवारे ।
पाप करेंदे पतित उधारे ॥ २३ ॥ १० ॥

उस स्त्री ने अब देह को बढ़ाकर ऊँचा कर लिया । कृष्ण भी तीनों लोकों का भार बनकर उसके गले से चिपट गया । वह चक्कर खाकर पहाड़ की तरह जंगल में जा गिरी । अन्त में कृष्ण ने उसकी मुक्ति कर उसे माँ की सहेली के तुल्य सम्मान दिया ।। २२ ।।

पउड़ी २३

(श्रीकृष्ण का वधिक के हाथों अंत)

प्रभास तीर्थ पर कृष्ण अपने घुटने पर पाँव रखकर सो गये । चरण में कमल का चिह्न ऐसे चमक रहा था मानों तारा चमक रहा हो । इधर एक बधिक आया और उसने मृग समझकर बाण मार दिया। जब उसने पास जाकर देखा (कि कृष्ण हैं) तो उसने दुख से बहुत हाथ-पाँव मारे। कृष्ण ने उसके अवगुण को विस्मृत करते हुए उसे गले से लगा लिया । कृपापूर्वक उसे धैर्य बँधाया और पतित-पावन बिरद को बनाए रखा । भले को तो सभी भला जानते हैं, पर बुरे व्यक्तियों के कार्य तो प्रभु ही सँवारता है । उसने पाप करते हुए कई पतितों का उद्धार कर दिया है ।। २३ ।। १० ।।

* * *

वार ११

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।।

पउड़ी १

(सतिगुर दा पिरम पिआला)

सतिगुर सचा पातिसाहु पातिसाहाँ पातिसाहु जुहारी ।
साधसंगति सचि खंडु है आइ झरोखै खोलै बारी ।
अमिउ किरणि निझर झरै अनहद नाद वाइनि दरबारी ।
पातिसाहाँ दी मजलसै पिरमु पिआला पीवण भारी ।
साकी होइ पीलावणा उलस पिआलै खरी खुमारी ।
भाइ भगति भै चलणा मसत अलमसत सदा हुसिआरी ।
भगत वछलु होइ भगति भंडारी ।। १ ।।

पउड़ी २

(गुरमुख परमारथ दा भेद जरदे हन)

इकतु नुकतै होइ जाइ महरमु मुजरमु खैर खुआरी ।
मसतानी विचि मसलती गैर महलि जाणा मनु मारी ।

पउड़ी १

(सत्‌गुरु का प्रेम-प्याला)

सद्‌गुरु बादशाहों का भी सच्चा बादशाह है, उसे मैं प्रणाम करता हूँ । साधुसंगति तो सत्य देश है, जहाँ आकर (मन-बुद्धि के) खिड़कियाँ-झरोखे खुल जाते हैं। यहाँ अमृत का झरना निरंतर बहता है और दरबारीगण अनहद् शब्द को बजाते-गाते हैं । बादशाहों की सभा (संतसंगति) में प्रेम का प्याला पीना काफी कठिन कार्य है । गुरु साकी बनकर जब पिलाता है तो उसके जूठे प्याले की मस्ती अत्यधिक प्रभावशाली होती है । जो प्रेम-भक्ति के भय में चलता है वह दीन-दुनिया की ओर मस्त, लापरवाह होकर भी होशियार बना रहता है अर्थात् बुद्धिहीन नहीं हो जाता। भक्तवत्सल परमात्मा उसका भंडारी बन जाता है अर्थात् उसकी सब इच्छाएँ पूरी करता है ।। १ ।।

पउड़ी २

(गुरुमुख परमार्थ का रहस्य आत्मसात् करते हैं)

(उर्दू में) एक नुक्ते के लगने से " मह्‌रम " से " मुज्‌रिम " हो जाता है

गल न बाहरि निकलै हुकमी बंदे कार करारी ।
गुरमुखि सुख फलु पिरम रसु देहि बिदेह वडे वीचारी ।
गुरमूरति गुर सबदु सुणि साधसंगति आसणु निरंकारी ।
आदि पुरखु आदेसु करि अंम्रित वेला सबदु आहारी ।
अविगति गति अगाधि बोधि अकथ कथा असगाह अपारी ।
सहनि अवट्टणु परउपकारी ॥ २ ॥

पउड़ी ३

(गुरसिख कौण सदावे)

गुरमुखि जनमु सकारथा गुरसिख मिलि गुरसरणी आइआ ।
आदि पुरख आदेसु करि सफल मूरति गुरदरसनु पाइआ ।
परदखणा डंडउत करि मसतकु चरण कवल गुर लाइआ ।
सतिगुरु पुरख दइआलु होइ वाहिगुरू सचु मंतु सुणाइआ ।

अर्थात् यदि " मह्‌रम " के " हे " के साथ बिंदी लग जाए तो " हे " की " जीम " हो जाने से " मुज्‌रिम" हो जाता है और अर्थ नेकी करनेवाले की जगह ख्वार करनेवाला अपराधी हो जाता है । गुरुमुख साधुसंगति में मस्त रहते हैं और अन्य मज्‌लिसों (स्थानों) में जाने का उनका मन नहीं रहता । वे सेवा प्रभु के हुकुम में अत्यन्त कड़ाई से करते हैं और कोशिश करते हैं कि कोई जानने न पाये । ऐसे गुरुमुख को सुख-फल प्राप्त होता है और वे देह का अभिमान त्यागकर विदेह हो जाते हैं तथा गंभीर चिंतन करनेवाले बन जाते हैं । वे गुरु-शब्द को ही गुरु-मूर्त्ति और ' साधुसंगति ' को निराकार प्रभु का आसन समझते हैं । आदिपुरुष परमात्मा को प्रणाम कर वे अमृत-बेला में शब्द (गुरुवाणी) का आहार करते हैं । अव्यक्त प्रभु की गति का ज्ञान रखना अत्यन्त गहन् अनुभव है और उस अकथनीय प्रभु की कथा-वार्त्ता का भी बहुत गुरुतर कार्य है । गुरुमुख व्यक्ति ही परोपकार करते हुए तन पर कष्ट भी सहते हैं ।। २ ।।

पउड़ी ३

(गुरु-सिक्ख कौन कहलाये)

उस गुरुमुख का जन्म सफल है जो गुरु के सिक्ख से मिलकर गुरु की शरण में आ गया है । उसने गुरुरूपी आदिपुरुष (परमात्मा) को प्रणाम किया और ऐसे गुरु के दर्शन प्राप्त कर वह सफल हो गया । उसने परिक्रमा कर गुरु के चरण-कमलों पर दंडवत् की। गुरु ने दयालु होकर उसे 'वाहिगुरु' सत्यमंत्र सुनाया है ।

सच रासि रहरासि दे पैरीं पै जगु पैरी पाइआ ।
कामु करोधु विरोधु हरि लोभु मोहु अहंकारु तजाइआ ।
सतु संतोखु दइआ धरमु नामु दानु इसनानु द्रिड़ाइआ ।
गुर सिख लै गुरसिखु सदाइआ ।। ३ ।।

पउड़ी ४

(गुरमुख)

सबद सुरति लिव लीणु होइ साधसंगति सचि मेलि मिलाइआ ।
हुकम रजाई चलणा आपु गवाइ न आपु जणाइआ ।
गुर उपदेसु अवेसु करि परउपकारि अचारि लुभाइआ ।
पिरम पिआला अपिउ पी सहज समाई अजरु जराइआ ।
मिठा बोलणु निवि चलणु हथहु दे कै भला मनाइआ ।
इक मनि इकु अराधणा दुबिधा दूजा भाउ मिटाइआ ।
गुरमुखि सुख फल निज पदु पाइआ ।। ४ ।।

सिक्ख अपनी श्रद्धा रूपी पूँजी के साथ गुरु के चरणों में गिरा और सारा संसार उसके चरणों में आ पड़ा । ईश्वर (गुरु ने) उसके काम, क्रोध, विरोध का हरण कर लिया और लोभ, मोह, अहंकार का त्याग करवा दिया । इनके स्थान पर सत्य, संतोष, दया, धर्म, नाम, दान-स्नान का अभ्यास पक्का करवाया । । गुरु की शिक्षा ग्रहण कर ही व्यक्ति गुरु का सिक्ख कहलवाता है ।। ३ ।।

पउड़ी ४

(गुरुमुख)

शब्द में सुरति को लीन कर " साधुसंगति " के सच्चे मिलाप-केन्द्र में गुरुमुख मिलते हैं । वे उस प्रभु की रज़ा में चलते हैं और अपने अहंकार को गँवाकर अपने आपको जनवाते नहीं । गुरु के उपदेश से आवेष्टित होकर वे परोपकारी आचरण करने के लिए सदैव लालायित रहते हैं । प्रभु-ज्ञान का परम प्याला पीकर वे सहज में समाकर उस असह्य शक्तिपात् को भी सहन करते हैं । वे मीठा बोलते हैं, विनम्र होकर चलते हैं और हाथों से दान देकर दूसरे का भला मनाते हैं । वे द्विविधा और द्वैतभावना को मिटाकर एक मन से उस एक प्रभु की आराधना करते हैं । गुरुमुख सुख-फल के रूप में निज पद (स्व की पहचान) प्राप्त करते हैं ।। ४ ।।

पउड़ी ५

(गुर सिखी)

गुरसिखी बारीक है खंडे धार गली अति भीड़ी ।
ओथै टिकै न भुणहणा चलि न सकै उपरि कीड़ी ।
वालहु निकी आखीऐ तेलु तिलहु लै कोल्हू पीड़ी ।
गुरमुखि वंसी परम हंस खीर नीर निरनउ चुंजि वीड़ी ।
सिला अलूणी चटणी माणक मोती चोग निवीड़ी ।
गुरमुखि मारगि चलणा आस निरासी झीड़ उझीड़ी ।
सहजि सरोवरि सच खंडि साधसंगति सच तखति हरीड़ी ।
चढ़ि इकीह पति पउड़ीआ निरंकारु गुर सबदु सहीड़ी ।
गुंगै दी मिठिआईऐ अकथ कथा विसमादु बचीड़ी ।
गुरमुखि सुखु फलु सहजि अलीड़ी ॥ ५ ॥

पउड़ी ५

(गुरु-सिक्खी)

गुरुसिक्खी (गुरु की शिष्यता) अत्यन्त सूक्ष्म खड़गधार और तंग गली के समान है । उस धारा पर मच्छर और कीड़ी नहीं टिक सकते । वह बाल से भी बारीक है और जैसे तिलों को कोल्हू में पेरकर तेल प्राप्त किया जाता है वैसे ही सिक्खी भी कठिनता से प्राप्त होती है । गुरुमुख परमहंस के वंशज होते हैं और नीर-क्षीर-निर्णय अपनी विचार रूपी चोंच से करते हैं । लवणहीन शिला के समान भक्ति रूपी माणिक-मोती ही वे चुगते हैं । गुरुमुख आशा-तृष्णा का मार्ग छोड़कर उदासीनता के मार्ग पर चलते हैं और माया के परदे को फाड़ डालते हैं । सच्चे हरि का सिंहासन सत्यखंड रूपी सत्संगति गुरुमुख के लिए मानसरोवर है । एकात्मता रूपी सीढ़ियों को चढ़कर वे निराकार गुरु के शब्द को ग्रहण करते हैं । उस अकथ कथा को वे आत्मविभोर होकर गूँगे की मिठाई के स्वाद की तरह अनुभव करते हैं । गुरुमुख सहज भक्ति के माध्यम से सुखफल ग्रहण करते हैं ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(गुर चरन कमल)

गुरमुखि सुखफल पिरम रसु चरणोदकु गुर चरण पखाले ।
सुख संपुट विचि रखि कै चरण कवल मकरंद पिआले ।
कउलाली सूरजमुखी लख कवल खिड़दे रलीआले ।
चंद्रमुखी हुइ कुमुदनी चरण कवल सीतल अमीआले ।
चरण कवल दी वासना लख सूरज होवनि भउर काले ।
लख तारे सूरजि चढ़ि जिउ छपि जाणि न आप सम्हाले ।
चरण कवल दलजोति विचि लख सूरजि लुकि जानि रवाले ।
गुरसिख लै गुरसिख सुखाले ॥ ६ ॥

पउड़ी ७

(एकता पर द्रिशटांत)

चारि वरनि इक वरन करि वरन अवरन तमोल गुलाले ।
असट धातु इकु धातु करि वेद कतेब न भेदु विचाले ।

पउड़ी ६

(गुरु-चरण-कमल)

गुरुमुख सुख-फल की इच्छा के अधीन प्रेमपूर्वक गुरु के चरणों को धोते हैं । उस चरणामृत को मुँह रूपी डिब्बे में रखकर वे चरण-कमल के रस के प्याले बनाते हैं । गुरु-चरणों को सूर्य समझकर वे कमलों की भाँति खिल उठते हैं । पुन: कुमुदिनी की तरह चन्द्रमुखी बनकर चरणकमलों से अमृत लेते हैं । चरण-कमलों की गंध लेने के लिए अनेकों सूर्य के काले भँवेरे बन जाते हैं । जैसे सूर्य के निकलते ही लाखों तारागण अपना आप न सँभालते हुए छिप जाते हैं, उसी प्रकार चरण रूपी कमल के पत्रों की ज्योति में लाखों सूर्य छिप जाते हैं । गुरु के शिष्य शिक्षा लेकर स्वयं सुखों का घर बन गये हैं ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(एकता पर एक दृष्टांत)

जैसे पान के विभिन्न रंग मिलकर एक लाल रंग बन जाते हैं, इसी तरह चारों वर्णों को मिलाकर एक वर्ग (सिक्ख) बना दिया है ।

चंदन वासु वणासुपति अफल सफल विचि वासु बहाले ।
लोहा सुइना होइ कै सुइना होइ सुगंधि विखाले ।
सुइने अंदरि रंग रस चरणाम्रित अंम्रित मतवाले ।
माणक मोती सुइनिअहु जग जोति हीरे परवाले ।
दिब देह दिब दिसटि होइ सबद सुरति दिब जोति उजाले ।
गुरमुखि सुख फलु रसिक रसाले ।। ७ ।।

पउड़ी ८

(गुरमुखाँ दी प्रीति)

पिरम पिआला साध संग सबद सुरति अनहद लिव लाई ।
धिआनी चंद चकोर गति अंम्रित द्रिसटि स्रिसटि वरसाई ।
घनहर चात्रिक मोर जिउ अनहद धुनि सुणि पाइल पाई ।
चरण कवल मकरंद रसि सुख संपुट हुइ भवरु समाई ।

अष्टधातु मिलकर एक धातु बन जाती है और तात्विक दृष्टि से वेद-कतेब में कोई भेद नहीं है । चंदन सारी वनस्पति, चाले वह फल-रहित है अथवा फलयुक्त है, को सुगंध प्रदान करता है । लोहा पारस के छूने से सोना बनकर फिर सुगंधि की ओर इंगित करता है (लोहे का सोना होना और फिर किसी पर उपकार कर सकना सुगंधि ही है)। फिर गुरुमुख रूपी सोने में (नाम का) रंग और (प्रेम का) रस प्रविष्ट होता है और वह संसार की ओर से बेपरवाह हो जाता है । तत्पश्चात् माणिक्य, मोती, हीरे-मोती जैसी खूबियाँ उस सोने-रूप गुरुमुख में से प्रकट होती हैं । अब दिव्य देह, दिव्य दृष्टि होकर गुरुमुख की सुरति उस दिव्य शब्द की ज्योति के उजाले में टिक जाती है । इस प्रकार गुरुमुख भक्ति के रस को लेकर अनेकों रसों से युक्त हो जाते हैं ।। ७ ।।

पउड़ी ८

(गुरुमुखों की प्रीति)

गुरु के सिक्ख सत्संगति में से प्रेम का प्याला पीकर शब्द में सुरति को एक रस में लीन कर देते हैं । उनकी दृष्टि में से चन्द्र के चकोर की तरह ध्यानी होकर बने रहने की तरह श्रेष्ठ अमृत झरता है अर्थात् उन्हें अंगार भी शीतल ही लगता है । वे पपीहे और मोर की तरह (प्रभु) बादल की अनहद् ध्वनि सुनकर नाच उठते हैं अर्थात् अत्यन्त प्रसन्न होते हैं ।

सुख सागर विचि मीन होइ गुरमुखि चालि न खोज खुजाई ।
अपिओ पीअणु निझर झरण अजरु जरण न अलखु लखाई ।
वीह इकीह उलंघि कै गुरसिख गुरमुखि सुख फलु पाई ।
वाहिगुरू वडी वडिआई ॥ ८ ॥

पउड़ी ९

(गुरू प्रीती)

कछू आँडा धिआनु धरि करि परपकु नदी विचि आणै ।
कूँज रिदै सिमरणु करै लै बच्चा उडदी असमाणै ।
बतक बच्चा तुरितुरै जल थल वरतै सहजि विडाणै ।
कोइल पालै कावणी मिलदा जाइ कुटंबि सिञाणै ।
हंस वंसु वसि मानसरि माणक मोती चोग चुगाणै ।

चरण-कमलों के मकरंद का स्वाद लेने के लिए वे भ्रमर बनकर सुख के भंडार में समा जाते हैं । सुखसागर में वे मछली की तरह रहते हैं । गुरुमुखों के अन्वेषण और उनके रंग-ढंग का कुछ पता नहीं चल पाता । वे अमृतपान करते हैं; उनमें से अमृत के निर्झर फूटते है; वे असह्य को भी आत्मसात् करते हैं। पर फिर भी प्रकट नहीं होते। वे बीस-इक्कीस सभी अवस्थाओं अर्थात् त्रिगुणात्मक प्रकृति और तुरीया को भी पार कर परमपद रूपी सुख-फल को प्राप्त करते हैं । आश्चर्यजनक वह गुरु (वाहिगुरु) है और उसका बड़प्पन भी महान् है ।। ८ ।।

पउड़ी ९

(गुरु-प्रीति)

कछुआ अपने अंडे रेत में देकर उन्हें ध्यान से परिपक्व करके फिर नदी में ले आता है । कौंच पक्षी भी ध्यान रखता हुआ बच्चे को आसमान में उड़ाता रहता है। बत्तख भी बच्चे को सहजभाव से जल-स्थल दोनों पर चलना सिखाती है। कोयल के बच्चे कौआ पालता है पर बड़े होते ही वे माँ की आवाज पहचानकर अपनी माँ से जा मिलते हैं । हंसों के बच्चे मानसरोवर में रहकर माणिक-मोती चुगना सीख जाते हैं । ज्ञान, ध्यान और स्मरण की युक्ति देकर गुरु सिक्ख को सदैव निर्बन्ध करता है

गिआन धिआनि सिमरणि सदा सतिगुरु सिखु रखै निरबाणै ।
भूह भविखहु वरतमान त्रिभवण सोझी माणु निमाणै ।
जाती सुंदर लोकु न जाणै ॥ ९ ॥

पउड़ी १०

(गुरसिक्ख दी विशेशता)

चंदन वासु वणासपति बावन चंदनि चंदनु होई ।
फल विणु चंदनु बावना आदि अनादि बिअंतु सदोई ।
चंदनु बावन चंदनहु चंदन वासु न चंदनु कोई ।
असटुधातु इकु धातु होइ पारस परसे कंचनु जोई ।
कंचन होइ न कंचनहु वरतमान वरतै सभि लोई ।
नदीआ नाले गंग संगि सागर संगमि खारा सोई ।
बगुला हंसु न होवई मान सरोवरि जाइ खलोई ।
वीहाँ दै वरतारै ओई ॥ १० ॥

और उसे भूत, भविष्य, वर्तमान अर्थात् तीनों कालों, तीनों लोकों की सूझ हो जाती है तथा विनम्र बनकर उसे मान प्राप्त होता है । गुरुमुखों की जाति सुन्दर है पर लोग इस तथ्य को नहीं जानते ।। ९ ।।

पउड़ी १०

(गुरु-सिक्ख की विशेषता)

चंदन में जो बावन चंदन है उसकी गंध से ही सारी वनस्पति चंदन हो जाती है । स्वयं बावन चंदन फल-रहित है पर सदैव अमूल्य माना जाता है । परन्तु जो बावन चंदन की गंध से चंदन बनता है वह और आगे किसी को बावन चंदन नहीं बना सकता । अष्टधातुएँ पारस से स्पर्श करते ही एक धातु सोना बन जाती हैं । लेकिन सोने से फिर आगे सोना नहीं बनता । यह सब वर्तमान में हो रहा है (पर गुरु-सिक्ख कई अन्यों को अपने जैसा बनाकर उसके भी और आगे गुरुसिक्ख बनाने की शक्ति भर देता है) । नदी-नाले गंगा और समुद्र की संगति में खारे हो जाते हैं । बगुला कभी हंस नहीं बनता चाहे वह मानसरोवर पर जा बैठे । ऐसा इसलिए होता है क्योंकि सामान्य व्यक्ति बीसों (कमाने) की गिनती में उलझा रहता है ।। १० ।।

पउड़ी ११

(होर द्रिशटांत)

**गुरमुखि इकीह पउड़ीआँ गुरमुखि सुख फलु निज घरि भोई ।
साधसंगति है सहज घरि सिमरणु दरसि परसि गुण गोई ।
लोहा सुइना होइ कै सुइनिअहु सुइना जिउँ अविलोई ।
चंदनु बोहै निंमु वणु निंमहु चंदनु बिरखु पलोई ।
गंगोदक चरणोदकहु गंगोदक मिलि गंगा होई ।
कागहु हंसु सुवंसु होइ हंसहु परम हंसु विरलोई ।
गुरमुखि वंसी परम हंसु कूड़ु सचु नीरु खीरु विलोई ।
गुर चेला चेला गुर होई ।। ११ ।।**

पउड़ी १२

(गुरसिक्ख-संधी)

**कछू बच्चा नदी विचि गुरसिख लहरि न भवजलु बिआपै ।
कूँज बच्चा लैइ उडरै सुंनि समाधि अगाधि न जापै ।**

पउड़ी ११

(अन्य दृष्टांत)

गुरुमुख व्यक्ति एकात्मता की सीढ़ियों को लाँघकर गुरु के उपदेशानुसार अपने वास्तविक स्वरूप में आ बसता है । स्मरण, दर्शन और प्रभु-स्पर्श आदि गुणों को प्राप्त करवानेवाली सत्संगति सहज का आवास है । वह ऐसा सोना है जिसके अंग अर्थात् उसके व्यक्ति कभी लोहे के समान गुणों वाले थे पर अब सोना हो गये हैं और सोने के रूप में देखे जाते हैं । नीम का पौधा भी चंदन की संगति में रहकर चंदन ही हो जाता है । पाँवों द्वारा गंदा किया जल भी गंगा के जल के साथ मिलकर गंगा का जल बन जाता है । अच्छे कुल वाला कोई कौआ, कौवे से हंस भी हो जाता है पर हंस से परमहंस कोई बिरला ही होता है । गुरुमुख के वेश में पैदा होने वाला परमहंस होता है जो सत्य और झूठ के क्षीर-नीर को विवेक से अलग कर देता है । (सत्संगति) में जो चेला है वह गुरु और गुरु (विनम्रता-पूर्वक) चेला हो जाता है ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(गुरुसिक्ख-संधि)

कछुए के बच्चे की तरह गुरुसिक्ख को भी संसार-सागर की लहरों का कोई असर नहीं होता । क्रौंच पक्षी बच्चे को लेकर आकाश में आराम से उड़ता है

हंसु वंसु है मानसरि सहज सरोवरि वड परतापै ।
बत्तक बच्चा कोइलै नंद नंदन वसुदेव मिलापै ।
रवि ससि चकवी तै चकोर सिव सकती लंघि वरै सरापै ।
अनल पंखि बच्चा मिलै निराधार होइ समझै आपै ।
गुरसिख संधि मिलावणी सबदु सुरति परचाइ पछापै ।
गुरमुखि सुख फलु थापि उथापै ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(पहिली पातिशाही दे सिखाँ दी नामावली)

तारू पोपटू तारिआ गुरमुखि बाल सुभाइ उदासी ।
मूला कीड़ु वखाणीऐ चलितु अचरज लुभित गुरदासी ।
पिरथा खेडा सोइरी चरन सरण सुख सहजि निवासी ।
भला रबाब वजाइंदा मजलस मरदाना मीरासी ।
पिरथी मलु सहगलु भला रामा डिडी भगति अभिआसी ।

उसे आकाश गहरा नहीं लगता । हंसों के बच्चे महान् प्रतापी शान्त मानसरोवर में बसते हैं । बतख बच्चों को मुर्गियों से और कोयल कौओं से अलग कर लेती है और जैसे गोपों-ग्वालों में बसने के बावजूद कृष्ण वसुदेव से जा मिले थे वैसे ही गुरुमुख विषय-विकारों को त्याग सत्संगति में जा मिलता है । सूर्य के साथ चकवी और चन्द्रमा के साथ चकोर जैसे प्रेम करता है गुरुमुख शिव-शक्ति की माया को लाँघकर परमपद को प्राप्त कर लेते हैं । अनल पक्षी बिना किसी आधार के भी बच्चा पा जाने पर उसे पहचान लेता है । इसी प्रकार गुरु के सिक्ख की स्थिति है जो शब्द और सुरति को आपस में लीन कर प्रेम की पहचान करता है । गुरुमुख आत्मफल को पहचानते और स्थापित करते हैं ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(गुरु नानक के सिक्खों की नामावली)

पोपट जाति के तारु नामक सिक्ख का, जो कि बचपन से ही उदासीन स्वभाव का था, (गुरु नानक ने) उद्धार किया । कीड़ जाति का मूला भी था जो आश्चर्यजनक स्वभाववाला था और गुरु के दासों का भी दास बन कर रहता था। सोइरी जाति का पृथा और खेड़ा नामक सिक्ख भी गुरु के चरणों की शरण लेकर सहजसुख में लीन हुए थे । मीरासी मरदाना बड़ी मज्लिसों में अच्छी रबाब बजानेवाला गुरु नानक का शिष्य था । सहगल जातिवाला पृथ्वीमल अच्छा भक्त था और डिडी जाति वाला भक्त रामा उदासीन स्वभाव वाला था ।

दउलत खाँ लोदी भला होआ जिंद पीरु अबिनासी ।
मालो माँगा सिख दुइ गुरबाणी रसि रसिक बिलासी ।
सनमुखि कालू आस धार गुरबाणी दरगह साबासी ।
गुरमति भाउ भगति परगासी ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(सिख नाम-माला)

भगतु जो भगता ओहरी जापूवंसी सेव कमावै ।
सीहाँ उपलु जाणीऐ गजणु उपलु सतिगुर भावै ।
मैलसीहाँ विचि आखीऐ भागीरथु काली गुण गावै ।
जिता रंधावा भला है बूड़ा बुढा इक मनि धिआवै ।
फिरणा खहिरा जोधु सिखु जीवाई गुरु सेव समावै ।
गुजरु जाति लुहारु है गुर सिखी गुरसिख सुणावै ।

दौलत खाँ लोदी (पठान) भी सिक्ख था जो नाश-रहित ज़िंदा पीर के नाम से (बाद में) विख्यात हुआ था । मालो और माँगा नाम के दो सिक्ख गुरुवाणी के रस में लीन रहा करते थे । कालू खत्री भी आशाओं को मन में बसाकर गुरु के समक्ष प्रस्तुत हुआ था और गुरुवाणी के प्रभाव से प्रभु-दरगाह में उसे सम्मान मिला था । गुरुमत ने प्रेम-भक्ति को (चारों ओर) प्रकाशित किया ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(सिक्ख नाम-माला)

ओहरी जाति का भगता नामक भक्त और जापूवंशी भगत नामक सिक्ख सेवा किया करते थे । अन्य उप्पल जाति का शीहाँ और उप्पल जाति का एक अन्य गज्जण नामक भक्त सद्गुरु का अत्यन्त प्यारा था । मैलसीआँ नगर का एक भगीरथ नामक व्यक्ति था जो (पहले) काली का परमभक्त था । रंधावा जाति का जित्ता भी भला सिक्ख था और भाई बुड्ढा, जिसका पहला नाम बूड़ा था, एक मन से प्रभु-नाम स्मरण करता है । खैरा जाति का भाई फिरणा, जोध एवं जीवा गुरु की सेवा में लीन रहते थे । लोहार जाति का गुज्जर नामक एक सिक्ख हुआ है जो गुरु के सिक्खों को सिक्ख-धर्म के बारे में समझाया करता था ।

नाई धिंङु वखाणीऐ सतिगुर सेवि कुटंबु तरावै ।
गुरमुखि सुख फलु अलखु लखावै ॥ १४ ॥

पउड़ी १५

(दूसरी पातशाही दे सिक्ख)

पारो जुलका परमहंसु पूरै सतिगुर किरपा धारी ।
मलूसाही सूरमा वडा भगतु भाई केदारी ।
दीपा देऊ नराइणदासु बूले दे जाईऐ बलिहारी ।
लाल सु लालू बुधिवान दुरगा जीवद परउपकारी ।
जगा धरणी जाणीऐ संसारू नाले निरंकारी ।
खानू माईआ पिउ पुतु हैं गुण गाहक गोविंद भंडारी ।
जोधु रसोईआ देवता गुर सेवा करि दुतरु तारी ।
पूरै सतिगुर पैज सवारी ॥ १५ ॥

नाई जाति का धिंङा नामक सेवक था जो सद्‌गुरु की सेवा कर अपने परिवार का उद्धार कर गया । गुरुमुख व्यक्ति स्वयं दर्शन कर अन्यों को प्रभु का दर्शन करवाते हैं ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(गुरु अंगददेव के शिष्य)

जुलका जाति का परमहंस सिक्ख भाई पारो था जिस पर सच्चे गुरु की कृपा थी । मल्लू सिक्ख बड़ा शूरवीर था और भाई केदारा बड़ा भक्त हुआ है। दीपा जाति के भाई देव, भाई नारायणदास और भाई बूले पर मैं बलिहारी जाता हूँ । लाल जैसा भाई लालू बुद्धिमान था और भाई दुर्गा एवं जिवंदा तीनों ही परोपकारी थे । जग्गा धरणी गोत्र का था और संसारू स्वयं निराकार के साथ एकात्मभाव से लीन था । खानू और मय्या दोनों बाप-बेटे थे और भंडारी गोत्र वाला गोविंद भी गुण-ग्राहक थे । जोध नामक रसोइया था जिसने गुरु की सेवा कर इस दुष्कर संसार-सागर को तैरकर पार कर लिया था । पूरे सद्‌गुरु ने इन सबकी लाज रखी ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(तीसरी पातशाही दे सिक्खाँ दी डल्ले वासी संगति)

पिरथी मलु तुलसा भला मलणु गुर सेवा हितकारी ।
रामू दीपा उग्रसैणु नागउरी गुर सबद वीचारी ।
मोहणु रामू महतिआ अमरू गोपी हउमै मारी ।
साहारू गंगू भले भागू भगतु भगति है पिआरी ।
खानु छुरा तारू तरे वेगा पासी करणी सारी ।
उगरु नंदू सूदना पूरो झटा पारि उतारी ।
मलीआ साहारू भले छींबे गुर दरगह दरबारी ।
पाँधा बूला जाणीऐ गुरबाणी गाइणु लेखारी ।
डले वासी संगति भारी ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(चउथी पातशाही दे सभ्भरवाल सिक्ख)

सनमुख भाई तीरथा सभरवाल सभे सिरदारा ।
पूरो माणक चंदु है बिसनदासु परवार सधारा ।

पउड़ी १६

(गुरु अमरदास की डल्ला-निवासी संगत)

पिरथीमल, तुलसा भल्ला और मल्लण गुरु-सेवा के प्रेमी थे । रामू, दीपा, उग्रसैण, नागौरी आदि गुरु-शब्द का विचार करनेवाले थे । मोहन, रामू महिता, अमरू और गोपी ने अहम्‌भाव को मार दिया है । भल्ला जाति के सहारू और गंगू तथा भागू भक्त को भक्ति अत्यन्त प्रिय है । खानू, छुरा, तारू, तैराक और वेगा पासी का कर्त्तव्य-कर्म अत्यन्त श्रेष्ठ है । उगरू, नंदू सूद, पूरो झटा, बेड़ा पार करनेवाले लोग हुए हैं । मल्लीआ सहारू, भल्ले और छीपी अनेकों गुरु-दरबार के दरबारी हो गुजरे हैं । पांधा और बूला गुरुवाणी के गायक और लेखक जाने जाते हैं । यह डल्ला निवासी संगत विशाल थी ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(गुरु रामदास के सभरवाल सिक्ख)

सभरवाल जाति के सभी सरदारों में से सबसे आगे रहनेवाला भाई तीरथा था । भाई पूरो, माणिकचंद और बिशनदास सारे परिवार का आधार बने हैं

पुरखु पदारथ जाणीऐ तारू भारू दासु दुआरा ।
महाँ पुरखु है महानंदु बिधीचंद बुधि बिमल वीचारा ।
बर्हम दासु है खोटड़ा डूँगरु दासु भले तकिआरा ।
दीपा जेठा तीरथा सैसारू बूला सचिआरा ।
माईआ जापा जाणीअनि नदीआ खुलर गुरू पिआरा ।
तुलसा वहुरा जाणीऐ गुर उपदेस अवेस अचारा ।
सतिगुर सचु सवारणहारा ।। १७ ।।

पउड़ी १८

(पंजवीं पातिशाही दे सिक्ख)

पुरीआ चूहड़ु चउधरी पैड़ा दरगह दाता भारा ।
बाला किसना झिंगरणि पंडित राइ सभा सीगारा ।
सुहड़ु तिलोका सूरमा सिखु समुंदा सनमुखु सारा ।
कुला भुला झंझीआ भागीरथु सुइनी सचिआरा ।

अर्थात् पूरे परिवार का उद्धार करनेवाले बने हैं । गुरु के द्वार के सिक्ख तारू और भारूदास पुरुषों और पदार्थों में श्रेष्ठ जाने जाते थे । महानंद महापुरुष है और बिधीचंद निर्मल बुद्धि वाला है । ब्रह्मदास खोटड़ा जाति का है और डूँगरदास भल्ला जाना जाता है । अन्य दीपा, जेठा, तीरथा, सैसारू और बूला हैं जो सत्याचारी जाने जाते हैं । माइया, जापा और नइया खुल्लर जाति के जाने जाते हैं । गुरु-उपदेश के अनुकूल आवेष्टित हो जीनेवाला तुलसा बोहरा जाना जाता है । सच्चा गुरु ही सबको सँवारनेवाला है ।। १७ ।।

पउड़ी १८

(गुरु अर्जुन के सिक्ख)

भाई पूरीआ, चौधरी चूहड़ एवं भाई पैड़ा तथा दुर्गादास बड़े दानी माने जाते हैं । झिंगर जाति के बाला एवं कृष्ण पंडित राजाओं की सभाओं के श्रृंगार माने जाते हैं । सूहड़ जाति का तिलोका नामक सिक्ख शूरवीर और समुंदा नामक सिक्ख सदैव सम्मुख रहनेवाला सिक्ख है । झंझीआ जाति के भाई कुल्ला और भाई भुल्ला और सोनी जाति का भाई भगीरथ सच्चे आचरण वाला है ।

लालू बालू विज हनि हरखवंतु हरिदास पिआरा ।
धीरु निहालू तुलसीआ बूला चंडीआ बहु गुणिआरा ।
गोखू टोडा महतिआ तोता मदू सबद वीचारा ।
झाँझू अते मुकंदु है कीरतनु करै हजूरि किदारा ।
साधसंगति परगटु पाहारा ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(पंजवीं पातशाही दे होर सिक्खाँ दे नाम)

गंगू नाऊ सहगला रामा धरमा उदा भाई ।
जटू भटू वंतिआ फिरणा सूदु वडा सत भाई ।
भोलू भटू जाणीअनि सनमुख तेवाड़ी सुखदाई ।
डला भागी भगतु है जापू निवला गुर सरणाई ।
मूला सूजा धावणे चंदू चउझड़ सेव कमाई ।
रामदासु भंडारीआ बाला साईंदासु धिआई ।
गुरमुखि बिसनु बीबड़ा माछी सुंदरि गुरमति पाई ।
साधसंगति वडी वडिआई ।। १९ ।।

विज जाति के लालू और बालू थे और प्रसन्नतापूर्वक रहनेवाला प्यारा हरिदास है । निहालू और तुलसिया धैर्यवान हैं तथा बूला चंडीआ अनेकों गुणों से युक्त हैं । गोखा शहर के महिता वंशी, टोडा एवं तोता तथा मद्दू गुरु-शब्द को विचारनेवाले थे । झाँझू, मुकंद और केदारा गुरु के पास कीर्तन करता है । जगत के साधुसंगति का प्रताप प्रत्यक्ष है ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(गुरु अर्जुन के अन्य सिक्खों के नाम)

सहगल जाति के गंगू, रामा, धरमा और ऊदा भाई हैं । सूद जाति के भाई जट्टू, भट्टू, बंता और फिरना परस्पर बड़े प्यार करने वाले हैं । भोलू, बट्टू और तिवारी दूसरों को सुख देनेवाले दरबारी सिक्ख जाने जाते हैं । डल्ला, भागी, जापू और निवाला गुरु की शरण में आये हैं । धवन ज़ाति के मूला, सूजा और चौझड़ जाति के चंदू ने (गुरु-दरबार में) सेवा की है । बिसनु बीबड़ा और सुंदर माछी ने गुरु के सम्मुख हाज़िर होकर गुरु-शिक्षा को ग्रहण किया है । ' साधुसंगति ' की महिमा महान् है ।। १९ ।।

पउड़ी २०

(सिख नामावली)

जटू भानू तीरथा चाइ चईले चढे चारे ।
सणे निहाले जाणीअनि सनमुख सेवक गुरू पिआरे ।
सेखड़ साध वखाणीअहि नाउ भुलू सिख सुचारे ।
जटू भीवा जाणीअनि महाँ पुरखु मूला परवारे ।
चतुरदासु मूला कपूरु हाडू गाडू विज विचारे ।
फिरणा बहिलु वखाणीऐ जेठा चंगा कुलु निसतारे ।
विसा गोपी तुलसीआ भारदुआजी सनमुख सारे ।
वडा भगतु है भाईअड़ा गोइंदु घेई गुरू दुआरे ।
सतिगुरि पूरे पारि उतारे ॥ २० ॥

पउड़ी २१

(सुलतान पुरीए सिक्ख)

कालू चाऊ बंमीआ मूले नो गुर सबदु पिआरा ।
होमा विचि कपाहीआ गोबिंदु घेई गुर निसतारा ।

पउड़ी २०

(सिक्ख नामावली)

चड्ढा जाति के जट्टू, भानू, तीरथा, निहाला समेत चारों गुरु के बड़े प्रेमी और गुरु के सम्मुख रहनेवाले प्यारे सेवक हैं । नाऊ और भुल्लू सेखड़ जाति के साधु कहे जाते हैं जो अच्छे आचरण वाले सिक्ख हैं । जट्टू भीवा जाति का और महापुरुष मूला परिवार-समेत (गुरु का सिक्ख) है । चतुरदास और मूला जाति के कपूर खत्री हैं और हाडू तथा गाडू जाति के विज हैं । फिरणा नामक सिक्ख बहल गोत्र का है और भाई जेठा अच्छा कुल-उद्धारक है । विस्सा, गोपी, तुलसीआ आदि सभी भारद्वाज (ब्राह्मण)कुल के सदैव गुरु के पास रहने वाले हैं । भाइया और गोविंद घई जाति के भक्त हैं जो बड़े हैं और गुरुद्वारे पर रहते हैं । पूरे सद्गुरु ने इन सबको पार उतार दिया है ।। २० ।।

पउड़ी २१

(सुल्तानपुर के सिक्ख)

भाई कालू, चाऊ, बम्मी और भाई मूला को गुरु-शब्द से प्यार है । साथ ही होमा, कपाही, गोविंद घई को भी गुरु ने पार किया ।

भिखा टोडा भट दुइ धारू सूद महलु तिसु भारा ।
गुरमुखि रामू कोहली नालि निहालू सेवकु सारा ।
छजू भला जाणीऐ माई दिता साधु विचारा ।
तुलसा वहुरा भगत है दामोदरु आकुल बलिहारा ।
भाना आवल विगहमलु बुधो छींबा गुर दरबारा ।
सुलताने पुरि भगति भंडारा ॥ २१ ॥

पउड़ी २२

(मसंद सिक्ख)

दीपकु दीपा कासरा गुरू दुआरै हुकमी बंदा ।
पटी अंदरि चउधरी ढिलो लालु लंगाहु सुहंदा ।
अजबु अजाइबु संडिआ उमरसाहु गुर सेव करंदा ।
पैड़ा छजलु जाणीऐ कंदू संघरु मिलै हसंदा ।
पुतु सपुतु कपूरि देउ सिखै मिलिआँ मनि विगसंदा ।
संमणु है साहबाज पुरि गुरसिखाँ दी सार लहंदा ।

भिक्खा, टोडी दोनों भट्ट एवं धारू सूद का महल बड़ा था । कोहली जाति का गुरुमुख एवं रामू और साथ ही सेवक निहालू भी है । छज्जू भल्ला और साँई दित्ता बेचारा साधु था । तुलसा भक्त बोहरा जाति का है और दामोदर एवं अकाल पर से मैं बलिहारी जाता हूँ । भाना, विगहमल, बुधू छीपी आदि भी गुरु-दरबार में आये हैं । सुल्तानपुर तो भक्ति (एवं भक्तों) का भंडार है ।। २१ ।।

पउड़ी २२

(मसंद अर्थात् दान-दक्षिणा उगाहनेवाले सिक्ख)

कासरा जाति का दीपा नामक सिक्ख गुरु-द्वार का दीपक और आज्ञाकारी सिक्ख हुआ है । पट्टी नगर में ढिल्लों जाति वाले भाई लाल और भाई लंगाह चौधरी शोभायमान हैं । अजब, अजायब एवं उमर शाह (ये तीनों) सघा जाति वाले गुरु के सेवक (मसंद) हैं । पैड़ा छज्जल जाति का और कंदू संघर जाति का है जो सबको हँसता हुआ मिलता है । पुत्र-सहित कपूर देव, सिक्खों को मिलकर खिल उठता है । शाहबाज़पुर में सिक्खों की देखभाल करता है ।

जोधा जलो तुलसपुरि मोहण आलमुगंजि रहंदा ।
गुरमुखि वडिआ वडे मसंदा ॥ २२ ॥

पउड़ी २३

(अति सनमुख सिक्ख)

ढेसी जोधु हुसंगु है गोइंदु गोला हसि मिलंदा ।
मोहणु कुकु वखाणीऐ धुटे जोधे जामु सुहंदा ।
मंझु धंनू परवाणु है पीराणा गुर भाइ चलंदा ।
हमजा जजा जाणीऐ बाला मरवाहा विगसंदा ।
निरमल नानो ओहरी नालि सूरी चउधरी रहंदा ।
परबति काला मेहरा नालि निहालू सेव करंदा ।
कका कालउ सूरमा कदु रामदासु बचन मनंदा ।
सेठ सभागा चुहणीअहु आरोड़े भाग उगवंदा ।
सनमुख इकदू इक चढ़ंदा ॥ २३ ॥

तुलसीपुर में जोधा और जलौ तथा मोहन आलमगंज में रहता है । ये बड़े " मसंद " एक से बढ़कर एक गुरुमुख हैं ।। २२ ।।

पउड़ी २३

(अति चढ़ाववाले सिक्ख)

भाई ढेसी और भाई जोधा हुसंग जाति के (ब्राह्मण) हैं एवं भाई गोबिंद एवं गोला हँस-हँसकर मिलनेवाले हैं । मोहन कुक्क जाति का कहा जाता है और जोधा तथा जामा धुट्टे गाँव में शोभायमान होते हैं । भाई मंझ, पन्नू, पीराणा आदि गुरु की आज्ञा में चलनेवाले हैं । जज्जा कहा जानेवाला भाई हमज़ा और बाला मरवाहा प्रसन्नतापूर्वक व्यवहार करने वाले हैं । आहेरी जाति का नानो और साथ में निर्मल मन वाला सूरी चौधरी रहा करता है । पहाड़ पर रहनेवाले भाई काला और मेहरा हैं और उनके साथ भाई निहालू भी सेवा करता है । भूरे रंग का भाई कालउ शूरवीर और रामदास कद (जाति का) गुरु-वचनों को माननेवाले हैं । सुभागा सेठ चूहणीआँ (कस्बे का) रहनेवाला तथा उसके साथ भागमल और उगवंदा नामक अरोड़ा सिक्ख है । सब एक से बढ़कर एक भक्त हुए हैं ।। २३ ।।

पउड़ी २४

(केवल पंजाब दे सिक्ख)

पैड़ा जाति चंडालीआ जेठे सेठी काम कमाई ।
लटकणु घूरा जाणीऐ गुरदिता गुरमति गुरभाई ।
कटारा सराफ है भगतु वडा भगवान सुभाई ।
सिख भला रवितास विचि धउणु मुरारी गुर सरणाई ।
आडित सुइनी सूरमा चरण सरणि चूहडु जे साई ।
लाला सेठी जाणीऐ जाणु निहालू सबदि लिव लाई ।
रामा झंझी आखीऐ हेमू सोई गुरमति पाई ।
जटू भंडारी भला साहदरै संगित सुखदाई ।
पंजाबै गुर दी वडिआई ।। २४ ।।

पउड़ी २५

(लाहौर दी मुजंगी संगति)

सनमुखि सिख लाहौर विचि सोढी आइणु ताइआ संहारी ।
साईं दिता झंझीआ सैदो जटु सबदु वीचारी ।

पउड़ी २४

(केवल पंजाब के सिक्ख)

पैड़ा चांडाली जाति और जेठा सेठी जाति के हाथ से काम करनेवाले सिक्ख हैं । भाई लटकन, घूरा, गुरदित्ता गुरुमत के गुरुभाई हैं । भाई कटारा सर्राफ़ है और भगवान (दास) बड़े भक्त स्वभाववाला है । रवतास (रोहतास) गाँव में रहनेवाला धवन जाति का मुरारी सिक्ख गुरु की शरण में आया है । सोनी जाति का आडित शूरवीर योद्धा था और चूहड़ तथा साईंदास ने गुरु की शरण ग्रहण की है । निहाल समेत लाला (लालू) सेठी गुरु के शब्द में सुरति लगाना जानता है । झंझी जाति का रामा कहा जाता है । हेमू ने भी गुरुमति ग्रहण की है । जट्टू भंडारी अच्छा सिक्ख है और यह सारी संगत् शाहदरे में सुखपूर्वक रहती है । गुरु-घर का बड़प्पन पंजाब में निहित है ।। २४ ।।

पउड़ी २५

(लाहौर मुजंग की संगत)

लाहौर में सोढियों के घराने में से (गुरु अर्जुनदेव जी का) ताऊ सहारीमल गुरु के सम्मुख बना रहनेवाला सिक्ख है। झंझी जाति का साईं दित्ता और सैदो जाट शब्द का विचार करनेवाले हैं ।

**साधू महिता जाणीअहि कुल कुम्हिआर भगति निरंकारी ।
लखू विचि पटोलीआ भाई लधा परउपकारी ।
कालू नानो राज दुइ हाड़ी कोहलीआ विचि भारी ।
सूदु कलिआणा सूरमा भानू भगतु सबदु वीचारी ।
मूला बेरी जाणीऐ तीरथु अतै मुकंदु अपारी ।
कहु किसना मुहजंगीआ सेठ मंगीणे नो बलिहारी ।
सनमुखु सुनिआरा भला नाउ निहालू सपरवारी ।
गुरमुखि सुख फल करणी सारी ।। २५ ।।**

पउड़ी २६

(देशांतरी संगति)

**भाना मलणु जाणीऐ काबलि रेखराउ गुरभाई ।
माधो सोढी कासमीर गुर सिखी दी चाल चलाई ।**

कुम्हारों के कुल में से निरंकारी भक्त साधु महिता जाना जाता है । पटोलियों में से भाई लक्खू और भाई लद्धा परोपकारी हैं । भाई कालू एवं नानो दोनों राजगीर का काम करनेवाले और कोहलियों में से भाई हाड़ी बड़े सिक्ख हैं । कल्याणा सूद शूरवीर और भानू भक्त शब्द का विचार करनेवाला है । बेरी गोत्र का मूला और तीरथ एवं मुकंद भी सिक्ख जाने जाते हैं । मुजंगाँ का रहनेवाला कृष्ण नाम से जाना जाता है और मगीणे सेठ पर से तो मैं बलिहार जाता हूँ । निहालू नामक सुनार परिवार समेत गुरु के सम्मुख बना रहनेवाला सिक्ख है । इन सबने गुरु के द्वारा सुख रूपी फल देनेवाली पूर्णभक्ति की है ।। २५ ।।

पउड़ी २६

(देशान्तरों के सिक्ख)

भाना मल्हण और रेखराव दोनों गुरुभाई काबुल के निवासी जाने जाते हैं । माधो सोढ़ी ने कश्मीर में गुरु-सिक्खी की परम्परा को चलाया। भाई भींवा, सींहचन्द और रूपचन्द सच्ची भावना वाले (सरहिन्द के रहने वाले) सम्मुखी सिक्ख हैं ।

भाई भीवाँ सीहरंदि रूपचंदु सनमुख सत भाई ।
परतापू सिखु सूरमा नंदै विठड़ि सेव कमाई ।
सामीदास वछेरु है थानेसुरि संगति बहलाई ।
गोपी महता जाणीऐ तीरथु नथा गुर सरणाई ।
भाऊ मोकलु आखीअहि ढिली मंडलि गुरमति पाई ।
जीवदु जगसी फते पुरि सेठि तलोके सेव कमाई ।
सतिगुर दी वडी वडिआई ॥ २६ ॥

पउड़ी २७

(आगरे दी संगति)

महता सकतु आगरै चढा होआ निहालु निहाला ।
गढ़ीअलु मथरा दासु है सपरवारा लाल गुलाला ।
गंगा सहगलु सूरमा हरवंस तपे ट्हल धरमसाला ।
अणदु मुरादी महाँपुरखु कलिआणा कुलि कवणु रसाला ।
नानो लटकणु बिंदराउ सेवा संगति पूरण घाला ।
हांडा आलमचंदु है सैसारा तलवाड़ु सुखाला ।

भाई प्रतापू बड़ा बहादुर सिक्ख है और विठड़ जातिवाले भाई नंदा ने सेवा की है। वछेर गोत्रवाले भाई सामीदास ने थानेश्वर की संगत को (गुरु की ओर) प्रेरित किया। महिता गोत्र का गोपी सिक्ख जाना जाता है और तीरथ तथा भाई नत्था गुरु जी की शरण में आया है । भाई भाऊ, मोकल, भाई ढिल्ली और भाई मंडल ने भी गुरुमत में दीक्षा ली कही जाती है । भाई जींवदा, भाई जगसी और तिलोका ने फ़तेहपुर में सेवा की है । सच्चे गुरु का बड़प्पन महान् है ।। २६ ।।

पउड़ी २७

(आगरा की संगति)

आगरा के रहनेवाले शकतू महिता और निहालू चड्ढा भी निहाल हुआ है। भाई गड़ीअल और मथुरादास परिवारों-समेत गुरुमत के प्रेम के लाल गुलाल रंगवाले सिक्ख कहे जाते हं । सहगल गोत्र का गंगा शूरवीर है और हरबंस तपस्वी धर्मशाला की सेवा करता है । अणद (आनंद) गोत्रवाला मुरारी उत्तम पुरुष संत व्यक्ति है और कमल-कुल की तरह (निर्मल) प्रेम का घर भाई कल्याणा है । भाई नानो, भाई लटकन और बिंदराव ने " संगत " की पूर्ण रूप से परिश्रमपूर्वक सेवा की है । आलमचंद हाँड़ा और सैसारा तलवाड़ सुखपूर्वक रहनेवाले (सिक्ख) हैं ।

जगना नंदा साध है भानू सुहड़ु हंसाँ दी ढाला ।
गुरभाई रतनाँ दी माला ॥ २७ ॥

पउड़ी २८

(हजूरी सिक्ख)

सीगारू जैता भला सूरबीर मनि परउपकारा ।
जैता नंदा जाणीऐ पुरख पिरागा सबदि अधारा ।
तिलकु तिलोका पाठका साधु संगति सेवा हितकारा ।
तोता महता महाँ पुरखु गुरमुखि सुख फल सबदु पिआरा ।
जड़ीआ साईंदासु है सभ कुलु हीरे लाल अपारा ।
मलकु पैड़ा है कोहली दरगहु भंडारी अति भारा ।
मीआँ जमालु निहालु है भगतू भगत कमावै कारा ।
पूरा गुर पूरा वरतारा ॥ २८ ॥

जगना, नंदा दोनों साधु हैं और सूहड़ जाति का भाना हंस की तरह तत्त्व मिथ्या का विवेचन करनेवाला है । ये सभी गुरुभाई रत्नों की माला की तरह हैं ।। २७ ।।

पउड़ी २८

(हजूरी सिक्ख)

सीगारू और जैता भले, शूरवीर और परोपकारी मन वाले हैं । भाई जैता, नंदा और पुरुष पिरागा शब्द को आधार माननेवाले जाने जाते हैं । तिलोका पाठक तो सबका तिलक है जो साधुसंगति और उनकी सेवा को ही हितकारी समझता है । तोता महिता महापुरुष है और गुरुमुखों की तरह शब्द रूपी सुखफल को ही प्यार करनेवाला जाना जाता है । भाई साईंदास का सारा खानदान ही हीरे और लालों की तरह अमूल्य है । मलिक पैड़ा कोहली गुरु-दरबार का बड़ा भंडारी है । मीआँ जमाल निहाल हो गया है और भगतू भक्ति करता है । पूरे गुरु का सिक्खों के साथ व्यवहार भी पूरा है ।। २८ ।।

पउड़ी २९

(छेवें गुरू जी दे सिक्खाँ दे नाम)

आनंता कूको भले सोभ वधावण हनि सिरदारा ।
इटा रोड़ा जाणीऐ नवल निहालू सबद वीचारा ।
तखतू धीर गंभीरु है दरगहु तुली जपै निरंकारा ।
मनुसा धारु अथाहु है तीरथु उपलु सेवक सारा ।
किसना झंझी आखीऐ पंमू पुरी गुरू का पिआरा ।
धिंगड़ु मदू जाणीअनि वडे सुजान तखाण अपारा ।
बनवाली ते परसराम बाल वैद हउ तिनि बलिहारा ।
सतिगुर पुरखु सवारणहारा ॥ २९ ॥

पउड़ी ३०

(छेवें गुरू जी दे होर सिक्ख)

लसकरि भाई तीरथा गुआलीएर सुइनी हरिदासु ।
भावा धीरु उजैन विचि साधसंगति गुरु सबदि निवासु ।

पउड़ी २९

(छठे गुरु हरगोविंद के सिक्खों के नाम)

अनंता और कूको भले सरदार हैं जो शोभा बढ़ानेवाले है । ईटा अरोड़ा, नवल और निहालू शब्द के विचार करनेवाले जाने जाते हैं । तख्तू धैर्यवान और गंभीर है एवं दरगाहु तुली सदैव निरंकार का जाप करनेवाला है । मनसाधार गहन है और तीरथ उप्पल भी सेवक है । किसना, झंझी और पम्मी पूरी भी गुरु के प्यारे जाने ज़ाते हैं । धिंगड़ और मद्दू कारीगर बढ़ई हैं जो बड़े ही सज्जन हैं । बनवारी और परसराम बाल रोगों के वैद्य हैं, इन पर तो मैं बलिहारी जाता हूँ । सभी भक्तों की बिगड़ी वह (परम) पुरुष सँवारनेवाला है ।। २९ ।।

पउड़ी ३०

(छठे गुरु के अन्य सिक्ख)

भाई तीरथा लश्कर और हरिदास सोनी ग्वालियर का वासी जाना जाता है। भावा धीर उज्जैन-निवासी है और वह साधुसंगति एवं शब्द में निवास करता है ।

मेलु वडा बुरहान पुरि सनमुख सिख सहज परगासु ।
भगतु भईआ भगवान दास नालि बोदला घरे उदासु ।
मलकु कटारू जानीऐ पिरथीमल जरादी खासु ।
भगतू छुरा वखाणीऐ डल रीहाणै साबासु ।
सुंदर सुआमी दास दुइ वंस वधावण कवल विगासु ।
गुजराते विचि जाणीऐ भेखारी भाबड़ा सुलासु ।
गुरमुखि भाउ भगति रहिरासु ॥ ३० ॥

पउड़ी ३१

(छेवें गुरू जी दे सिक्ख)

सुहंढै माईआ लंमु है साधसंगति गावै गुरबाणी ।
चूहड़ चउझड़ु लखणऊ गुरमुखि अनदिनु नाम वखाणी ।
सनमुखि सिखु पिराग विच भाई भाना विरतीहाणी ।
जटू तपा सु जौनपुरि गुरमति निहचल सेव कमाणी ।

बुरहानपुर के मेलजोल वाले और सहज-पद में बने रहनेवाले सम्मुखी सिक्ख प्रसिद्ध हैं । भैया भगवानदास भक्त और उसके साथ बोदला नामक सिक्ख घर में ही उदासीन की तरह रहते हैं । कटारू मालिक और पिरथीमल वैद्य खास तौर से जाने जाते हैं । भक्त छुरा और डल्लू रीहाणे के निवासी बताए जाते हैं । सुन्दर और स्वामीदास दोनों ही सिक्खी का वंश बढ़ानेवाले और खिले कमल वाली अवस्था के परिचायक हैं । भिखारी भाबड़ा सुलास गुजराती सिक्ख हैं । ये सभी सिक्ख प्रेमाभक्ति को ही अपना जीवन-ढंग मानते हैं ।। ३० ।।

पउड़ी ३१

(छठे गुरु के शिष्य)

सुहंडे ग्राम में भाई माइआ लंब (खत्री) साधुसंगति में गुरुवाणी का गायन करता है । लखनऊ निवासी चौझड़ जाति का चूहड़ नामक गुरुमुख रात-दिन (प्रभु)नाम स्मरण करता है । प्रयाग निवासी भाई भाना अपनी आजीविका कमानेवाला सम्मुखी सिक्ख हुआ है । जौनपुर में बसने वाले जट्टू और तपा ने गुरुमत के अनुसार स्थिर होकर सेवा की है ।

पटणै सभरवाल है नवलु निहाला सुध पराणी ।
जैता सेठ वखाणीऐ विणु गुर सेवा होरु न जाणी ।
राज महिल भानू बहिलु भाउ भगति गुरमति मनि भाणी ।
सनमुखु सोढी बदली सेठ गुपालै गुरमति जाणी ।
सुंदरु चढा आगरै ढाकै मोहणि सेव कमाणी ।
साधसंगति विटहु कुरबाणी ॥ ३१ ॥ ११ ॥

पटना में भाई नवल और सभरवालों में निहालू शुद्ध प्राणी है । एक सेठ जैता कहा जाता है जिसे गुरु-सेवा के बिना अन्य कुछ भी अच्छा नहीं लगता । राजमहल शहर का भानू बहल जाना जाता है जिसके मन में गुरुमत और प्रेमाभक्ति समा गई है । बदली सोढ़ी और गोपाल सेठ गुरुमत को समझनेवाले सिक्ख हैं । आगरा के सुन्दर चड्ढा और ढाका निवासी भाई मोहन ने सेवा करके (सच्ची) कमाई की है । साधुसंगति पर तो मैं बलिहार जाता हूँ ।। ३१ ।। ११ ।।

* * *

वार १२

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।।

पउड़ी १

(गुर सिक्खाँ दी करनी)

बलिहारी तिन्हाँ गुरसिखाँ जाइ जिना गुर दरसनु डिठा ।
बलिहारी तिन्हाँ गुरसिखाँ पैरी पै गुर सभा बहिठा ।
बलिहारी तिन्हाँ गुरसिखाँ गुरमति बोल बोलदे मिठा ।
बलिहारी तिन्हाँ गुरसिखाँ पुत्र मित्र गुरभाई इठा ।
बलिहारी तिन्हाँ गुरसिखाँ गुर सेवा जाणनि अभिरिठा ।
बलिहारी तिन्हाँ गुरसिखाँ आपि तरे तारेनि सरिठा ।
गुरसिख मिलिआ पाप पणिठा ।। १ ।।

पउड़ी २

(गुर सिखाँ दा नितनेम)

कुरबाणी तिन्हाँ गुरसिखाँ पिछल राती उठि बहंदे ।
कुरबाणी तिन्हाँ गुरसिखाँ अंम्रितु वेलै सरि नावंदे ।

पउड़ी १

(गुरु के सिक्खों का व्यवहार)

मैं उन गुरु-सिक्खों पर बलिहारी जाता हूँ जो गुरु का दर्शन करते हैं । मैं उन गुरु-सिक्खों पर बलिहारी जाता हूँ जो चरण-वन्दना कर गुरु-सभा में बैठते हैं । मीठा बोल बोलनेवाले गुरु-सिक्खों पर भी मैं बलिहारी जाता हूँ । उन गुरु-सिक्खों पर भी मैं कुर्बान जाता हूँ, जो पुत्रों-मित्रों में से गुरुभाई को वरीयता देते हैं । जिन गुरु-सिक्खों को गुरु-सेवा प्यारी लगती है मैं उन पर भी कुर्बान जाता हूँ । ऐसे गुरु-सिक्खों पर भी मैं बलिहार जाता हूँ, जो स्वयं पार होकर सारी सृष्टि को भी (भवसागर से) पार कराते हैं । ऐसे गुरु-सिक्खों के मिलने से सभी पाप दूर हो जाते हैं ।। १ ।।

पउड़ी २

(गुरु-सिक्खों की दिनचर्या)

गुरु के उन सिक्खों पर मैं कुर्बान हूँ जो रात के पिछले प्रहर में उठ बैठते हैं ।

कुरबाणी तिन्हाँ गुरसिखाँ होइ एक मनि गुर जापु जपंदे ।
कुरबाणी तिन्हाँ गुरसिखाँ साधसंगति चलि जाइ जुड़ंदे ।
कुरबाणी तिन्हाँ गुरसिखाँ गुरबाणी निति गाइ सुणंदे ।
कुरबाणी तिन्हाँ गुरसिखाँ मनि मेली करि मेलि मिलंदे ।
कुरबाणी तिन्हाँ गुरसिखाँ भाइ भगति गुरपुरब करंदे ।
गुर सेवा फलु सुफल फलंदे ॥ २ ॥

पउड़ी ३

(गुर सिक्ख दा हिरदा)

हउ तिसु विटहु वारिआ होदै ताणि जु होइ निताणा ।
हउ तिसु विटहु वारिआ होदै माणि सु रहै निमाणा ।
हउ तिसु विटहु वारिआ छोडि सिआणप होइ इआणा ।
हउ तिसु विटहु वारिआ खसमै दा भावै जिसु भाणा ।
हउ तिसु विटहु वारिआ गुरमुखि मारगु देखि लुभाणा ।

उन सिक्खों पर मैं बलिहारी जाता हूँ जो अमृतवेला (भोर) में उठकर सिर धोते हैं (अर्थात् स्नान करते हैं) । गुरु के उन सिक्खों पर भी मैं कुर्बान हूँ जो एक मन होकर गुरु को स्मरण करते हैं । उन गुरु-सिक्खों पर भी मैं कुर्बान हूँ जो सत्संगति में जाकर बैठते हैं । उन गुरु-सिक्खों पर भी मैं बलिहार जाता हूँ जो रोज गुरुवाणी गाते और सुनते हैं । उन गुरु-सिक्खों पर भी मैं कुर्बान हूँ जो दूसरे से पूरा मन मिलाकर उससे मिलते हैं (केवल औपचारिकता नहीं निभाते) । गुरु के उन सिक्खों पर भी मैं कुर्बान हूँ जो भक्ति-भाव से गुरु-पर्वों को मनाते हैं । ऐसे सिक्ख गुरु की सेवा कर सफल होते हैं और फलते-फूलते हैं ।। २ ।।

पउड़ी ३

(गुरु-सिक्ख का हृदय)

मैं उस पर न्यौछावर हूँ जो बलवान होकर भी अपने आपको निर्मल समझे। मैं उस पर न्यौछावर हूँ जो गौरवशाली होकर भी अपने आपको विनम्र समझे । मैं उस पर न्यौछावर हूँ जो सब चतुराइयों को त्यागकर अनजान बन जाए । जिस व्यक्ति को मालिक की रज़ा अच्छी लगती है मैं उस पर न्यौछावर हूँ । मैं उस पर भी न्यौछावर हूँ जो गुरु के मार्ग पर गुरुमुख बनकर चलने के लिए लालायित रहता है ।

हउ तिसु विटहु वारिआ चलणु जाणि जुगति मिहमाणा ।
दीन दुनी दरगह परवाणा ॥ ३ ॥

पउड़ी ४

(गुरसिक्ख अपरस है)

हउ तिसु घोलि घुमाइआ गुरमति रिदै गरीबी आवै ।
हउ तिसु घोलि घुमाइआ परनारी दे नेड़ि न जावै ।
हउ तिसु घोलि घुमाइआ परदरबै नो हथु न लावै ।
हउ तिसु घोलि घुमाइआ परनिंदा सुणि आपु हटावै ।
हउ तिसु घोलि घुमाइआ सतिगुर दा उपदेसु कमावै ।
हउ तिसु घोलि घुमाइआ थोड़ा सवै थोड़ो ही खावै ।
गुरमुखि सोई सहजि समावै ॥ ४ ॥

पउड़ी ५

(गुरसिक्ख गिआनी है)

हउ तिस दै चउखंनीऐ गुर परमेसरु एको जाणै ।
हउ तिस दै चउखंनीऐ दूजा भाउ न अंदरि आणै ।

मैं उस पर न्यौछावर हूँ जो जगत में अपने आपको मेहमान समझकर यहाँ से चले जाने के लिए सदैव तत्पर रहता है । ऐसा व्यक्ति इस दुनिया और उस प्रभु के दरबार में भी स्वीकार्य होता है ।। ३ ।।

पउड़ी ४

(गुरु-सिक्ख अस्पृश्य है)

गुरुमत के माध्यम से जिसके हृदय में विनम्रता आ जाती है मैं उस पर बलिहार जाता हूँ । मैं उस पर बलिहार जाता हूँ जो पराई स्त्री के पास नहीं जाता। मैं उस पर बलिहार जाता हूँ जो दूसरे के द्रव्य (धन) को छूता तक नहीं। जो पराई निन्दा सुनकर वहाँ से उदासीन हो हट जाता है मैं उस पर भी बलिहार जाता हूँ । मैं उस पर भी कुर्बान जाता हूँ जो सद्गुरु के उपदेश को सुनकर उसे जीवन में ढालता है । जो कम सोता और कम खाता है, मैं उस पर भी कुर्बान जाता हूँ । ऐसा ही गुरुमुख व्यक्ति सहज अवस्था में लीन होता है ।। ४ ।।

पउड़ी ५

(गुरु-सिक्ख ज्ञानी है)

मैं उसके लिए चार टुकड़े होने को तैयार हूँ जो गुरु और परमेश्वर

हउ तिस दै चउखंनीऐ अउगुणु कीते गुण परवाणै ।
हउ तिस दै चउखंनीऐ मंदा किसै न आखि वखाणै ।
हउ तिस दै चउखंनीऐ आपु ठगाए लोका भाणै ।
हउ तिस दै चउखंनीऐ परउपकार करै रंग माणै ।
लउबाली दरगहि विचि माणु निमाणा माणु निमाणै ।
गुर पूरा गुर सबदु सिञाणै ॥ ५ ॥

पउड़ी ६

(सिक्ख दी निशकाम अवस्था)

हउ सदके तिन्हाँ गुरसिखाँ सतिगुर नो मिलि आपु गवाइआ ।
हउ सदके तिन्हाँ गुरसिखाँ करनि उदासी अंदरि माइआ ।
हउ सदके तिन्हाँ गुरसिखाँ गुरमति गुर चरणी चितु लाइआ ।
हउ सदके तिन्हाँ गुरसिखाँ गुरसिख दे गुरसिख मिलाइआ ।
हउ सदके तिन्हाँ गुरसिखाँ बाहिर जाँदा वरजि रहाइआ ।

को एक ही मानता है । मैं उस पर कुर्बान हूँ जिसके मन में द्वैतभावना नहीं है । मैं उस पर कुर्बान हूँ जो दूसरे के किए हुए बुरे कार्य को भी गुणयुक्त माने । मैं उस पर टुकड़े होने को तैयार हूँ जो किसी को बुरा नहीं कहता । मैं उस पर न्यौछावर हूँ जो लोगों की नज़रों में मानों ठगा जा रहा है । जो परोपकार करने के रंग में ही मस्त है मैं उस पर कुर्बान जाता हूँ । इस प्रकार के विनम्र व्यक्ति को प्रभु-दरबार में सम्मान मिलता है और ऐसा ही व्यक्ति गुरु के शब्द की पहचान करता हुआ स्वयं पूर्णगुरु बन जाता है ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(सिक्ख की निष्काम अवस्था)

मैं उन सिक्खों पर बलिहार जाता हूँ जिन्होंने सच्चे गुरु को मिलकर अपने अहम् का नाश कर दिया है । मैं गुरु के उन सिक्खों पर भी बलिहार जाता हूँ जो माया में रहते हुए भी उदासीन बने रहते हैं । मैं उन सिक्खों पर कुर्बान जाता हूँ जो गुरुमत के अंतर्गत गुरु के चरणों में चित्त लगाते हैं । मैं गुरु के उन सिक्खों पर बलिहार जाता हूँ जो गुरु की शिक्षा बताकर सिक्ख को गुरु से मिला देते हैं। उन गुरु-सिक्खों पर बलिहार जाता हूँ जिन्होंने बाह्योन्मुख मन को रोका है और बाँध लिया है।

हउ सदके तिन्हाँ गुरसिखाँ आसा विचि निरासु वलाइआ ।
सतिगुर दा उपदेस दिढ़ाइआ ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(ब्रहमा दी करतूत)

ब्रहमा वडा अखाइदा नाभि कवल दी नालि समाणा ।
आवागवणु अनेक जुग ओड़क विचि होआ हैराणा ।
ओड़कु कीतुसु आपणा आप गणाइऐ भरमि भुलाणा ।
चारे वेद वखाणदा चतुरमुखी होइ खरा सिआणा ।
लोकाँ नो समझाइंदा वेखि सुरसती रूप लोभाणा ।
चारे वेद गवाइ कै गरबु गरूरी करि पछुताणा ।
अकथ कथा नेत नेत वखाणा ।। ७ ।।

गुरु के उन सिक्खों पर मैं कुर्बान जाता हूँ जो तमाम आशाओं-तृष्णाओं में रहकर भी निराश बने रहते हैं और जिन्होंने सच्चे गुरु का उपदेश दृढ़तापूर्वक स्मरण कर रखा है ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(ब्रह्मा का कारनामा)

अपने आपको बड़ा कहलानेवाला ब्रह्मा (विष्णु के) नाभि-कमल में (उसका अंतिम छोर जानने के लिए) प्रविष्ट हो गया । अनेकों युगों तक वह आवागमन के चक्र में ही (इधर-उधर) भटकता रहा और अंत में (रहस्य न समझ पाने के कारण) किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया । उसने अपना सारा ज़ोर लगा दिया लेकिन वह स्वयं बड़ा होने के भुलावे में ही रहा । वह चतुर्मुखी बनकर स्वयं चतुर बनकर वेदों का उच्चारण करता था । वह लोगों को तो समझाता था पर (अपनी पुत्री) सरस्वती के रूप को देखकर वह उसी पर विमोहित हो उठा । उसने चारों वेदों (के ज्ञान) को व्यर्थ ही गँवा दिया; वह अभिमान करता रहा परन्तु अन्त में अपने किए पर पछताया । वास्तव में परमात्मा की कथा तो अकथनीय है जिसे (वेदों में भी) नेति-नेति कहा गया है ।। ७ ।।

पउड़ी ८

(दस अवताराँ दे करतव्य)

बिसन लए अवतार दस वैर विरोध जोध संघारे ।
मछ कछ वैराह रूपि होइ नरसिंघु बावन बउधारे ।
परसराम रामु किसनु होइ किलकि कलंकी अति अहंकारे ।
खत्री मारि इकीह वार रामाइण करि भारथ भारे ।
काम करोधु न साधिओ लोभु मोह अहंकारु न मारे ।
सतिगुर पुरख न भेटिआ साधसंगति सहलंग न सारे ।
हउमै अंदरि कारि विकारे ॥ ८ ॥

पउड़ी ९

(महादेव, शिव)

महादेउ अउधूतु होइ तामस अंदरि जोगु न जाणै ।
भैरो भूत कुसूत विचि खेत्रपाल बेताल धिङाणै ।

पउड़ी ८

(दशावतारों के कर्त्तव्य)

विष्णु ने दस अवतार धारण किए और विरोधी महाबलियों का संहार किया । मत्स्य, कच्छप, वाराह, नरसिंह, वामन एवं बुद्ध आदि अवतार हुए । परशुराम, राम, कृष्ण और अत्यन्त गर्वपूर्ण कल्कि-अवतार भी हुए । इनमें से परशुराम ने इक्कीस बार क्षत्रियों का नाश किया । राम रामायण के नायक बने और कृष्ण महाभारत के सर्वेसर्वा थे । परन्तु काम, क्रोध की साधना न की गई और लोभ, मोह, अहंकार को भी न मारा गया । सत्यगुरु रूपी (परमात्मा) का किसी ने स्मरण न किया और ' साधुसंगति ' का भी किसी ने लाभ न उठाया । सभी विकारयुक्त कार्य अहम्-भाव में करते रहे ।। ८ ।।

पउड़ी ९

(महादेव, शिव)

महादेव अवधूत होकर भी तामसी वृत्ति से युक्त रहा और उसी के अन्तर्गत उसे योग की पहचान भी न हो सकी । उसने बलपूर्वक मात्र भैरव, भूतों, क्षेत्रपालों, बैतालों पर अपना हुक्म चलाया ।

अकु धतूरा खावणा राती वासा मढ़ी मसाणै ।
पैनै हाथी सीह खल डउरू वाइ करै हैराणै ।
नाथा नाथु सदाइदा होइ अनाथु न हरि रंगु माणै ।
सिरठि संघारै तामसी जोगु न भोगु न जुगति पछाणै ।
गुरमुखि सुख फलु साध संगाणै ॥ ९ ॥

पउड़ी १०

(इंद्र ते ब्रंहमा)

वडी आरजा इंद्र दी इंद्रपुरी विचि राजु कमावै ।
चउदह इंद्र विणासु कालि ब्रहमे दा इकु दिवसु विहावै ।
धंधे ही ब्रहमा मरै लोमस दा इकु रोम छिजावै ।
सेस महेस वखाणीअनि चिरंजीव होइ सांति न आवै ।
जोग भोग जत तप घणे लोक वेद सिमरणु न सुहावै ।
आपु गणाए न सहजि समावै ॥ १० ॥

वह आक, धतूरा खाता था और रात में श्मशान में निवास करता था। वह हाथी अथवा **शेर की** खाल पहनता था और डमरू बजाकर सबका परेशान कर देता था। वह नाथों का भी नाथ जाना जाता था। पर कभी अनाथ होकर (विनम्र होकर) उसने प्रभु-प्रेम की मस्ती का अनुभव नहीं किया। उसका काम तामस गुण के वशीभूत हो सृष्टि का संहार करना था। योग और भोग की युक्ति को भी उसने नहीं पहचाना। केवल गुरुमुख बनकर और सत्संगति में ही सुख रूपी फल की प्राप्ति होती है ।। ९ ।।

पउड़ी १०

(इन्द्र और ब्रह्मा)

इन्द्र की आयु बहुत लम्बी है; वह इन्द्रपुरी में राज करता था । जब चौदह इन्द्र समाप्त होते हैं तो ब्रह्मा का एक दिन गुज़रता है (अर्थात् ब्रह्मा के एक दिन में चौदह इन्द्र राज करते हैं) । लोमस ऋषि के एक बाल के टूटने पर एक ब्रह्मा का अंत माना जाता है (इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि अनेकों बालों की तरह ब्रह्मा भी अनेक हैं) । शेषनाग और महेश भी चिरंजीव माने जाते हैं पर शान्ति किसी को प्राप्त नहीं होती । उस प्रभु को योग, भोग, जप, तप लोकाचार आदि के पाखंड तनिक भी नहीं सुहाते। जो अहम्-भाव को धारण किये रहता है, वह सहज में नहीं समा सकता ।। १० ।।

पउड़ी ११

(नारदादिक रिखी)

नारदु मुनी अखाइदा अगमु जाणि न धीरजु आणै ।
सुणि सुणि मसलति मजलसै करि करि चुगली आखि वखाणै ।
बाल बुधि सनकादिका बाल सुभाउ नविरती हाणै ।
जाइ बैकुंठि करोधु करि देइ सरापु जैइ बिजै धिङाणै ।
अहंमेउ सुकदेउ करि गरभ वासि हउमै हैराणै ।
चंदु सूरजु अउलंग भरै उदै असत विचि आवण जाणै ।
सिव सकती विचि गरबु गुमाणै ॥ ११ ॥

पउड़ी १२

(जती सती आदिक)

जती सती संतोखीआ जत सत जुगति संतोख न जाती ।
सिध नाथु बहु पंथ करि हउमै विचि करनि करमाती ।

पउड़ी ११

(नारद आदि ऋषि)

वेद-शास्त्रों में पारंगत होने पर भी नारद मुनि को धैर्य नहीं था । वह हर महफ़िल की बात सुनकर दूसरे स्थान पर चुग़ली करता था । सनकादिक भी बाल-बुद्धि के ही स्वामी रहे और अपने इसी चंचल बाल-स्वभाव के कारण वे निवृत्ति न पा सके और हानि उठाते रहे । वे वैकुण्ठ में गए और द्वारपाल जय-विजय को शाप दे बैठे । पर बाद में उन्हें पछताना पड़ा । अपने अहम् के कारण शुकदेव भी लम्बी अवधि (१२ वर्ष तक) माँ के गर्भ में पड़ा परेशान होता रहा । सूर्य और चन्द्र भी कलंकों से पूर्ण हैं और उदय-अस्त के चक्र में पड़े हुए हैं । माया में फँसे ये सभी अभिमान से पीड़ित हैं ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(यती, सती आदि)

यतियों, सतियों और संतोषी कहलानेवालों ने भी यतीत्व और सत्त्व की वास्तविक युक्ति संतोष के मर्म को नहीं समझा । सिद्ध और नाथगण

चारि वरन संसार विचि खहि खहि मरदे भरमि भराती ।
छिअ दरसन होइ वरतिआ बारह वाट उचाट जमाती ।
गुरमुखि वरन अवरन होइ रंग सुरंग तंबोल सुवाती ।
छिअ रुति बारह माह विचि गुरमुखि दरसनु सुझ सुझाती ।
गुरमुखि सुख फलु पिरम पिराती ॥ १२ ॥

पउड़ी १३

(धरती ते ब्रिछ)

पंज तत परवाणु करि धरमसाल धरती मनि भाणी ।
पाणी अंदरि धरति धरि धरती अंदरि धरिआ पाणी ।
सिर तलवाए रुख होइ निहचलु चित निबासु बिबाणी ।
परउपकारी सुफल फलि वट वगाइ सिरठि वरसाणी ।
चंदन वासु वणासपति चंदनु होइ वासु महिकाणी ।

भी अनेकों संप्रदाय बनाकर अहम्भावना के अधीन अनेकों करामातें करते दिखाते घूमते हैं । संसार के चारों वर्ण भी भ्रम में भूले हुए आपस में भिड़-भिड़कर कट-मर रहे हैं । छः दर्शनों के तत्त्वावधान में योगियों के बारह मार्ग बन गए जो संसार से उदासीन होकर इससे दूर चले गये हैं । गुरुमुख जो कि वर्ण-अवर्ण के भेदों से परे है, वह पान के सुन्दर रंग के समान सब गुणों को अपने में धारण करनेवाला है । छः ऋतुओं और बारहों महीनों में गुरुमुख का कभी भी दर्शन हो जाय, वह ज्ञान के सूर्य के समान सबको प्रकाशमान कर देता है । उस प्रिय प्रभु का प्रेम ही गुरुमुखों के लिए सुख-फल है ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(धरती और वृक्ष)

पाँचों तत्त्वों के (आनुपातिक) जमाव का फल यह धर्मशाला रूपी मन को प्रिय लगनेवाली धरती बनाई गई है । पानी में धरती को टिकाया और धरती में पुनः पानी को अवस्थित किया तल की ओर सिरों वाले वृक्ष अर्थात् जिनकी जड़ें (मूल) धरती में हैं इस पर उगे जो कि स्थिर रूप में जंगलों में निवास करते हैं । ये वृक्ष भी परोपकारी हैं जिन्हें पत्थर मारने पर भी वे सृष्टि के जीवों के लिए फलों की वर्षा करते हैं । चंदन वृक्ष की गंध सारी वनस्पति को चंदन की गंध से महका देती है ।

सबद सुरति लिव साधसंगि गुरमुखि सुख फल अंम्रित वाणी ।
अबिगति गति अति अकथ कहाणी ॥ १३ ॥

पउड़ी १४

(धू आदिक सकाम भगत)

धू प्रहिलाद भभीखणो अंबरीकु बलि जनकु वखाणा ।
राज कुआर होइ राजसी आसा बंधी चोज विडाणा ।
धू मतरेई चंडिआ पीउ फड़ि प्रहिलादु रञाणा ।
भेदु भभीखणु लंक लै अंबरीकु लै चक्रु लुभाणा ।
पैर कड़ा है जनक दा करि पाखंडु धरम धिङताणा ।
आपु गवाइ विगुचणा दरगह पाए माणु निमाणा ।
गुरमुखि सुख फलु पति परवाणा ॥ १४ ॥

गुरुमुख व्यक्ति की सत्संगति में सुरति का शब्द से योग स्थापित करता है और अमृतवाणी के माध्यम से सुख-फल को प्राप्त करता है । उस अव्यक्त प्रभु की वार्त्ता तो अकथनीय है; उसकी गति को नहीं जाना जा सकता ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(ध्रुव आदि भक्त)

ध्रुव, प्रह्लाद, विभीषण, अंबरीष, बलि, जनक आदि का नाम लिया जाता है । ये सभी राजकुमार थे, इसलिए इन सबमें भी रजस् गुणी आशा-तृष्णा का खेल चलता रहा । ध्रुव की सौतेली माँ ने पीटा और प्रह्लाद को उसके पिता (हिरण्यकशिपु) ने पीड़ित किया । विभीषण ने घर का भेद बताकर लंका प्राप्त की और अंबरीष सुदर्शन चक्र को अपनी रक्षा के लिए देखकर प्रसन्न हो उठा (दुर्वासा के शाप और क्रोध से बचाने के लिए विष्णु ने अंबरीष राजा की रक्षा के लिए सुदर्शन चक्र भेजा था) । जनक ने एक पाँव मखमली बिस्तर पर और दूसरा पाँव उबलते तेल के कड़ाहे में डालकर भी हठयोग का प्रपंच कर वास्तविक धर्म को नीचा ही दिखाया । अपने अहम् को गँवाकर उस (प्रभु) में खो जानेवाले व्यक्ति का प्रभु-दरबार में सम्मान होता है । गुरुमुखों ने ही सुखफल की प्राप्ति की है और (लोक-परलोक में) वे ही स्वीकृत होते हैं ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(नीचुकुल निशकाम भगत)

कलजुगि नामा भगतु होइ फेरि देहुरा गाइ जिवाई ।
भगतु कबीरु वखाणीऐ बंदी खाने ते उठि जाई ।
धंना जटु उधारिआ सधना जाति अजाति कसाई ।
जनु रविदासु चमारु होइ चहु वरना विचि करि वडिआई ।
बेणि होआ अधिआतमी सैणु नीचु कुलु अंदरि नाई ।
पैरी पै पा खाक होइ गुरसिखाँ विचि वडी समाई ।
अलखु लखाइ न अलखु लखाई ॥ १५ ॥

पउड़ी १६

(कलिजुग दी उत्तमताई)

सतिजुगु उतमु आखीऐ इकु फेड़ै सभ देसु दुहेला ।
त्रेतै नगरी पीड़ीऐ दुआपुरि वंसु विधुंसु कुवेला ।

पउड़ी १५

(नीच कुल निष्काम भक्त)

कलियुग में नामदेव नामक भक्त ने ठाकुरद्वारे को फिरा दिया और मृत गाय जीवित कर दी । कबीर भक्त कहा जाता है कि बंदीखाने से स्वयं बाहर आ जाता था। धन्ना जाट और जातियों में नीच मानी जानेवाली जाति का सधना क़साई भी पार उतर गया । रविदास चमार को प्रभु का जन मानकर चारों वर्ण उसकी प्रशंसा करते हैं । भक्त बेणी आध्यात्मिक विचारवाला और तथाकथित नीच कुल नाई परिवार में सैन भक्त हुआ है । गुरु के सिक्खों की बड़ी समाधि चरणों में गिरकर चरणधूल बन जाना ही है (उनकी जाति-पाँति का ख्याल नहीं किया जाना चाहिए) । (भक्तजन) उस अलक्ष्य (प्रभु) को देखकर भी उसको देखने की बात किसी से नहीं कहते ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(कलियुग की श्रेष्ठता)

सतयुग को उत्तम कहा जाता है परन्तु उसमें कोई एक भी पाप करता था तो सारा देश पीड़ित हो जाता था । त्रेता में एक के करने पर सारा नगर फल भोगता था

कलिजुगि सचु निआउ है जो बीजै सो लुणै इकेला ।
पारब्रहमु पूरनु ब्रहमु सबदि सुरति सतिगुरू गुर चेला ।
नामु दानु इसनानु द्रिड़ साधसंगति मिलि अंम्रित वेला ।
मिठा बोलणु निव चलणु हथहु देणा सहिज सुहेला ।
गुरमुख सुख फल नेहु नवेला ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(वाहिगुरू मंतर)

निरंकारु आकारु करि जोति सरूपु अनूप दिखाइआ ।
वेद कतेब अगोचरा वाहिगुरू गुर सबदु सुणाइआ ।
चारि वरन चारि मजहबा चरण कवल सरणागति आइआ ।
पारसि परसि अपरस जगि असटधातु इकु धातु कराइआ ।

और द्वापर में एक के बुरा करने पर सारा वंश कष्टदायक समय के दौर से गुज़रता था । कलियुग का न्याय सच्चा है क्योंकि इसमें अकेला व्यक्ति जो बुरे बीज़ बोता है वही उसका फल काटता है अर्थात् पाप करनेवाले एक ही व्यक्ति को उसके कर्मों की सज़ा मिलती है न कि सारे वंश, नगर अथवा देश को उसका फल भुगतना पड़ता है। परब्रह्म ही पूर्ण शब्द-ब्रह्म है और शब्द-ब्रह्म में सुरति लीन करनेवाला शिष्य वास्तव में गुरु एवं सद्गुरु (परमात्मा) है (ब्रहमगिआनी आप परमेसर–सुखमनी) । यह शब्दब्रह्म गुरु-नाम-स्मरण, दान करने एवं स्वच्छतापूर्वक रहने से सद्संगति में ही अमृत-बेला में प्राप्त होता है । मीठा बोलनेवाला, नम्रतापूर्वक रहनेवाला और हाथ से देनेवाला (हाथ की कमाई में से बाँटनेवाला) सहज अवस्था में विचरण करता है और सुखी रहता है । गुरुमुखों को प्रभु-भक्ति का नित्य नवीन स्नेह ही सुखी बनाये रहता है ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(वाहिगुरु मंत्र)

निराकार प्रभु की ज्योति के रूप में (गुरु नानक आदि गुरुजनों के) दर्शन हुए हैं जिन्होंने वेद-कतेबों से भी अगोचर शब्द 'वाहिगुरु' नामक गुरु-शब्द लोगों को सुनाया (सिक्ख-धर्म में परमात्मा का वाचक शब्द 'वाहिगुरु' माना जाता है)। इसीलिए चारों वर्ण और चारों इस्लामी मज़हब गुरुजनों के चरण-कमलों की शरण में आ गये।

पैरी पाइ निवाइकै हउमै रोगु असाधु मिटाइआ ।
हुकमि रजाई चलणा गुरमुखि गाडी राहु चलाइआ ।
पूरै पूरा थाटु बणाइआ ॥ १७ ॥

पउड़ी १८

(गुरमुख वरणन)

जंमणु मरणहु बाहरे परउपकारी जग विचि आए ।
भाउ भगति उपदेसु करि साध संगति सचखंडि वसाए ।
मान सरोवरि परमहंस गुरमुखि सबद सुरति लिव लाए ।
चंदन वासु वणासपति अफल सफल चंदन महकाए ।
भवजल अंदरि बोहथै होइ परवार सधार लंघाए ।
लहरि तरंगु न विआपई माइआ विचि उदासु रहाए ।
गुरमुखि सुख फलु सहजि समाए ॥ १८ ॥

जब पारस रूपी गुरुजनों ने उन सबका स्पर्श किया तो यह अष्टधातु एक धातु (सोने रूपी सिक्ख पंथ) में परिवर्तित हो गई । गुरुजनों ने अपने चरणों में स्थान देकर इन सबका अहम् का असाध्य रोग दूर कर दिया। गुरुमुखों के लिए प्रभु-इच्छा में स्वत: ही चलते जाने का राजमार्ग चालू कर दिया और पूर्णगुरु ने पूर्ण प्रबन्ध कर दिया ।। १७ ।।

पउड़ी १८

(गुरुमुख-वर्णन)

आवागमन से परे रहनेवाले (गुरुमुख) परोपकारी इस संसार में आये हैं । वे प्रेमाभक्ति का उपदेश देकर सद्संगति के माध्यम से सत्यदेश में निवास करते हैं । वे गुरुमुख मानसरोवर के परमहंस हैं और शब्द-ब्रह्म में ही अपनी सुरति लीन करते हैं । वे चन्दन के समान हैं जो फलयुक्त एवं फल-विहीन सारी वनस्पति को गंध से महका देता है । वे संसार-सागर में उस जहाज़ के समान हैं जो आराम से सारे परिवार को पार लगा देता है । उन पर संसार-प्रपंच की लहरों का प्रभाव नहीं पड़ता और माया में भी उदासीन ही बने रहते हैं । सहज में लीन रहना ही गुरुमुखों का सुख-फल है ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(अजर जरणा)

धंनु गुरू गुरसिखु धंनु आदि पुरखु आदेसु कराइआ ।
सतिगुर दरसनु धंनु है धंन दिसटिगुर धिआनु धराइआ ।
धंनु धंनु सतिगुर सबदु धंनु सुरति गुर गिआनु सुणाइआ ।
चरण कवल गुर धंनु धंनु धंनु मसतकु गुर चरणी लाइआ ।
धंनु धंनु गुर उपदेसु है धंनु रिदा गुरमंतु वसाइआ ।
धंनु धंनु गुरु चरणामतो धंनु महतु जितु अपिओ पीआइआ ।
गुरमुखि सुखु फलु अजरु जराइआ ।। १९ ।।

पउड़ी २०

(साधसंग महिमा)

सुख सागरु है साधसंगु सोभा लहरि तरंग अतोले ।
माणक मोती हीरिआ गुर उपदेसु अवेसु अमोले ।

पउड़ी १९

(असह्य सहना)

शिष्य धन्य है एवं गुरु भी धन्य है जिसने शिष्य (सिक्ख) को केवल आदिपुरुष परमात्मा की वंदना की ओर लगाया है । सच्चे गुरु का दर्शन भी धन्य है और वह दृष्टि भी धन्य है जिसने अपना ध्यान गुरु में ही टिकाए रखा । सच्चे गुरु का शब्द (वाणी) भी धन्य है और वह उसमें लीन सुरति भी धन्य है जिसने वास्तविक गुरु प्रदत्त ज्ञान को धारण कराया है । गुरु के चरण-कमल धन्य हैं और वह मस्तक धन्य है जो गुरु-चरणों में आ लगा है । गुरु का उपदेश भी महान् है और वह हृदय भी धन्य है जिसमें गुरु-मंत्र बस गया है । गुरु का चरणामृत धन्य है और वह विवेक-बुद्धि भी धन्य है जिसने (उसकी महत्ता को समझकर) वह दुर्लभ अमृत-पान किया है । इस प्रकार गुरुमुखों ने धारण न किया जा सकनेवाला सुख रूपी फल खाकर पचा लिया है ।। १९ ।।

पउड़ी २०

(साधुसंगति-महिमा)

संतसंगति (सद्संगति) सुखों का सागर है जिसमें प्रभु-गुणानुवाद रूपी अनेकों लहरें एवं तरंगें शोभायमान होती हैं । उस सागर में गुरु के उपदेश रूपी अनेकों माणिक, मोती एवं हीरे प्रकाशमान हैं ।

राग रतन अनहद धुनी सबदि सुरति लिव अगम अलोले ।
रिधि सिधि निधि सभ गोलीआँ चारि पदारथ गोइल गोले ।
लख लख चंद चराग़ची लख लख अंम्रित पीचनि झोले ।
कामधेनु लख पारिजात जंगल अंदरि चरनि अडोले ।
गुरमुखि सुख फलु बोल अबोले ॥ २० ॥ १२ ॥ बाराँ ॥

यहाँ राग-विद्या रत्न-समान है और श्रोता अनहद धुन को शब्द में सुरति लीन करके अनन्य भाव से सुनते हैं । यहाँ पर ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ दासी-रूप में और चारों पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) दास के रूप में उपस्थित रहते हैं पर यहाँ पहुँचे लोग इन सबको नश्वर मानते हैं और इनके लिये ललचाते नहीं। यहाँ लाखों चन्द्रमा दीपक का कार्य करते हैं और लाखों लोग विभोर हो अमृतपान करते हैं । यहाँ लाखों कामधेनु हैं जो यहाँ उपस्थित पारिजात के जंगलों में सुखपूर्वक चरती हैं । गुरुमुखों का सुखफल वास्तव में निर्वचनीय है ।। २० ।। १२ ।।

* * *

वार १३

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।।

पउड़ी १

(गुर चेला)

पीर मुरीदी गाखड़ी को विरला जाणै ।
पीरा पीरु वखाणीऐ गुरु गुराँ वखाणै ।
गुरु चेला चेला गुरू करि चोज विडाणै ।
सो गुरु सोई सिखु है जोती जोति समाणै ।
इकु गुरु इकु सिखु है गुरु सबदि सिञाणै ।
मिहर मुहबति मेलु करि भउ भाउ सु भाणै ।। १ ।।

पउड़ी २

(पीर तों पीर होणा)

गुर सिखहु गुर सिखु है पीर पीरहु कोई ।
सबदि सुरति चेला गुरू परमेसरु सोई ।

पउड़ी १

(गुरु-चेला)

गुरु की शिष्यता बड़ा कठिन कार्य है, इसे कोई बिरला ही समझ सकता है। जो जान लेता है वह पीरों का पीर और परमगुरु बन जाता है। इस अवस्था में गुरु चेला और चेला गुरु बनने का कौतुक दिखाते हैं । सिक्ख और गुरु (बाह्य रूप से) वही रहते हैं पर आन्तरिक रूप से एक की ज्योति दूसरे में लीन हो जाती है। गुरु और शिष्य वही होते हुए भी शिष्य को अब गुरु के शब्द की समझ आ जाती है। (गुरु) कृपा और (शिष्य के) प्रेम का मिलाप कर प्रभु-रज़ा में प्रेम (गुरु का) और भय (शिष्य के मन का) आपस में संयुक्त हो जाते हैं (और एक सुन्दर व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं) * ।।१।।

पउड़ी २

(गुरु से गुरु बनना)

गुरु के उपदेश से 'गुरुसिक्ख' तो कई हो जाते हैं पर उस गुरु (पीर) के समान गुरु कोई बिरला ही बनता है । शब्द और सुरति का साधक (शिष्य) ही गुरु परमेश्वर का पद प्राप्त करता है ।

*** इस पद में शिष्य लहिणा (गुरु अंगद) के गुरु नानक की ज्योति से प्रकाशित होकर गुरु-रूप में अवस्थित होने का संकेत मिलता है ।**

दरसनि दिसटि धिआनु धरि गुर मूरति होई ।
सबद सुरति करि कीरतनु सतिसंग विलोई ।
वाहिगुरू गुरमंत्र है जपि हउमै खोई ।
आपु गवाए आपि है गुण गुणी परोई ॥ २ ॥

पउड़ी ३

(संजोगी आदि वरणन)

दरसन दिसटि संजोगु है भै भाइ संजोगी ।
सबद सुरति बैरागु है सुख सहज अरोगी ।
मन बच करम न भरमु है जोगीसरु जोगी ।
पिरम पिआला पीवणा अंम्रित रस भोगी ।
गिआनु धिआनु सिमरणु मिलै पी अपिओ असोगी ॥ ३ ॥

ऐसा शिष्य गुरु के दर्शन में चित्त लगाता (और उसे जीवन में ढालता) हुआ गुरु-मूर्ति ही बन जाता है । वह सुरति को शब्द में लगाकर सत्संगति में कीर्तन के माध्यम से लीन हो जाता है । उसका गुरुमंत्र ' वाहिगुरु ' है जिसका जाप कर अहम्-भाव विनष्ट होता है । अहम्-भाव गँवाकर गुणी के गुणों में लीन हो स्वयं गुणी रूप हो जाता है ।। २ ।।

पउड़ी ३

(संयोगादि वर्णन)

जिसको गुरु-दर्शन का सुयोग उपलब्ध है, वह प्रेम और भय को जानने-माननेवाला भाग्यवान है । उसने शब्द-सुरति का वैराग्य धारण कर रखा है और सहज सुख में रहता हुआ वह नीरोग है । उसका मन, वचन और कर्म भ्रम-ग्रसित नहीं है अर्थात् दुबिधापूर्ण नहीं है और यह योगियों में योगेश्वर है । वह प्रेम का प्याला पीनेवाला अमृत-रस में लीन रहनेवाला है । ज्ञान, ध्यान और प्रभु-स्मरण (के आसव) को पीकर वह शोकातीत हो गया है ।। ३ ।।

पउड़ी ४

(पिरम रस)

गुरमुखि सुख फलु पिरम रसु किउ आखि वखाणै ।
सुणि सुणि आखणु आखणा ओहु साउ न जाणै ।
ब्रहमा बिसनु महेसु मिलि कथि वेद पुराणै ।
चारि कतेबाँ आखीअनि दीन मुसलमाणै ।
सेखनागु सिमरणु करै सांगीत सुहाणै ।
अनहद नाद असंख सुणि होए हैराणै ।
अकथ कथा करि नेति नेति पीलाए भाणै ॥ ४ ॥

पउड़ी ५

(तथा पिरम रस)

गुरमुखि सुख फलु पिरम रसु छिअ रस हैराणा ।
छतीह अंम्रित तरसदे विसमाद विडाणा ।

पउड़ी ४

(प्रेम-रस)

गुरुमुख प्रेम-रस के सुखफल का पान कर भक्त, उस अवर्णनीय तत्त्व का बखान कैसे करे ? सुना-कहा तो बहुत जाता है पर ऐसा करनेवाले उसके वास्तविक स्वाद से अनभिज्ञ ही होते हैं । उस प्रेम-रस के बारे में तो वेदों, पुराणों में और ब्रह्मा, विष्णु, महेश द्वारा भी (बहुत कुछ) कहा गया है । इस्लाम-धर्म और उसकी चारों पुस्तकें (चारों कतेब) भी इसी संदर्भ में देखे जा सकते हैं । शेषनाग भी उसी का स्मरण करता है और राग-नाद भी उसी की शोभा में लीन हैं । असंख्य अनहद नादों को सुन कर आश्चर्यचकित हुआ जाता है पर उस प्रेम-रस की अकथनीय कथा तो नेति-नेति है जो उस प्रभु के विधान के अंतर्गत ही पीने का सौभाग्य प्राप्त होता है ।। ४ ।।

पउड़ी ५

(वही प्रेम-रस)

गुरुमुखों के सुखफल रूपी प्रेम-रस के समक्ष तो षट्रस भी हैरान हो जाते हैं । छत्तीस प्रकार के भोजन भी उसके बड़प्पन के सामने विस्मयादित होकर उसकी बराबरी के लिए ललचाते हैं ।

निझर धार हजार होइ भै चकित भुलाणा ।
इड़ा पिंगुला सुखमना सोहं न समाणा ।
वीह इकीह चड़ाउ चड़ि परचा परवाणा ।
पीतै बोलि न हंघाई आखाण वखाणा ॥ ५ ॥

पउड़ी ६

(अलमसत दा वरणन)

गली सादु न आवई जिचरु मुहु खाली ।
मुहु भरिऐ किउँ बोलीऐ रस जीभ रसाली ।
सबदु सुरति सिमरण उलंघि नहि नदरि निहाली ।
पंथु कुपंथु न सुझई अलमसत खिआली ।
डगमग चाल सुढाल है गुरमति निराली ।
चड़िआ चंदु न लुकई ढकि जोति कुनाली ॥ ६ ॥

दशम द्वार से बहनेवाली आनंद की हज़ारों धाराएँ भी उसके सामने भयभीत और चकित हो जाती हैं । इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों के आधार पर जो सोऽहं जाप किया जाता है उसका स्वाद भी प्रेम-रस के समान नहीं है । जड़, चेतन अर्थात् सम्पूर्ण विश्व से भी आगे पहुँचकर उस प्रभु में सुरति को लीन किया जाता है । फिर स्थिति यह होती है कि जिस तरह पानी पीते समय बोला नहीं जा सकता उसी तरह प्रेम-रस को पीने की स्थिति का भी वर्णन नहीं किया जा सकता ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(मस्ती का वर्णन)

जब तक (रसदायक) वस्तु मुँह में नहीं आ जाती तब तक मात्र उसकी बातें करने से उस वस्तु का स्वाद नहीं आ सकता । जब मुँह में वस्तु आने से मुँह स्वाद से भर उठता है और जीभ रससिक्त हो जाती है तब भला बोला कैसे जा सकता है? स्मरण (की क्रिया) की अवस्था पार कर जिनकी सुरति शब्द में लीन हो जाती है वे (बाहरी आँखों से प्रभु के अलावा) अन्य कुछ नहीं देखते । मस्ती में रहनेवालों के लिए मार्ग-कुमार्ग कोई अर्थ नहीं रखता । गुरुमत में आये व्यक्ति की प्रेम में सराबोर होने के कारण डगमगाती चाल भी निराले रूप से सुन्दर लगती है । अब (हृदयाकाश) में निकला हुआ चन्द्रमा छिपता नहीं, बेशक उसकी ज्योति को कितना ही ढँकने का प्रयत्न किया जाय ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(पिरम रस)

लख लख बावन चंदना लख अगर मिलंदे ।
लख कपूर कथूरीआ अंबर महिकंदे ।
लख लख गउड़े मेद मिलि केसर चमकंदे ।
सभ सुगंध रलाइ कै अरगजा करंदे ।
लखं अरगजे फुलेल फुल फुलवाड़ी संदे ।
गुरमुखि सुख फल पिरम रसु वासू न लहंदे ॥ ७ ॥

पउड़ी ८

(पिरम रस)

रूप सरूप अनूप लख इंद्रपुरी वसंदे ।
रंग बिरंग सुरंग लख बैकुंठ रहंदे ।
लख जोबन सीगार लख लख वेस करंदे ।
लख दीवे लख तारिआँ जोति सूरज चंदे ।

पउड़ी ७

(प्रेम-रस)

लाखों वामन चंदन, लाखों अगरु (सुगंधित) लकड़ियों को मिला लिया जाय; लाखों कपूर, कस्तूरियों को मिलाकर आकाश को महका दिया जाय । लाखों प्रकार के केसर गोरोचन के साथ मिला दिए जाएँ और सभी सुगंधियों को मिलाकर इनकी अगरबत्ती बना ली जाय; फिर लाखों अगरबत्तियों को फुलवाड़ी के फूलों की सुगंध और फुलेल के साथ मिला दिया जाय तब भी ये सभी सुगंधियाँ गुरुमुख के सुखफल रूपी प्रेम-रस की सुगंध के सामने टिक नहीं सकती ।। ७ ।।

पउड़ी ८

(प्रेम-रस)

लाखों स्वरूपवान जो इन्द्रपुरी में बसते हैं; लाखों सुन्दर रूपवाले बैकुंठ में रहते हैं; लाखों प्रकार के यौवनधारी लाखों प्रकार की वेशभूषा धारण करते हैं; लाखों दीपकों, ताराओं, सूर्यों और चन्द्रमाओं की ज्योति है;

रतन जवाहर लख मणी जगमग टहकंदे ।
गुरमुखि सुख फलु पिरम रस जोती न पुजंदे ॥ ८ ॥

पउड़ी ९

(पिरम रस)

चारि पदारथ रिधि सिधि निधि लख करोड़ी ।
लख पारस लख पारिजात लख लखमी जोड़ी ।
लख चिंतामणि कामधेणु चतुरंग चमोड़ी ।
माणक मोती हीरिआ निरमोल मरोड़ी ।
लख कविलास सुमेरु लख लख राज बहोड़ी ।
गुरमुखि सुख फलु पिरम रसु मुलु अमुलु सुथोड़ी ॥ ९ ॥

पउड़ी १०

(प्रेम पिआले दी बूँद)

गुरमुखि सुख फल लख लख लख लहिर तरंगा ।
लख दरीआउ समाउ करि लख लहरी अंगा ।

लाखो रत्नों, जवाहिरातों और मणियों की ज्योति जगमगाती है पर ये सब ज्योतियाँ उस परमप्रेम-रस की ज्योति तक नहीं पहुँच पाती अर्थात् ये सब ज्योतियाँ उसके सामने फीकी हैं ।। ८ ।।

पउड़ी ९

(प्रेम-रस)

चारों पदार्थ (पुरुषार्थ), ऋद्धियाँ, सिद्धियाँ और लाखों-करोड़ों निधियाँ, लाखों पारस, लाखों पारिजात और लाखों प्रकार का धन यदि जमा करके रख लिया जाय; लाखों चिन्तामणियाँ और सुन्दर रंगों वाली लाखों कामधेनु गायों को साथ जोड़ दिया जाय; पुनः अमूल्य माणिक, मोती, हीरों को साथ रखा जाय; फिर लाखों कैलाश और सुमेरु पर्वतों (की विभूतियों) को इकट्ठा कर लिया जाय, फिर भी गुरुमुखों के प्रेम-रस रूपी सुख-फल के सामने इन सबकी क़ीमत बहुत ही कम है ।। ९ ।।

पउड़ी १०

(प्रेम-प्याले की बूँद)

गुरुमुख संसार की (मायावी) लहरों में भी सुख-फल रूपी लहर को पहचान जाते हैं । वे अपने शरीर पर ही (संसार की) लाखों नदियों की तरंगों को सहन करते हैं ।

लख दरीआउ समुंद विचि लख तीरथ गंगा ।
लख समुंद गड़ाड़ विचि बहु रंग बिरंगा ।
लख गड़ाड़ तरंग विचि लख अझु किणंगा ।
पिरम पिआला पीवणा को बुरा न चंगा ॥१० ॥

पउड़ी ११

(बेअंतता)

इक कवाउ पसाउ करि ओअंकारु सुणाइआ ।
ओअंकारि अकार लख ब्रहमंड बणाइआ ।
पंजि ततु उतपति लख त्रै लोअ सुहाइआ ।
जलि थलि गिरि तरवर सफल दरीआव चलाइआ ।
लख दरीआउ समाउ करि तिल तुल न तुलाइआ ।
कुदरति इक अतोलवी लेखा न लिखाइआ ।
कुदरति कीम न जाणीऐ कादरु किनि पाइआ ॥ ११ ॥

समुद्र में लाखों दरिया और गंगा के समान लाखों तीर्थ हैं । महासागर में लाखों सागर हैं जो विभिन्न प्रकार के रंग-रूपवाले हैं । ऐसे लाखों महासागर प्रेम के आँसुओं की एक बूँद में देखे जा सकते हैं । प्रेम का प्याला पी जानेवाले के लिए कोई भला अथवा बुरा नहीं रह जाता ।। १० ।।

पउड़ी ११

(अनंतता)

ओअंकार ब्रह्म ने एक ही ध्वनि सुनाकर सारे विश्व का आकार-प्रसार कर दिया । उसी ओअंकार ने लाखों ब्रह्मांडों के रूप में आकार धारण किया । पाँचों तत्त्व बनाये, लाखों उत्पत्तियाँ कीं और तीनों लोकों को शोभायमान किया । उसी ने जल, स्थल, पर्वत, वृक्ष बनाये और सफलतापूर्वक नदियाँ बहाईं । लाखों नदियाँ को अपने में समा लेनेवाले समुद्र बनाये जिनकी विशालता के एक तिल भर का भी वर्णन नहीं किया जा सकता । एक प्रकृति ही अपरिमित है जिसका हिसाब नहीं लगाया जा सकता । प्रकृति का सही मूल्यांकन नहीं किया जा सकता, फिर भला उसके कर्त्ता (ब्रह्म) को कैसे जाना जा सकता है ! ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(प्रेम पिआले दी एक बूँद)

गुरमुखि सुख फलु प्रेम रसु अबिगति गति भाई ।
पारावारु अपारु है को आइ न जाई ।
आदि अंति परजंत नाहि परमादि वडाई ।
हाथ न पाइ अथाह दी असगाह समाई ।
पिरम पिआले बूँद इक किनि कीमति पाई ।
अगमहु अगम अगाधि बोध गुर अलखु लखाई ॥ १२ ॥

पउड़ी १३

(प्रेम रस दी इक निमख)

गुरमुखि सुख फलु पिरम रसु तिलु अलखु अलैखै ।
लख चउरासीह जूनि विचि जीअ जंत विसेखै ।

पउड़ी १२

(प्रेम-प्याले की एक बूँद)

गुरुमुखों के सुख-फल रूपी प्रेम-रस की गति निर्वचनीय है । उसका यह किनारा और वह किनारा अपार है । उस तक कोई नहीं पहुँच सकता । उसका आदि और अंत अथाह है और उसका बड़प्पन परम महान् है । वह इतना अथाह है कि उसमें अनेकों समुद्र समा जाते हैं, फिर भी उसकी गहनता की थाह नहीं लगती। इस प्रकार के प्रेम-प्याले की एक बूँद का भी भला कौन मूल्यांकन कर सका है ? वह अगम्य है एवं उसका ज्ञान अगाध है, परन्तु गुरु ही इस अलक्ष्य प्रेम-प्याले का साक्षात्कार करा सकता है ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(प्रेम-रस का एक क्षण)

गुरुमुखों के सुख-फल रूपी प्रेम-रस का एक तिल मात्र भी अलक्ष्य एवं सब लेखों से परे है । चौरासी लाख योनियों के अनेक जीव-जन्तु हैं । इन सबके शरीरों पर विभिन्न प्रकार की रोमावली है और इसके विभिन्न रूप-रंग हैं । यदि उनके एक-एक रोम के साथ लाखों सिर और मुँह लग जाएँ और लाखों मुँह, लाखों जुबानें कह-सुन सकती हों ।

सभना दी रोमावली बहु बिधि बहु भेखै ।
रोमि रोमि लख लख सिर मुहु लख सरेखै ।
लख लख मुहि मुहि जीभु करि सुणि बोलै देखै ।
संख असंख इकीह वीह समसरि न निमेखै ॥१३॥

पउड़ी १४

(प्रेम रस किकूँ मिलदा है ?)

गुरमुखि सुख फल पिरम रसु हुइ गुरु सिख मेला ।
सबद सुरति परचाइ कै नित नेहु नवेला ।
वीह इकीह चड़ाउ चड़ि सिख गुरु गुरु चेला ।
अपिउ पीए अजरु जरै गुर सेव सुहेला ।
जीवदिआ मरि चलणा हारि जिणै वहेला ।
सिल अलूणी चटणी लख अंम्रित पेला ॥१४॥

इनका भी असंख्य गुना संसार और रचा जाय तो भी वह (प्रेम-रस के) एक क्षण के समान नहीं है ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(प्रेम-रस कैसे प्राप्त होता है ?)

गुरु और सिक्ख के मिलाप के बाद अर्थात् गुरु-उपदेश को मन में बसाने के बाद ही गुरुमुख को सुख-फल रूपी प्रेम-रस की प्राप्ति होती है । वह गुरु शिष्य की सुरति को शब्द में लीन कर उसमें नित्य नवीन बना रहनेवाला (प्रभु) स्नेह पैदा करता है । इस प्रकार संसार से ऊपर उठ कर शिष्य गुरु और गुरु चेला (सिक्ख) बन जाता है । अब वह न पिया जा सकनेवाला (प्रेम-रस) पीता है और सहन न किया जा सकनेवाला (शक्तिपात्) सहन करता है । पर यह सब गुरु की सेवा से ही संभव हो पाता है । (प्रेम-रस की प्राप्ति के लिए) जीवित हो अहंभाव के दृष्टिकोण से मरना पड़ता है और संसार से उदासीन हो उसे जीतना पड़ता है । जिसने इस लवणहीन शिला को चाटने अर्थात् निष्काम भक्ति को अपनाने का मार्ग अपना लिया है, वह लाखों अमृत-तुल्य अन्य रसों को परे फेंक देता है ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(बिरद दी लाज)

पाणी काठु न डोबई पाले दी लजै ।
सिरि कलवत्र धराइ कै सिरि चड़िआ भजै ।
लोहे जड़ीऐ बोहिथा भारि भरे न तजै ।
पेटै अंदरि अगि रखि तिसु पड़दा कजै ।
अगरै डोबै जाणि कै निरमोलक धजै ।
गुरमुखि मारगि चलणा छडि खाबै सजै ॥१५॥

पउड़ी १६

(हीरा)

खाणि उखणि कढि आणदे निरमोलक हीरा ।
जउहरीआ हथि आवदा उड़ गहिर गंभीरा ।

पउड़ी १५

(बिरद की लाज)

पानी लकड़ी को नहीं डुबाता क्योंकि वह अपने पोषक होने की लाज निबाहता है (पानी ही वनस्पति का पोषण करता है) । वह लकड़ी (के जहाज़) को सिर पर आरे के समान धारण करता है, क्योंकि जहाज़ पानी को आरे की तरह चीरता हुआ भागता फिरता है । बेशक अब लकड़ी में लोहा भी जड़ दिया जाता है पर पानी उसका भी भार उठाता रहता है । लकड़ी के अंदर आग भी रहती है जो कि पानी की शत्रु है पर पानी फिर भी उसका पर्दा बनाए रखता है; उसे डुबाता नहीं । अगरु जाति (चंदन) की लकड़ी को पानी जान-बूझकर डुबा देता है ताकि यह लकड़ी खरा चंदन सिद्ध हो सके और इसकी क़ीमत अधिक आँकी जा सके (यहाँ भी यह लकड़ी का भला करता है) । गुरुमुखों का मार्ग भी ऐसा ही है; वे (पानी के समान) हानि-लाभ की परवाह किये बग़ैर चलते चले जाते हैं ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(हीरा)

खान में से खोदकर अमूल्य हीरे को लाया जाता है । तब वह गहन् गंभीर हीरा जौहरियों के हाथ पड़ता है । महफ़िल में बैठकर उसे बादशाह, वज़ीर आदि देखते-परखते हैं । साहूकार तब धैर्यपूर्वक उसका मूल्य आँकते हैं ।

मजलस अंदरि देखदे पातिसाहु वजीरा ।
मुलु करनि अजमाइकै साहा मन धीरा ।
अहरणि उतै रखिकै घण घाउ सरीरा ।
विरला ही ठहिरावदा दरगह गुर पीरा ॥१६॥

पउड़ी १७

(गुरमुख चाल)

तरि डुबै डुबा तरै पी पिरम पिआला ।
जिणि हारै हारै जिणै एहु गुरमुखि चाला ।
मारगु खंडे धार है भवजलु भरनाला ।
वालहु निका आखीऐ गुर पंथु निराला ।
हउमै बजरु भार है दुरमति दुराला ।
गुरमति आपु गवाइ कै सिखु जाइ सुखाला ॥१७॥

तब उसे लोहार की नेहाई पर रख हथौड़े की चोट से उसके शरीर पर घाव करने का प्रयत्न किया जाता है । वहाँ कोई बिरला ही साबुत बचता है । ठीक इसी प्रकार गुरु (परमात्मा) के दरबार में भी कोई बिरला ही साबुत पहुँचता है अर्थात् कोई बिरला ही मोह-माया की कालिमा से रहित हो पहुँच पाता है ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(गुरुमुखों की गति)

(प्रभु के) प्रेम का प्याला पीकर ऊपर-ऊपर तैरनेवाला तो मस्त हो उसमें डूब जाता है और जो डूब जाता है वह वास्तव में तैर (पार हो) जाता है । गुरुमुखों का तरीक़ा ही यह है कि जीतकर भी हारते हैं और हारकर सब कुछ जीत जाते हैं । संसार रूपी समुद्र का मार्ग तो खड्‌गधार के समान है, परन्तु गुरु का पंथ (सिक्ख-जीवन-मार्ग) बाल से भी सूक्ष्म मार्ग है जो यह मानता है कि अहंकार वज्र (पत्थर) के समान (भारी) है जो सब कुछ नष्ट कर देता है तथा दुर्बुद्धि बुरे कर्मों का घर है । गुरु का सिक्ख गुरुमत के माध्यम से अहम्-भाव गँवाकर सुखपूर्वक इस संसार सागर से पार चला जाता है ।। १७ ।।

पउड़ी १८

(बोहड़ दे फैलाउ वाँग गुर सिक्ख नाम प्रचारदे हन)

धरति वड़ै वड़ि बीउ होइ जड़ अंदरि जंमै ।
होइ बरूटा चुहचुहा मूल डाल धरंमै ।
बिरख अकारु बिथारु करि बहु जटा पलंमै ।
जटा लटा मिलि धरति विचि होइ मूल अगंमै ।
छाँव घणी पत सोहणे फल लक्ख लखंमै ।
फल फल अंदरि बीअ बहु गुरसिख मरंमै ॥१८॥

पउड़ी १९

(गुर बिछ रूप)

इकु सिखु दुइ साध संगु पंजीं परमेसरु ।
नउ अंग नील अनील सुंन अवतार महेसरु ।

पउड़ी १८

(वट वृक्ष के फैलाव की तरह गुरु के सिक्ख प्रभु-नाम का प्रसार करते हैं)

बीज धरती में प्रवेश कर वहाँ जड़-रूप में जम जाता है । फिर वह छोटा-सा लहलहाता पौधा बनकर तना और डालियों आदि को धारण करता है । तत्पश्चात् वह वृक्ष का आकार धारण कर विस्तार प्राप्त करता है और उसमें से जटाएँ आदि निकलकर लटक जाती हैं । ये लहराती जटाएँ अन्ततः धरती से मिलकर फिर एक जड़ का रूप धारण कर लेती हैं । अब उसकी छाया घनी, इसके पत्ते सुन्दर दिखाई पड़ते हैं और इसमें लाखों की संख्या में फल (गूलर) लग जाते हैं । प्रत्येक फल में फिर अनेकों बीज होते हैं (और उपर्युक्त प्रक्रिया फिर चलती रहती है) । गुरु के सिक्ख का भी यही रहस्य है; वे भी वट-वृक्ष की तरह प्रभु-नाम का प्रसार करते रहते हैं ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(गुरु वृक्ष-रूप)

एक अकेला सिक्ख, दो मिलने पर सत्संगति और पाँच एकत्र होने पर तो मानों परमेश्वर का साक्षात्कार हो जाता है ।

वीह इकीह असंख संख मुकतै मुकतेसरु ।
नगरि नगरि मै सहंस सिख देस देस लखेसरु ।
इकदूँ बिरखहु लख फल फल बीअ लोमेसरु ।
भोग भुगति राजेसुरा जोग जुगति जोगेसरु ॥१९॥

पउड़ी २०

(नामी शाह)

पीर मुरीदा पिरहड़ी वणजारे साहै ।
सउदा इकतु हटि है संसारु विसाहै ।
कोई बेचै कउडीआ को दम उगाहै ।
कोई रुपये विकणै सुनईए को डाहै ।
कोई रतन वणंजदा करि सिफति सलाहै ।
वणजि सुपता साह नालि वेसाहु निबाहै ॥२०॥

जैसे नौ अंकों के साथ शून्य लगाने से संख्या अगणित (अनंत) हो जाती है ऐसे ही शून्य (परमात्मा) के साथ लगने पर जीव भी अवतार और महेश्वर बन जाते हैं । इस युक्ति से छोटे-बड़े अनेकों असंख्य व्यक्ति भी मुक्त और मुक्ति-प्रदाता (मुक्तेश्वर) बन जाते हैं । इस युक्ति को अपनानेवाले देश-देशान्तरों और नगरों में (एक-एक सिक्ख भी सहस्रों सिक्खों के समान) ठीक वैसे ही हैं जैसे एक वृक्ष से लाखों फल प्राप्त होते हैं और फल में फिर अनेकों बीज होते हैं अर्थात् गुरु रूपी वृक्ष में सिक्ख फल हैं जिनमें गुरु पुन: बीज-रूप में विद्यमान है । ये गुरु-सिक्ख भोगों का उपभोग करनेवाले राजेश्वर भी हैं और योग की युक्ति को समझने-बूझनेवाले योगेश्वर भी हैं ।। १९ ।।

पउड़ी २०

(प्रभु-नाम का धनी)

गुरु और शिष्यों की प्रीति वैसी है जैसी एक व्यापारी और साहूकार में होती है । प्रभु-नाम का सौदा तो एक (गुरु की) दुकान पर ही है और सारा जगत् उससे ही लेता है । सांसारिक दुकानदार तो कोई कौड़ियाँ बेच रहा है और कोई दाम वसूल कर रहा है । कोई रुपयों को बेचकर उनसे मुहरें प्राप्त कर सँभाल रहा है, परन्तु कई ऐसे भी हैं जो प्रभु-गुणानुवाद रूपी रत्नों का व्यापार कर रहा है । यह व्यापार कोई सम्मानित साहूकार ही (उस प्रभु के) भरोसे में निभाता है ।। २० ।।

पउड़ी २१

(सतिगुर शाह)

सउदा इकतु हरि है साहु सतिगुरु पूरा ।
अउगुण लै गुण विकणै वचनै दा सूरा ।
सफलु करै सिंमलु बिरखु सोवरनु मनूरा ।
वासि सुवासु निवासु करि काउ हंसु न ऊरा ।
घुघू सुझु सुझाइदा संख मोती चूरा ।
वेद कतेबहु बाहरा गुर सबदि हजूरा ॥२१॥

पउड़ी २२

(गुरोपमा)

लख उपमा उपमा करै उपमान वखाणै ।
लख महिमा महिमा करै महिमा हैराणै ।

पउड़ी २१

(धनी सद्‌गुरु)

पूर्ण सद्‌गुरु ही (नाम का) वास्तविक सौदा रखता है । वह अवगुणों को तो ले लेता है और बदले में गुण प्रदान करने का वचन पूरा करनेवाला शूरवीर है । वह सेमल के वृक्ष को भी (रसदार) फल लगा देता है और लोहे की भस्म (मिट्टी) को भी सोना बना देता है । वह बाँस में भी सुगन्धि भर देता है अर्थात् अभिमानियों में भी विनम्रता का संचार कर देता है और कौवे को भी नीर-क्षीर विवेक करनेवाले हंस से कम नहीं रहने देता । उल्लू को भी वह ज्ञानवान बना देता है और धूल को भी शंख और मोतियों में परिवर्तित कर देता है । ऐसा गुरु जो वेदों-कतेबों के वर्णन से भी परे है शब्द-ब्रह्म की कृपा से प्रकट होता है ।। २१ ।।

पउड़ी २२

(गुरु-स्तुति)

लोग लाखों प्रकार से गुरु की स्तुति करते हैं और अनेकों उपमानों का सहारा लेते हैं । लाखों लोग इतनी महिमा गाते हैं कि स्वयं महिमा भी हैरान हो जाती है । लाखों महात्मा (गुरु) महिमा का महात्म्य समझाते हैं पर फिर भी वास्तविक महात्म्य नहीं समझ पाते ।

लख महातम महातमा न महातमु जाणै ।
लख उसतति उसतति करै उसतति न सिञाणै ।
आदि पुरखु आदेसु है मैं माणु निमाणै ॥२२॥

पउड़ी २३

(तथा च गुर प्रताप)

लख मति लख बुधि सुधि लख लख चतुराई ।
लख लख उकति सिआणपाँ लख सुरति समाई ।
लख गिआन धिआन लख लख सिमरणराई ।
लख विदिआ लख इशट जप तंत मंत कमाई ।
लख भुगति लख लख भगति लख मुकति मिलाई ।
जिउ तारे दिह उगवै आन्हेर गवाई ।
गुरमुखि सुख फलु अगमु है होइ पिरम सखाई ॥२३॥

पउड़ी २४

(वाहिगुरू महिमा)

लख अचरज अचरज होइ अचरज हैराणा ।
विसमु होइ विसमाद लख लख चोज विडाणा ।

लाखों ही स्तुतियाँ करनेवाले स्तुति करते हैं पर असली स्तवन नहीं पहचानते । ऐसे आदि पुरुष प्रभु को मेरा सादर प्रणाम है । मैं तो अत्यन्त विनम्र और मामूली हूँ, वह ही मुझे गौरव प्रदान करनेवाला है ।। २२ ।।

पउड़ी २३

(वही गुरु-प्रताप)

लाखों ही मत, बुद्धियाँ, चिन्तन और चतुराइयाँ हों; लाखों उक्तियाँ, युक्तियाँ और सुरति को लीन करने के उपाय हों; लाखों ज्ञान, ध्यान और लाखों स्मरण हों; लाखों विद्याएँ, इष्ट के जाप और तंत्र-मंत्रों की साधनाएँ हों; लाखों आनंद, भक्तियाँ और लाखों ही मुक्तियों को मिला दिया जाय; परन्तु जैसे दिन निकलने पर तारागण और अँधेरा खो जाता है वैसे ही उपर्युक्त सभी वस्तुओं को गँवाकर और प्रभु-नामलेवा (गुरु) का परमसखा बनकर ही अगम्य सुख-फल को पाया जा सकता है ।। २३ ।।

पउड़ी २४

(वाहिगुरु-महिमा)

आश्चर्यजनक (वाहिगुरु) को देखकर लाखों आश्चर्य भी हैरान होते हैं ।

लख अदभुत परमदभुती परमदभुत भाणा ।
अबिगति गति अगाध बोध अपरंपरु बाणा ।
अकथ कथा अजपा जपणु नेति नेति वखाणा ।
आदि पुरख आदेसु है कुदरति कुरबाणा ॥२४॥

पउड़ी २५

(छे गुरू सिमरन)

पारब्रहमु पूरण ब्रहमु गुर नानक देउ ।
गुर अंगदु गुर अंग ते सच सबद समेउ ।
अमरापदु गुर अंगदहु अति अलख अभेउ ।
गुर अमरहु गुर राम नामु गति अछल अछेउ ।
राम रसक अरजन गुरू अबिचल अरखेउ ।
हरिगोविंदु गोविंदु गुरु कारण करणेउ ॥ २५ ॥ १३ ॥ तेराँ ॥

उसके हैरान करनेवाले कारनामों को देखकर तो विभोरता भी विभोरे हो उठती है। उसके परम अद्‌भुत हुक्म (विधान) को देखकर अनेकों अद्‌भुत प्रकार की व्यवस्थाएँ भी अद्‌भुत स्थिति का अनुभव करती हैं । उसकी अव्यक्त गति जानने-बूझने से परे है और उसका रूप-वेश भी निराकार है । उसकी कथा अकथनीय है; उसके लिए अजपा जाप किये जाते हैं और फिर भी उसे नेति-नेति ही कहते बनता है । उस आदिपुरुष परमात्मा को मेरा नमस्कार है और उसकी लीला पर मैं बलिहारी जाता हूँ ।। २४ ।।

पउड़ी २५

(छः गुरु-स्मरण)

गुरु नानक पूर्णब्रह्म और परब्रह्म हैं । गुरु अंगद के गुरु के अंग-संग रहकर शब्द में लवलीनता प्राप्त की । गुरु अंगद के बाद अमरपद प्रदान करनेवाले और अलक्ष्य तथा भेद-रहित गुरु अमरदास हुए हैं । गुरु अमरदास के बाद धैर्यवान एवं अक्षय गुणोंवाले रामदास हुए हैं । रामदास, जो कि राम-नाम के रसिक थे, से अडिग एवं सभी कालिमाओं से परे रहनेवाले गुरु अर्जुन हुए । तत्पश्चात् सभी कारणों के करणहार (मूल कारण) गोविंद (प्रभु) रूप गुरु गोविंदसिंह जी हुए हैं ।। २५ ।। १३ ।।

* * *

वार १४

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।।

पउड़ी १

(निमाणिआँ दा माण सतिगुरु)

सतिगुर सचा नाउ गुरमुखि जाणीऐ ।
साधसंगति सचु थाउ सबदि वखाणीऐ ।
दरगह सचु निआउ जल दुधु छाणीऐ ।
गुर सरणी असराउ सेव कमाणीऐ ।
सबद सुरति सुणि गाउ अंदरि जाणीऐ ।
तिसु कुरबाणौ जाउ माणु निमाणीऐ ॥ १ ॥

पउड़ी २

(गुर सिक्ख संगत)

चारि वरन गुर सिख संगति आवणा ।
गुरमुखि मारगु विखु अंतु न पावणा ।

पउड़ी १

(गौरवहीनों का गौरव सद्गुरु)

सद्गुरु (परमात्मा) का नाम सत्य है जिसे गुरुमुख बनकर ही जाना जा सकता है । सत्संगति ही मात्र ऐसा सच्चा स्थान है जहाँ शब्द (ब्रह्म) की व्याख्या की जाती है । प्रभु-दरबार में तो सच्चा न्याय होता है और दूध का दूध, पानी का पानी छानकर अलग कर दिया जाता है । गुरु की शरण ही (परम) आश्रय है जहाँ सेवा करके कमाई की जाती है । यहीं पर शब्द को सुरति लगाकर सुना, गाया और मन में बसाया जाता है । मैं ऐसे गुरु पर बलिहारी जाता हूँ जो गौरवहीनों का भी गौरव-प्रदाता है ।। १ ।।

पउड़ी २

(गुरु-सिक्ख-संगत)

गुरु के सिक्खों की संगति में चारों वर्णों के लोग आते हैं ।

तुलि न अंम्रित इख कीरतनु गावणा ।
चारि पदारथ भिख भिखारी पावणा ।
लेख अलेख अलिख सबदु कमावणा ।
सुझनि भूत भविख न आपु जणावणा ॥ २ ॥

पउड़ी ३

(अगम दरशन)

आदि पुरख आदेसि अलखु लखाइआ ।
अनहदु सबदु अवेसि अघड़ु घड़ाइआ ।
साधसंगति परवेसि अपिओ पीआइआ ।
गुर पूरे उपदेसि सचु दिड़ाइआ ।
गुरमुखि भूपति वेसि न विआपै माइआ ।
ब्रहमे बिसन महेश न दरसनु पाइआ ॥ ३॥

गुरुमुखों का मार्ग अत्यन्त विषम है । इसका रहस्य नहीं जाना जा सकता । कीर्तन के रस के तुल्य तो गन्ने का अमृत-रस भी (मीठा) नहीं है । यहाँ भिक्षुक (जिज्ञासु) चारों पदार्थों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की भिक्षा पाते हैं । जिन्होंने शब्द-साधना की है वे अलेख परमात्मा को पाकर सब गणनाओं से मुक्त हो गये हैं । वे त्रिकालदर्शी बन जाते हैं पर फिर भी अहंभाव के वशीभूत नहीं होते और अपने आपको जनाते नहीं ।। २ ।।

पउड़ी ३

(अगम्य दर्शन)

उस आदिपुरुष (परमात्मा) को मेरा प्रणाम है जो स्वयं कृपा कर अपने अलक्ष्य स्वरूप का दर्शन करा देता है । वही कृपापूर्वक अनहद् शब्द का मन में प्रवेश करा इस अगढ़ (ऊबड़-खाबड़) मन को सँवार देता है । वही साधुसंगति से मिलाकर नामामृत (जिसे सहज ही पिया नहीं जा सकता) पिलाता है । जिनको पूर्णगुरु का उपदेश प्राप्त हुआ है वे ही सत्य पर दृढ़ रहते हैं । गुरुमुख लोग राजाओं के समान हैं पर फिर भी माया से परे रहते हैं । (गुरुमुख तो उस आदिपुरुष के दर्शन पा लेते हैं पर) ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी उस प्रभु का साक्षात्कार नहीं पा सकते ।। ३ ।।

पउड़ी ४

(ब्रहमा,बिशणु,महेश)

बिसनै दस अवतार नाव गणाइआ ।
करि करि असुर संघार वादु वधाइआ ।
ब्रहमै वेद वीचारि आखि सुणाइआ ।
मन अंदरि अहंकारु जगतु उपाइआ ।
महादेउ लाइ तार तामसु ताइआ ।
गुरमुखि मोख दुआर आपु गवाइआ ॥ ४ ॥

पउड़ी ५

(सनकादिक ते सुकदेव)

नारद मुनी अखाइ गल सुणाइआ ।
लाइतबारी खाइ चुगलु सदाइआ ।
सनकादिक दरि जाइ तामसु आइआ ।
दस अवतार कराइ जनमु गलाइआ ।

पउड़ी ४

(ब्रह्मा, विष्णु, महेश)

विष्णु ने दस अवतार धारण कर अपने नाम की स्थापना की। असुरों का संहार कर वाद-विवाद अर्थात् कलह को मिटाया । ब्रह्मा ने विचारपूर्वक वेदों का उच्चारण किया परन्तु अहम्-भाव के वशीभूत होकर ही सृष्टि की रचना की । शिव भी तमस् गुण में लीन रहने के कारण सदैव तप्त ही रहा । गुरुमुख ही अहम्-भाव को गँवाकर मुक्ति के द्वार तक पहुँच पाते हैं ।। ४ ।।

पउड़ी ५

(सनकादि एवं शुकदेव)

मुनि कहलाकर भी नारद ने (इधर-उधर की) बातें ही सुनाई हैं । चुगली खाकर वह चुगलखोर ही प्रसिद्ध हुआ । सनकादि को भी (विष्णु के द्वार पर जाकर द्वारपालों द्वारा रोके जाने पर) क्रोध आया और उनके उद्धार के लिए विष्णु को दस अवतार लेने के लिए कहकर विष्णु के शान्त जीवन को मानों गला दिया ।

जिनि सुकु जणिआ माइ दुख सहाइआ ।
गुरमुखि सुख फल खाइ अजरु जराइआ ॥ ५ ॥

पउड़ी ६

(धरती)

धरती नीवीं होइ चरण चितु लाइआ ।
चरण कवल रसु भोइ आपु गवाइआ ।
चरण रेणु तिहु लोइ इछ इछाइआ ।
धीरजु धरमु जमोइ संतोखु समाइआ ।
जीवणु जगतु परोइ रिजकु पुजाइआ ।
मंनै हुकमु रजाइ गुरमुखि जाइआ ॥ ६ ॥

पउड़ी ७

(पाणी दा वरणन)

पाणी धरती विचि धरति विचि पाणीऐ ।
नीचहु नीच न हिच निरमल जाणीऐ ।

जिस माँ ने शुकदेव को जन्म दिया उसने उस माँ को ही उसके उदर में १२ वर्ष तक बने रहकर दुख दिया । केवल गुरुमुखों ने परमसुख रूपी फल खाकर असह्य प्रभु-नाम को धारण किया है ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(धरती)

धरती ने विनम्र होकर (नीचे पड़कर) प्रभु-चरणों में चित्त लगाया है । चरण-कमलों के रस में एकाकार हो उसने अहम्-भाव को गँवा दिया है । वह उस चरण-धूलि का रूप है जिसकी तीनों लोक इच्छा करते हैं । धरती में धैर्य, धर्म एवं संतोष जमा हुआ तथा समाया हुआ है । वह सभी जीवों की जीवन-युक्ति को मन रखकर सबको खाने को देती है । वह प्रभु-इच्छा को मानकर गुरुमुख के समान व्यवहार करती है ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(पानी का वर्णन)

पानी धरती में है और धरती पानी में है । पानी को निचले स्तर से और अधिक निचले स्तर तक जाने में भी कोई हिचकिचाहट नहीं होती ।

सहदा बाहली खिच निवै नीवाणीऐ ।
मन मेली घुल मिच सभ रंग माणीऐ ।
विछुड़ै नाहि विरचि दरि परवाणीऐ ।
परउपकार सरचि भगति नीसाणीऐ ॥ ७ ॥

पउड़ी ८

(ब्रिछ वरणन)

धरती उतै रुखा सिर तलवाइआ ।
आपि सहंदे दुखा जगु वरुसाइआ ।
फल दे लाहनि भुखा वट वगाइआ ।
छाव घणी बहि सुखा मनु परचाइआ ।
वढनि आइ मनुखा आपु तछाइआ ।
विरले ही सनमुखा भाणा भाइआ ॥ ८ ॥

पउड़ी ९

(बिछ दे होर उपकार)

रुखहु घार छावाइ थम थमाइआ ।
सिरि करवतु धराइ बेड़ घड़ाइआ ।

उसे फिर भी निर्मल माना जाता है । निचले स्तर पर गिरने के लिए वह अत्यधिक तनाव (रूपी चोट) भी सहन करता है पर फिर भी नीचे की ओर ही बहता है । सबसे घुल-मिलकर वह सबके साथ आनंदित बना रहता है। एक बार साथ रहकर वह फिर बिछड़ता नहीं, इसलिए वह प्रभु-दरगाह में भी स्वीकृत है । भक्तों की भी यही निशानी है कि वे परोपकार में लीन रहते हैं ।। ७ ।।

पउड़ी ८

(वृक्ष-वर्णन)

धरती पर खड़े वृक्षों का सिर तल की ओर है । वे स्वयं दुख सहते हैं पर संसार पर (सुखों की) वर्षा करते हैं । पत्थर मारे जाने पर भी फल देकर (हमारी) भूख दूर करते हैं । उनकी छाया घनी होती है और (उनके नीचे) मन सुख में लीन हो जाता है । यदि उन्हें कोई मनुष्य काटता है तो अपने आपको कटवा लेते हैं । वृक्षों की भाँति कोई बिरला ही प्रभु की ओर उन्मुख है जिसे प्रभु-इच्छा भाती है ।। ८।।

पउड़ी ९

(वृक्ष के अन्य उपकार)

वृक्षों (की लकड़ी) से घर और स्तम्भ बनाए जाते हैं ।

लोहे नालि जड़ाइ पूर तराइआ ।
लख लहरी दरीआइ पारि लंघाइआ ।
गुरसिखाँ भै भाइ सबदु कमाइआ ।
इकस पिछै लाइ लख छुडाइआ ॥ ९ ॥

पउड़ी १०

(तिल दा द्रिशटांत)

घाणी तिलु पीड़ाइ तेलु कढाइआ ।
दीवै तेलु जलाइ अन्हेरु गवाइआ ।
मसु मसवाणी पाइ सबदु लिखाइआ ।
सुणि सिखि लिखि लिखाइ अलेखु सुणाइआ ।
गुरमुखि आपु गवाइ सबदु कमाइआ ।
गिआन अंजन लिव लाइ सहजि समाइआ ॥१०॥

वृक्ष अपने सिर पर आरा चलवाकर नाव बनवाता है । फिर वह अपने में लोहा लगवाकर लोगों को पार करता है । नदी में लाखों लहरें हों पर वह पार लगा देता है । ऐसे ही गुरु के सिक्ख प्रभु-भय और प्रेम के अन्तर्गत शब्द-साधना करते हैं । वे सबको एक प्रभु का अनुगामी बनाकर लाखों को (आवागमन के) बंधनों से छुड़ा लेते हैं ।। ९ ।।

पउड़ी १०

(तिल का दृष्टांत)

तिल अपने आपको कोल्हू में पेरवाकर अपना तेल निकलवाता है । तेल दीपक में जलने से अंधकार दूर होता है । (दीपक की कालिमा) स्याही बनकर दवात में (वही तेल) आ जाता है जिससे (गुरु का) शब्द लिखा जाता है । उस शब्द को सुनकर, लिखकर, सीखकर अथवा लिखवाकर उस अलक्ष्य प्रभु के गुणानुवाद किये जाते हैं । गुरुमुख व्यक्ति अपना अहम्-भाव गँवाकर शब्द की साधना करते हैं और ज्ञान रूपी अंजन से अपनी सुरति तीक्ष्ण कर सहज भाव में समा जाते हैं ।। १० ।।

पउड़ी ११

(मनमुख नालों पशू उत्तम है)

दुधु देइ खड़ु खाइ न आपु गणाइआ ।
दुधहु दही जमाइ घिउ निपजाइआ ।
गोहा मूतु लिंबाइ पूज कराइआ ।
छतीह अंम्रितु खाइ कुचील कराइआ ।
साधसंगति चलि जाइ सतिगुरु धिआइआ ।
सफल जनमु जगि आइ सुख फल पाइआ ॥ ११ ॥

पउड़ी १२

(गुरमुख कपाह वाँग कशट सहारदे हन)

दुख सहै कपाहि भाणा भाइआ ।
वेलणि वेल विलाइ तुंबि तुंबाइआ ।

पउड़ी ११

(स्वेच्छाचारी से पशु उत्तम है)

पशु (गाय, भैंस आदि) खड़े होकर घास आदि खाते और दूध देते हैं परन्तु स्वयं को कभी नहीं जताते अर्थात् अहम्-भाव नहीं रखते । दूध से दही जमता है और उससे घी उपलब्ध होता है । उनके गोबर-मूत्र से धरती को लीपकर (हिन्दू) लोग पूजा-अर्चना आदि करते हैं परन्तु (मनुष्य) छत्तीस प्रकार के अमृत-तुल्य भोजन खाकर उन्हें मलीन (गंदगी) बना देता है और वे किसी काम नहीं आते । जिसने " साधुसंगति " में जाकर प्रभु की आराधना की है उसका जन्म सफल है और इस संसार में आने का सुख-फल उसी ने प्राप्त किया है ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(गुरुमुख कपास की तरह कष्ट सहते हैं)

कपास प्रभु-इच्छा को मानकर बड़ा दुख उठाती है । बेलन में उसे बेलकर पुन: खण्ड-खण्ड किया जाता है। उसे धुनकर उसका सूत काता जाता है । तब जुलाहा अपनी नलकी के माध्यम से उसका वस्त्र बुनता है ।

पिंञणि पिंज फिराइ सूतु कताइआ ।
नली जुलाहे वाहि चीरु वुणाइआ ।
खुंब चड़ाइनि बाहि नीरि धुवाइआ ।
पैन्हि साहि पातिसाहि सभा सुहाइआ ॥ १२ ॥

पउड़ी १३

(गुरमुख मजीठ दे कमाद बाँग सेवा तों मूँह नहीं मोड़दे)

जाणु मजीठै रंगु आपु पीहाइआ ।
कदे न छडै संगु बणत बणाइआ ।
कटि कमादु निसंगु आपु पीड़ाइआ ।
करै न मन रस भंगु अमिओ चुआइआ ।
गुड़ु सकर खंड अचंगु भोग भुगाइआ ।
साध न मोड़न अंगु जगु परचाइआ ॥ १३ ॥

पउड़ी १४

(लोहे बाँग आपा भाव गवा के ही अपा देखीदा है)

लोहा आर्हणि पाइ तावणि ताइआ ।
घाण अहरणि हणवाइ दुखु सहाइआ ।

अब उस वस्त्र को धोबी भट्ठी पर चढ़ाता है और बहते पानी में उसे धोता है । उसी वस्त्र को पहनकर साहूकार और सम्राट् तक सभाओं में शोभायमान होते हैं ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(गुरुमुख मजीठ रंग और गन्ने की तरह सेवा में लगे रहते हैं)

जानता-बूझता भी मजीठ का रंग अपने आपको चक्की में पिसवाता है । उसका चरित्र ऐसा है कि वह कभी वस्त्र का साथ नहीं छोड़ता । उसी भाँति गन्ना भी निश्चिंत होकर अपने आपको पेरवाता है और मन के मीठेपन को न नष्ट करते हुए अमृत के समान रस देता है । गुड़, शक्कर, खाँड़ एवं अन्य सबसे श्रेष्ठ भोग लोगों को भोगने के लिए प्रस्तुत करता है । उसी प्रकार साधु व्यक्ति भी संसार-सेवा से मुँह नहीं मोड़ते और सबको सुख देते हैं ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(लोहे की तरह अहम् गँवाकर ही निज स्वरूप को देखा जा सकता है)

लोहे को भट्ठी में डालकर उसे अग्नि से तपाया जाता है ।

आरसीआ घड़वाइ मुलु कराइआ ।
खहुरी साण धराइ अंगु हछाइआ ।
पैराँ हेठि रखाइ सिकल कराइआ ।
गुरमुखि आपु गवाइ आपु दिखाइआ ॥ १४ ॥

पउड़ी १५

(रबाब वाँग दुक्ख सहार के गुरमुख सहिज पद विच समाउंदे हन)

चंगा रुखु वढाइ रबाबु घड़ाइआ ।
छेली होइ कुहाइ मासु वंडाइआ ।
आंद्रहु तार बणाइ चेमि मढ़ाइआ ।
साधसंगति विचि आइ नादु वजाइआ ।
राग रंग उपजाइ सबदु सुणाइआ ।
सतिगुरु पुरखु धिआइ सहजि समाइआ ॥ १५ ॥

फिर वह नेहाई पर रखा जाता है जहाँ वह हथौड़ों की चोटों को सहता है । शीशे की तरह साफ बनाकर उसका मोल किया जाता है । उसे खुरदरी सान पर रगड़कर उसके अंगों को सँवारा जाता है अर्थात् उससे अनेकों वस्तुएँ बनाई जाती हैं । अब उन वस्तुओं को अर्थात् लोहे को (भूसे आदि में दबाकर) पैरों में दबने और साफ होने के लिए छोड़ दिया जाता है । गुरुमुख भी इसी तरह अपने अहम् को गँवाकर अपने निज स्वरूप का साक्षात्कार करते हैं ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(रबाब वाद्य की तरह दुख सहन कर ही गुरुमुख सहज-पद में समाहित होते हैं)

अच्छे वृक्ष ने अपने आपको कटवाकर अपनी लकड़ी से रबाब बनवाई । छोटी सी बकरी ने अपने आपको मरवाकर अपना मांस अलग करवाया । अंतड़ियों के तार बनाकर चमड़े को मढ़ दिया गया । अब ' साधुसंगति ' में आकर इस वाद्य से नाद-वादन किया गया । उसी रबाब के माध्यम से कई राग-रंग उत्पन्न कर शब्द सुनाया गया । कोई भी व्यक्ति जो सद्गुरु (परमपुरुष परमात्मा) की आराधना करता है वही सहज पद में समाता है ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(चंदन वरणन)

चंनणु रुखु उपाइ वणखंडि रखिआ ।
पवणु गवणु करि जाइ अलखु न लखिआ ।
वासू बिरख बुहाइ सचु परखिआ ।
सभे वरन गवाइ भखि अभखिआ ।
साधसंगति भै भाइ अपिउ पी चखिआ ।
गुरमुखि सहजि सुभाइ प्रेम प्रतखिआ ॥ १६ ॥

पउड़ी १७

(गुरसिक्खाँ दी सेवा)

गुरसिखाँ गुरसिख सेव कमावणी ।
चारि पदारथि भिख फकीराँ पावणी ।
लेख अलेख अलिख बाणी गावणी ।
भाइ भगति रस इख अमिउ चुआवणी ।

पउड़ी १६

(चंदन-वर्णन)

प्रभु ने चंदन के वृक्ष को पैदा कर उसे घने जंगल में रखा । पवन उसके पास चलती रहती है पर चंदन के अलक्ष्य स्वभाव को नहीं पहचान पाती । चंदन के सत्य की परख सबके सामने आ जाती है जब वह अपनी सुगंध से सबको सुगंधित कर देता है । जिसने सभी वर्ण-अवर्ण, खाद्य-अखाद्य के भेदों से परे जाकर ' साधुसंगति ' में आकर भय से भाव (प्रेम) का अमृत पिया है उसी गुरुमुख ने सहज रूप में प्रभु-प्रेम का प्रत्यक्ष साक्षात्कार किया है ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(गुरु-सिक्खों की सेवा)

गुरु की शिक्षा के अन्तर्गत ही गुरु के सिक्ख सेवा करते हैं । वे याचकों को चारों पदार्थों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) आदि को दान कर देते हैं । वे लेखों से परे रहनेवाले अलक्ष्य प्रभु की वाणी का गायन करते हैं और प्रेमाभक्ति रूपी ईख का अमृत-रस पान करते हैं तथा (अन्यों को भी करवाते हैं) ।

तुलि न भूत भविख न कीमति पावणी ।
गुरमुखि मारग विख लवै न लावणी ।। १७ ।।

पउड़ी १८

(गुरसिक्खाँ दी सेवा दा फल)

इंद्रपुरी लख राज नीर भरावणी ।
लख सुरग सिरताज गला पीहावणी ।
रिधि सिधि निधि लख साज चुलि झुकावणी ।
साध गरीब निवाज गरीबी आवणी ।
अनहदि सबदि अगाज बाणी गावणी ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(सेवा दा फल)

होम जग लख भोग चणे चबावणी ।
तीरथ पुरब संजोग पैर धुवावणी ।

उनके प्रेम-रस के तुल्य भूत, भविष्य में कुछ भी नहीं है । गुरुमुखों के मार्ग पर एक कदम चलने की भी कोई बराबरी नहीं कर सकता ।। १७ ।।

पउड़ी १८

(गुरु-सिक्खों की सेवा का फल)

सद्संगत के लिए पानी भरना लाखों इन्द्रपुरियों के राज के समान है । अनाज पीसना लाखों स्वर्गों के सुखों से भी ऊपर है । संगत के लंगर के लिए लकड़ियों को चूल्हे में झोंकने का कार्य लाखों ऋद्धियों, सिद्धियों और निधियों के तुल्य है । साधुजन ही गरीबनिवाज हैं और उनकी संगति में ही विनम्रता हृदय में बसती है । (गुरु) वाणी का गायन करना ही अनहद शब्द का मानों प्रकटीकरण है ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(सेवा का फल)

गुरुमुखों को चना-चबेना करवाना लाखों होम, यज्ञों और भोगों के तुल्य है । उनके चरण धोना मानों तीर्थों-पर्वों के फल को प्राप्त करना है ।

गिआन धिआन लख जोग सबद सुणावणी ।
रहै न सहसा सोग झाती पावणी ।
भउजल विचि अरोग न लहरि डरावणी ।
लंघि संजोग विजोग गुरमति आवणी ॥१९॥

पउड़ी २०

(सेवा दा बेअंत फल)

धरती बीउ बीजाइ सहस फलाइआ ।
गुरसिख मुखि पवाइ न लेख लिखाइआ ।
धरती देइ फलाइ जोई फलु पाइआ ।
गुरसिख मुखि समाइ सभ फल लाइआ ।
बीजे बाझु न खाइ न धरति जमाइआ ।
गुरमुखि चिति वसाइ इछि पुजाइआ ॥ २० ॥ १४ ॥ चउदा ॥

शब्द (गायन) सुनाना योग के लाखों ज्ञान-ध्यान के बराबर है । सद्संगति की झलक देख लेने पर भी संशय और शोक विनष्ट हो जाते हैं । अब भवसागर में भी रोग और उसकी भयंकर लहरें डराती नहीं । व्यक्ति सुख और दुख (संयोग और वियोग) से ऊपर उठकर ही वास्तव में गुरुमत में प्रविष्ट होता है ।। १९ ।।

पउड़ी २०

(सेवा का अनन्त फल)

जैसे धरती में बीज बोने पर वह सहस्र गुना होकर फलता है वैसे ही गुरुमुखों के मुँह में डाला अन्न-जल भी अनन्त हो जाता है और उसके फल को गिनना अथवा उसका हिसाब लगाना मुश्किल हो जाता है । धरती वही फल देती है जिसका उसमें बीज बोया जाता है परन्तु गुरुसिक्खों में मुँह में डाला बीज विभिन्न प्रकार के सभी फलों को देता है । बोये बिना न तो कोई कुछ खा सकता है और न ही धरती में कुछ पैदा हो सकता है परन्तु गुरुमुखों की सेवा की इच्छा मात्र ही सब इच्छाओं को पूरा कर देती है ।। २० ।। १४ ।।

* * *

वार १५

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।।

पउड़ी १

(सतिगुर महिमा)

सतिगुरु सचा पातिसाहु कूड़े बादिसाह दुनीआवे ।
सतिगुरु नाथा नाथु है होइ नउँ नाथ अनाथ निथावे ।
सतिगुरु सचु दातारु है होरु दाते फिरदे पाछावे ।
सतिगुरु करता पुरखु है करि करतूति निनावनि नावे ।
सतिगुरु सचा साहु है होरु साह अवेसाह उचावे ।
सतिगुरु सचा वैदु है होरु वैदु सभ कैद कूड़ावे ।
विणु सतिगुरु सभि निगोसावै ।। १ ।।

पउड़ी २

(उहो ही)

सतिगुरु तीरथु जाणीऐ अठसठि तीरथ सरणी आए ।
सतिगुरु देउ अभेउ है होरु देव गुरु सेव तराए ।

पउड़ी १

(सद्गुरु-महिमा)

सद्गुरु (परमात्मा) ही सच्चा सम्राट् है, दुनिया के अन्य बादशाह तो झूठे हैं । सद्गुरु ही नाथों का भी नाथ है अन्य नव नाथ तो आश्रय-विहीन एवं अनाथ हैं । सद्गुरु ही सच्चा दाता है अन्य दानी तो उसके पीछे-पीछे घूमते हैं । सद्गुरु ही कर्त्ता पुरुष है और अनाम लोगों को भी नाम देकर जगत्-प्रसिद्ध कर देता है । सद्गुरु ही सच्चा साहूकार है, अन्य धनिकों पर तो विश्वास नहीं किया जा सकता । सद्गुरु ही सच्चा वैद्य है, अन्य सब (सांसारिक) वैद्य तो स्वयं (जन्म-मरण के) झूठे बन्धन में कैद हैं अर्थात् आवागमन से छुटकारा नहीं पा सके । सद्गुरु के बिना ये सब गुरु-विहीन हैं ।। १ ।।

पउड़ी २

(वही)

सद्गुरु वह तीर्थ जाना जाता है जिसकी शरण में अड़सठ तीर्थ हैं ।

सतिगुरु पारसि परसिऐ लख पारस पा खाकु सुहाए ।
सतिगुरु पूरा पारिजातु पारजात लख सफल धिआए ।
सुख सागरु सतिगुर पुरखु रतन पदारथ सिख सुणाए ।
चिंतामणि सतिगुर चरण चिंतामणी अचिंत कराए ।
विणु सतिगुर सभि दूजै भाए ॥ २ ॥

पउड़ी ३

(मानस देह दी उतपत्ती)

लख चउरासीह जूनि विचि उतमु जूनि सु माणस देही ।
अखी देखै नदरि करि जिहबा बोलै बचन बिदेही ।
कंनी सुणदा सुरति करि वास लए नकि सास सनेही ।
हथी किरति कमावणी पैरी चलणु जोति इवेही ।
गुरमुखि जनमु सकारथा मनमुख मूरति मति किनेही ।
करता पुरखु विसारि कै माणस दी मनिआस धरेही ।
पसू परेतह बुरी हुरेही ॥ ३ ॥

सद्गुरु भेदातीत परमदेव है और अन्य सब देवगण भी उसी की सेवा करके भवसागर से पार होते हैं । सद्गुरु (परमात्मा) वह पारस है जिसके चरणों की धूल लाखों पारस-पत्थरों को शोभायुक्त बनाती है । सद्गुरु ही पूर्ण पारिजात वृक्ष है जिसका ध्यान स्वर्ग के भी लाखों कल्पवृक्ष करते हैं । सद्गुरु तो वह सुख-सागर है जो शिक्षा रूपी अनेक रत्न-पदार्थों को सबमें सुनाता-बाँटता है । सद्गुरु के चरण वह चिंतामणि हैं जो अनेकों चिंतामणियों को भी निश्चित बना देते हैं । सद्गुरु (परमात्मा) के बिना अन्य सब द्वैत-भाव ही है (जो आवागमन में डाले रखता है) ।। २ ।।

पउड़ी ३

(मनुष्य-देह की उत्पत्ति)

चौरासी लाख योनियों में मानव-शरीर उत्तम योनि है । आँखों से वह देखता है और जीभ से उस प्रभु का गुणानुवाद करता है । कान से वह ध्यान लगाकर सुनता है और नाक से स्नहेपूर्वक गंध लेता है । हाथों से वह आजीविका अर्जन करता है और पाँव की शक्ति से चलता है । (इस योनि में भी) गुरुमुख व्यक्ति का जन्म तो सफल है परन्तु मन के पीछे चलनेवाले 'मनमुख' की मति कैसी है? अर्थात् 'मनमुख' बुरी मतिवाला है । वह कर्त्ता पुरुष प्रभु को विस्मृत कर मनुष्यों पर ही आशाएँ बाँधे रहता है । उसका शरीर तो पशु, प्रेतों से भी बदतर है ।। ३ ।।

पउड़ी ४

(बंदे दा बंदा, मनमुख दी दशा)

सतिगुर साहिबु छडिकै मनमुखु होइ बंदे दा बंदा ।
हुकमी बंदा होइकै नित उठि जाइ सलाम करंदा ।
आठ पहर हथ जोड़िकै होइ हजूरी खड़ा रहंदा ।
नीद न भुख न सुख तिसु सूली चढ़िआ रहै डरंदा ।
पाणी पाली धुप छाउ सिर उतै झलि दुख सहंदा ।
आतसबाजी सारु वेखि रण विचि घाइलु होइ मरंदा ।
गुर पूरे विणु जूनि भवंदा ।। ४ ।।

पउड़ी ५

(कंन पाटिआँ दा हाल)

नाथाँ नाथु न सेवनी होइ अनाथु गुरू बहु चेले ।
कंन पड़ाइ बिभूति लाइ खिंथा खपरु डंडा हेले ।

पउड़ी ४

(मनमुख अर्थात् स्वेच्छाचारी की दशा)

मनमुख (स्वेच्छाचारी) सद्‌गुरु स्वामी को छोड़कर मनुष्य का गुलाम बनता है। अब वह मनुष्य का ही हुक्म बजा लानेवाला बनकर नित्य उसे जाकर सलाम करता है । आठों प्रहर हाथ जोड़कर वह उसके समक्ष खड़ा रहता है । उसे नींद, भूख, सुख आदि कुछ भी नहीं भाता और वह डरा हुआ ऐसे रहता है मानों सूली पर चढ़ा हुआ हो । वह वर्षा, सर्दी, धूप, छाँव सिर पर सहता हुआ अनेकों दुख झेलता है। युद्धस्थल में यही व्यक्ति लोहे से निकली चिन्गारियों को आतिशबाजी समझकर घायल होकर मर जाता है । पूर्णगुरु की प्राप्ति के बिना वह योनियों में भटकता रहता है ।। ४ ।।

पउड़ी ५

(कनफटों की दशा)

नाथों के नाथ परमात्मा की तो सेवा करते नहीं कैसे कई नाथ गुरु बनकर अपने चेले बना लेते हैं । वे कान फड़वाकर, भभूत मलकर, गुदड़ी, खप्पर और डंडा धारण किये रहते हैं ।

घरि घरि टुकर मंगदे सिंङी नादु वाजाइनि भेले ।
भुगति पिआला वंडीऐ सिधि साधिक सिवराती मेले ।
बारह पंथ चलाइदे बारह वाटी खरे दुहेले ।
विणु गुर सबद न सिझनी बाजीगर करि बाजी खेले ।
अंन्है अंन्हा खूही ठेले ॥ ५ ॥

पउड़ी ६

(पूरे गुरू बाझ रोणा ही रोणा)

सचु दातारु विसार कै मंगतिआँ नो मंगण जाही ।
ढाढी वाराँ गाँवदे वैर विरोध जोध सालाही ।
नाई गावनि सद्दड़े करि करतूति मुए बदराही ।
पड़दे भट कवित करि कूड़ कुसतु मुखहि आलाही ।
होइ असिरित पुरोहिता प्रीति परीतै विरति मंगाही ।

वे घर-घर जाकर भोजन माँगते हैं और सिंहनाद बजाते रहते हैं । वे शिवरात्रि के मेले पर एकत्र हो फिर भोजन और (शराब का प्याला) सबमें बाँटकर खाते-पीते हैं। वे बारह पंथों में (से किसी एक पर) चलते हैं और इन बारह मार्गों पर ही दुखी होकर घूमते रहते हैं अर्थात् आवागमन के चक्र से नहीं छूटते । गुरु के शब्द (वाणी) के बिना किसी का कल्याण नहीं होता और सब बाजीगरों की तरह कूदते-फाँदते ही रह जाते हैं । इस प्रकार अंधा (गुरु) अंधे (शिष्य) को ठेलता चलता जाता है ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(पूर्वगुरु के बिना रोना ही रोना)

सच्चे दाता प्रभु को भुलाकर लोग भिखारियों के आगे हाथ फैलाते हैं । वीररस के गायक (ढ़ाढ़ी) वीर-रस की रचनाएँ (वारें) गाते हैं और योद्धाओं की शत्रुता और द्वंद्वों का ही गुणानुवाद करते हैं । नाऊ लोग भी उनकी शोभा का बखान करते हैं जो स्वयं बुरे रास्ते पर चलकर बुरी करतूतें करके मर गये हैं । भाट लोग झूठे राजाओं के लिए काव्य पढ़ते हैं और मुँह से झूठ ही झूठ बोले चले जाते हैं, पुरोहित लोग भी पहले तो आश्रित बनते हैं । परन्तु बाद में रोजी-रोटी का अपना अधिकार जताने लगते हैं अर्थात् लोगों को कर्मकांड के भय में फँसा लेते हैं ।

छुरीआ मारनि पंखीए हटि हटि मंगदे भिख भवाही ।
गुर पूरे विणु रोवनि धाही ॥ ६ ॥

पउड़ी ७

(झूठे साक)

करता पुरखु न चेतिओ कीते नो करता करि जाणै ।
नारि भतारि पिआरु करि पुतु पोता पिउ दादु वखाणै ।
धीआ भैणा माणु करि तुसनि रुसनि साक बबाणै ।
साहुर पीहरु नानके परवारै साधारु धिङाणै ।
चज अचार वीचार विचि पंचा अंदरि पति परवाणै ।
अंतकाल जमजाल विचि साथी कोइ न होइ सिञाणै ।
गुर पूरे विणु जाइ जमाणै ॥ ७ ॥

पउड़ी ८

(झूठे वपारी)

सतिगुरु साहु अथाहु छडि कूड़े साहु कूड़े वणजारे ।
सउदागर सउदागरी घोड़े वणज करनि अति भारे ।

पंखों को (सिर पर) लगानेवाले संप्रदाय के व्यक्ति शरीर में छुरियाँ भोंकते हुए दुकान-दुकान पर भीख माँगते घूमते हैं । परन्तु पूर्णगुरु की प्राप्ति के बिना ये सब चीख चीखकर रोते ही हैं ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(झूठे संबंधी)

हे मनुष्य, तूने कर्त्ता पुरुष का स्मरण नहीं किया और किये कार्य (जीव) को ही कर्त्ता मान लिया है । तूने स्त्री, पति से स्नेह करके आगे पुत्र, पौत्र, पिता, दादा आदि संबंध बना लिये हैं । बेटियाँ, बहनें गर्व-पूर्वक प्रसन्न होती और रूठती हैं तथा अन्य संबंधियों का भी यही हाल है । ससुराल, मायका, ननिहाल तथा परिवार के अन्य संबंध सब ऐसे ही धिक्कार योग्य हैं। यदि आचरण और विचार शालीन हों तो समाज में पंचों के सामने सम्मान होता है परन्तु अन्तकाल में यम-जाल में फँसने पर कोई भी साथी-संगी पहचानता नहीं । पूर्णगुरु की कृपा से विहीन सभी व्यक्ति भय के वश में ही पड़ते हैं ।। ७ ।।

पउड़ी ८

(झूठे व्यापारी)

अनन्त सद्गुरु (परमात्मा) को छोड़कर अन्य सभी साहूकार और व्यापारी झूठे ही हैं । सौदागर लोग व्यापार करते समय घोड़ों का भारी व्यापार करते हैं ।

रतना परख जवाहरी हीरे माणक वणज पसारे ।
होइ सराफ बजाज बहु सुइना रुपा कपड़ु भारे ।
किरसाणी किरसाण करि बीज लुणनि बोहल विसथारे ।
लाहा तोटा वरु सरापु करि संजोगु विजोगु विचारे ।
गुर पूरे विणु दुखु सैसारे ॥ ८ ॥

पउड़ी ९

(गुर पूरे बिनाँ झूठे वैद)

सतिगुरु वैदु न सेविओ रोगी वैदु न रोगु मिटावै ।
काम क्रोधु विचि लोभु मोहु दुबिधा करि करि ध्रोहु वधावै ।
आधि बिआधि उपाधि विचि मरि मरि जंमै दुखि विहावै ।
आवै जाइ भवाईऐ भवजल अंदरि पारु न पावै ।
आसा मनसा मोहणी तामसु तिसना सांति न आवै ।

जौहरी लोग रत्नों की परख करते हैं और हीरे, माणिकों के अपने व्यापार का प्रसार करते हैं । सर्राफ लोग सोने और रुपयों का तथा बजाज लोग कपड़ों का व्यापार करते हैं । किसान खेती करते हैं और बीज बो-काटकर उसका विस्तृत ढेर लगा देते हैं । इस सबमें कभी लाभ, कभी हानि, कभी वरदान, कभी शाप, कभी संयोग और कभी वियोग आदि बना ही रहता है । पूर्णगुरु के बिना संसार में दुख ही दुख है ।। ८ ।।

पउड़ी ९

(पूर्णगुरु के बिना सभी वैद्य झूठे हैं)

सद्गुरु (परमात्मा) रूपी सच्चे वैद्य की सेवा कभी की नहीं तो भला जो वैद्य स्वयं रोगी है, वह रोग कैसे मिटा सकता है । ये सांसारिक वैद्य जो स्वयं काम, क्रोध, लोभ, मोह, दुबिधा में फँसे हैं वे लोगों के साथ दगा कर-करके उनमें भी यही व्याधियाँ बढ़ाते रहते हैं । इस प्रकार व्यक्ति आधि-व्याधियों में फँसा हुआ मरता-जन्मता रहता है और दुख में पड़ा रहता है । वह आवागमन में भटकता रहता है और भवसागर को पार नहीं कर पाता । आशाएँ , तृष्णाएँ उसके मन को मोहित किये रहती हैं और तमस् वृत्ति में विचरण करते हुए उसे कभी शान्ति प्राप्त नहीं होती ।

बलदी अंदरि तेलु पाइ किउ मनु मूरखु अगि बुझावै ।
गुरु पूरे विणु कउणु छुडावै ।। ९ ।।

पउड़ी १०

(झूठे तीरथ)

सतिगुरु तीरथु छडिकै अठिसठि तीरथ नावण जाही ।
बगुल समाधि लगाइकै जिउ जल जंताँ घुटि घुटि खाही ।
हसती नीरि नवालीअनि बाहरि निकलि खेह उडाही ।
नदी न डुबै तूँबड़ी तीरथु विसु निवारै नाही ।
पथरु नीर पखालीऐ चिति कठोरु न भिजै गाही ।
मनमुख भरम न उतरै भंभलभूसे खाइ भवाही ।
गुरु पूरे विणु पार न पाही ।। १० ।।

पउड़ी ११

(सतिगुरू पारस)

सतिगुर पारसु परहरै पथरु पारसु ढूँढण जाए ।
असटधातु इक धातु करि लुकदा फिरै न प्रगटी आए ।

जलती हुई अग्नि में तेल डालकर भला कोई मनसुख (स्वेच्छाचारी) भला कैसे अग्नि को बुझा सकता है? पूर्णगुरु के बिना व्यक्ति को इन बंधनों से कौन छुड़ा सकता है।। ९ ।।

पउड़ी १०

(झूठे तीर्थ)

लोग सद्गुरु (परमात्मा) रूपी तीर्थ को छोड़कर अड़सठ तीर्थों पर नहाने जाते हैं। वे सब बगुले की तरह समाधि में आँखें तो बंद किए रहते हैं, पर जीवों को पकड़-पकड़कर दबाकर खाते रहते हैं । हाथी को बेशक पानी में नहलाया जाय पर बाहर निकलने पर वह फिर धूल ही उड़ाता है । तुम्बी नदी में डूबती नहीं और तीर्थो पर स्नान कराने पर भी उसका विष उतरता नहीं । पत्थर को पानी में डाला और धोया जाय तब भी उसका चित्त कठोर ही बना रहता है और अन्दर से भीगता नहीं। स्वेच्छाचारी के भ्रम-संशय कभी समाप्त नहीं होते और वह धोखे-भुलावे में ही भ्रमण करता रहता है । पूर्णगुरु के बिना पार नहीं जा सकता ।। १० ।।

पउड़ी ११

(सद्गुरु पारस)

सद्गुरु रूपी पारस को छोड़कर लोग पारस पत्थर को खोजने जाते हैं ।

लै वणवासु उदासु होइ माइआधारी भरमि भुलाए ।
हथी कालख छुथिआ अंदरि कालख लोभ लुभाए ।
राज डंडु तिसु पकड़िआ जमपुरि भी जमडंडु सहाए ।
मनमुख जनमु अकारथा दूजै भाइ कुदाइ हराए ।
गुर पूरे विणु भरमु न जाए ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(गुरू कलप ब्रिछ)

पारिजातु गुरु छडि कै मंगनि कलप तरों फल कचे ।
पारजातु लख सुरगु सणु आवागवणु भवण विचि पचे ।
मरदे करि करि कामना दिति भुगति विचि रचि विरचे ।
तारे होइ अगास चड़ि ओड़कि तुटि तुटि थान हलचे ।

अष्टधातु अर्थात् सारे संसार को एक शुद्ध धातु सोने में परिणत कर देनेवाला सद्गुरु तो छिपता फिरता है, वह प्रकट नहीं होता । माया की ओर उन्मुख व्यक्ति वनों में उसे ढूँढ़ता-फिरता उदास हो जाता है पर फिर भी भ्रमों में ही भूला रहता है। माया के स्पर्श से बाहर भी कालिमा लग जाती है और अन्तर्मन में भी लोभ की स्याही पुत जाती है । सांसारिक माया को एकत्र कर पकड़े रहने पर अर्थात् धन का लोभ करने से यहाँ राजदंड और यमलोक में भी यमदंड सहना पड़ता है । स्वेच्छाचारी का जन्म निष्फल है; वह दुबिधाभाव में ग्रस्त हो गलत दाँव लगाकर (जीवन की) बाजी हार जाता है । पूर्णगुरु के बिना भ्रम दूर नहीं होता ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(गुरु कल्पवृक्ष)

गुरु रूपी पारिजात को छोड़कर लोग पारंपरिक कल्पवृक्ष से कच्चे फल माँगते हैं । लाखों कल्पवृक्ष स्वर्ग-सहित आवागमन के चक्र में पड़कर नष्ट हो रहे हैं । लोग कामनाओं के अधीन हो मर-खप रहे हैं और ज़ो प्रभु ने दिया है उसी के भोगों में लीन हैं । (अच्छे कर्मोवाले भी) आकाश में ताराओं के रूप मे स्वर्ग-स्थित होते हैं और पुण्यों के खत्म होने पर पुन: ताराओं की तरह टूटकर हल्के होकर गिर पड़ते हैं ।

माँ पिउ होए केतड़े केतड़िआँ दे होए बचे ।
पाप पुंनु बीउ बीजदे दुख सुख फल अंदरि चहमचे ।
गुर पूरे विणु हरि न परचे ॥ १२ ॥

पउड़ी १३

(पूरे सतिगुरू बिनाँ मंदे हाल)

सुखु सागरु गुरू छडिकै भवजल अंदरि भंभलभूसे ।
लहरी नालि पछाड़ीअनि हउमै अगनी अंदरि लूसे ।
जमदरि बधे मारीअनि जमदूताँ दे धके धूसे ।
गोइलि वासा चारि दिन नाउ धराइनि ईसे मूसे ।
घटि न कोइ अखाइदा आपो धापी हैरत हूसे ।
साइर दे मरजीवड़े करनि मजूरी खेचल खूसे ।
गुरु पूरे विणु डाँग डंगूसे ॥ १३ ॥

फिर आवागमन में आकर अनेकों ही माँ-बाप बन गये और अनेकों के अनेकों ही बच्चे भी हो गये वे पुन: पाप-पुण्य बोते हैं और फलस्वरूप दु:खों-सुखों में अनुरक्त रहते हैं । पूर्णगुरु के बिना परमात्मा भी खुश नहीं होता ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(पूर्णसद्गुरु के बिना बुरा हाल)

सुखों के सागर गुरु के बिना भवसागर के छल-प्रपंच में ही डूबे रहना पड़ता है । भवसागर की लहरों की मार तो खानी ही पड़ती है, अहम्-भाव की अग्नि से अन्तर्मन भी जलता रहता है । यम के द्वार पर बाँधकर मारा जाता है और यमदूतों के धक्के खाने पड़ते हैं । वैसे बेशक किसी ने अपना नाम ईसा अथवा मूसा रखा हो पर यहाँ संसार में तो सभी केवल चार दिनों के निवासी हैं । यहाँ कोई भी अपने आपको कम नहीं मानता और सभी आपा-धापी में लीन किंकर्त्तव्यविमूढ़ हैं । जो गुरु रूपी (सुख के) सागर में गोताखोर हैं वे ही (आध्यात्मिक साधना की) मेहनत में खुश रहते हैं । पूर्णगुरु के बिना तो सभी की भिड़न्त होती रहती है ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(भोगाँ नाल अग्ग वधदी है)

चिंतामणि गुरु छडिकै चिंतामणि चिंता न गवाए ।
चितवणीआ लख राति दिहु त्रास न त्रिसना अगनि बुझाए ।
सुइना रुपा अगला माणक मोती अंगि हंढाए ।
पाट पटंबर पैन्ह के चोआ चंदन महि महकाए ।
हाथी घोड़े पाखरे महल बगीचे सुफल फलाए ।
सुंदरि नारी सेज सुखु माइआ मोहि धोहि लपटाए ।
बलदी अंदरि तेलु जिउ आसा मनसा दुखि विहाए ।
गुर पूरे विणु जमपुरि जाए ॥ १४ ॥

पउड़ी १५

(कुदरत दा वरणन)

लख तीरथ लख देवते पारस लख रसाइणु जाणै ।
लख चिंतामणि पारजात कामधेनु लख अंम्रित आणै ।

पउड़ी १४

(भोगों से अग्नि बढ़ती है)

गुरु रूपी चिंतामणि अगर प्राप्त नहीं हुई तो पारंपरिक चिंतामणि चिंताओं को दूर नहीं कर सकती । इसके कारण तो रात-दिन अनेकों आशाएँ-निराशाएँ त्रस्त करेंगी और तृष्णा रूपी अग्नि का कभी शमन नहीं होगा । व्यक्ति सोने, रुपये, माणिक, मोतियों को धारण करता है; सुन्दर रेशमी वस्त्र पहनकर चंदनादि की सुगंध बिखेरता है । उसके पास हाथी, सुन्दर जीनोंवाले घोड़े,महल, बगीचे होते हैं जो फलों से लदे होते हैं । सुन्दर स्त्री के साथ सुन्दर शय्या का आनन्द लेता व्यक्ति अनेक मोह एवं ठगियों में लिप्त रहता है । ये सब जलती आग में तेल डालने के समान हैं और व्यक्ति आशा-तृष्णा के दुखों में ही बीत जाता है । पूर्णगुरु के बिना तो उसे यमपुर ही जाना पड़ता है ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(कुद्रत अर्थात् सृष्टि का वर्णन)

तीर्थ लाखों हैं एवं लाखों ही देवगण, पारस और रसायन हैं । चिंतामणियाँ, कल्पवृक्ष, कामधेनु और अमृत भी लाखों की संख्या में हैं ।

रतना सणु साइर घणे रिधि सिधि निधि सोभा सुलताणै ।
लख पदारथ लख फल लख निधानु अंदरि फुरमाणै ।
लख साह पातिसाह लख लख नाथ अवतारु सुहाणै ।
दानै कीमति ना पवै दातै कउणु सुमारु वखाणै ।
कुदरति कादर नो कुरबाणै ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(गुरू चेला, चेला गुरू)

रतना देखै सभु को रतन पारखू विरला कोई ।
राग नाद सभ को सुणै सबद सुरति समझै विरलोई ।
गुरसिख तरन पदारथा साधसंगति मिलि माल परोई ।
हीरै हीरा बेधिआ सबद सुरति मिलि परचा होई ।
पारब्रहमु पूरन ब्रहमु गुरु गोविंदु सिञाणै सोई ।
गुरमुखि सुखफलु सहजि घरु पिरम पिआला जाणु जणोई ।
गुरु चेला चेला गुरु होई ।। १६ ।।

रत्नों से युक्त सागर भी अनेक हैं और ऋद्धियाँ, सिद्धियाँ, खजाने और शोभायुक्त सुलतान भी अनेक हैं । पदार्थ, फल और आज्ञानुसार उपस्थित होनेवाले भंडार भी लाखों हैं । साहूकार, सम्राट् , नाथ और शोभायुक्त अवतार भी लाखों हैं । दिये हुए दानों का सही मूल्यांकन नहीं हो सकता, फिर भला उस दाता की सीमा का वर्णन कौन कर सकता है ? यह सारी सृष्टि उस कर्ता पर कुर्बान है ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(गुरु चेला, चेला गुरु)

रत्नों को देखते तो सभी हैं पर जौहरी कोई बिरला ही होता है जो रत्नों की परख करनेवाला होता है । राग-नाद तो सभी सुनते हैं पर शब्द-सुरति के रहस्य को कोई-कोई ही समझता है । गुरु के सिक्ख ऐसे रत्न-पदार्थ हैं जो साधुसंगति की माला में पिरोए रहते हैं । गुरु-शब्द रूपी हीरे के साथ जिसका मन रूपी हीरा बिंधा हो उसी की सुरति शब्द में लीन होती है । परब्रह्म ही पूर्णब्रह्म है और गुरु ही गोविंद अर्थात् परमात्मा है, इस तथ्य की पहचान ऐसे गुरुमुख को ही होती है । गुरुमुख व्यक्ति की सहज ज्ञान के घर में प्रविष्ट हो सुखफल प्राप्त करते हैं और प्रेम-रस के प्याले की मस्ती को स्वयं भी जानते हैं और अन्यों को भी जनवाते हैं । तब चेला और गुरु एकरूप हो जाते हैं ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(अंगाँ दी सफलता)

माणस जनमु अमोलु है होइ अमोलु साधसंगु पाए ।
अखी दुइ निरमोलका सतिगुरु दरस धिआन लिव लाए ।
मसतकु सीसु अमोलु है चरण सरणि गुरु धूड़ि सुहाए ।
जिहबा स्रवण अमोलका सबद सुरति सुणि समझि सुणाए ।
हसत चरण निरमोलका गुरमुख मारगि सेव कमाए ।
गुरमुखि रिदा अमोलु है अंदरि गुरु उपदेसु वसाए ।
पति परवाणै तोलि तुलाए ।। १७ ।।

पउड़ी १८

(रब्ब दीआँ दाताँ ते साडी भुल्ल)

रकतु बिंदु करि निमिआ चित्र चलित्र बचित्र बणाइआ ।
गरभ कुंड विचि रखिआ जीउ पाइ तनु साजि सुहाइआ ।

पउड़ी १७

(अंगों की सार्थकता)

मानव-जन्म अमूल्य है और पैदा होकर ही मानव साधुसंगति प्राप्त करता है। दोनों आँखें भी अमूल्य हैं जो सद्‌गुरु का दर्शन करती हैं और ध्यान लगाते हुए उसमें लीन रहती हैं । मस्तक और सिर भी अमूल्य है जो (प्रभु-) चरणों की शरण में रहकर गुरु की धूल को शोभापूर्वक धारण करता है। जीभ और कान भी अमूल्य हैं जो शब्द को ध्यानपूर्वक सुन-समझकर पुनः समझाते-सुनाते हैं । हाथ-पाँव भी अमूल्य हैं जो गुरुमुख होने के मार्ग पर चलकर सेवा करते हैं । गुरुमुख का हृदय भी अमूल्य है जिसमें गुरु-उपदेश बसता है । ऐसे गुरुमुखों के तुल्य जो हो जाए उसकी प्रभु-दरबार में भी इज्जत होती है ।। १७ ।।

पउड़ी १८

(प्रभु की देन और हमारी भूलें)

प्रभु ने माँ के रक्त और पिता के वीर्य से निमज्जित कर मनुष्य-देह बनाई और एक विचित्र कार्य किया है । उसे मानव-देही को गर्भकुंड में रखा । फिर उसमें प्राण फूँके और उसके शरीर की शोभा बढ़ाई ।

मुहु अखी दे नकु कंन हथ पैर दंद वाल गणाइआ ।
दिसटि सबद गति सुरति लिवै रागरंग रस परसलु भाइआ ।
उतमु कुलु उतमु जनमु रोम रोम गणि अंग सबाइआ ।
बाल बुधि मुहि दुधि दे करि मल मूत्र सूत्र विचि आइआ ।
होइ सिआणा समझिआ करता छडि कीते लपटाइआ ।
गुर पूरे विणु मोहिआ माइआ ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(गुरू बाझ गरभ वास)

मनमुख माणस देह ते पसू परेत अचेत चंगेरे ।
होइ सुचेत अचेत होइ माणसु माणस दे वलि हेरे ।
पसू न मंगै पसू ते पंखेरू पंखेरू घेरे ।
चउरासीह लख जूनि विचि उतम माणस जूनि भलेरे ।
उतम मन बच करम करि जनमु मरण भवजलु लख फेरे ।
राजा परजा होइ कै सुख विचि दुखु होइ भले भलेरे ।

उसे मुँह, आँख, नाक, कान, हाथ, पाँव, दाँत, बाल आदि प्रदान किये । उसे दृष्टि प्रदान की, शब्द, श्रवण-शक्ति और शब्द में लीन रहने की सुरति प्रदान की है । कान, आँखों, जीभ, त्वचा आदि के लिए रूप, रस, गंध आदि (तन्मात्रा) बनाई । प्रभु ने उत्तम कुल (मानव-कुल) में उत्तम जन्म देकर रोम-रोम एवं अंग-प्रत्यंग को निर्धारित रूप दिया । बचपन में माँ बच्चे को दूध मुँह में देती है और मल-मूत्र का विसर्जन करवाती है । जब वह बड़ा होकर बुद्धिमान हो जाता है तो उस कर्त्ता (पुरुष) को छोड़कर उसके किये कार्यों में ही मनुष्य अनुरक्त हो जाता है । पूर्णगुरु के बिना मानव माया-जाल में ही फँसा रहता है ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(गुरु के बिना गर्भवास)

मनमुख (स्वेच्छाचारी) व्यक्ति से तो पशु, प्रेत आदि, जिन्हें बुद्धिहीन समझा जाता है, अच्छे हैं । मनुष्य सयाना होकर भी मूर्ख बन जाता है और मनुष्यों की ओर ही टकटकी लगाए रहता है । पशु तो पशु से और पक्षी पक्षी से कभी कुछ नहीं माँगता । चौरासी लाख योनियों में मनुष्य-योनि ही सबसे भली है । मन, बचन एवं कर्म से उत्तम होता हुआ भी मनुष्य जन्म-मरण के भव-सागर में लाखों फेरियाँ लगाता रहता है ।

पउड़ी २१

(माइआ विच उदास)

गुरमुखि सुख फलु साधसंगु माइआ अंदरि करनि उदासी ।
जिउ जल अंदरि कवलु है सूरज ध्यानु अगासु निवासी ।
चंदनु सपीं वेड़िआ सीतलु सांति सुगंधि विगासी ।
साधसंगति संसार विचि सबद सुरति लिव सहजि बिलासी ।
जोग जुगति भोग भुगति जिणि जीवन मुकति अछल अबिनासी ।
पारब्रहम पूरन ब्रहमु गुर परमेसरु आस निरासी ।
अकथ कथा अबिगति परगासी ।। २१ ।। १५ ।। पंद्राँ ।।

पउड़ी २१

(माया में उदासीन)

गुरुमुखों को सुख-फल " साधुसंगति " में प्राप्त होता है । वे माया में रहते हुए भी उदासीन बने रहते हैं । जैसे कमल रहता तो जल में है पर उसका ध्यान सदैव सूर्य की ओर लगा रहता है वैसे ही गुरुमुख भी सदैव प्रभु का ध्यान लगाये रहते हैं। चंदन सर्पों से लिपटा रहता है पर फिर भी शीतल और शक्तिदायक सुगंधि को फैलाता ही रहता है । गुरुमुख संसार में रहकर भी साधुसंगति के माध्यम से सुरति को शब्द में लगाकर सहज अवस्था में विचरण करते रहते हैं । योग की युक्ति से लोगों को जीतकर वे जीवन्मुक्त, अछल एवं अविनाशी बनकर रहते हैं । जिस प्रकार परब्रह्म पूर्णब्रह्म है, उसी प्रकार आशाओं में भी उदासीन बना रहनेवाला गुरु भी परमेश्वर-स्वरूप ही है । (गुरु के माध्यम से ही) उस प्रभु की अकथनीय कथा और अव्यक्त प्रकाश उद्घाटित होता है ।। २१ ।। १५ ।।

* * *

कुता राज बहालीऐ चकी चटण जाइ अन्हेरे ।
गुर पूरे विणु गरभ वसेरे ॥ १९ ॥

पउड़ी २०

(गुरमुख बाझ रस नहीं)

वणि वणि वासु वणासपति चंदनु बाझु न चंदनु होई ।
परबति परबति असटधातु पारस बाझु न कंचनु सोई ।
चारि वरणि छिअ दरसना साधसंगति विणु साधु न कोई ।
गुर उपदेसु अवेसु करि गुरमुखि साधसंगति जाणोई ।
सबद सुरति लिव लीणु होइ पिरम पिआला अपिउ पिओई ।
मनि उनमनि तनि दुबले देह बिदेह सनेह सथोई ।
गुरमुखि सुख फलु अलख लखोई ॥ २० ॥

राजा हो अथवा प्रजा, भले-भले व्यक्तियों को सुख में भी दुख (का भय) बना रहता है । कुत्ते को बेशक राजसिंहासन पर बैठा दो पर वह अँधेरा होते ही अपने मूल स्वभाव के अनुसार चक्की चाटने को निकल पड़ता है । पूर्णगुरु के बिना आवागमन रूपी गर्भ में निवास बना ही रहता है ।। १९ ।।

पउड़ी २०

(गुरुमुख के बिना रस नहीं)

वनस्पति तो बन-बन में भरी पड़ी है, पर चंदन के बिना उसमें चंदन की गंध नहीं आती । पर्वत-पर्वत पर अष्टधातु हैं पर पारस के बिना वे सोना नहीं बनतीं । चारों वर्णों और छः दर्शनों के ज्ञाताओं में भी साधुसंगति के बिना कोई (सच्चा) साधु नहीं बन पाता । गुरु के उपदेश से आवेष्टित होकर गुरुमुख व्यक्ति साधुसंगति के महत्व को समझते हैं । तब वे सुरति को शब्द में लीन कर प्रेमाभक्ति का अमृत-प्याला पीते हैं। मन उन्मनि अवस्था अर्थात् तुरीय अवस्था में पहुँच जाता है और देह के मुकाबले विदेह अर्थात् सूक्ष्म बन प्रभु-प्रेम में स्थिर हो जाता है । गुरुमुख अलक्ष्य प्रभु को लखकर सुखफल को प्राप्त कर लेते हैं ।। २० ।।

वार १६

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।।

पउड़ी १

(जेहा बीउ तेहा फलु पाई)

सभ दूँ नीवीं धरति होइ दरगह अंदरि मिली वडाई ।
कोई गोडै वाहि हलु को मल मूत्र कुसूत्र कराई ।
लिंबि रसोई को करै चोआ चंदनु पूजि चड़ाई ।
जेहा बीजै सो लुणै जेहा बीउ तेहा फलु पाई ।
गुरमुखि सुख फल सहज घरु आपु गवाइ न आपु गणाई ।
जाग्रत सुपन सुखोपती उनमनि मगर रहै लिव लाई ।
साधसंगति गुर सबदु कमाई ।। १ ।।

पउड़ी १

(जैसा बोओ, वैसा फल पाओ)

धरती सबसे विनम्र है, इसीलिए प्रभु-दरबार में इसका सम्मान है (और इसके उद्धार के लिए भगवान ने समय-समय पर अनेकों प्रबंध किये हैं) । कोई इसकी गुड़ाई करता है, कोई जोतता है और कोई इस पर मल-मूल विसर्जित कर इसे अपवित्र करता है । कोई इसे लीपकर इस पर रसोई बनाता है और कोई इस पर अगरबत्ती, चंदन आदि चढ़ाकर इसकी पूजा करता है । जो जैसा बोता है वैसा काटता है और बोये हुए के अनुसार ही फल पाता है । गुरुमुखों को सहज भाव में स्थित होकर ही सुख-फल प्राप्त होता है । वे अहम्-भाव गँवाकर कभी भी अपने आपको कहीं नहीं गिनवाते । वे जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति एवं उन्मनि अर्थात् तुरीय अवस्था में भी प्रभु-प्रेम में मग्नतापूर्वक लीन रहते हैं । साधुसंगति में ही गुरु-शब्द की साधना होती है ।। १ ।।

पउड़ी २

(जल तों उपदेश)

धरती अंदरि जलु वसै जलु बहु रंगीं रसीं मिलंदा ।
जिउँ जिउँ कोइ चलाइदा नीवाँ होइ नीवाणि चलंदा ।
धुपै तता होइ कै छावैं ठंढा होइ रहंदा ।
नावणु जीवदिआँ मुइआँ पीतै सांति संतोखु होवंदा ।
निरमलु करदा मैलिआँ नीवै सरवर जाइ टिकंदा ।
गुरमुखि सुख फलु भाउ भउ सहजु बैरागु सदा विगसंदा ।
पूरणु परउपकारु करंदा ॥ २ ॥

पउड़ी ३

(कमल वाँग अलेप)

जल विचि कवलु अलिपतु है संग दोख निरदोख रहंदा ।
राती भवरु लुभाइदा सीतलु होइ सुगंधि मिलंदा ।

पउड़ी २

(जल से उपदेश)

जल धरती के अंदर बसता है और सब रंगों, रसों में मिल जाता है । जैसे-जैसे कोई चलाता है वह और नीचे की ओर होकर नीचे की तरफ ही बहता चला जाता है । धूप में गर्म और छाया में ठंडा होकर रहता है । नहाते, जीते, मरते, पीते हुए उससे सदैव शान्ति एवं संतुष्टि मिलती है । मलिनों को निर्मल कर देता है और निचले सरोवर में जा टिकता है । इसी प्रकार गुरुमुख व्यक्ति प्रभु के प्रेम और भय में तथा सहज वैराग्य में रहता हुआ सदैव खिला रहता है । पूर्णपुरुष ही परोपकार करता है ।। २ ।।

पउड़ी ३

(कमल की तरह निर्लिप्त)

जल में रहता कमल निर्लिप्त एवं संगदोष से मुक्त रहता है । रात में वह भँवरे को लुभाता है जो शीतलता और सुगंध को कमल में प्राप्त होता है । प्रात: पुन: सूर्य को मिलता है और प्रफुल्लित होकर हँसता रहता है । गुरुमुख (रूपी कमल) सुख-फल के सहज-घर में निवास करते

भलके सूरज धिआनु धरि परफुलतु होइ मिलै हसंदा ।
गुरमुखु सुख फल सहजि घरि वरतमान अंदरि वरतंदा ।
लोकाचारी लोक विचि वेद वीचारी करम करंदा ।
सावधानु गुरगिआन विचि जीवनि मुकति जुगति विचरंदा ।
साधसंगति गुरु सबदु वसंदा ।। ३ ।।

पउड़ी ४

(ब्रिछ वाँग समदरसी)

धरती अंदरि बिरखु होइ पहिलों दे जड़ पैर टिकाई ।
उपरि झूलै झटुला ठंढी छाउँ सु थाउँ सुहाई ।
पवणु पाणी पाला सहै सिरि तलवाइआ निहचलु जाई ।
फलु दे वर वगाइआँ सिरि कलवतु लै लोहु तराई ।
गुरमुखि जनमु सकारथा परउपकारी सहजि सुभाई ।
मित्र न सत्रु न मोहु ध्रोहु समदरसी गुर सबदि समाई ।
साधसंगति गुरमति वडिआई ।। ४ ।।

हैं और वर्तमान का पूर्ण उपयोग करते हैं अर्थात् हाथ पर हाथ धरे बैठे नहीं रहते । सामान्य लोकाचार वाले व्यक्तियों के लिए वे भी लोक में लिप्त तथा वेद-विचार करनेवालों को वे कर्मकांड में लिप्त नजर आते हैं परन्तु वे (गुरुमुख) गुरु के ज्ञान के फलस्वरूप चैतन्य को प्राप्त किए रहते हैं और जगत् में जीवन-मुक्त होकर विचरण करते हैं । साधुसंगति में ही गुरु-शब्द का निवास होता है ।। ३ ।।

पउड़ी ४

(वृक्ष की तरह समदर्शी)

वृक्ष धरती में उगता है और पहले अपनी जड़ें अर्थात् पैर धरती में जमाता है। लोग उस पर झूला झूलते हैं और उसकी ठंडी छाया स्थानों की शोभा बढ़ाती है । वह हवा, पानी और ठंडक का प्रभाव सहता है, पर फिर भी सिर उलटा करके अपने स्थान पर अचल रूप में खड़ा रहता है । पत्थर मारने से फल देता है और सिर पर लोहे का आरा फिरवाकर भी (नाव में लगे) लोहे को पार पहुँचाता है । गुरुमुखों का जन्म भी सफल है, क्योंकि वे सहज स्वभाव से ही परोपकारी होते हैं । उनका कोई भी मित्र-शत्रु नहीं होता । वे मोह-प्रपंच से दूर समदर्शी होते हैं और गुरु-शब्द में लीन रहते हैं । यह बड़प्पन उन्हें साधुसंगति और गुरुमत से ही प्राप्त होता है ।। ४ ।।

पउड़ी ५

(सतिगुरू मलाह रूप हन)

सागर अंदरि बोहिथा विचि मुहाणा परउपकारी ।
भार अथरबण लदीऐ लै वापारु चढ़नि वापारी ।
साइर लहर व विआपई अति असगाह अथाह अपारी ।
बहले पूर लंघाइदा सही सलामति पारि उतारी ।
दूणे चउणे दंम होन लाहा लै लै काज सवारी ।
गुरमुख सुख फलु साध संगि भवजल अंदर दुतरु तारी ।
जीवन मुकति जुगति निरंकारी ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(बावन चंदन तों गुरमुख)

बावन चंदनं बिरखु होइ वणखंड अंदरि वसै उजाड़ी ।
पासि निवासु वणासपति निहचलु लाइ उरध तप ताड़ी ।

पउड़ी ५

(सद्गुरु मल्लाह-रूप है)

समुद्र में जहाज है और उसमें परोपकारी मल्लाह है । जहाज में बहुत सा भार लादा जाता है और व्यापारी लोग उसमें सवार होते हैं । व्यापारियों को अथाह समुद्र की लहरें कुछ भी नहीं कहतीं । वह मल्लाह अनेकों यात्रियों को बचाता हुआ सही-सलामत पार उतार देता है । वे व्यापारी दुगुना-चौगुना कमाते हैं और लाभ उठाते हैं । गुरुमुख रूपी मल्लाह ' साधुसंगति ' रूपी जहाज में बिठाकर लोगों को दुष्कर संसार-सागर में से पार करवा देते हैं । किसी जीवन-मुक्त को ही निराकार प्रभु की युक्ति का रहस्य समझ में आता है ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(बावन चंदन से गुरुमुख)

बावन चंदन का पौधा वृक्ष बनकर बनों की उजाड़ में रहता है । वनस्पति के पास रहता हुआ वह सिर नीचे पाँव (तना, शाखा) ऊपर कर ध्यान में मग्न रहता है। चलती हवा के साथ संबंधित होकर वह श्रेष्ठ सुगंध प्रकट करता है।

पवन गवन सनबंधु करि गंध सुगंध उलास उघाड़ी ।
अफल सफल समदरस होइ करे वणसपति चंदन वाड़ी ।
गुरमुखि सुख फलु साध संगु पतित पुनीत करै देहाड़ी ।
अउगुण कीते गुण करै कच पकाई उपरि वाड़ी ।
नीरु न डोबै अगि न साड़ी ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(सूरज वाँग परउपकारी गुरमुख)

राति अन्हेरी अंधकारु लख करोड़ी चमकन तारे ।
घर घर दीवे बालीअनि पर घर तकनि चोर चगारे ।
हट पटण घरबारीआ दे दे ताक सवनि नर नारे ।
सूरज जोति उदोतु करि तारे तारि अन्हेर निवारे ।
बंधन मुकति कराइदा नामु दानु इसनानु विचारे ।
गुरमुखि सुख फलु साधसंगु पसू परेत पतित निसतारे ।
परउपकारी गुरू पिआरे ।। ७ ।।

फल-विहीन हो अथवा फलयुक्त वह वनस्पति के सारे वृक्षों को चंदन के समान (सुगंधित) कर देता है । गुरुमुखों का सुख-फल तो साधुसंगति है जो पापियों को दिन भर में अर्थात् शीघ्र ही पवित्र कर देती है । वह अवगुण करनेवालों को गुणवान बना देती है और अपनी परिधि में लाकर कच्चे (आचरणवालों) को (पक्का) (चरित्रवान) बना देती है। अब ऐसे व्यक्तियों को न तो पानी डुबा सकता है और न अग्नि जला सकती है अर्थात् वे भवसागर पार कर जाते हैं और तृष्णा की लपटें उन तक नहीं पहुँचतीं ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(सूर्य की तरह परोपकारी गुरुमुख)

अँधेरी रात में लाखों-करोड़ों तारागण चमकते हैं । घर-घर में दीपक जलाकर प्रकाश किया जाता है पर अँधेरे में फिर भी चोर-चकार चोरी करने के लिए घूमते-फिरते रहते हैं । घरबारी व्यक्ति दुकानों और घरों के दरवाजे बंद करके सोते हैं । सूर्य अपनी ज्योति जलाकर रात के अँधेरे को दूर कर देता है । (गुरुमुख भी) लोगों को नाम, दान और स्नान का महत्व समझाकर बंधन-मुक्त करा देता है । गुरुमुखों का सुख-फल साधुसंगति ही है जिसके माध्यम से पशु, प्रेत एवं पतितों का उद्धार हो जाता है । ऐसे ही परोपकारी गुरु के प्यारे होते हैं ।। ७ ।।

पउड़ी ८

(साधसंगति मानसरोवर)

मानसरोवरु आखीऐ उपरि हंस सुवंस बसंदे ।
मोती माणक मानसरि चुणि चुणि हंस अमोल चुगंदे ।
खीरु नीरु निरवारदे लहरीं अंदरि फिरनि तरंदे ।
मानसरोवरु छडि कै होरतु थाइ न जाइ बहंदे ।
गुरमुखि सुख फलु साधसंगु परम हंस गुरसिख सोहंदे ।
इक मनि इकु धिआइदे दूजै भाइ न जाइ फिरंदे ।
सबदु सुरति लिव अलखु लखंदे ॥ ८ ॥

पउड़ी ९

(गुरमुख पारस रूप है)

पारसु पथरु आखीऐ लुकिआ रहै न आपु जणाए ।
विरला कोइ सिञाणदा खोजी खोजि लए सो पाए ।

पउड़ी ८

(साधुसंगति मानसरोवर है)

कहा जाता है कि मानसरोवर पर कुलीन हंस निवास करते हैं । मानसरोवर में मोती-माणिक हैं और उन अमूल्य रत्नों को हंस चुन-चुनकर खाते हैं । वे हंस दूध और पानी को अलग करते हैं और लहरों पर तैरते फिरते हैं । वे मानसरोवर को छोड़कर अन्य किसी स्थान पर जाकर नहीं बैठते । गुरुमुखों का सुखफल तो साधुसंगति है जिसमें परमहंस स्वरूप गुरुमुख व्यक्ति शोभायमान होते हैं । वे एकमन से उस एक प्रभु का ध्यान करते हैं तथा अन्य किसी भाव में नहीं भटकते । वे शब्द में सुरति को लीन कर उस अलक्ष्य प्रभु का दर्शन करते हैं ।। ८।।

पउड़ी ९

(गुरुमुख पारस-रूप है)

पारस नामक पत्थर छिपा रहता है और अपना प्रचार स्वयं नहीं करता । उसे कोई बिरला व्यक्ति ही पहचानता है और कोई खोजी ही उसे प्राप्त कर पाता है। निकृष्ट (अस्पृश्य) अष्टधातुएँ भी उस पारस को छूकर एक धातु अर्थात् सोने में परिवर्तित हो जाती हैं । वे शुद्ध सोना होकर अमूल्य रूप में बिकती हैं ।

पारसु परसि अपरसु होइ असट धातु इक धातु कराए ।
बारह वंनी होइ कै कंचनु मुलि अमुलि विकाए ।
गुरमुखि सुखफल साधसंगु सबद सुरति लिव अघड़ घड़ाए ।
चरणि सरणि लिव लीणु होइ सैंसारी निरंकारी भाए ।
घरि बारी होइ निज घरि जाए ॥ ९ ॥

पउड़ी १०

(गुरमुख सभ तों उच्चे हन)

चिंतामणि चिंता हरै कामधेनु कामनाँ पुजाए ।
फल फुलि देंदा पारजातु रिधि सिधि नव नाथ लुभाए ।
दस अवतार अकार करि पुरखारथ करि नाँव गणाए ।
गुरमुखि सुख फलु साधसंगु चारि पदारथ सेवा लाए ।
सबदु सुरति लिव पिरम रसु अकथ कहाणी कथी न जाए ।
पारब्रहम पूरन ब्रहम भगति वछल हुइ अछल छलाए ।
लेख अलेख न कीमति पाए ॥ १० ॥

गुरुमुखों का सुखफल तो साधुसंगति है जहाँ शब्द में सुरति को लीन कर बेडौल मन को सुन्दर रूप प्रदान किया जाता है । संसारी व्यक्ति भी यहाँ गुरु-चरणों में अपना ध्यान लीन कर निराकार प्रभु को भाने लगता है । वह गृहस्थ-धर्म का पालन करता हुआ अपने मूल रूप (आत्मा) में स्थित हो जाता है ।। ९ ।।

पउड़ी १०

(गुरुमुख सबसे ऊँचे हैं)

चिंतामणि चिंताओं को दूर करती है और कामधेनु सब इच्छाओं की पूर्ति करती है । कल्पवृक्ष फल और फूल देता है तथा नवनाथ ऋद्धियों-सिद्धियों में लुभायमान हैं । दस अवतारों ने भी शरीर धारण कर पुरुषार्थ दिखाया और अपने नाम का प्रचार किया । गुरुमुखों का सुखफल तो साधुसंगति है जहाँ चारों पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) स्वयं सेवा करते हैं । वहाँ गुरुमुखों की सुरति शब्द में लीन रहती है और उनके प्रेम-रस की अकथनीय कहानी को कहा नहीं जा सकता । परब्रह्म पूर्णब्रह्म है जो भक्तवत्सल होकर बड़े छलियों को भी चक्कर में डाल देता है अर्थात् उस परमात्मा को कोई नहीं छल सकता । परमात्मा सब प्रकार के लेखों से मुक्त है, उसके रहस्य को कोई नहीं जान सकता ।। १० ।।

पउड़ी ११

(कादर दा पिरम पिआला)

इकु कवाउ पसाउ करि निरंकारि आकारु बणाइआ ।
तोलि अतोलु न तोलीऐ तुलि न तुलाधारि तोलाइआ ।
लेख अलेखु न लिखीऐ अंगु न अखरु लेख लिखाइआ ।
मुलि अमुलु न मोलीऐ लखु पदारथ लवै न लाइआ ।
बोलि अबोलु न बोलीऐ सुणि सुणि आखणु आखि सुणाइआ ।
अगमु अथाहु अगाधि बोध अंतु न पारावारु न पाइआ ।
कुदरति कीम न जाणीऐ केवडु कादरु कितु घरि आइआ ।
गुरमुखि सुख फलु साधसंगु सबदु सुरति लिव अलख लखाइआ ।
पिरम पिआला अजरु जराइआ ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(साधसंगति सच्चखंड)

सादहु सबदहु बाहरा अकथ कथा किउँ जिहबा जाणै ।
उसतति निंदा बाहरा कथनी बदनी विचि न आणै ।

पउड़ी ११

(कर्त्ता का प्रेम-प्याला)

उस निराकार प्रभु (शक्ति) ने एक ही बार में एक ही ध्वनि-वाक्य (शक्ति) से सारे संसार को बना दिया । प्रभु का प्रसार (संसार) किसी भी तरह तौला-नापा नहीं जा सकता । इस संसार को किसी हिसाब से नहीं समझा जा सकता क्योंकि इसके लिए भी अक्षर समाप्त हो जाते हैं । इसके लाखों प्रकार के पदार्थ अमूल्य हैं, इनकी कीमत नहीं आँकी जा सकती । बोलकर भी उसके बारे में कुछ कहा-सुना नहीं जा सकता । यह संसार भी अगम्य, अगाध एवं रहस्यपूर्ण है इसका रहस्य नहीं समझा जा सकता। जब उसकी सृष्टि को जानना असंभव है तो वह कर्त्ता स्वयं कितना बड़ा है और कहाँ रहता है, कैसे समझा जा सकता है ? गुरुमुखों का सुखफल तो साधुसंगति है जहाँ शब्द में सुरति को लीन कर अलख प्रभु का साक्षात्कार किया जाता है । साधुसंगति में असह्य प्रेम-प्याले का सहनशीलतापूर्वक पान किया जाता है ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(साधुसंगति सत्यखंड)

(परमात्मा) स्वाद और शब्दों से परे है, उसकी अकथनीय कथा को भला जीभ कैसे बयान करके जान सकती है । वह स्तुति-निंदा से परे, कथन-श्रवण में नहीं आता।

गंध सपरसु अगोचरा नास सास हेरति हैराणै ।
वरनहु चिहनहु बाहरा दिसटि अदिसटि न धिआनु धिङाणै ।
निरालंबु अवलंब विणु धरति अगासि निवासु विडाणै ।
साधसंगति सचखंडि है निरंकारु गुर सबदु सिञाणै ।
कुदरति कादर नो कुरबाणै ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(गुरमुखाँ दा सच्चा रसता)

गुरमुखि पंथु अगंम है जिउ जल अंदरि मीनु चलंदा ।
गुरमुखि खोजु अलखु है जिउ पंखी आगास उडंदा ।
साधसंगति रहरासि है हरि चंदउरी नगरु वसंदा ।
चारि वरन तंबोल रसु पिरमु पिआलै रंगु करंदा ।

वह गंध, स्पर्श से अगोचर है और नासिका के श्वास अर्थात् प्राण भी उसे न जानकर हैरान हैं । वह वर्णों-चिन्हों से बाहर और किसी बेचारे ध्यान की दृष्टि से भी दूर है । वह बिना किसी आश्रय के धरती और आकाश में बड़प्पनपूर्वक निवास कर रहा है । साधुसंगति ही सत्यदेश है जहाँ गुरु-शब्द के माध्यम से निरंकार प्रभु की पहचान होती है । यह सारी सृष्टि उस कर्त्ता पर कुर्बान है ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(गुरुमुखों का सच्चा रास्ता)

गुरुमुखों का मार्ग अगम्य है अर्थात् ठीक उसी तरह नहीं जाना जा सकता, जैसे जल में चल रही मछली का मार्ग नहीं जाना जा सकता । जैसे (सुदूर) आकाश में उड़ते पक्षी की राह जानना मुश्किल है, उसी पर गुरुमुख का खोजपरख-चिंतन अलक्ष्य है । उसे समझा नहीं जा सकता । गुरुमुखों के लिए तो साधुसंगति ही सीधी राह है परन्तु संसार एक भ्रम की नगरी है । चारों पदार्थों (कत्था, सुपारी, चूना और पान) के सम्मिलित रंग की तरह गुरुमुख भी प्रभु-प्रेम के एकरस प्याले का आनंद लेते हैं । शब्द में सुरति लीन करके वे चंदन की गंध के अन्यों में बसने की भाँति दूसरों (के हृदयों) में बसते हैं ।

सबद सुरति लिव लीणु होइ चंदन वास निवास करंदा ।
गिआनु धिआनु सिमरणु जुगति कूँजि कूरम हंस वंस वधंदा ।
गुरमुखि सुख फलु अलख लखंदा ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(ईश्वर अलख है)

ब्रहमादिक वेदाँ सणै नेति नेति करि भेदु न पाइआ ।
महादेव अवधूतु होइ नमो नमो करि धिआनि न आइआ ।
दस अवतार अकारु करि एकंकारु न अलखु लखाइआ ।
रिधि सिधि निधि नाथ नउ आदि पुरखु आदेसु कराइआ ।
सहस नाँव लै सहस मुख सिमरणि संख न नाउँ धिआइआ ।
लोमस तपु करि साधना हउमै साधि न साधु सदाइआ ।
चिरु जीवणु बहु हंढणा गुरमुखि सुखु फलु पलु न चखाइआ ।
कुदरति अंदरि भरमि भुलाइआ ।। १४ ।।

ज्ञान, ध्यान और स्मरण की युक्ति से वे क्रौंच, कच्छप एवं हंसों की भाँति अपनी (भक्त) परम्परा अथवा परिवार को बढ़ाते हैं । गुरुमुख सुखफल रूपी परमात्मा का साक्षात्कार कर लेते हैं ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(परमात्मा अलक्ष्य है)

ब्रह्मा आदि देवगणों ने वेदों-सहित उस परमात्मा को नेति-नेति ही कहा है और ये सब भी उसके रहस्य को नहीं जान सके । महादेव ने भी अवधूत बनकर उसका जाप किया, पर उसके ध्यान में भी परमात्मा न आ सका । दस अवतार हुए पर किसी को भी एकंकार (परमात्मा) न दिख सका । ऋद्धियों-सिद्धियों के ख़ज़ाने नव नाथों ने भी उस परमात्मा को ही प्रणाम किया है । शेषनाग ने हज़ारों मुखों द्वारा हज़ारों नामों से उसका स्मरण किया, पर फिर भी उसका जाप पूर्ण न हो सका । लोमस नामक ऋषि ने तपस्यापूर्वक साधना की पर अहम्-भाव को न जीत सका और सच्चा साधु न कहला सका । चिरंजीवी मार्कण्डेय ने बहुत आयु बिताई पर गुरुमुखों के सुखफल को न चख सका । (उपर्युक्त सभी) सृष्टि में रहकर भ्रम में ही भूले रहे ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(अंजन विच निरंजन पाउणा)

गुरमुखि सुख फलु साध संगु भगति वछल होइ वसिगति आइआ ।
कारणु करते वसि है साधसंगति विचि करे कराइआ ।
पारब्रहमु पूरन ब्रहमु साधसंगति विचि भाणा भाइआ ।
रोम रोम विचि रखिओनु करि ब्रहमंड करोड़ि समाइआ ।
बीअहु करि बिसथारु वड़ फ़ुल अंदरि फिरि बीउ वसाइआ ।
अपिउ पीअणु अजरु जरणु आपु गवाइ न आपु जणाइआ ।
अंजनु विचि निरंजनु पाइआ ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(वाहिगुरू पर्हे तों पर्हे है)

महिमा महि महिकार विचि महिमा लख न महिमा जाणै ।
लख महातम महातमा तिल न महातमु आखि वखाणै ।
उसतति विचि लख उसतती पल उसतति अंदरि हैराणै ।
अचरज विचि लख अचरजा अचरज अचरज चोज विडाणै ।

पउड़ी १५

(अंजन में निरंजन की प्राप्ति)

गुरुमुखों का सुखफल 'साधुसंगत्' है और इसी 'साधुसंगत्' के वश में प्रभु भक्तवत्सल होकर आता है । सभी कारण उस कर्त्ता के वश में हैं, परन्तु साधुसंगति में वह भक्तों, संतों का कराया हुआ ही करता है । परब्रह्म ही पूर्णब्रह्म है । उसे ' साधुसंगत् ' की इच्छा ही अच्छी लगती है । उसके एक-एक रोम में करोड़ों ब्रह्मांड समाए रहते हैं । एक बीज से वट वृक्ष विस्तारित होता है और उसके फलों में पुन: बीज बस जाते हैं । जिन्होंने अमृत-पान कर उस असह्य को निष्ठापूर्वक मन में धारण कर लिया है, उन्होंने अहम्-भाव गँवा दिया है पर कभी अपने आपको किसी गिनती में नहीं रखा । ऐसे ही सद्पुरुषों ने माया में रहते हुए भी निरंजन प्रभु को प्राप्त कर लिया है ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(वाहिगुरु अर्थात् अद्भुत प्रभु परे से परे है)

उस प्रभु की महिमा की सुगंध को फैलानेवाले लाखों लोग भी उसकी महिमा का वास्तविक स्वरूप नहीं जानते ।

विसमादी विसमाद लख विसमादहु विसमाद विहाणै ।
अबगति गति अति अगम है अकथ कथा आखाण क्खाणै ।
लख परबाण परै परवाणै ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(वाहिगुरू पर्हे तों पर्हे है)

अगमहु अगमु अगंमु है अगमु अगमु अति अगमु सुणाए ।
अलखहु अलखु अलखु है अलखु अलखु लख अलखु धिआए ।
अपरंपरु अपरंपरहुँ अपरंपरु अपरंपरु भाए ।
आगोचरु आगोचरहुँ आगोचरु आगोचरि जाए ।
पारब्रहमु पूरन ब्रहमु साधसंगति आगाधि अलाए ।
गुरमुखि सुखफलु पिरमरसु भगतिवछलु होइ अछलु छलाए ।
वीह इकीह चढ़ाउ चढ़ाए ।। १७ ।।

लाखों ही महात्मा उस प्रभु के महात्म्य को बताते हैं पर सब मिलकर तिल मात्र भी उसके महात्म्य को नहीं बता सके । अनेकों स्तुतियाँ करनेवाले लाखों लोग भी उसकी स्तुति करते-करते भी हैरान हैं (पर उसका पूर्ण गुणानुवाद नहीं कर सके)। लाखों आश्चर्य स्वयं आश्चर्य में हैं और उस आश्चर्यस्वरूप प्रभु के कौतुक देखकर हैरान हैं । उस विस्मयादि प्रभु की विस्मयपूर्णता को देखकर विभोरता भी विभोर हो समाप्त हो चली है । उस अव्यक्त प्रभु की गति अत्यन्त अगम्य है और उसकी कथा के उपाख्यानों का वर्णन भी अकथनीय है । उसका विचार विचारों से परे है ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(अद्भुत गुरु परमात्मा परे से परे है)

वह परमात्मा अगम्य से भी परे अगम्य है और सभी उसे अत्यन्त अगम्य कहते हैं । वह अलक्ष्य था, अलक्ष्य है और अलक्ष्य रहेगा अर्थात् वह सदैव ध्यान आदि से परे है । अपरम्परों से परे जो भी अपरम्पार है, परमात्मा उस सबसे भी परात्पर है । वह अगोचर से अगोचर है और इंद्रियों की पहुँच से परे है । परब्रह्म ही पूर्णब्रह्म है जिसका गुणानुवाद साधुसंगति में अनेकों तरीकों से किया जाता है । उसका प्रेम-रस ही गुरुमुखों का सुखफल है । वह परमात्मा भक्तवत्सल रूप है पर बड़े-बड़े छलियों द्वारा भी नहीं छला जाता । उसी की कृपा से संसार-सागर से उत्साहपूर्वक पार हुआ जाता है ।। १७ ।।

पउड़ी १८

(सतिगुरू ने अलख लखा दिता)

पारब्रहमु पूरन ब्रहमु निरंकारि आकारु बणाइआ ।
अबिगति गति आगाधि बोध गुरमूरति होइ अलखु लखाइआ ।
साधसंगति सचखंड विचि भगतिवछल होइ अछल छलाइआ ।
चारि वरन इक वरन हुइ आदि पुरख आदेसु कराइआ ।
धिआन मूलु दरसनु गुरू छिअ दरसन दरसन विचि आइआ ।
आपे आपि न आपु जणाइआ ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(गुरू दी शरण)

चरण कवल सरणागती साधसंगति मिलि गुरु सिख आए ।
अंम्रित दिसटि निहालु करि दिब द्रिसटि दे पैरी पाए ।

पउड़ी १८

(सद्गुरु ने अलक्ष्य दिखा दिया)

परब्रह्म ही पूर्णब्रह्म है और उसी निराकार (प्रभु) ने यह संसार के आकार बनाए हैं । वह अव्यक्त, अगाध और बुद्धि के लिए अगोचर है पर गुरु ने स्वयं सौंदर्य-प्रतिमा बनकर उस प्रभु के दर्शन करा दिए हैं । साधुसंगति रूपी सत्यदेश में वह भक्तवत्सल होकर प्रकट होता है और न छले जा सकनेवालों को भी छल लेता है । गुरु ही चारों वर्णों को एक करके उनको परमात्मा के समक्ष प्रणाम करवाता है । सभी साधनाओं का मूल गुरु का दर्शन है जिसमें सभी छः दर्शन समाहित हो जाते हैं । वह स्वयं ही सब कुछ है परन्तु कभी अपने आपको जनवाता नहीं ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(गुरु की शरण)

'साधुसंगत्' के साथ मिलकर गुरु के शिष्य गुरु के चरण-कमलों की शरण में आते हैं। गुरु की अमर दृष्टि ने सबको धन्य कर दिया और दिव्य दृष्टि के कारण उन सबको गुरु ने चरणों में डाल दिया अर्थात् उन्हें अत्यन्त् विनम्र बना दिया ।

चरण रेणु मसतकि तिलक भरम करम दा लेखु मिटाए ।
चरणोदकु लै आचमनु हउमै दुबिधा रोगु गवाए ।
पैरीं पै पा खाकु होइ जीवन मुकति सहज घरि आए ।
चरण कवल विचि भवर होइ सुख संपद मकरंदि लुभाए ।
पूज मूल सतिगुरु चरण दुतीआ नासति लवै न लाए ।
गुरमुखि सुख फलु गुर सरणाए ॥ १९ ॥

पउड़ी २०

(सतिगुर दी महानता)

सासत्र सिंम्रिति वेद लख महाँभारत रामाइण मेले ।
सार गीता लख भागवत जोतक वैद चलंती खेले ।
चउदह विदिआ साअंगीत ब्रहमे बिसन महेसुर भेले ।
सनकादिक लख नारदा सुक बिआस लख सेख नवेले ।
गिआन धिआन सिमरण घणे दरसन वरन गुरू बहु चेले ।
पूरा सतिगुर गुराँ गुरु मंत्र मूल गुर बचन सुहेले ।

सिक्खों ने गुरु की चरण-धूलि मस्तक पर लगाई जिससे उनके भ्रमपूर्ण कर्मों का लेखा साफ़ हो गया । चरणामृत का आचमन करने से सबके अहम् एवं दुबिधा-भाव का रोग समाप्त हो गया । वे चरणों में पड़कर, चरण-धूलि बनकर जीवनमुक्त के स्वरूप को धारण कर सहज-अवस्था में स्थिर हो गये । अब वे चरण-कमलों के भँवरे बन गये । सुख-संपदा रूपी मकरंद का रस लूटने लगे । पूजा का मूल अब उनके लिए सद्गुरु के चरण ही हैं और वे द्वैत-भाव को अब पास नहीं फटकने देते। गुरुमुखों का सुखफल गुरु की शरण ही है ।। १९ ।।

पउड़ी २०

(सद्गुरु की महानता)

शास्त्र, स्मृतियाँ, लाखों वेद, महाभारत, रामायण आदि के समूह एकत्र किये जाएँ ; लाखों ही गीता-सार , भागवत् , ज्योतिष्-ग्रंथ और वैद्य की कलाबाज़ियाँ मिलाई जाएँ ; फिर चौदहों विद्याएँ , संगीत-शास्त्र एवं ब्रह्मा, विष्णु, महेश को भी साथ रख लिया जाए ; लाखों शेषनाग, शुक, व्यास, नारद, सनकादि हों ; अनेकों ज्ञान, ध्यान, स्मरण, दर्शन, वर्ण और गुरु-चेले हों, परन्तु पूर्ण-सद्गुरु (परमात्मा) ही गुरुओं का गुरु है और गुरु के सुन्दर वचन ही सब मंत्रों का मूल हैं ।

अकथ कथा गुरु सबदु है नेति नेति नमो नमो केले ।
गुरमुख सुख फलु अंम्रित वेले ॥ २० ॥

पउड़ी २१

(गुरू तुल्ल कुछ नहीं है)

चार पदारथ आखीअनि लख पदारथ हुकमी बंदे ।
रिधि सिधि निधि लख सेवकी कामधेणु लख वग चरंदे ।
लख पारस पथरोलीआ पारजाति लख बाग फलंदे ।
चितवण लख चिंतामणी लख रसाइण करदे छंदे ।
लख रतन रतनागरा सभ निधान सभ फल सिमरंदे ।
लख भगती लख भगत होइ करामात परचै परचंदे ।
सबद सुरति लिव साधसंगु पिरम पिआला अजरु जरंदे ।
गुर किरपा सतसंगि मिलंदे ॥ २१ ॥ १६ ॥ सोलाँ ॥

गुरु के शब्द की कथा अवर्णनीय है, वह नेति-नेति है, सदैव उसे ही प्रणाम किया जाए। गुरुमुखों का यह सुखफल अमृतबेला (भोर) में ही प्राप्त होता है अर्थात् प्रात: गुरु की आराधना करने से यह फल प्राप्त होता है ।। २० ।।

पउड़ी २१

(गुरु के तुल्य अन्य कुछ भी नहीं है)

पदार्थ (पुरुषार्थ) तो चार कहे जाते हैं पर ऐसे लाखों पदार्थ उस (प्रभु-गुरु) की आज्ञा में चलनेवाले सेवक हैं । उसकी सेवा में लाखों ऋद्धियाँ, सिद्धियाँ और खज़ाने हैं और उसके पास कामधेनुओं के झुंड चरते रहते हैं । उसके पास लाखों पारस पत्थर और कल्पवृक्षों के फलदायक बाग-बगीचे हैं । गुरु की एक चितवन पर लाखों चिंतामणियाँ और रसायनें उस पर बलिहारी जाती हैं । लाखों ही रत्न और समुद्रों के सब ख़ज़ाने एवं सभी फल गुरु का स्मरण करते हैं । लाखों भक्त एवं करामाती व्यक्ति प्रपंचों में विचरण करते हैं । (गुरु के सच्चे शिष्य) शब्द में सुरति लीन करके साधुसंगति में प्रभु-प्रेम के असह्य प्याले को पीते और अन्दर धारण करते हैं । गुरु की कृपा से ही लोग सद्संगति में आ मिलते हैं ।। २१ ।। १६ ।।

* * *

वार १७

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।।

पउड़ी १

(संख तों उपदेश–करनी हीन)

सागरु अगमु अथाहु मथि चउदह रतन अमोल कढाए ।
ससीअरु सारंग धणखु मदु कउसतक लछ धनंतर पाए ।
आरंभा कामधेणु लै पारिजातु अस्व अमिउ पीआए ।
ऐरापति गज संखु बिखु देव दानव मिलि वंडि दिवाए ।
माणक मोती हीरिआँ बहु मुले सभु को वरुसाए ।
संखु समुंद्रहुँ सखणा धाहाँ दे दे रोइ सुणाए ।
साधसंगति गुर सबदु सुणि गुर उपदेसु न रिदै वसाए ।
निहफलु अहिला जनमु गवाए ।। १ ।।

पउड़ी १

(शंख से उपदेश–करनी-विहीन)

(कहा जाता है कि) अथाह सागर को मथकर उसमें से चौदह रत्न निकाले गये हैं । वे रत्न हैं–चन्द्रमा, सारँग धनुष, शराब, कौस्तुभ मणि, लक्ष्मी, धन्वंतरि वैद्य, रम्भा अप्सरा, कामधेनु , पारिजात वृक्ष, उच्चैश्रवा घोड़ा एवं अमृत आदि जो (देवताओं को) पिलाया गया । ऐरावत हाथी, शंख और विष आदि को देव-दानवों ने मिलकर बाँट लिया । माणिक, मोती एवं बहुमूल्य हीरे सबको दिये गये । शंख उस समुद्र में से खाली (खोखला) निकला जो चिल्लाकर, रो-रोकर सबको अपनी व्यथा सुनाता है (और कहता है कि सांसारिक जीवो, मेरी तरह खाली नहीं रहना) । साधुसंगति में गुरु के वचनों को सुनकर जो गुरु-उपदेश को हृदय में धारण नहीं करता है, वह अपने जीवन को निष्फल ही गँवा देता है ।। १ ।।

पउड़ी २

(मनमुख ते डड्डू इको जिहे हन)

निरमलु नीरु सुहावणा सुभर सरवरि कवल फुलंदे ।
रूप अनूप सरूप अति गंध सुगंध होइ महकंदे ।
भवराँ वासा वंझ वणि खोजहि एको खोजि लहंदे ।
लोभ लुभति मकरंद रसि दूरि दिसंतरि आइ मिलंदे ।
सूरजु गगनि उदोत होइ सरवर कवल धिआनु धरंदे ।
डड्डू चिकड़ि वासु है कवल सिञाणि न माणि सकंदे ।
साधसंगति गुर सबदु सुणि गुर उपदेस न रहत रहंदे ।
मसतकि भाग जिन्हाँ दे मंदे ॥ २ ॥

पउड़ी ३

(बगले वाँग कपट सनेही फल प्रापत नही कर सकदे)

तीरथि पुरबि संजोग लोग चहु कुंडाँ दे आदि जुड़ंदे ।
चारि वरन छिअ दरसनाँ नामु दानु इसनानु करंदे ।

पउड़ी २

(मनमुख और मेंढक समान हैं)

सुन्दर और निर्मल जल से लबालब भरे तालाब में सुन्दर कमल खिलते हैं । कमलों का स्वरूप अत्यन्त सुन्दर होता है और वे वातावरण को सुगंधित करते हुए महकाते हैं । भँवरों का निवास बाँसों के जंगल में है पर वे कमलों को खोज ही लेते हैं । मकरंद के लोभ में वे खिंचे हुए दूर-देशान्तरों से आकर (कमल से) आ मिलते हैं । उसी पर सूर्य के उदित होते ही सरोवर के कमल भी उसकी ओर अपना ध्यान (मुँह) कर लेते हैं । मेंढक का कमल के पास ही कीचड़ में निवास है , वह कमल (के आनन्द) को पहचानकर उसके जैसे आनन्द को नहीं भोग सकता। जो व्यक्ति (मेंढक के समान) 'साधुसंगत्' में गुरु उपदेश को सुनकर उसके अनुसार अपने आचरण को नहीं ढालते उन्हें समझो वे वे लोग हैं जिनके माथे पर भाग्य-रेखा मलिन है ।। २ ।।

पउड़ी ३

(बगुले की तरह कपट-स्नेही फल प्राप्त नहीं कर सकते)

तीर्थों पर पर्वों के संयोग से लाखों व्यक्ति चारों दिशाओं से आकर इकट्ठा हो जाते हैं ।

जप तप संजम होम जग वरत नेम करि वेद सुणंदे ।
गिआन धिआन सिमरण जुगति देवी देवसथान पूजंदे ।
बगा बगे कपड़े करि समाधि अपराधि निवंदे ।
साधसंगति गुर सबदु सुणि गुरमुखि पंथ न चाल चलंदे ।
कपट सनेही फलु न लहंदे ॥ ३ ॥

पउड़ी ४

(अन-अधिकारी नूँ गुरू शबद सुण के बी शांती नहीं मिलदी)

सावणि वण हरीआवले वुठै सुकै अकु जवाहा ।
त्रिपति बबीहे स्वाँति बूँद सिप अंदरि मोती उमाहा ।
कदली वणहु कपूर होइ कलरि कवलु न होइ समाहा ।
बिसीअर मुहि कालकूट होइ धात सुपात्र कुपात्र दुराहा ।
साधसंगति गुर सबदु सुणि सांति न आवै उभै साहा ।

चारों वर्ण और छः दर्शनों के अनुयायी वहाँ पर नाम-स्मरण, दान एवं स्नान करते हैं । जाप, तप, संयम, होम-यज्ञ, व्रत, नियम आदि क्रियाओं को करते हुए वे वेद-पाठ सुनते हैं । ज्ञान-ध्यान करते हैं, जाप की युक्तियाँ अपनाते हैं, देवी-देवालयों में पूजा आदि करते हैं । श्वेत वस्त्रधारी समाधियाँ लगाए रहते हैं पर बगुले की तरह मौक़ा पाते ही अपराध करने के लिए (फ़ौरन्) झुक जाते हैं । जो साधुसंगति में गुरु-शब्द को सुनकर गुरुमुखों के मार्ग पर नहीं चलते उन कपट-स्नेहियों को कोई फल प्राप्त नहीं होता ।। ३ ।।

पउड़ी ४

(अनधिकारी व्यक्ति को गुरु-शब्द सुनकर भी शान्ति नहीं मिलती)

सावन में सारा वन हरा-भरा हो जाता है पर आक और जवासा नामक पौधे सूख जाते हैं । यदि स्वाति-बूँद पपीहा पा जाता है तो उसकी तृप्ति हो जाती है और सीप में वही बूँद मोती बन जाती है । केले के वन में वही बूँद कपूर बन जाती है परन्तु क्षारीय धरती और कमल पर उस बूँद का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वही बूँद यदि सर्प के मुँह में जा पड़ती है तो कालकूट विष बन जाती है। इसलिए दी हुई वस्तु के सुपात्र और कुपात्र के आधार पर दो भेद हो जाते हैं।

गुरमुखि सुख फलु पिरम रसु मनसुख बदराही बदराहा ।
मनमुख टोटा गुरमुख लाहा ॥ ४ ॥

पउड़ी ५

(अहंकारीआँ पुर द्रिशटांत)

वण वण विचि वणासपति इको धरती इको पाणी ।
रंग बिरंगी फुल फल साद सुगंध सनबंध विडाणी ।
उचा सिंमलु झंटुला निहफलु चीलु चढ़ै असमाणी ।
जलदा वाँसु वढाईऐ वंझुलीआँ वजनि बिबाणी ।
चंदन वासु वणासपति वासु रहै निरगंध रवाणी ।
साधसंगति गुर सबदु सुणि रिदै न वसै अभाग पराणी ।
हउमै अंदरि भरमि भुलाणी ॥ ५ ॥

इसी तरह मायावी जगत प्रपंचों में लिप्त उखड़ी हुई साँसवाले स्वेच्छाचारी को भी साधुसंगति में गुरु के शब्द सुनकर भी शान्ति नहीं मिलती । गुरुमुख व्यक्ति तो प्रभु-प्रेमरस के सुख-फल को प्राप्त करता है परन्तु मनसुख (स्वेच्छाचारी) बुरे रास्ते पर ही चलता चला जाता है । स्वेच्छाचारी को सदैव हानि और गुरुमुख को सदैव लाभ ही लाभ प्राप्त होता है ।। ४ ।।

पउड़ी ५

(अहंकारियों पर दृष्टांत)

वन-वन में वनस्पति है और सभी जगह एक ही धरती और एक ही पानी है । परन्तु यह सब एक होने के बावजूद फल-फूल रंग-बिरंगे और उनकी गंध तथा स्वाद आश्चर्यजनक है । ऊँचा सेमल का वृक्ष बृहत् विस्तारवाला और फल-विहीन चील आसमान को छूता है (ये दोनों अहंकारी व्यक्ति के समान किसी का कुछ नहीं सँवारते) । बाँस अपनी ही बड़ाई में जलता-भुनता रहता है । उसे काटकर उसके तन पर छेद कर उसकी बाँसुरियाँ बजाई जाती हैं । चंदन सारी वनस्पति को सुगंधित कर देता है । पर बाँस फिर भी निर्गंध बना रहता है । जो साधुसंगति में गुरु का शब्द सुनते हैं पर मन में उसे नहीं बसाते, वे प्राणी अभागे हैं । वे अहंकार में डूबे भ्रम-ग्रसित हो भटकते रहते हैं ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(उल्लू तों उपदेश–मनमुख)

सूरजु जोति उदोति करि चानणु करै अनेरु गवाए ।
किरति विरति जग वरतमान सभनाँ बंधन मुकति कराए ।
पसु पंखी मिरगावली भाखिआ भाउ अलाउ सुणाए ।
बाँगाँ बुरगू सिंङीआँ नाद बाद नीसाण वजाए ।
घुघू सुझु न सुझई जाइ उजाड़ी झथि वलाए ।
साधसंगति गुर सबदु सुणि भाउ भगति मनि भउ न बसाए ।
मनमुख बिरथा जनमु गवाए ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(कपट सनेही चकवे वाँग साधसंगति विच्च वी विरवा रहिंदा है)

चंद चकोर परीति है जगमग जोति उदोतु करंदा ।
किरखि बिरखि हुइ सफलु फलि सीतल सांति अमिउ वरसंदा ।

पउड़ी ६

(उल्लू से उपदेश–मनमुख)

सूर्य अपनी ज्योति को प्रज्वलित कर अँधेरा दूर कर प्रकाश कर देता है । उसे देखकर सारा संसार काम-काज में लग जाता है । सूर्य ही सबको (रात के अँधेरे के) बंधनों से मुक्त करता है । पशु-पक्षी, मृगों के झुंड सभी अपनी प्रेमपूर्ण बोलियों में बोलते हैं । क़ाजी नमाज़ की बाँग देते हैं, योगीगण सिंहनाद करते हैं और राजाओं के द्वारों पर नगाड़े आदि बजाए जाते हैं । उल्लू को इस सबमें कुछ भी सुझाई नहीं पड़ता और वह उजाड़ में जाकर अपना (दिन का) समय व्यतीत करता है । जो ' साधुसंगति ' में गुरु-शब्द सुनकर प्रेमाभक्ति को मन में नहीं बसाते, उन स्वेच्छाचारियों का जन्म व्यर्थ ही जाता है ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(कपटी व्यक्ति, चकवे की तरह साधुसंगति में भी खाली ही बना रहता है)

चन्द्रमा चकोर से प्रीति करके अपनी ज्योति को जगमगा देता है । वह शान्ति का अमृत बरसाता है जिससे खेती, वृक्ष आदि सफल हो जाते हैं ।

नारि भतारि पिआरु करि सिहजा भोग संजोगु बणंदा ।
सभना राति मिलावड़ा चकवी चकवा मिलि विछुड़ंदा ।
साधसंगति गुर सबदु सुणि कपट सनेहि न थेहु लहंदा ।
मजलसि आवै लसणु खाइ गंधी वासु मचाए गंदा ।
दूजा भाउ मंदी हूँ मंदा ।। ७ ।।

पउड़ी ८

(कड़छी, रत्तकाँ, कपट सनेही)

खटु रस मिठ रस मेलि कै छतीह भोजन होनि रसोई ।
जेवणिवार जिवालीऐ चारि वरन छिअ दरसन लोई ।
त्रिपति भुगति करि होइ जिसु जिहबा साउ सिञाणै सोई ।
कड़छी साउ न संभलै छतीह बिंजन विचि संजोई ।
रती रतक ना रलै रतना अंदरि हारि परोई ।
साधसंगति गुरु सबदु सुणि गुर उपदेसु आवेसु न होई ।
कपट सनेहि न दरगह ढोई ।। ८ ।।

स्त्री को पति प्यार करके शय्या पर भोग के लिए उपयुक्त बनाता है । सब लोग तो रात में मिल जाते हैं पर मिले हुए चकवी-चकवा बिछुड़ जाते हैं । इसी प्रकार ' साधुसंगत ' में गुरु का उपदेश सुनकर भी कपट-स्नेही प्रेम की थाह नहीं जानता । जैसे लहसुन खाकर किसी सभा में आने वाला वहाँ दुर्गंध ही फैलाता है वैसे ही द्वैत-भाव का परिणाम तो बुरे से भी बुरा ही होता है ।। ७ ।।

पउड़ी ८

(कलछूल, घुँघची और कपट-स्नेही)

खट्टे-मीठे रसों को मिलाकर रसोई में छत्तीस प्रकार के भोजन बनाते हैं । रसोइया उन्हें चारों वर्णों और छः दर्शनों के अनुयाइयों को खिलाता है । जो भोजन करके तृप्त हुआ है वही उस भोजन के स्वाद को पहचान सकता है अर्थात् उसका आनन्द ले सकता है । कलछुल चाहे छत्तीस पदार्थों में घूमती है पर उन भोजनों के स्वाद को नहीं जानती । लाल, जवाहरों में घुँघची नहीं मिल सकती क्योंकि रत्ती को तो हार में पिरोया जाता है (जबकि घुँघची को ऐसा नहीं किया जा सकता) । जिसको ' साधुसंगत् ' में गुरु-उपदेश सुनकर भी आवेश प्राप्त नहीं होता उस कपट-स्नेही को प्रभु-दरबार में स्थान नहीं मिलता ।। ८ ।।

पउड़ी ९

(हाथी, तुंमे वाँगूँ कपट सनेही)

नदीआ नाले वाहड़े गंग संग मिलि गंग हुवंदे ।
अठसठि तीरथ सेवदे देवी देवा सेव करंदे ।
लोक वेद गुण गिआन विचि पतित उधारण नाउ सुणंदे ।
हसती नीरि न्हवालीअनि बाहरि निकलि छारु छणंदे ।
साधसंगति गुरसबदु सुणि गुरु उपदेसु न चिति धरंदे ।
तुंमे अंम्रित सिंजीऐ बीजै अंम्रितु फल न फलंदे ।
कपट सनेह न सेह पुजंदे ।। ९ ।।

पउड़ी १०

(संढ वाँगूँ मनमुख)

राजै दे सउ राणीआ सेजै आवै वारो वारी ।
सभे ही पटराणीआ राजे इक दू इक पिआरी ।

पउड़ी ९

(हाथी, आक की तरह कपट-स्नेही)

नदी-नाले गंगा के साथ मिलकर गंगा हो जाते हैं । (कपटी व्यक्ति) अड़सठ तीर्थों का सेवन कर देवी-देवताओं की भी सेवा करते हैं । लोगों से वेदों के गुण-ज्ञान-चर्चा में पतित-उद्धारक प्रभु का नाम भी सुनते हैं परन्तु ये सब वैसे ही होता है जैसे हाथी को पानी में नहलाया जाय और पानी से बाहर निकलते ही वह मिट्टी उड़ाने लगता है । कपटी व्यक्ति साधुसंगति में गुरु का उपदेश सुनते तो हैं पर मन में धारण नहीं करते । तुम्बी को अमृत से सींचा जाए पर उसके बीज अमृत-समान मीठे नहीं होते । कपट-स्नेही व्यक्ति कभी भी सीधे रास्ते अर्थात् सत्य-मार्ग पर नहीं चलते ।। ९ ।।

पउड़ी १०

(बाँझ की तरह मनमुख)

राजा के सौ (अनेकों) रानियाँ होती हैं और वह बारी-बारी से सबकी शय्या पर आता है। राजा के लिए सभी पटरानियाँ हैं और वे उसे एक से बढ़कर एक प्यारी हैं।

सभना राजा रावणा सुंदरि मंदरि सेज सवारी ।
संतति सभना राणीआँ इक अधका संढि विचारी ।
दोसु न राजे राणीऐ पूरब लिखतु न मिटै लिखारी ।
साधसंगति गुर सबदु सुणि गुरु उपदेसु न मनि उरधारी ।
करम हीणु दुरमति हितकारी ॥ १० ॥

पउड़ी ११

(मनमुख कपट सनेही पत्थर वाँगूँ है)

असटधातु इक धातु होइ सभ को कंचनु आखि वखाणै ।
रूप अनूप सरूप होइ मुलि अमुलु पंच परवाणै ।
पथरु पारसि परसीऐ पारसु होइ न कुल अभिमाणै ।
पाणी अंदरि सटीऐ तड़ भड़ डुबै भार भुलाणै ।
चित कठोर न भिजई रहै निकोरु घड़ै भंनि जाणै ।
अगी अंदरि फुटि जाइ अहरणि घण अंदरि हैराणै ।

सुन्दर महल और शय्या को सजाकर सभी राजा के साथ रमण करती हैं । सभी रानियों के सन्तान होती है और कोई एक-दो ही बाँझ होती हैं । इसमें राजा और रानियों का दोष नहीं, पूर्वलिखित कर्मों के कारण ही ऐसा होता है । जो 'साधुसंगत्' में गुरु-शब्द को सुनकर गुरु-उपदेश को मन में धारण नहीं करते वे ही दुर्मति वाले भाग्यहीन होते हैं ।। १० ।।

पउड़ी ११

(मनमुख कपटी पत्थर की तरह है.)

(पारस के स्पर्श से) अष्टधातुएँ भी एक धातु बन जाती हैं और लोग उसे सोना कहते हैं । वह अनुपम स्वरूप वाली सोना धातु बन जाती है और सर्राफ़ लोग भी उसको सोना प्रमाणित करते हैं । पत्थर पारस का छूकर पारस नहीं बनता क्योंकि उसमें अपनी कठोरता और कुल का अभिमान बना ही रहता है (क्योंकि पारस भी तो पत्थर ही के कुल का होता है) । पानी में फेंकने पर पत्थर झट ही अपने भार के अभिमान में भरा हुआ डूब जाता है । कठोर चित्त (पत्थर) कभी भीगता नहीं और अन्दर से पहले की तरह ही बना रहता है और घड़ों आदि की तोड़-फोड़ को भली प्रकार सीख लेता है ।

साधसंगति गुर सबदु सुणि गुर उपदेस न अंदरि आणै ।
कपट सनेहु न होइ धिङाणै ॥ ११ ॥

पउड़ी १२

(हंसाँ दी संगति विच)

माणक मोती मानसरि निरमलु नीरु सथाउ सुहंदा ।
हंसु वंसु निहचलमती संगति पंगति साथु बणंदा ।
माणक मोती चोग चुगि माणु महितु आनंदु वधंदा ।
काउ निथाउ निनाउ है हंसा विचि उदासु होवंदा ।
भखु अभखु अभखु भखु वण वण अंदरि भरमि भवंदा ।
साधसंगति गुरसबदु सुणि तन अंदरि मनु थिरु न रहंदा ।
बजर कपाट न खुल्है जंदा ॥ १२ ॥

पउड़ी १३

(मनमुख रोगी है)

रोगी माणसु होइ कै फिरदा बाहले वैद पुछंदा ।
कचै वैद न जाणनी वेदन दारू रोगी संदा ।

आग में रखने पर फट जाता है और नेहाई पर रखकर पीटने से चूर-चूर हो जाता है । ऐसा व्यक्ति भी साधुसंगति में गुरु-उपदेश को सुनकर उपदेश के भाव के अन्तर्गत अपने आपको नहीं रखता । झूठा स्नेह दिखाकर कोई जबरदस्ती सच्चा नहीं हो सकता ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(हंसों की संगति में)

मानसरोवर में माणिक, मोती और निर्मल जल शोभायमान होता है । हंसों का वंश दृढ़ बुद्धिवाला है । वे सब संगति और पंक्ति बना कर रहते हैं । वे माणिक, मोतियों को चुगकर अपने सम्मान और आनंद में वृद्धि करते हैं । कौआ उनमें निराश्रित, अनाम और उदास बना रहता है । भक्ष्य को वह अभक्ष्य और अभक्ष्य को भक्ष्य मानता है और वन-वन में भटकता रहता है । जब तक व्यक्ति साधसंगति में गुरु के शब्द को सुनकर तन-मन को स्थिर नहीं करता, तब तक मन के वज्र-कपाटों का ताला खुलता नहीं ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(मनमुख रोगी है)

मनुष्य रोगी बनकर अनेकों वैद्यों से दवा पूछता फिरता है ।

होरो दारू रोगु होरु होइ पचाइड़ दुख सहंदा ।
आवै वैदु सुवैदु घरि दारू दसै रोगु लहंदा ।
संजमि रहै न खाइ पथु खटा मिठा साउ चखंदा ।
दोसु न दारू वैद नो विणु संजमि नित रोगु वधंदा ।
कपट सनेही होइ कै साधसंगति विचि आइ बहंदा ।
दुरमति दूजै भाइ पचंदा ॥ १३ ॥

पउड़ी १४

(गधे तों मनमुख दा रूपक)

चोआ चंदनु मेदु लै मेलु कपूर कथूरी संदा ।
सभ सुगंध रलाइकै गुरु गांधी अरगजा करंदा ।
मजलस आवै साहिबाँ गुण अंदरि होइ गुण महकंदा ।
गदहा देही खउलीऐ सार न जाणै नरक भवंदा ।
साधसंगति गुर सबदु सुणि भाउ भगति हिरदै न धरंदा ।

कच्चा वैद्य रोगी की वेदना और दवाई दोनों को ही नहीं जानता । रोग कुछ होता है और उसकी दवा कुछ और ही खाई जाती है, जिससे व्यक्ति और अधिक पीड़ा में दु:ख सहता है । यदि घर में अच्छा वैद्य आ जाए तो वह ठीक दवा बताता है जिससे रोग नष्ट हो जाता है । अब यदि रोगी संयम न रखे और खाद्य-अखाद्य, खट्टा-मीठा सब खाने लगे तो वैद्य का दोष नहीं । संयम के अभाव में मरीज़ का रोग नित्य बढ़ता ही जाता है । कपटी व्यक्ति यदि साधुसंगति में आकर बैठ भी जाता है तो वह दुर्मति के वशीभूत और द्वैत-भाव में ही नष्ट हो जाता है ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(गधे और स्वेच्छाचारी का रूपक)

चंदन का तेल, गंधमार्जार (मुश्कबिलाई) की सुगंधि, कपूर कस्तूरी आदि सब सुगंधियों को मिलाकर गंधी अष्टगंध तैयार करता है । जब कोई उसे लगाकर पारखी सज्जनों की सभा में आता है तो उसकी गंध से सभी महक उठते हैं । अगर वही अष्टगंध गधे को मल दी जाए तो वह उसके महत्त्व को नहीं समझता और गंदे स्थानों पर ही भटकता रहता है । साधुसंगति में गुरु के शब्द सुनकर जो प्रेमाभक्ति हृदय में धारण नहीं करता वह आँखों के होते भी अंधा है और कानों के रहते भी उसे सुनाई नहीं पड़ता ।

अंन्हाँ अखी होंदई बोला कंनाँ सुण न सुणंदा ।
बधा चटी जाइ भरंदा ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(पट्ट, कंबल–गुरमुख, मनमुख)

धोते होवनि उजले पाट पटंबर खरै अमोले ।
रंग बिरंगी रंगीअन सभे रंग सुरंगु अडोले ।
साहिब लै लै पैन्हदै रूप रंग रस वसनि कोले ।
सोभावंतु सुहावणे चज अचार सीगार विचोले ।
काला कंबलु उजला होइ न धोतै रंगि निरोले ।
साधसंगति गुर सबदु सुणि झाकै अंदरि नीरु विरोले ।
कपट सनेही उजड़ खोले ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(मनमुख तिल बूआड़ वाँग है)

खेतै अंदरि जंमि कै सभ दूँ उच्चा होइ विखाले ।
बूटु वडा करि फैलदा होइ चुहचुहा आपु समाले ।

वह तो समझो साधुसंगति में भी किसी मजबूरीवश ही जाता है ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(रेशम, कम्बल–गुरुमुख, मनमुख)

रेशम के बने अमूल्य वस्त्र धोने पर उज्ज्वल निकल आते हैं । वे चाहे जिस रंग में रंग लो सुन्दर रंग-बिरंगे हो जाते हैं । रूप, रंग और रस के रसिया कुलीन लोग उसे ले-लेकर पहनते हैं । उनके वे वस्त्र शोभायुक्त, सुहावने और शादी-ब्याहों में उनके अच्छे शृंगार का माध्यम बनते हैं । परन्तु काला कम्बल धोने पर न तो उज्ज्वल होता है और न ही उस पर कोई रंग चढ़ता है । इसी तरह साधुसंगति में जाकर जो गुरु के उपदेशों को सुनकर भी संसार-सागर को छानता रहता है अर्थात् सांसारिक वस्तुओं की इच्छा बनाए रखता है वह कपटी व्यक्ति उजड़े हुए खंडहर की तरह है ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(मनमुख फल-विहीन तिल के समान है)

तिल का पौधा खेत में पैदा हो सबसे ऊँचा दिखाई देता है । वह पौधा बड़ा होकर फैलता है और लहलहाकर अपने आपको सँभालता है ।

खेति सफल होइ लावणी छुटनि तिलु बूआड़ निराले ।
निहफल सारे खेत विचि जिउ सरवाड़ कमाद विचाले ।
साधसंगति गुर सबदु सुणि कपट सनेहु करनि बेताले ।
निहफल जनमु अकारथा हलति पलति होवनि मुह काले ।
जमपुरि जम जंदारि हवाले ॥ १६ ॥

पउड़ी १७

(मनमुख कैहाँ अर संख वाँग है)

उजल कैहाँ चिलकणा थाली जेवणि जूठी होवे ।
जूठि सुआहू माँजीऐ गंगा जल अंदरि लै धोवै ।
बाहरु सुचा धोतिआँ अंदरि कालख अंति विगोवै ।
मनि जूठे तनि जूठि है थुकि पवै मुहि वजै रोवै ।
साधसंगति गुर सबदु सुणि कपट सनेही गलाँ गोवै ।

जब खेती के पकने पर कटाई होती है तो फल-विहीन पौधों को छोड़ दिया जाता है और वे खेत में खड़े निराले ही लगते हैं । वह सारे खेत में बेकार समझा जाता है जैसे गन्ने के खेत में सरकडे को बेकार समझा जाता है । साधुसंगति में गुरु के शब्द सुनकर भी जो कपटी किसी अनुशासन में नही बँधते और बैतालों की तरह घूमते हैं उनका जन्म निष्फल हो जाता है और लोक-परलोक में उनके मुँह काले होते हैं। यमपुरी में वह यमों के हवाले कर दिये जाते हैं ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(मनमुख काँसे और शंख की तरह है)

काँसा उज्ज्वल और चमकीला दिखाई देता है। काँसे की थाली भोजन करने से जूठी हो जाती है । उसकी जूठन को राख से माँजकर गंगाजल में धोया जाता है। धोने से बाहर से तो साफ़ हो जाता है पर उसके अन्तर्मन में तो कालापन छिपा ही रहता है। शंख ऊपर से और अंदर से जूठा है क्योंकि उसमें फूँकने से थूक आदि जाता है । जब वह बजता है तो उसकी आंतरिक बुराई के कारण वह रोता है । साधुसंगति में गुरु के शब्द को सुनकर कपटी व्यक्ति बकवास ही करता है परन्तु बातों से ठीक उसी प्रकार तृप्ति नहीं होती जैसे खाँड़-खाँड़ करने से खाँड़ का स्वाद नहीं आता ।

गली त्रिपति न होवई खंडु खंडु करि साउ न भोवै ।
मखनु खाइ न नीरु विलोवै ॥ १७ ॥

पउड़ी १८

(अरिंड कनेर-कपट सनेही)

रुखाँ विचि कुरुख हनि दोवैं अरंड कनेर दुआले ।
अरंडु फल अरडोलीआँ फल अंदरि बीअ चितमिताले ।
निबहै नाहीं निजड़ा हरवरि आई होइ उचाले ।
कलीआँ पवनि कनेर नों दुरमति विचि दुरंग दिखाले ।
बाहरु लालु गुलालु होइ अंदरि चिटा दुबिधा नाले ।
साधसंगति गुर सबदु सुणि गणती विचि भवै भरनाले ।
कपट सनेह खेह मुहि काले ॥ १८ ॥

पउड़ी १९

(अक्क टिड्डा, जोक ते मनमुख)

वण विचि फलै वणासपति बहु रसु गंध सुगंध सुहंदे ।
अंब सदा फल सोहणै आडू सेव अनार फलंदे ।

अगर मक्खन खाना हो तो पानी को नहीं बिलोना चाहिए (दूध से ही मक्खन प्राप्त होता है) अर्थात् केवल बातों से नहीं, आचरण से अच्छा फल प्राप्त होता है ।। १७ ।।

पउड़ी १८

(रेंड़ी, कनेर--कपटी व्यक्ति)

वृक्षों में बुरे वृक्ष रेंड़ी और कनेर चारों तरफ़ नज़र आते हैं । रेंड़ी में फूल लगते और चितकबरे बीज उनके अंदर होते हैं । गहरी जड़वाला वह नहीं होता इसलिए हवा के तेज़ झोंके उसे उखाड़ देते हैं । कनेर में भी कलियाँ लगती हैं जो दुर्मति की तरह दुर्गंध बिखेरती हैं । बाहर तो वे लाल गुलाब की तरह होती हैं पर दुविधापूर्ण होने की तरह अन्दर से सफ़ेद होती है । साधुसंगति में गुरु के शब्द को सुनकर भी गणनाओं में खोया रहने वाला व्यक्ति संसार में भटकता रहता है । झूठा प्यार जतानेवाले के मुँह पर राख पड़ती है और उसका मुँह काला किया जाता है ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(आक, टिड्डा, जोंक और मनमुख)

वन में वनस्पति अनेक रंगों-गंधोंवाली शोभायमान होती है ।

दाख बिजउरी जामणू खिरणी तूत खजूरि अनंदे ।
पीलू पेझू बेर बहु केले ते अखनोट बणंदे ।
मूलि न भावनी अकटिडि अंम्रित फल तजि अकि वसंदे ।
जे थण जोक लवाईऐ दुधु न पीऐ लोहू गंदे ।
साधसंगति गुरु सबदु सुणि गणती अंदरि झाक झखंदे ।
कपट सनेहि न थेहि जुड़ंदे ॥ १९ ॥

पउड़ी २०

(सभ मनमुखाँ दे अउगुण मेरे अंदर हन)

डडू बगले संख लख अक जवाहे बिसीअरि काले ।
सिंबल घुग्घू चकवीआँ कड़छ हसति लख संढी नाले ।
पथर काँव रोगी घणे गदहु काले कंबल भाले ।
कैहे तिल बूआड़ि लख अकतिड अरंड तुमे चितराले ।
कली कनेर वखाणीऐ सभ अवगुण मै तनि भीहाले ।
साधसंगति गुर सबदु सुणि गुर उपदेसु न रिदे समाले ।
धिगु जीवणु बेमुख बेताले ॥ २० ॥

आम हमेशा सुन्दर फल माना जाता है और इसी तरह आडू , सेब, अनार भी फलते हैं। बिजौरी अंगूर, जामुन, खिरनी, शहतूत, खजूर आदि आनंददायक होते हैं । पीलू , पेझू , बेर , केले और अखरोट आदि भी लगते हैं । परन्तु आक के टिड्डे को ये सब अच्छे नहीं लगते और वह कूदकर आक पर ही बैठता है । जोंक को यदि गाय, भैंस के थन पर लगा दिया जाय तो वह दूध न पीकर गंदा लहू पीती है । साधुसंगति में गुरु-शब्द सुनकर भी जो सांसारिक हानि-लाभ की भावनाओं में भटकते रहते हैं वे झूठे प्रेम के कारण किसी ठिकाने पर नहीं पहुँच पाते ।। १९ ।।

पउड़ी २०

(सभी मनमुखों के अवगुण मेरे अंदर हैं)

मेंढक, बगुले, शंख, लाखों आक, जवास, काले साँप, सेमल वृक्ष, उल्लू , चकवी, कलछुल, हाथी, लाखों बाँझ स्त्रियाँ, पत्थर, कौवे, रोगी, गदहे, काले कम्बल, फल-विहीन तिल का पौधा, रेंड़ी, तुम्बी, कली, कनेर आदि जितने भी कहे जाते हैं, सबके भयंकर अवगुण मेरे तन में हैं । साधुसंगति में गुरु शब्द को सुनकर मैंने हृदय में गुरु-उपदेश को नहीं सँभाला है । मेरे जैसे विमुख और संतुलन-हीन व्यक्ति का जीवन धिक्कार है ।। २० ।।

पउड़ी २१

(निंदकाँ ते बे-मुखाँ दी गिणती)

लख निंदक लख बेमुखाँ दूत दुसट लख लूण हरामी ।
स्वामि धोही अकिरतघणि चोर जार लख लख पहिनामी ।
बाम्हण गाईं वंस घात लाइतबार हजार असामी ।
कूड़िआर गुरु गोप लख गुनहगार लख लख बदनामी ।
अपराधी बहु पतित लख अवगुणिआर खुआर खुनामी ।
लख निबासी दगाबाज लख सैतान सलामि सलामी ।
तूँ वेखहि हउ मुकरा हउ कपटी तूँ अंतरिजामी ।
पतित उधारणु बिरदु सुआमी ।। २१ ।। १७ ।। सताराँ ।।

पउड़ी २१

(निंदकों और विमुखों की गिनती)

लाखों ही निंदक, लाखों (गुरु से) विमुख और लाखों ही दुष्ट नमकहराम हैं । स्वामी के साथ द्रोह करनेवाले, कृतघ्न, चोर, यार और लाखों ही बदनाम व्यक्ति हैं । ब्राह्मण, गऊ और वंश के घातक, चुग़लखोर हज़ारों ही व्यक्ति हैं । लाखों ही झूठे गुरु-निंदक, गुनहगार और बदनाम भी लाखों हैं । अनेकों अपराधी, पतित, अवगुणी और झूठे व्यक्ति हैं । लाखों ही विभिन्न प्रकार के वेशधारी, दग़ाबाज़ और लाखों ही शैतान के साथ दुआ-सलाम करनेवाले अर्थात् मेल-जोल रखनेवाले हैं । तुम सब देख रहे हो कि मैं (सब कुछ पाकर भी) मुकर रहा हूँ । मैं कपटी हूँ और हे प्रभु ! तुम अन्तर्यामी हो । हे स्वामी ! तुम पतित-उद्धारण और विरपालक हो ।। २१ ।। १७ ।।

* * *

वार १८

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।।

पउड़ी १

(मंगलाचरण)

इक कवाउ पसाउ करि ओअंकार अनेक अकारा ।
पउणु पाणी बैसंतरो धरति अगासि निवासु विथारा ।
जल थल तरवर परबताँ जीअ जंत अगणत अपारा ।
इकु वरभंडु अखंडु है लख वरभंड पलक परकारा ।
कुदरति कीम न जाणीऐ केवडु कादरु सिरजणहारा ।
अंतु बिअंतु न पारावारा ।। १ ।।

पउड़ी २

(उहो ही)

केवडु वडा आखीऐ वडे दी वडी वडिआई ।
वडी हूँ वडा वखाणीऐ सुणि सुणि आखणु आख सुणाई ।

पउड़ी १

(मंगलाचरण)

एक ही ध्वनि (वाक्य) में ॐकार (प्रभु-शक्ति) ने प्रसार कर अनेकों आकार बना दिये । पवन, पानी, अग्नि, धरती, आकाश आदि निवासों का विस्तार कर दिया । जल, थल, पेड़, पर्वत और अनेकों जीव-जन्तु बना दिये । वह श्रेष्ठ कर्त्ता स्वयं अखंड है और पलक झपकते ही लाखों ब्रह्मांडों को पैदा कर सकता है । उसकी सृष्टि की सीमा को नहीं जाना जा सकता फिर भला वह स्रष्टा कितना बड़ा होगा ? उसके दोनों किनारों का कोई अन्त नहीं, वे अनन्त हैं ।। १ ।।

पउड़ी २

(वही)

उसे कितना बड़ा कहा जाए, उस बड़े का बड़प्पन महान है । जो सुना है उसे कहता हूँ कि वह बड़े से भी बड़ा बताया गया है ।

रोम रोम विचि रखिओनु करि वरभंड करोड़ि समाई ।
इकु कवाउ पसाउ जिसु तोलि अतोलु न तुलि तुलाई ।
वेद कतेबहु बाहरा अकथ कहाणी कथी न जाई ।
अबिगति गति किव अलखु लखाई ॥ २ ॥

पउड़ी ३

(कुदरत विच कारीगरी है)

जीउ पाइ तनु साजिआ मुहु अखी नकु कंन सवारे ।
हथ पैर दे दाति करि सबद सुरति सुभ दिसटि दुआरे ।
किरति विरति परकिरति बहु सासि गिरासि निवासु संजारे ।
राग रंग रस परसदे गंध सुगंध संधि परकारे ।
छादन भोजन बुधि बलु टेक बिबेक वीचार वीचारे ।
दाने कीमति ना पवै बेसुमार दातार पिआरे ।
लेख अलेख असंख अपारे ॥ ३ ॥

करोड़ों ब्रह्मांड उसके एक-एक रोम (बाल) में समाहित हैं । जिसने एक ही ध्वनि (वाक्) से सब प्रसार कर दिया उसकी तुलना में अन्य कोई नहीं रखा जा सकता । वह वेद और कतेबों के कथन से भी परे है । उसकी अकथनीय कहानी का वर्णन नहीं किया जा सकता । उसकी अव्यक्त गति को भला कैसे समझा-देखा जा सकता है ? ।। २ ।।

पउड़ी ३

(सृष्टि में कौशल है)

उसने जीव पैदा कर उसका शरीर बनाया और मुँह, नाक, आँख एवं कानों को सँवारा । उसने कृपापूर्वक हाथ-पाँव दिये और शब्द सुनने के लिए सुरति (कान) और शुभ देखने के लिए नेत्रों के द्वार दिये हैं । अपनी आजीविका कमाने और अन्य कार्य करने के लिये उसने शरीर में प्राण प्रविष्ट किये । राग, रंगों, गंध, सुगंधियों को मिलाने की विभिन्न कलाएँ प्रदान कीं । पहनने, खाने, बुद्धि, बल, आश्रय, विवेक, विचार आदि दिये । उस दाता के रहस्य को नहीं समझा जा सकता, वह प्यारा दानी अनन्त (गुणोंवाला) है । वह सभी प्रकार के लेखों से परे है ।। ३ ।।

पउड़ी ४

(कुदरत लेखे विच है)

पंजि ततु परवाणु करि खाणी चारि जगतु उपाइआ ।
लख चउरासीह जूनि विचि आवागवण चलतु वरताइआ ।
इकस इकस जूनि विचि जीअ जंत अणगणत वधाइआ ।
लेखै अंदरि सभ को सभना मसतकि लेखु लिखाइआ ।
लेखै सास गिरास दे लेख लिखारी अंतु न पाइआ ।
आपि अलेखु न अलखु लखाइआ ॥ ४ ॥

पउड़ी ५

(कुदरत भैअ विच्च है)

भै विचि धरति अगासु है निराधार भै भारि धराइआ ।
पउणु पाणी बैसंतरो भै विचि रखै मेलि मिलाइआ ।

पउड़ी ४

(सृष्टि लेखे में है)

पाँच तत्त्वों के जमाव में चार खानियों (अंडज, जेरज, स्वेदज, उद्भिज) से जगत पैदा किया गया है। चौरासी लाख योनियाँ बनाकर इनमें आवागमन का प्रपंच पैदा किया गया है। एक-एक योनि में अनेकों जीव-जन्तु उत्पन्न किये गये। सब लोग उत्तरदायी हैं और सबके मस्तक पर भाग्य के लेख लिखे हैं । प्रत्येक श्वास और भोजन का कौर भी लेखे में है। उस लेखक और उसके लेखों का रहस्य कोई भी नहीं जान सका है । वह स्वयं अलेख है और अलक्ष्य होकर किसी को भी दिखाई नहीं देता ।। ४ ।।

पउड़ी ५

(सृष्टि भय में है)

धरती और आकाश भय में है पर वह प्रभु जो किसी पर आश्रित नहीं, सब प्रकार के भयों को धारण करनेवाला है । पवन, पानी और अग्नि आदि को उसने भय (नियम) में रखकर और इन सबको मिला दिया है अर्थात् विश्व का निर्माण किया है। धरती को पानी में टिकाकर बिना खंभों के सहारे के आकाश को स्थित किया है ।

पाणी अंदरि धरति धरि विणु थंम्हा आगासु रहाइआ ।
काठै अंदरि अगनि धरि करि परफुलित सुफलु चलाइआ ।
नवी दुआरी पवणु धरि भै विचि सूरजु चंद चलाइआ ।
निरभउ आपि निरंजनु राइआ ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(कादर बे–ओड़क, पर हर थावें विआपक है)

लख असमान उचाणि चड़ि उचा होइ न अंबड़ि सकै ।
उची हूँ ऊचा घणा थाउ गिराउ न नाउ अथकै ।
लख पताल नीवाणि जाइ नीवा होइ न नीवै तकै ।
पूरबि पछमि उतराधि वखणि फेरि चउफेरि न ढकै ।
ओड़क मूलु न लभई ओपति परलउ अखि फरकै ।
फुलाँ अंदरि वासु महकै ।। ६ ।।

लकड़ी में आग रखी है और फिर लकड़ी के वृक्षों को फलों-फूलों से लादकर सार्थक बनाया है । नव द्वारों में वायु का अवागमन कर अर्थात् मानव शरीर को भली प्रकार बना-चलाकर उस (प्रभु) ने सूर्य-चन्द्र को भी अपने भय में रखकर चलाया है। वह निरंजन स्वयं अभय है ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(कर्त्ता अनन्त है पर सर्वत्र व्याप्त है)

लाखों आसमानों की ऊँचाई पर चढ़कर भी कोई उस ऊँचे प्रभु तक पहुँच नहीं सकता । वह ऊँचे से ऊँचा है; उसका कोई स्थान, गाँव अथवा नाम नहीं है । वह सर्वत्र है पर फिर भी थकान उसे नहीं होती । लाखों पातालों जितना नीचे कोई हो जाए पर फिर भी उसको नहीं देख सकता। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण आदि दिशाओं का घेरा भी उस प्रभु को नहीं ढाँप सकता । उसका अन्त बिलकुल नहीं पाया जा सकता; वह उत्पत्ति और प्रलय आँख झपकते जितने समय में ही कर देता है । जैसे फूल में गंध महकती है वैसे ही वह प्रभु भी सर्वत्र परिव्याप्त है ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(कुदरत दा भेत कादर जाणदा है)

ओअंकारि अकारु करि थिति वारु न माहु जणाइआ ।
निरंकारु आकारु विणु एकंकार न अलखु लखाइआ ।
आपे आपि उपाइ कै आपे अपणा नाउ धराइआ ।
आदि पुरखु आदेसु है है भी होसी होंदा आइआ ।
आदि न अंतु बिअंतु है आपे आपि न आपु गणाइआ ।
आपे आपु उपाइ समाइआ ॥ ७ ॥

पउड़ी ८

(कादर कीते तों अगंम है)

रोम रोम विचि रखिओनु करि वरभंड करोड़ि समाई ।
केवडु वडा आखीऐ कितु घरि वसै केवडु जाई ।

पउड़ी ७

(सृष्टि का रहस्य कर्त्ता ही जानता है)

ॐकार ने सृष्टि-रचना के दिन, महीने और तिथि के बारे में किसी को नहीं बताया । उस निराकार ने, जो स्वयं एक अपने आप में ही स्थित था, किसी को भी अपना अलक्ष्य स्वरूप नहीं दिखाया । स्वयं ही सबको पैदा किया और स्वयं ही अपना नाम भी स्थापित किया (ताकि जीवों का कल्याण हो सके) । उस आदिपुरुष को प्रणाम है जो अब भी है, भविष्य में भी होगा तथा पहले भी था । उसका आदि-अन्त नहीं, वह अनन्त है पर फिर भी वह अपने आपको कभी जताता नहीं । वह स्वयं सृष्टि उत्पन्न करता है और स्वयं ही उसे अपने में समाहित कर लेता है ।। ७ ।।

पउड़ी ८

(कर्त्ता सृष्टि के लिए अगम्य है)

उसने एक-एक रोम में करोड़ों ब्रह्मांडों को समाहित कर रखा है । उसे कितना बड़ा कहा जाए और क्या बताया जाए कि वह कितने बड़े घर में रहता है और उसका स्थान कितना बड़ा है ? उसका एक वाक्य भी अपरिमित है जिसका मूल्यांकन ज्ञान के लाखों दरिया भी नहीं कर सकते ।

इकु कवाउ अमाउ है लख दरीआउ न कीमति पाई ।
परवदगारु अपारु है पारावारु न अलखु लखाई ।
एवडु वडा होइ कै किथै रहिआ आपु लुकाई ।
सुर नर नाथ रहे लिव लाई ॥ ८ ॥

पउड़ी ९

(कादर कीते तों अगंम है)

लख दरीआउ कवाउ विचि अति असगाह अथाह वहंदे ।
आदि न अंतु बिअंतु है अगंम अगोचर फेर फिरंदे ।
अलखु अपारु वखाणीऐ पारावारु न पार लहंदे ।
लहरि तरंग निसंग लख सागर संगम रंग रवंदे ।
रतन पदारथ लख लख मुलि अमुलि न तुलि तुलंदे ।
सदके सिरजणहारि सिरंदे ॥ ९ ॥

पउड़ी १०

(कादर निरलेप ते पूरन है)

परवदगारु सलाहीऐ सिरठि उपाई रंग बिरंगी ।
राजिकु रिजकु सबाहिदा सभना दाति करे अणमंगी ।

वह परवरदिगार अपार है, उसका आदि-अन्त अलक्ष्य है, उसे देखा नहीं जा सकता। इतना बड़ा होकर भी उसने अपने आपको कहाँ छिपाकर रखा है ? यह जानने के लिए देवता, मनुष्य और अनेकों नाथ आदि सदैव ध्यान लगाये हुए हैं ।। ८ ।।

पउड़ी ९

(कर्त्ता सृष्टि के लिए अगम्य है)

उसके हुक्म के अन्तर्गत लाखों गहरे और अथाह जीवन रूपी दरिया बहते हैं। उन जीवनधाराओं का भी आदि-अन्त नहीं समझा जा सकता । वे अनन्त, अगम्य एवं अगोचर है; पर फिर भी उस प्रभु में ही चक्र लगाते रहते हैं । उस अलक्ष्य अपार कहे जानेवाले प्रभु का वे अन्त नहीं जान सकते । लाखों लहरों और तरंगों वाले दरिया समुद्र में मिलकर उसी के रंग में रंगे रहते हैं । उस सागर में लाखों मूल्यवान रत्न पदार्थ हैं जो वास्तव में अमूल्य हैं । उस कर्त्ता पर मैं बलिहारी जाता हूँ ।। ९ ।।

पउड़ी १०

(कर्ता निर्लिप्त और पूर्ण है)

उस पोषक परमात्मा की स्तुति की जानी चाहिए जिसने रंग-बिरंगी

किसै जिवेहा नाहि को दुबिधा अंदरि मंदी चंगी ।
पारब्रहमु निरलेपु है पूरनु ब्रहमु सदा सहलंगी ।
वरनाँ चिहनाँ बाहराँ सभना अंदरि है सरबंगी ।
पउणु पाणी बैसंतरु संगी ॥ १० ॥

पउड़ी ११

(माइक उतपती कारण)

ओअंकारि आकारु करि मखी इक उपाई माइआ ।
तिनि लोअ चउदह भवणु जल थलु महीअलु छलु करि छाइआ ।
ब्रहमा बिसन महेसु त्रै दस अवतार बजारि नचाइआ ।
जती सती संतोखीआ सिध नाथ बहु पंथ भवाइआ ।
काम करोध विरोध विचि लोभ मोहु करि ध्रोहु लड़ाइआ ।
हउमै अंदरि सभु को सेरहु घटि न किनै अखाइआ ।
कारणु करते आपु लुकाइआ ॥ ११ ॥

सृष्टि उत्पन्न की है । वह सबको रोज़ी देनेवाला और सबको बिना माँगे दान देनेवाला है । कोई भी किसी के जैसा नहीं है और प्रत्येक जीव अपनी दुबिधा के अनुपात में अच्छा और बुरा है । परब्रह्म होकर वह सबसे निर्लिप्त है और पूर्णब्रह्म के रूप में वह सदा सबके साथ है । वह वर्णों, प्रतीकों आदि से परे है परन्तु सबमें समान रूप से परिव्याप्त है । वह पवन, पानी और अग्नि आदि तत्त्वों का भी संगी है अर्थात् इन तत्त्वों की शक्ति भी वही है ।। १० ।।

पउड़ी ११

(माया-उत्पत्ति-कारण)

ॐकार ने आकार धारण कर मक्खी रूप माया को पैदा किया जिसने तीनों लोक, चौदह भुवनों, जल-स्थल-पाताल आदि सबको भरपूर रूप से छला। ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों और दशावतारों को उसने संसार रूपी बाज़ार में नचा दिया। यतियों, सतियों, संतोषी जीवों, सिद्धों, नाथों को भी उसने अनेकों पंथों में भटका दिया। सभी में काम, क्रोध, विरोध, लोभ, मोह, छल आदि भरकर सबको आपस में लड़ा दिया। ये सभी अहम्-भाव से भरे हुए हैं अर्थात् अंदर से खोखले हैं पर कोई भी अपने आपको अपूर्ण नहीं मानता (सभी अपने आपको सोलह छटाक का सेर ही मानते हैं) ! इस सबका कारण क्या है यह भी उस कर्त्ता ने छिपाकर ही रखा है ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(पातशाहाँ दे पातशाही हुकम)

पातिसाहाँ पातिसाहु है अबचलु राजु वडी पातिसाही ।
केवडु तखतु वखाणीऐ केवडु महलु केवडु दरगाही ।
केवडु सिफति सलाहीऐ केवडु मालु मुलखु अवगाही ।
केवडु माणु महतु है केवडु लसकर सेव सिपाही ।
हुकमै अंदरि सभ को केवडु हुकमु न बेपरवाही ।
होरसु पुछि न मता निबाही ॥ १२ ॥

पउड़ी १३

(कीते न करता विसारिआ)

लख लख ब्रहमे वेद पढ़ि इकस अखर भेदु न जाता ।
जोग धिआन महेस लख रूप न रेख न भेखु पछाता ।

पउड़ी १२

(बादशाहों का शाही हुक्म)

वह (परमात्मा) सम्राटों का भी सम्राट् है जिसका राज्य स्थिर है और बादशाहत बहुत बड़ी है । उसका कितना बड़ा तख्त है, कितना बड़ा महल है और कितना बड़ा दरबार है ? कैसे उसका गुणानुवाद किया जाए और कैसे पता चले कि उसका खज़ाना और क्षेत्र कितना बड़ा है । उसका प्रताप और गौरव कितना बड़ा है और उसकी सेवा में कितने लश्कर और सिपाही हैं । सब कुछ हुक्म अर्थात् एक विधान में है पर उस प्रभु का हुक्म कितना शक्तिशाली है कि उसमें ज़रा सी भी लापरवाही नहीं होती । वह इस सबका प्रबन्ध किसी अन्य से पूछ कर नहीं करता ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(रचना ने रचयिता को भुला दिया)

ब्रह्मा ने लाखों वेद पढ़कर भी एक अक्षर (परमात्मा) के रहस्य को न जाना। शिव लाखों प्रकार से योग-ध्यान लगाते हैं पर फिर भी (परमात्मा के) रूप, रंग और वेश को नहीं पहचाना जा सका । विष्णु ने जीव-रूप में लाखों प्रकार के अवतार धारण किये परन्तु फिर भी तिल मात्र भी उस प्रभु की पहचान न हो सकी।

**लख अवतार अकार करि तिलु वीचारु न बिसन पछाता ।
लख लख नअतन नाउ लै लख लख सेख विसेख न ताता ।
चिरु जीवणु बहु हंढणे दरसन पंथ न सबदु सिञाता ।
दाति लुभाइ विसारनि दाता ।। १३ ।।**

पउड़ी १४

(कीता करते नूँ किकूँ पावे ? गाडी राह)

**निरंकार आकारु करि गुर मूरति होइ धिआन धराइआ ।
चारि वरन गुरसिख करि साधसंगति सच खंडु वसाइआ ।
वेद कतेबहु बाहरा अकथ कथा गुर सबदु सुणाइआ ।
वीहाँ अंचरि वरतमानु गुरमुखि होइ इकीह लखाइआ ।
माइआ विचि उदासु करि नामु दानु इसनानु दिड़ाइआ ।
बारह पंथ इकत्र करि गुरमुखि गाडी राहु चलाइआ ।
पति पउड़ी चड़ि निज घरि आइआ ।। १४ ।।**

शेषनाग ने भी लाखों नये-नये नाम उस प्रभु के स्मरण किये पर फिर भी कुछ विशेष उसके बारे में न जान सका । अनेकों चिरंजीवियों ने बहुत समय तक जीवन जिया पर वे सब एवं अनेकों दर्शन भी उस शब्द रूपी ब्रह्म को न जान सके । सभी उस प्रभु के दिये दान में लीन हो गये और उस दानी को भुला दिया ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(रचना रचयिता को कैसे पाए ? राजमार्ग)

निराकार प्रभु ने आकार धारण किया और गुरु की मूर्ति के रूप में स्थापित हो सबको प्रभु का ध्यान कराया (यहाँ संभवतया गुरु नानक की ओर संकेत है)। उसने चारों वर्णों को शिष्य बनाया और साधुसंगति रूपी सत्य देश बसा दिया । वेद-कतेबों से भी परे उस अकथनीय गुरु शब्द की महिमा लोगों को सुनाई । जो पहले बीसों प्रकार के विषयों में लीन थे उन्हें अब एक ईश्वर-भक्ति में लगा दिया। उनको माया में उदासीन बनाये रखा और नाम-दान-स्नान के महत्त्व को समझाया। बारह पंथों को एकत्र कर गुरुमुखों का एक राजमार्ग बना दिया। उस राह पर चलकर सभी सम्मान की सीढ़ी पर चढ़कर अपने मूल रूप में अवस्थित हो गये।। १४ ।।

पउड़ी १५

(गाडी राह दे राही गुरुमुख)

गुरमुखि मारगि पैरु धरि दुबिधा वार कुवाट न धाइआ ।
सतिगुर दरसनु देखि कै मरदा जांदा नदरि न आइआ ।
कंनी सतिगुर सबदु सुणि अनहद रुणझुणकारु सुणाइआ ।
सतिगुर सरणी आइकै निहचलु साधू संगि मिलाइआ ।
चरण कवल मकरंद रसि सुखसंपद विचि सहजि समाइआ ।
पिरम पिआला अपिउ पीआइआ ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(गुरमुख दा जीवन मुकत पद)

साधसंगति करि साधना पिरम पिआला अजरु जरणा ।
पैरी पै पा खाकु होइ आपु गवाइ जीवंदिआँ मरणा ।
जीवण मुकति वखाणीऐ मरि मरि जीवणु डुबि डुबि तरणा ।

पउड़ी १५

(राजमार्ग के पथिक गुरुमुख)

व्यक्ति गुरुमुख होने की राह पर चलकर फिर दुबिधा के कुमार्ग पर पाँव नहीं रखता। सद्‌गुरु के दर्शन के बाद फिर मरना-जीना, आना-जाना कुछ भी दिखाई नहीं देता। कान से सद्‌गुरु का शब्द सुनकर वह मानों अनहद शब्द में लीन हो जाता है। सद्‌गुरु की शरण में आकर अब व्यक्ति स्थिर करनेवाली सद्‌संगति में आ मिलता है। वह चरण-कमलों के रस के भंडार में स्वत: ही समाहित हो जाता है। गुरुमुख व्यक्ति प्रेम के न पिये जा सकनेवाले प्याले को पीकर मस्त रहते हैं ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(गुरुमुख का जीवन-मुक्त पद)

साधुसंगति में साधना करके न सहा जा सकनेवाला प्रेम-प्याला पिया-सहा जाता है । तब व्यक्ति चरणों में गिरकर अहम्-भाव गँवाकर जीवित भाव से भर जाता है । जीवन-मुक्त उसको कहा जाता है जो माया-भाव से मृत होकर प्रभु-प्रेम में जी उठा है । वह शब्द में सुरति को लीन करके अमृतपान कर अहम्-भाव को

सबदु सुरति लिव लीणु होइ अपिउ पीअणु तै अउचर चरणा ।
अनहद नाद अवेस करि अंम्रित वाणी निझरु झरणा ।
करण कारण समरथु होइ कारणु करणु न कारणु करणा ।
पतित उधारण असरण सरणा ॥ १६ ॥

पउड़ी १७

(गुरमुख अलिपत रहि के अते कशट सहार के उपकार करदे हन)

गुरमुखि भै विचि जंमणा भै विचि रहिणा भै विचि चलणा ।
साधसंगति भै भाइ विचि भगति वछलु करि अछलु छलणा ।
जल विचि कवल अलिपत होइ आस निरास वलेवै वलणा ।
अहरणि घण हीरे जुगति गुरमति निहचलु अटलु न टलणा ।
परउपकार वीचारि विचि जीअ दैआ मोम वाँगी ढलणा ।
चारि वरन तंबोल रसु आपु गवाइ रलाइआ रलणा ।
वटी तेलु दीवा होइ बलणा ॥ १७ ॥

चर जाता है अर्थात् नष्ट कर देता है । वह अनहद नाद से आवेष्टित हो सदैव अमृत वाणी की वर्षा करता रहता है । वह सभी कारणों का कारण बन चुका होता है पर फिर भी कोई (पर-घातक) काम नहीं करता । ऐसा व्यक्ति पापियों का उद्धार करता है और शरणार्थियों को शरण देता है ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(गुरुमुख निर्लिप्त रहकर और कष्ट सहकर दूसरों का भला करते हैं)

गुरुमुख व्यक्ति प्रभु की इच्छा में ही पैदा होते, रहते और चलते हैं । सद्संगति के भय और भाव अर्थात् आज्ञा और प्रेम में ही वे भक्त-वत्सल भगवान को भी मोहित कर लेते हैं । जल में कमल के समान निर्लिप्त होकर वे आशाओं-निराशाओं के चक्करों से परे रहते हैं । वे नेहाई और हथौड़े के बीच हीरे की तरह अटल रहते हैं । गुरुमत की युक्ति से जीवन जीते हैं । उसके मन में सदैव परोपकार का विचार बना रहता है और जीव-दया में वे मोम की तरह पिघल उठते हैं । पान में चार पदार्थों के मिलकर एकरूप हो जाने की तरह गुरुमुख भी सबके साथ समायोजित हो जाते हैं और दीपक के रूप में तेल और बत्ती बनकर जलते हैं ।। १७ ।।

पउड़ी १८

(गुरमुखाँ द़ी मुकती दी जुगति)

सतु संतोखु दइआ धरमु अरथ करोड़ि न ओड़कु जाणै ।
चारि पदारथ आखीअनि होइ लखूणि न पलु परवाणै ।
रिधी सिधी लख लख निधि निधान लख तिलु न तुलाणै ।
दरसन द्रिसटि संजोग लख सबद सुरति लिव लख हैराणे ।
गिआन धिआन सिमरण असंख भगति जुगति लखनेत वखाणै ।
पिरम पिआला सहजि घरु गुरमुखि सुख फल चोज विडाणै ।
मति बुधि सुधि लख मेलि मिलाणै ॥ १८ ॥

पउड़ी १९

(सच्च ही स्रेशट आचार है)

जप तप संजम लख लख होम जग नईवेद करोड़ी ।
वरत नेम संजम घणे करम धरम लख तंदु मरोड़ी ।

पउड़ी १८

(गुरुमुखों का सुखफल और उसकी महिमा)

सत्य, संतोष, दया, धर्म, अर्थ आदि करोड़ों प्रकार की संपत्तियाँ हैं पर उस (सुख-फल) के अन्त को नहीं जान सके । चार पदार्थ (पुरुषार्थ) कहे जाते हैं उनके लाखों गुणा भी हो जाए तो भी (सुख-फल के) एक पल के बराबर नहीं हैं । ऋद्धियाँ, सिद्धियाँ और लाखों निधियाँ उसके एक तिल के बराबर भी नहीं हैं। शब्द सुरति के मेल को देखकर अनेकों दर्शन, ध्यान आदि के संयोग हैरान है। ज्ञान, ध्यान, स्मरण एवं असंख्य भक्ति की युक्तियाँ बताई जाती हैं परन्तु सहज अवस्था में पहुँचकर प्रभु-प्रेम के प्याले का सुखफल जो गुरुमुख को प्राप्त होता है उसकी महिमा तो आश्चर्यजनक है । इस अवस्था में त़ो मति, बुद्धि एवं लाखों क़िस्म की शुद्धियों का संयोग हो जाता है ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(सत्य ही श्रेष्ठ आचरण है)

लाखों ही जप, तप, संयम, लाखों होम, यज्ञ और करोड़ों नैवेद्य की क्रियाएँ हैं। व्रत, नियम, संयम, कर्म-धर्म अनेकों हैं पर वे सब कच्चे धागे के समान हैं ।

तीरथ पुरब संजोग लख पुंन दानु उपकार न ओड़ी ।
देवी देव सरेवणे वर सराप लख जोड़ विछोड़ी ।
दरसन वरन अवरन लख पूजा अरचा बंधन तोड़ी ।
लोक वेद गुण गिआन लख जोग भोग लख झाड़ि पछोड़ी ।
सचहु ओरै सभ किहु लख सिआणप सभा थोड़ी ।
उपरि सचु अचारु चमोड़ी ॥ १९ ॥

पउड़ी २०

(सच्चा राज)

सतिगुर सचा पातिसाहु साधसंगति सचु तखतु सुहेला ।
सचु सबदु टकसाल सचु असटधातु इक पारस मेला ।
सचा हुकमु वरतदा सचा अमरु सचो रस केला ।
सची सिफति सलाह सचु सचु सलाहणु अंम्रित वेला ।
सचा गुरमुखि पंथु है सचु उपदेस न गरबि गहेला ।

अनेकों ही तीर्थ, पर्व, संयोग और लाखों ही पुण्य, दान, उपकार आदि हैं । देवी-देवताओं की पूजा के लाखों प्रकार और जोड़, तोड़, वर, शाप भी अनेकों हैं । अनेकों ही दर्शन, वर्ण, अवर्ण और लाखों प्रकार की पूजा-अर्चना के बंधनों को तोड़नेवाले भी अनेक हैं । लोकाचार, गुण, ज्ञान, योग, भोग एवं अन्य लीपा-पोती के साधन अनेकों हैं परन्तु ये सब चातुर्यपूर्ण कलाएँ सत्य से दूर ही रह जाती हैं उसे छू नहीं पातीं । सत्य से भी ऊपर सत्य-आचरण है अन्य सब बेकार हैं ।। १९ ।।

पउड़ी २०

(सच्चा राज)

सद्‌गुरु (परमात्मा) सच्चा सम्राट् है और साधुसंगति सच्चा सिंहासन है जो परम सुखदायी है । सच्चा शब्द एक ऐसी सच्ची टकसाल है जहाँ अष्ट धातुओं से अर्थात् विभिन्न वर्णों के व्यक्ति पारस गुरु से मिलते हैं (और सोना बन जाते हैं)। वहाँ सच्चा हुक्म ही चलता है क्योंकि सत्य का विधान ही रस और आनन्द देनेवाला है । वहाँ भोर में ही गुणानुवाद भी सच्चा और सच का ही होता है । गुरुमुख पंथ भी सच्चा और अहंकार से विहीन होकर वहाँ उपदेश भी सच्चा ही होता है ।

आसा विचि निरास गति सचा खेलु मेल सचु खेला ।
गुरमुखि सिखु गुरू गुर चेला ॥ २० ॥

पउड़ी २१

(गुरुमुखाँ दी अलेपता)

गुरमुखि हउमै परहरै मनि भावै, खसमै दा भाणा ।
पैरी पै पा खाक होइ दरगह पावै माणु निमाणा ।
वरतमान विचि वरतदा होवणहार सोई परवाणा ।
कारणु करता जो करै सिरि धरि मंनि करै सुकराणा ।
राजी होइ रजाइ विचि दुनीआँ अंदरि जिउ मिहमाणा ।
विसमादी विसमाद विचि कुदरति कादर नो कुरबाणा ।
लेप अलेप सचा निरबाणा ॥ २१ ॥

गुरुमुख व्यक्ति आशाओं में भी उदासीन बने रहते हैं और हमेशा सत्य का खेल ही खेलते हैं । ऐसे ही गुरुमुख व्यक्ति गुरु और गुरु उनके चेले बन जाते हैं ।। २० ।।

पउड़ी २१

(गुरुमुखों की निर्लिप्तता)

गुरुमुख अहम् को त्याग देता है और उसे प्रभु की रज़ा ही अच्छी लगती है। वह विनम्र हो चरणों में गिरकर चरण-धूलि बन जाता है तथा प्रभु की दरगाह में सम्मान प्राप्त करता है । वह सदैव वर्तमान में विचरण करता है अर्थात् समसामयिक परिस्थितियों को आँखों से ओझल नहीं करता और साथ ही साथ जो होनेवाला है उसे स्वीकार करता है । वह कर्त्ता जो भी कारण करे (बनाए) , उसे वह सधन्यवाद सिरमाथे पर धारण करता है, वह प्रभु की रज़ा में खुश रहता है और अपने आपको दुनिया में एक मेहमान के समान समझता है । वह अद्भुत परमात्मा के प्रेम में विभोर बना रहता है और कर्त्ता की लीलाओं पर कुर्बान जाता है । वह संसार में रहता हुआ भी निर्लिप्त और निर्वाण-अवस्था में रहता है ।। २१ ।।

पउड़ी २२

(हुकमी बंदा सदा हुकम विच्च)

हुकमी बंदा होइ कै साहिबु दे हुकमै विचि रहणा ।
हुकमै अंदरि सभ को सभना आवटण है सहणा ।
दिलु दरीआउ समाउ करि गरबु गवाइ गरीबी वहणा ।
वीह इकीह उलंघि कै साधसंगति सिंघासणि बहणा ।
सबदु सुरति लिवलीणु होइ अनभउ अघड़ घड़ाए गहणा ।
सिदक सबूरी साबता साकरु सुकरि न देणा लहणा ।
नीरि न डुबणु अगि न दहणा ।। २२ ।।

पउड़ी २३

(गुरू अते सिक्ख दी प्रीति)

मिहर मुहबति आसकी इसकु मुसकु किउ लुकै लुकाइआ ।
चंदन वासु वणासपति होइ सुगंधु न आपु गणाइआ ।

पउड़ी २२

(आज्ञाकारी सेवक सदा आज्ञा में)

आज्ञाकारी सेवक बनकर साहिब परमात्मा के हुक्म में ही रहना चाहिए । सभी हुक्म के अन्दर है और सबको उस प्रभु-आज्ञा की तप्तता को सहना ही है । दिल को दरिया बनाये और अहम्-भाव गँवाकर उसमें विनम्रता का जल बहाये । सांसारिक कार्यकलापों को परे छोड़कर साधुसंगति के सिंहासन पर बैठना चाहिए । शब्द में सुरति को लीन कर अभय होने की अवस्था के रूप वाला गहना बनवाये । विश्वास और संतोष में खरा बना रहे; शुक्रगुज़ारी का लेन-देन बनाये रखे तथा इसके अलावा अन्य सांसारिक लेन-देन से दूर रहे । ऐसा व्यक्ति फिर न तो (माया के) जल में डूबता है और न ही (तृष्णा की) आग में जलता है ।। २२ ।।

पउड़ी २३

(गुरु और सिक्ख की प्रीति)

(गुरु की) कृपा, प्रेम, मुहब्बत और गंध आदि छिपाए नहीं छिपते और

नदीआँ नाले गंग मिलि होइ पवितु न आखि सुणाइआ ।
हीरे हीरा बेधिआ अणी कणी होइ रिदै समाइआ ।
साधसंगति मिलि साध होइ पारस मिलि पारस होइ आइआ ।
निहचउ निहचलु गुरमती भगतिवछलु होइ अछलु छलाइआ ।
गुरमुखि सुखफलु अलखु लखाइआ ॥ २३ ॥ १८ ॥ अठाराँ ॥

स्वत: ही प्रकट होते रहते है । चंदन सारी वनस्पति को सुगंधित करता है और अपने आपको इस कार्य में जनाता नहीं (फिर भी लोग जान जाते हैं)। नदी-नाले गंगा में मिलकर चुपचाप पवित्र हो जाते हैं और कहते नहीं फिरते कि हम पवित्र हो गये हैं। हीरे से हीरा बिंध जाता है अर्थात चीर दिया जाता है और हीरे को बेधनेवाला बर्मा हीरे को मानो हृदय में धारण कर लेता है (वैसे ही गुरु भी शिष्य का मन बेधकर उसे अपने हृदय में स्थान दे देता है) । गुरु का शिष्य साधुसंगति में मिलकर स्वयं ऐसा साधु स्वभाव का हो जाता है मानों पारस को स्पर्श कर कोई स्वयं पारस बन जाए । गुरु की स्थिर शिक्षा लेकर सिक्ख का मन भी शान्त हो जाता है और प्रभु भी भक्त-वत्सल बनकर स्वयं छला जाता है । उस अलक्ष्य का गुरुमुखों को दर्शन देना ही गुरुमुखों का सुखफल है ।। २३ ।। १८ ।।

* * *

वार १९

ੴ सतिगुर प्रसादि ।।

पउड़ी १

(मंगलाचरण)

गुरमुखि एकंकार आपि उपाइआ ।
ओअंकारि अकारु परगटी आइआ ।
पंच तत विसतारु चलतु रचाइआ ।
खाणी बाणी चारि जगतु उपाइआ ।
कुदरति अगम अपारु अंतु न पाइआ ।
सचु नाउ करतारु सचि समाइआ ॥ १ ॥

पउड़ी २

(चौरासी लक्ख जूनि विच्च उत्तम जनम)

लख चउरासीह जूनि फेरि फिराइआ ।
माणस जनमु दुलंभु करमी पाइआ ।

पउड़ी १

(मंगलाचरण)

एक ही अद्वितीय स्वस्थित (एकंकार) प्रभु ने (जगत्-उद्धार के लिए) गुरुमुख पैदा किया । उस प्रभु ने ही ॐकार-रूप में प्रकट हो आकार धारण किया है । पाँचों तत्त्वों के विस्तार (और संयोग) से संसार रचा गया और जगत की चारों खानियाँ और वाणियाँ (परा, पश्यन्ति, मध्यमा, बैखरी) बनाई । उसकी लीला अगम-अपार है । उसका अंत नहीं पाया जा सकता । उस कर्त्ता का नाम भी सत्य है और वह सत्य में ही (एकात्म-रूप से) लीन है ।। १ ।।

पउड़ी २

(चौरासी लाख योनिया में उत्तम योनि)

चौरासी लाख योनियों के फेर में भटककर दुर्लभ मनुष्य-देह अच्छे कर्मों के फलस्वरूप मिली है । उत्तम गुरुमुख मार्ग में चलकर जीव ने अहम्-भाव गँवा दिया है तथा साधुसंगति की मर्यादा को निभाते हुए चरणों में आ पड़ा है ।

उतमु गुरमुखि पंथु आपु गवाइआ ।
साधसंगति रहरासि पैरीं पाइआ ।
नामु दानु इसनानु सचु दिड़ाइआ ।
सबदु सुरति लिव लीणु भाणा भाइआ ॥ २ ॥

पउड़ी ३

(चल्लण जुगति पराहुणा)

गुरमुखि सुघड़ु सुजाणु गुर समझाइआ ।
मिहमाणी मिहमाणु मजलसि आइआ ।
खावाले सो खाणु पीऐ पीआइआ ।
करै न गरबु गुमाणु हसै हसाइआ ।
पाहुनड़ा परवाणु काजु सुहाइआ ।
मजलस करि हैराणु उठि सिधाइआ ॥ ३ ॥

गुरुमुख पंथ में नाम-स्मरण, दान, स्नान और सत्य-आचरण को दृढ़ता से अपनाया है और मनुष्य ने शब्द में सुरति को लीनकर प्रभु-रजा को अच्छा माना है ।। २ ।।

पउड़ी ३

(गुरुमुख अतिथि है)

गुरु द्वारा समझाया हुआ गुरुमुख सुन्दर सुजान है और समझता है कि जीव मेहमान बनकर ही इस संसार की महफ़िल में आया है । जो परमात्मा खिलाता है वही खाता है और जो पिलाता है वही पीता है । गुरुमुख गर्व और गुमान नहीं करता और उस प्रभु की दी खुशी में ही प्रसन्न होता है । जो अतिथि भली प्रकार से यहाँ रह जाता है वही उम्र प्रभु-दरबार में स्वीकृत होता है । वह चुपचाप यहाँ से उठकर चल पड़ता है और सारी महफ़िल को हैरानी में डाल देता है (क्योंकि आम व्यक्ति को इस संसार रूपी महफ़िल छोड़ने से काफ़ी तकलीफ़ होती है पर गुरुमुख निर्लिप्त भाव से यहाँ से उठकर चला जाता है) ।। ३ ।।

पउड़ी ४

(चल्लण जुगति–गोइलवासा)

गोइलड़ा दिन चारि गुरमुखि जाणीऐ ।
मंझी लै मिहवारि चोज विडाणीऐ ।
वरसै निझर धारि अंम्रित वाणीऐ ।
वंझुलीऐ झीगारि मजलसि माणीऐ ।
गावणि माझ मलारि सुघड़ु सुजाणीऐ ।
हउमै गरबु निवारि मनि वसि आणीऐ ।
गुरमुखि सबदु वीचारि सचि सिञाणीऐ ॥ ४ ॥

पउड़ी ५

(चल्लण जुगति–सराँइ दा वासी)

वाट वटाउ राति सराईं वसिआ ।
उठ चलिआ परभाति मारगि दसिआ ।

पउड़ी ४

(चलने की युक्ति)

गुरुमुख व्यक्ति इस संसार को चार दिन का ठिकाना ही मानता है जहाँ गाय-भैंस अर्थात् धन-धान्य के साथ अनेकों लीला-प्रपंच किये जाते हैं। इसी जगत में गुरुमुखों के लिए अमृत की अनवरत धारा बरसती है और वे बाँसुरी की धुनों पर इस मज़्लिस का आनन्द उठाते हैं । सुन्दर सुजान लोग यहीं पर माझ और मल्हार राग का गायन करते हैं । अर्थात् वर्तमान को पूरा भोगते हैं, परन्तु साथ ही साथ अहम्-भाव को गँवाकर मन को वश में कर लेते हैं । गुरुमुख व्यक्ति शब्द के चिन्तन के बाद सत्य को पहचान लेते हैं ।। ४ ।।

पउड़ी ५

(सराय का ठिकाना)

पथिक रास्ते में रात को सराय में ठहरा और बताये हुए मार्ग पर प्रातः उठकर चल दिया । वह पथिक न तो किसी के प्रति ईर्ष्यालु हुआ और न ही उसे किसी के प्रति मोह हुआ ।

नाहि पराई ताति न चिति रहसिआ ।
मुए न पुछै जाति विवाहि न हसिआ ।
दाता करे जु दाति न भुखा तसिआ ।
गुरमुखि सिमरणु वाति कवलु विगसिआ ॥ ५ ॥

पउड़ी ६

(चल्लण जुगति)

दीवाली दी राति दीवे बालीअनि ।
तारे जाति सनाति अंबरि भालीअनि ।
फुलाँ दी बागाति चुणि चुणि चालीअनि ।
तीरथि जाती जाति नैण निहालीअनि ।
हरि चंदउरी झाति वसाइ उचालीअनि ।
गुरमुखि सुख फल दाति सबदि सम्हालीअनि ॥ ६ ॥

पउड़ी ७

(चल्लण जुगति-पेका)

गुरमुखि मनि परगासु गुरि उपदेसिआ ।
पेईअड़ै घरि वासु मिटै अंदेसिआ ।

उसने न तो किसी मरने वाले की जाति पूछी और नहीं किसी का विवाह आदि देखकर वह हँसा । इसी तरह गुरुमुख ने अनुभव करके दाता प्रभु के दान को प्रसन्नता से ग्रहण किया है और अपने आपको भूखा या प्यासा अनुभव नहीं किया । गुरुमुखों का मुखकमल नाम-स्मरण के कारण सदैव खिला ही रहता है ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(चलने की युक्ति)

दीवाली की रात में दीपक जलाये जाते हैं; छोटे-मोटे तारागण आकाश में दिखाई देते हैं; बाग़ों में फूल भी होते हैं जिन्हें चुन-चुनकर तोड़ लिया जाता है; तीर्थों पर जाते हुए यात्रियों को भी आँखों से देखा जाता है और काल्पनिक नगरों को भ्रम में ही बसते और लुप्त होते भी देखा जाता है । ये सब क्षणिक हैं परन्तु गुरुमुखों का सुखफल रूपी प्राप्त दान शब्द के माध्यम से सँभाला जाता है और रखा जाता है ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(चलने की युक्ति-मायका)

जिन गुरुमुखों को गुरु का उपदेश मिला है उनका मन प्रकाशित हो उठा है ।

आसा विचि निरासु गिआनु अवेसिआ ।
साधसंगति रहरासि सबदि संदेसिआ ।
गुरमुखि दासनि दास मति परवेसिआ ।
सिमरण सासि गिरासि देस विदेसिआ ॥ ७ ॥

पउड़ी ८

(चल्लण जुगति–बेड़ी पूर, सुपनाँ जाँ छाइआ वाँग)

नदी नाव संजोगु मेलि मिलाइआ ।
सुहणे अंदरि भोगु राजु कमाइआ ।
कदे हरखु कदे सोगु तरवर छाइआ ।
कटै हउमै रोगु न आपु गणाइआ ।
घर ही अंदरि जोगु गुरमुखि पाइआ ।
होवणहार सु होगु गुर समझाइआ ॥ ८ ॥

उन्होंने समझ लिया है कि संसार मायके की तरह है । एक दिन यहाँ से जाना है। इसलिए उनके सभी संशय समाप्त हो गये हैं । वे आशाओं में उदासीन बने रहते हैं और ज्ञान से आवेष्टित रहते हैं । वे साधुसंगति की मर्यादा के अनुरूप शब्द का संदेश देते रहते हैं । गुरुमुखों की मति में यह भाव घर कर गया है कि वे (प्रभु) दासों के भी दास हैं । वे देश-विदेश कहीं भी रहें श्वास-प्रतिश्वास प्रभु-स्मरण करते रहते हैं ।। ७ ।।

पउड़ी ८

(जीवन-युक्ति)

जैसे नदी में नाव पर संयोग से कई अपरिचित व्यक्ति कुछ देर के लिए मिल जाते हैं, ऐसे ही जीव संसार में लोगों से मिलते हैं । यह संसार ऐसा है जैसे सपने में राज करना और भोगों का भोगना है । यहाँ पेड़ की छाया की तरह कभी हर्ष और कभी शोक है । यहाँ अपने आपको न जनवानेवाले ने ही वास्तव में अहम् के रोग को काट फेंका है । गुरुमुख बनकर व्यक्ति घर बैठे ही योग प्राप्त करता है । उसे गुरु ने समझा दिया है कि जो होनेवाला है उसे अवश्य होना है (अत: व्यर्थ चिंता छोड़कर कर्म में जुटा रह) ।। ८ ।।

पउड़ी ९

(चल्लण जुगति अचाहता)

गुरमुखि साधू संगु चलणु जाणिआ ।
चेति बसंतु सुरंगु सभ रंग माणिआ ।
सावण लहरि तरंग नीरु नीवाणिआ ।
सजण मेलु सु ढंग चोज विडाणिआ ।
गरमुखि पंथु निपंगु दरि परवाणिआ ।
गरमति मेलु अभंगु सति सुहाणिआ ॥ ९ ॥

पउड़ी १०

(जनम दी सफलता)

गुरमुखि सफल जनंमु जगि विचि आइआ ।
गुरमति पूर करंम आपु गवाइआ ।
भाउ भगति करि कंमु सुख फलु पाइआ ।
गुर उपदेसु अगंमु रिदै वसाइआ ।

पउड़ी ९

(चलने की युक्ति)

गुरुमुखों ने साधुसंगति में जीवन-ढंग सीख लिया है और जीवन के वासन्ती रंग का भी चैतन्यतापूर्वक आनन्द उपभोग किया है । सावन के पानी की लहरों की तरह आनंदित हुए हैं पर फिर भी आशाओं-तृष्णाओं के जल को नीचे की ओर बहाया है । इस प्रकार के स्वजनों का मेल-मिलाप आश्चर्यजनक रूप से प्रसन्न करनेवाला है । गुरुमुखों का मार्ग कीचड़-रहित है और प्रभु दरबार में स्वीकृत है । गुरुमत के अन्तर्गत हुए मेल निर्बाध हैं, सत्य हैं एवं सुन्दर हैं ।। ९ ।।

पउड़ी १०

(जन्म की सफलता)

गुरुमुख का इस संसार में आना और जन्म सफल है । वह गुरुमत क अनुरूप अहम्-भाव गँवाकर अपने कर्मों को पूरा करता है । वह अपना काम प्रेम और भक्ति के वश ही करता है तथा सुखफल प्राप्त करता है । वह गुरु का अगम्य उपदेश हृदय में बसाता है ।

धीरजु धुजा धरंमु सहजि सुभाइआ ।
सहै न दूख सहंमु भाणा भाइआ ।। १० ।।

पउड़ी ११

(गुरमुख मन)

गुरमुखि दुरलभ देह अउसरु जाणदे ।
साधसंगति असनेह सभ रंब माणदे ।
सबद सुरति लिवलेह आखि वखाणदे ।
देही विचि बिदेह सचु सिञाणदे ।
दुबिधा ओहु न एहु इकु पछाणदे ।
चारि दिहाड़े थेहु मन विचि आणदे ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(गुरमुखाँ दी दुरलभता)

गुरमुखि परउपकारी विरला आइआ ।
गुरमुखि सुख फलु पाइ आपु गवाइआ ।

धैर्य और धर्म की ध्वजा फहराए रखना उसका सहज स्वभाव बन जाता है । वह प्रभु-रज़ा को शिरोधार्य कर रहता है और दुख व किसी भय का अनुभव नहीं करता ।। १० ।।

पउड़ी ११

(गुरुमुख मन)

गुरुमुख यह जानते हैं कि मानव-देह दुर्लभ अवसर है । इसीलिए वे साधुसंगति से स्नेह बनाते और आनंद भोगते हैं । शब्द में सुरति लीन कर वे सभी प्रकार के कथन करते हैं । वे देह में रहते हुए भी विदेह बने रहकर सत्य की पहचान करते हैं । उन्हें इधर-उधर की दुविधा नहीं रहती और वे केवल एक प्रभु को ही पहचानते हैं । वे मन में जानते हैं कि दुनिया चार दिनों में नष्ट हो एक टीले का रूप ले लेने वाली है (अतः वे इसके लिए झूठा स्नेह नहीं रखते) ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(दुर्लभ गुरुमुख)

परोपकारी गुरुमुख कोई बिरला ही आता है जो अपने अहम्-भाव को गँवाकर सुखफल प्राप्त करता है । गुरुमुख व्यक्ति ही गुरु की बात और शब्द सिक्खों को

गुरमुखि साखी सबदि सिखि सुणाइआ ।
गुरमुखि सबद वीचारि सचु कमाइआ ।
सचु रिदै मुहि सचु सचि सुहाइआ ।
गुरमुखि जनमु सवारि जगतु तराइआ ॥ १२ ॥

पउड़ी १३

(गुरमुख करनी)

गुरमुखि आपु गवाइ आपु पछाणिआ ।
गुरमुखि सति संतोखु सहजि समाणिआ ।
गुरमुखि धीरजु धरमु दइआ सुखु माणिआ ।
गुरमुखि अरथु वीचारि सबदु वखाणिआ ।
गुरमुखि होंदे ताण रहै निताणिआ ।
गुरमुखि दरगह माणु होइ निमाणिआ ॥ १३ ॥

सुनाता (स्वयं कुछ कहने का दंभ नहीं करता) । गुरुमुख शब्द को विचार कर सत्य की साधना करता है । उसके हृदय और मुँह में सत्य ही होता है और जो उसे अच्छा लगता है । ऐसा गुरुमुख अपना जन्म तो सँवार ही लेता है सारे जगत् को भी पार कर लेता है ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(गुरुमुख का आचरण)

गुरुमुख अहम्-भाव गँवाकर अपने आप को पहचानता है और सत्य, संतोष के माध्यम से सहज भाव में प्रवेश कर जाता है । गुरुमुख ने ही धैर्य, धर्म और दया का सच्चा आनन्द प्राप्त किया है । गुरुमुख अर्थ को मन में अच्छी तरह विचार कर ही कोई शब्द मुँह से निकालते हैं । गुरुमुख शक्तिशाली होते हुए भी अपने आप को निर्बल ही समझते हैं । गुरुमुख विनम्र होते हैं अत: प्रभु-दरबार में उन्हें सम्मान प्राप्त होता है ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(गुरमुख रज़ा दे पुतले)

गुरमुखि जनमु सवारि दरगह चलिआ ।
सची दरगह जाइ सचा पिड़ु मलिआ ।
गुरमुखि भोजनु भाउ चाउ अललिआ ।
गुरमुखि निहचलु चितु न हलै हलिआ ।
गुरमुखि सचु अलाउ भली हूँ भलिआ ।
गुरमुखि सदे जानि आवनि घलिआ ॥ १४ ॥

पउड़ी १५

(गुरमुख दे गुण)

गुरमुखि साधि असाधु साधु वखाणीऐ ।
गुरमुखि बुधि बिबेक बिबेकी जाणीऐ ।
गुरमुखि भाउ भगति भगतु पछाणीऐ ।
गुरमुखि ब्रहम गिआनु गिआनी बाणीऐ ।

पउड़ी १४

(गुरुमुख प्रभु-इच्छा के पुतले हैं)

गुरुमुख इस जन्म को सँवार कर प्रभु-दरगाह में जाता है और उसे सच्चे दरबार में सच्चा स्थान प्राप्त होता है । गुरुमुख का भोजन प्रेम है और उसका अनंद चंचलता-विहीन है । गुरुमुख का चित्त स्थिर होता है और कभी हिलने पर भी अडिग बना रहता है । गुरुमुख सत्य और भले से भी भला ही बोलते हैं । गुरुमुखों को ही प्रभु-दरबार में बुलाया जाता है और संसार में भी वे भेजे हुए ही आते हैं ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(गुरुमुख के गुण)

गुरुमुख असाध्यों को साध लेता है, इसलिए साधु कहा जाता है । गुरुमुख की बुद्धि नीर-क्षीर अलग करनेवाली विवेक मति होती है । इसीलिए उसे विवेकी कहते हैं । गुरुमुख की भक्ति प्रेमाभक्ति होती है ।

गुरमुखि पूरण मति सबदि नीसाणीऐ ।
गुरमुखि पउड़ी पति पिरम रसु माणीऐ ॥ १५ ॥

पउड़ी १६

(गुरमुख तों लाभ)

सचु नाउ करतारु गुरमुखि पाईऐ ।
गुरमुखि ओअंकारु सबदि धिआईऐ ।
गुरमुखि सबदु वीचारु सदा लिव लाईऐ ।
गुरमुखि सचु अचारु सचु कमाईऐ ।
गुरमुखि मोख दुआरु सहजि समाईऐ ।
गुरमुखि नामु अधारु न पछोताईऐ ॥ १६ ॥

पउड़ी १७

(गुरमुख तों लाभ)

गुरमुखि पारसु परसि पारसु होईऐ ।
गुरमुखि होइ अपरसु दरसु अलोईऐ ।

यही उसकी पहचान है । गुरुमुखों को ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है इसीलिए उन्हें ज्ञानी भी कहा जाता है । शब्द से चिह्नित पूर्ण मति गुरुमुख के पास होती है । गुरुमुख ही आदर की सीढ़ी पर चढ़कर प्रभु प्रिय के प्रेम-रस का उपयोग करता है । १५ ।।

पउड़ी १६

(गुरुमुख होने से प्राप्ति)

कर्त्ता का सत्य नाम गुरुमुखों से ही प्राप्त होता है । गुरुमुखों में ही ॐकार शब्द की आराधना की जाती है । गुरुमुखों के बीच ही शब्द का चिन्तन कर उसमें सुरति को लीन किया जाता है । गुरुमुखों के सत्य आचरण वाले जीवन में रहकर ही सत्य साधना की जाती है । गुरुमुख ही मोक्ष का द्वार है जहाँ से स्वत: ही सहज भाव में प्रविष्ट हुआ जाता है । गुरुमुखों से नाम का आधार लिया जाता है जिससे अन्त में पछताना नहीं पड़ता ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(गुरुमुखों से लाभ)

गुरुमुख रूपी पारस को स्पर्श कर स्वयं पारस बना जाता है ।

गुरमुखि ब्रहम धिआनु दुबिधा खोईऐ ।
गुरमुखि परधन रूप निंद न गोईऐ ।
गुरमुखि अंम्रित नाउ सबदु विलोईऐ ।
गुरमुखि हसदा जाइ अंत न रोईऐ ॥ १७ ॥

पउड़ी १८

(गुरमुख दा सरूप)

गुरमुखि पंडितु होइ जगु परबोधीऐ ।
गुरमुखि आपु गवाइ अंदरु सोधीऐ ।
गुरमुखि सतु संतोखु न कामु करोधीऐ ।
गुरमुखि है निरवैरु न वैर विरोधीऐ ।
चहु वरना उपदेसु सहजि समोधीऐ ।
धंनु जणेदी माउ जोधा जोधीऐ ॥ १८ ॥

गुरुमुखों के दर्शन मात्र से विषय-विकार अस्पर्श्य बन जाते हैं । गुरुमुखों के साथ ब्रह्मध्यान लगाकर दुविधा को गँवा दिया जाता है । गुरुमुखों के साथ रहकर पराया धन, रूप नहीं देखा जाता और पराई निंदा नहीं की जाती। गुरुमुखों के संग तो अमृत नाम रूपी शब्द को बिलोया जाता है तथा तत्त्व ग्रहण किया जाता है । गुरुमुखों की संगति में जीव अंत में हँसता हुआ जाता है और रोता नहीं ।। १७ ।।

पउड़ी १८

(गुरुमुख का स्वरूप)

गुरुमुख व्यक्ति पंडित के रूप में सारे संसार को ज्ञान देते हैं। गुरुमुख अहंभाव को गँवाकर अपना अन्त:करण शुद्ध करते हैं। गुरुमुख सत्य और संतोष को धारण करते हैं तथा काम-क्रोध में लिप्त नहीं होते। गुरुमुख किसी से शत्रुता नहीं रखते और बैर-विरोध नहीं रखते। चारों वर्णों को उपदेश दे गुरुमुख सहज भाव में समा जाता है। गुरुमुख को पैदा करनेवाली उसकी माँ धन्य है। वह योद्धाओं में भी श्रेष्ठ योद्धा है।। १८ ।।

पउड़ी १९

(बे-परवाह गुरमुख)

गुरमुखि सतिगुर वाहु सबदि सलाहीऐ ।
गुरमुखि सिफति सलाह सची पतिसाहीऐ ।
गुरमुखि सचु सनाहु दादि इलाहीऐ ।
गुरमुखि गाडी राहु सचु निबाहीऐ ।
गुरमुखि मति अगाहु गाहणि गाहीऐ ।
गुरमुखि बेपरवाहु न बेपरवाहीऐ ॥ १९ ॥

पउड़ी २०

(गंभीर ते अडोल गुरमुख)

गुरमुखि पूरा तोलु न तोलणि तोलीऐ ।
गुरमुखि पूरा बोलु न बोलणि बोलीऐ ।
गुरमुखि मति अडोल न डोलणि डोलीऐ ।
गुरमुखि पिरमु अमोलु न मोलणि मोलीऐ ।

पउड़ी १९

(बेपरवाह गुरुमुख)

गुरुमुख सत्यस्वरूप गुर+वाह अर्थात् वाहिगुरु शब्द का गुणानुवाद करते हैं । गुरुमुखों के पास सच्चा राज्य तो प्रभु के गुणानुवाद का ही है । गुरुमुखों के पास सत्य का कवच है जो उन्हें परमात्मा की ओर से प्राप्त दान है । गुरुमुखों के लिए ही सत्य के निर्वहन का सुन्दर राजमार्ग बना है । गुरुमुखों की मति अगाध है जिसे पकड़ने के लिए खुद चक्कर में फँस जाना पड़ता है । गुरुमुख संसार की ओर से बेपरवाह है पर प्रभु की ओर से लापरवाह नहीं ।। १९ ।।

पउड़ी २०

(गंभीर एवं स्थिर गुरुमुख)

गुरुमुख पूर्ण है, उसे किसी तराज़ू पर तौला नहीं जा सकता । गुरुमुखों का कहा हुआ पूर्ण होता है , उसके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता । गुरुमुखों की बुद्धि स्थिर होती है और किसी के डोलायमान करने पर भी वह डोलती नहीं। गुरुमुख का प्रेम अमूल्य है और उसे किसी भी मोल में खरीदा नहीं जा सकता।

गुरमुखि पंथु निरोलु न रोलणि रोलीऐ ।
गुरमुखि सबदु अलोलु पी अंम्रित झोलीऐ ॥ २० ॥

पउड़ी २१

(गुरमुख निज सरूप विच्च निहचल होए हन)

गुरमुखि सुख फल पाइ सभ फल पाइआ ।
रंग सुरंग चढ़ाइ सभ रंग लाइआ ।
गंध सुगंधि समाइ बोहि बुहाइआ ।
अंम्रित रस त्रिपताइ सभ रस आइआ ।
सबद सुरति लिव लाइ अनहद वाइआ ।
निज घरि निहचल जाइन दह दिस धाइआ ॥ २१ ॥ १९ ॥ उनी ॥

गुरुमुख का मार्ग भी विशुद्ध है, उसे किसी में भी मिलाया-मिटाया नहीं जा सकता । गुरुमुखों के शब्द स्थिर है, उनके साथ विषय-वासनाओं को हटाकर अमृतपान किया जाता है ।। २० ।।

पउड़ी २१

(गुरुमुख निज स्वरूप में स्थिर रहते हैं)

गुरुमुखों ने सुखफल प्राप्त कर सभी फल पा लिये हैं । प्रभु-प्रेम का सुन्दर रंग चढ़ाकर मानों उन्होंने सारे रंगों का आनन्द ले लिया है । (भक्ति की) गंध-सुगंध में समाहित हो वे सबको सुगंधित करते हैं । वे अमृतरस में तृप्त हो गये हैं और मानों उन्हें सब रसों का स्वाद आ गया है । वे शब्द में सुरति लीन कर अनहद भाव में लीन हो जाते हैं । अब वे निज स्वरूप में स्थिर हो जाते हैं और उनका मन दसों दिशाओं में दौड़ता नहीं ।। २१ ।। १९ ।।

* * *

वार २०

ੴ सतिगुर प्रसादि ।।

पउड़ी १

(मंगलाचरण–गुरुवरणन)

सतिगुर नानक देउ आपु उपाइआ ।
गुर अंगदु गुरसिखु बबाणे आइआ ।
गुरसिखु है गुर अमरु सतिगुर भाइआ ।
रामदासु गुरसिखु गुरु सदवाइआ ।
गुरु अरजनु गुरुसिखु परगटी आइआ ।
गुरुसिखु हरि गोविंदु न लुकै लुकाइआ ।। १ ।।

पउड़ी २

(सारे गुरूआँ विच्च इक जोत)

गुरमुखि पारसु होइ पूज कराइआ ।
असटधातु इकु धातु जोति जगाइआ ।

पउड़ी १

(मंगलाचरण-गुरु-वर्णन)

सद्गुरु नानकदेव को परमात्मा ने स्वयं ही उत्पन्न किया । फिर गुरु अंगद गुरु का सिक्ख बनकर इस परिवार में आ शामिल हुआ । गुरु को अच्छा लगा और अमरदास गुरु का सिक्ख बन गया । फिर गुरु का सिक्ख रामदास गुरु कहलवाने लगा । पुन: गुरु अर्जुन गुरु के शिष्य के रूप में प्रकट हुए (और गुरु कहलवाये)। गुरु का सिक्ख हरगोविंद भी छिपाने से छिप नहीं सकता अर्थात् गुरु नानक से लेकर गुरु हरगोविंद तक सभी गुरु एक ही ज्योति थे ।। १।।

पउड़ी २

(सभी गुरुओं में एक ही ज्योति है)

गुरुमुख (गुरु नानक) ने पारस बनकर सब शिष्यों को भी पूज्य बना दिया । सभी वर्णों के लोगों को एक ही ज्योति से वैसे ही प्रकाशित कर दिया जैसे पारस अष्टधातुओं को एक सोने में परिवर्तित कर देता है ।

बावन चंदनु होइ बिरखु बोहाइआ ।
गुरुसिखु सिखु गुर होइ अचरजु दिखाइआ ।
जोती जोति जगाइ दीपु दीपाइआ ।
नीरै अंदरि नीरु मिलै मिलाइया ॥ २ ॥

पउड़ी ३
(गुरमुख दी महिमा)

गुरमुखि सुख फलु जनमु सतिगुरु पाइआ ।
गुरमुखि पूर करंमु सरणी आइआ ।
सतिगुरु पैरी पाइ नाउ दिड़ाइआ ।
घर ही विचि उदासु न विआपै माइआ ।
गुर उपदेसु कमाइ अलखु लखाइआ ।
गुरमुखि जीवन मुकतु आपु गवाइआ ॥ ३ ॥

पउड़ी ४
(अजर प्रेम पिआला गुरमुख ही जरदे हन)

गुरमुखि आपु गवाइ न आपु गणाइआ ।
दूजा भाउ मिटाइ इकु धिआइआ ।

उसने बावन चंदन बनकर सभी वृक्षों को सुगंधित कर दिया और ज्योति से ठीक ज्योति वैसे ही आगे बढ़ाई जैसे दीपक से दीपक जलाया जाता है । जैसे जल में जल मिलकर एक हो जाता है वैसे ही अहम्-भाव मिटाकर शिष्य गुरु के साथ एक हो जाता है ।। २ ।।

पउड़ी ३
(गुरुमुख की महिमा)

जिस गुरुमुख ने सद्गुरु प्राप्त कर लिया है उसका जन्म सार्थक है । जो गुरुमुख गुरु की शरण में आया है उसके भाग्य भी पूर्ण है । सद्गुरु ने उसे चरणों में स्थान देकर प्रभु-नाम-स्मरण कराया है । अब वह घर में ही उदासीन भाव से रहता है और उसे माया प्रभावित नहीं करती । उसने गुरु के उपदेश को जीवन में ढालकर उस अलक्ष्य प्रभु को देख लिया है । अहम् भाव गँवाकर गुरुमुख जीवनमुक्त हो गया है ।।३।।

पउड़ी ४
(असह्य प्रेमप्याला गुरुमुख ही धारण करते हैं)

गुरुमुख अहम्-भाव गँवाकर भी अपने आपको कभी जतलाते नहीं ।

गुर परमेसरु जाणि सबदु कमाइया ।
साधसंगति चलि जाइ सीसु निवाइआ ।
गुरमुखि कार कमाइ सुख फलु पाइया ।
पिरम पिआला पाइ अजरु जराइआ ॥ ४ ॥

पउड़ी ५

(गुरमुख दा नित्त-करम)

अंम्रित वेले उठि जाग जगाइया ।
गुरमुखि तीरथ नाइ भरम गवाइआ ।
गुरमुखि मंतु सम्हालि जपु जपाइया ।
गुरमुखि निहचलु होइ इक मनि धिआइआ ।
मथै टिका लालु नीसाणु सुहाइआ ।
पैरी पै गुरसिख पैरी पाइया ॥ ५ ॥

वे द्वैतभाव को मिटाकर एक प्रभु की आराधना करते हैं । वे गुरु को परमेश्वर मानकर उसके शब्द की साधना करते हैं अर्थात् उसे जीवन में उतारते हैं । वे साधुसंगति में जाकर सिर झुकाते हैं (और सादर प्रणाम करते हैं) । गुरुमुख सेवा करते हैं और सुखफल प्राप्त करते हैं । इस प्रकार वे प्रेमप्याले को प्राप्त कर उसके असह्य प्रभाव को मन में धारण करते हैं ।। ४ ।।

पउड़ी ५

(गुरुमुख की दिनचर्या)

गुरुमुख भोर में ही उठता है और अन्यों को भी जगाता है । गुरुमुख भ्रम गँवाने को तीर्थस्नान के तुल्य मानते हैं । गुरुमुख सँभालकर ध्यानपूर्वक गुरुमंत्र अथवा मूलमंत्र का जाप करते हैं और स्थिर मन से प्रभु की आराधना करते हैं । उनके माथे पर प्रेम का लाल टीका शोभायमान होता है । गुरुसिक्खों के चरणों में प्रणाम करते हैं और इस प्रकार अपनी विनम्रता से अन्यों को भी अपने चरणों में डाल लेते हैं ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(गुरसिक्ख कमाई)

पैरी पै गुरसिख पैर धुआइआ ।
अंम्रित वाणी चखि मनु वसि आइआ ।
पाणी पखा पीहि भठु झुकाइआ ।
गुरबाणी सुणि सिखि लिखि लिखाइआ ।
नामु दानु इसनानु करम कमाइआ ।
निव चलणु मिठ बोल घालि खवाइआ ॥ ६ ॥

पउड़ी ७

(गुरसिक्खाँ दा मेल)

गुरसिखाँ गुरसिख मेलि मिलाइआ ।
भाइ भगति गुरपुरब करै कराइआ ।
गुरसिख देवी देव जठेरे भाइआ ।
गुरसिख माँ पिउ वीर कुटंब सबाइआ ।

पउड़ी ६

(गुरुसिक्ख की साधना)

गुरु के सिक्ख चरण-वंदना कर चरण धोते हैं । फिर अमृतवाणी को चखते हैं जिससे मन वश में आ जाता है । वे पानी लाते, पंखा डुलाते और लंगर की रसोई की भट्ठी में लकड़ियाँ जलाते हैं । वे सिक्खों व अन्यों से गुरुवाणी सुनते, लिखते व लिखाते हैं । नाम-स्मरण,दान करना और स्नान करना आदि कर्मों की वे साधना करते हैं । वे विनम्रता-पूर्वक चलते, मीठा बोलते और मेहनत की कमाई खाते हैं ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(गुरुसिक्खों का मिलाप)

गुरुसिक्खों का मिलाप गुरुसिक्खों से हो जाता है । वे प्रेमाभक्ति के वश में गुरु का पर्व मनाते हैं । उनके लिए गुरु का सिक्ख ही देवी, देवता और पितृ हैं । माँ, बाप, भाई, परिवार भी गुरु के सिक्ख ही हैं ।

गुरसिख खेती वणजु लाहा पाइआ ।
हंस वंस गुरसिख गुरसिख जाइआ ॥ ७ ॥

पउड़ी ८

(शगनाँ दे विचार विखे)

सजा खबा सउणु न मंनि वसाइआ ।
नारि पुरख नो वेखि न पैरु हटाइआ ।
भाख सुभाख वीचारि न छिक मनाइआ ।
देवी देव न सेवि, न पूज कराइआ ।
भंभल भूसे खाइ न मनु भरमाइआ ।
गुरसिख सचा खेतु बीज फलाइआ ॥ ८ ॥

पउड़ी ९

(साधसंगत रूप सच्चखंड)

किरति विरति मनु धरमु सचु दिड़ाइआ ।
सचु नाउ करतारु आपु उपाइआ ।

खेती, व्यापार अथवा अन्य लाभदायक काम भी गुरु के सिक्खों का मिलाप ही है । गुरु के सिक्खों के यहाँ पैदा होनेवाली सन्तान भी हंसों के समान गुरु के सिक्ख ही हैं ।। ७।।

पउड़ी ८

(शकुन विचार)

गुरुमुख दायें-बायें का शकुन-अपशकुन कभी मन में नहीं बसाते । स्त्री-पुरुष को देखकर वे पाँव आगे-पीछे नहीं करते । जानवरों के बोल पड़ने का भी वे विचार नहीं करते और न ही छींक आदि को मानते हैं । देवी-देवता की न तो सेवा करते हैं, न उनकी पूजा करते हैं । वे प्रपंचों में फँसकर भ्रम में मन को नहीं फँसाते । गुरुसिक्खों ने तो जीवन रूपी खेत में सच्चा बीज बोकर खेत को फलयुक्त किया है ।। ८ ।।

पउड़ी ९

(साधुसंगति रूपी सत्यखंड)

गुरुमुख आजीविका कमाने में मन में धर्म का विचार रखते हैं और सत्य का स्मरण करते हैं। वे जानते हैं कि कर्त्ता ने स्वयं सत्य को उत्पन्न किया है

सतिगुर पुरखु दइआलु दइआ करि आइआ ।
निरंकार आकारु सबदु सुणाइआ ।
साधसंगति सचु खंड थेहु वसाइआ ।
सचा तखतु बणाइ सलामु कराइआ ॥ ९ ॥

पउड़ी १०

(साधसंगत दी सेवा)

गुरसिखा गुरसिख सेवा लाइआ ।
साधसंगति करि सेव सुख फलु पाइआ ।
तपड़ु झाड़ि विछाइ धूड़ी नाइआ ।
कोरे मट अणाइ नीरु भराइआ ।
आणि महा परसादु वंडि खुआइआ ॥ १० ॥

पउड़ी ११

(बुरे नाल भला करदा है)

होइ बिरखु संसारु सिर तलवाइआ ।
निहचलु होइ निवासु सीसु निवाइआ ।

(एवं प्रसारित किया है)। वह सद्गुरु परमपुरुष स्वयं दयालु बनकर धरती पर आया है जिसने निराकार का साकार रूप शब्द सबको सुनाया है । साधुसंगति रूपी सत्यखंड नामक टीला गुरु ने बसाया है और कहीं सच्चा सिंहासन बनाकर सबको प्रणाम करवाया है ।। ९ ।।

पउड़ी १०

(साधुसंगति की सेवा)

गुरु के सिक्ख गुरु के सिक्खों को सेवा में लगाते हैं और साधुसंगति की सेवा कर सुखफल प्राप्त करते हैं । वे बैठने के आसन झाड़कर बिछाते हैं और " संगत् " की धूल में स्नान करते हैं । कोरे मटके लाकर उनमें ठंडा होने देने के लिए जल भरते हैं । वे प्रसाद लाते हैं और सबमें बाँटकर खाते हैं ।। १० ।।

पउड़ी ११

(बुरे के साथ भला करो)

संसार में वृक्ष है जिसका सिर नीचे की ओर है । वह निश्चल रूप में खड़ा रहता है और शीश झकाए रहता है। फिर वह फलवान होकर लोगों के पत्थरों की मार सहता है ।

होइ सुफल फलु सफलु वट सहाइआ ।
सिरि करवतु धराइ जहाजु बणाइआ ।
पाणी दे सिरि वाट राहु चलाइआ ।
सिरि करवतु धराइ सीस चड़ाइआ ॥ ११ ॥

पउड़ी १२

(ब्रिछ अउगुण सहार के गुण करदा है)

लोहे तछि तछाइ लोहि जड़ाइआ ।
लोहा सीसु चड़ाइ नीरि तराइआ ।
आपनड़ा पुतु पालि न नीरि डुबाइआ ।
अगरै डोबै जाणि डोबि तराइआ ।
गुण कीते गुण होइ जगु पतीआइआ ।
अवगुण सहि गुणु करै घोलि घुमाइआ ॥ १२ ॥

पुन: वह सिर पर आरा फिरवाकर और अपने आपको चिरवाकर लकड़ी से जहाज बनवाता है । अब वह पानी के सिर पर रास्ता बनाकर चलता चला जाता है । सिर पर लोहे का आरा फिरवाता है पर उसी लोहे को जो कि जहाज में लगा रहता है वह पार पहुँचाता है ।। ११।।

पउड़ी १२

(वृक्ष अवगुणों को सहन करके भी भला करता है)

वृक्ष को लोहे से काट-छाँटकर उसमें लोहे (की कीलों) को ठोंका जाता है पर वह फिर भी लोहे को सिर पर चढ़ाकर पानी में तैराता रहता है । जल भी उसे अपना पोषित पुत्र मानकर नहीं डुबाता परन्तु अगरु की लकड़ी को जान-बूझकर डुबाकर उसे और अधिक कीमती बना देता है । गुण (भलाई) करने से गुण होता है और सारा संसार भी प्रसन्न रहता है । जो अवगुणों को सहकर भी गुण (भलाई) करता है मैं उस पर कुर्बान जाता हूँ ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(सतिगुरू दा हुकम)

मंनै सतिगुर हुकमु हुकमि मनाइआ ।
भाणा मंनै हुकमि गुर फुरमाइआ ।
पिरम पिआला पीवि अलखु लखाइआ ।
गुरमुखि अलखु लखाइ न अलखु लखाइआ ।
गुरमुखि आपु गवाइ न आपु गणाइआ ।
गुरमुखि सुख फलु पाइ बीज फलाइआ ॥ १३ ॥

पउड़ी १४

(चेले दा प्रेम)

सतिगुर दरसनु देखि धिआनु धराइआ ।
सतिगुर सबदु वीचारि गिआनु कमाइआ ।
चरण कवल गुर मंतु चिति वसाइआ ।
सतिगुर सेव कमाइ सेव कराइआ ।

पउड़ी १३

(सद्‌गुरु की आज्ञा)

जो सद्‌गुरु के हुक्म को मानता है वह (सारे संसार को) अपना हुक्म मनवाता है । गुरु की यह आज्ञा है कि उस प्रभु की इच्छा को अवश्य मानो । जो प्रेम-प्याला पीकर अलक्ष्य का साक्षात्कार कर लेते हैं वे स्वयं देखकर भी इस राज को व्यर्थ ही नहीं बताते फिरते । गुरुमुख अहम्-भाव को गँवाते हैं और अपने आपको कभी जतलाते नहीं । गुरुमुख व्यक्ति सुखफल को प्राप्त करते हैं और इसी बीज को और आगे फैलाते हैं ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(शिष्य का प्रेम)

गुरु का सिक्ख सद्‌गुरु का दर्शन करता है और पुन: उसी की आराधना करता है । वह सद्‌गुण के शब्द का विचार करता है और ज्ञान की साधना करता है । गुरु के चरण-कमलों और उसके मंत्र को मन में बसाता है । वह सद्‌गुरु की सेवा करता है और फलस्वरूप (सारे संसार से) अपनी सेवा करवाता है ।

गुर चेला परचाइ जग परचाइआ ।
गुरमुखि पंथु चलाइ निज घरि छाइआ ॥ १४ ॥

पउड़ी १५

(गुरसिक्ख लई जोग दी जुगती)

जोग जुगति गुरसिख गुर समझाइआ ।
आसा विचि निरासि निरासु बलाइआ ।
थोड़ा पाणी अंनु खाइ पीआइआ ।
थोड़ा बोल़ण बोलि न झखि झखाइआ ।
थोड़ी राती नीद न मोहि फहाइआ ।
सुहणे अंदरि जाइ न लोभ लुभाइआ ॥ १५॥

पउड़ी १६

(गुरसिखाँ लई जोग दे साधन)

मुंद्रा गुर उपदेसु मन्तु सुणाइआ ।
खिंथा खिमा सिवाइ झोली पति माइआ ।
पैरी पै पा खाक विभूत बणाइआ ।
पिरम पिआला पत भोजनु भाइआ ।

गुरु से चेला प्रेम करता है और चेला सारे संसार को प्रसन्न कर देता है। इस प्रकार वह चेला गुरुमुखों का पंथ चलाकर निज स्वरूप में अवस्थित हो जाता है।। १४।।

पउड़ी १५

(गुरुसिक्खों के योग की युक्ति)

गुरु ने सिक्ख को योग की युक्ति समझाई है कि आशाओं-तृष्णाओं में भी उदासीन बने रहो । अन्न-पानी थोड़ा ही खाओ और पियो । थोड़ा ही बोलो और व्यर्थ बकवाद मत करो । थोड़ा सोओ और किसी भी मोह में ग्रस्त न हो जाओ । सपने में भी लोभ में मत फँसो ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(गुरुशिष्यों के लिए योग के साधन)

गुरु के उपदेश का मंत्र ही कानों के कुंडल हैं । क्षमाशीलता गुदड़ी है और झोली में मायापति प्रभु का नाम है । चरण-बंदना ही भभूत है । प्रेमप्याला ही पात्र (खप्पर) है जिसे प्रेमभाव के भोजन से भरा जाता है ।

डंडा गिआन विचारु दूत सधाइआ ।
सहज फलु सतिसंगु समाधि समाइआ ॥ १६॥

पउड़ी १७

(गुरसिक्खाँ दी जोग जुगती दे होर साधन)

सिंङी सुरति विसेखु सबदु वजाइआ ।
गुरमुखि आई पंथु निज घरु पाइआ ।
आदिपुरखु आदेसु अलखु लखाइआ ।
गुर चेले रहरासि मनु परचाइआ ।
बीह इकीह चढ़ाइ सबदु मिलाइआ ॥ १७॥

पउड़ी १८

(संसार रूप चउपड़ दी बाजी)

गुरसिख सुणि गुरसिख सिखु सदाइआ ।
गुरसिखी गुरसिख सिख सुणाइआ ।

ज्ञान ही डंडा है जिससे संकल्प-विकल्पों के दूतों को सुधारा जाता है । सद्संगति ही सहज गुफा है जिसमें प्रवेश कर गुरुमुख योगी सहजभाव में स्थित हो जाता है ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(अन्य साधन)

परमात्मा का ज्ञान ही सिंगी है और शब्द का गायनपाठ ही उसे बजाना कहा जाता है । गुरुमुखों के मेल श्रेष्ठ "आई पंथ" को अपने घर में ही स्थित हो प्राप्त किया जाता है । वे आदिपुरुष को प्रणाम करते हैं और अलक्ष्य का दर्शन करते हैं। शिष्यों ने और गुरुजनों ने परस्पर प्रेम में ही अपने आपको लीन कर रखा है । सांसारिक प्रपंचों से ऊपर उठकर वे शब्द के माध्यम से प्रभु से जा मिलते हैं ।। १७ ।।

पउड़ी १८

(संसार रूपी चौपड़ की वाजी)

गुरु की शिक्षा को श्रवण कर गुरु के सिक्ख ने सिक्खों को बुला भेजा है । गुरु की शिक्षा को धारण कर सिक्ख ने उन शिक्षाओं को आगे कह सुनाया है ।

गुरसिख सुणि करि भाउ मंनि वसाइआ ।
गुरसिखा गुरसिख गुरसिख भाइआ ।
गुरसिख गुरसिख संगु मेलि मिलाइआ ।
चउपड़ि सोलह सार जुग जिणि आइआ ॥ १८ ॥

पउड़ी १९

(शतरंज दी खेल)

सतरंज बाजी खेलु बिसाति बणाइआ ।
हाथी घोड़े रथ पिआदे आइआ ।
हुइ पतिसाहु वजीर दुइ दल छाइआ ।
होइ गडावडि जोध जुधु मचाइआ ।
गुरमुखि चाल चलाइ हाल पुजाइआ ।
पाइक होइ वीजरु गुरि पहुचाइआ ॥ १९ ॥

पउड़ी २०

(गुरमुख भै दिच रहिंदे होए निरंकार नूँ प्रापत कर लैंदे हन)

भै विचि निमणि निमि भै विचि जाइआ ।
भै विचि गुरमुखि पंथि सरणी आइआ ।

गुरु के सिक्खों ने उन्हें सुनकर प्रेमपूर्वक उन्हे मन में बसाया है। गुरु के सिक्खों को गुरु-सिक्ख अच्छा लगा है और सिक्ख का सिक्ख के साथ मेल-मिलाप हो गया है। इस संसार रूपी चौपड़ की बाजी को इस प्रकार इस गुरु-चेले के जोड़े ने ही जीत लिया है ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(शतरंज का खेल)

शतरंज खेलनेवालों ने शतरंज की विसात बिछा दी है। हाथी, रथ, घोड़े, प्यादे लाये गये हैं । बादशाह और वजीरों के दल घिर आये हैं और गुत्थमगुत्था होकर घांमासान युद्ध कर रहे हैं । गुरुमुख ने अपनी चाल चलकर अपनी व्यथा गुरु के समक्ष प्रस्तुत कर दी है । गुरु ने यादे को वजीर बनाकर सफलता के स्थान पर पहुँचा दिया है (और शिष्य की जीवन रूपी बाजी बचा ली है) ।। १९ ।।

पउड़ी २०

(गुरुमुख भय में रहकर निराकार प्रभु को प्राप्त कर लेते हैं)

जीव प्राकृतिक नियमों के अंतर्गत अर्थात् भय में ही गर्भावस्था में आता है और भय में ही पैदा होता है । भय में ही वह गुरुपंथ की शरण में आता है

भै विचि संगति साध सबदु कमाइआ ।
भै विचि जीवनु मुकति भाणा भाइआ ।
भै विचि जनमु वसारि सहजि समाइआ ।
भै विचि निज घरि जाइ पूरा पाइआ ॥ २० ॥

पउड़ी २१

(गुर उसतति विखे)

गुर परमेसरु जाइ सरणी आइआ ।
गुरचरणी चितु लाइ न चलै चलाइआ ।
गुरमति निहचलु होइ निज पद पाइआ ।
गुरमुखि कार कमाइ भाणा भाइआ ।
गुरमुखि आपु गवाइ सचि समाइआ ।
सफलु जनमु जगि आइ जगतु तराइआ ॥२१॥२०॥ वीह ॥

और भय में ही साधुसंगति के माध्यम से शब्द की साधना करता है। भय में ही वह जीवनमुक्त बनाता है और प्रभु इच्छा को प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करता है । भय में ही वह इस जन्म को त्याग सहज अवस्था में समाहित हो जिाता है और भय में ही वह अपने निज स्वरूप में स्थित हो उस पूर्णप्रभु को प्राप्त करता है ।। २० ।।

पउड़ी २१

(गुरु-स्तुति मे)

जो गुरु को परमेश्वर जानकर उसकी शरण में आ गये हैं और जिन्होंने गुरु के चरणों में चित्त लगा लिया है वे कभी भी चलायमान नहीं होते । वे गुरुमत में दृढ़ होकर जिन स्वरूप को प्राप्त करते हैं । वे गुरुमुखों की दिनचर्या अपनाते हैं और प्रभु-इच्छा उन्हें अच्छी लगती है । वे गुरुमुख-रूप में अहम्-भाव को गँवाकर सत्य में समाहित हो जाते हैं । उनका इस संसार में जन्म लेना सार्थक है और वे संसार को भी पार करा जाते हैं ।। २१ ।।२०।।

* * *

वार २१

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।।

पउड़ी १

(मंगलाचरण, वाहिगुरू ते सतिगुरू दी महिमा)

पातिसाहा पातिसाहु सति सुहाणीऐ ।
वडा बे परवाह अंतु न जाणीऐ ।
लउबाली दरगाह आखि वखाणीऐ ।
कुदरत अगमु अथाहु चोज विडाणीऐ ।
सची सिफति सलाह अकथ कहाणीऐ ।
सतिगुर सचे वाहु सद कुरबाणीऐ ॥ १ ॥

पउड़ी २

(आदिपुरख दी महिमा)

ब्रहमे बिसन महेस लख धिआइदे ।
नारद सारद सेस कीरति गाइदे ।

पउड़ी १

(मंगलाचरण, परमात्मा और सद्गुरु की महिमा)

वह प्रभु सम्राटों का सम्राट, सत्य और सुन्दर है । वह महान, किसी की परवाह न करनेवाला है और उसका रहस्य नहीं जाना जा सकता है । उसका दरबार भी बेपरवाह ही कहा जाता है । उसकी शक्ति के भी अगम्य एवं अथाह कौतुक कहे जाते हैं । उसकी प्रशंसा भी सत्य है और उसके गुणानुवाद की कहानी भी अकथनीय है । मैं सच्चे गुरु को अद्‌भुत मानता हूँ और उस पर कुर्बान जाता हूँ ।। १ ।।

पउड़ी २

(आदिपुरुष की महिमा)

लाखों ब्रह्मा, विष्णु और महेश उस (प्रभु) की आराधना करते हैं। नारद, शारदा और शेषनाग आदि उसके गुण गाते हैं।

गण गंध्रब गणेस नाद वजाइदे ।
छिअ दरसन करि वेस साँग बणाइदे ।
गुर चेले उपदेस करम कमाइदे ।
आदि पुरखु आदेसु पारु न पाइदे ॥ २ ॥

पउड़ी ३

(आदिपुरख दी महिमा)

पीर पैकंबर होइ करदे बंदगी ।
सेख मसाइक होइ करि मुहछंदगी ।
गउस कुतब कई लोइ दर बखसंदगी ।
दर दरवेस खलोइ मसत मसंदगी ।
वली-उलह सुणि सोइ करनि पसंदगी ।
दरगह विरला कोइ बखत बिलंदगी ॥ ३ ॥

पउड़ी ४

(कादर दे कीते नूँ नहीं जाणदे)

सुणि आखाणि वखाणु आखि वखाणिआ ।
हिंदू मुसलमाणु न सचु सिञाणिआ ।

गण, गंधर्व और गणेश आदि भी उसके लिए वाद्य बजाते हैं । छः दर्शन भी उसके लिए विभिन्न वेश धारण करने का प्रावधान करते हैं । गुरु शिष्यों को उपदेश देते हैं और शिष्यगण तदनुसार कर्म कमाते हैं । उस आदिपुरुष को प्रणाम है जिसका अन्त नहीं जाना जा सकता ।। २।।

पउड़ी ३

(आदिपुरुष की महिमा)

पीर-पैगंबर भी उसकी वंदगी करते हैं। शेख एवं अन्य कई साधना करनेवाले उस प्रभु की ही शरण में आते हैं । कई लोकों के गौंस एवं कुतुब उसके द्वार पर कृपा का प्रसाद माँगते हैं । दरवेश भी उसके द्वार मस्ती भाव में माँगने के लिए खड़े रहते हैं । कई वली-उल्लाह भी उस प्रभु की शोभा सुनकर उस प्रभु को ही चाहते है । उसके दरबार में कोई बिरला ही बुलंद भाग्य वाला होता है ।। ३।।

पउड़ी ४

(कर्त्ता के कर्म को नहीं जानते)

लोग कही-सुनी बातों का ही व्याख्यान करते रहते हैं, परन्तु किसी भी हिन्दू अथवा मुसलमान ने सत्य को नहीं पहचाना है ।

दरगह पति परवाणु माणु निमाणिआ ।
वेद कतेब कुराणु न अखर जाणिआ ।
दीन दुनी हैराणु चोज विडाणिआ ।
कादर नो कुरबाणु कुदरति माणिआ ॥ ४ ॥

पउड़ी ५

(रसां दे पिआरे महल तों दूर हन)

लख लख रूप सरूप अनूप सिधावही ।
रंग बिरंग सुरंग तरंग बणावही ।
राग नाद विसमाद गुण निधि गावही ।
रस कस लख सुआद चखि चखावही ।
गंध सुगंध करोड़ि महि महकावई ।
गैर महलि सुलतान महलु न पावही ॥ ५ ॥

प्रभु-दरबार में तो विनम्र व्यक्ति ही ससम्मान स्वीकृत होता है । वेदों, कतेबों और कुरान आदि ने भी उसका एक अक्षर भी नहीं जाना है । उसके कौतुकों पर तो सारी दीन-दुनिया हैरान है । मैं उस कर्त्ता पर कुर्बान हूँ जो स्वयं अपनी सृष्टि का गौरव (आधार) है ।। ४ ।।

पउड़ी ५

(रसिक उसके महल से दूर हैं)

(इस जगत में) लाखों सुन्दर स्वरूप वाले व्यक्ति आते-जाते हैं और रंग-बिरंगे उपक्रम करते रहते हैं । राग, नाद आदि भी आश्चर्यचकित हो उस गुणनिधि का गुणानुवाद करते हैं । लाखों ही व्यक्ति रसों, कषायों को सदैव चखते-चखाते रहते हैं । करोड़ों ही व्यक्ति गंध, सुगंध से लोगों को महकाते रहते हैं, परन्तु जो इस महल (शरीर) के सुल्तान (परमात्मा) को गैर समझते हैं वे सभी भी उसके महल (दरबार) को प्राप्त नहीं कर सकते ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(द्वंद्व ते एकता)

सिव सकती दा मेलु दुबिधा होवई ।
त्रैगुण माइआ खेलु भरि भरि धोवई ।
चारि पदारथ भेलु हार परोवई ।
पंजि तत परवेल अंति विगोवई ।
छिअ रुति बारह माह हसि हसि रोवई ।
रिधि सिधि नव निधि नीद न सोवई ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(भाउ-भगति तों बिनाँ सभ फोकट है)

सहस सिआणप लख कंमि न आवही ।
गिआन धिआन उनमानु अंतु ना पावही ।
लख ससीअर लख भानु अहिनिसि ध्यावही ।
लख परकिरति पराण करम कमावही ।

पउड़ी ६

(द्वंद्व और एकता)

शिवशक्ति का संयोग इस द्वैत भाव वाले संसार की उत्पत्ति का कारण है । त्रिगुणात्मक माया भी अपना खेल लोगों को दिखाकर उनमें गुण-अवगुणों को भर-भरकर खाली कर रही है और चारों पदार्थों (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष) का हार पिरो-पिरोकर लोगों को भुला रही है । पाँच तत्त्वों का पुतला अन्त में नष्ट हो जाता है । जीवन भर छः ऋतुओं, बारहों मास जीव हँसता-रोता रहता है और ऋद्धियों-सिद्धियों के रस में लीन कभी भी शांति प्राप्त नहीं करता ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(प्रेम-भक्ति के बिना सभी व्यर्थ है)

हज़ारों, लाखों चतुराइयाँ भी (जीव के) काम नहीं आतीं। अनेकों ज्ञान, ध्यान और अनुमान उस प्रभु के रहस्य को नहीं जान सकते । लाखों चन्द्र और लाखों सूर्य रात-दिन उसकी आराधना करते हैं । लाखों लोग अन्यों की सेवा करने का कार्य कर रहे हैं ।

लख लख गरब गुमान लज्ज लजावहीं ।
लख लख दीन ईमान ताड़ी लावहीं ।
भाउ भगति भगवान सचि समावहीं ।।७।।

पउड़ी ८

(भाउ-भगति तों बिनाँ परचे)

लख पीर पतिसाह परचे लावही ।
जोग भोग लख राह संगि चलावही ।
दीन दुनी असगाह हाथि न पावही ।
कटक मुरीद पनाह सेव कमावही ।
अंतु न सिफति सलाह आखि सुणावही ।
लउबाली दरगाह खड़े धिआवही ॥ ८ ॥

पउड़ी ९

(भाउ-भगति तों बिना परचे)

लख साहबि सिरदार आवण जावणे ।
लख वडे दरबार बणत बणावणे ।

लाखों गर्व-गुमान में और लाखों लज्जा में ही बने रहनेवाले हैं । लाखों लोग अपनी-अपनी धर्म-साधना में उस प्रभु का ध्यान लगाते हैं । केवल प्रेम-भक्ति के फलस्वरूप ही कोई भी उस प्रभु रूपी सत्य में समाहित होता है ।। ७।।

पउड़ी ८

(प्रेम-भक्ति के बिना सब भुलावा है)

लाखों पीर और सम्राट लोगों को भ्रमों में भुलाए रहते हैं । लाखों लोग योग और भोग के मार्ग पर साथ-साथ चलते हैं पर वे सब धर्म और दुनिया के लिए अगाध प्रभु की थाह नहीं ले सकते। सेवकों के झुंड के झुंड उस प्रभु की सेवा करते हैं, परन्तु उनकी कही प्रशंसा और गुणानुवाद के मूलस्वरूप भी उस (प्रभु) का अंत नहीं जाना जा सकता । सभी लोग उस बेपरवाह प्रभु के दरबार में उसकी आराधना करते हैं ।। ८।।

पउड़ी ९

(वही)

लाखों स्वामी और सरदार आते-जाते हैं । लाखों बड़े-बड़े दरबारों के उपक्रम बने हुए हैं, जिनके भंडार द्रव्यों से इतने भरे हैं

दरब भरे भंडार गणत गणावणे ।
परवारै साधार बिरद सदावणे ।
लोभ मोह अहंकार धोह कमावणे ।
करदे चारु वीचारि दहदिसि धावणे ।
लख लख बुजरकवार मन परचावणे ॥ ९॥

पउड़ी १०

(भाउ भगति तों छुट होर परचे)

लख दाते दातार मंगि मंगि देवही ।
अउतरि लख अवतार कार करेवही ।
अंतु न पारावारु खेवट खेवही ।
वीचारी वीचारि भेतु न देवही ।
करतूती आचारि करि जसु लेवही ।
लख लख जेवणहार जेवण जेवही ।
लख दरगह दरबार सेवक सेवही ॥ १० ॥

~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~

कि उनकी गिनती गिनते रहना पड़ता है (ताकि कोई कमी न आये) । कई कुटुंबों का आधार बनकर अपने बिरद का पालन करते चले आ रहे हैं । कई लोभ, मोह और अहंकार के वश घोखाधड़ी करते हैं और दसों दिशाओं में घूमते रहने का आचरण बनाये रखते हैं । लाखों बुजुर्ग हैं जो अभी भी (आशाओं-तृष्णाओं में) मन उलझाए हुए हैं ।। ९ ।।

पउड़ी १०

(भावभक्ति के बिना अन्य सब प्रपंच)

लाखों दाता हैं जो खुद माँग-माँगकर लोगों को देते हैं । लाखों अवतारों ने जन्म लेकर काम किये हैं । उसके बनाये भवसागर का अन्त अनेकों चप्पू चलानेवाले मल्लाह भी नहीं जान पाये । उसका विचार करनेवाले भी उसके रहस्य के बारे में कुछ नहीं बता पाते । अच्छा आचरण करनेवाले अपने कामों के कारण यश का अर्जन करते हैं । लाखों खिलानेवाले लोगों को भोजन खिला-खा रहे हैं और लाखों ही उस प्रभु के और सांसारिक राजाओं के दरबार में सेवा किये चले जा रहे हैं ।। १० ।।
~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~~

पउड़ी ११

(भाउ-भगति तों छुट होर परचे)

सूर वीर वरीआम जोरु जणावही ।
सुणि सुणि सुरते लख आखि सुणावही ।
खोजी खोजनि खोजि दहि दिसि धावही ।
चिर जीवै लख होइ न ओड़कु पावही ।
खरे सिआणे होइ न मनु समझावही ।
लउबाली दरगाह चोटाँ खावही ॥ ११ ॥

पउड़ी १२

(खुदी दे दुक्ख ते सबर दे सुख)

हिकमति लख हकीम चलत बणावही ।
आकल होइ फहीम मते मतावही ।
गाफल होइ गनीम वाद वधावही ।
लड़ि लड़ि करनि मुहीम आपु गणावही ।

पउड़ी ११

(वही)

श्रेष्ठ शूरवीर अपना बल दिखाते हैं । लाखों श्रोता सुन-सुनकर उसकी महिमा का बखान करते हैं । खोज करनेवाले लोग भी दसों दिशाओं में दौड़ते फिरते हैं । लाखों चिरंजीव हो गुजरे हैं पर उस प्रभु का रहस्य नहीं जान सके । लोग बहुत चतुर होते हुए भी मन को नहीं समझा पाते और प्रभु-दरबार में सजा पाते हैं ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(अहम् के दुख और संतुष्टि के सुख)

वैद्यगण (हकीम) चिकित्सा के लाखों नुस्खे तैयार करते हैं । लाखों व्यक्ति, जो चतुराई से भरे-पूरे हैं, अनेकों मंत्रणाएँ करते हैं । अनेकों शत्रु अनजान बनकर अपनी शत्रुता बढ़ाते चले जाते हैं । वे लड़ाइयों के लिए चढ़-चढ़कर जाते हैं और अपने अहम् का प्रदर्शन करते हैं।

होइ जदीद कदीम न खुदी मिटावही ।
साबरु होइ हलीम आपु गवावही ॥ १२ ॥

पउड़ी १३

(खुदी मिटे ताँ गती है)

लख लख पीर मुरीद मेल मिलावही ।
सुहदे लख सहीद जारत लावही ।
लख रोजे लख ईद निवाज करावही ।
करि करि गुफत सुनीद मन परचावही ।
हुजरे कुलफ कलीद जुहद कमावही ।
दरि दरवेस रसीद आपु जणावही ॥ १३ ॥

पउड़ी १४

(माइआधारी डरावणे हन)

उचे महल उसारि विछाइ विछावणे ।
वडे दुनीआदार नाउ गणावणे ।

वे जवानी से बुढ़ापे में चले जाते हैं पर फिर भी उनका अहंकारभाव मिटता नहीं । जो सब्र वाले हैं और विनम्र हैं केवल वे ही अहम्‌भाव गँवाते हैं ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(अहम् मिटने से ही सुगति है)

लाखों पीर मुरीद परस्पर मिलते हैं । लाखों ही भिखारीवत् व्यक्ति शहीदों की जियारत करते हैं अर्थात् मेलों के रूप में एकत्र होते हैं । लाखों व्यक्ति रोजा रख ईद की नमाज अदा करते हैं । अनेकों लोग प्रश्नों-उत्तरों के साथ मन बहलाते रहते हैं । अनेकों मन-मंदिर के ताले की भक्ति रूपी चाबी तैयार करने में रत हैं । परन्तु जोउसा प्रभु के द्वार के दरवेश बनकर स्वीकृत हो गये हैं वे अपने आपको जनाते नहीं ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(मायाबी डरावने हैं)

ऊँचे महल बनाकर उसमें (दरी-कालीन आदि) विछौने बिछाये जाते हैं और दुनियादारी में बड़े लोगों में नाम गिनाया जाता है ।

करि गड़ कोट हजार राज कमावणे ।
लख लख मनसबदार वजह वधावणे ।
पूर भरे अहंकार आवन जावणे ।
तितु सचे दरबार खारे डरावणे ॥ १४ ॥

पउड़ी १५

(उत्थे पखंड नहीं चलदा)

तीरथ लख करोड़ि पुरबी नावणा ।
देवी देवसथान सेव करावणा ।
जप तप संजम लख साधि सधावणा ।
होम जग नईवेद भोग लगावणा ।
वरत नेम लख दान करम कमावणा ।
लउबाली दरगाह पखंड न जावणा ॥ १५ ॥

पउड़ी १६

(दरगाह दा बंदा सभ तों उच्चा है)

पोपलीआँ भरनालि लख तरंदीआँ ।
ओड़क ओड़क भालि सुधि न लहंदीआँ ।

हजारों किले बनाकर लोग राज करते हैं और लाखों सेवक द्वारों पर बधाइयाँ गाते हैं । वे सब अहम्भाव से भरकर आवागमन में लगे रहते हैं और प्रभु के उस सच्चे दरबार में खड़े बहुत भयानक दिखाई देते हैं ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(वहाँ पाखंड नहीं चलता)

लाखों-करोड़ों पर्वों पर स्नान करना, देवी-देवताओं के स्थानों पर सेवा करना, जप, तप, संयम का पालन कर लाखों साधनाओं को करना, होम, यज्ञ, नैवेद्य आदि का भोग लगाना, व्रत, नियम और लाखों दानकर्म करना आदि पाखंड उस (सच्चे) दरबार में बिलकुल कोई अर्थ नहीं रखते ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(प्रभु-दरबार का सेवक सबसे ऊँचा है)

हवा से भरी लाखों मश्कें (नावें) पानी में तैरती हैं पर उस सागर की खोज करने पर भी उसका अन्तिम छोर नहीं जान पातीं।

अनल मनल करि खिआल उमगि उडंदीआँ ।
उछलि करनि उछाल न उभि चढ़ंदीआँ ।
लख अगास पताल करि मुहछंदीआँ ।
दरगह इक रवाल बंदे बंदीआँ ॥ १६ ॥

पउड़ी १७

(वाहिगुरू दी त्रिशटी)

तैगुण माइआ खेलु करि देखालिआ ।
खाणी बाणी चारि चलतु उठालिआ ।
पंजि तत उतपति बंधि बहालिआ ।
छिअ रुति बारह माह सिरजि सम्हालिआ ।
अहिनिसि सूरज चंदु दीवे बालिआ ।
इकु कवाउ पसाउ नदरि निहालिआ ॥ १७ ॥

अनिल नामक पक्षियों की कतारें भी मन में आकाश के बारे में जानने की उमंग लेकर उड़ती हैं । वे उछलकर ऊपर की ओर छलाँगें भरते हैं पर फिर भी पूरा ऊपर तक नहीं जा पाते । लाखों आकाश, पाताल के निवासी उस प्रभु के सामने भिक्षुक हैं और प्रभु-दरबार के सेवकों के सामने धूल मात्र हैं ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(वाहिगुरु-प्रभु की सृष्टि)

(प्रभु ने) त्रिगुणात्मक माया का खेल बनाकर यह संसार प्रस्तुत किया है। उसने चार खानियाँ (अंडज, जेरज, स्वेदज, उद्भिज) एवं चार वाणियों (परा,पश्यंती, मध्यमा, बैखरी) का कौतुक बनाया है । पाँच तत्वों से सबकी उत्पत्ति कर सबको नियम में बाँधकर रख दिया है । छः ऋतुएँ, बारह मास का सृजन कर, उनका पोषण कर रहा है । रात-दिन जलने के लिए सूर्य और चन्द्र दीपक जला दिये हैं। एक ही स्फुरण से उसने सृष्टि का प्रसार कर उस पर कृपादृष्टि कर उसे निहाल कर दिया है ।। १७ ।।

पउड़ी १८

(आप अलेप है)

कुदरति इकु कवाउ थाप उथापदा ।
तिदू लख दरीआउ न ओड़कु जापदा ।
लख ब्रहमंड समाउ न लहरि विआपदा ।
करि करि वेखै चाउ लख परतापदा ।
कउणु करै अरथाउ वर न सरापदा ।
लहै न पछोताउ पुंनु न पापदा ॥ १८ ॥

पउड़ी १९

(कुदरत ते कादर बेअंत असगाह है)

कुदरति अगमु अथाहु अंतु न पाईऐ ।
कादरु बेपरवाहु किन परचाईऐ ।

पउड़ी १८

(स्वयं निर्लिप्त है)

प्रभु एक ही स्फुरण से सृष्टि की स्थापना कर उसको नष्ट भी कर देता है। उस प्रभु से ही अनेक (जीवन-) धाराएँ निकली हैं जिनका कोई अन्त पता नहीं लगता । लाखों ब्रह्मांड उसमें समाहित हैं पर उस पर किसी का कोई प्रभाव नहीं पड़ता । वह अपना कार्य करके उसे उत्साह-पूर्वक निहारता है और लाखों को प्रतापी बनाता है। उसके वरदान और शाप के सिद्धान्त का अर्थ भला कौन समझ सकता है? वह (मानसिक) पाप-पुण्य के पछतावे को ग्रहण नहीं करता (केवल अच्छे कार्यों को मानता है) ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(कर्त्ता और उसकी सृष्टि अनन्त है)

प्रभु की शक्ति रूपी सृष्टि अगम्य एवं अथाह है, उसका अन्त नहीं जाना जा सकता । वह कर्त्ता भी बेपरवाह है, उसे कैसे फुसलाया जाए। उसका दरबार कितना बड़ा है, यह कैसे बखान किया जाए । कोई भी उस तक पहुँचने का मार्ग बतानेवाला नहीं है । समझ नहीं आता उस

केवडु है दरगाह आखि सुणाईऐ ।
कोइ न दसै राहु कितु बिधि जाईऐ ।
केवडु सिफति सलाह किउ करि धिआईऐ ।
अबिगति गति असगाहु न अलखु लखाईऐ ॥ १९ ॥

पउड़ी २०

(केवल गुरप्रसादि दी इच्छा)

आदि पुरखु परमादि अचरजु आखीऐ ।
आदि अनीलु अनादि सबदु न साखीऐ ।
वरतै आदि जुगादि न गली गाखीऐ ।
भगति वछलु अछलादि सहजि सुभाखीऐ ।
उनमनि अनहदि नादि लिव अभिलाखीऐ ।
विसमादै विसमाद पूरन पाखीऐ ।
पूरै गुर परसादि केवल काखीऐ ॥ २० ॥ २१ ॥ इकीह ॥

तक कैसे पहुँचे। उसका गुणानुवाद कितना अपार है और कैसे उसकी आराधना की जाए, इस बात की समझ नहीं पड़ती । परमात्मा की गति अव्यक्त है और गहन गंभीर है उसे जाना नहीं जा सकता ।। १९ ।।

पउड़ी २०

(केवल गुरु-प्रसाद की इच्छा)

आदिपुरुष प्रभु परम आश्चर्य रूप कहा जाता है । शब्द भी उस आदि के बारे में कोई साथी नहीं देता अर्थात् बताने में असमर्थ है । वह आदि युगादिकाल से परिव्याप्त है । केवल बातों से उसका विचार नहीं किया जा सकता । वह भक्तवत्सल अछल-रूप है और सहज भाव के नाम से जाना जाता है । सुरति की केवल यह अभिलाषा है कि उन्मनि-अवस्था में उसके अनहद नाद में सुरति की लवलीनता बनी रहे । वह सम्पूर्ण आयामों वाला आश्चर्यों का भी आश्चर्य है । केवल यही आकांक्षा है कि पूर्णगुरु का प्रसाद प्राप्त होता रहे (ताकि उस प्रभु का साक्षात्कार हो सके) ।। २० ।। २१।।

* * *

वार २२

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।।

पउड़ी १

(मंगलाचरण ईश्वरी रचना)

निराधार निरंकारु न अलखु लखाइआ ।
होआ एकंकारु आपु उपाइआ ।
ओअंकारि अकारु चलितु रचाइआ ।
सचु नाउ करतारु बिरदु सदाइआ ।
सचा परवदगारु त्रैगुण माइआ ।
सिरठी सिरजणहारु लेखु लिखाइआ ।
सभसै दे आधारु न तोलि तुलाइआ ।
लखिआ थिति न वारु न माहु जणाइआ ।
वेद कतेब वीचारु न आखि सुणाइआ ॥ १ ॥

~~~~~~

पउड़ी १

(मंगलाचरण ईश्वरीय रचना)

उस निराधार एवं निराकार अलक्ष्य प्रभु ने अपना आप किसी पर भी प्रकट नहीं किया । उसने निराकार से एकमेवाद्वितीयम् स्वरूप धारण किया और ॐकार अर्थात् अनन्त रूप धारण कर अपना कौतुकमयी चरित्र प्रस्तुत किया । वह सत्य नाम के रूप में कर्ता बनकर बिरदपालक कहलाया । वह त्रिगुणात्मक माया के माध्यम से सबका पालन-पोषण करनेवाला है । वह सृष्टि का सृजनहार और सबकी भाग्यरेखा लिखने वाला है । वह सबका आधार है और उसकी तुलना में किसी को नहीं रखा जा सकता । (अपनी सृष्टि-रचना का) दिन, तिथि, माह आदि उसने किसी को नहीं बताये हैं । वेद, कतेब आदि भी उसके विचार को पूर्ण रूप से व्यक्त नहीं कर पाये हैं ।। १ ।।
~~~~~~

पउड़ी २

(ईश्वरी बल)

निरालंबु निरबाणु बाणु चलाइआ ।
उडै हंस उचाण किनि पहुचाइआ ।
खंभी चोज विडाणु आणि मिलाइआ ।
ध्रू चड़िआ असमाणि न टलै टलाइआ ।
मिलै निमाणै माणु आपु गवाइआ ।
दरगह पति परवाणु गुरमुखि धिआइआ ॥ २ ॥

पउड़ी ३

(ईश्वरी बल)

ओड़कु ओड़कु भालि न ओड़कु पाइआ ।
ओड़कु भालणि गए सि फेर न आइआ ।

पउड़ी २

(ईश्वरीय शक्ति)

वह निरालम्ब प्रभु किसी भी आदत के वश में नहीं है । हंस ऊँचाईयों तक उड़कर कैसे पहुँचता है? यह उसके पंखों का ही आश्चर्यमय कार्य है जिससे उसने इतनी ऊँचाई को हंस से मिला दिया है । ध्रुव तारे के रूप में कैसे अटल होकर आसमान पर जा चढ़ा? ऐसा उसी के साथ संभव होता है जिसने अहम्भाव गँवाकर विनम्रता धारण की है । जिस गुरुमुख ने प्रभु-आराधना की है वही उसके दरबार में ससम्मान स्वीकृत हुआ है ।। २ ।।

पउड़ी ३

(वही)

लोगों ने उसका अंत जानने के लिए कितने ही प्रयत्न किये हैं पर उसका अंत नहीं जान सके। जो उसका अंत जानने के लिए निकले, वे वापस न पहुँच सके।

ओड़कु लख करोड़ि भरमि भुलाइआ ।
आदु वडा विसमादु न अंतु सुणाइआ ।
हाथि न पारावारु लहरी छाइआ ।
इकु कवाउ पसाउ न अलखु लखाइआ ।
कादरु नो कुरबाणु कुदरति माइआ ।
आपे जाणै आपु गुरि समझाइआ ॥ ३ ॥

पउड़ी ४

(त्रिशटी रचना)

सचा सिरजणिहारु सचि समाइआ ।
सचहु पउणु उपाइ घटि घटि छाइआ ।
पवणाहु पाणी साजि सीसु निवाइआ ।
तुलहा धरति बणाइ नीर तराइआ ।
नीरहु उपजी अगि वणखंडु छाइआ ।
अगी होछी बिरखु सुफल फलाइआ ।

इस अंत को जानने के लिए लाखों-करोड़ों लोग भ्रमों में ही भूले रहे हैं । वह आदि (पुरुष) बहुत बड़ा आश्चर्य है जिसका रहस्य सुनने-समझने में नहीं आता । उसकी लहरों, छाया आदि का कोई पारावार नहीं है अर्थात् वह अनन्त है । एक ही स्फुरण से सारा प्रसार करनेवाले अलक्ष्य प्रभु को देखा नहीं जा सकता । यह सृष्टि जिसकी माया है उस कर्त्ता पर मैं कुर्बान जाता हूँ । गुरु ने यही समझाया है कि वह प्रभु स्वयं को स्वयं ही जानता है (अन्य कोई उसे नहीं जानता) ।। ३ ।।

पउड़ी ४

(सृष्टि-रचना)

वह सच्चा सृजनहार सत्य रूप में सबमें समाया हुआ है । सत्य से ही उसने पवन पैदा कर (श्वास-रूप में) घर-घर में भर दी है । पवन से उसने पानी की सृजना की जिसका सिर सदैव नम्रता में झुका रहता है अर्थात् वह नीचे की ओर बहता है । धरती को बेड़ा बनाकर उस जल में तैरा दिया अर्थात् धरती को आवागमन के सागर से पार होने के लिए धर्म-अर्जन का स्थल बना दिया ("तिसु विचि धरती थापि रखी धरमसाल ।" --जपु जी ३४)। जल से अग्नि पैदा हुई और सारी वनस्पति में छा गई । इसी अग्नि (उष्णता) से वृक्ष फलों को देनेवाले बने।

पउणु पाणी बैसंतरु मेलि मिलाइआ ।
आदिपुरखु आदेसु खेलु रचाइआ ॥ ४ ॥

पउड़ी ५
(रचना)

केवडु आखा सचु सचे भाइआ ।
केवडु होआ पउणु फिरै चउवाइआ ।
चंदण वासु निवासु बिरख बोहाइआ ।
खहि खहि वंसु गवाइ वांसु जलाइआ ।
सिव सकती सहलंगु अंगु जणाइआ ।
कोइल काउ निआउ बचन सुणाइआ ।
खाणी बाणी चारि साह गणाइआ ।
पंजि सबद परवाणु नीसाणु बजाइआ ॥ ५ ॥

इस प्रकार पवन, पानी, अग्नि के मेल से आदिपुरुष के आदेश के फलस्वरूप यह सृष्टि का खेल रचा गया * ।। ४ ।।

पउड़ी ५
(रचना)

सत्य को कितना बड़ा कहें ताकि उस सत्य (स्वरूप परमात्मा) को अच्छा लगे । पवन का आकार कितना बड़ा है जो चारों दिशाओं में भ्रमणशील है । चंदन में सुगंध भरी जो अन्य वृक्षों को भी सुगंधित करती है । बाँस तो आपस में भिड़कर ही जलते हैं और अपने वंश का नाश करते रहते हैं । शिव-शक्ति के मेल से ही शरीरों का आकार दृष्यमान हुआ है । बोली को सुनकर कोयल और कौवे के बारे में निर्णय हो जाता है । उसने खानियाँ एवं विभिन्न वाणियाँ बनाई और हिसाब से श्वासों को बनाकर (प्रत्येक जीव को) प्रदान किया । अनहत् शब्द के स्थूल रूपों के पाँच प्रकार के शब्दों को स्वीकार कर उसने अपनी सर्वोपरिता का डंका बजवाया है ।। ५ ।।

---

* इस पउड़ी में भाई गुरुदास ने गुरु नानक वाणी के "सच्चे ते पवना भइआ पवनै ते जलु होई । जल ते त्रिभुवणु साजिआ घटि घटि जाति समोई ।" (गुरुग्रंथ पृ०१९) पद का भावानुवाद एवं व्याख्या प्रस्तुत की है ।

पउड़ी ६

(साध लक्खण)

राग नाद संबाद गिआनु चेताइआ ।
नउ दरवाजे साधि साधु सदाइआ ।
वीह इकीह उलंघि निज घरि आइआ ।
पूरक कुंभक रेचक त्राटक धाइआ ।
निउली करम भुयंगु आसण लाइआ ।
इड़ा पिंगुला झाग सुखमनि छाइआ ।
खेचर भूचर चाचर साधि सधाइआ ।
साध अगोचर खेलु उनमनि आइआ ॥ ६ ॥

पउड़ी ७

(जोग)

त्रै सतु अंगुल लै मनु पवणु मिलाइआ ।
सोहं सहजि सुभाइ अलख लखाइआ ।

पउड़ी ६

(साधु-लक्षण)

राग, नाद, संवाद और ज्ञान आदि व्यक्ति को चैतन्य बनाते हैं । शरीर के नव-द्वारों को साध कर कोई व्यक्ति साधु कहलाता है । वह संसार के प्रपंचों को लाँघकर निज स्वरूप में स्थित हो जाता है । इससे पूर्व वह हठयोग के रेचक-पूरक, कुंभक, त्राटक, न्यौली कर्म, भुजंग-आसन आदि की ओर दौड़ा फिरता था । वह इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना के माध्यम से साधना करता था । वह खेचरी,भूचर, चाचरी मुद्राओं की साधना करता था । परन्तु साधुओं के खेल तो अगोचर होते हैं। वे उन्हीं के माध्यम से सहज उन्मनि-अवस्था में स्थित हो जाते हैं ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(योग)

दस अँगुली बाहर जानेवाले श्वास के साथ मन मिलाया जाता है तथा साधना की जाती है । परन्तु अलक्ष्य सोऽहं को सहज रूप में ही देखा जाता है ।

निझरि धारि चुआइ अपिउ पीआइआ ।
अनहद धुनि लिव लाइ नाद वजाइआ ।
अजपा जापु जपाइ सुंन समाइआ ।
सुंनि समाधि समाइ आपु गवाइआ ।
गुरमुखि पिरमु चखाइ निज घरु छाइआ ।
गुरसिखि संधि मिलाइ पूरा पाइआ ।। ७ ।।

पउड़ी ८

(गुरू अते सिक्ख)

जोती जोति जगाइ दीवा बालिआ ।
चंदन वासु निवासु वणासपति फालिआ ।
सललै सललि संजोगु त्रिबेणी चालिआ ।
पवणै पवणु समाइ अनहदु भालिआ ।
हीरै हीरा बेधि परोइ दिखालिआ ।
पथरु पारसु होइ पारसु पालिआ ।

इसी सहज अवस्था में सतत् झरनेवाले अमृत की धारा का पान किया जाता है । सुरति के द्वारा लीन होकर अनहद नाद को सुना बजाया जाता है । अजपा जाप के माध्यम से शून्य (प्रभु) में समाया जाता है और उस शून्य समाधि में स्थित हो अहम्भाव को गँवा दिया जाता है । गुरुमुख योग के उपर्युक्त साधनों को छोड़ प्रेम-प्याला पीकर निज स्वरूप में स्थित हो जाते हैं । सिक्ख गुरु से मिलकर पूर्ण ज्ञान को प्राप्त करता है ।। ७ ।।

पउड़ी ८

(गुरु एवं सिक्ख)

जैसे दीपक की ज्योति से अन्य दीपक जलाया जाता है, चंदन की गंध सारी वनस्पति को सुगंधित कर देती है; जैसे जल जल से मिलकर त्रिवेणी के महत्व वाला बन जाता है, जैसे हवा में हवा मिलकर अनहद् नाद का रूप धारण कर लेती है; हीरा हीरे को बेधकर माला में पिरोकर समान रूप से अवस्थित हो जाता है, पत्थरों में रहकर पारस अपने धर्म का पालन करता है

अनल पंखि पुतु होइ पिता सम्हालिआ ।
ब्रहमै ब्रहमु मिलाइ सहजि सुखालिआ ॥ ८ ॥

पउड़ी ९

(ईश्वरी उसतती)

केवडु इकु कवाउ पसाउ कराइआ ।
केवडु कंडा तोलु तोलि तुलाइआ ।
करि ब्रहमंड करोड़ि कवाउ वधाइआ ।
लख लख धरति अगासि अधर धराइआ ।
पउणु पाणी बैसंतरु लख उपाइआ ।
लख चउरासीह जोनि खेलु रचाइआ ।
जोनि जोनि जीअ जंत अंतु न पाइआ ।
सिरि सिरि लेखु लिखाइ अलेखु धिआइआ ॥ ९ ॥

और अनिल पक्षी आसमान में पैदा होकर अपने पिता के कार्य को आगे बढ़ाता है, वैसे ही गुरु शिष्य को ब्रह्म से मिलाकर सहज भाव में स्थित कर देता है ।। ८ ।।

पउड़ी ९

(ईश्वरीय-स्तुति)

उसका एक स्फुरण (वाक्) कितना विशाल है जिसने यह सारा जगत-प्रसार रच डाला । उसका तौलने का काँटा कितना बड़ा है सारी सृष्टि को सँभाले हुए है । उसने करोड़ों ब्रह्मांडों की रचना कर अपनी वाक्शक्ति का और प्रसार कर दिया । लाखों धरती और आकाशों को उसने अधर में स्थित कर दिया । लाखों प्रकार के पवन, जल और अग्नियाँ उत्पन्न कीं । चौरासी लाख योनियों का खेल बना दिया । एक-एक योनि के जीव-जन्तुओं का भी अन्त नहीं जाना जा सकता । उसने सबके माथे पर लेख लिख दिया है ताकि वे उस अलेख प्रभु का ध्यान करें ।। ९ ।।

पउड़ी १०

(गुरमुख मारग)

सतिगुर सचा नाउ आखि सुणाइआ ।
गुर मूरति सचु थाउ धिआनु धराइआ ।
साधसंगति असराउ सचि सुहाइआ ।
दरगह सचु नआउ हुकमु चलाइआ ।
गुरमुखि सचु गिराउ सबद वसाइआ ।
मिटिआ गरबु गुआउ गरीबी छाइआ ।
गुरमति सचु हिआउ अजरु जराइआ ।
तिसु बलिहारै जाउ सु भाणा भाइआ ॥ १० ॥

पउड़ी ११

(गुरमुख परम-पद)

सची खसम रजाइ भाणा भावणा ।
सतिगुर पैरी पाइ आपु गुवावणा ।

पउडी १०

(गुरुमुख-मार्ग)

सद्गुरु ने सच्चा नाम (शिष्यों को) कह सुनाया है । आराधना करने के लिए गुरुमूर्ति (गुरु का शब्द) ही सच्चा स्थान है । साधुसंगति का आश्रय ही ऐसा है जहाँ सत्य शोभायमान होता है । सद्संगति रूपी दरबार में प्रभु का हुक्म ही चलता है । गुरुमुखों का गाँव तो सत्य है जो शब्द के द्वारा बसाया गया है । गर्वगुमान वहाँ मिट जाता है और विनम्रता की (सुखदायक) छाया वहाँ प्राप्त होती है । गुरुमति के माध्यम से असहनीय सत्य को हृदय में धारण किया जाता है । मैं उस पर बलिहारी जाता हूँ जिसे उस प्रभु की रजा अच्छी लगती है ।। १० ।।

पउड़ी ११

(गुरुमुख परम-पद)

(गुरुमुख व्यक्ति) उस प्रभु की रजा को सत्य मानते हैं और उसकी इच्छा उन्हें अच्छी लगती है । वे चरण-वंदना कर अहम्भाव को गँवाते हैं ।

गुर चेला परचाइ मनु पतीआवणा ।
गुरमुखि सहजि सुभाइ न अलख लखावणा ।
गुरसिख तिल न तमाइ कार कमावणा ।
सबद सुरति लिव लाइ हुकमु मनावणा ।
वीह इकीह लंघाइ निज घरि जावणा ।
गुरमुखि सुख फल पाइ सहजि समावणा ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(गुरू अंगददेव)

इकु गुरू इकु सिखु गुरमुखि जाणिआ ।
गुर चेला गुर सिखु सचि समाणिआ ।
सो सतिगुर सो सिखु सबदु वखाणिआ ।
अचरज भूर भविख सचु सुहाणिआ ।
लेखु अलेखु अलिखु माणु निमाणिआ ।
समसरि अंम्रितु विखु न आवण जाणिआ ।

शिष्य-रूप में वे गुरु को प्रसन्न करते हैं और गुरु का मन भी प्रसन्न हो उठता है। गुरुमुख सहज भाव में ही अलक्ष्य प्रभु के दर्शन कर लेता है। गुरु को तिल मात्र भी लालच नहीं होता और वह स्वयं अपनी आजीविका कमाता है। वह शब्द में सुरति को लीन कर उस प्रभु के आदेश को मानता है। सांसारिक प्रपंचों को लाँघकर वह निज स्वरूप में आ स्थित होता है। इस प्रकार गुरुमुख व्यक्ति सुखफल प्राप्त कर सहज में समाहित हो जाते हैं ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(गुरु अंगददेव)

गुरुमुख लोग एक गुरु (नानक) और एक शिष्य (गुरु अंगद) को भली प्रकार जानते हैं । गुरु का यह शिष्य गुरु का सच्चा सिक्ख बनकर सत्य में लीन हो गया । सद्गुरु और शिष्य एक ही रूप थे और उनका शब्द भी एक ही था । भूत-भविष्य में आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि सत्य (दोनों को) अच्छा लगता था । वे सब लेखों से परे और मान-विहीनों के लिए गौरवप्रदाता थे । उनके लिए अमृत और विष एक समान था और वे आवागमन के चक्र से छूट गये थे ।

नीसाणा होइ लिखु हद नीसाणिआ ।
गुर सिखहु गुर सिखु होइ हैराणिआ ॥ १२ ॥

पउड़ी १३

(गुरमुखाँ दे लच्छण ते धूड़ दा प्रताप)

पिरम पिआला पूरि अपिओ पीआवणा ।
महरमु हकु हजूरि अलखु लखावणा ।
घट अवघट भरपूरि रिदै समावणा ।
बीअहु होइ अंगूरु सुफलि समावणा ।
बावन होइ ठरूर महि महिकावणा ।
चंदन चंद कपूर मेलि मिलावणा ।
ससीअर अंदरि सूर तपति बुझावणा ।
चरण कवल दी धूरि मसतकि लावणा ।
कारण लख अंकूर करणु करावणा ।
वजनि अनहद तूर जोति जगावणा ॥ १३ ॥

वे विशिष्टता के प्रतीक लिखे जाते हैं और विशिष्ट व्यक्तियों का वे चरम उत्कर्ष थे । गुरु का सिक्ख गुरु बन गया, यही हैरानी से देखा जानेवाला तथ्य है ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(गुरुमुखों के लक्षण और धूलि का प्रताप)

(गुरुमुख व्यक्ति) प्रेम का असह्य प्याला लबालब भरकर पीते हैं और सर्वत्र व्याप्त प्रभु की हुजूरी में बने रहकर उस अलक्ष्य को लखते हैं। जो घट-घट में बसा है उसे उन्होंने अपने हृदय में बसाया हुआ है । उनके प्रेम-फल की बेल बीज से अंगूर की बेल की तरह फलदार बन गई है । वे बावन चंदन बनकर सबको शीतलता प्रदान करते हैं । उनकी शीतलता चंदन, चन्द्रमा और कपूर की शीतलता से मेल खाती है । वे सूर्य (रजोगुण) को चन्द्र (सत्वगुण) में मिलाकर उसकी गर्मी को शान्त कर देता है । वे चरणकमलों की धूलि को मस्तक पर लगाते हैं और सब कार्यों के मूल कारण कर्त्ता को जान लेते हैं । जब ज्योति उनके हृदय में उदित हो जाती है तो अनहद नाद बजने लगते हैं ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(गुरमुखाँ दे लच्छण ते धूड़ दा प्रताप)

इकु कवाउ अतोलु कुदरति जाणीऐ ।
ओअंकारु अबोलु जोच विडाणीऐ ।
लख दरीआव अलोलु पाणी आणीऐ ।
हीरे लाल अमोलु गुरसिख जाणीऐ ।
गुरमति अचल अडोल पति परवाणीऐ ।
गुरमुखि पंथु निरोलु सचु सुहाणीऐ ।
साइर लख ढंढोल सबदु नीसाणीऐ ।
चरण कवल रज घोलि अंम्रित वाणीऐ ।
गुरमुखि पीता रजि अकथ कहाणीऐ ॥ १४ ॥

पउड़ी १५

(वाहिगुरू अकथ है)

कादरु नो कुरबाणु कीम न जाणीऐ ।
केवडु वडा हाणु आखि वखाणीऐ ।

पउड़ी १४

(गुरुमुखों के लक्षण और धूलि का प्रताप)

उस प्रभु के एक स्फुरण की शक्ति अपरिमित जानी जाती है । ॐकार की शक्ति और आश्चर्यजनकता अवर्णनीय है । (उसकी लीला ही है कि)लाखों दरिया पानी रूपी जीवन लिये बहते चले जाते हैं । उसकी रचना में ही अनमोल हीरे-लालों की तरह गुरुमुख जाने जाते हैं, जो गुरुमत में स्थिर बने रहते हैं और सम्मानपूर्वक प्रभु-दरबार में स्वीकृत होते हैं । गुरुमुखों का मार्ग शुद्ध है और उन्हें (केवल) सत्य ही अच्छा लगता है । लाखों ही कवि उसके शब्द के रहस्य को पाना चाहते हैं । गुरुमुखों ने तो गुरु की चरणधूलि को अमृत के समान घोलकर अघा कर पिया है । यह कहानी भी अकथनीय है ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(वाहिगुरु-परमात्मा अकथनीय है)

उस कर्त्ता पर मैं कुर्बान हूँ उसका मूल्य नहीं जाना जा सकता। उसकी आयु कितनी बड़ी है कोई कैसे बताए ? मैं उस विनम्रों के गौरव बढ़ानेवाले की शक्ति के बारे में क्या बताऊँ।

केवडु आखा ताणु माणु निमाणीऐ ।
लख जिमी असमाणु तिलु न तुलाणीऐ ।
कुदरति लख जहानु होइ हैराणीऐ ।
सुलताना सुलतान हुकमु नीसाणीऐ ।
लख साइर नैसाण बूँद समाणीऐ ।
कूडु अखाण बखाण अकथ कहाणीऐ ॥ १५ ॥

पउड़ी १६

(गुरमुखाँ दी रहिणी)

चलणु हुकमु रजाइ गुरमुखि जाणिआ ।
गुरमुखि पंथि चलाइ चलणु भाणिआ ।
सिदकु सबूरी पाइ करि सुकराणिआ ।
गुरमुखि अलखु लखाइ चोज विडाणिआ ।
वरतण बाल सुभाइ आदि वखाणिआ ।
साधसंगति लिव लाइ सचु सुहाणिआ ।

लाखों धरतियाँ और आकाश उसके तिलमात्र के बराबर भी नहीं हैं । लाखों ही ब्रह्मांड उसकी शक्ति को देखकर हैरान होते हैं । वह सम्राटों का भी सम्राट् है और उसका हुक्म तो स्पष्ट ही है । लाखों समुद्र उसकी एक बूँद में समा जाते हैं । जितने व्याख्यान और कहानियाँ उससे संबधित हैं वे अपूर्ण (झूठ) हैं, क्योंकि उसकी कहानी तो अकथनीय है ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(गुरुमुखों का आचरण)

गुरुमुख व्यक्ति उस प्रभु के आदेश में चलना जानते हैं । गुरुमुख ने वह पंथ चलाया है जो प्रभु की इच्छा में चलता है । वे संतुष्ट रहकर और विश्वास में रहकर उस प्रभु का शुक्रिया अदा करते रहते हैं । गुरुमुख आश्चर्यजनक कौतुकों को देखते हैं । वे बालकों की तरह सरल स्वभाव वाले बनकर आचरण करते हैं और उस आदिपुरुष का ही गुणगान करते हैं । साधुसंगति में वे सुरति लीन करते हैं और सत्य उन्हें अच्छा लगता है । शब्द को पहचानकर वे जीवनमुक्त हो जाते हैं। गुरुमुख व्यक्ति अहम्भाव को गँवाकर अपने आपको पहचान लेते हैं ।। १६ ।।

जीवन मुकति कराइ सबदु सिखाणिआ ।
गुरमुखि आपु गवाइ आपु पछाड़िआ ॥ १६ ॥

पउड़ी १७

(सतिगुर महिमा)

अबिगति गति असगाह आखि बखाणीऐ ।
गहिर गंभीर अथाह हाथि न आणीऐ ।
बूँद लख परवाह हुलड़ वाणीऐ ।
गुरमुखि सिफति सलाह अकथ कहाणीऐ ।
पारावारु न राहु बिअंतु सुहाणीऐ ।
लउबाली दरगाह न आवण जाणीऐ ।
वडा वेपरवाहु ताणु निताणीऐ ।
सतिगुर सचे वाहु होइ हैराणीऐ ॥ १७ ॥

पउड़ी १८

(साधसंगति सचखंड है)

साधसंगति सच खंडु गुरमुखि जाईऐ ।
सचु नाउ बलवंडु गुरमुखि धिआईऐ ।

पउड़ी १७

(सद्गुरु की महिमा)

सद्गुरु की गति अव्यक्त और अथाह है। वह इतनी गहन-गंभीर है कि उसका अन्त नहीं जाना जा सकता। जैसे एक-एक बूँद से शोर मचानेवाले अनेकों प्रवाह बन जाते हैं, ऐसे ही गुरुमुखों की प्रशंसा भी बढ़ते-बढ़ते अकथनीय बन जाती है। उसके आर-पार को नहीं जाना जा सकता, क्योंकि वह अनंत हो शोभायमान होती है। उस प्रभु-दरबार में आने से फिर आना-जाना नहीं पड़ता अर्थात् जन्म-मरण के बंधन से मुक्त हो जाया जाता है। सद्गुरु बड़ा बेपरवाह और अशक्तों की शक्ति है। सच्चा गुरु धन्य है जिसकी कृपा को देखकर सभी हैरान होते हैं ।। १७ ।।

पउड़ी १८

(साधुसंगति सत्य देश है)

साधुसंगति सत्य का देश है जहाँ गुरुमुख जाते हैं । वह महान शक्तिशाली सत्यनाम की आराधना गुरुमुख करते हैं ।

परम जोति परचंडु जुगति जगाईऐ ।
सोधि डिठा ब्रहमंडु लवै न लाईऐ ।
तिसु नाही जम डंडु सरणि समाईऐ ।
घोर पाप करि खंडु नरकि न पाईऐ ।
चावल अंदरि वंडु उबरि जाईऐ ।
सचहु सचु अखंडु कूड़ु छुडाईऐ ॥ १८ ॥

पउड़ी १९

(गुरसिक्ख दी रहिणी)

गुरसिखा साबास जनमु सवारिआ ।
गुरसिखाँ रहरासि गुरू पिआरिआ ।
गुरमुखि सासि गिरासि नाउ चितारिआ ।
माइआ विचि उदासु गरबु निवारिआ ।
गुरमुखि दासनि दास सेव सुचारिआ ।
वरतनि आस निरास सबदु वीचारिआ ।

वहाँ युक्तिपूर्वक वे अपनी परमज्योति को और अधिक प्रदीप्त करते हैं । सारे ब्रह्मांड को भलीभाँति देख लिया है कोई उसके समान नहीं है । जो सद्संगति की शरण में आ गया है उसे यमदंड का भय नहीं । घोर पाप भी नष्ट हो जाते हैं और नर्क में जाने से बच जाया जाता है । जैसे भूसे में से चावल बाहर निकल आते हैं ऐसे ही सद्संगति में जानेवालों का उद्धार हो जाता है । वहाँ एकरस सत्य ही व्याप्त रहता है और झूठ पीछे छूट जाता है ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(गुरु के सिक्ख का आचरण)

गुरु के सिक्खों को शाबाश है जिन्होंने अपना जन्म सँवार लिया है । गुरु के सिक्खों की मर्यादा यही है कि उन्हें गुरु प्यारा लगता है । गुरुमुख श्वास-प्रतिश्वास प्रभु-नाम का स्मरण करते हैं । वे गर्व को त्यागकर माया में उदासीन बने रहते हैं। गुरुमुख तो दासों के भी दास अपने आपको मानते हैं और सेवा करना ही उनका सत्याचरण है । वे शब्द का चिंतन कर आशाओं में भी उदासीन बने रहते हैं ।

गुरमुखि सहजि निवासु मन हठ मारिआ ।
गुरमुखि मनि परगासु पतित उधारिआ ॥ १९ ॥

पउड़ी २०

(गुरमुख रहिणी)

गुरसिखा जैकारु सतिगुर पाइआ ।
परवारै साधारु सबदु कमाइआ ।
गुरमुखि सचु आचारु भाणा भाइआ ।
गुरमुखि मोख दुआरु आप गवाइआ ।
गुरमुखि परउपकार मनु समझाइआ ।
गुरमुखि सचु आधारु सचि समाइआ ।
गुरमुखा लोकारु लेपु न लाइआ ।
गुरमुखि एकंकारु अलखु लखाइआ ॥ २० ॥

पउड़ी २१

(गुरमुख सरूप)

गुरमुखि ससीअर जोति अंम्रित वरसणा ।
असट धातु इक धातु पारसु परसणा ।

मन में से हठ की प्रवृत्ति को समाप्त कर गुरुमुख सहज अवस्था में निवास करते हैं । गुरुमुखों का प्रकाशित मन अनेकों पतितों का उद्धार कर देता है ।। १९ ।।

पउड़ी २०

(गुरुमुखों का आचरण)

उन गुरुसिखों की जय-जयकार होती है जिन्होंने सद्गुरु को पा लिया है। उन्होंने शब्दों की साधना कर सारे परिवार का भी उद्धार कर लिया है। गुरुमुखों को प्रभु-इच्छा अच्छी लगती है और वे सत्य पर आचरण करते हैं। गुरुमुख अहम्भाव को गँवाकर मोक्षद्वार प्राप्त करते हैं। गुरुमुखों ने परोपकार किये जाने की बात मन को समझा ली होती है । गुरुमुखों का आधार भी सत्य है और वे सत्य में ही समाहित हो जाते हैं। गुरुमुख व्यक्ति लोकलाज का भय नहीं मानते और इस प्रकार उस एककार अलक्ष्य प्रभु का दर्शन कर लेते हैं ।। २० ।।

पउड़ी २१

(गुरुमुख का स्वरूप)

गुरुमुख चन्द्रमा की तरह अमृतज्योति को बरसाते हैं। गुरुमुख रूपी पारस के स्पर्श से अष्टधातुएँ भी सोना बन जाती हैं

चंदन वासु निवासु बिरख सुदरसणा ।
गंग तरंग मिलापु नदीआँ सरसणा ।
मानसरोवर हंस न त्रिसना तरसणा ।
परम हंस गुरसिख दरस अदरसणा ।
चरण सरण गुरदेव परस अपरसणा ।
साधसंगति सच खंडु अमर न मरसणा ॥ २१ ॥ २२ ॥ बाई ॥

अर्थात् सभी व्यक्ति निर्मल हो जाते हैं। वे चन्दन की गंध की तरह सभी वृक्षों में रम जाते हैं अर्थात् सबको अपना बना लेते हैं । गंगा में अनेक तरंगों के मिलकर गंगा-रूप हो जाने के समान गुरुमुख भी सबको सरस बना देते हैं । गुरुमुख मानसरोवर के हंस हैं, जिन्हें अन्य तृष्णाएँ सताती नहीं । गुरु के सिक्ख परमहंस हैं और उनका दर्शन करने को तो वे भी तरसते हैं जो स्वयं अदृष्ट ही बने रहते हैं अर्थात् सामान्य लोगों से नहीं मिलते । जिन्होंने गुरु की शरण ग्रहण की है वे चाहे तथाकथित रूप से अस्पर्श्य हो पर सभी उन्हें मिलना चाहते हैं । साधुसंगति ही सत्यदेश है जहाँ जाकर व्यक्ति अमर हो जाता है और आवागमन से मुक्त हो जाता है ।। २१ ।। २२ ।।

* * *

वार २३

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।।

पउड़ी १

(मंगलाचरण)

सति रूप गुरु दरसनो पूरन ब्रहमु अचरजु दिखाइआ ।
सति नामु करता पुरखु पारब्रहमु परमेसरु धिआइआ ।
सतिगुर सबद गिआनु सचु अनहद धुनि विसमादु सुणाइआ ।
गुरमुखि पंथु चलाइओनु नामु दानु इसनानु द्रिड़ाइआ ।
गुरसिखु दे गुरसिख करि साधसंगति सचु खंडु वसाइआ ।
सचु रास रहरासि दे सतिगुर गुरसिख पैरी पाइआ ।
चरण कवल परतापु जणाइआ ।। १ ।।

पउड़ी १

(मंगलाचरण)

गुरु (नानकदेव) का दर्शन सत्यस्वरूप है जिसने पूर्ण एवं विस्मय-कारक ब्रह्म का साक्षात्कार करा दिया । उसने सत्यनाम कर्त्ता पुरुष का मंत्र देकर लोगों को परब्रह्म परमेश्वर स्मरण कराया है । सद्गुरु का शब्द सत्य रूपी ज्ञान है जिसके माध्यम से आश्चर्यजनक अनहद ध्वनि सुनाई पड़ती है । गुरु ने गुरुमुख-पंथ को चलाकर सबको नाम-स्मरण, दान और स्नान में दृढ़तापूर्वक लीन बने रहने की प्रेरणा दी । गुरु ने शिक्षा देकर और गुरु-सिक्ख बनाकर साधुसंगति रूपी सत्य देश बसा दिया । उस सद्गुरु ने सत्य की पूँजी लोगों को देकर गुरु-सिक्ख बनाकर उन्हें चरणों में झुकाया । उसने गुरु के चरण-कमलों के प्रताप की भी जानकारी लोगों को दी (कि गुरु-चरणों के प्रताप से ही सब सुख-समृद्धि प्राप्त होती है) ।। १।।

पउड़ी २

(तीरथ साधू)

तीरथ न्हातै पाप जानि पतित उधारण नाउँ धराइआ ।
तीरथ होन सकारथे साध जनाँ दा दरसनु पाइआ ।
साध होए मन साधि कै चरण कवल गुर चिति वसाइआ ।
उपमा साध अगाधि बोध कोट मधे को साधु सुणाइआ ।
गुरसिख साध असंख जगि धरमसाल थाइ थाइ सुहाइआ ।
पैरी पै पैर धोवणे चरणोदकु लै पैरु पुजाइआ ।
गुरमुखि सुख फलु अलखु लखाइआ ।। २ ।।

पउड़ी ३

(धूड़ी)

पंजि तत उतपति करि गुरमुखि धरती आपु गवाइआ ।
चरण कवल सरणागती सभ निधान सभे फल पाइआ ।

पउड़ी २

(तीर्थ साधु)

तीर्थों पर पापों के नष्ट हो जाने के कारण लोगों ने उनका नाम पतित-उद्धारक रख दिया । तीर्थ भी तभी सार्थक होते हैं, यदि वे साधु जनों का दर्शन प्राप्त कर लें । साधु भी वे होते हैं जिन्होंने मन को साधकर अपने चित्त को गुरु के चरण-कमलों में लगा दिया है । साधु की महिमा भी अगाध एवं दुर्बोध है, करोड़ों में कोई एक (सच्चा) साधु कहा जाता है । गुरु (नानक) के गुरुसिक्ख रूपी साधु तो जगत् में असंख्य हैं, क्योंकि स्थान-स्थान पर धर्मशालाएँ शोभा दे रही हैं । लोग गुरु के सिक्खों की चरण-वंदना कर उनका चरणामृत ले उनके चरणों की पूजा करते हैं । गुरुमुख व्यक्ति ने अलक्ष्य परमात्मा का दर्शन कर लिया है और सुखफल को प्राप्त किया है ।। २ ।।

पउड़ी ३

(धूलि)

गुरुमुखों ने पाँचों तत्वों के गुण अपने हृदय में पैदा कर धरती की तरह अहम्भाव को गँवा दिया है। वे गुरु के चरणों की शरण में आ गये हैं

लोक वेद गुर गिआन विचि साधू धूड़ि जगत तराइआ ।
पतित पुनीत कराइ कै पावन पुरख पवित्र कराइआ ।
चरणोदक महिमा अमित सेख सहस मुखि अंतु न पाइआ ।
धूड़ी लेखु मिटाइआ चरणोदक मनु वसिगति आइआ ।
पैरी पै जगु चरनी लाइआ ॥ ३ ॥

पउड़ी ४

(गंगा दे द्रिशटांत तों उपदेश)

चरणोदकु होइ सुरसरी तजि बैकुंठ धरति विचि आई ।
नउ मै नदी नड़िंनवै अठसठि तीरथि अंगि समाई ।
तिहु लोई परवाणु है महादेव लै सीस चढ़ाई ।
देवी देव सरेवदे जै जै कार वडी वडिआई ।
सणु गंगा बैकुंठ लख लख बैकुंठ नाथि लिव लाई ।

और उस खजाने से उन्हें सभी प्रकार के फल प्राप्त होते हैं । लोक-मर्यादा और गुरु के दिये ज्ञान से भी यही प्रकट होता है । साधु की (चरण) धूलि ही संसार को पार करती है । यह पतितों को पुण्यवान और पावन पुरुषों को और अधिक पवित्र कर देती है । संतों के चरणामृत की महिमा अपरिमित है, शेषनाग भी अनेकों मुखों से गायन कर उसका अंत नहीं जान सका । चरणधूलि ने सभी लेख समाप्त कर दिये और चरणामृत के फलस्वरूप मन भी वश में आ गया। गुरुमुख व्यक्ति ने पहले स्वयं चरण-वंदना की और फिर सारे संसार को अपने चरणों में लगा लिया ।। ३ ।।

पउड़ी ४

(गंगा के दृष्टांत से उपदेश)

प्रभु का चरणामृत गंगा बैकुण्ठ छोड़कर धरती पर आई । नौ सौ निन्यानवे नदियाँ और अड़सठ तीर्थ उसमें समाहित हो गये । वह तीनों लोकों में प्रामाणिक है और महादेव ने भी उसे सिर पर धारण किया । देवी-देवता सभी उसकी पूजा करते हैं और उसके बड़प्पन की जय-जयकार करते हैं । गंगा-समेत लाखों बैकुण्ठ और बैकुण्ठों के स्वामी समाधियों में लीन होकर कहते हैं

साधू धूड़ि दुलंभ है साधसंगति सतिगुरु सरणाई ।
चरन कवल दल कीम न पाई ॥ ४॥

पउड़ी ५

(गुरमुखाँ दे सुख-फल दी वडिआई)

चरण सरणि जिसु लखमी लख कला होइ लखी न जाई ।
रिधि सिधि निधि सभ गोलीआँ साधिक सिध रहे लपटाई ।
चारि वरन छिअ दरसनाँ जती सती नउ नाथ निवाई ।
तिंन लोअ चौदह भवन जलि थलि महीअल छलु करि छाई ।
कवला सणु कवलापती साधसंगति सरणागति आई ।
पैरी पै पा खाक होइ आपु गवाइ न आपु गणाई ।
गुरमुखि सुख फलु वडी वडिआई ॥ ५ ॥

पउड़ी ६

(राजा बलि दे कथा-प्रसंग तों चरन-कमलाँ दी महिमा)

बावन रूपी होइ कै बलि छलि अछलि आपु छलाइआ ।
करौं अढाई धरति मंगि पिछों दे वड पिंडु वधाइआ ।

कि साधु की चरण-धूलि दुर्लभ है जो कि सद्गुरु की शरण में आने से ही प्राप्त होती है। चरण-कमलों की एक पंखुड़ी का भी मूल्य नहीं आँका जा सकता ।। ४ ।।

पउड़ी ५

(गुरुमुखों के सुखफल की महिमा)

जिस लक्ष्मी के चरणों की शरण में लाखों अदृष्ट कलाएँ विराजमान हैं; ऋद्धियाँ, सिद्धियाँ एवं निधियाँ जिसकी दासियाँ हैं और अनेकों सिद्ध-साधक उन्हीं में लिपटे हुए हैं । लक्ष्मी ने चारों वर्णों, छः दर्शनों एवं समस्त यति, सती तथा नव नाथों को झुका लिया है । वह तीनों लोकों, चौदह भुवनों, जल-स्थल और पाताल में छलपूर्वक छायी हुई है । वह लक्ष्मी (कमला) लक्ष्मीपति-समेत साधुसंगति की शरण में आई है जहाँ गुरुमुखों ने (लक्ष्मी की परवाह न कर) साधुजनों की चरण-वंदना कर अहम्भाव को गँवा दिया है और अपने आपको कभी नहीं जताया है । गुरुमुखों के इस सुखफल की महिमा बड़ी महान् है ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(राजा बलि के कथा-प्रसंग से चरण-कमलों की महिमा)

वामन-रूप धारण कर राजा बलि को छलने की क्रिया में असफल रह स्वयं छला गया। ढाई कदम धरती राजा से दान माँगकर बाद में वामन ने अपना शरीर बढ़ा लिया।

दुइ करुवा करि तिंनि लोअ बलि राजे फिरि मगरु मिणाइआ ।
सुरगहु चंगा जाणि कै राजु पताल लोक दा पाइआ ।
ब्रहमा बिसनु महेसु त्रै भगति वछल दरवान सदाइआ ।
बावन लख सु पावना साधसंगति रज इछ इछाइआ ।
साधसंगति गुर चरन धिआइआ ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(परसुराम अवतार चरण-कमलाँ दे रस तों वाँजिआ रिहा)

सहस बाहु जमदगनि घरि होइ पराहणुचारी आइआ ।
कामधेणु लोभाइ कै जमदगनै दा सिरु वढवाइआ ।
पिटदी सुणि कै रेणुका परसराम धाई करि धाइआ ।
इकीह वार करोध करि खत्री मारि नि-खत्र गवाइआ ।
चरण सरणि फड़ि उबरे दूजै किसै न खड़गु उचाइआ ।

~~~~~~

दो कदम में उसने तीनों लोक नाप लिये और आधे कदम में राजा बलि का शरीर नाप लिया । अब राजा बलि स्वर्ग के राज्य से पाताल के राज्य को अच्छा मानकर वहाँ राज्य करने लगा । अब भगवान, जो कि ब्रह्मा-विष्णु-महेश तीनों का ही रूप है, भक्तवत्सल बनकर बलि का द्वारपाल बना । वामन जैसे अनेकों पवित्र अवतार भी साधुसंगति की चरण-धूलि की इच्छा करते हैं । वे भी साधुसंगति और गुरु के चरणों की आराधना करते हैं ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(परशुराम-अवतार चरण-कमलों के रस से विहीन रहा)

सहस्रबाहु नामक राजा जमदग्नि ऋषि के यहाँ अतिथि बनकर आया । कामधेनु गाय को ऋषि के पास देखकर वह ललचा गया और उसने जमदग्नि का सिर काट दिया । माँ रेणुका को प्रलाप करती सुनकर पुत्र परशुराम दौड़ा हुआ आया । परशुराम ने क्रोधित हो इक्कीस बार धरती को क्षत्रियों से विहीन कर दिया अर्थात् सभी क्षत्रिय मार डाले । जो परशुराम के सामने विनम्र हो उसके चरणों में आ गिरे उन्हीं का उद्धार हुआ, अन्य कोई भी खड़ग न उठा सका अर्थात् सभी मारे गये । वह परशुराम भी अहम्भाव न मार सका ।
~~~~~~

हउमै मारि न सकीआ चिरंजीव हुइ आपु जणाइआ ।
चरण कवल मकरंदु न पाइआ ॥ ७ ॥

पउड़ी ८

(रामचंदर तों पग-धूड़ी दा उपदेश)

रंग महल रंग रंग विचि दसरथु कउसलिआ रलीआले ।
मता मताइनि आप विचि चाइ चईले खरे सुखाले ।
घरि असाड़ै पुतु होइ नाउ कि धरीऐ बालक बाले ।
रामचंदु नाउ लैंदिआँ तिंनि हतिआ ते होइ निहाले ।
राम राज परवाण जगि सत संतोख धरम रखवाले ।
माइआ विचि उदास होइ सुणै पुराणु बसिसटु बहाले ।
रामाइणु वरताइआ सिला तरी पग छुहि ततकाले ।
साधसंगति पग धूड़ि निहाले ॥ ८ ॥

वह चिरंजीव तो बन गया पर सदैव अहम्भाव जताता रहा । उसने भी प्रभु-चरण-कमल के रस को प्राप्त नहीं किया ।। ७ ।।

पउड़ी ८

(रामचन्द्र से चरण-धूलि का उपदेश)

रंगमहल में दशरथ और कौशल्या दोनों राग-रंग में लीन थे । वे उत्साहपूर्वक परस्पर विचार-विमर्श कर रहे थे कि यदि हमारे घर में पुत्र हो तो उसका क्या नाम रखा जाए ? (नाम रामचन्द्र रखा जाए क्योंकि) राम का नाम लेते ही हम तीन हत्याओं (भ्रूण एवं उसके माता-पिता की हत्या) के पाप से मुक्त हो जाएँगे । राम-राज्य, जिसमें सत्य, संतोष एवं धर्म की रक्षा होती थी, सारे संसार में स्वीकृत हुआ । राम माया में भी उदास बने रहते थे और वशिष्ठ के पास बैठकर पुराणों की कथा-वार्ता सुनते थे । रामायण के माध्यम से लोगों ने यह जाना कि राम के चरणों के स्पर्श से शिला (अहल्या) का उद्धार हो गया । (वे राम भी) साधुसंगति की चरण-धूलि पा प्रसन्न होते हैं (और वनों में जाकर तपस्वियों के चरण धोते हैं) ।। ८ ।।

पउड़ी ९

(क्रिशन चंद्रावतार)

किसन लैआ अवतारु जगि महमा दसम सकंधु वखाणै ।
लीला चलत अचरज करि जोगु भोगु रस रलीआ माणै ।
महाभारथु करवाइओनु कैरो पाडो करि हैराणै ।
इंद्रादिक ब्रहमादिका महिमा मिति मिरजाद न जाणै ।
मिलीआ टहला वंडि कै जगि राजसू राजे राणै ।
मंग लई हरि टहल एह पैर धोइ चरणोदकु माणै ।
साधसंगति गुर सबदु सिञाणै ॥ ९ ॥

पउड़ी १०

(अवतार सुलभ, चरन गुर दुरलभ)

मछ रूप अवतारु धरि पुरखारथु करि वेद उधारे ।
कछु रूप हुइ अवतरे सागरु मथि जगि रतन पसारे ।

पउड़ी ९

(कृष्णचन्द्रावतार)

भागवत का दशम स्कंध कृष्ण के संसार में अवतार धारण करने की महिमा का बखान करता है । उसने अनेकों आश्चर्यकारी भोग और योग-साधनाएँ कीं और रसों का उपभोग किया । कौरव और पांडवों का परस्पर युद्ध करवाकर दोनों पक्षों को हैरानी में डाल दिया । इन्द्र और ब्रह्मा आदि भी उसकी महिमा की सीमा को नहीं जानते । जब युधिष्ठर का राजसूय यज्ञ हुआ तो सबको काम बाँटे गये, तब श्रीकृष्ण ने सबके पाँव धोने की सेवा अपने लिए ले ली ताकि इस सेवा के माध्यम से वह भी साधुसंगति (के महत्व) को एवं गुरुशब्द को पहचान सके ।। ९ ।।

पउड़ी १०

(अवतार सुलभ, गुरुचरण-दुर्लभ)

मत्स्य-रूप में (विष्णु ने) अवतार ले ऐसा माना जाता है कि पुरुषार्थपूर्वक वेदों का उद्धार किया । फिर कच्छप-रूप में सागर-मंथन कर रत्न सागर से निकाले।

तीजा करि बैराह रूपु धरति उधारी दैत संघारे ।
चउथा करि नरसिंघ रूपु असुरु मारि प्रहिलादि उबारे ।
इकसै ही ब्रहमंड विचि दस अवतार लए अहंकारे ।
करि ब्रहमंड करोड़ि जिनि लूँअ लूँअ अंदरि संजारे ।
लख करोड़ि इवेहिआ ओअंकार अकार सवारे ।
चरण कवल गुर अगम अपारे ॥ १० ॥

पउड़ी ११

(गुर चरन सभ तों स्रेशट)

सासत्र वेद पुराण सभ सुणि सुणि आखणु आख सुणावहि ।
राग नाद संगीत लख अनहद धुनि सुणि सुणि गुण गावहि ।
सेख नाग लख लोमसा अबिगति गति अंदरि लिव लावहि ।
ब्रहमे बिसनु महेस लख गिआनु धिआनु तिलु अंतु न पावहि ।
देवी देव सरेवदे अलख अभेव न सेव पुजावहि ।

तीसरे अवतार वाराह के रूप में दैत्यों का संहार कर धरती का उद्धार किया। चौथा अवतार नरसिंह-रूप में लिया जिसमें असुर (हिरण्यकशिपु) को मारकर प्रह्लाद को बचाया। एक ही ब्रह्मांड में दस अवतार धारण कर विष्णु भी अहंकारी बन गया। परन्तु जिसने एक-एक रोम में ऐसे करोड़ों ब्रह्मांड स्थित कर रखे हैं, उस ॐकार परमात्मा ने ऐसे लाखों-करोड़ों को सँवार कर रखा है। (इस सबके बावजूद) गुरु के चरण-कमल अगम्य एवं अपार हैं ।। १० ।।

पउड़ी ११

(गुरुचरण सबसे श्रेष्ठ हैं)

शास्त्र-वेद-पुराण आदि को सुन-सुनकर लोग उनके बारे में कहते-सुनते हैं। लाखों ही व्यक्ति राग-नाद एवं अनहद ध्वनि सुनते एवं गायन करते हैं । शेषनाग और लाखों लोमस ऋषि सरीखे उस अव्यक्त प्रभु की गति जानने के लिए ध्यान लगाते हैं । लाखों ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं जो उसको ध्यान ज्ञान करते सुनते हैं पर फिर भी तिलमात्र भी उसका रहस्य नहीं जान पाते । देवी-देवता उस प्रभु की आराधना करते हैं पर फिर भी उसके रहस्य को जानने तक नहीं पहुँच पाते।

गोरखनाथ मछंद्र लख साधिक सिधि नेत करि धिआवहि ।
चरन कमल गुरु अगम अलावहि ॥ ११ ॥

पउड़ी १२

(केवल उच्चा आदर योग नही)

मथै तिवड़ी बामणै सउहे आए मसलति फेरी ।
सिरु उचा अहंकार करि वल दे पग वलाए डेरी ।
अखी मूलि न पूजीअनि करि करि वेखनि मेरी तेरी ।
नकु न कोई पूजदा खाइ करोड़ी मणी घनेरी ।
उचे कंन न पूजीअनि उसतति निंद्रा भली भलेरी ।
बोलहु जीभ न पूजीऐ रस कस बहु चखी दंदि घेरी ।
नीवें चरण पूज हथ केरी ॥ १२ ॥

लाखों गोरखनाथ और मछेन्द्र एवं सिद्ध आदि नेति-नेति कहकर उसका ध्यान करते हैं । ये सभी गुरु के चरण-कमलों को अगम्य कहकर पुकारते हैं ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(केवल ऊँचा ही आदरणीय नहीं होता)

घर से निकलते समय यदि ब्राह्मण(जिसे कि अपनी जाति का अभिमान है) सामने पड़ जाए तो (हिन्दू) लोग (अपशकुन समझकर) जाने का निर्णय टाल देते हैं । सिर ऊँचा होने का अहंकार करता है इसीलिए पगड़ी से बाँध ा दिया जाता है। आँखों की भी पूजा नहीं की जाती क्योंकि ये द्वैतभावना से देखती हैं । नाक की भी कोई पूजा नहीं करता, क्योंकि यह भी अपने से छोटे को देखकर सिकोड़ लिया जाता है । कान भी ऊँचे हैं, उनकी भी पूजा नहीं होती क्योंकि वे भी स्तुति-निदा सुनते हैं । जीभ की भी पूजा नहीं की जाती क्योंकि वह भी रस और कषायों को चखती रहती है और दाँतों में घिरी रहती है । नीचे होने के कारण चरणों की हाथों द्वारा पूजा-अर्चना की जाती है ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(बकरी दे अलंकार तों उपदेश)

हसति अखाजु गुमानकरि सीहु सताणा कोइ न खाई ।
होइ निमाणी बकरी दीन दुनी वडिआई पाई ।
मरणै परणै मंनीऐ जगि भोगि परवाणु कराई ।
मासु पवित्रु ग्रिहसत नो आंदहु तार वीचारि वजाई ।
चमड़े दीआँ करि जुतीआ साधू चरण सरणि लिव लाई ।
तूर पखावज मड़ीदे कीरतनु साधसंगति सुखदाई ।
साधसंगति सतिगुर सरणाई ॥ १३ ॥

पउड़ी १४

(माणस देही)

सभ सरीर सकारथे अति अपवितु सु माणस देही ।
बहु बिंजन मिसटान पान हुइ मल मूत्र कुसूत्र इवेही ।

पउड़ी १३

(बकरी के माध्यम से उपदेश)

अभिमानी होने के कारण हाथी भी अखाद्य है और शक्तिशाली होने के कारण शेर को भी कोई नहीं खाता । बकरी विनम्र होती है इसलिए उसे सब जगह सम्मान मिलता है । मरण, विवाह आदि और यज्ञ, भोग आदि के अवसरों पर इसे ही स्वीकृत माना जाता है अर्थात् खाया जाता है । गृहस्थों में इसका मांस पवित्र माना जाता है और इसकी अँतड़ियों की ताँती बनाकर वाद्य बजाये जाते हैं । इसके चमड़े के जूते बनते हैं जो प्रभु-ध्यान में लीन रहनेवाले संतों द्वारा पहने जाते हैं। मृदंग और तबले आदि इसकी चमड़ी द्वारा मढ़कर साधुसंगति में सुखदायक कीर्तन का गान किया जाता है। साधुसंगति में सजाना ही सद्गुरु की शरण में जाना है ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(मानव-शरीर)

बाकी सभी शरीर सार्थक हैं केवल मनुष्य-देही ही अत्यन्त अपवित्र है। इसके साथ रहने से अनेकों व्यंजन, मिष्टान्न आदि मल-मूत्र बन जाते हैं ।

पाट पटंबर विगड़दे पान कपूर कुसंग सनेही ।
चोआ चंदनु अरगजा हुइ दुरगंध सुगंध हुरेही ।
राजे राज कमाँवदे पातिसाह खहि मुए सभे ही ।
साधसंगति गुरु सरणि विणु निहफलु माणस देह इवेही ।
चरन सरणि मसकीनी जेही ॥ १४ ॥

पउड़ी १५

(भगताँ दे नाम)

गुरमुखि सुख फलु पाइआ साधसंगति गुर सरणी आए ।
ध्रू प्रहिलादु वखाणीअनि अंबरीकु बलि भगति सबाए ।
जनकादिक जैदेउ जगि बालमीकु सतिसंगि तराए ।
बेणु तिलोचनु नामदेउ धंना सधना भगत सदाए ।
भगतु कबीरु वखाणीऐ जन रविदासु बिदर गुरु भाए ।
जाति अजाति सनाति विचि गुरमुखि चरण कवल चितु लाए ।
हउमै मारी प्रगटी आए ॥ १५ ॥

इसकी कुसंगति में रहकर रेशमी वस्त्र एवं पान-कपूर आदि भी बिगड़ जाते हैं । चन्दन, इत्र, अगरु आदि की सुगंधियाँ भी इसके साथ रहने पर दुर्गन्ध में बदल जाती हैं । राजा राज करते हैं और परस्पर लड़-लड़कर मर जाते हैं। साधुसंगति एवं गुरु की शरण में गये बिना यह मनुष्य-देही भी निष्फल है । जो गुरु के चरणों की शरण में आ गई है वही देही सार्थक है, अन्य नहीं ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(भक्तों के नाम)

उन गुरुमुखों ने सुखफल प्राप्त किया है जो साधुसंगति की शरण में आ गये, हैं । ये भक्तिगण हैं ध्रुव, प्रह्लाद, अंबरीष एवं बलि आदि। जनक, जयदेव, वाल्मीकि आदि को सद्संगति ने ही पार किया है। बेणी, त्रिलोचन, नामदेव, धन्ना, सदना आदि भी भक्त कहलाये हैं। कबीर को भक्त माना जाता है और रविदास, विदुर आदि भी गुरु (परमात्मा) की आज्ञा (इच्छा) में चले हैं । नीच जाति, ऊँची जाति अथवा किसी भी जाति में पैदा हो जिस गुरुमुख ने चरण कमलों में चित्त लगा लिया है, वह ही अपने अहम् को मारकर (भक्त के रूप में) प्रकट हुआ जाना जाता है ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(हिंदू मुसलमानाँ दी फक्कड़)

लोक वेद सुणि आखदा सुणि सुणि गिआनी गिआनु वखाणै ।
सुरग लोक सणु मात लोक सुणि सुणि सात पतालु न जाणै ।
भूत भविख न वरतमान आदि मधि अंत होए हैराणै ।
उतम मधम नीच होइ समझि न सकणि चोज विडाणै ।
रज गुण तम गुण आखीऐ सति गुण सुण आखाण वखाणै ।
मन बच करम सि भरमदे साधसंगति सतिगुर न सिञाणै ।
फकड़ु हिंदू मुसलमाणै ॥ १६ ॥

पउड़ी १७

(जुगाँ दे धरम)

सतिजुगि इकु विगाड़दा तिसु पिछै फड़ि देसु पीड़ाए ।
त्रेतै नगरी वगलीऐ दुआपुरि वंसु नरकि सहमाए ।

पउड़ी १६

(हिन्दू-मुसलमानों की व्यर्थता)

तथाकथित ज्ञानी व्यक्ति जगत् से संबंधित ज्ञान को सुन-सुनाकर उसका बखान करता है । सुनने वाला भी सुनता है कि प्रभु स्वर्गलोक, मातृलोक एवं सातों पातालों में व्याप्त है, पर फिर भी उसको मन से सत्य नहीं मानता । जो भूत, भविष्य और वर्तमानकाल में आश्चर्यजनक रूप से रमण कर रहा है, उसका बड़प्पन, व्यक्ति उत्तम, मध्यम एवं नीच बनकर अर्थात् वर्णों के बँटवारे में पड़कर नहीं समझ सकता। रजोगुणी, तमोगुणी और सत्वगुणी व्यक्ति भी उसके बारे में कहते-सुनते हैं। वे सब मन-वचन एवं कर्मों से भटकते रहते हैं और साधुसंगति एवं सद्गुरु को नहीं पहचानते, इसलिए यह हिन्दू--मुसलमान (का भेद) व्यर्थ है ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(युगों के धर्म)

सतयुग में एक व्यक्ति बुरा काम करता था तो सारे देश को पीड़ा भोगनी पड़ती थी। त्रेता में सारे नगर को घेर लिया जाता था

जो फेड़ै सो फड़ीदा कलिजुगि सचा निआउ कराए।
सतिजुग सतु त्रेतै जुगा दुआपुरि पूजा चारि दिड़ाए।
कलिजुगि नाउ अराधणा होर करम करि मुकति न पाए।
जुगि जुगि लुणीऐ बीजिआ पापु पुंनु करि दुख सुख पाए।
कलिजुगि चितवै पुंन फल पापहु लेपु अधरम कमाए।
गुरमुखि सुख फलु आपु गवाए ॥ १७ ॥

पउड़ी १८

(धरम धउल दा अलंकार)

सतजुग दा अनिआउ वेखि धउल धरमु होआ उडीणा।
सुरपति नरपति चक्रवै रखि न हंघनि बल मति हीणा।
त्रेते खिसिआ पैरु इकु होम जग जगु थापि पतीणा।
दुआपुरि दुइ पग धरम दे पूजा चार पखंडु अलीणा।

और द्वापर में सारा वंश नर्क में जाता था। कलियुग का न्याय सच्चा है क्योंकि इसमें जो बुरा करता है केवल उसे ही पकड़ा जाता है। सतयुग में सत्य, त्रेता में यज्ञ-कर्म एवं द्वापर में पूजा-अर्चना का कर्म कराया जाता था। कलियुग में प्रभु-नाम का स्मरण धर्म माना गया है, अन्य कर्मों से मुक्ति नहीं मिलती। जीव युग-युग में बोया हुआ काटता है और पाप-पुण्य के फलस्वरूप दुख-सुख पाता है। कलियुग में जीव चाहता तो है कि उसे पुण्य का फल (अच्छा) मिले पर कर्मों से वह पापपूर्ण कर्मों में लिप्त रहता है (अत: पुण्यफल कैसे संभव हो सकता है)। गुरुमुखों को सुखफल तो अहम्भाव गँवाकर ही प्राप्त होता है ।। १७ ।।

पउड़ी १८

(धर्म रूपी बैल का दृष्टांत)

सत्ययुग में भी अन्याय देखकर धर्म रूपी बैल उदास हो गया। सुरपति इन्द्र एवं चक्रवर्ती राजा भी, जो अहम्भाव में लीन और बल-बुद्धि से हीन थे, उसे सँभाल न सके। त्रेतायुग में उसका एक पैर खिसक गया और अब लोग केवल होम-यज्ञ आदि करके ही धार्मिक होने की संतुष्टि अनुभव करने लगे। द्वापर में धर्म के दो पाँव ही रह गये और लोग अब केवल पूजा-अर्चना में ही लिप्त रहने लगे।

कलिजुग रहिआ पैर इकु होइ निमाणा धरम अधीणा ।
माणु निमाणै सतिगुरू साधसंगति परगट परबीणा ।
गुरमुख धरम सपूरणु रीणा ॥ १८ ॥

पउड़ी १९

(गुरमुख पंथ)

चारि वरनि इक वरनि करि वरन अवरन सधासंगु जापै ।
छिअ रुती छिअ दरसना गुरमुखि दरसनु सूरजु थापै ।
बारह पंथ मिटाइ कै गुरमुखि पंथ वडा परतापै ।
वेद कतेबहु बाहरा अनहद सबदु अगंम अलापै ।
पैरी पै पा खाक होइ गुरसिखा रहरासि पछापै ।
माइआ विचि उदासु करि आपु गवाए जपै अजापै ।
लंघ निकथै वरै सरापै ॥ १९ ॥

कलियुग में धर्म रूपी बैल का एक ही पाँव रह गया और फलस्वरूप वह अत्यन्त निर्बल हो गया। अशक्तों की शक्ति सद्‌गुरु ने (उद्धार करने में) प्रवीण "साधुसंगतियों" का निर्माण कर उन्हें प्रकट किया। गुरुमुखों ने धूल में मिल चुके धर्म को पुनः पूर्णता प्रदान की।। १८ ।।

पउड़ी १९

(गुरुमुख पंथ)

(जब सद्‌गुरु ने) चारों वर्णों को एक वर्ण बना दिया तो अवर्ण सभी साधुसंगति ही प्रतीत होती है अर्थात् उनमें कोई भेदभाव नहीं रहता। छः ऋतुओं एवं छः दर्शनों में गुरुमुख-दर्शन सूर्य की तरह स्थापित कर दिया है। बारहों पंथों को मिटाकर (गुरु ने) बड़ा प्रतापी गुरुमुख पंथ बना दिया है। यह पंथ वेद-कतेब की सीमाओं से परे रहनेवाला है और अनहद शब्द (ब्रह्म) का ही आलाप-स्मरण करनेवाला है। इसमें चरण-वंदना कर, धूलि बनकर गुरु के शिष्य होने की मर्यादा को पहचाना जाता है। यह पंथ माया में उदासीन बना रहता है और अहम्‌भाव गँवाकर अजपा जाप जपता रहता है अर्थात् सदैव प्रभु-स्मरण करता रहता है। ये वरदान और शापों के प्रभावों से भी आगे निकल चुका है ।। १९ ।।

पउड़ी २०

(राजा रंक बराबर)

मिलदे मुसलमान दुइ मिलि मिलि करनि सलामालेकी ।
जोगी करनि अदेस मिलि आदि पुरखु आदेसु विसेखी ।
संनिआसी करि ओनमो ओनम नाराइण बहु भेखी ।
बाम्हण नो करि नमसकार करि आसीरवचन मुहु देखी ।
पैरी पवणा सतिगुरू गुरसिखा रहरासि सरेखी ।
राजा रंकु बराबरी बालक बिरधि न भेदु निमेखी ।
चंदन भगता रूप न रेखा ॥ २० ॥

पउड़ी २१

(निंम्रता दे द्रिशटांत)

नीचहु नीचु सदावणा गुर उपदेसु कमावै कोई ।
त्रै वीहाँ दे दंम लै इकु रुपईआ होछा होई ।

पउड़ी २०

(राजा-रंक बराबर है)

जब दो मुसलमान मिलते हैं तो परस्पर सलाम करते हैं। योगी जब मिलते हैं तो परस्पर 'आदेश', "आदिपुरुष को आदेश" आदि कहते हैं। बहुत से वेशों वाले संन्यासी जब मिलते हैं तो ऊँ नमः, ऊँ नमः नारायणः कहते हैं। ब्राह्मण को नमस्कार करो तो वह भी मुँह देखकर अर्थात् ऊँच-नीच को मन में रखकर तदनुसार आशीर्वाद देता है। गुरु के सिक्खों में मिलते समय चरण-वंदना की मर्यादा है जो श्रेष्ठ है। इस क्रिया में राजा-रंक सब बराबर हैं और बालक-वृद्ध का भी तनिक विभेद नहीं। चंदन और भक्तों के लिए कोई विशिष्ट आकार महत्त्व नहीं रखता अर्थात् वे कोई भेदभाव नहीं रखते ।। २० ।।

पउड़ी २०

(विनम्रता के दृष्टांत)

"अपने आपको नीचों से भी नीच कहलाना चाहिए" गुरु के इस उपदेश की साधना कोई बिरला ही करता है। तीन बीसे (साठ) पैसे अथवा तीस टके देकर यदि एक रुपया लिया जाय तो उसका भार कम हो जाता है।

दसी रुपयीं लईदा इकु सुनईआ हउला सोई ।
सहस सुनईए मुलु करि लय्यै हीरा हार परोई ।
पैरी पै पा खाक होइ मन बच करम भरम भउ खोई ।
होइ पंचाइणु पंजि मार बाहरि जादा रखि सगोई ।
बोल अबोलु साध जन ओई ॥ २१ ॥ २३ ॥ तेई ॥

फिर यदि दस रुपये देकर एक (सोने की) मुहर ली जाय तो उसका भार और कम हो जाता है। हजार मुहरों के मूल्य का यदि हीरा लिया जाय तो वह इतना हलका हो जाता है कि वह हार में पिरो लिया जाता है (और पहना जाता है)। जो व्यक्ति चरण-वंदना कर चरण-धूलि बनकर मन-वचन-कर्म से भ्रम और भय का निवारण कर लेता है, सद्संगति में पाँचों विकारों (काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार) को मारकर बाहर भटकते मन को पकड़कर सँभाल लेता है, उसका बोल अवर्णनीय है और वह वास्तव में साधुजन है ।। २१ ।। २३ ।।

* * *

वार २४

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।।

पउड़ी १

(मंगलाचरण)

नाराइण निज रूपि धरि नाथा नाथ सनाथ कराइआ ।
नरपति नरह नरिंदु है निरंकारि आकारु बणाइआ ।
करता पुरखु बखाणीऐ कारणु करणु बिरदु बिरदाइआ ।
देवी देव देवाधिदेव अलख अभेव न अलखु लखाइआ ।
सति रूपु सतिनामु करि सतिगुर नानक देउ जपाइआ ।
धरमसाल करतार पुरु साधसंगति सच खंडु वसाइआ ।
वाहिगुरू गुर सबदु सुणाइआ ।। १ ।।

पउड़ी १

(मंगलाचरण)

अनाथों के नाथ नारायण (परमात्मा) ने अपने रूप धारण कर सबको स्वामी वाले बना दिया। वह सामान्य मनुष्यों और राजाओं का भी राजा निराकार है जो (विभिन्न) आकार धारण करता है। उसे कर्त्ता पुरुष एवं सब कारणों का कारण बिरदपालक कहा जाता है। देवी, देवता आदि भी उस अलक्ष्य एवं रहस्यों से परे प्रभु का अन्त नहीं जान सके। सद्गुरु नानकदेव ने परमात्मा के सत्यस्वरूप का सत्यनाम लोगों को जपने की प्रेरणा दी। करतारपुर में धर्मशाला बनाकर उसे साधुसंगति के लिए सत्यदेश के रूप में बसा दिया। गुरु (नानकदेव जी) ने 'वाहिगुरु' (परमात्मा जो सत्य है) शब्द लोगों को (गा) सुनाया ।। १ ।।

पउड़ी २

(जगत गुरू)

निहचल नीउ धराईओनु साधसंगति सच खंड समेउ ।
गुरमुखि पंथु चलाइओनु सुख सागर बेअंतु अमेउ ।
सचि सबदि आराधीऐ अगम अगोचरु अलख अभेउ ।
चहु वरनाँ उपदेसदा छिअ दरसन सभि सेबक सेउ ।
मिठा बोलणु निव चलणु गुरमुखि भाउ भगति अरथेउ ।
आदिपुरखु आदेसु है अबिनासी अति अछल अछेउ ।
जगतु गुरू गुरु नानक देउ ।। २ ।।

पउड़ी ३

(सच्चा पातिशाह)

सतिगुर सचा पातिसाहु बेपरवाहु अथाहु सहाबा ।
नाउ गरीब निवाजु है बेमुहताज न मोहु मुहाबा ।

पउड़ी २

(जगद्‌गुरु)

साधुसंगति रूपी सत्यदेश की अचल नींव (गुरु नानक ने) सुनिश्चय-पूर्वक रखी और गुरुमुख पंथ चलाया जो अपरिमित सुखों का सागर है। वहाँ सत्य शब्द की आराधना होती है जो अगम्य, अगोचर, अलक्ष्य एवं रहस्यात्मक है। वह (सत्यदेश) चारों वर्णो को उपदेश देता है एवं छः दर्शन उसकी सेवा में लीन रहते हैं। गुरुमुख (वहाँ) मीठा बोलते हैं, नम्रतापूर्वक झुककर चलते हैं और भक्तिभाव के याचक होते हैं। उस आदिपुरुष को प्रणाम है जो अविनाशी, अछल एवं अक्षय है। गुरु नानकदेव ऐसे जगत् के गुरु हैं ।। २ ।।

पउड़ी ३

(सच्चा सम्राट्)

सद्‌गुरु सच्चा सम्राट् है जो बेपरवाह है, अथाह है और स्वामित्व के गुणों वाला है। उसका नाम गरीबनिवाज है। उसे न किसी से मोह है

बेसुमारु निरंकारु है अलख अपारु सलाह सिञाबा ।
काइमु दाइमु साहिबी हाजरु नाजरु वेद किताबा ।
अगमु अडोलु अतोलु है तोलणहारु न डंडी छाबा ।
इकु छति राजु कमाँवदा दुसमणु दूतु न सोर सराबा ।
आदलु अदलु चलाइदा जालमु जुलमु न जोर जराबा ।
जाहर पीर जगतु गुरु बाबा ॥ ३ ॥

पउड़ी ४

(सच्चा पातिशाह)

गंग बनारस हिंदूआँ मुसलमाणाँ मका काबा ।
घरि घरि बाबा गावीऐ वजनि ताल म्रिदंगु रबाबा ।
भगति वछलु होइ आइआ पतित उधारणु अजबु अजाबा ।
चारि वरन इक वरन होइ साधसंगति मिलि होइ तराबा ।
चंदनु वासु वणासपति अवलि दोम न सेम खराबा ।

और न ही वह किसी पर आश्रित है। वह निराकार, अनन्त, अलक्ष्य है एवं अपार गुणस्तुति वाला है। सद्गुरु की साहिब सदैव कायम है, क्योंकि वेदादि ग्रंथ भी सदैव (उसकी स्तुति के लिए) प्रस्तुत रहते हैं। वह सद्गुरु अतोलनीय, अचल है; उसे किसी तराजू के पलड़े पर तौला नहीं जा सकता। उसका राज्य एकछत्र है उसमें कोई शत्रु, दूत और शोर-शराबा नहीं है। वह सद्गुरु स्वयं न्यायशील है, न्याय करता है और किसी पर कोई भी जालिम जुल्म भी बलात्कार नहीं करता। ऐसा गुरु बाबा (नानक) सारे संसार में प्रसिद्ध है ।। ३ ।।

पउड़ी ४

(सच्चा सम्राट्)

हिन्दू गंगा-बनारस को एवं मुसलमान मक्का-काबा को (पवित्र तीर्थस्थान) मानते हैं। परन्तु गुरु नानक के यश का गायन तो मृदंग, रबाब आदि के माध्यम से घर-घर में होता है। वह भक्तवत्सल बनकर पतितों का उद्धार करने के लिए आया है और आश्चर्य-रूप है (क्योंकि इतना समर्थ होने पर भी अहम्भाव से शून्य है)। उसके उद्यम से चारों वर्ण मिलकर एक वर्ण बन गये हैं और व्यक्ति का उद्धार साधुसंगति को प्राप्त करके हो जाता है। चन्दन की गंध के समान वह बिना किसी बुरे-अच्छे के भेदभाव से सबको सुगंधित करता है।

हुकमै अंदरि सभ को कुदरति किस दी करै जवाबा ।
जाहर पीरु जगतु गुर बाबा ॥ ४ ॥

पउड़ी ५

(गुरू अंगद जी आगमन)

अंगहु अंग उपाइओनु गंगहु जाणु तरंगु उठाइआ ।
गहिर गंभीरु गहीरु गुणु गुरमुखि गुरु गोबिंदु सदाइआ ।
दुख सुख दाता देणिहारु दुख सुख समसरि लेपु न लाइआ ।
गुर चेला चेला गुरू गुरु चेले परचा परचाइआ ।
बिरखहु फलु फल ते बिरखु पिउ पुतहु पुतु पिउ पतीआइआ ।
पारब्रहमु पूरनु ब्रहमु सबदु सुरति लिव अलख लखाइआ ।
बाबाणे गुर अंगदु आइआ ॥ ५ ॥

सब उसकी आज्ञा में चलते हैं और किसमें इतनी शक्ति है कि वह उसके सामने सिर उठा सके। गुरु बाबा (नानक) सारे संसार में प्रकट रूप से पीर एवं गुरु हैं ।। ४ ।।

पउड़ी ५

(गुरु अंगद जी का आगमन)

(गुरु नानक ने) अपने अंग से उसे (गुरु अंगद को) ऐसे ही उत्पन्न किया जैसे गंगा में से उसकी लहरें उत्पन्न होती हैं। गहन्, गंभीर गुणों से युक्त वह (अंगद) गुरुमुखों द्वारा गुरु और परमात्मा-रूप में पुकारा गया। दुख-सुख देनेवाला वही है और उसे स्वयं दु:ख और सुख का कोई दाग नहीं लगता। गुरु और शिष्य का ऐसा प्रेम बना कि चेला गुरु और गुरु चेला बन गया। (यह ऐसे ही हुआ जैसे) वृक्ष से फल और फल से वृक्ष पैदा होता है। अथवा पिता पुत्र पर प्रसन्न होता है और पुत्र पिता के आदेश में प्रसन्न रहता है । उसने भी परब्रह्म पूर्णब्रह्म शब्द में सुरति को लीन कराकर उस अलक्ष्य का साक्षात्कार करा दिया। अब बाबा (नानक) के रूप में गुरु अंगद स्थापित हुआ है ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(गुरू अंगद-प्रकाश)

पारसु होआ पारसहु सतिगुर परचे सतिगुरु कहणा ।
चंदनु होइआ चंदनहु गुर उपदेस रहत विचि रहणा ।
जोति समाणी जोति विचि गुरमति सुखु दुरमति दुख दहणा ।
अचरज नो अचरजु मिलै विसमादै विसमादु समरणा ।
अपिउ पीअण निझरु झरणु अजरु जरणु असहीअणु सहणा ।
सचु समाणा सचु विचि गाडी राहु साधसंगि वहणा ।
बाबाणै घरि चानणु लहणा ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(सुपुत्र गुर अंगद)

सबदै सबदु मिलाइआ गुरमुखि अघड़ घड़ाए गहणा ।
भाइ भगति भै चलणा आपु गणाइ न खलहलु खहणा ।

पउड़ी ६

(गुरु अंगद-प्रकाश)

(गुरु अंगद) पारस (गुरु नानक) से मिलकर पारस बन गया और सद्गुरु से प्रेम लगाने के फलस्वरूप सद्गुरु कहलाया है। गुरु के उपदेश और बताई मर्यादा में रहने के फलस्वरूप चंदन (गुरु नानक) से मिलकर चंदन बन गया। ज्योति ज्योति में समा गई; गुरुमत का सुख प्राप्त हुआ और दुर्मति का दु:ख जलकर नष्ट हो गया। आश्चर्य को आश्चर्य मिला और आश्चर्यरूप होकर आश्चर्य (गुरु नानक) में लीन हो गया। अमृतपान कर रस का झरना झरता है और तब असह्य को सहन करने की शक्ति आती है। साधुसंगति के राजमार्ग पर चलकर सत्य सत्य में लीन हो गया। बाबा (नानक) के घर में ही लहणा (अंगद) का प्रकाश हुआ है ।। ६।।

पउड़ी ७

(सुपुत्र गुरु अंगद)

गुरुमुख (अंगद) ने शब्द से शब्द मिलाया है और बेडौल मन की गढ़न कर उसका गहना बनाया है। प्रेमभक्ति के भय से उसने अपने को अनुशासित कर चलाया है और अहम्भाव गँवाकर सब प्रकार के झंझटों से अपने आपको बचाया है।

दीन दुनी दी साहिबी गुरमुखि गोस नसीनी बहणा ।
कारण करण समरथ है होइ अछलु छल अंदरि छहणा ।
सतु संतोखु दइआ धरम अरथ वीचारि सहजि घरि घहणा ।
काम क्रोधु विरोधु छडि लोभ मोहु अहंकारहु तहणा ।
पुतु सपुतु बबाणे लहणा ।। ७ ।।

पउड़ी ८

(सुपुत्र गुर अंगद)

गुरु अंगदु गुरु अंगुते अंम्रित बिरखु अंम्रित फल फलिआ ।
जोती जोति जगाईअनु दीवे ते जिउ दीवा बलिआ ।
हीरै हीरा बेधिआ छलु करि अछुली अछलु छलिआ ।
कोइ बुझि न हंघई पाणी अंदरि पाणी रलिआ ।
सचा सचु सुहावड़ा सचु अंदरि सचु सचहु ढलिआ ।

दीन-दुनिया का स्वामित्व प्राप्त कर गुरुमुख (शिष्य) ने एकांत में वास किया है। सब कार्यों का कारण एवं सब प्रकार से समर्थ होने पर भी छले जानेवाले संसार में बना रहता है और सत्य, संतोष, दया, धर्म, अर्थ एवं चिन्तन को धारण कर शान्ति के घर में निवास बनाया है। उसने काम, क्रोध, विरोध छोड़कर लोभ-मोह-अहंकार को त्याग दिया है । बाबा (नानक) के घर ऐसा पुत्र (अंगद) हुआ है ।। ७।।

पउड़ी ८

(सुपुत्र गुरु अंगद)

गुरु (नानक) के अंग से गुरु अंगद नामक अमृतफल वाला वृक्ष फला-फूला है। जैसे दीपक से दीपक जल उठता है वैसे ही (गुरु नानक की) ज्योति से (गुरु अंगद की) ज्योति प्रज्वलित हो उठी है। (अपने शब्द रूपी) हीरे से (गुरु अंगद के मन रूपी) हीरे को बींध दिया है और मानों जादू करके अछल (बाबा नानक) ने निश्छल (गुरु अंगद) को वश में कर लिया है। अब उन्हें कोई नहीं पहचान सकता; मानों पानी में पानी आ मिला हो। सत्य सदैव शोभायमान लगता है और सत्य के साँचे में सत्य से ही निकलकर (गुरु अंदर) ढल गया ।

निहचलु सचा तखतु है अबिचल राज न हलै हलिआ ।
सच सबदु गुरि सउपिआ सच टकसालहु सिका चलिआ ।
सिध नाथ अवतार सभ हथ जोड़ि कै होए खलिआ ।
सचा हुकमु सु अटलु न टलिआ ॥ ८ ॥

पउड़ी ९

(गुरू अमरदास)

अछलु अछेदु अभेदु है भगतिवछल होइ अछल छलाइआ ।
महिमा मिति मिरजाद लंघि परमिति पारावारु न पाइआ ।
रहरासी रहरासि है पैरी पै जगु पैरी पाइआ ।
गुरमुखि सुखफलु अमरपदु अंम्रित ब्रिखि अंम्रित फल लाइआ ।
गुर चेला चेला गुरू पुरखहु पुरख उपाइ समाइआ ।

इनका सिंहासन और राज्य अचल है जो हिलाए से भी नहीं हिल सकता । सत्य शब्द गुरु ने (अंगद को) ऐसे सौंपा है मानो सत्य की टकसाल से (सत्य का) सिक्का जारी किया हो। अब सिद्ध, नाथ, अवतार आदि सब हाथ जोड़कर समक्ष खड़े हो गये हैं। उसकी आज्ञा भी सत्य एवं अटल है जिसे टाला नहीं जा सकता ।। ८ ।।

पउड़ी ९

(गुरु अमरदास)

भगवान अछल, अछेद एवं अभेद है पर भक्तवत्सल होकर वह (भक्तों द्वारा) छल लिया गया है अर्थात् गुरु अमरदास के रूप में प्रकट हुआ है । इनकी महिमा सभी हदों और मर्यादाओं को लाँघ गई है और अपरिमित होने से कोई उसका आर-पार नहीं जान सका है। सभी मर्यादाओं में से गुरु की मर्यादा सबसे उत्तम है; उसने (गुरु अंगद के) चरणों में गिरकर सारे संसार को (अपने) चरणों में डाल लिया है। गुरुमुखों को सुखफल अमर पद है और (गुरु अंगद रूपी) अमृत वृक्ष को गुरु अमरदास रूपी अमृत-फल लगा है । गुरु से चेला उत्पन्न हुआ और वही चेला गुरु हो गया । पुरुष (गुरु अंगद) गुरु अमरदास रूपी (परम) पुरुष को उत्पन्न कर स्वयं (परमज्योति में) समाहित हो गया।

वरतमान वीहि विसवे होइ इकीह सहजि घरि आइआ ।
सचा अमरु अमरि वरताइआ ।। ९ ।।

पउड़ी १०

(गुरू नानकदेव जी दा पोता स्री अमरदास)

सबदु सुरति परचाइ कै चेले ते गुरु गुरु ते चेला ।
वाणा ताणा आखीऐ सूतु इकु हुइ कपड़ु मेला ।
दुधहु दही वखाणीऐ दहीअहु मखणु काजु सुहेला ।
मिसरी खंडु वखाणीऐ जाणु कमादहु रेला पेला ।
खीरि खंडु घिउ मेलि करि अति विसमादु साद रस केला ।
पान सुपारी कथु मिलि चूने रंगु सुरंगु सुहेला ।
पोता परवाणीकु नवेला ।। १० ।।

पउड़ी ११

(गुरू अमरदास)

तिलि मिलि फुल अमुल जिउ गुरसिख संधि सुगंध फुलेला ।
खासा मलमलि सिरीसाफु साह कपाह चलत बहु खेला ।

प्रत्यक्ष जगत् से भी आगे निकलकर वह सहज अवस्था में विराजमान हो गया । इस प्रकार गुरु अमरदास ने सच्चा आदेश प्रसारित किया है ।। ९ ।।

पउड़ी १०

(गुरु नानक का पौत्र श्री अमरदास)

शब्द में सुरति को लीन कर चेला गुरु और गुरु चेला बन गया। ताना-बाना तो अलग-अलग नाम से जाना जाता है पर सूत-रूप में वे सब एक हैं और एक ही "कपड़ा" नाम से जाने जाते हैं। उसी दूध से दही, दही से मक्खन आदि बनकर सभी कामों में आता है । गन्ने के रस से ही मिसरी और शक्कर आदि के रूप में जाने जानेवाले पदार्थ बनते हैं। दूध, चीनी, घी आदि मिलकर अत्यन्त स्वादिष्ट व्यंजन बनते हैं। उसी तरह पान, सुपारी, कत्था, चूना, आदि मिलकर सुन्दर रंग का निर्माण करते हैं। उसी प्रकार (अनेक गुणों से संयुक्त) पौत्र-- गुरु अमरदास प्रामाणिक रूप से स्थित हुआ है ।। १० ।।

पउड़ी ११

(गुरु अमरदास)

जैसे तिल और फूल मिलकर सुगंधित फुलेल बन जाता है वैसे ही गुरु और शिष्य मिलकर एक नया ही व्यक्तित्व बन जाता है।

गुरमूरति गुर सबदु है साधसंगति मिलि अंम्रित वेला ।
दुनीआ कूड़ी साहिबी सच मणी सच गरबि गहेला ।
देवी देव दुड़ाइअनु जिउ मिरगावलि देखि बघेला ।
हुकमि रजाई चलणा पिछे लगे नकि नकेला ।
गुरमुखि सचा अमरि सुहेला ॥ ११ ॥

पउड़ी १२

(गुरू अमरदास)

सतिगुर होआ सतिगुरहु अचरजु अमर अमरि वरताइआ ।
सो टिका सो बैहणा सोई सचा हुकमु चलाइआ ।
खोलि खजाना सबदु दा साधसंगति सचु मेलि मिलाइआ ।
गुर चेला परवाणु करि चारि वरन लै पैरी पाइआ ।

कपास भी अनेक प्रक्रियाओं के बाद लट्‌ठा (कपड़ा), मलमल आदि नामों से सुशोभित होती है (वैसे ही शिष्य गुरु से मिलने पर उच्च स्थान प्राप्त करता है)। गुरु का शब्द ही गुरु की मूर्ति है। यह शब्द प्रात:काल में साधुसंगति में प्राप्त होता है। दुनिया की साहिबी झूठी है और सत्य को गर्वपूर्वक पकड़ लेना चाहिए । (सत्यनिष्ठ के सामने से) देवी-देवता उसी तरह भाग खड़े होते हैं जैसे चीते को देखकर मृगों की कतारें दौड़ पड़ती हैं। प्रभु की इच्छा में रहते हुए लोग (गुरु अमरदास जैसे व्यक्तित्व के पीछे) प्रेम की नकेल नाक में डाले घूमते हैं । (गुरु) अमरदास सत्यस्वरूप है, सफल है और गुरुमुख है।। ११ ।।

पउड़ी १२

(गुरु अमरदास)

सद्‌गुरु (अंगददेव) से सद्‌गुरु अमरदास बनकर गुरु अमरदास ने अद्‌भुत लीला की है। वही ज्योति, वही आसन और वह उसी प्रभु-इच्छा का प्रसार कर रहा है। उसने शब्द का भंडार खोल दिया है और साधुसंगति के माध्यम से सत्य से साक्षात्कार करा दिया है । गुरु ने शिष्य को प्रामाणिक बनाकर चारों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र) को चरणों में डाल लिया है।

गुरमुखि इकु धिआईऐ दुरमति दूजा भाउ मिटाइआ ।
कुला धरम गुरसिख सभ माइआ विचि उदासु रहाइआ ।
पूरे पूरा थाटु बणाइआ ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(गुरू अमरदास)

आदि पुरखु आदेसु करि आदि जुगादि सबद वरताइआ ।
नामु दानु इसनानु दिड़ु गुरुसिख दे सैंसारु तराइआ ।
कलीकाल इक पैर हुइ चार चरन करि धरमु धराइआ ।
भला भला भलिआईअहु पिउ दादे दा राहु चलाइआ ।
अगम अगोचर गहणगति सबद सुरति लिव अलखु लखाइआ ।
अपरंपर आगाधि बोधि परमिति पारावार न पाइआ ।
आपे आपि न आपु जणाइआ ।। १३ ।।

अब सभी गुरुमुख बनकर एक प्रभु की आराधना करते हैं और उनमें से दुर्मति एवं द्वैतभावना मिट गई है। गुरु की शिक्षा और कुलधर्म अब यही है कि माया में रहते हुए भी उससे तटस्थ बने रहना है । पूर्णगुरु ने पूर्ण वैभव बना दिया है।। १२ ।।

पउड़ी १३ ·

(गुरु अमरदास)

आदिपुरुष (परमात्मा) की आराधना कर उसने युगों-युगान्तरों के लिए शब्द को व्यापक बना दिया । गुरु ने शिक्षा देकर लोगों को नाम-स्मरण-दान और स्नान का उपदेश देकर संसार से पार कर दिया है । कलियुग में जो धर्म का एक ही पाँव रह गया था उसे गुरु ने चारों चरण प्रदान किये और दृढ़ बनाया । लोक-भलाई के दृष्टिकोण से वह बहुत ही भला है और पिता और दादा का बताया मार्ग आगे और प्रशस्त किया है । उस प्रभु की गति अगम्य, अगोचर एवं गहन् है; इसने शब्द में सुरति लीन करने की कला सिखाकर उस अलक्ष्य प्रभु का साक्षात्कार करा दिया है। उसकी महिमा अपरंपार, अगाध है और उसकी सीमा का अन्त नहीं जाना जा सकता। उसने अपने स्वरूप को जान लिया है पर फिर भी कभी अपने-आपको महत्व प्रदान नहीं किया ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(गुरू रामदास)

राग दोख निरदोखु है राजु जोग वरतै वरतारा ।
मनसा वाचा करमणा मरमु न जापै अपर अपारा ।
दाता भुगता दैआ दानि देवसथलु सतिसंगु उधारा ।
सहज समाधि अगाधि बोधि सतिगुरु सचा सवारणहारा ।
गुरु अमरहु गुरु रामदासु जोती जोति जगाइ जुहारा ।
सबद सुरति गुरसिखु होइ अनहद बाणी निझरधारा ।
तखतु बखतु परगटु पाहारा ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(गुरू रामदास)

पीऊ दादे जेवेहा पड़दादे परवाणु पड़ोता ।
गुरमति जागि जगाइदा कलिजुग अंदरि कौड़ा सोता ।

पउड़ी १४

(गुरु रामदास)

राग-द्वेष से निर्लिप्त यह राजयोग में विचरण करनेवाला है। मन-वचन और कर्म से उसके रहस्य को कोई नहीं जान सकता। वह अपरंपार है। वह दाता है, (तटस्थ रूप से) भोक्ता है, दानी है और लोगों का उद्धार करने के लिए उसने देवस्थल-तुल्य सत्संगति का निर्माण किया । वह सहज समाधि में लीन रहनेवाला अगाध बौद्धिकता का स्वामी, सबकी बिगड़ी सँवारनेवाला, सच्चा सद्गुरु है। गुरु अमरदास की ज्योति से गुरु रामदास की ज्योति जली है। मेरा उसे प्रणाम है। गुरु का शिष्य बनकर उसने शब्द में सुरति को लगाकर अनहद वाणी की निरन्तर बहनेवाली धारा का आस्वादन किया है। वही गुरु के तख्त पर बैठकर अब संसार में प्रकट हुआ है ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(गुरु रामदास)

(आध्यात्मिक) पिता गुरु अमरदास दादा गुरु अंगद और परदादा गुरु नानक के समान ही प्रपौत्र (गुरु रामदास) स्वीकृत हुआ है।

दीन दुनी दा थंमु हुइ भारु अथरबण थंम्हि खलोता ।
भउजलु भउ न विआपई गुर बोहिथ चड़ि खाइ न गोता ।
अवगुण लै गुण विकणै गुर हट नालै वणज सओता ।
मिलिआ मूलि न विछुड़ै रतन पदारथ हारु परोता ।
मैला कदे न होवई गुर सरवरि निरमल जल धोता ।
बाबाणै कुलि कवलु अछोता ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(गुरू रामदास)

गुरमुखि मेला सच दा सचि मिलै सचिआर संजोगी ।
घरबारी परवार विचि भोग भुगति राजे रसु भोगी ।
आसा विचि निरास हुइ जोग जुगति जोगीसरु जोगी ।
देदा रहै न मंगीऐ मरै न होइ विजोग विजोगी ।

कलियुग में अविद्या की गहरी नींद में सोये लोगों को वह गुरुमत का मार्ग दिखाकर जगा रहा है । वह धर्म के लिए स्तम्भ बनकर उसे थामकर खड़ा हो गया है। जो (इस) गुरु के जहाज पर चढ़ गया वह भवसागर के भय को नहीं मानता और उसे इसमें डूबना भी नहीं पड़ता। यह अवगुणों को ले-लेकर गुण लोगों को देता (बेचता) है; देखो गुरु की दुकान का सौदा कितना सस्ता है । जिसने शुभ गुणों के रत्नों का हार पिरोकर पहन रखा है उसे मिलकर फिर कोई भी उससे बिछुड़ता नहीं। गुरु के (प्रेम रूपी) सरोवर के निर्मल जल से जिसने अपने आपको धो लिया है वह फिर कभी मैला नहीं होता । बाबा (गुरु नानक) के कुल में यह (गुरु रामदास) कमल की तरह निर्लिप्त भाव से स्थिर है ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(गुरु रामदास)

गुरुमुख सत्य का साक्षात्कार करना चाहता है और सत्य की प्राप्ति सत्याचारी के मिलाप से ही होती है। गुरुमुख परिवार में एक (सद्) गृहस्थ की तरह रहते हुए सभी भोगों को भोगता है और राजाओं के समान रसों का आस्वादन करता है। (अन्तर्मन में) वह आशाओं के मध्य भी उदासीन बना रहता है और योग की युक्ति जानने के फलस्वरूप योगेश्वर के रूप में जाना जाता है। वह सदैव देता रहता है और माँगता नहीं । वह न तो मरता है और न ही उसे प्रभु-वियोग में रहना पड़ता है।

आधि बिआधि उपाधि है वाइ पित कफु रोग अरोगी ।
दुखु सुखु समसरि गुरमती संपै हरख न अपदा सोगी ।
देह बिदेही लोग अलोगी ॥ १६ ॥

पउड़ी १७

(गुरू रामदास)

सभना साहिबु इकु है दूजी जाइ न होइ न होगी ।
सहज सरोवरि परमहंसु गुरमति मोती माणक चोगी ।
खीर नीर जिउ कूड़ु सचु तजणु भजणु गुर गिआन अजोगी ।
इक मनि इकु अराधना परिहरि दूजा भाउ दरोगी ।
सबद सुरति लिव साधसंगि सहजि समाधि अगाधि घरोगी ।
जंमणु मरणहु बाहरे परउपकार परमपर जोगी ।
रामदास गुर अमर समोगी ॥ १७ ॥

उसे आधि-व्याधि और उपाधि कष्ट नहीं देती हैं और वायु, पित्त, कफ के रोगों से भी वह निरोग बना रहता है। दुख और सुख उसे समान प्रतीत होते हैं ; गुरुमत ही उसकी सम्पदा होती है और हर्ष-शोक से वह अप्रभावित रहता है। देह में रहते भी वह विदेह है और लोक में रहते भी वह लोकातीत है ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(गुरु रामदास)

सबका स्वामी एक है; दूसरा न कोई हुआ है और न कोई होगा । सहज के सरोवर में गुरुमत में लीन रहनेवाले जीव परमहंस हैं जो माणिक और मोती ही चुगनेवाले हैं अर्थात् सदैव अच्छाई ही ग्रहण करने वाले हैं । ये गुरु के ज्ञान के अधिकारी बनकर झूठ और सच को पानी और दूध की तरह अलग-अलग कर देते हैं। ये एक मन से एक प्रभु की आराधना द्वैतभाव को त्याग कर करते हैं। घरेलू व्यक्ति होते हुए भी ये शब्द में सुरति को लीन रखकर साधुसंगति में सहज समाधि में स्थित रहते हैं । ये जन्म-मरण से परे हैं, परोपकारी हैं और अपरंपर योगी हैं। ऐसे ही व्यक्तियों में से गुरु रामदास हैं, जो गुरु अमरदास में पूर्ण रूप से समाए हुए हैं अर्थात् उन्हीं का अंश है ।। १७ ।।

पउड़ी १८

(गुरू अरजनदेव)

अलख निरंजनु आखीऐ अकल अजोनि अकाल अपारा ।
रवि ससि जोति उदोत लंघि परम जोति परमेसरु पिआरा ।
जग मग जोति निरंतरी जग जीवन जग जै जै कारा ।
नमसकार संसार विचि आदि पुरख आदेसु उधारा ।
चारि वरन छिअ दरसनाँ गुरमुखि मारगि सचु अचारा ।
नामु दानु इसनानु दिड़ि गुरमुखि भाइ भगति निसतारा ।
गुरू अरजनु सचु सिरजणहारा ॥ १८ ॥

पउड़ी १९

(गुरू अरजनदेव)

पिउ दादा पड़दादिअहु कुल दीपकु अजरावर नता ।
तखतु बखतु लै मलिआ सबद सुरति वापारि सपता ।

पउड़ी १८

(गुरु अरजनदेव)

वह प्रभु निरंजन, अयोनि, कालातीत एवं अपार है। सूर्य-चन्द्र की ज्योति को लाँघकर (गुरु अरजनदेव) परमज्योति परमेश्वर को प्यार करते हैं । उनकी ज्याति निरंतर देदीप्यमान रहती है। वे जगत के जीवन हैं और संसार में उनका जय-जयकार होता है। संसार में सभी उन्हें प्रणाम करते हैं और वे आदिपुरुष (प्रभु) के आदेशानुसार सबका उद्धार करते हैं । चारों वर्णों और छः दर्शनों में से गुरुमुख का मार्ग सत्याचरण का मार्ग है । गुरुमुख (गुरु अरजन) नाम-स्मरण, दान, स्नान को दृढ़तापूर्वक अपनाकर प्रेमाभक्ति के माध्यम से सबको पार करते हैं। गुरु अरजनदेव वास्तविक रूप में सृजनकर्त्ता हैं ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(गुरु अरजनदेव)

पिता, दादा, परदादा का कुलदीपक और नाती (गुरु अरजनदेव) है। शब्द को सुरति में लीन कर उसने सम्मानपूर्वक कार्य-व्यापार किया है

गुरबाणी भंडारु भरि कीरतनु कथा रहै रंग रता ।
धुनि अनहदि निझरु झरै पूरन प्रेमि अमिओ रस मता ।
साधसंगति है गुरु सभा रतन पदारथ वणज सहता ।
सचु नीसाणु दीबाणु सचु सचु ताणु सचु माणु महता ।
अबचलु राजु होआ सणखता ।। १९ ।।

पउड़ी २०

(गुरू अरजनदेव)

चारे चक निवाइओनु सिख संगति आवै अगणता ।
लंगरु चलै गुर सबदि पूरे पूरी बणी बणता ।
गुरमुखि छत्रु निरंजनी पूरन ब्रहम परमपद पता ।
वेद कतेब अगोचरा गुरमुखि सबदु साधसंगु सता ।
माइआ विचि उदासु करि गुरु सिख जनक असंख भगता ।

और सिंहासन एवं सौभाग्य का अधिकारी बना । वह गुरुवाणी का भरा हुआ भंडार है और कथा-कीर्तन में लीन रहता है। वह अनहद ध्वनि के झरने को बहने देनेवाला और पूर्णप्रेम के अमृतरस में मग्न रहनेवाला है । गुरु की सभा जब साधुसंगति के रूप में लगती है तो वह रत्न-पदार्थों का आदान-प्रदान होता है। गुरु अरजनदेव का सच्चा दरबार, सच्चा निशान है और उन्हें सच्चा सम्मान और बड़प्पन प्राप्त हुआ है। ज्ञानवान (गुरु अरजनदेव) का राज तो अविचल एवं अटल है।। १९।।

पउड़ी २०

(गुरु अरजनदेव)

चारों दिशाओं को झुका लिया है और अगणित संख्या में सिक्ख-संगत् आती है। गुरु के शब्द का लंगर (प्रवाह) वहाँ चलता है और पूर्णगुरु का पूर्ण सृष्टि है । गुरुमुख व्यक्ति वहाँ ईश्वरीय छत्र के नीचे पूर्णब्रह्म द्वारा प्रदत्त परमपद को प्राप्त करते हैं। गुरुमुख को वेदों-कतेबों से भी अगोचर शब्द-ब्रह्म साधुसंगति में प्राप्त होता है। माया में उदास बने रहनेवाले अनेकों जनक जैसे भक्त गुरु ने शिष्य-रूप में पैदा कर दिये हैं।

कुदरति कीम न जाणीऐ अकथ कथा अबिगत अबिगता ।
गुरमुखि सुख फलु सहज जुगता ॥ २० ॥

पउड़ी २१

(गुरू अरजन जी तों गुरू हरिगोबिंद)

हरखहु सोगहु बाहरा हरण भरण समरथु सरंदा ।
रस कस रूप न रेखि विचि राग रंग निरलेपु रहंदा ।
गोसटि गिआन अगोचरा बुधि बल बचन बिबेक न छंदा ।
गुर गोविंदु गोविंदु गुरु हरिगोविंदु सदा विगसंदा ।
अचरज नो अचरज मिलै विसमादै विसमाद मिलंदा ।
गुरमुखि मारगि चलणा खंडे धार कार निबहंदा ।
गुर सिख लै गुर सिखु चलंदा ॥ २१ ॥

पउड़ी २२

(गुरू दी महिमा, सिक्ख नूँ उपदेश)

हंसहु हंस गिआनु करि दुधै विचहु कढै पाणी ।
कछहु कछु धिआनि धरि लहरि न विआपै घुंमणवाणी ।

गुरु की सृष्टि और उसका रहस्य नहीं जाना जा सकता और उस अव्यक्त की कथा भी अवर्णनीय है। गुरुमुखों को सुखफल की प्राप्ति सहजभाव में ही हो जाती है।। २० ।।

पउड़ी २१

(गुरु अरजन जी से गुरु हरिगोबिंद)

हर्ष-शोक से परे वह पोषक, संहारक और सर्जक है । वह रसों, कषायों, रूप, रेखा आदि से बाहर और राग-रंग में भी निर्लिप्त भाव से स्थिर रहनेवाला है। वह ज्ञान-गोष्ठियों से अगोचर और बल, बुद्धि, वचन, विवेक एवं सब स्तुतियों से परे है। गुरु (अरजनदेव) को गोविंद और गोविंद (परमात्मा) को गुरु माननेवाला हरिगोबिंद सदैव प्रफुल्लित बना रहता है । आश्चर्यपूर्ण हो वह उस (परम) आश्चर्य में और विस्मयादित हो उस परम विस्मयादकारी परमतत्व में लीन रहता है । गुरुमुख मार्ग पर चलना खड़ग-धारा पर चलने का कार्य निभाने के तुल्य है। गुरु का सिक्ख गुरु की शिक्षा लेकर उस पर (सफलतापूर्वक) चलता है ।। २१ ।।

पउड़ी २२

(गुरु की महिमा, सिक्ख को उपदेश)

गुरुमुख रूपी हंसों में से गुरु के वे हंस हैं जो अपने ज्ञान के आधार पर दूध (सत्य) में से पानी (झूठ) अलग निकाल देते हैं। कछुओं में वे ऐसे कछुए हैं

कूँजहु कूँजु वखाणीऐ सिमरणु करि उडै असमाणी ।
गुर परचै गुर जाणीऐ गिआनि धिआनि सिमरणि गुरबाणी ।
गुर सिख लै गुरसिख होणि साधसंगति जग अंदरि जाणी ।
पैरी पै पाखाक होइ गरबु निवारि गरीबी आणी ।
पी चरणोदकु अंम्रित वाणी ॥ २२ ॥

पउड़ी २३

(गुरू अरजनदेव जी दा जोती जोति)

रहिदे गुरु दरीआउ विचि मीन कुलीन हेतु निरबाणी ।
दरसनु देखि पतंग जिउ जोती अंदरि जोति समाणी ।
सबदु सुरति लिव मिरग जिव भीड़ पई चिति अवरु न आणी ।
चरण कवल मिलि भवर जिउ सुख संपट विचि रैणि विहाणी ।

जिन पर लहरों और पानी के भँवरों का कोई प्रभाव नहीं होता । वे कूँजों में वह कूँज हैं जो आसमान में उड़ती हैं और उस (प्रभु) का स्मरण करती रहती हैं । गुरु से प्रेम करके ही गुरु को जाना बूझा-जाता है एवं ज्ञान, ध्यान, स्मरण तथा गुरुवाणी की समझ आती है। सिक्ख भी गुरु की शिक्षा लेकर गुरु के सिक्ख बने और जगत् में जहाँ सत्संग देखें वहाँ जाएँ। चरणों में गिरकर, चरण-धूलि बनकर ही और गर्व को त्यागकर ही विनम्रता लाई जाती है। ऐसे व्यक्ति ही गुरु का चरणोदक अमृत के समान ग्रहण करते हैं ।। २२ ।।

पउड़ी २३

(गुरु अरजनदेव जी की ज्योति, ज्योति में लीन)

निर्वाण-प्राप्ति (देह-त्याग) के लिए गुरु (अरजनदेव) दरिया के पानी में ऐसे ही स्थिर हो गये जैसे मछली पानी में सुखपूर्वक रहती है । (गुरु अरजनदेव को तत्कालीन शासकों द्वारा लाहौर में गर्म तवे पर बैठाने के बाद उनके झुलसे शरीर को और अधिक कष्ट देने के लिए उन्हें रावी नदी के ठंडे जल में धकेला गया था जहाँ उनकी ज्योति परम ज्योति में लीन हो गई। भाई गुरदास यहाँ उसी घटना की ओर संकेत कर रहे हैं)। जैसे पतंगा शमा को देखकर उसमें लीन हो जाता है वैसे ही उनकी ज्योति परमात्मा में विलीन हो गई। जैसे मृग जान की परवाह न कर नाद में सुरति लीन किये रहता है, वैसे ही गुरु जी पर भी घोर कष्ट पड़ा पर उनकी सुरति में भी परमात्मा के सिवा अन्य कोई नहीं आया ।

गुरु उपदेसु न विसरै बाबीहे जिउ आख वखाणी ।
गुरमुखि सुख फलु पिरमरसु सहज समाधि साध संगि जाणी ।
गुर अरजन विटहु कुरबाणी ॥ २३ ॥

पउड़ी २४

(गुरू हरिगोविंद)

पारब्रहमु पूरन ब्रहमि सतिगुर आपे आपु उपाइआ ।
गुरु गोबिंदु गोविंदु गुरु जोति इक दुइ नाव धराइआ ।
पुतु पिअहु पिउ पुत ते विसमादहु विसमादु सुणाइआ ।
बिरखहु फलु फल ते बिरखु आचरजहु आचरजु सुहाइआ ।
नदी किनारे आखीअनि पुछे पारवारु न पाइआ ।

भँवरे के समान सुख के कोष में लीन रहकर गुरु जी ने (बलिदान होने से पहले वाली घोर कष्टदायक) रात भी प्रभु-चरणों में लीन रहकर सहज अवस्था में ही गुजारी । पपीहा जैसे बोलता रहता है वैसे ही गुरु जी भी सहज भाव में मधुर उपदेश देते रहे। गुरुमुख (गुरु अरजनदेव जी)का सुखफल तो प्रेमरस है और उन्होंने साधुसंगति को ही सहज समाधि की अवस्था माना है । मैं गुरु अरजन पर कुर्बान जाता हूँ ।। २३ ।।

पउड़ी २४

(गुरु हरिगोबिंद)

परबह्म ने स्वयं अपने पूर्णबह्म के रूप में सद्गुरु को अपने आप ही पैदा किया है । गुरु और गोविंद (परमात्मा) गोविंद और गुरु (हरिगोबिंद) एक ही ज्योति है जिसके दो नाम रख दिये गये हैं। पुत्र ने पिता को और पिता ने पुत्र को अर्थात् आश्चर्य ने आश्चर्य को आश्चर्य (शब्द) ही सुनाया है। वृक्ष से फल और फल से फिर वृक्ष रूप में बनकर आश्चर्य शोभा बन गई है। नदी के दो किनारों की तरह इनके भी सही स्वरूप को समझा नहीं जा सकता, क्योंकि एक किनारे पर खड़े व्यक्ति के लिए दूसरा किनारा पार है, पर दूसरे किनारे पर खड़े व्यक्ति के लिए पहला किनारा पार है अर्थात् दोनों किनारे जैसे अलग-अलग अस्तित्व वाले होकर भी वास्तव में एक ही हैं वैसे ही गुरु हरगोबिंद और परमात्मा एक ही हैं ।

होरनि अलखु न लखीऐ गुरु चेले मिलि अलखु लखाइआ ।
हरि गोविंदु गुरू गुरु भाइआ ॥ २४ ॥

पउड़ी २५

(छेवें गुरु जी दा वरणन)

निरंकारु नानक देउ निरंकारि आकार बणाइआ ।
गुरु अंगदु गुरु अंग ते गंगहु जाणु तरंग उठाइआ ।
अमरदासु गुरु अंगदहु जोति सरूप चलतु वरताइआ ।
गुरु अमरहु गुरु रामदासु अनहद नादहु सबदु सुणाइआ ।
रामदासहु अरजनु गुरू दरसनु दरपनि विचि दिखाइआ ।
हरिगोबिंद गुर अरजनहु गुरु गोबिंद नाउ सदवाइआ ।
गुरमूरति गुर सबदु है साधसंगति विचि परगटी आइआ ।
पैरी पाइ सभ जगतु तराइआ ॥ २५ ॥ २४ ॥ चउवीह ॥

अन्य कोई उस अलक्ष्य परमात्मा को नहीं देख पाता पर शिष्य (हरगोबिंद) ने गुरु (अरजनदेव) से मिलकर उस अलक्ष्य का भी साक्षात्कार कर लिया है। गुरुजनों के गुरु (परमात्मा) को हरगोबिंद पूर्णरूपेण भा गया है।। २४।।

पउड़ी २५

(छठे गुरुजी का वर्णन)

निराकार आकार बना है और वह निराकार नानकदेव है। उसने गुरु अंगद को अपने अंग से ऐसे उत्पन्न किया जैसे गंगा लहरों को उत्पन्न करती है । गुरु अंगद से गुरु अमरदास हुए और ज्योति के स्थानान्तरण की यह लीला दिखाई दी। गुरु अमरदास से गुरु रामदास ऐसे पैदा हुए मानों अनहद नाद से शब्द प्रकट हुआ हो। रामदास से अरजन गुरु ऐसे उत्पन्न हुए लगते हैं मानों वे गुरु रामदास की ही दर्पण में प्रतिकृति दिखाई दे रहे हों । गुरु अरजन से हरिगोबिंद ने पैदा हो गुरु और गोविंद (परमात्मा) स्वरूप में अपना नाम प्रसिद्ध किया । वास्तव में गुरु की मूर्ति या शारीरिक रूप से गुरु केवल गुरु का शब्द है (शरीर नहीं) और यह शब्द प्रकट रूप से साधुसंगति में परिलक्षित होता है। इस प्रकार सद्गुरु ने अत्यन्त विनम्र हो चरण-वंदना कर सारे जगत का उद्धार कर दिया है ।। २५ ।। २४।।

* * *

वार २५

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।।

पउड़ी १

(छेवें सतिगुरू दा मंगलाचरण)

आदि पुरखु आदेसु करि आदि पुरख आदेसु कराइआ ।
एकंकार अकारु करि गुरु गोविंदु नाउ सदवाइआ ।
पारब्रहमु पूरन ब्रहमु निरगुण सरगुण अलखु लखाइआ ।
साधसंगति आराधिआ भगतिवछलु होइ अछलु छलाइआ ।
ओअंकार अकार करि इकु कवाउ पसाउ पसाइआ ।
रोम रोम विचि रखिओनु करि ब्रहमंडु करोड़ि समाइआ ।
साध जना गुर चरन धिआइआ ॥ १ ॥

पउड़ी २

(गुरमुख दा मारग)

गुरमुखि मारगि पैरु धरि दहिदिसि बारहवाट न धाइआ ।
गुरमूरति गुर धिआनु धरि घटि घटि पूरन ब्रहमु दिखाइआ ।

पउड़ी १

(छठेवें गुरु का मंगलाचरण)

गुरु ने परमात्मा को प्रणाम किया और परमात्मा (आदि-पुरुष) ने सारे जगत से गुरु को प्रणाम करवाया । निराकार बह्म ने आकार धारण कर गुरु (हरि) गोबिंद अपना नाम कहलाया है । परब्रह्म पूर्णबह्म ने निर्गुण-सगुण रूप धारण कर अपने अलक्ष्य रूप को प्रकट दिखा दिया है। "साधसंगत्" ने उसकी आराधना की और भक्तवत्सल के रूप में वह अछल प्रभु छला गया अर्थात् गुरु-रूप में प्रकट हो गया । ॐकार ने आकार धारण कर एक ही स्फुरण में जगत्-प्रसार को रच दिया । उसने अपने रोम-रोम में करोड़ों बह्मांडों को समाहित कर लिया। साधुजन परमात्मा के रूप गुरु के चरणों की आराधना करते हैं।। १।।

पउड़ी २

(गुरुमुख का मार्ग)

जिस व्यक्ति ने गुरु की ओर उन्मुख होनेवाले मार्ग पर पाँव रख लिया, वह फिर योगियों के बारह सम्प्रदायों के रास्तों पर नहीं भटकता ।

सबद सुरति उपदेसु लिव पारब्रहम गुरगिआनु जणाइआ ।
सिला अलूणी चटणी चरण कवल चरणोदकु पिआइआ ।
गुरमति निहचलु चितु करि सुखसंपट विचि निज घरु छाइआ ।
पर तन पर धन पर हरे पारसि परसि अपरसु रहाइआ ।
साध असाधि साध संगि आइआ ॥ २ ॥

पउड़ी ३

(गुरमुखाँ दी उन्नती)

जिउ वड़ बीउ सजीउ होइ करि विसथारु बिरखु उपजाइआ ।
बिरखहु होइ सहंस फल फल फल विचि बहु बीअ समाइआ ।
दुतीआ चंदु अगास जिउ आदि पुरख आदेसु कराइआ ।
तारे मंडलु संत जन धरमसाल सच खंड वसाइआ ।
पैरी पै पाखाक होइ आपु गवाइ न आपु जणाइआ ।

वह गुरु की मूर्ति (गुरु-शब्द) पर ध्यान लगाकर (और उसे जीवन में ढालकर) घट-घट में पूर्णब्रह्म के दर्शन करता है। गुरु के शब्द में सुरति की लीनता और गुरु-प्रदत्त ज्ञान से परब्रह्म की सूझ प्राप्त हो जाती है । ऐसा व्यक्ति ही गुरु के चरणामृत को पान करता है और यह कार्य लवणविहीन शिला को चाटने के समान कठिन है। वह गुरुमत में चित्त को स्थिर करता है और निजस्वरूप के अपने सुखपूर्ण कक्ष में विहार करता है । पारस गुरु को स्पर्श करने के फलस्वरूप अब वह पर-धन, पर-तन आदि को त्यागकर उनसे अस्पर्श्य बना रहता है । वह असाध्य (विषय-विकारों) को साधने के लिए सत्संग में आ जाता है ।। २।।

पउड़ी ३

(गुरुमुखों की उन्नति)

जैसे बड़ के पेड़ का बीज हरा होकर विस्तृत पेड़ के रूप में पैदा होता है और फिर उसी वृक्ष में हजारों फल लगते हैं तथा उनमें अनेकों बीज पैदा होते हैं (उसी तरह गुरुमुख व्यक्ति अनेकों को अपने जैसा बना लेता है)। आकाश में दूज के चाँद की तरह वह आदिपुरुष परमात्मा सबसे अपनी पूजा करवाता है । सन्त तारामण्डल हैं जो उसके सत्य देश रूपी धर्मशाला में निवास करते हैं ।

**गुरमुखि सुख फलु ध्रू जिवै निहचल वासु अगासु चढ़ाइआ ।
सभ तारे चउफेरि फिराइआ ॥ ३॥**

पउड़ी ४

(भगत नामदेव)

**नामा छींबा आखीऐ गुरमुखि भाइ भगति लिव लाई ।
खत्री ब्राहमण देहुरै उतम जाति करनि वडिआई ।
नामा पकड़ि उठालिआ बहि पछवाड़ै हरि गुण गाई ।
भगत वछलु आखाइदा फेरि देहुरा पैजि रखाई ।
दरगह माणु निमाणिआ साधसंगति सतिगुर सरणाई ।
उतमु पदवी नीच जाति चारे वरण पए पगि आई ।
जिउ नीवानि नीरु चलि जाई ॥ ४ ॥**

ये लोग चरण-वन्दना करके, चरण-धूलि बनकर अपने अहम्-भाव को गँवा देते है, पर कभी भी अपना प्रचार नहीं करते हैं। सुख-फल को प्राप्त करनेवाले गुरुमुख आकाश में ध्रुव के समान अटल रूप से निवास करते हैं । सभी तारागण उनके चारों ओर घूमते हैं ।। ३।।

पउड़ी ४

(भक्त नामदेव)

भक्त नामदेव, जिस छीपी जाति का कहा जाता है, उसने गुरुमुख बनकर प्रेम-भक्ति में अपनी लौ लगाई। उत्तम जाति के ब्राह्मण, क्षत्रिय मन्दिर में जाकर प्रभु का गुणानुवाद करने लगे । उन्होंने नामदेव को पकड़कर उठा दिया और वह मन्दिर के पिछवाड़े में बैठकर प्रभु के गुण गाने लगा। प्रभु जिसे भक्तवत्सल कहा जाता है उसने मन्दिर का मुँह घुमा दिया और अपने बिरद की लाज रखी । साधुसंगति सद्गुरु की शरण में एवम् प्रभु-दरबार में गौरवहीन व्यक्तियों की भी सम्मान मिलता है। ऊँचे पद वाले अर्थात् क्षत्रिय और ब्राह्मण तथा नीच जाति वाले अर्थात् चारों वर्णों के लोग नामदेव के चरणों में ऐसे आ पड़े जैसे पानी नीचे की ओर तेजी से चला आता है ।। ४।।

पउड़ी ५

(भगताँ दी जाति नहीं)

असुर भभीखणु भगतु है बिदरु सु विखली पत सरणाई ।
धंना जटु वखाणीऐ सधना जाति अजाति कसाई ।
भगतु कबीरु जुलाहड़ा नामा छींबा हरि गुण गाई ।
कुलि रविदासु चमारु है सैणु सनाती अंदरि नाई ।
कोइल पालै कावणी अंति मिलै अपणे कुल जाई ।
किसनु जसोधा पालिआ वासदेव कुल कवल सदाई ।
घिअ भाँडा न विचारीऐ भगता जाति सनाति न काई ।
चरण कवल सतिगुर सरणाई ॥ ५ ॥

पउड़ी ६

(नीच थावाँ उत्तम वसताँ दे द्रिशटांत)

डेमूँ खबरि मिसरी मखी मेलु मखीरु उपाइआ ।
पाट पटंबर कीड़िअहु कुटि कटि सणु किरतासु बणाइआ ।

पउड़ी ५

(भक्तों की जाति नहीं)

भक्त विभीषण राक्षस था और विदुर एक दासी का पुत्र था जो प्रभु की शरण में आया था । धन्ना भक्त जाट कहा जाता है और सधना नीच जाति का क़साई था। भक्त कबीर जुलाहा और नामदेव एक छीपी था जिसने हरि के गुणों का गायन किया था। रविदास चमार जाति का है और भक्त सैण नीच नाई जाति में से था । मादा कौआ कोयल के बच्चों को पालती है परन्तु वे सब अन्त में फिर अपने ही कुल में जा मिलते हैं। बेशक यशोदा ने कृष्ण को पाला, परन्तु फिर भी वह वासुदेव के कुल का कमल ही कहलाया। जैसे घी वाले बर्तन को चाहे वह जैसा भी हो बुरा नहीं कहा जाता, इसी प्रकार भक्त की भी कोई ऊँची-नीची जाति नहीं होती क्योंकि वे सब सद्गुरु के चरण-कमलों की शरण में आ चुके होते हैं ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(नीच स्थानों एवम् उत्तम वस्तुओं के उदाहरण)

दो मुख वाले (डेमू) कीड़ों के झुण्ड से मिश्री बनती है एवम् मधुमक्खियों के छत्ते से शहद पैदा होता है। कीड़ों से रेशम पैदा होता है और सनई को कूट कूटकर उससे कागज बनाया जाता है ।

मलमल होइ वड़ेविअहु चिकड़ि कवलु भवरु लोभाइआ ।
जिउ मणि काले सप सिरि पथरु हीरे माणक छाइआ ।
जाणु कथूरी मिरग तनि नाउ भगउती लोहु घड़ाइआ ।
मुसकु बिलीअहु मेदु करि मजलस अंदरि मह महकाइआ ।
नीच जोनि उतमु फलु पाइआ ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(राजा बलि दा प्रसंग)

बलि पोता प्रहिलाद दा इंदर पुरी दी इछ इछंदा ।
करि संपूरणु जगु सउ इक इकोतरु जगु करंदा ।
बावन रूपी आइकै गरबु निवारि भगत उधरंदा ।
इंद्रासण नो परहरै जाइ पतालि सु हुकमी बंदा ।
बलि छलि आपु छलाइओनु दरवाजे दरवान होवंदा ।

बिनौले से मलमल बनती है और कीचड़ में कमल पैदा होता है जिस पर भँवरा मोहित रहता है। काले सर्प के सिर में मणि होती है और पत्थरों में हीरे और माणिक पाये जाते हैं । कस्तूरी मृग की नाभि में पैदा होती है और मामूली लोहे से शक्तिशाली तलवार बनायी जाती है । बिल्ली की मेदा से मुश्क-बिलाई नामक सुगन्धित पदार्थ बनता है जो महफिलों को महकाता है। इस प्रकार नीच योनि वाले जीव और पदार्थ उत्तम फल देते हैं और प्राप्त करते हैं ।। ६।।

पउड़ी ७

(राजा बलि का प्रसंग)

विरोचन का पुत्र और प्रह्लाद का पौत्र राजा बलि इन्द्रपुरी पर राज करने का इच्छुक था। वह एक सौ यज्ञ पूरे कर चुका था तथा एक सौ एक अन्य यज्ञ कर रहा था। भगवान ने वामन-रूप में आकर उसका गर्व दूर किया और इस प्रकार अपने भक्त का उद्धार किया। उसने इन्द्रासन का परित्याग किया और हुक्म को माननेवाले सेवक की तरह वह पाताल में चला गया। उस बलि के छल से भगवान खुद भी छले गये और उसका द्वारपाल बनना पड़ा।

स्वाति बूँद लै सिप जिउ मोती चुभी मारि सुहंदा ।
हीरै हीरा बेधि मिलंदा ॥ ७ ॥

पउड़ी ८

(कीड़ी दा उदाहरण)

नीचहु नीच सदावणा कीड़ी होइ न आपु गणाए ।
गुरमुखि मारगि चलणा इकतु खुड सहंस समाए ।
घिअ सकर दी वासु लै जिथै धरी तिथै चलि जाए ।
डुलै खंडु जु रेतु विचि खंडू दाणा चुणि चुणि खाए ।
भ्रिंगी दे भै जाइ मरि होवै भ्रिंगी मारि जीवाए ।
अंडा कछू कूँज दा आसा विचि निरासु वलाए ।
गुरमुखि गुरसिखु सुख फलु पाए ॥ ८ ॥

राजा बलि उस सीप की तरह है जो स्वाति नक्षत्र की बूँद अपने में ले उसे मोती बना डुबकी मारकर सागर के तल में पैठ जाता है। बलि भक्त का हीरा रूपी मन प्रभु-हीरे ने वेधकर अपने में मिला लिया ।। ७ ।।

पउड़ी ८

(कीड़ी का उदाहरण)

कीड़ी अपना आप कभी नहीं जताती और नीचों में से भी नीच अर्थात् अत्यन्त छोटी जानी जाती है । वह भी गुरुमुखों के मार्ग पर चलती है और अपने विशाल हृदय के कारण छोटे से स्थान में हजारों की संख्या में वे रह लेती हैं । घी और शक्कर की गन्ध मात्र से ही, वे जहाँ ये पदार्थ रखे रहते हैं, वे वहाँ चलकर पहुँच जाती हैं (गुरुमुख भी सत्संग को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वहाँ तक जा पहुँचते हैं)। रेत में बिखरी हुई चीनी के दानों को वे उसी प्रकार चुन लेती हैं जैसे गुरुमुख व्यक्ति गुणों को सँभाल लेता है । कीड़ी भृंगी नामक कीट के भय से मरकर स्वयं भृंगी बनकर अन्य कीड़ों को भी अपने जैसा बना लेती हैं। कछुए और क्रौंच पक्षी के अण्डों की तरह वह आशा में भी उदासीन बनी रहती है। इसी प्रकार गुरुमुख भी गुरु की शिक्षा प्राप्त कर सुख-फल प्राप्त करते हैं ।। ८ ।।

पउड़ी ९

(निक्के होण पुर लोका-लोक प्रसिध प्रसंग)

सूरज पासि बिआसु जाइ होइ भुणहणा कंनि समाणा ।
पड़ि विदिआ घरि आइआ गुरमुखि बालमीक मनि भाणा ।
आदि बिआस वखाणीऐ कथि कथि सासत्र वेद पुराणा ।
नारदि मुनि उपदेसिआ भगति भागवतु पढ़ि पतीआणा ।
चउदह विदिआ सोधि कै परउपकार अचारु सुखाणा ।
परउपकारी साधसंगु पतित उधारणु बिरदु वखाणा ।
गुरमुखि सुख फलु पति परवाणा ॥ ९ ॥

पउड़ी १०

(सुकदेव)

बारह वरहे गरभासि वसि जमदे ही सुकि लई उदासी ।
माइआ विचि अतीत होइ मन हठ बुधि न बंदि खलासी ।

पउड़ी ९

(विनम्र होने की अनेकों प्रसिद्ध कथाएँ)

व्यास सूर्य के पास गया और एक भुनगे के रूप में उसके कान में समा गया अर्थात् अत्यन्त विनम्रतापूर्वक उसके पास रहा (और विद्या सीखी)। वाल्मीकि भी जब विनम्र भाव से गुरु-उन्मुख हुआ तो विद्या प्राप्त कर घर लौटा। व्यास को आदिकवि कहा जाता है, जिसने शास्त्र, वेद और पुराणों की अनेकों कथाएँ कही हैं। नारद मुनि ने उसे उपदेश दिया और वह भक्ति की भागवत अर्थात् विनम्रता का पाठ कर ही शांति प्राप्त कर सका। उसने चौदह विद्याओं का शोधन किया पर अन्त में परोपकारी आचरण के कारण ही उसे सुख प्राप्त हुआ। ऐसे विनम्र साधुओं की सत्संगति परोपकारी है और ऐसे सत्संग का बिरद पतितों का उद्धार करना है । गुरुमुख उसी में सुखफल प्राप्त करते हैं और उनके सम्मानपूर्वक प्रभु-दरबार में स्वीकृति मिलती है ।। ९।।

पउड़ी १०

(शुकदेव)

शुकदेव ने वारह वर्ष तक माँ के गर्भ में रहकर जन्म लेते ही उदासीनता धारण कर ली । वह माया से तो अतीत हो गया पर मन के हठ से चालित बुद्धि के कारण उसका भी छुटकारा न हो सका ।

पिआ बिआस परबोधिआ गुर करि जनक सहज अभिआसी ।
तजि दुरमति गुरमति लई सिर धरि जूठि मिली साबासी ।
गुर उपदेसु अवेसु करि गरबि निवारि जगति गुरदासी ।
पैरी पै पा खाक होइ गुरमति भाउ भगति परगासी ।
गुरमुखि सुख फलु सहज निवासी ॥ १० ॥

पउड़ी ११

(गुर सिक्खाँ दी विशेशता)

राज जोगु है जनक दे वडा भगतु करि वेदु वखाणै ।
सनकादिक नारद उदास बाल सुभाइ अतीतु सुहाणै ।
जोग भोग लख लंघि कै गुरसिख साधसंगति निरबाणै ।
आपु गणाइ विगुचणा आपु गवाए आपु सित्राणै ।
गुरमुखि मारगु सच दा पैरी पवणा राजे राणै ।

पिता व्यास ने उसे समझाया कि वह सहज अवस्था में रहने के अभ्यासी राजा जनक को गुरु धारण करे। उसने ऐसा करके दुर्मति का त्याग किया, गुरुमति को अपनाया तथा गुरु के कहने पर जूठी पत्तलों को भी सिर पर धारण किया जिससे गुरु की ओर से शाबाशी मिली । गुरु के उपदेश से आवेष्टित हो जब उसने गर्व का त्याग किया तो सारा जगत् उसे गुरु-रूप मानकर उसका दास हो गया। चरणों में गिरना, चरण-धूलि बनना आदि गुरुमत के उपदेश से उसमें प्रेम-भक्ति का उदय हुआ और गुरुमुख-रूप में उसे सुखफल एवं सहज अवस्था में निवास मिला ।। १० ।।

पउड़ी ११

(गुरु-सिक्खों की विशेषता)

राजा जनक राजा भी है, योगी भी है । ज्ञान के बड़े ग्रंथ भी उसे भक्त के रूप में जानते हैं । सनकादि एवं नारद बचपन से ही उदासीन प्रकृति के थे और सभी पदार्थों से अतीत बने रहकर ही शोभायमान हुए हैं। लाखों योगों और भोगों को पार कर गुरु के सिक्ख भी साधुसंगति में विनम्र बने रहते हैं। जो व्यक्ति अपने आपको बड़ा गिनवाता है, वह भ्रमों में भटकता रहता है; जो अहम्-भाव को गँवाता है वही अपने आपको पहचानता है। गुरुमुख का मार्ग सत्य का मार्ग है जिसमें राजा-महाराजा सभी चरणों पर आ पड़ते हैं।

गरबु गुमानु विसारि कै गुरमति रिदै गरीबी आणै ।
सची दरगह माणु निमाणै ॥ ११ ॥

पउड़ी १२

(चरणोदक दी विशेशता)

सिरु उचा अभिमानु विचि कालख भरिआ काले वाला ।
भरवटे कालख भरे पिपणीआ कालख सूराला ।
लोइण काले जाणीअनि दाड़ी मुछा करि मुह काला ।
नक अंदरि नक वाल बहु लूँइ लूँइ कालख बेताला ।
उचै अंग न पूजीअनि चरण धूड़ि गुरमुखि धरमसाला ।
पैरा नख मुख उजले भारु उचाइनि देहु दुराला ।
सिर धोवणु अपवित्र है गुरमुखि चरणोदक जगि भाला ।
गुरमुखि सुख फलु सहजु सुखाला ॥ १२ ॥

इस मार्ग पर चलनेवाला गर्व, अभिमान विस्मृत कर गुरुमत के माध्यम से हृदय में विनम्रता धारण करता है। सच्चे दरबार में ऐसे विनम्र व्यक्ति को सम्मान प्राप्त होता है ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(चरणामृत की विशेषता)

अभिमानी सिर ऊँचा बना रहता है पर ऊँचा होने पर भी बालों की कालिमा से भरा रहता है। भौंहें कालिमा से भरी रहती हैं और पलकें भी काले शूलों के समान होती हैं । नेत्र भी काले होते हैं और दाढ़ी-मूंछें भी काली होती हैं । नाक में बहुत से बाल होते हैं अर्थात् रोम-रोम काला होता है। ऊँचे कहे जानेवाले अंगों की पूजा नहीं होती और गुरुमुखों की चरण-धूलि ही धर्मस्थानों में पूज्य होती है। पैर उसके नाखून उज्ज्वल होते हैं जो सारी देह का भार उठाते हैं। सिर का पानी तो अपवित्र माना जाता है पर गुरुमुखों के चरण-जल की खोज तो सारा संसार करता है । गुरुमुख व्यक्ति सुखफल प्राप्त कर सहज अवस्था में ही सुखों का भंडार बने रहते हैं ।। १२ ।।

पउड़ी १३
(ईश्वरीय रचना)

जल विचि धरती धरमसाल धरती अंदरि नीर निवासा ।
चरन कवल सरणागती निहचल धीरजु धरमु सुवासा ।
किरख बिरख कुसमावली बूटी जड़ी घाह अबिनासा ।
सर साइर गिरि मेरु बहु रतन पदारथ भोग बिलासा ।
देव सथल नीरथ घणे रंग रूप रस कस परगासा ।
गुर चेले रहरासि करि गुरमुखि साधसंगति गुणतासा ।
गुरमुखि सुख फलु आस निरासा ॥ १३ ॥

पउड़ी १४
(साधू दी चरण-पूजा)

रोम रोम विचि रखिओनु करि ब्रहमंड करोड़ि समाई ।
पारब्रहमु पूरन ब्रहमु सति पुरख सतिगुरु सुखदाई ।

पउड़ी १३
(ईश्वरीय रचना)

धर्मसाधना का स्थल धरती जल में रहती है और धरती के अंदर जल का निवास रहता है। (गुरु के) चरण-कमलों की शरण में आने पर धरती पर अटल धैर्य, धर्म और सुगंध बसी रहती है । उस पर खेती, वृक्षों, फूलों की पंक्तियाँ, जड़ी-बूटी, घास आदि लगते हैं जो कभी भी समाप्त नहीं होते । उस पर अनेकों सरोवर, समुद्र, पर्वत, रत्न-पदार्थ एवं भोग-विलास की सामग्रियाँ हैं। अनेकों देवस्थल, तीर्थ, रंग-रूप, रस, कषाय आदि प्रकाशित होते हैं । गुरु और शिष्य की परम्परा के कारण गुरुमुखों की सत्संगति भी इसी प्रकार गुणों का समुद्र है । आशा-तृष्णा में निराश बने रहना ही गुरुमुखों का सुखफल है ।। १३ ।।

पउड़ी १४
(साधु की चरण-वंदना)

प्रभु ने अपने एक-एक रोम में करोड़ों ब्रह्मांडों को समाहित कर रखा है। उस पूर्णपरब्रह्म सत्यपुरुष का सद्गुरु रूप पूर्णरूप से सुखदायक है।

चारि वरन गुरसिख होइ साधसंगति सतिगुर सरणाई ।
गिआन धिआन सिमरणि सदा गुरमुखि सबदि सुरति लिवलाई ।
भाइ भगति भउ पिरम रस सतिगुरु मूरति रिदे वसाई ।
एवडु भारु उचइंदे साध चरण पूजा गुर भाई ।
गुरमुखि सुख फलु कीम न पाई ॥ १४ ॥

पउड़ी १५

(अनिआई राजे)

वसै छहबर लाइ कै परनालीं हुइ वीहीं आवै ।
लख नाले उछल चलनि लख परवाही वाह वहावै ।
लख नाले लख वाहि वहि नदीआ अंदरि रले रलावै ।
नउ सै नदी नड़िंनवै पूरबि पछमि होइ चलावै ।
नदीआ जाइ समुंद विचि सागर संगमु होइ मिलावै ।
सति समुंद गड़ाड़ महि जाइ समाहि न पेटु भरावै ।
जाइ गड़ाड़ु पताल हेठि होइ तवे दी बूँद समावै ।

चारों वर्ण सत्संगति के रूप में सद्गुरु की शरण में आते हैं और ज्ञान-ध्यान स्मरण. के माध्यम से गुरुमुख व्यक्ति वहाँ सुरति को शब्द में जीन करते हैं । प्रेमभक्ति प्रभु-भय और प्रेम के रस को सद्गुरु की मूर्ति मानकर लोग हृदय में धारण करते हैं। साधु रूपी सद्गुरु के चरण-सेवकों का इतना (मानसिक एवं आध्यात्मिक) बोझ वहन करते हैं, इसलिए, हे भाई! ऐसे चरणों की वंदना करनी चाहिए। गुरुमुखों के सुखफल का मूल्य आँका नहीं जा सकता ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(संसार की व्यर्थता और आपसी कलह)

घनघोर वर्षा होती है और परनालों से पानी बहता एक से अनेक होता जाता है । लाखों नाले उमड़कर लाखों प्रकार के प्रवाह बन जाते हैं । लाखों नाले बहकर नदियों के बहाव में मिल जाते हैं । नौ सौ निन्यानवे नदियाँ पूर्व और पश्चिम दिशाओं में बहती हैं। नदियाँ जाकर सागर से संगम करती हैं । ऐसे सातों समुद्र महासागरों में विलीन हो जाते हैं पर महासागरों का फिर भी पेट नहीं भरता। ऐसे महासागर भी पाताल में जाकर ऐसे ही लगते हैं जैसे गर्म तवे पर पानी की बूँद दिखाई देती है।

सिर पतिसाहाँ लख लख इंनणु जालि तवे नो तावै ।
मरदे खहि खहि दुनीआ दावै ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(दो पातिशाह ते बीह फ़कीर)

इकतु थेकै दुइ खड़गु दुइ पतिसाह न मुलकि समाणै ।
वीह फकीर मसीति विचि खिंथ खिंधोली हेठि लुकाणै ।
जंगल अंदरि सीह दुइ पोसत डोडे खसखस दाणै ।
सूली उपरि खेलणा सिरि धरि छत्र बजार विकाणै ।
कोलू अंदरि पीड़ीअनि पोसति पीहि पिआले छाणै ।
लउबाली दरगाह विचि गरबु गुनाही माणु निमाणै ।
गुरमुखि होंदे ताणि निताणै ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(बक्करी)

सीह पजूती बकरी मरदी होई हड़ हड़ हसी ।
सीहु पुछै विसमादु होइ इतु अउसरि कितु रहसि रहसी ।

लाखों सम्राटों के सिर काटकर ईंधन के रूप में इस तवे को तपाने के काम आते हैं। यही सम्राट् इस धरती पर अपने-अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ते-लड़ते मर जाते हैं ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(दो सम्राट और बीस फ़कीर)

एक म्यान में दो तलवारें और एक देश में दो सम्राट् नहीं रह सकते, परन्तु बीसों फ़कीर एक मस्जिद में और एक ही गुदड़ी में लिपटकर रह लेते हैं । सम्राट तो शेर में दो सिंहों के समान हैं पर फ़कीर पोस्ते की फली खसखस के दोनों के समान हैं जो परस्पर सब बराबर होते हैं । ये दाने डंडी रूपी शूल-शया पर पहले खेलते हैं पर फिर सम्मानित बन बाज़ार में बिकते हैं । कोल्हू में इन्हें पेरा जाता है और पोस्ते के रूप में इसे लोग प्यालों में भरकर पीते हैं । प्रभु-दरबार में तो अभिमानी को गुनहगार कहा जाता है एवं विनम्र को सम्मान मिलता है । गुरुमुख व्यक्ति भी इसीलिए शक्तिशाली होते हुए भी निर्बल ही बने रहते हैं ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(बकरी)

शेर के पास पहुँची मरने को तैयार बकरी हड़हड़ाकर हँस पड़ी ।

बिनउ करेंदी बकरी पुत्र असाडे कीचनि खसी ।
अक धतूरा खाधिआँ कुहि कुहि खल उखलि विणसी ।
मासु खानि गल वढिकै हालु तिनाड़ा कउणु होवसी ।
गरबु गरीबी देह खेह खाजु अखाजु अकाजु करसी ।
जगि आइआ सभ कोइ मरसी ॥ १७ ॥

पउड़ी १८

(गुरमुख)

चरण कवल रहरासि करि गुरमुखि साधसंगति परगासी ।
पैरी पै पाखाक होइ लेख अलेख अमर अबिनासी ।
करि चरणोदकु आचमान आधि बिआधि उपाधि खलासी ।
गुरमति आपु गवाइआ माइआ अंदरि करनि उदासी ।
सबद सुरति लिव लीणु होइ निरंकार सच खंडि निवासी ।

शेर हैरान होकर पूछने लगा कि इस मौके पर तुम क्यों खुश हो रही हो? बकरी सविनय कहने लगी कि हमारे बच्चों को अंडकोष कुचल कर नपुंसक बना दिया जाता है । हम आक और धतूर आदि खाते हैं उस पर भी हमारी खाल खींच कर उस खाल को पीटा जाता है। (तुम्हारे जैसे) जो दूसरों को गला काटकर उनका मांस खाते हैं, मैं सोच रही हूँ उनका क्या हाल होगा । अभिमानी और विनम्र दोनों की देह तो अंत में राख हो जाएगी परन्तु फिर भी अभिमानी (शेर) की देह तो अखाद्य और विनम्र (बकरी) को खाद्य का पद प्राप्त होता है। वैसे तो जगत् में आया प्रत्येक जीव अंत में अवश्य मरेगा ।। १७ ।।

पउड़ी १८

(गुरुमुख)

गुरु के चरण-कमलों की मर्यादा में रहकर गुरुमुख को साधुसंगति का प्रकाश प्राप्त होता है। चरण-वंदना कर चरणधूलि बनकर सभी लेखों से अतीत और अमर अविनाशी हो जाया जाता है। गुरुमुखों का चरणामृत पान कर आधि, व्याधि और उपाधियों से मुक्ति मिल जाती है । वे गुरुमत के अंतर्गत अपने अभिमान को गँवा देते हैं और माया में भी लिप्त नहीं होते। शब्द में सुरति को लीन कर निराकार के सत्यदेश (सत्संगति) में वे निवास करते हैं ।

अबिगति गति अगाधि बोधि अकथ कथा अचरज गुरदासी ।
गुरमुखि सुख फलु आस निरासी ॥ १८ ॥

पउड़ी १९

(सतिसंग निरदोख नूँ वी तारदा है)

सण वण वाड़ी खेतु इकु परउपकारु विकारु जणावै ।
खल कढाहि वटाइ सण रसा बंधनु होइ बन्हावै ।
खासा मलमल सिरीसाफु सूतु कताइ कपाह वुणावै ।
लजणु कजणु होइ कै साधु असाधु बिरदु बिरदावै ।
संग दोख निरदोख मोख संग सुभाउ न साधु मिटावै ।
तपड़ु होवै धरमसाल साधसंगति पग धूड़ि धुमावै ।
कटि कुटि सण किरतासु करि हरि जसु लिखि पुराण सुणावै ।
पतित पुनीत करै जन भावै ॥ १९ ॥

गुरु के दासों (गुरुमुखों) की कथा अगाध, अकथनीय एवं उनकी गति अव्यक्त है। गुरुमुखों का सुखफल आशाओं में अलिप्त बने रहना ही है ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(सत्संग दुष्टों का भी उद्धार करता है)

सनई और कपास का एक ही खेत है पर एक परोपकार करती है और दूसरी अनर्थ करती है। सनई को छीलकर उसका रस्सा बनता है, जिसके पाश दूसरों को बंधन में बाँधने के काम आते हैं। दूसरी ओर कपास से खासा लट्ठा, मलमल और सिर पर बाँधने की पगड़ी आदि कात-बुनकर बनाई जाती हैं। कपास दूसरे की लज्जा को ढँकती है और साधु-असाधु सबके धर्म की रक्षा करती है । साधुगण संग दोष से भी मुक्त बने रहते हैं और अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते । सनई जब तृणपट (नीचे बिछाने का मोटा कपड़ा) बनकर धर्मशाला में लाई जाती है तो वह भी साधुसंगति में साधु जनों की चरणधूलि से कृतार्थ हो जाती है अथवा जब उसे कूट-कूटकर उसका कागज बनाया जाता है तो साधुजन उस पर हरि-यश लिख-पढ़कर सुनाते हैं। सत्संगति पतितों को भी पवित्र कर देती है ।। १९ ।।

पउड़ी २०

(संगति दे गुण)

पथर चितु कठोरु है चूना होवै अगीं दधा ।
अग बुझै जलु छिड़किऐ चूना अगि उठे अति वधा ।
पाणी पाए विहु न जाइ अगनि न छुटै अवगुण बधा ।
जीभै उतै रखिआ छाले पवनि संगि दुख लधा ।
पान सुपारी कथु मिलि रंगु सुरंगु संपूरणु सधा ।
साधसंगति मिलि साधु होइ गुरमुखि महा असाध समधा ।
आपु गवाइ मिलै पलु अधा ॥ २० ॥ २५ ॥ पंझीह ॥

पउड़ी २०

(संगति के गुण)

कठोर चित्त पत्थर को जब आग में जला दिया जाता है तो वह चूना बन जाता है। उस पर जल छिड़कने से बाहर की अग्नि तो बुझ जाती है पर उसके भीतर की अग्नि बनी रहती है । उस पर पानी डालने से भी उसका जहर नहीं मिटता और उसकी आग शान्त नहीं होती अर्थात् अवगुणों से उसका पीछा नहीं छूटता । उसे जीभ पर रखने पर दुखदायक छाले पड़ जाते हैं। पान-सुपारी और कत्थे की संगति से मिलने से उसका सुन्दर रंग निखर उठता है। साधुसंगति में मिलकर साधुस्वरूप बनकर गुरुमुख महाअसाध्य विषयों की भी साधना कर लेते हैं। जब अहम्भाव गँवा दिया जाता है तो आधे पल भर में (वह प्रभु) मिल जाता है ।। २०।। २५ ।।

* * *

वार २६

੧ ओं सतिगुर प्रसादि ।।

पउड़ी १

(मंगलाचरण)

सतिगुर सचा पातिसाहु पातिसाहा पातिसाहु सिरंदा ।
सचै तखति निवासु है साधसंगति सच खंडि वसंदा ।
सचु फुरमाणु नीसाणु सचु सचा हुकमु न मूलि फिरंदा ।
सचु सबदु टकसाल सचु गुर ते गुर हुइ सबद मिलंदा ।
सची भगति भंडार सचु राग रतन कीरतनु भावंदा ।
गुरमुखि सचा पंथु है सचु दोही सचु राजु करंदा ।
वीह इकीह चढ़ाउ चढ़ंदा ।। १ ।।

पउड़ी २

(मंगलाचरण)

गुर परमेसरु जाणीऐ सचे सचा नाउ धराइआ ।
निरंकारु आकारु होइ एकंकारु अपारु सदाइआ ।

पउड़ी १

(मंगलाचरण)

सद्‌गुरु सच्चा सम्राट् है और सम्राटों के सम्राओं का भी सर्जक है। वह सत्य के सिंहासन पर बैठता है और साधुसंगति रूपी सत्यदेश में निवास करता है। उसका आदेश, चिह्न सत्य है और उसकी सच्ची आज्ञा अपरिवर्तनीय है। उसका शब्द भी सत्य है, भंडार भी सत्य और गुरु के शब्द-रूप में वह प्राप्त होता है। उसकी भक्ति भी सत्य है, उसके भंडार भी सत्य हैं और उसे प्रेम एवं स्तुति भाती है। गुरुमुखों का मार्ग भी सच्चा है, सत्य ही उनका नारा है और उनका राज सत्य का ही राज है। (इस मार्ग पर चलनेवाला व्यक्ति) संसार को पार कर प्रभु की ओर अग्रसर होता है ।। १ ।।

पउड़ी २

(मंगलाचरण)

गुरु को ही परमेश्वर जानना चाहिए, क्योंकि उस सत्यपुरुष ने ही (सद्‌गुरु) सच्चा नाम धारण किया है। निराकार प्रभु-सत्ता ने स्वयं एकंकार रूप में अपने आपको जनवाया है।

एकंकारहु सबद धुनि ओअंकारि अकारु बणाइआ ।
इकदू होइ तिनि देव तिहुँ मिलि दस अवतार गणाइआ ।
आदि पुरखु आदेसु है ओहु वेखै ओन्हा नदरि न आइआ ।
सेख नाग सिमरणु करै नावा अंतु बिअंतु न पाइआ ।
गुरमुखि सचु नाउ मनि भाइआ ॥ २ ॥

पउड़ी ३

(वाहिगुरु दी उसतति)

अंबरु धरति विछोड़िअनु कुदरति करि करतार कहाइआ ।
धरती अंदरि पाणीऐ विणु थंमां आगासु रहाइआ ।
इंन्हण अंदरि अगि धरि अहिनिसि सूरजु चंदु उपाइआ ।
छिअ रुति बारह माह करि खाणी बाणी चलतु रचाइआ ।

एकंकार से ही शब्दध्वनि ॐकार ने (नाम-रूप संसार का) आकार धारण किया। एक ही प्रभु से तीन देव (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) उत्पन्न हुए और इन्होंने ही आगे दस अवतारों में अपनी गणना करवाई। उस आदिपुरुष को प्रणाम है जो स्वयं तो इन सबको देखता है पर इनको वह प्रभु दिखाई नहीं देता । शेषनाग अनेक नाम पुकारकर उस प्रभु का स्मरण किया करता है, परन्तु फिर भी उस प्रभु के अन्तिम रहस्य को नहीं जान पाया । उसी प्रभु का सत्यनाम गुरुमुखों के मन को भा गया है ।। २२।।

पउड़ी ३

(वाहिगुरु-परमात्मा की स्तुति)

उस परमात्मा ने धरती और आकाश को अलग-अलग स्थिर कर रखा है, इसलिए अपनी इस शक्ति के कारण ही उसे कर्त्ता कहते हैं। उसने धरती को पानी में स्थिर किया है और बिना स्तम्भों की सहायता से आकाश को टिका रखा है । ईंधन में अग्नि को उसने भरकर रात-दिन चमकनेवाले सूर्य-चंद्र की उत्पत्ति की। छः ऋतुएँ एवं बारह माह बनाकर उसने चार खानियाँ और वाणियों की सृष्टि-लीला कर दी है। मानव-जन्म दुर्लभ है और जिसने पूर्णगुरु प्राप्त कर लिया है

माणस जनमु दुलंभु है सफलु जनमु गुरु पूरा पाइआ ।
साधसंगति मिलि सहजि समाइआ ॥ ३ ॥

पउड़ी ४

(सतिगुरु दा उपकार)

सतिगुरु सचु दातारु है माणस जनमु अमोलु दिवाइआ ।
मूहु अखी नकु कंनु करि हथ पैर दे चलै चलाइआ ।
भाउ भगति उपदेसु करि नामु दानु इसनानु दिड़ाइआ ।
अंम्रित वेलै नावणा गुरमुखि जपु गुरमंतु जपाइआ ।
राति आरती सोहिला माइआ विचि उदासु रहाइआ ।
मिठा बोलणु निवि चलणु हथहु देइ न आपु गणाइआ ।
चारि पदारथ पिछै लाइआ ॥ ४ ॥

उसका जन्म सफल हो गया है। साधुसंगति के मिलाप के फलस्वरूप वह सहज में लीन हो गया है ।। ३ ।।

पउड़ी ४

(सद्गुरु का उपकार)

सद्गुरु सच्चा दाता है जिसने अमूल्य मानव-जन्म हमें दिलाया है। मुँह, आँख, नाक, कान बनाकर हाथ और पाँव दिये हैं ताकि व्यक्ति चल-फिर सके। सद्गुरु ने प्रेम-भक्ति का उपदेश देकर जीवों को नाम-स्मरण, दान एवं स्नान में दृढ़ता प्रदान की है । अमृत-बेला (भोर) में स्नान और गुरुमंत्र का जाप सद्गुरु रूपी गुरुमुख करते कराते हैं रात में आरती सोहिला का पाठ करने का उपदेश दे सद्गुरु ने सबको माया में रहते हुए भी निर्लिप्त बने रहने की प्रेरणा दी है । गुरु ने मीठा बोलने, विनम्रतापूर्वक आचरण करने, हाथ से कुछ देकर भी स्वयं को न जताने का उपदेश लोगों को दिया है और इस प्रकार चारों पदार्थों (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष) को अपने पीछे-पीछे लगा लिया है ।। ४ ।।

पउड़ी ५

(गुरु उसतति)

सतिगुरु वडा आखीऐ वडे दी वडी वडिआई ।
ओअंकारि अकारु करि लख दरीआउ न कीमति पाई ।
इक वरभंडु अखंडु है जीअ जंत करि रिजकु दिवाई ।
लूँअ लूँअ विचि रखिओनु करि वरभंड करोड़ि समाई ।
केवडु वडा आखीऐ कवण थाउ किसु पुछाँ जाई ।
अपड़ि कोइ न हंघई सुणि सुणि आखण आखि सुणाई ।
सतिगुरु मूरति परगटी आई ॥ ५ ॥

पउड़ी ६

(गुर उसतति)

धिआनु मूलु गर दरसनो पूरन ब्रहमु जाणि जाणोई ।
पूज मूल सतिगुरु चरण करि गुरदेव सेव सुख होई ।

पउड़ी ५

(गुरु-स्तुति)

सद्गुरु को महान् कहा जाता है क्योंकि बड़े की महिमा भी बड़ी है। ॐकार ने ही जगत् रूपी आकार धारण किया है और लाखों जीवन-प्रवाह (दरिया) भी उसकी महिमा को नहीं जान सके । वह एक ही प्रभु अखंड-रूप से ब्रह्मांड में है और सभी जीव-जन्तुओं को आजीविका देता है । उस प्रभु ने अपने रोम-रोम में करोड़ों ब्रह्मांडों को समाहित कर रखा है । उसे कितना बड़ा बताया जाए और वह किस स्थान पर रहता है यह किससे पूछा जाए । कोई भी उस तक पहुँच नहीं सकता । सब सुन-सुनकर उसके बारे में कहते-सुनते हैं। वह प्रभु सद्गुरु के रूप में ही प्रकट हुआ है ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(गुरु-स्तुति)

ध्यान का मूल गुरु का दर्शन है क्योंकि गुरु ही ब्रह्म है और इस तथ्य को कोई बिरला ही जानता है । सद्गुरु के चरण, जो सब सुखों का मूल हैं,

मंत्र मूलु सतिगुरु बचन इक मनि होइ अराधै कोई ।
मोख मूलु किरपा गुरू जीवनु मुकति साधसंगि सोई ।
आपु गणाइ न पाईऐ आपु गवाइ मिलै विरलोई ।
आपु गवाए आप है सभ को आपि आपे सभु कोई ।
गुरु चेला चेला गुरु होई ॥ ६ ॥

पउड़ी ७

(चार जुगाँ दे धरम)

सतिजुगि पाप कमाणिआ इकस पिछै देसु दुखाला ।
त्रेतै नगरी पीड़ीऐ दुआपुरि पापु वंसु को दाला ।
कलिजुगि बीजै सो लुणै वरतै धरम निआउ सुखाला ।
फलै कमाणा तिहु जुगीं कलिजुगि सफलु धरमु ततकाला ।
पाप कमाणै लेपु है चितवै धरम सुफलु फल वाला ।

उनकी पूजा करो, तभी सुख प्राप्त होगा । सद्गुरु का उपदेश ही मूल मंत्र है, जिसकी आराधना एकाग्र मन से कोई-कोई ही करता है। गुरु की कृपा ही मोक्ष का मूल है और साधुसंगति में ही जीवनमुक्ति प्राप्त करता है। अपने आपको जताकर कोई भी प्रभु को नहीं प्राप्त कर सकता एवं अहम्-भाव को गँवाकर कोई बिरला ही उसे मिलता है। जो अहम्-भाव को गँवा देता है वह स्वयं परमात्मा है। वह सबको अपना रूप जनाता है और सभी उसे अपना रूप मानते हैं। इस प्रकार वह गुरु-रूप व्यक्ति चेला और ही गुरु बन जाता है ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(चार युगों के धर्म)

सत्युग में एक व्यक्ति द्वारा पापकर्म किये जाने पर सारे देश को ही कष्ट उठाना पड़ता था । त्रेतायुग में एक के पापकर्म के फलस्वरूप सारे नगर का उत्पीड़न और द्वापर में सारे वंश को कष्ट होता था । कलियुग का धर्म-न्याय सरल है; इसमें जो बोता है वही काटता है। अन्य तीन युगों में तो फल की कमाई करके उसे संचित किया जाता था पर कलियुग में धर्म का सुफल तुरन्त मिल जाता है। (कलियुग में) पापकर्म करने पर कुछ होता है पर धर्म का तो मात्र चिन्तन ही सुफल देने वाला है।

भाइ भगति गुरपुरब करि बीजनि बीजु सची धरमसाला ।
सफल मनोरथ पूरण घाला ॥ ७ ॥

पउड़ी ८

(कलिजुग दा धरम)

सतिजुगि सति त्रेतै जुगा दुआपुरि पूजा बहली घाला ।
कलिजुगि गुरमुखि नाउँ लै पारि पवै भवजल भरनाला ।
चारि चरण सतिजुगै विचि त्रेतै चउथै चरण उकाला ।
दुआपुरि होए पैर दुइ इकतै पैर धरंमु दुखाला ।
माणु निमाणै जाणि कै बिनउ करै करि नदरि निहाला ।
गुर पूरै परगासु करि धीरजु धरम सची धरमसाला ।
आपे खेतु आपे रखवाला ॥ ८ ॥

पउड़ी ९

(जित्त के हारना)

जिन्हाँ भाउ तिन नाहि भउ मुचु भउ अगै निभविआहा ।
अगि तती जल सीअला निव चलै सिरु करै उताहा ।

(गुरुमुख व्यक्ति) इसमें प्रेम-भक्ति एवं गुरु के चिन्तन का मनन कर जीव इसी धरती रूपी सच्ची धर्मशाला में (सत्य का) बीज बोते हैं। उनकी साधना एवं उद्देश्य सफल होते हैं ।। ७ ।।

पउड़ी ८

(कलियुग का धर्म)

सत्युग में सत्य, त्रेता में यज्ञ और द्वापर में अधिक पूजा का प्रचार था। कलियुग में गुरुमुख व्यक्ति प्रभु -नाम-स्मरण करने से संसार-सागर से पार हो जाते हैं। सत्युग में धर्म के चार पैर थे पर त्रेतायुग में धर्म का चौथा पैर उखाड़ लिया गया। द्वापर (धर्म के) दो पाँव रह गये और कलियुग में धर्म एक ही पाँव पर खड़ा रह दुखी होने लगा। वह प्रभु को निर्बलों का बल मानकर प्रार्थना करने लगा कि कृपादृष्टि से मेरा उद्धार करो। (प्रभु ने) पूर्णगुरु के रूप में प्रकाशित हो धैर्य और धर्म की सच्ची धर्मशाला का निर्माण किया। वह स्वयं ही (यह सृष्टि रूपी) खेत है और स्वयं ही उसका रक्षक भी है ।। ८ ।।

पउड़ी ९

(जीतकर हारना)

जिन्होंने प्रभु-प्रेम को धारण किया है उन्हें किसी का भय नहीं और जो प्रभु-भय से विहीन हैं उन्हें आगे प्रभु-दरबार में भय बना रहता है।

भरि डुबै खाली तरै वजि न वजै घड़ै जिहावा ।
अंब सुफल फलि झुकि लहै दुख फलु अरंडु न निवै तलाहा ।
मनु पंखेरू धावदा संगि सुभाइ जाइ फल खाहा ।
धरि ताराजू तोलीऐ हउला भारा तोलु तुलाहा ।
जिणि हारै हारै जिणै पैरा उते सीसु धराहा ।
पैरी पै जग पैरी पाहा ॥ ९ ॥

पउड़ी १०

(जेहा भाउ तेहा फल)

सचु हुकमु सचु लेखु है सचु कारणु करि खेलु रचाइआ ।
कारणु करते वसि है विरलै दा ओहु करै कराइआ ।

आग गर्म है और जल ठंडा है। जल विनम्र हो नीचे की ओर बहता है अत: ठंडा है और अग्नि ऊपर की ओर जाती है इसलिए गर्मी में रहती है । जैसे भरकर घड़ा डूब जाता है और आवाज भी नहीं करता और खाली घड़ा न सिर्फ तैरता रहता है बल्कि आवाज भी करता रहता है (वैसे ही अभिमानी मुक्त नहीं होता और अहम्-भाव गँवानेवाला प्रभु-नाम में लीन भी रहता है और मुक्त भी हो जाता है)। आम के वृक्ष को सुखदायक फल लगते हैं तो वह विनम्रता से और झुक जाता है परन्तु रेंड़ी का (कड़ुआ) वृक्ष कड़ुवे फल देता और जरा सा भी नहीं झुकता। मन-पक्षी उड़ानें भरता है और अपने स्वभाव के अनुरूप फलों को ग्रहण करता है अर्थात् कर्मों के अनुसार ही फल पाता है। न्याय के तराजू पर हलके भारी का तौल हो जाता है (और अच्छे-बुरे का पता लग जाता है) । जो यहाँ जीता (हुआ लगता) है वह (प्रभु-दरबार में) हार जाता है और यहाँ हारा हुआ वहाँ जीतता है और सभी उसके चरणों में सिर रख देते हैं। व्यक्ति पहले स्वयं (गुरु के) चरणों पर गिरता है तब वह सबको अपने चरणों पर डाल लेता है ।। ९।।

पउड़ी १०

(जैसी भावना वैसा फल)

उस प्रभु का आदेश सत्य है, लेख सत्य है और सत्य कारण में से ही उसने सृष्टि-रचना की लीला की है। सभी कारण कर्त्ता (परमपुरुष) के वश में है, पर किसी बिरले भक्त के किये कार्यों को ही वह स्वीकार करता है।

सो किहु होरु न मंगई खसमै दा भाणा तिसु भाइआ ।
खसमै एवै भावदा भगति वछलु हुइ बिरदु सदाइआ ।
साधसंगति गुर सबदु लिव कारणु करता करदा आइआ ।
बाल सुभाइ अतीत जँगि वर सराप दा भरमु चुकाइआ ।
जेहा भाउ तेहो फलु पाइआ ॥ १० ॥

पउड़ी ११

(अउगुण दा गुण करना)

अवगुण कीते गुण करै सहजि सुभाउ तरोवर हंदा ।
वढण वाला छाउ बहि चंगे दा मंदा चितवंदा ।
फल दे वट वगाइआँ वढण वाले तारि तरंदा ।
बेमुख फल दा पाइदे सेवक फल अणगणत फलंदा ।
गुरमुखि बिरला जाणीऐ सेवकु सेवक सेवक संदा ।

जिस भक्त को प्रभु-इच्छा भा गई है वह फिर अन्य किसी से कुछ नहीं माँगता। अब प्रभु को भी यही अच्छा लगता है कि वह भक्त की प्रार्थना स्वीकार करे, क्योंकि भक्तवत्सलता उसका बिरद है, "साधुसंगत" में रहकर शब्द में सुरति को लीन करनेवाले भक्त भी जानते है कि वह कर्त्ता प्रभु ही सब कारणों का चिरन्तन कारण है। भक्त व्यक्ति बालक के सरल स्वभाव की तरह जगत् से निर्लिप्त रहता है और वरदान-शाप के भ्रमों से मुक्त रहता है। जैसी वह भावना रखता है वैसा ही वह फल प्राप्त करता है ।। १० ।।

पउड़ी ११

(अवगुण को गुण बनाना)

वृक्ष सहज स्वभाव वाला होता है और बुरा किये जाने पर भी बुरा करनेवाले की भलाई करता है । वृक्ष को काटनेवाला उसी वृक्ष की छाया में बैठता है और उस भलाई करनेवाले के बारे में बुरा सोचता है। पत्थर मारनेवालों को वृक्ष फल देता है और काटनेवालों को नाव बनकर पार कर देता है। (गुरु से) विमुख रहनेवाले व्यक्ति फल नहीं प्राप्त करते और सेवक अनंत फलों को पा जाते हैं । कोई बिरला ही गुरुमुख इस संसार में जाना जाता है जो प्रभु-सेवकों का भी सेवक बनकर उनकी सेवा करता है।

जगु जोहारे चंद नो साइर लहरि अनंदु वधंदा ।
जो तेरा जगु तिस दा बंदा ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(कमाद दा द्रिशटांत)

जिउ विसमादु कमादु है सिर तलवाइआ होइ उपंना ।
पहिले खल उखलिकै टोटे करि करि भंनणि भंना ।
कोलू पाइ पीड़ाइआ रस ट्टरि कस इंनण वंना ।
दुख सुख अंदरि सबरु करि खाए अवटणु जग धंन धंना ।
गुड़ सकरु खंडु मिसरी गुरमुख सुख फलु सभ रस बंना ।
पिरम पिआला पीवणा मरि मरि जीवणु थीवणु गंना ।
गुरमुखि बोल अमोल रतंना ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(गुर दरीआउ)

गुरु दरीआउ अमाउ है लख दरीआउ समाउ करंदा ।
इकस इकस दरीआउ विचि लख तीरथ दरीआउ वहंदा ।

दूज में छोटे से चाँद को सभी प्रणाम करते हैं और समुद्र भी प्रसन्न हो अपनी लहरें उसकी तरफ उछालता है । हे प्रभु ! जो तेरा हो गया, समझ लो सारा संसार उसका हो गया ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(गन्ने का दृष्टांत)

गन्ने का व्यवहार आश्चर्यपूर्ण है कि वह सिर नीचे की ओर करके पैदा होता है। पहले उसकी खाल अर्थात् उस पर पतला छिलका उतार कर उसे फिर टुकड़े-टुकड़े किया जाता है । फिर उसे बेलन में पेरा जाता है; उसका रस कड़ाहे में खौलाया जाता है तथा उसके रस-विहीन, सूखे भाग को ईधन के तौर पर जलाया जाता है। वह दुख-सुख में भी संतोषी बना रहता है और उबाल खा-खाकर संसार में धन्य-धन्य कहलाता है । सुखफल प्राप्त गुरुमुख की तरह वह गुड़-शक्कर, खांड़ मिश्री सबका आधार बनता है । प्रेम-प्याले को पीकर मरना ही वास्तव में गन्ने के मरकर भी जीने के समान है । गुरुमुखों के वचन रत्नों के समान अमूल्य (एवं मीठे) होते हैं।। १२ ।।

पउड़ी १३

(गुरु-दरिया)

गुरु ऐसा विशाल अपरिमित दरिया है जिसमें लाखों दरिया समा जाते हैं।

इकतु इकतु वाहड़ै कुदरति लख तरंग उठंदा ।
साइर सण रतनावली चारि पदारथु मीन तरंदा ।
इकतु लहिर न पुजनी कुदरति अंतु न अंत लहंदा ।
पिरम पिआले इक बूँद गुरमुख विरला अजरु जरंदा ।
अलख लखाइ न अलखु लखंदा ॥ १३ ॥

पउड़ी १४

(ईश्वर बेअंत है)

ब्रहमे थके बेद पड़ि इंद्र इंद्रासण राजु करंदे ।
महाँदेव अवधूत होइ दस अवतारी बिसनु भवंदे ।
सिध नाथ जो गीसराँ देवी देव न भेव लहंदे ।
तपे तपीसुर तीरथाँ जती सती देह दुख सहंदे ।
सेखनाग सभ राग मिलि सिमरणु करि निति गुण गावंदे ।

एक-एक दरिया में लाखों तीर्थस्थल हैं। एक-एक प्रवाह में प्रकृति द्वारा लाखों तरंगें उठाई जाती हैं । उस विशाल गुरु रूपी सागर में अनेकों रत्न एवं मछलियों की भाँति चारों पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम,मोक्ष) विचरण करते रहते हैं । ये सब पदार्थ उस गुरु (दरिया) की एक (वाक्य रूपी) लहर के तुल्य भी नहीं हैं। उसकी शक्ति की सीमा का रहस्य नहीं जाना जा सकता । प्रेम-प्याले की असह्य एक बूँद को भी कोई बिरला गुरुमुख ही धारण कर सकता है । वह गुरुमुख स्वयं उस अलक्ष्य प्रभु को देख तो लेता है पर यह रहस्य किसी को दिखाता नहीं ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(ईश्वर अनन्त है)

अनेकों ब्रह्मा वेद पढ़-पढ़कर और इन्द्र राज कर-कर थक गये। महादेव अवधूत बनकर और विष्णु दस अवतार धारण कर भटकते रहे। सिद्ध, नाथ, अनेकों योगेश्वर, देवी, देवगण उस प्रभु के रहस्य को नहीं जान सके। तपस्वी, तीर्थों पर जानेवाले व्यक्ति, यति एवं अनेकों सतियाँ (उस प्रभु को जानने के लिए) शरीर पर दुःख झेलते हैं। शेषनाग भी सदैव सब रागों के साथ मिलकर उसका स्मरण और गुणानुवाद करता है।

वडभागी गुरसिख जगि सबदु सुरति सतसंगि मिलंदे ।
गुरमुखि सुख फलु अलखु लखंदे ॥ १४ ॥

पउड़ी १५

(निम्रता दा गुण)

सिर तलवाइआ बिरखु है होइ सहस फल सुफल फलंदा ।
निरमलु नीरु वखाणीऐ सिरु नीवाँ नीवाणि चलंदा ।
सिरु उचा नीवें चरण गुरमुखि पैरी सीसु पवंदा ।
सभदू नीवी धरति होइ अनु धनु सभु सै सारु सहंदा ।
धंनु धरती ओहु थाउ धंनु गुरुसिख साधू पैरु धरंदा ।
चरण धूड़ि परधान करि संत वेद जसु गावि सुणंदा ।
वडभागी पाखाक लहंदा ॥ १५ ॥

पउड़ी १६

(गुरू नानकदेव पूरण गुरू है)

पूरा सतिगुरु जाणीऐ पूरे पूरा ठाटु बणाइआ ।
पूरे पूरा तोलु है घटै न वधै घटाइ वधाइआ ।

इस जगत में गुरुसिख ही सौभाग्यशाली हैं जो अपनी सुरति को शब्द में लीन कर सत्संगति को प्राप्त करते हैं (तथा प्रभु को पाते हैं)। गुरुमुख व्यक्ति ही सुखफल रूपी उस अलक्ष्य प्रभु का साक्षात्कार करते हैं ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(विनम्रता के गुण)

वृक्ष का सिर (मूल) धरती में रहता है अतः वह हजारों फलों से फला-फूला रहता है । नीचे की ओर बहने के कारण जल को निर्मल नीर कहते हैं। सिर ऊँचा होता है परन्तु चरण नीचे होते हैं, परन्तु फिर भी गुरुमुख के चरणों में सिर झुकता है । सबसे नीचे तो धरती है परन्तु वह अन्न, धन एवं सारे संसार का भार सह लेती है । वह धरती, वह स्थान धन्य है जहाँ गुरु, सिक्ख और साधुजन चरण रखते हैं। संतों की चरण-धूलि ही प्रधान हैं, ऐसा यशोगान वेद भी गाकर सुनाते हैं। कोई सौभाग्यशाली ही चरण-धूलि प्राप्त करता है ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(पूर्णगुरु)

पूर्णसद्गुरु को पूर्ण ऐश्वर्यशाली रूप में जाना जाता है। पूर्णगुरु का न्याय भी पूर्ण है जिसे घटाया-बढ़ाया नहीं जा सकता ।

पूरे पूरी मति है गोरसु पुछि न मता पकाइआ ।
पूरे पूरा मंतु है पूरा बचनु न टलै टलाइआ ।
सभे इछा पूरीआ साधसंगति मिलि पूरा पाइआ ।
वीह इकीह उलंघिकै पति पउड़ी चढ़ि निज घरि आइआ ।
पूरे पूरा होइ समाइआ ॥ १६ ॥

पउड़ी १७

(सतिगुर जागता है देव)

सिध साधिक मिलि जागदे करि सिवराती जाती मेला ।
महादेउ अउधूतु है कवलासणि आसणि रसकेला ।
गोरखु जोगी जागदा गुरि माछिंद्र धरी सु धरेला ।
सतिगुरु जागि जगाइदा साधसंगति मिलि अंम्रित वेला ।
निज घरि ताड़ी लाईअनु अनहद सबद पिरम रस खेला ।
आदि पुरख आदेसु है अलख निरंजन नेहु नवेला ।
चेले ते गुरु गुरु ते चेला ॥ १७ ॥

पूर्णगुरु की बुद्धि भी परिपूर्ण है और वह किसी अन्य से पूछकर मत नहीं बनाता। पूर्ण का मंत्र भी पूर्ण है और उसका पूर्ण वचन टाला नहीं जा सकता। सभी साधुसंगति से मिल उस पूर्णगुरु को प्राप्त करने पर सभी इच्छाएँ पूरी हो गई हैं । वह स्वयं सांसारिक गणनाओं को पार कर निज स्वरूप में स्थित हो गया है । वह स्वयं पूर्ण बनकर उस पूर्णप्रभु में लीन हो चुका है ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(सद्‌गुरु जागृत देव है)

सिद्ध, साधक एवं अन्य यात्री जागकर शिवरात्रि का उत्सव मनाते हैं । महादेव अवधूत है और ब्रह्मा कमल के आसन के आनन्द में लीन है। वह गोरख योगी भी जागता है जिसके गुरु मछेन्द्र ने एक सुन्दरी (रानी) को रख लिया था। सद्‌गुरु जागता है और साधुसंगति में भोर बेला में अन्यों को भी (मोह-निद्रा से) जगाता है। साधुसंगति में जीव अपने स्वरूप में ध्यान लगाते हैं और अनहद् शब्द के प्रेम-रस में लीन रहते हैं । आदिपुरुष गुरु का प्रणाम है जिसका अलक्ष्य निरंजन के साथ स्नेह एवं प्रेम बना हुआ है। चेले से ही जीव गुरु और गुरु से चेला बन जाता है (जब उसे प्रभु-साक्षात्कार हो जाता है) ।। १७ ।।

पउड़ी १८

(सच्च सच्चा है, कूड़ कूड़ा है)

ब्रहमा बिसनु महेसु त्रै सैसांरी भंडारी राजे ।
चारि वरन घरबारीआ जाति पाति माइआ मुहताजे ।
छिअ दरसन छिअ सासत्रा पाखंडि करम करनि देवाजे ।
संनिआसी दस नाम धरि जोगी बारह पंथ निवाजे ।
दहदिसि बारह वाट होइ पर घर मंगनि खाज अखाजे ।
चारि वरन गुरु सिख मिलि साधसंगति विचि अनहद वाजे ।
गुरमुखि वरन अवरन होइ दरसनु नाउँ पंथ सुख साजे ।
सचु सचा कूड़ि कूड़े पाजे ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(सतिगुर महिमा)

सतिगुर गुणी निधानु है गुण करि बखसै अवगुणिआरे ।
सतिगुरु पूरा वैदु है पंजे रोग असाध निवारे ।

पउड़ी १८

(सच्च सच्चा है, झूठ झूठा है)

ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों, क्रमशः संसारी अर्थात् संसार को रचनेवाले, भंडारी (संसार को पालनेवाले) और राजा (न्याय करने वाले) हैं। चारों वर्णों के घरबारी लोग जाति-पाँति तथा माया के मोहताज हैं । लोग छः शास्त्रों के षट्-दर्शन में लगे पाखंड-कर्म में लीन हैं । इसी प्रकार संन्यासी दस प्रकार के नाम धारण कर और योगी बारह पंथों में विचरण कर रहे हैं । ये सभी दसों दिशाओं और बारह मार्गों पर भटकते हुए खाद्य-अखाद्य स्वीकार कर रहे हैं । चारों वर्णों के गुरुसिक्ख मिलकर साधुसंगति में अनहद शब्द का वादन (श्रवण) करते हैं। गुरुमुख व्यक्ति अवर्ण भावना से सबको देखते हैं और उनका दर्शन नाम-दर्शन है जो सुखदायक है । सत्य सच्चा ही होता है और झूठे का सब कुछ झूठा ही होता है ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(सद्गुरु-महिमा)

सद्गुरु गुणों का भंडार है जो उपकार-भावना के अन्तर्गत अवगुणी लोगों को भी बख्श लेता है। सद्गुरु पूर्णवैद्य है जो पाँचों असाध्य रोगों (काम-क्रोध आदि) का निवारण कर देता है।

सुख सागरु गुरुदेउ है सुख दे मेलि लए दुखिआरे ।
गुर पूरा निरवैरु है निंदक दोखी बेमुख तारे ।
गुरु पूरा निरभउ सदा जनम मरण जम डरै उतारे ।
सतिगुरु पुरखु सुजाणु है वडे अजाण मुगध निसतारे ।
सतिगुरु आगू जाणीऐ बाह पकड़ि अंधले उधारे ।
माणु निमाणे सद बलिहारे ।। १९ ।।

पउड़ी २०

(सतिगुर)

सतिगुरु पारसि परसिऐ कंचनु करै मनूर मलीणा ।
सतिगुरु बावनु चंदनो वासु सुवासु करै लाखीणा ।
सतिगुरु पूरा पारिजातु सिंमलु सफलु करै संगि लीणा ।
मान सरोवरु सतिगुरू कागहु हंसु जलहु दुधु पीणा ।
गुर तीरथु दरीआउ है पसू परेत करै परबीणा ।

गुरु सुखों का सागर है जो सुखपूर्वक दुखियारों को (अपने से) मिला लेता है । पूर्णगुरु वैर-भावना से परे रहनेवाला है और निन्दक, ईर्ष्यालु, गुरु से विमुखों को भी तार देता है । पूर्णगुरु निर्भय है जो सदैव जन्म-मरण और यम के भय को उतार देता है । सद्गुरु वह सुजान पुरुष है जो बड़े-बड़े अनजान और मूर्खों का भी उद्धार कर देता है। सद्गुरु ऐसे नेता के रूप में जाना जाता है जो बाँह पकड़कर अंधों को पार लगा देता है । गौरवहीनों के गौरव उस सद्गुरु पर मैं सदा बलिहारी जाता हूँ । १९ ।।

पउड़ी २०

(सद्गुरु)

सद्गुरु ऐसा पारस है जिसके स्पर्श से लोहे की मैल भी सोना बन जाती है । सद्गुरु वह बावन चंदन है, जो अपनी गंध से सबको सुवासित कर लाखों गुना मूल्यवान बना देता है। सद्गुरु वह पूर्ण पारिजात है जो सेमल के वृक्ष को भी फलवान बना सफल कर देता है । सद्गुरु वह मानसरोवर है जो कौवे को हंस बना देता है और जल पीनेवाले को दुग्धाहारी बना देता है। गुरु वह तीर्थ रूपी नदी है जो पशु-प्रेत सबको (ज्ञानवान बना) प्रवीण कर देती है।

सतिगुर बंदीछोड़ु है जीवण मुकति करै ओडीणा ।
गुरमुखि मन अपतीजु पतीणा ।। २० ।।

पउड़ी २१

(सतिगुरु नानक देव जी)

सिध नाथ अवतार सभ गोसटि करि करि कंन फड़ाइआ ।
बाबर के बाबे मिले निवि निवि सभ नबाबु निवाइआ ।
पतिसाहा मिलि विछुड़े जोग भोग छडि चलितु रचाइआ ।
दीन दुनीआ दा पातिसाहु बेमुहताजु राजु घरि आइआ ।
कादर होइ कुदरति करे एह भि कुदरति साँगु बणाइआ ।
इकना जोड़ि विछोड़िदा चिरी विछुंने आणि मिलाइआ ।
साधसंगति विचि अलखु लखाइआ ।। २१ ।।

पउड़ी २२

(सतिगुरु नानक देव जी)

सतिगुरु पूरा साहु है त्रिभवण जगु तिस दा वणजारा ।
रतन पदारथ बेसुमार भाउ भगति लख भरे भंडारा ।

सद्‌गुरु बंधनों से छुटकारा दिलानेवाला है और उदासीन लोगों को भी जीवन-मुक्त कर देनेवाला है । गुरु की ओर उन्मुख व्यक्ति का अनाश्वस्त मन भी आश्वस्त हो जाता है ।। २० ।।

पउड़ी २१

(सद्‌गुरु नानकदेव जी)

सिद्धों, नाथों और अवतारों सबने परस्पर वाद-विवाद कर-करके एक-दूसरे के कान फाड़ डाले। बाबर के (सेवक) बाबा नानक से मिले तो उसने अपनी विनम्रता से सबको झुका लिया । बाबा नानक बादशाहों से भी मिले और योग-भोग दोनों से अतीत होकर एक विचित्र ही चरित्र किया। रचना की दीन-दुनिया का बेमोहताज बादशाह इस संसार में विचरण करने लगा। वह स्वयं की कर्त्ता बनकर रचना करने का स्वाँग भरता है। वह कइयों को मिलाता है, बिछुड़ाता और कई देर से बिछुड़ों हुओं को फिर मिला देता है। वह साधुसंगति में ही उस अलक्ष्य प्रभु का साक्षात्कार कर देता है ।। २१ ।।

पउड़ी २२

(सद्‌गुरु नानकदेव जी)

सद्‌गुरु पूर्ण साहूकार है और तीनों भुवनों के लोग उसी से लेन-देन(व्यापार) के इच्छुक हैं। उसके पास प्रेमाभक्ति रूपी अनन्त रत्न-पदार्थों का भंडार है।

पारिजात लख बाग विचि कामधेणु दे वग हजारा ।
लखमीआँ लख गोलीआँ पारस दे परबतु अपारा ।
लख अंम्रित लख इंद्र लै हुड़ सकै छिड़कनि दरबारा ।
सूरज चंद चराग लख रिधि सिधि निधि बोहल अंबारा ।
सभे वंड वंडि दितीओनु भाउ भगति करि सचु पिआरा ।
भगति वछलु सतिगुरु निरंकारा ॥ २२ ॥

पउड़ी २३

(चौदाँ रतन)

खीर समुंदु विरोलि कै कढि रतन चउदह वंडि लीते ।
मणि लखमी पारिजात संखु सारंग धणखु बिसनु वसि कीते ।
कामधेणु ते अपछराँ ऐरापति इंद्रासणि सीते ।
कालकूट ते अरध चंद महाँदेव मसतकि धरि पीते ।
घोड़ा मिलिआ सूरजै मदु अंम्रितु देव दानव रीते ।

उसके उद्यान में लाखों पारिजात वृक्ष और कामधेनुओं के हजारों झुंड हैं। उसके पास लाखों लक्ष्मियाँ सेविकाओं के रूप में हैं और पारस पत्थरों के अनेकों पर्वत हैं। लाखों इन्द्र लाखों प्रकार के अमृत लेकर उसके दरबार में छिड़काव करते है। सूरज-चाँद जैसे लाखों चिराग हैं और ऋद्धियों-सिद्धियों के अपार अंबार लगे हुए हैं। जिन्हें सत्य से प्रेम है और जो प्रेमाभक्ति में लीन हैं, उन्हें सद्‌गुरु (परमात्मा) ने ये सभी भंडार बाँट दिये हैं । वह सद्‌गुरु जो स्वयं परमात्मा है, भक्तवत्सल है ।। २२ ।।

पउड़ी २३

(चौदह रत्न)

क्षीरसागर को बिलोकर चौदह रत्न निकालकर बाँट लिये गये। विष्णु ने मणि,लक्ष्मी, पारिजात, शंख, सारंग धनुष अपने वश में कर लिये अर्थात ये रत्न स्वयं ले लिये। कामधेनु, अप्सराएँ एवं ऐरावत हाथी इन्द्रासन के साथ बाँध दिये गये अर्थात् इन्द्र को दे दिये गये। महादेव ने कालकूट विष पिया और मस्तक पर अर्धचन्द्र धारण किया। घोड़ा सूर्य को मिला एवं शराब को देव-दानवों ने मिलकर खाली कर दिया।

पारिजात लख बाग विचि कामधेणु दे वग हजारा ।
लखमीआँ लख गोलीआँ पारस दे परबतु अपारा ।
लख अंम्रित लख इंद्र लै हुड़ सकै छिड़कनि दरबारा ।
सूरज चंद चराग लख रिधि सिधि निधि बोहल अंबारा ।
सभे वंड वंडि दितीओनु भाउ भगति करि सचु पिआरा ।
भगति वछलु सतिगुरु निरंकारा ॥ २२ ॥

पउड़ी २३

(चौदाँ रतन)

खीर समुंदु विरोलि कै कढि रतन चउदह वंडि लीते ।
मणि लखमी पारिजात संखु सारंग धणखु बिसनु वसि कीते ।
कामधेणु ते अपछराँ ऐरापति इंद्रासणि सीते ।
कालकूट ते अरध चंद महाँदेव मसतकि धरि पीते ।

धन्वन्तरि वैद्यकी करता था पर तक्षक द्वारा डसे जाने पर उसकी मति भी उलट गई। गुरु-उपदेश रूपी समुद्र में भी अगणित अमूल्य रत्न-पदार्थ विद्यमान हैं । सिक्खों की सच्ची प्रति उस सद्‌गुरु (परमात्मा) के साथ ही है ।। २३ ।।

पउड़ी २४

(गुरु हरगोबिंद जी के बारे में तथ्य और दर्शन के लिए सिक्खों के उपालम्भ)

(पहले गुरु यह माना करते थे कि) धर्मशाला बनाकर उपदेश देने के लिए एक स्थान पर टिककर बैठा जाता है पर यह (गुरु हरगोबिंद) तो एक स्थान पर टिकता ही नहीं । पहले तो बादशाह तक गुरु के घर तक चलकर आते थे पर अब यह गुरु तो बादशाह का भेजा हुआ किले में (ग्वालियर के किले में) जा बैठा है । दर्शनों के लिए आनेवाली संगत (जनता) इसे महल में नहीं देख पाती । यह डरता और किसी को डराता नहीं पर फिर भी भाग-दौड़ लगाए ही रहता है । पहले गुरु आसन पर बैठकर संतुष्टि का उपदेश देते थे पर यह गुरु कुत्तों को पालता है और शिकार खेलता है। पहले गुरुवाणी सुनते थे पर यह न तो वाणी का उच्चारण करता है और न ही (नियमित रूप से) वाणी सुनता-सुनाता है। यह अपने धर्मावलम्बी सेवक को तो पास नहीं रखता अपितु जो दुष्ट और ईर्ष्यालु हैं उन्हें पास रखता है। गुरु हरगोबिंद ने पैंदेखान को अपने पास रखा था।

घोड़ा मिलिआ सूरजै मदु अंम्रितु देव दानव रीते ।
करे धनंतरु वैदगी डसिआ तच्छकि मति बिपरीते ।
गुर उपदेसु अमोलका रतन पदारथ निधि अगणीते ।
सतिगुर सिखाँ सचु परीते ।। २३ ।।

पउड़ी २४

(गुरू हरिगोबिंद साहिब जी बारे हक़ीक़त)

धरमसाल करि बहीदा इकत थाउँ न टिकै टिकाइआ ।
पातिसाह घरि आवदे गड़ि चड़िआ पातिसाह चड़ाइआ ।
उमति महलु न पावदी नठा फिरै न डरै डराइआ ।
मंजी बहि संतोखदा कुते रखि सिकारु खिलाइआ ।
बाणी करि सुणि गाँवदा कथै न सुणै न गावि सुणाइआ ।

परन्तु सत्य छिपता नहीं, तभी तो गुरु-चरणों पर सिक्खों का मन लोभी भँवरा बना हुआ है। गुरु हरगोबिंद ने असह्य पदार्थ को सहन कर धारण किया है पर फिर भी अपने आपको प्रकट नहीं किया ।। २४ ।।

पउड़ी २५

(प्रेम-रस कठिनाई से प्राप्त होता है)

खेती के चारों और जैसे झाड़ियों की मेड़ एवं बाग के चारों ओर बबूल के वृक्ष (उसकी रक्षा करने के लिए) होते हैं । चंदन-वृक्ष के चारों ओर साँप लिपटे रहते हैं और (कोष) दरवाजे पर ताला भी होता है और कुत्ता भी जागता रहता है। फूल के पास काँटे जाने जाते हैं और फाग के महीने में शरारती लोगों के बीच कोई एक दो सयाने होश वाले बचे रहते हैं । जैसे पारस पत्थरों से घिरा रहता है और सुन्दर मणि काले नाग के मस्तक में रहती है। रत्नों की माला में भी मूल्यवान रत्न के दोनों और काँच उसकी रक्षा के लिए शोभायमान रहता है और हाथी प्रेम के कच्चे धागे से भी बँधा रहता है । कृष्ण की भक्तवत्सलता जैसी महान भक्ति-भावना भी विदुर के साग और रोटी से घिरी रहती है और ऐसी प्रेम-भावना से ही घर की भूख जाती रहती है । वैसे ही गुरु का सिक्ख भी गुरु के चरण-कमलों का भँवरा बने रहे और साधुसंगति में सौभाग्य प्राप्त करे और मन में अच्छी तरह जान ले कि प्रभु-प्रेम का प्याला भी उपर्युक्त पदार्थों की तरह कड़ी मेहनत से प्राप्त होता है ।। २५ ।।

पउड़ी २६

(गुरू गोर बिच्च मुरदा मुरीद)

भवजल अंदरि मानसरु सत समुंदी गहिर गंभीरा ।
ना पतणु ना पातणी पारावारु न अंतु न चीरा ।
ना बेड़ी ना तुलहड़ा वंझी हाथि न धीरक धीरा ।
होरु न कोई अपड़ै हंस चुगंदे मोती हीरा ।
सतिगुरु सांगि वरतदा पिंडु वसाइआ फेरि अहीरा ।
चंदु अमावस राति जिउ अलखु न लखीऐ मछुली नीरा ।
मुए मुरीद गोरि गुर पीरा ।। २६ ।।

पउड़ी २७

(गुरसिक्खाँ दी वंस)

मछी दे परवार वाँगि जीवणि मरणि न विसरै पाणी ।
जिउ परवारु पतंग दा दीपक बाझु न होर सु जाणी ।

पउड़ी २६

(गुरु की समाधि में लीन मृत शिष्य)

संसार के सातों समुद्रों से भी गहरा और गम्भीर भवसागर रूपी मानसरोवर है जिसका न तो कोई घाट है, न केवट है और जिसकी सीमा का कोई अन्त नहीं है। उसको पार करने के लिए न तो नाव है और न बाँसों का कोई बेड़ा है। वहाँ कोई धैर्य बँधाने वाला भी नहीं है। वहाँ अन्य कोई पहुँच नहीं सकता केवल हंस ही वहाँ मोती चुगते हैं। सद्गुरु अनेकों प्रकार के कौतुक करता है एवं बरबाद हुए स्थानों को भी फिर बसाने का काम करता है । वह कभी-कभी अमावस की रात में चाँद की तरह अथवा पानी में मछली की तरह छिप जाता है। जो अहम्-भाव के प्रति मृत हो चुके हैं वे ही गुरु रूपी महान् चिरसमाधि में लीन होते हैं ।। २६ ।।

पउड़ी २७

(गुरुसिक्खों का वंश)

(गुरुसिक्ख) मछली के परिवार की तरह है जिसे जीवित या मृत किसी भी रूप में पानी विस्मृत नहीं होता । ऐसे ही पतंगे के परिवार को भी दीपक की लौ के अतिरिक्त अन्य कुछ भी सुझाई नहीं पड़ता ।

जिउ जल कवलु पिआरु है भवर कवल कुल प्रीति वखाणी ।
बूँद बबीहे मिरग नाद कोइल जिउ फल अंबि लुभाणी ।
मान सरोवरु हंसुला ओहु अमोलक रतना खाणी ।
चकवी सूरज हेतु है चंद चकोरै चोज विडाणी ।
गुरसिख वंसी परम हंस सतिगुर सहजि सरोवरु जाणी ।
मुरगाई नीसाणु नीसाणी ॥ २७ ॥

पउड़ी २८

(गुरसिक्खाँ दी वंस)

कछू अंडा सेंवदा जल बाहरि धरि धिआनु धरंदा ।
कूँज करेंदी सिमरणो पूरण बचा होइ उडंदा ।
कुकड़ी बचा पालदी मुरगाई नो जाइ मिलंदा ।
कोइल पालै कावणी लोहू लोहू रलै रलंदा ।
चकवी अते चकोर कुल सिव शकती मिलि मेलु करंदा ।

जैसे जल और कमल का परस्पर प्यार है एवं भँवरे और कमल की प्रीति के बारे में भी बताया जाता है; जैसे पपीहे को स्वाति नक्षत्र की बूँद, मृग को नाद एवं कोयल को आम के फल के प्रति आसक्ति होती है; मानसरोवर पर हंसों के लिए वही रत्नों की खान है; चकवी को सूर्य से प्रेम है और चाँद से चकोर के प्रेम के कौतुक की प्रशंसा की जाती है, वैसे ही गुरु का सिक्ख भी परमहंस के वंश में से होने के कारण सद्गुरु को ही सहजभाव का सरोवर मानता है और मुरगाबी की तरह भवजल के समक्ष जाता है (तथा बिना पंखों को भिगोए उसे पार कर लेता है)।। २७।।

पउड़ी २८

(गुरुसिक्खों का वंश)

कछुआ जल के बाहर अंडे सेता है और उसका ध्यान धारण कर ही बच्चों को पाल लेता है। क्रौंच पक्षी का सुरति स्मरण से बच्चा पूर्ण हो आकाश में ही उड़ने लगता है। मुरगाबी का बच्चा मुर्गी पालती है पर अन्ततः वह मुरगाबी से जा मिलता है। कोयल के बच्चे को मादा कौआ पालता है पर अन्त में खून फिर अपने खून से जा मिलता है । चकवी और चकोरी भी माया-प्रपंच में अन्ततः अपने-अपने इष्ट से मिल जाते हैं।

चंद सूरजु से जाणीअनि छिअ रुति बारह माह दिसंदा ।
गुरमुखि मेला सच दा कवीआँ कवल भवरु विगसंदा ।
गुरमुखि सुख फलु अलखु लखंदा ॥ २८ ॥

पउड़ी २९

(दा़वा कोका)

पारसवंसी होइ कै सभना धातू मेलि मिलंदा ।
चंदन वासु सुभाउ है अफल सफल विचि वासु धरंदा ।
लख तरंगी गंग होइ नदीआ नाले गंग होवंदा ।
दावा दुधु पीआलिआ पातिसाहा कोका भावंदा ।
लूण खाइ पातिसाह दा कोका चाकर होइ वलंदा ।
सतिगुर वंसी परम हंसु गुरु सिख हंस वंसु निबहंदा ।
पिअ दादे दे राहि चलंदा ॥ २९ ॥

नक्षत्रों में चाँद और सूरज वे ही माने जाते हैं। छः ऋतुओं और बारहों महीने दिखाई देते रहते हैं । जैसे चाँद-सूरज को देखकर कवि, कमल और भँवरे प्रसन्न हो उठते हैं, उसी प्रकार गुरुमुख भी सत्य के साक्षात्कार से प्रफुल्लित हो उठते हैं एवं अलक्ष्य सुखफल को प्राप्त करते हैं ।। २८ ।।

पउड़ी २९

(दावा कोका)

पारसवंशी होकर पारस पत्थर सभी धातु से मिलता है (और उन्हें सोना बना देता है)। चन्दन की गंध का स्वभाव कि वह अफल एवं सफल सभी वृक्षों में सुगंधि भर देता है। लाखों तरंगों से गंगा बनती है और नदी-नाले सभी गंगा से मिलकर गंगा बन जाते हैं। कोका (धाय-पुत्र) बादशाह का दूध पिलानेवाला सेवक बादशाह पर अपना अधिकार जताता है और बादशाह को भी वह प्रिय लगता है। कोका भी बादशाह का नमक खाकर सेवक के रूप में उसके चारों ओर चक्कर लगाता है। सद्‌गुरु परमहंसों के वंश का है और गुरु के सिक्ख भी हंस के वंश की परम्परा निभाते हैं और दोनों ही बाप-दादा के बताए रास्ते का अनुसरण करते हैं ।। २९ ।।

पउड़ी ३०

(सतिगुरू जी दी परख विच्च सिक्ख पूरे उतरदे हन)

जिउ लख तारे चमकदे नेड़ि न दिसै राति अनेरे ।
सूरजु बदल छाइआ राति न पुजै दिहसै फेरे ।
जे गुर साँगि वरतदा दुबिधा चिति न सिखाँ केरे ।
छिअ रुती इकु सुझु है घुघू सुझ न सुझै हेरे ।
चंदमुखी सूरजमुखी कवलै भवर मिलनि चउफेरे ।
सिव सकती नो लंघि कै साधसंगति जाइ मिलनि सवेरे ।
पैरी पवणा भले भलेरे ॥ ३० ॥

पउड़ी ३१

(दुनिआवी पातशाह ते सचे पातिशाह विच्च फरक)

दुनीआवा पातिसाहु होइ देइ मरै पुतै पातिसाही ।
दोही फेरै आपणी हुकमी बंदे सभ सिपाही ।

पउड़ी ३०

(सद्‌गुरु की परीक्षा में सिक्ख पूरे उतरते हैं)

लाखों तारागणों के चमकने के बावजूद रात के अँधेरे में पास की वस्तु भी नजर नहीं आती । सूर्य के बादल की छाया में आ जाने पर भी बादल दिन को रात के तुल्य नहीं बना सकते । यदि गुरु कोई कौतुक करता भी है तो भी सिक्खों के मन में कोई दुबिधा पैदा नहीं होती । छः ऋतुओं में एक ही सूर्य विराजमान रहता है पर उल्लू को वह फिर भी दिखायी नहीं देता । यदि सूर्य को देखकर खिल उठनेवाले कमल चन्द्रमुखी होकर रात में खिल उठें तो भँवरे फिर भी उनसे आ मिलेंगे (क्योंकि वे कमल को चाहते हैं न कि चाँद-सूरज को) । (गुरु के सिक्ख) माया-प्रपंचों को पार कर भोर होते ही साधुसंगति में आ मिलते हैं और वहाँ पहुँचकर सबको (अच्छे-बुरे सबकी) चरण-वंदना करते हैं ।। ३० ।।

पउड़ी ३१

(सांसारिक बादशाह और सच्चे बादशाह में अन्तर)

जो दुनियावी बादशाह होता है वह अपने बेटे को राज्य देकर मरता है। वह संसार में अपना प्रभुत्व स्थापित करता है और सभी सिपाही उसके आज्ञाकारी होते हैं।

कुतबा जाइ पड़ाइदा काजी मुलाँ करै उगाही ।
टकसालै सिका पवै हुकमै विचि सुपेदी सिआही ।
मालु मुलकु अपणाइदा तखत बखत चढ़ि बेपरवाही ।
बाबाणै घरि चाल है गुरमुखि गाडी राहु निबाही ।
इक दोही टकसाल इकु कुतबा तखतु सचा दरगाही ।
गुरमुखि सुख फलु दादि इलाही ॥ ३१ ॥

पउड़ी ३२

(गुरू तों बागी दी दुरदशा)

जे को आपु गणाइ कै पातिसाहाँ ते आकी होवै ।
हुइ कतलामु हरामखोरु काठु न खफणु चिता न टोवै ।
टकसालहु बाहरि घड़ै खोटैहारा जनमु विगोवै ।
लिबासी फुरमाणु लिखि होइ नुकसानी अंझू रोवै ।

मस्जिद में जाकर वह खुत्बः पढ़वाता है और क़ाजी-मुल्ला उसी के लिए गवाही देते हैं । टकसाल में से उसी का निकला सिक्का चलता है और काला-सफेद अर्थात् बुरा-भला सब उसी की आज्ञा में होता है । वह सारे मुल्क के धन-माल को अपने वश में करता है और बिना किसी की परवाह किये तख़्त पर बैठता है । बाबा के घर अर्थात् गुरु के घर की रीति यह है कि पूर्ववर्ती गुरुजनों के बताये राजमार्ग पर ही चला जाता है । इस मार्ग में एक अकालपुरुष परमात्मा की दुहाई दी जाती है; यहाँ की टकसाल (साधु-संगति) भी एक है; यहाँ का खुत्बः (नानक वाणी नाम की) भी एक ही है और इसका सच्चा तख़्त (आध्यात्मिक गद्दी) भी एक ही है। प्रभु का न्याय भी ऐसा है कि गुरुमुखों को यह सुखफल परमात्मा की ओर से प्राप्त होता है ।। ३१ ।।

पउड़ी ३२

(गुरु से विमुख की दुर्दशा)

यदि कोई अपने आपको जताकर बादशाह के विरोध में खड़ा हो जाए तो वह क़त्ल कर दिया जाता है और उसे हरामखोर समझकर चिता, कफ़न, लकड़ी, क़ब्र आदि कुछ भी नसीब नहीं होता। टकसाल से बाहर जो नकली सिक्के बनाता है वह मानों अपना जन्म व्यर्थ गँवा रहा है (क्योंकि वह पकड़ जाएगा और उसे सजा अवश्य मिलेगी)। झूठे आदेश देनेवाला पकड़े जाने पर आँखों में आँसू भर-भरकर रोता है।

गिदड़ दी करि साहिबी बोलि कुबोलु न अबिचलु होवै ।
मुहि कालै गदहि चढ़ै राउ पड़े वी भरिआ धोवै ।
दूजै भाइ कुथाइ खलोवै ।। ३२ ।।

पउड़ी ३३

(गुरू-बंसावली दी हउमै)

बाल जती है सिरीचंदु बाबाणा देहुरा बणाइआ ।
लखमीदासहु धरमचंद पोता हुइ कै आपु गणाइआ ।
मंजी दासु बहालिआ दाता सिधासण सिखि आइआ ।
मोहणु कमला होइआ चउबारा मोहरी मनाइआ ।
मीणा होआ पिरथीआ करि करि तोंढक बरलु चलाइआ ।
महादेउ अहंमेउ करि करि बेमुखु पुताँ भउकाइआ ।
चंदन वासु न वास बोहाइआ ।। ३३ ।।

वह गीदड़ की तरह झूठा शेर बनकर हाकिम तो बन जाता है पर गलत बोलने से अर्थात् अपने असली आवाज निकालने से बाज नहीं आ सकता । ऐसे ही झूठा व्यक्ति पकड़े जाने पर गधे पर चढ़ाया जाता है और सिर पर धूल डाली जाती है और वह आँसुओं से शरीर को धोता है। द्वैतभाव में लीन व्यक्ति इसी प्रकार ग़लत जगह पर पहुँच जाता है ।। ३२ ।।

पउड़ी ३३

(गुरु-वंश का अहम्)

सिरीचंद (गुरु नानक का बड़ा पुत्र) बाल यति है जिसने बाबा नानक का मंदिर बनवाया है । लक्ष्मीदास (गुरु नानक का दूसरा पुत्र) के पुत्र धर्मचन्द ने भी अपनी अहम्-भावना को जताया है। गुरु अंगद के पुत्र दासू को गद्दी पर बैठा दिया गया और दूसरा पुत्र दातू भी सिद्धासन लगाकर बैठ गया अर्थात् गुरु अंगद के दोनों पुत्र गुरु अमरदास के समय में गुरु की गद्दी के लिए अयोग्य होने पर भी "संगत" (भक्तजनों) को अपनी ओर खींचने का प्रयास करते रहे । मोहन (गुर अमरदास का पुत्र) विक्षिप्त हो गया और मोहरी (दूसरा पुत्र)चौबारे में बैठ गया और सेवा करने-कराने लगा। प्रिथीचन्द "मीणा" अर्थात् कपटी निकला और उसने अपने टेढ़ेपन का प्रयोग करते हुए अपने पागलपन का प्रचार किया (प्रिथीचन्द गुर रामदास का बड़ा पुत्र था)। महादेव (गुरु रामदास का अन्य पुत्र) अहंकारी था जिसे पुत्रों ने गुरु-विमुख कर इधर-उधर भटकाया । ये सभी बाँस के समान थे जो चंदन-गुरु के पास रहते हुए भी सुगंधित न हो सके ।। ३३ ।।

पउड़ी ३४

(गुरिआई दी पीहड़ी)

बाबाणी पीड़ी चली गुर चेले परचा परचाइआ ।
गुरु अंगदु गुरु अंगु ते गुरु चेला चेला गुरु भाइआ ।
अमरदासु गुर अंगदहु सतिगुरु ते सतिगुरू सदाइआ ।
गुरु अमरहु गुरु रामदासु गुर सेवा गुरु होइ समाइआ ।
रामदासहु अरजणु गुरू अंम्रित ब्रिख अंम्रित फलु लाइआ ।
हरिगोविंदु गुरु अरजनहु आदि पुरख आदेसु कराइआ ।
सुझै सुझ न लुकै लुकाइआ ॥ ३४ ॥

पउड़ी ३५

(कुदरत वरणन)

इक कवाउ पसाउ करि ओअंकारि कीआ पासारा ।
कुदरति अतुल न तोलीऐ तुलि न तोल न तोलणहारा ।

पउड़ी ३४

(गुरुत्व की पीढ़ी)

बाबा नानक का वंश (सम्प्रदाय) आगे बढ़ा जिसमें गुरु-शिष्य का प्रेम-प्रचार भी आगे बढ़ा । गुरु अंगद गुरु (नानक) के अंग से पैदा हुआ और चेला गुरु तथा गुरु चेला बन गया । गुरु अंगद से गुरु अमरदास हुए जो सद्गुरु अंगद द्वारा सद्गुरु के रूप में जाने गये । गुरु अमरदास से गुरु रामदास हुए जो गुरु की सेवा करने के फलस्वरूप गुरु में ही लीन हो गये अर्थात् दोनों में तनिक भी भेदभाव न रहा। गुरु रामदास से गुरु अरजन ऐसे उत्पन्न हुए जैसे अमृत वृक्ष से अमृत-फल पैदा होता है । फिर गुरु अरजन से गुरु हरगोबिंद पैदा हुए और इन्होंने आदिपुरुष परमात्मा के आदेश का ही प्रचार किया । सूर्य तो दिखाई देता ही है, वह किसी का छिपाया छिपता नहीं ।। ३४ ।।

पउड़ी ३५

(परमात्मा की शक्ति का वर्णन)

ॐकार (परमात्मा) ने एक ही ध्वनि से सारे संसार का प्रसार कर दिया। उसकी सृष्टि-लीला अनुपम् एवं अतुलनीय है। उसे जाँचने-परखनेवाला कोई नहीं है।

सिरि सिरि लेखु अलेख दा दाति जोति वडिआई कारा ।
लेखु अलखु न लखीऐ मसु न लेखणि लिखणिहारा ।
राग नाद अनहदु धुनी ओअंकारु न गावणहारा ।
खाणी बाणी जीअ जंतु नाव थाव अणगणत अपारा ।
इकु कवाउ अमाउ है केवडु वडा सिरजणहारा ।
साधसंगति सतिगुर निरंकारा ॥ ३५ ॥ २६ ॥ छवीह ॥

प्रत्येक जीव के सिर पर उस अलेख प्रभु द्वारा लेख लिख दिये गये हैं । ज्योति, बड़प्पन एवं कर्म सब उसी की कृपा है। उसका लेख भी अलक्ष्य है, वह लिखनेवाला और उसकी स्याही भी अदृश्य है । रागों और विभिन्न नादों की ध्वनियाँ निरंतर चल रही हैं पर फिर भी उस ॐकार का गुणानुवाद नहीं हो सकता । इस सृष्टि में खाने, वाणियाँ, जीव-जन्तु, नाम-स्थान अनन्त हैं जो गिने नहीं जा सकते । उसका एक स्वर भी अपरिमित है, फिर वह रचयिता कितना बड़ा है, क्या कहा जा सकता है । वह सद्‌गुरु निराकार प्रभु साधुसंगति में ही अवस्थित एवं प्राप्य है ।। ३५ ।। २६ ।।

* * *

वार २७

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।।

पउड़ी १

(लेला मजनूँ आदि प्रेमी)

लेलै मजनूँ आसकी चहु चकी जाती ।
सोरठि बीजा गावीऐ जसु सुघड़ा वाती ।
ससी पुंनूँ दोसती हुइ जाति अजाती ।
मेहीवाल नो सोहणी नै तरदी राती ।
राँझा हीर वखाणीऐ ओहु पिरम पराती ।
पीर मुरीदा पिरहड़ी गावंनि परभाती ।। १ ।।

पउड़ी २

(मुरीदाँ दी प्रीति)

अमली अमलु न छडनी हुइ बहनि इकठे ।
जिउ जूए जूआरीआ लगि दाव उपठे ।

पउड़ी १

(लैला-मजनू आदि प्रेमी)

लैला-मजनू का प्रेम चारों दिशाओं में जाना जाता है। सोरठि (सौराष्ट्र की एक राजपूज राजकन्या) का प्रेम बीजा नामक युवक से था और यह कहानी सभी सुजानों की जुबार पर है । सस्सी और पुनूँ अलग-अलग जातियों के (प्रेमी युगल) थे पर फिर भी दोनों में प्रेम था । महिवाल के लिए सोहणी रात में नदी पार किया करती थी । हीर-राँझा कहे जानेवाले (दो प्रेमी भी) एक-दूसरे के प्रेम में लीन हो गये । ऐसी ही प्रीति गुरु-शिष्यों की लगी हुई है और भोर में ही वे गुरु का यशोगान प्रारम्भ कर देते हैं ।। १।।

पउड़ी २

(शिष्यों की प्रीति)

नशेड़ी नशा नहीं छोड़ते और नशा पीने के लिए इकट्ठे हो बैठते है। जुआरी की भी जुए में प्रीति होती है और उसी आदत के वशीभूत वे उलटे दाँव भी लगा देते हैं।

चोरी चोर न पलरहि दुख सहनि गरठे ।
रहनि न गणिका वाड़िअहु वेकरमी लठे ।
पापी पापु कमावदे होइ फिरदे नठे ।
पीर मुरीदा पिरहड़ी सभ पाप पणठे ॥ २ ॥

पउड़ी ३

(मुरीदाँ दी प्रीति)

भवरै वासु विणासु है फिरदा फुलवाड़ी ।
जलै पतंगु निसंगु होइ करि अखि उघाड़ी ।
मिरग नादि बिसमादु होइ फिरदा उजाड़ी ।
कुंडी फाथे मछ जिउ रसि जीभ विगाड़ी ।
हाथणि हाथी फाहिआ दुख सहै दिहाड़ी ।
पीर मुरीदा पिरहड़ी लाइ निज घरि ताड़ी ॥ ३ ॥

चोर चोरी नहीं छोड़ते और दुख सहन करते रहते हैं। कुकर्मी व्यक्ति भी वेश्या के घर की ओर जाने से बाज नहीं आते। पापी व्यक्ति पाप कमाते हैं और भागते दौड़ते ही रहते हैं। इसी प्रकार पीर (गुरु) के साथ मुरीदों (सिक्खों) की प्रीति लगी हुई है और इस प्रकार उनके सब पाप दूर हो जाते हैं ।। २।।

पउड़ी ३

(शिष्यों की प्रीति)

भँवरा फुलवाड़ी में घूमता सुगंध लेता हुआ ही विनष्ट हो जाता है। पतंग निर्भय होकर दीपक पर जल जाता है पर अपनी दृष्टि उसी की ओर लगाए रहता है। मृगनाद पर रीझकर उजाड़ जंगलों में घूमता रहता है। जीभ के रस के वशीभूत हो मछली कुंडी में फँस जाती है। हाथी हथिनी के कारण कामासक्त फँस जाता है और सारे (बाकी के) दिन दुःख सहारता है। सिक्ख भी गुरु के साथ ऐसी ही प्रीति लगाकर निज स्वरूप में स्थित रहते हैं ।। ३।।

पउड़ी ४

(गुरसिक्ख प्रीति)

चंद चकोर परीत है लाइ तार निहाले ।
चकवी सूरज हेत है मिलि होनि सुखाले ।
नेहु कवल जल जाणीऐ खिड़ि मुह वेखाले ।
मोर बबीहे बोलदे वेखि बदल काले ।
नारि भतार पिआरु है माँ पुत सम्हाले ।
पीर मुरीदा पिरहड़ी ओहु निबहै नाले ॥ ४ ॥

पउड़ी ५

(पीर मुरीद दी प्रीति)

रूपै कामै दोसती जग अंदरि जाणी ।
भुखै सादै गंढु है ओहु विरती हाणी ।
घुलि मिलि मिचलि लबि मालि इतु भरमि भुलाणी ।
ऊघै सउड़ि पलंघ जिउ सभि रैणि विहाणी ।

पउड़ी ४

(गुरु-सिक्ख की प्रीति)

चन्द्रमा से चकोर की प्रीति है, वह उसे एकटक देखता है। चकवी का सूर्य से प्रेम है और वह सूर्य के प्रकाश में अपने प्रिय से मिलकर सुखी हो जाती है। कमल और जल का भी स्नेह है। और वह उसे अपना खिला हुआ मुख दिखता है। पपीहे और मोर भी काले बादलों को देखकर बोलने लग जाते हैं। स्त्री का पति से प्यार है और माँ पुत्र को सँभालती है। इसी प्रकार पीर और मुरीद अर्थात् गुरु और शिष्य की प्रीति है जो अंत तक चलती है ।। ४ ।।

पउड़ी ५

(गुरु-शिष्य की प्रीति)

रूप और काम की मित्रता तो सारे संसार में जानी जाती है । भूख और स्वाद में परस्पर मेल है, यह भी व्यावहारिक बात है । लोभ और सम्पत्ति भी आपस में घुले-मिले रहते और भ्रम में भूले रहते है । ऊँघते हुए व्यक्ति को छोटा-सा पलंग भी सुखपूर्वक रात बिताने का साधन है ।

सुहणे सभ रंग माणीअनि करि चोज विडाणी ।
पीर मुरीदाँ पिरहड़ी ओहु अकथ कहाणी ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(पीर मुरीद दी प्रीति)

मान सरोवर हंसला खाइ माणक मोती ।
कोइल अंब परीति है मिल बोल सरोती ।
चंदन वासु वणासुपति होइ पास खलोती ।
लोहा पारसि भेटिऐ होइ कंचन जोती ।
नदीआ नाले गंग मिलि होनि छोत अछोती ।
पीर मुरीदाँ पिरहड़ी इह खेप सओती ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(सच्चा साच)

साहुरु पीहरु पख त्रै घरु नानेहाला ।
सहुरा ससु वखाणीऐ साली तै साला ।

सपने में सभी प्रकार के रंगों का आनन्द कौतुकपूर्वक लिया जाता है । इसी प्रकार गुरु और शिष्य की मित्रता की कहानी भी अकथनीय है ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(पीर-मुरीद का प्यार)

मानसरोवर का हंस माणिक और मोती ही चुगता है। कोयल और आम के पेड़ में प्रीति है वह वहीं पर सुन्दर बोली में बोलती है। चन्दन की सारी वनस्पति से दोस्ती है और जो भी उसके पास होता है सुवासित हो उठता है। लोहा पारस के साथ मिलते ही कंचन हो प्रकाशमान हो उठता है। अछूत(गंदे) नदी-नाले भी गंगा के साथ मिलकर पवित्र हो जाते हैं। पीर और मुरीद का परस्पर प्रेम भी ऐसा ही है और यह उन्हें सस्ता सौदा लगता है।। ६ ।।

पउड़ी ७

(सच्चा सम्बन्ध)

ससुराल, मायका और ननिहाल—ये तीनों पक्ष (संबंधी) माने जाते हैं। इसी तरह ससुर,सास, साली, साला आदि को जाना जाता है।

मा पिउ भैणा भाइरा परवारु दुराला ।
नाना नानी मासीआ मामे जंजाला ।
सुइना रुपा संजीऐ हीरा परवाला ।
पीर मुरीदाँ पिरहड़ी एहु साकु सुखाला ॥ ७ ॥

पउड़ी ८

(सच्चा कंम)

वणजु करै वापारीआ तितु लाहा तोटा ।
किरसाणी किरसाणु करि होइ दुबला मोटा ।
चाकरु लगै चाकरी रणि खाँदा चोटाँ ।
राजु जोगु संसारु विचि वण खंड गड़ कोटा ।
अंति कालि जम जालु पै पाए फल फोटा ।
पीर मुरीदाँ पिरहड़ी हुइ कदे न तोटा ॥ ८ ॥

माँ, बाप, भाई, बहन आदि से भी बड़ा परिवार बनता है। इसी जंजाल में नाना, नानी, मामा, मौसी आदि भी आते हैं। सोना, रुपया, हीरा, मूँगा आदि सम्पत्ति के जोड़ने से भी ऐसा सम्बन्ध जाना जाता है, परन्तु सबसे सरल रिश्ता गुरु और शिष्य की प्रीति का है।। ७।।

पउड़ी ८

(सच्चा काम)

व्यापारी व्यापार करता है और उसे हानि-लाभ भी होता है। किसान खेती करता है और घटता-बढ़ता रहता है। नौकर नौकरी करता है और युद्ध में चोटें खाता है। राजकाज, योग, वनवास, क़िलों आदि में निवास का फल यही होता है कि अंत समय में व्यक्ति यम के जाल में फँस जाता है अर्थात् फलस्वरूप आवागमन के चक्र में पड़ा रहता है परन्तु पीर और मुरीद की दोस्ती ऐसी है जिसमें कभी घाटा नहीं होता ।। ८।।

पउड़ी ९

(सच्चा भोग)

अखी वेखि न रजीआ बहु रंग तमासे ।
उसतति निंदा कंनि सुणि रोवणि तै हासे ।
सादीं जीभ न रजीआ करि भोग बिलासे ।
नक न रजा वासु लै दुरगंध सुवासे ।
रजि न कोई जीविआ कूड़े भरवासे ।
पीर मुरीदाँ पिरहड़ी सची रहरासे ॥ ९ ॥

पउड़ी १०

(सच्ची अंग सफलता)

ध्रिगु सिरु जो गुर न निवै गुर लगै न चरणी ।
ध्रिगु लोइणि गुर दरस विणु वेखै पर तरणी ।
ध्रिग सरवणि उपदेस विणु सुणि सुरति न धरणी ।
ध्रिगु जिहबा गुर सबद विणु होर मंत्र सिमरणी ।

पउड़ी ९

(सच्चा भोग)

आँखें अनेकों रंग-तमाशे देखकर भी तृप्त नहीं होतीं । कान स्तुति, निन्दा, रोना और हँसना सुनते हैं। जिह्वा भी स्वाद से एवं अनेकों भोग-विलासों से भी नहीं अघाती । नाक भी गंध-दुर्गंध को लेती हुई कभी नहीं तृप्त हुई। झूठे भरोसे पर रहनेवाला कोई भी जीव कभी जी भरकर नहीं जी सका। गुरु की प्रीति ही शिष्यों के लिए सच्ची सम्पत्ति है ।। ९ ।।

पउड़ी १०

(अंगों की सच्ची सफलता)

उस सिर को धिक्कार है जो गुरु के आगे झुकता नहीं और गुरु के चरण-स्पर्श नहीं करता। उन आँखों को धिक्कार है जो गुरु का दर्शन करने की बजाए पराई स्त्री को देखती हैं । उन श्रवणेन्द्रियों (कानों) को (भी) धिक्कार है जो उपदेश नहीं सुनते और सुनकर उस पर ध्यान नहीं टिकाते । उस जिह्वा को भी धिक्कार है जो गुरु के शब्द के अलावा अन्य मन्त्र का स्मरण (जाप) करती है।

विणु सेवा ध्रिगु हथ पैर होर निहफल करणी ।
पीर मुरीदाँ पिरहड़ी सुख सतिगुर सरणी ।।१०।।

पउड़ी ११

(सच्ची लगन)

होरतु रंगि न रचीऐ सभु कूड़ु दिसंदा ।
होरतु सादि न लगीऐ होइ विसु लगंदा ।
होरतु राग न रीझीऐ सुणि सुख न लहंदा ।
होरु बुरी करतूति है लगै फलु मंदा ।
होरतु पंथि न चलीऐ ठगु चोरु मुहंदा ।
पीर मुरीदाँ पिरहड़ी सचु सचि मिलंदा ।।११।।

पउड़ी १२

(सच्ची लगन)

दूजी आस विणासु है पूरी किउ होवै ।
दूजा मोह सु ध्रोह सभु ओहु अंति विगोवै ।

बिना सेवा (भावना) के हाथ-पाँव एवं अन्य सब कुछ किये हुए को धिक्कार है। गुरु और शिष्य की प्रीति तो सदैव है और सुख सच्चे गुरु की शरण में जाने से ही प्राप्त होता है ।। १० ।।

पउड़ी ११

(सच्ची लगन)

अन्य किसी रंग में लीन नहीं होना चाहिए, क्योंकि बाकी सभी रंग झूठे हैं। अन्य किसी भी स्वाद में रुचि नहीं लेनी चाहिए, क्योंकि बाकी सब स्वाद विष के समान हैं। अन्य रागों पर नहीं रीझना चाहिए क्योंकि किसी को भी सुनकर सुख नहीं मिलता। अन्य सब कार्य बुरे हैं और उनका बुरा फल मिलता है। (गुरु-पंथ के अलावा) अन्य किसी पंथ पर नहीं चलना चाहिए क्योंकि वहाँ ठग और चोर सब कुछ चुरा लेते हैं। गुरु और शिष्य की प्रीति सदैव बनी रहती है और सत्य में सत्य मिल ही जाता है।। ११।।

पउड़ी १२

(सच्ची लगन)

(प्रभु बिना) अन्य आशाएँ तो मानों नाश हैं, वे भला पूरी कैसे हो सकती हैं।

दूजा करमु सुभरम है करि अवगुण रोवै ।
दूजा संगु कुढंगु है किउ भरिआ धोवै ।
दूजा भाउ कुदाउ है हारि जनमु खलोवै ।
पीर मुरीदाँ पिरहड़ी गुण गुणी परोवै ।।१२।।

पउड़ी १३

(गुरू जी दी प्रीति दा रूप)

अमिओ दिसटि करि कछु वाँगि भवजल विचि रखै ।
गिआन अंस दे हंस वाँगि बुझि भख अभखै ।
सिमरण करदे कूँज वाँगि उडि लखै अलखै ।
माता बालक हेतु करि ओहु साउ न चखै ।
सतिगुर पुरखु दइआलु है गुरसिख परखै ।
पीर मुरीदाँ पिरहड़ी लख मुलीअनि कखै ।।१३।।

अन्य के प्रति मोह तो धोखा है और अंत में खराब करनेवाला है। अन्य कर्म तो भ्रम मात्र हैं जिन्हें करके जीव अवगुण अर्जित कर रोता है। अन्य भाव की संगति तो जीने का खोटा ढंग है । पापों से भरे जीवन को भला यह कैसे धो सकता है। द्वैतभाव रखना तो मानो बुरा दाँव लगाना है जिसे जीव (संसार रूपी युद्ध में) हार कर रह जाता है। गुरु-शिष्य की प्रीति गुणियों को गुणवानों से मिलाकर एकात्म भाव कर देती है ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(गुरु की प्रीति की स्वरूप)

कछुआ जैसे अंगों को सिकोड़कर अपनी रक्षा करता है वैसे ही गुरु भी अमृत-दृष्टि से (शिष्य की) संसार-रूपी सागर से रक्षा करता है। हंस को मिले ज्ञान की भाँति खाद्य-अखाद्य की समझ-बूझ प्रदान करता है। गुरु क्रौंच पक्षी के अपने बच्चों को स्मरण रखने की तरह शिष्य का सदैव ध्यान रखता है और (अध्यात्म-शक्ति से) उड़कर अलक्ष्य को देख लेता है। जैसे माता-पिता पुत्र के सुख-स्वाद को अपने लिए प्रयुक्त नहीं करते वैसे ही गुरु भी शिष्य के आनन्द में हिस्सा नहीं बँटाता । सद्गुरु दयालु पुरुष है और सिक्खों की परीक्षा (भी) लेता है। गुरु शिष्य की प्रीति तिनके के समान शिष्य को लाखों का कर देती है ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(गुरू नाल सिक्ख दी प्रीति दा रूप)

दरसनु देखि पतंग जिउ जोती जोति समावै ।
सबद सुरति लिव मिरग जिउ अनहद लिव लावै ।
साधसंगति विचि मीनु होइ गुरमति सुख पावै ।
चरण कवल विचि भवरु होइ सुख रैणि विहावै ।
गुर उपदेस न विसरै बाबीहा धिआवै ।
पीर मुरीदाँ पिरहड़ी दुबिधा न सुखावै ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(गुरू सभनाँ तों समरत्थ है)

दाता ओहु न मंगीऐ फिरि मंगणि जाईऐ ।
होछा साहु न कीचई फिरि पछोताईऐ ।
साहिबु ओहु न सेवीऐ जम डंडु सहाईऐ ।
हउमै रोगु न कटई ओहु वैदु न लाईऐ ।

पउड़ी १४

(गुरु की प्रीति का स्वरूप)

(दीपक की) ज्योति को देखकर जैसे पतंगा उसी ज्योति में लीन हो जाता है; मृग जैसे संगीतात्मक शब्द में सुरति को लगा देता है, वैसे ही साधुसंगति रूपी दरिया में गुरु का सिक्ख मछली की भाँति गुरुमत धारण कर सुख प्राप्त करता है। वह गुरु के चरण-कमलों में भँवरे के समान सुखपूर्वक रात्रि व्यतीत करता है। उसे गुरु का उपदेश कभी विस्मृत नहीं होता और वह पपीहे की तरह उसे रटता एवं स्मरण करता रहता है। पीर (गुरु) के साथ मुरीदों (शिष्यों) की ऐसी प्रीति होने के कारण द्वैतभाव उन्हें अच्छा नहीं लगता ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(गुरु सबसे अधिक समर्थ है)

उस दाता से मत माँगो जिसके पास माँगने के बाद फिर माँगने के लिए भटकना पड़े। कभी भी घटिया साहूकार का आश्रय मत लो अन्यथा पछताना पड़ता है। उस साहिब प्रभु की सेवा मत करो जिसकी सेवा के बावजूद यमदंड सहन करना पड़े । ऐसे वैद्य के पास भी न जाओ जो अहम् रूपी रोग को न काट सके ।

दुरमति मैलु न उतरै किउँ तीरथि नाईऐ ।
पीर मुरीदाँ पिरहड़ी सुख सहजि समाईऐ ॥ १५ ॥

पउड़ी १६

(गुरू-प्रीति सभ तों उच्ची है)

मालु मुलकु चतुरंग दल दुनीआ पतिसाही ।
रिधि सिधि निधि बहु करामाति सभ खलक उमाही ।
चिरु जीवणु बहु हंढणा गुण गिआन उगाही ।
होरसु किसै न जाणई चिति बेपरवाही ।
दरगह ढोई न लहै दुबिधा बदराही ।
पीर मुरीदाँ पिरहड़ी परवाणु सु घाही ॥ १६ ॥

पउड़ी १७

(गुरू प्रेम तों बिनाँ सभ बिअरथ)

विणु गुरु होरु धिआनु है सभ दूजा भाउ ।
विणु गुर सबद गिआनु है फिका आलाउ ।

यदि दुर्मति रूपी मैल नहीं उतरती तो तीर्थस्नान क्यों किये जायें । गुरु के शिष्यों से किया प्रेम सहज सुख में लीन कर देता है।। १५।।

पउड़ी १६

(गुरु-प्रीति सबसे ऊँची है)

चतुरंगिणी सेना का मालिक हो एवं देश तथा धन का स्वामी हो; ऋद्धियों, सिद्धियों की करामातों से सारे लोगों को आकर्षित करनेवाला हो; चिरंजीव होकर बहुत देर तक चलनेवाला एवं गुण-ज्ञान से भरपूर हो; वह किसी अन्य की परवाह न करनेवाला होकर भी यदि दुविधा में ग्रस्त है तो उसे प्रभु-दरबार में आश्रय नहीं मिलता। मामूली घसियारा सिक्ख भी अपने पीर (गुरु)के साथ सच्ची प्रीति करने के कारण स्वीकृत हो जाता है ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(गुरु-प्रेम के बिना सब व्यर्थ है)

गुरु के ध्यान के बिना अन्य सभी ध्यान द्वैतभाव हैं। गुरु के शब्द के ज्ञान के बिना बोलना मानों सब कुछ फीकी चीख-पुकार है।

विणु गुर चरणाँ पूजणा सभु कूड़ा सुआउ ।
विणु गुर बचनु जु मंनणा ऊरा परथाउ ।
साधसंगति विणु संगु है सभु कचा चाउ ।
पीर मुरीदाँ पिरहड़ी जिणि जाणनि दाउ ॥ १७ ॥

पउड़ी १८

(गुरू-प्रीति हउमै नूँ तोड़दी है)

लख सिआणप सुरति लख लख गुण चतुराई ।
लख मति बुधि सुधि गिआन धिआन लख पति विडआई ।
लख जप तप लख संजमाँ लख तीरथ न्हाई ।
करम धरम लख जोग भोग लख पाठ पढ़ाई ।
आपु गणाइ विगुचणा ओहु थाइ न पाई ।
पीर मुरीदाँ परहड़ी होइ आपु गवाई ॥ १८ ॥

पउड़ी १९

(मुरीदाँ दी सेवा दा रूप)

पैरी पै पा खाक होइ छडि मणी मनूरी ।
पाणी पखा पीहणा नित करै मजूरी ।

गुरु चरणों की पूजा के बिना अन्य सब कुछ स्वार्थ एवं झूठ है। गुरु के वचनों को मानने के बिना अन्य सभी साधन अपूर्ण हैं। साधुसंगति के बिना अन्य सभी मेल-मिलाप कच्चे उत्साह हैं । गुरु से प्रेम करनेवाले सिक्ख जीवन की बाजी को जीतना जानते हैं।। १७।।

पउड़ी १८

(गुरु-प्रीति अहम् का नाश करती है)

लाखों चेतनाएँ, लाखों गुण चतुराइयाँ, लाखों बुद्धियाँ, ज्ञान, ध्यान, लाखों सम्मान, लाखों जाप, तप, संयम, तीर्थस्नान, कर्म, धर्म, योग एवं भोग तथा पाठ आदि करने के बाद भी यदि अहम् भावना के वशीभूत जीव अपने आपको जताता है तो वह भटकता रहता है और उसे कोई स्थान प्राप्त नहीं होता । गुरु-शिष्य का यदि प्रेम हो जाए तो अहम्भाव खो जाता है।। १८।।

पउड़ी १९

(शिष्यों की सेवा का रूप)

(गुरु का सिख) चरणों में गिरकर सब बड़प्पन एवं इच्छाएँ त्याग देता है।

त्तपड़ झाड़ि विछाइंदा चुलि झोकि न झूरी ।
मुरदे वाँगि मुरीदु होइ करि सिदक सबूरी ।
चंदनु होवै सिंमलहु फलु वासु हजूरी ।
पीर मुरीदाँ पिरहड़ी गुरमुखि मति पूरी ॥ १९ ॥

पउड़ी २०

(गुर सेवा दा फल)

गुर सेवा दा फलु घणा किनि कीमति होई ।
रंगु सुरंगु अचरजु है वेखाले सोई ।
सादु वडा विसमादु है रसु गुंगे गोई ।
उतभुज वासु निवासु है करि चलतु समोई ।
तोलु अतोलु अमोलु है जरै अजरु कोई ।
पीर मुरीदाँ पिरहड़ी जाणै जाणोई ॥ २० ॥

वह पानी भरता है, पंखा डुलाता है, पिसान पीसता है और नित्य मजदूरी करता है। वह आसनों को झाड़-झाड़कर बिछाता है और चूल्हा झोकते समय जरा भी उदास नहीं होता। वह मुर्दे की तरह सब्र एवं संतोष धारण कर लेता है। उसे गुरु के पास रहने का ऐसा ही फल प्राप्त होता है जैसे सेमल वृक्ष को चंदन के पास बसने से होता है अर्थात् वह भी सुगंधित हो जाता है। गुरु से प्रेम करनेवाले सिक्खों की मति पूर्ण होती है ।। १९।।

पउड़ी २०

(गुरु-सेवा का फल)

गुरु की सेवा का फल बहुत अधिक है, भला इसका मूल्य कौन समझ सकता है। आश्चर्यजनक रंगों में भी श्रेष्ठ रंगों का दर्शन यह (सेवा) करती है। सेवा का स्वाद आश्चर्यकारक एवं गूँगे की मिठाई के समान है। वृक्षों (चंदन) में अजीब रूप से सुगंध का निवास है (उसी प्रकार सेवा का फल है)। (सेवा का विचार) अमूल्य एवं अतुलनीय है और इस असह्य (भार) को कोई बिरला ही सहन करता है। गुरु-शिष्य की प्रीति का रहस्य तो वह सर्वज्ञ प्रभु ही जानता है ।। २०।।

पउड़ी २१

(मुरीद तदरूप किक्कूँ हुंदा है ?)

चंनणु होवै चंनणहु को चलितु न जाणै ।
दीवा बलदा दीविअहुँ समसरि परवाणै ।
पाणी रलदा पाणीऐ तिसु को न सित्राणै ।
भ्रिंगी होवै कीड़िअहु किव आखि वखाणै ।
सपु छुडंदा कुंज नो करि चोज विडाणै ।
पीर मुरीदाँ पिरहड़ी हैराणु हैराणै ॥ २१ ॥

पउड़ी २२

(आतम परापती दी जुगती)

फुली वासु निवासु है कितु जुगति समाणी ।
फुलाँ अंदरि जिउ सादु बहु सिंजे इक पाणी ।
घिउ दुधु विचि वखाणीऐ को मरमु न जाणी ।
जिउ बैसंतरु काठ विचि ओहु अलख विडाणी ।

पउड़ी २१

(शिष्य तद्‌रूप कैसे होता है)

चंदन से अन्य वृक्ष कैसे चंदन बन जाते हैं, इस लीला को कोई नहीं जान पाता। दीपक से दीपक जलता है और एक जैसा ही अनुभव होता है। पानी पानी में मिल जाता है और फिर उसको कोई नहीं पहचान पाता। भृंगी कीड़ी से कीड़ा बन जाता है; उसे भी कोई बता नहीं सकता । सर्प भी अपनी केंचुल छोड़ता है और यह भी आश्चर्यजनक कौतुक है। इसी भाँति गुरु और शिष्यों की प्रीति भी आश्चर्यकारी है ।। २१।।

पउड़ी २२

(आत्मप्राप्ति की युक्ति)

फूलों में सुगंध का निवास है पर यह कोई नहीं जानता कि यह उनमें कैसे समाई रहती है। फलों में स्वाद अनेक होते हैं पर सभी को एक ही प्रकार का पानी सींचता है। दूध में घी विद्यमान रहता है पर कोई इस मर्म को समझ नहीं सकता । जैसे लकड़ी में आग होती है पर इसे भी जाना नहीं जा सकता;

गुरमुखि संजमि निकलै परगटु परवाणी ।
पीर मुरीदाँ पिरहड़ी संगति गुरबाणी ॥ २२॥

पउड़ी २३

(जिस दीजै काण न कीजै)

दीपक जलै पतंग वंसु फिरि देख न हटै ।
जल विचहु फड़ि कढीऐ मछ नेहु न घटै ।
घंडा हेड़ै मिरग जिउ सुणि नाद पलटै ।
भवरै वासु विणासु है फड़ि कवलु संघटै ।
गुरमुखि सुख फलु पिरम रसु बहु बंधन कटै ।
धंनु धंनु गुरसिक्ख वंसु है धंनु गुरमति निधि खाटै।।२३।।२७।।सताई।।

उसी प्रकार गुरुमुखों में साधना के फलस्वरूप प्रामाणिक आत्मा का आभास जगता है। इस सबके लिए गुरुमुख शिष्य गुरु से प्रीति का, "संगत" का एवं गुरुवाणी का साधन अपनाते हैं ।। २२ ।।

पउड़ी २३

(सिर देने में तनिक न हिचकिचाओ)

जलते दीपक को देखकर पतंगे का वंश पीछे नहीं हटता। मछली को जल से निकाल लेने पर भी जल से उसका स्नेह कम नहीं होता। शिकारी के घड़ियाल के नाद को सुनकर मृग जैसे पलट कर उसी की ओर आता है तथा भँवरा कमल में बंद हो सुगंध के लिए अपने आपको नष्ट कर देता है, उसी प्रकार गुरुमुख प्रेम-रस को प्राप्त करते हैं और सारे बंधनों को काट देते हैं। गुरु और सिक्खों (शिष्यों) का वंश धन्य-धन्य है जो गुरुमत के अनुसार चलकर आत्मनिधि को प्राप्त करते हैं ।। २३।। २७।।

* * *

वार २८

ੴ सतिगुर प्रसादि ।।

पउड़ी १

(सिक्खी औखी पर अमोलक है)

वालहु निकी आखीऐ खंडे धारहु सुणीऐ तिखी ।
आखणि आखि न सकीऐ लेख अलेख न जाई लिखी ।
गुरमुखि पंथु वखाणीऐ अपड़ि न सकै इकतु विखी ।
सिल आलूणी चटणी तुलि न लख अमिअ रस इखी ।
गुरमुखि सुख फलु पाइआ भाइ भगति विरली जु बिरखी ।
सतिगुर तुठै पाईऐ साधसंगति गुरमति गुरसिखी ।
चारि पदारथ भिखक भिखी ।। १ ।।

पउड़ी १

(सिक्ख-धर्म कठिन पर अमूल्य है)

सिक्ख-धर्म की साधना बाल से भी महीन और खड़गधार से भी तीखी है। इसके बारे में कुछ भी कहा-सुना नहीं जा सकता और इसके अलेख लेख को लिखा भी नहीं जा सकता। गुरुमुखों का कहा जाने वाला यह मार्ग एक ही कदम से प्राप्त नहीं किया जा सकता। यह तो लवणहीन शिला चाटना है और इसके स्वाद के तुल्य मीठा अमृत तो लाखों गन्नों के रस से भी मीठा है। गुरुमुखों ने सुखफल को प्राप्त किया है और इसके प्रेमाभक्ति के फल विरले वृक्षों को ही लगते हैं। सद्गुरु की कृपा से गुरुमत में चलकर साधुसंगति में ही गुरुसिक्खी (गुरु द्वारा बताया सिक्ख-जीवन-मार्ग) का जीवन प्राप्त होता है। चारों पदार्थों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की भिक्षा तो भिखारियों को मिलती है(गुरुसिक्खी तो इन सबसे बढ़कर है)।। १।।

पउड़ी २

(सिक्खी निशकाम है)

चारि पदारथ आखीअनि सतिगुर देइ न गुरसिखु मंगै ।
अठ सिधी निधी नवै रिधि न गुरु सिखु ढाकै टंगै ।
कामधेणु लख लखमी पहुँच न हंघै ढंगि सुढंगै ।
लख पारस लख पारिजात हथि न छुहदा फल न अभंगै ।
तंत मंत पाखंड लख बाजीगर बाजारी नंगै ।
पीर मुरीदी गाखड़ी इकस अंगि न अंगणि अंगै ।
गुरसिखु दूजे भावहु संगै ॥ २ ॥

पउड़ी ३

(सिक्खी दी अमोलकता)

गुरसिखी दा सिखणा नादु न वेद न आखि वखाणै ।
गुरसिखी दा लिखणा लख न चित्र गुपति लिखि जाणै ।

पउड़ी २

(सिक्ख जीवन निष्काम है)

कहे जानेवाले चार पदार्थ सद्गुरु स्वयं देता है, गुरु का सिक्ख स्वयं नहीं माँगता । नव निधियों और आठों सिद्धियों को गुरु का सिक्ख कभी भी पीठ पर लादे नहीं घूमता । कामधेनु एवं लाखों लक्ष्मियाँ भी अपने सुन्दर हावभावों के साथ भी उस गुरु-सिक्ख तक नहीं पहुँच सकतीं । लाखों पारसों, लाखों कल्पवृक्षों आदि के अनश्वर फलों को गुरु का सिक्ख हाथ नहीं लगाता। तंत्र-मंत्र जाननेवाले लाखों बाजीगर गुरु के सिक्ख के सामने तुच्छ नंगे लोगों के समान हैं । गुरु-शिष्य की प्रीति बड़ी कठिन है, क्योंकि इसके नियमों में भी कई उपनियम हैं । जो गुरु का सिक्ख है वह द्वैतभाव से संकोच ही रखता है अर्थात् द्वैतभाव से दूर रहता है ।।२।।

पउड़ी ३

(सिक्ख-जीवन की अमूल्यता)

गुरु की शिष्यता की साधना को नाद वेद बता नहीं सकते। गुरुसिक्खों के लेखों को तो चित्रगुप्त स्वयं भी लिखना नहीं जानता।

गुरसिखी दा सिमरणो सेख असंख न रेख सिञाणै ।
गुरसिखी दा वरतमानु वीह इकीह उलंघि पछाणै ।
गुरसिखी दा बुझणा गिआन धिआन अंदरि किव आणै ।
गुर परसादी साधसंगि सबद सुरति होइ माणु निमाणै ।
भाइ भगति विरला रंगु माणै ॥ ३ ॥

पउड़ी ४

(सिक्खी दी सिक्खिआ ते रस)

गुरसिखी दा सिखणा गुरमुखि साधसंगति दी सेवा ।
दस अवतार न सिखिआ गीता गोसटि अलख अभेवा ।
वेद न जाणन भेद किहु लिखि पड़ि सुणि सणु देवी देवा ।
सिध नाथ न समाधि विचि तंत न मंत लंघाइनि खेवा ।
लख भगति जगत विचि लिखि न गए गुरु सिखी टेवा ।
सिला अलूणी चटणी सादि न पुजै लख लख मेवा ।
साधसंगति गुर सबद समेवा ॥ ४ ॥

गुरुसिक्खी की स्मरण-महिमा की सीमा को असंख्य शेषनाग भी नहीं जान सके। गुरुसिक्खी का वर्तमान व्यवहार सांसारिक प्रपंचों से परे जाकर ही जाना जा सकता है। गुरुसिक्खी (गुरु के शिष्य का जीवन मार्ग) को समझना भला किसी के ज्ञान-ध्यान में कैसे आ सकता है। गुरु की कृपा से साधुसंगति में व्यक्ति शब्द में सुरति लगाकर मानी से मानरहित बन जाता है। कोई विरला ही भावभक्ति के रंग का आनन्द ले सकता है ।। ३।।

पउड़ी ४

(सिक्ख-जीवन की शिक्षा और रस)

गुरुसिक्ख की जीवन-साधना सीखने का ढंग है कि व्यक्ति साधुसंगति की सेवा करे। (विष्णु के) दशावतारों ने भी यह रहस्य नहीं सीखा और यह जीवन-साधना गीता, गोष्ठी आदि से भी परे एवं रहस्यमय है। इसका रहस्य तो वेद भी नहीं जानते, जिन्हें देव-देवियों समेत पढ़ते-सुनते हैं । सिद्ध, नाथों की समाधियाँ एव तंत्र-मंत्र आदि कोई भी सिक्ख जीवन की शिक्षा की साधना को पार नहीं कर पाये। लाखों भक्त इस संसार में हुए पर वे भी गुरु-सिक्ख की जीवन-साधना के रहस्य को नहीं समझ पाए। यह कार्य फीकी शिला को चाटने के समान है पर इसके स्वाद के तुल्य लाखों मेवों के स्वाद भी नहीं हैं । साधुसंगति में रहकर गुरु के शब्द में लीन होना ही गुरुसिक्खी-जीवन की साधना है ।। ४।।

पउड़ी ५

(सिक्खी दी प्रापती दा प्रकार)

गुरसिखी दा सिखणा सबदि सुरति सतिसंगति सिखै ।
गुरसिखी दा लिखणा गुरबाणी सुणि समझै लिखै ।
गुरसिखी दा सिमरणो सतिगुरु मंतु कोलू रसु इखै ।
गुरसिखी दा वरतमानु चंदन वासु निवासु बिरिखै ।
गुरसिखी दा बुझणा बुझि अबुझि होवै लै भिखै ।
साधसंगति गुर सबदु सुणि नामु दानु इसनानु सरिखै ।
वरतनामु लंघि भूत भविखै ॥ ५ ॥

पउड़ी ६

(सिक्खी प्रापती दा प्रकार)

गुरसिखी दा बोलणा हुइ मिठ बोला लिखै न लेखै ।
गुरसिखी दा चलणा चलै भै विचि लीते भेखै ।

पउड़ी ५

(सिक्ख-जीवन की प्राप्ति का प्रकार)

सत्संगति में रहकर शब्द में सुरति को लीन करने की कला को सीखना ही गुरु-सिक्खी जीवन-साधना सीखने के समान है। गुरुसिक्खी का लिखना तो गुरवाणी को सुनना, समझना और लिखते जाना है । सद्गुरु के मंत्र को, जो कि गन्ने के रस के समान मीठा है, सीखना ही गुरुसिक्खी की "सुमिरन" कला है। गुरु-सिक्खी का व्यवहार चंदन की सुगंध की भाँति है जो कि सारे ही वृक्षों में निवास करती है। (नाम-पदार्थ की) भिक्षा लेकर सूझवान होते हुए भी अपने आपको अज्ञ समझना वास्तव में गुरुसिक्खी को बूझने का (महान्) कार्य है । गुरु का सिक्ख सद्संगति में गुरु के शब्द को सुनकर नाम-दान-स्नान का अभ्यास करता है और वर्तमान, भूत, भविष्य सबको लाँघ जाता है ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(सिक्ख-जीवन-मार्ग का प्रकार)

गुरुसिक्खी जीवन में मीठा बोला जाता है और अपने आपको कहीं भी जताया नहीं जाता अर्थात् अहम् का त्याग किया जाता है।

गुरसिखी दा राहू एहु गुरमुखि चाल चलै सो देखै ।
घालि खाइ सेवा करै गुर उपदेसु अवेसु विसेखै ।
आपु गणाइ न अपड़ै आपु गवाए रूप न रेखै ।
मुरदे वाँगु मुरीद होइ गुर गोरी वड़ि अलख अलेखै ।
अंतु न मंतु न सेख सरेखै ॥ ६ ॥

पउड़ी ७

(सिक्खी दी अमोलकता)

गुरसिखी दा सिखणा गुरु सिख सिखण बजरु भारा ।
गुरसिखी दा लिखणा लेखु अलेखु न लिखणहारा ।
गुरसिखी दा तोलणा तुलि न तोलि तुलै तुलधारा ।
गुरसिखी दा देखणा गुरमुखि साधसंगति गुरदुआरा ।
गुरसिखी दा चखणा साधसंगति गुरु सबदु वीचारा ।
गुरसिखी दा समझणा जोती जोति जगावणहारा ।
गुरमुखि सुख फलु पिरमु पिआरा ॥ ७ ॥

सिक्ख-स्वरूप में रहकर प्रभु-भय में चलना ही गुरुसिक्खी में चलना है। गुरुमुखों में मार्ग पर चलना ही गुरुसिक्खी में चलना है। व्यक्ति परिश्रम करके खाये, सेवा करे और गुरु-उपदेश से सदैव आवेष्ठित रहे । अहम्-भाव में रहने पर परमात्मा की प्राप्ति नहीं होती और अहम्-भाव गँवाने पर ही उस अरूप, अरेख प्रभु से तादात्म्य हो सकता है। मुर्दे की तरह मुरीद बनकर गुरु रूपी कब्र में समाकर उस अलक्ष्य-अलेख में अभेद हुआ जा सकता है। उसके मंत्र के रहस्य को अनेकों शेषनागों सरीखे भी नहीं जान सकते ।।६।।

पउड़ी ७

(सिक्ख-जीवन की अमूल्यता)

गुरुसिक्खी का सीखना भारी वज्र के समान कठिन है जिसे गुरु के सिक्ख ही सीखते हैं। गुरुसिक्खी का लिखना भी सभी लेखों से परे है कोई इसे लिख नहीं सकता। गुरुसिक्खी को किसी तराजू पर तोला नहीं जा सकता। गुरुसिक्खी का दर्शन गुरुमुखों की सत्संगति और गुरुद्वारे में हो सकता है। साधुसंगति में गुरु-शब्द का विचार करना ही गुरुसिक्खी को चखने के समान है। गुरुसिक्खी को समझना मानों परमात्मा की ज्योति जलाने के समान है। गुरुमुखों का सुखफल तो उस परम प्यारे प्रभु का प्रेम है ।।७।।

पउड़ी ८

(सिक्खी पा के उच्चे होईदा है)

गुरसिखी दा रूप देखि इकस बाझु न होरसु देखै ।
गुरसिखी दा दखणा लख अंम्रित फल फिकै लेखै ।
गुरसिखी दा नादु सुणि लख अनहद विसमाद अलेखै ।
गुरसिखी दा परसणा ठंढा तता भेख अभेखै ।
गुरसिखी दी वासु लै हुइ दुरगंध सुगंध सरेखै ।
गुरसिखी मर जीवणा भाइ भगति भै निमख नमेखै ।
अलपि रहै गुर सबदि विसेखै ॥ ८ ॥

पउड़ी ९

(सिक्खी दा करतब्ब)

गुरमुखि सचा पंथु है सिखु सहज घरि जाइ खलोवै ।
गुरमुखि सचु रहरासि है पैरीं पै पा खाकु जु होवै ।

पउड़ी ८

(सिक्ख-जीवन प्राप्त कर ऊँचा हुआ जाता है)

गुरुसिक्खी को जिसने देख-पा लिया है, वह एक परमात्मा के बिना अन्य किसी (देवी-देवता) का दर्शन नहीं चाहता। गुरुसिक्खी को चखने के बाद तो लाखों अमृत-फल भी फीके लगते हैं। गुरुसिक्खी का नाद सुनने पर लाखों अनहद् नादों का आश्चर्यकारक आनन्द आ जाता है। जो गुरुसिक्खी के स्पर्श में आ गये हैं वे ठंडे गर्म के तथा वेश-आवेश के प्रभाव से परे हो गये हैं । गुरुसिक्खी की गंध ले लेने वाले को अन्य सब सुगंधियाँ भी दुर्गन्ध लगती हैं। गुरुसिक्खी जीवन-मार्ग में चलकर जिसने जीना प्रारम्भ कर दिया है वह प्रत्येक क्षण अब प्रेमभक्ति में जीता है। वह गुरु के शब्द में लीन रहकर संसार से अलिप्त बना रहता है ।। ८।।

पउड़ी ९

(सिक्ख-जीवन में कर्त्तव्य)

गुरुमुखों का मार्ग वह सच्चा मार्ग है जिस पर चलकर सिक्ख सहज भाव में स्वत: ही अवस्थित हो जाता है। गुरुमुखों का कार्य-कलाप सच्चा है, चरण छूना एवं चरणधूलि हो जाना अर्थात् अत्यन्त विनम्र हो जाना ही उनका कार्य-व्यवहार है।

गुरुसिखी दा नावणा गुरमति लै दुरमति मलु धोवै ।
गुरुसिखी दा पूजणा गुरसिख पूज पिरम रसु भोवै ।
गुरुसिखी दा मंनणा गुर बचनी गलि हारु परोवै ।
गुरुसिखी दा जीवणा जीवंदिआँ मरि हउमै खोवै ।
साधसंगति गुरु सबद विलोवै ॥ ९ ॥

पउड़ी १०

(सिक्खी दी कार)

गुरमुखि सुख फलु खावणा दुखु सुखु समकरि अउचर चरणा ।
गुरसिखी दा गावणा अंम्रित बाणी निझरु झरणा ।
गुरसिखी धीरजु धरमु पिरम पिआला अजरु जरणा ।
गुरसिखी दा संजमो डरि निडरु निडर मुच डरणा ।
गुरसिखी मिलि साधसंगि सबद सुरति जरु दुतरु तरणा ।

गुरुसिक्खी का स्नान करना यही है कि व्यक्ति गुरुमत में चलकर दुर्मति की मैल को धो दे। गुरुसिक्खी का पूजा-कर्म यही है कि इसमें गुरु के सिक्खों की पूजा-अर्चना (सेवा) की जाती है और प्यारे प्रभु के रस में भीगा जाता है। गुरु-सिक्खी का मानना यही है कि गुरु के वचनों का हार सदैव गले में धारण किये रहो। गुरुसिक्खी में जीना यही है कि जीवित रहते ही अहम्-भाव के प्रति मरकर अहम्-भाव को गँवा दिया जाए और साधु-संगति में गुरु के शब्द का मंथन किया जाए ।। ९।।

पउड़ी १०

(सिक्खी-जीवन का कर्म)

गुरुमुख व्यक्ति दु:ख-सुख को समान भाव से धारण करते हुए सुख-फल को खाते हैं । गुरुसिक्खी में अमृत वाणी का निरन्तर प्रवाह ही गायन-कला है। गुरुसिक्खी का धैर्य एवं धर्म यही है कि प्रेम-प्याले को पीकर असह्य (शक्ति) को धारण कर सहन करना है। गुरुसिक्खी की संयम साधना यही है कि भय रूपी संसार से अभय हुआ जाए और अभय परमात्मा के भय में सदैव रहा जाए । गुरुसिक्खी का यह भी सिद्धांत है कि साधुसंगति में रहकर शब्द में सुरति लीन कर इस दुष्कर संसार-सागर को पार किया जाता है।

गुरसिखी दा करमु एहु गुर फुरमाए गुरसिख करणा ।
गुर किरपा गुरु सिखु गुरु सरणा ॥ १० ॥

पउड़ी ११

(गुरू दी शकती ते गुण)

वासि सुवासु निवासु करि सिंमलि गुरमुखि सुख फल लाए ।
पारस होइ मनूरु मलु कागहु परम हंसु करवाए ।
पसू परेतहु देव करि सतिगुर देव सेव भै पाए ।
सभ निधान रखि संख विचि हरि जी लै लै हथि वजाए ।
पतित उधारणु आखीऐ भगति वछल होइ आपु छलाए ।
गुण कीते गुण करे जग अवगुण कीते गुण गुर भाए ।
परउपकारी जग विचि आए ॥ ११ ॥

गुरुसिक्खी जीवन का यही कर्म है कि जैसा गुरु का आदेश हो गुरु का सिक्ख वैसा ही करता है। गुरु की कृपा से ही गुरु का सिक्ख गुरु की शरण में बना रहता है ।। १०।।

पउड़ी ११

(गुरु की शक्ति एवं गुण)

सुगंध की तरह सब स्थानों में परिव्याप्त हो गुरुमुख सेमल रूपी स्वेच्छाचारी (मनमुख) को भी सुगंधित सुख-फल वाला कर देता है। वह लोहे की भस्म (मैल) को भी कंचन बना देता है और कौओं को परमहंस बना देता है। सद्गुरु की सेवा के फलस्वरूप पशु-प्रेत भी देवता बन जाते हैं। हरि रूपी गुरु के हाथ (शंख) में सभी पदार्थ हैं जिन्हें वह रात-दिन घुमाता रहता है अर्थात् सबको बाँटता रहता है। वह सद्गुरु पतित-पावन कहा जाता है, वह भक्तवत्सल होकर स्वयं छला जाता है। भला करनेवाले के साथ तो सारा संसार भला करता है पर बुरा करनेवाले के साथ भला करना तो केवल गुरु को ही भाता है। गुरु ही जगत में परोपकारी के रूप में आया है ।। ११।।

पउड़ी १२

(सिक्ख परउपकारी)

फल दे वट वगाइआँ तछणहारे तारि तरंदा ।
तछे पुत न डोबई पुत वैरु जल जी न धरंदा ।
वरसै होइ सहंस धार मिलि गिल जलु नीवाणि चलंदा ।
डोबै डबै अगर नो आपु छडि पुत पैज रखंदा ।
तरि डुबै डुबा तरै जिणि हारै हारै सु जिणंदा ।
उलटा खेलु पिरंम दा पैराँ उपरि सीसु निवंदा ।
आपहु किसै न जाणै मंदा ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(सिक्ख सनिम्र ते परउपकारी है)

धरती पैराँ हेठि है धरती हेठि वसंदा पाणी ।
पाणी चलै नीवाण नो निरमलु सीतलु सुधु पराणी ।

पउड़ी १२

(सिक्ख परोपकारी)

पत्थर मारनेवाले को वृक्ष फल देता है और काटनेवाले (बढ़ई) को अपनी लड़की की नाव बनवाकर पार उतारता है। जल अपने पुत्र (वृक्ष) के काटने वाले बढ़ई के अवगुणों को याद न कर उसे डुबाता नहीं। जब हजारों धाराएँ बनकर जल बरसता है तो वह मिलकर भी निचले स्थान की ओर बहता है। अगरु (लकड़ी) को डुबाता है और अपना अहम्भाव गँवाकर भी अपने पुत्र (वृक्ष की लकड़ी) की इज्जत बचाता है (अगरु की सुगंधित लकड़ी पानी में डूबने पर ही शुद्ध मानी जाती है)। जो (प्रेम रूपी) जल के ऊपर ही तैरता रहता है उसे डूबा समझो और जो इसमें डूब जाता है उसे तैर कर पार उतर जानेवाला समझो। इसी प्रकार संसार में जीतने वाला हार जाता है और हार कर इससे तटस्थ हो जाने वाला जीत जाता है। प्रेम की रीति ही उलटी है जो ऊँचे सिर को भी नीचे पाँव पर झुका देती है। (परोपकारी सिक्ख) आपनी ओर से किसी को भी बुरा नहीं जानता ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(सिक्ख विनम्र एवं परोपकारी)

धरती पैरों के नीचे होती है पर उससे भी नीचे पानी का निवास है। पानी फिर भी निचले स्तर की ओर बहता है और अन्यों को निर्मल, शीतल एवं शुद्ध करता है।

बहु रंगी इक रंगु है सभनाँ अंदरि इको जाणी ।
तता होवै धुप विचि छावै ठंढा विरती हाणी ।
तपदा परउपकार नो ठंढे परउपकार विहाणी ।
अपनि बुझाए तपति विचि ठंढा होवै बिलमु न आणी ।
गुरु सिखी दी एहु नीसाणी ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(सिक्ख सनिम्र ते परउपकारी है)

पाणी अंदरि धरति है धरती अंदरि पाणी बसै ।
धरती रंगु न रंग सभ धरती साउ न सभ रस रसै ।
धरती गंधु न गंध बहु धरति न रूप अनूप तरसै ।
जेहा बीजै सो लुणै करमि भूमि सभ कोई दसै ।
चंदन लेपु न लेपु है करि मल मूत कसूतु न धसै ।
वुठे मीह जमाइदे डवि लगै अंगूरु विगसै ।
दुखि न रोवै सुखि न हसै ।। १४ ।।

विविध रंगों में वह मिलकर एकरंग हो जाता है और सबमें एक ही माना जाना जाता है। वह धूप में गर्म और छाया में ठंडा हो जाता है अर्थात् समयानुकूल आचरण करता है । वह गर्म भी परोपकार के लिए होता है और ठंडा होकर भी जीवन भर परोपकार ही करता है। खुद गर्म होने के बावजूद भी वह अग्नि को बूझा देता है और ठंडा होने में भी तनिक देर नहीं लगाता। गुरु-सिक्खी की भी यही निशानियाँ हैं ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(सिक्ख विनम्र एवं परोपकारी है)

पानी में धरती है और धरती में भी पानी रहता है। धरती में कोई रंग नहीं, फिर भी (वनस्पति रूप में) इसमें सभी रंग विद्यमान हैं । धरती में कोई गंध नहीं, फिर भी सारी सुगंधियाँ इसमें बसती हैं । धरती का कोई रूप नहीं फिर भी सारे अनुपम पदार्थ लोग धरती से ही चाहते हैं । धरती कर्मभूमि है यहाँ जो जैसा बोता है वैसा ही काटता है। चन्दन से लीपी जाने पर उसमें अनुरक्त नहीं होती और मल-मूत्र से क्रुद्ध हो धँस नहीं जाती। पानी बरसने पर भी लोग इसमें अन्न बोते हैं और दावाग्नि लग जाने के बाद भी इसमें से नये अंकुर फूट निकलते हैं । दुख में दुखी हो रोती नहीं और सुख में हँसती नहीं ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(सिक्ख दी नित्त कमाई)

पिछल रातीं जागणा नामु दानु इसनानु दिड़ाए ।
मिठा बोलणु निव चलणु हथहु दे कै भला मनाए ।
थोड़ा सवणा खावणा थोड़ा बोलनु गुरमति पाए ।
घालि खाइ सुक्रितु करै वडा होइ न आपु गणाए ।
साधसंगति मिलि गाँवदे राति दिहैं नित चलि चलि जाए ।
सबद सुरति परचा करै सतिगुरु परचै मनु परचाए ।
आसा विचि निरासु वलाए ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(सिक्ख दी नित्त कमाई)

गुर चेला चेला गुरू गुरु सिख सुणि गुरसिखु सदावै ।
इक मनि इकु अराधणा बाहरि जांदा वरजि रहावै ।

पउड़ी १५

(सिक्ख की नित्यचर्या)

(सिक्ख का कर्त्तव्य है कि वह) थोड़ी रात बाकी रह जाने पर ही जग जाता है और नाम-स्मरण करता हुआ दान और स्नान-कर्म में दृढ़ बना रहता है। वह मीठा बोलता, विनम्र होकर चलता और हाथ से कुछ देकर सबका भला माँगता है। वह कम सोता, कम खाता और गुरु की शिक्षा के अनुरूप कम बोलता है। वह परिश्रम करके खाता है, सत्कर्म करता है और बड़ा होने पर भी अपने बड़प्पन को जताता नहीं। साधुसंगति में मिलकर सबद गुरुवाणी का जहाँ गायन होता है वहाँ वह रात-दिन चल-चलकर भी पहुँचता है। वह अपनी सुरति को शब्द में लीन करता है और अपने मन का प्रेम सद्‌गुरु से बनाए रखता है। आशाओं-तृष्णाओं के मध्य भी तटस्थ-सा बना रहता है।। १५।।

पउड़ी १६

(सिक्ख-नित्यचर्या)

गुरु की शिक्षा सुनकर गुरु का सिक्ख कहलानेवाला चेला गुरु और गुरु-चेला एक रूप हो जाते हैं । वह एकाग्र मन से एक प्रभु की आराधना करता है

हुकमी बंदा होइ कै खसमै दा भाणा तिसु भावै ।
मुरदा होइ मुरीद सोइ को विरला गुरि गोरि समावै ।
पैरी पै पा खाकु होइ पैराँ उपरि सीसु धरावै ।
आपु गवाए आपु होइ दूजा भाउ न नदरी आवै ।
गुरु सिखी गुरु सिखु कमावै ॥ १६ ॥

पउड़ी १७

(विरले सिक्ख)

ते विरले सैंसार विचि दरसन जोति पतंग मिलंदे ।
ते विरले सैंसार विचि सबद सुरति होइ मिरग मरंदे ।
ते विरले सैंसार विचि चरण कवल हुइ भवर वसंदे ।
ते विरले सैंसार विचि पिरम सनेही मीन तरंदे ।
ते विरले सैंसार विचि गुरु सिख गुरु सिख सेव करंदे ।
भै विचि जंमनि भै रहनि भै विचि मरि गुरु सिख जीवंदे ।
गुरमुख सुख फलु पिरमु चखंदे ॥ १७ ॥

और बाहर दौड़ते मन का निग्रह कर उसे अन्दर ही रोके रहता है। वह प्रभु हुक्म का सेवक बन जाता है और स्वामी की आज्ञा (रजा) उसे अच्छी लगती है। ऐसा कोई बिरला सिक्ख ही मुर्दे की तरह मुरीद बनकर गुरु रूपी कब्र में समाता है वह चरणों में गिरकर धूल बनकर गुरु-चरणों पर सिर को टिका देता है । वह तद्रूप हो अहम्भाव गँवा देता है और उसे द्वैतभाव कहीं नजर नहीं आता । गुरु का सिक्ख ही ऐसे सिक्ख-जीवन की साधना करता है ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(विरले सिक्ख)

वे लोग संसार में कोई-कोई हैं जो दर्शन रूपी ज्योति में पतंगे की तरह (लपककर) मिलते हैं। वे भी संसार में विरले हैं जो शब्द में सुरति लीन कर मृग की तरह मन जाते हैं। वे भी संसार में दुर्लभ हैं जो (गुरु के) चरण-कमलों को भँवरे की तरह मन में बसाते हैं। संसार में भी विरले (सिक्ख) हैं जो मछली की भाँति प्रेम के प्रेमी होकर तैरते हैं। गुरु के वे सिक्ख भी संसार में विरले हैं जो गुरु के अन्य सिक्खों की भी सेवा करते हैं। भय में जन्मते, भय में रहते, गुरु के सिक्ख गुरु की सेवा करते हैं और गुरुमुख बनकर प्रेम के सुख-फल को चखते हैं।। १७।।

पउड़ी १८

(सिक्खी सभ तों शिरोमणी है)

लख जप तप लख संजमाँ होम जग लख वरत करंदे ।
लख तीरथ लख ऊलखा लख पुरीआ लख पुरब लगंदे ।
देवी देवल देहुरे लख पुजारी पूज करंदे ।
जल थल महीअल भरमदे करम धरम लख फेरि फिरंदे ।
लख परबत वण खंड लख लख उदासी होइ भवंदे ।
अगनी अंगु जलाइंदे लख हिमंचलि जाइ गलंदे ।
गुरु सिखी सुखु तिलु न लहंदे ॥ १८ ॥

पउड़ी १९

(पूरे गुरू-नानक बिना गती नहीं)

चारि वरण करि वरतिआ वरनु चिहनु किहु न दरि न आइआ ।
छिअ दरसनु भेख धारीआँ दरसन विचि न दरसनु पाइआ ।

पउड़ी १८

(सिक्ख-जीवन शिरोमणि है)

लाखों जाप-तप, लाखों संयम, होम, यज्ञ एवं व्रत किये जाते हैं । लाखों तीर्थ, दान एवं लाखों पुरियों में लाखों पर्व मनाये जाते हैं । देवियों के देवालय, मंदिर और उनमें लाखों पुजारी पूजा करते हैं । जल स्थल-आकाश में भ्रमण करते एवं धर्म-कर्म करनेवाले लाखों पुजारी भागते-दौड़ते हैं । लाखों लोग पर्वतों पर वनों में उदासीन हो भ्रमण करते रहते हैं । लाखों अग्नि में जल मरनेवाले और लाखों हिम-पर्वतों पर जाकर गल जानेवाले हैं परन्तु ये सब गुरु के सिक्ख-जीवन में प्राप्त होनेवाले सुख का तिल मात्र भी आनन्द नहीं ले पाते ।। १८।।

पउड़ी १९

(पूर्णगुरु के बिना गति नहीं)

वह (प्रभु) चारों वर्णों में व्याप्त है, फिर भी उसका वर्ण-चिह्न किसी को नजर नहीं आता। छः दर्शन के वेशधारियों ने अपने दर्शनों में भी उसका दर्शन प्राप्त नहीं किया।

संनिआसी दस नाव धरि नाउ गणाइ न नाउ धिआइआ ।
रावल बारह पंथ करि गुरमुख पंथु न अलखु लखाइआ ।
बहु रूपी बहु रूपीए रूप न रेख न लेखु मिटाइआ ।
मिलि मिलि चलदे संग लख साधू संगि न रंग रंगाइआ ।
विण गुरु पूरे मोहे माइआ ॥ १९ ॥

पउड़ी २०

(गुरमति ते चलदे बिरले बंदे)

किरसाणी किरसाण करि खेत बीजि सुख फलु न लहंदे ।
वणजु करनि बापारीऐ लै लाहा निज घरि न वसंदे ।
चाकर करि करि चाकरी हउमै मारि न सुलह करंदे ।
पुंन दान चंगिआईआँ करि करि करतब थिरु न रहंदे ।
राजे परजे होइ कै करि करि वादु न पारि पवंदे ।
गुरसिख सुणि गुरु सिख होइ साधसंगति करि मेल मिलंदे ।
गुरमति चलदे विरले बंदे ॥ २० ॥

संन्यासियों ने अपने दस नाम (दस सम्प्रदाय) धारण कर उसे अनेकों नामों से स्मरण किया । रावलों (योगियों) ने बारह पंथ बना लिये, परन्तु गुरुमुखों के अलक्ष्य पंथ को उन्होंने भी नहीं जाना। बहुरूपियों ने बहुत से रूप धारण किये पर फिर भी उनसे रूप-रेखा का लेख मिट न सका अर्थात् आवागमन से वे भी मुक्ति न पा सके । वैसे तो लाखों लोग संग मिलकर चलते हैं अर्थात् विभिन्न जमातें और सम्प्रदाय बनाते हैं पर वे भी साधुसंगति के रंग में अपने मनों को रंग न सके । पूर्णगुरु के बिना सभी माया के वशीभूत हैं ।। १९ ।।

पउड़ी २०

(गुरुमत के अनुसार विरले मनुष्य ही चलते हैं)

किसान कृषि-कार्य करके भी आत्मफल रूपी-सुख-फल प्राप्त नहीं कर पाते। व्यापारी व्यापार करके अपने स्वरूप में स्थित नहीं रह पाते । सेवक सेवा कर-करके अहंभाव को दूर कर प्रभु से मिलाप नहीं करते । पुण्य,दान आदि करनेवाले व्यक्ति भी कई कर्त्तव्य कर्म करने के बावजूद स्थिर नहीं रह पाते । राजा-प्रजा बनकर लोग परस्पर अनेकों विवाद करते हैं पर भवसागर को पार नहीं कर पाते । जो व्यक्ति गुरु के सिक्ख बनकर गुरु की शिक्षा को धारण करते हैं वे साधुसंगति के माध्यम से उस प्रभु को प्राप्त कर लेते हैं । गुरुमत के अनुसार कोई बिरला व्यक्ति ही चल पाता है ।। २० ।।

पउड़ी २१

(बिन गुण गुरू)

गुंगा गावि न जाणई बोला सुणै न अंदरि आणै ।
अंन्है दिसि न आवई राति अन्हेरी घरु न सिञाणै ।
चलि न सकै पिंगुला लूल्हा गलि मिलि हेतु न जाणै ।
संढि सुपुती न थीऐ खुसरे नालि न रलीआँ माणै ।
जणि जणि पुताँ माईआँ डले नाँव धरेनि धिङाणै ।
गुरसिखी सतिगुरू विणु सुरजु जोति न होइ टटाणै ।
साधसंगति गुर सबदु बखाणै ॥ २१ ॥

पउड़ी २२

(सिक्खी सरब शिरोमणी है)

लख धिआन समाधि लाइ गुरमुखि रूपि न अपड़ि सकै ।
लख गिआन वखाणि कर सबद सुरति उडाही थकै ।

पउड़ी २१

(गुणहीन गुरु)

गूँगा गाना नहीं गा सकता और बधिर सुनकर बात को मन में धारण नहीं कर सकता। अंधा देख नहीं सकता और अँधेरी रात में घर की पहचान नहीं कर सकता। अपाहिज चल नहीं सकता एवं लूला किसी से गले मिलकर प्रेम नहीं कर सकता। बाँझ पुत्रवान नहीं हो सकती और नपुंसक के साथ केलिक्रीड़ा नहीं की जा सकती । माताएँ भी पुत्र पैदा कर-करके लाड़-प्यार से उनके बलात् ही अच्छे-अच्छे नाम रखती हैं (पर केवल अच्छे नाम मात्र से कोई अच्छा नहीं बन जाता)। सद्गुरु के बिना गुरुसिक्खी का जीवन वैसे ही असंभव है जैसे जुगनू सूर्य को ज्योतिमान नहीं बना सकता । साधुसंगति में गुरु के शब्द की व्याख्या होती है (और जीव को समझ आती है) ।। २१।।

पउड़ी २२

(सिक्ख-जीवन सर्वशिरोमणि है)

लाखों ध्यान एवं समाधियाँ गुरुमुख के स्वरूप की बराबरी नहीं कर सकते। ज्ञानपूर्ण लाखों व्याख्यानों में सुरति शब्द के साथ उड़ान भरती थक जाती है।

बुधि बल बचन बिबेक लख ढहि ढहि पवनि पिरम दरि धकै ।
जोग भोग बैराग लख सहि न सकहि गुण वासु महकै ।
लख अचरज अचरज होइ अबिगति गति अबिगति विचि अकै ।
विसमादी विसमादु लख अकथ कथा विचि सहमि सहकै ।
गुरसिखी दै अखि फरकै ॥ २२ ॥ २८ ॥ अठाई ॥

लाखों लोग बुद्धि-बल प्रयोग कर विवेक की बातें करते हैं पर वे गिर-गिर पड़ते हैं और प्रभु-द्वार पर उन्हें धक्के ही मिलते हैं। लाखों योगी, भोगी एवं वैरागी हैं पर (तीनों) गुणों की वासना एवं गंध को वे भी नहीं सहन कर पाते। लाखों आश्चर्यपूर्ण होकर उस अव्यक्त प्रभु के अव्यक्त होने के स्वभाव के कारण थक चुके हैं। लाखों ही उस विस्मयकारक प्रभु की अकथनीय कथा में सहमे हुए तड़प रहे हैं। ये सभी गुरुसिक्खी जीवन के आनंद के निमेष मात्र के समान हैं ।। २२।। २८।।

* * *

वार २९

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।।

पउड़ी १

(मंगलाचरण)

आदि पुरख आदेसु है सतिगुरु सचु नाउ सदवाइआ ।
चारि वरन गुरसिख करि गुरमुखि सचा पंथु चलाइआ ।
साधसंगति मिलि गाँवदे सतिगुरु सबदु अनाहदु वाइआ ।
गुर साखी उपदेसु करि आपि तरै सैंसारु तराइआ ।
पान सुपारी कथु मिलि चूने रंगु सुरंग चढ़ाइआ ।
गिआनु धिआनु सिमरणि जुगति गुरमति मिलि गुर पूरा पाइआ ।
साधसंगति सच खंडु वसाइआ ।। १ ।।

पउड़ी २

(सतिगुरू ने अलख लखा दित्ता)

परतन परधन परनिंद मेटि नामु दानु इसनानु दिड़ाइआ ।
गुरमति मनु समझाइकै बाहरि जांदा वरजि रहाइआ ।

पउड़ी १

(मंगलाचरण)

उस आदिपुरुष परमात्मा को प्रणाम है जो सद्गुरु के सच्चे नाम से जाना जाता है। उस सच्चे सद्गुरु (नानकदेव) ने चारों वर्णों को गुरुसिक्ख बनाकर गुरुमुखों का एक सच्चा मार्ग चलाया है। सद्गुरु ने ऐसा अनाहत शब्द झंकृत किया है जिस सभी साधुसंगति में मिलकर गाया करते हैं। (गुरुमुख व्यक्ति) गुरु की शिक्षा का उपदेश सुनाते हैं; आप पार उतरते हैं और संसार को पार लगाते हैं । जैसे पान में कत्था, चूना, सुपारी आदि मिलकर सुन्दर रंग वाले बन जाते हैं, वैसे ही चारों वर्णों से मिलकर बना गुरुमुख पंथ भी सुन्दर है। जिसने पूर्णगुरु से मिलकर गुरुमत को प्राप्त कर लिया है उसने मानों ज्ञान, ध्यान, स्मरण की युक्ति को पहचान लिया है। सद्गुरु ने "साधुसंगत" रूपी सत्यदेश की स्थापना की है ।। १ ।।

पउड़ी २

(सद्गुरु ने अलक्ष्य का साक्षात्कार करा दिया)

(सद्गुरु ने) पराये तन, धन एवं पराई निंदा की ओर से हटाकर नाम, दान एवं स्नान का अभ्यास दृढ़ करवाया है। लोगों ने भी "गुरुमत" के द्वारा मन को समझाकर उसे बाहर भागने से रोक लिया है ।

मनि जितै जगु जिणि लइआ असटधातु इक धातु कराइआ ।
पारस होए पारसहु गुर उपदेसु अवेसु दिखाइआ ।
जोग भोग जिणि जुगति करि भाइ भगति भै आपु गवाइआ ।
आपु गइआ आपि वरतिआ भगति वछल होइ वसगति आइआ ।
साधसंगति विचि अलखु लखाइआ ॥ २ ॥

पउड़ी ३

(असाध विशिआँ नूँ साध लिआ)

सबद सुरति मिलि साधसंगि गुरमुखि दुखसुख समकरि साधे ।
हउमै दुरमति परहरी गुरमति सतिगुर पुरखु आराधे ।
सिव सकती नो लंघि कै गुरमुखि सुख फलु सहज समाधे ।
गुरु परमेसरु एकु जाणि दूजा भाउ मिटाइ उपाधे ।
जंमण मरणहु बाहरे अजरावरि मिलि अगम अगाधे ।

जैसे अष्टधातुओं को एक पारस के साथ मिलाकर एक धातु (कंचन) बनाया जाता है, वैसे ही गुरुमुखों ने एक मन को जीतकर सारे संसार को जीत लिया है । जिन्होंने गुरु-उपदेश के आवेश को धारण किया है वे इस पारस के साथ लगकर पारस हो गये हैं । उन्होंने युक्तिपूर्वक योग, भोग आदि को जीत लिया है और प्रेम-भक्ति में लीन हो भय को गँवा दिया है। जब अहम्भाव गया तो सब ओर उस व्याप्त परमात्मा का आभास प्राप्त हुआ, वह भक्तवत्सल वश में आ गया है। साधुसंगति में ही उस अलक्ष्य को लखा जा सकता है ।। २ ।।

पउड़ी ३

(असाध विषयों को साध लिया)

साधुसंगति में शब्द में सुरति को लीनकर गुरुमुख व्यक्ति दुःख-सुख की समान रूप से साधना करता है। अहम्भाव वाली दुर्मति को छोड़ता है और सद्गुरु की शिक्षा को धारण कर अकालपुरुष की आराधना करता है। शिवशक्ति (माया) के प्रपंच को लाँघकर गुरुमुख सहजभाव से ही सुखफल में लीन हो जाता है । गुरु एवं परमेश्वर को एक ही जानते हुए द्वैतभाव की व्याधियों को मिटा देता है। (गुरुमुख व्यक्ति) जन्म-मरण के चक्र से बाहर हो जाते हैं और उस अगम्य-अगाध से मिलकर काल के प्रभाव (बुढ़ापे) से भी दूर हो जाते हैं ।

आस न त्रास उदास घरि हरख सोग विहु अंम्रित खाधे ।
महा असाध साधसंग साधे ॥ ३ ॥

पउड़ी ४

(सिक्ख दी करनी)

पउणु पाणी बैसंतरो रज गुणु तम गुणु सत गुणु जिता ।
मन बच करम संकलप करि इक मनि होइ विगोइ दुचिता ।
लोक वेद गुर गिआन लिव अंदरि इकु बाहरि बहु भिता ।
मात लोक पाताल जिणि सुरग लोक विचि होइ अथिता ।
मिठा बोलणु निवि चलणु हथहु दे करि पतित पविता ।
गुरमुखि सुख फलु पाइआ अतुलु अडोलु अमोलु अमिता ।
साधसंगति मिलि पीड़ि नपिता ॥ ४ ॥

आशा, भय उन्हें नहीं सताते । वे घर में ही उदासीन भाव से रहते हैं और अमृत-विष पाकर भी हर्ष-शोक से परे रहते हैं । साधुसंगति में महाअसाध्य (रोगों को भी) साध लिये जाते हैं ।। ३।।

पउड़ी ४

(सिक्ख के आचरण)

सिक्ख ने पवन, पानी, अग्नि, रजोगुण, तमोगुण एवं सतोगुणों को जीत लिया है। उसने मन, वचन एवं कर्म से एकाग्र होकर एक ओर ध्यान लगाकर द्वैतभाव को गँवा दिया है। गुरु के ज्ञान में लीनता ही उनकी लोक-मर्यादा है और अन्तर्मन में एक होते हुए भी वे बाहर से अनेक दिखाई देते हैं। वे मातृलोक, पाताललोक को जीतकर स्वर्गलोक में अवस्थित हो जाते हैं । वे मीठा बोलते, विनम्रता से चलते और हाथ से दान देकार पतितों से पुनीत बन जाते हैं । इस प्रकार गुरुमुख व्यक्ति अतुलनीय एवं अमूल्य सुखफल को प्राप्त करते हैं । वे साधुसंगति में मिलकर अहम्भाव (से पूर्ण मन) को मारते हैं ।। ४।।

पउड़ी ५

(साधसंगति विच्च सफल वणज करदे हन)

चारि पदारथ हथ जोड़ि हुकमी बंदे रहनि खड़ोते ।
चारे चक निवाइआ पैरी पै इक सूति परोते ।
वेद न पाइनि भेदु किहु पड़ि पड़ि पंडित सुणि सुणि स्रोते ।
चहु जुगि अंदर जागदी ओति पोति मिलि जगमग जोते ।
चारि वरन इक वरन होइ गुरसिख वड़ीअनि गुरमुखि गोते ।
धरमसाल विचि बीजदे करि गुरपुरब सु वणज सओते ।
साधसंगति मिलि दादे पोते ॥ ५ ॥

पउड़ी ६

(साधसंगति विच्च गुर भाई सोभदे हन)

कामु क्रोधु अहंकार साधि लोभ मोह दी जोह मिटाई ।
सतु संतोखु दइआ धरमु अरथु समरथु सुगरथु समाई ।

पउड़ी ५

(साधुसंगति में वे सफल व्यापार करते हैं)

हुक्मी बदे अर्थात् आज्ञाकारी प्रभु-सेवक के समक्ष चारों पदार्थ हाथ जोड़कर खड़े रहते हैं। प्रभु-सेवक ने चारों दिशाओं को झुका लिया है और सभी को एक सूत्र में पिरो लिया है । वेद और वेदों का गायन करनेवाले पंडित एवं उनके श्रोता भी उसका रहस्य नहीं समझ सके । सदैव जगमगानेवाली उसकी ज्योति चारों युगों में जलती रहती है। चारों वर्णों के सिक्ख एक वर्ण बनकर गुरुमुख गोत्र में सम्मिलित हो गये । वे धर्मशालाओं (गुरुद्वारों) में गुरुजनों के पर्वों को मनाकर सत्कर्म का बीज बोते हैं। साधुसंगति में दादा-पोता एक समान हैं ।। ५।।

पउड़ी ६

(साधुसंगति में गुरुभाई शोभायमान होते हैं)

साधुसंगति में काम, क्रोध, अहंकार को साधकर लोभ, मोह की तृष्णा मिटाई जाती है। साधुसंगति में सत्य, संतोष, दया, धर्म, अर्थ आदि समर्थ पदार्थ समाहित रहते हैं। वहाँ पाँचों तत्वों को पार करके पाँचों शब्दों की बधाई बजती है।

पंजे तत उलंघिआ पंजि सबद वजी वाधाई ।
पंजे मुद्रा वसि करि पंचाइणु हुइ देस दुहाई ।
परमेसर है पंज मिलि लेख अलेख न कीमति पाई ।
पंज मिले परपंच तजि अनहद सबद सबदि लिव लाई ।
साधसंगति सोहनि गुर भाई ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(गुरमुख, साध संग- छे गिणती)

छिअ दरसन तरसनि घणे गुरमुखि सतिगुरु दरसनु पाइआ ।
छिअ सासत्र समझावणी गुरमुखि गुरु उपदेसु दिड़ाइआ ।
राग नाद विसमाद विचि गुरमति सतिगुर सबदु सुणाइआ ।
छिअ रुती करि वरतमान सुरजु इकु चलतु वरताइआ ।
छिअ रस साउ न पाइनी गुरमुखि सुखु फलु पिरमु चखाइआ ।
जती सती चिरु जीवणे चक्रवरति होइ मोहे माइआ ।
साधसंगति मिलि सहजि समाइआ ।। ७ ।।

पाँचों मुद्राओं अर्थात् पाँचों विकारों को वश में वहाँ किया जाता है और वहाँ रहनेवालों की प्रसिद्धि चारों ओर फैल जाती है। जहाँ पाँच व्यक्ति मिल बैठते हैं वहाँ परमेश्वर का निवास है। उस अलेख प्रभु के रहस्य को नहीं जाना जा सकता। परन्तु पाँच मिलते वे ही हैं जिन्होंने प्रपंच का त्याग कर अनहद शब्द में सुरति को लीन किया है। साधुसंगति में ऐसे ही गुरुभाई शोभायमान होते हैं ।। ६।।

पउड़ी ७

(गुरुमुख, साधुसंग-- छः की गिनती)

छः दर्शनों के माननेवाले योगी, जंगम आदि तरसते हैं पर सद्गुरु का दर्शन किसी गुरुमुख को ही होता है । छः शास्त्र तो बाह्यरूप से समझाते हैं पर गुरुमुख व्यक्ति तो गुरु का उपदेश दृढ़ करवाते हैं । राग-रागिनियाँ एवं सभी नाद आश्चर्य में हैं कि सद्गुरु (नानकदेव) ने गुरुमत के अनुरूप शब्द का सिद्धान्त सुनाया-समझाया है। सदगुरु का कौतुक ऐसा है जैसे एक सूर्य ने छः ऋतुओं में स्थित रहकर दिखाया है। छः रस (षट्रस) जिसके स्वाद को नहीं जान सके गुरुमुखों ने ऐसे सुखफल को प्राप्त किया है। यति, सत्यमार्गी, चिरंजीव एवं चक्रवर्ती आदि माया में ग्रस्त हैं। साधुसंगति में आकर ही सहज में समाहित हुआ जा सकता है ।। ७।।

पउड़ी ८

(शबद कमाई, साध संग-सत्त गिणती)

सत समुंद समाइ लै भवजल अंदरि रहे निराला ।
सते दीप अन्हेरु है गुरमुखि दीपकु सबद उजाला ।
सते पुरीआ सोधीआ सहज पुरी सची धरमसाला ।
सते रोहणि सत वार साधे फड़ि फड़ि मथे वाला ।
त्रै सते ब्रहमंडि करि वीह इकीह उलंघि सुखाला ।
सते सुर भरपूरु करि सती धारी पारि पिआला ।
साधसंगति गुर सबद समाला ॥ ८ ॥

पउड़ी ९

(मनवस, साध संग-अट्ठ गिणती)

अठ खंडि पाखंड मति गुरमति इक मनि इक धिआइआ ।
असटधातु पारस मिली गुरमुखि कंचनु जोति जगाइआ ।

पउड़ी ८

(शब्द साधना, साधुसंग-सात संख्या)

साधुसंगत में विचरण करनेवाले व्यक्ति सातों समुद्रों को भी वश में करके इस भवसागर से निर्लिप्त रहते हैं । सातों द्वीपों के अंधकार को गुरुमुख व्यक्ति शब्द-दीपक से प्रकाशमान कर देता है। गुरुमुख ने सातों पुरियों को देखा एवं उनकी साधना की है; केवल सहज रूपी पुरी ही सच्चा धर्मस्थान है। रोहिणी, स्वाति आदि सातों प्रमुख नक्षत्रों, सातों दिनों को तो उसने माथे से पकड़कर साध लिया है अर्थात् वह इनसे संबधित प्रपंचों से दूर हो गया है । सात का तीन गुना इक्कीस पुरियों के ब्रह्मांड के प्रपंचों को लाँघकर गुरुमुख व्यक्ति सुखपूर्वक रहता है। उसने सात सुरों की व्यापकता को भी जान लिया है और उसने पर्वतों की सातों धाराओं को भी पार कर लिया है। ऐसा इसलिए हो सका है क्योंकि उसने साधुसंगति में गुरु के शब्द को सँभाला है उसकी साधना की है ।। ८।।

पउड़ी ९

(साधुसंग-आठ संख्या)

(चार वर्ण, चार आश्रम) आठ खंडों एवं अनेकों पाखंडी मतों से परे होकर गुरुमत में चलनेवाला एक मन से एक प्रभु की आराधना करता है ।

रिधि सिधि सिध साधिकाँ आदिपुरख आदेसु कराइआ ।
अठै पहर अराधीऐ सबद सुरति लिव अलखु लखाइआ ।
असट कुली विहु उतरी सतिगुर मति न मोहे माइआ ।
मनु असाधु न साधीऐ गुरमुखि सुख फलु साधि सधाइआ ।
साधसंगति मिलि मन वसि आइआ ॥ ९ ॥

पउड़ी १०

(गुरमति साध संग—नौं गिणती)

नउ परकारी भगति करि साधै नवै दुआर गुरमती ।
गुरमुखि पिरमु चखाइआ गावै जीभ रसाइणि रती ।
नवी खंडी जाणाइआ राजु जोग जिणि सती असती ।
नउ करि नउ घर साधिआ वरतमान परलउ उतपती ।
नव निधि पिछलगणी नाथ अनाथ सनाथ जुगती ।

चारों वर्णों और चारों मजहबों रूपी अष्टधातु गुरु रूपी पारस से मिलकर एक गुरुमुख रूपी कंचन में परिवर्तित हो ज्योतिमान हो उठी है। ऋद्धियों, सिद्धियों वाले सिद्धों-साधकों ने उस आदिपुरुष को ही प्रणाम किया है। आठों प्रहर ही उस प्रभु की आराधना की जानी चाहिए जिसके शब्द में सुरति लीन करने से अलक्ष्य को लखा जाता है। सद्गुरु के मत को मानने से आठों पीढ़ियों का विष (कलंक) समाप्त हो गया और अब बुद्धि माया के कारण भ्रमित नहीं होती । जो असाध्य मन सधता नहीं उसे गुरुमुखों ने प्रेमभक्ति के फलस्वरूप साध लिया है। साधुसंगति से मिलने पर मन वश में आता है ।। ९ ।।

पउड़ी १०

(गुरुमत, साधुसंग—नौ संख्या)

नवधा भक्ति (श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, सख्य, दास्य, आत्मनिवेदन) करके गुरुमत में चलकर गुरुमुख नव द्वारों को साध लेता है अर्थात् उन पर नियंत्रण कर लेता है । गुरुमुख व्यक्ति प्रेम-रस को चखकर जिह्वा से पूर्ण अनुरक्तता के साथ उसे प्रभु का गुणानुवाद करते हैं । गुरुमुख ने राजयोग के माध्यम से सत्-असत् को जीत लिया है और इस प्रकार उसे नव खंडों में जाना जाता है । विनम्र होकर उसने नवद्वारों को साध लिया है और साथ ही साथ प्रलय, उत्पत्ति में भी अपने आपको व्याप्त कर लिया है। नवनिधियाँ उसके पीछे घूमती हैं और गुरुमुख व्यक्ति नव नाथों को भी मुक्त होने की युक्ति बताते हैं ।

नउ उखल विचि उखली मिठी कउड़ी ठंढी तती ।
साधसंगति गुरमति सणखती ॥ १० ॥

पउड़ी ११

(सिक्ख कीह करे ?)

देखि पराईआँ चंगीआँ मावाँ भैणाँ धीआँ जाणै ।
उसु सूअरु उसु गाइ है पर धन हिंदू मुसलमाणै ।
पुत्त कलत्त कुटंबु देखि मोहे मोहि न धोहि धिङाणै ।
उसतति निंदा कंनि सुणि आपहु बुरा न आखि वखाणै ।
वड परतापु न आपु गणि करि अहंमेउ न किसै रञाणै ।
गुरमुखि सुख फल पाइआ राजु जोगु रस रलीआ माणै ।
साधसंगति विटहु कुरबाणै ॥ ११ ॥

पउड़ी १२

(गुरमुख दी अवसथा)

गुरमुखि पिरमु चखाइआ भुख न खाणु पीअणु अंनु पाणी ।
सबद सुरति नींद उघड़ी जागदिआँ सुख रैणि विहाणी ।

नव गोलकों में जिह्वा जो पहले कड़वी, मीठी, गर्म, ठंडी, होती थी अब साधुसंगति और गुरुमत के फलस्वरूप आनंददायक एवं सफल हो गई है ।। १० ।।

पउड़ी ११

(सिक्ख क्या करे ?)

परायी सुन्दर स्त्रियों को देखकर (सिक्ख) उन्हें माँ, बहन और बेटी समझे। पराया धन उसके लिए वैसा ही जैसा हिन्दू के लिए गोमांस और मुस्लिम के लिए सूअर है । पुत्र, स्त्री, कुटुम्ब के मोह में पड़कर वह किसी के साथ द्रोह एवं ठगी न करे। कानों से किसी की स्तुति-निंदा सुनकर भी स्वयं किसी को बुरा न कहे। स्वयं को बड़ा प्रतापी न गिने और अहम्भाव से किसी को प्रताड़ित न करे । ऐसे स्वभाववाला गुरुमुख राजयोग (उपर्युक्त चरित्र) को साधना कर सुखपूर्वक रहता है और साधुसंगति पर बलिहारी जाता है ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(गुरुमुख की अवस्था)

प्रेमरस को चखनेवाले गुरुमुख को अन्न-पानी और खाने-पीने की भूख नहीं लगती। शब्द में सुरति लगाने के कारण उसकी नींद उखड़ चुकी होती है

साहे बधे सोहदे मैलापड़ परवाणु पराणी ।
चलणु जाणि सुजाण होइ जग मिहमान आए मिहमाणी ।
सचु वणजि खेप लै चले गुरमुखि गाडी राहु नीसाणी ।
हलति पलति मुख उजले गुरसिख गुरसिखाँ मनि भाणी ।
साधसंगति विचि अकथ कहाणी ॥ १२ ॥

पउड़ी १३

(साधसंगति विच्च मिल के भाणा मंनो)

हउमै गरबु निवारीऐ गुरमुखि रिदै गरीबी आवै ।
गिआन मती घटि चानणा भरम अगिआनु अंधेरु मिटावै ।
होइ निमाणा ढहि पवै दरगह माणु निमाणा पावै ।
खसमै सोई भाँवदा खसमै दा जिसु भाणा भावै ।

और वह मोह-माया रूपी रात्रि में चेतनापूर्वक जगकर सुखपूर्वक रात बिता देता है। जैसे विवाह से कुछ दिन पहले दूल्हा-दुलहिन मैले कपड़े पहने भी सुन्दर लगते हैं उसी प्रकार गुरुमुख व्यक्ति भी शोभायमान होते हैं। संसार से चले जाने के रहस्य को समझते हैं, इसलिए वे सुजान समझे जाते हैं और इस संसार में वे अतिथि की तरह आ आतिथ्य ग्रहण कर चले जाते हैं। गुरुमुख व्यक्ति (गुरुमत के) राजमार्ग को पहचानते हुए सत्य पदार्थों की खेप लादकर उस पर चलते जाते हैं। गुरु के सिक्खों के मन को गुरु की शिक्षा भा जाती है और इहलोक-परलोक में उनके मुख उज्ज्वल होते हैं। साधुसंगति में सदैव उस अकथनीय प्रभु की ही कथा-वार्ता चलती है ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(साधुसंगति में मिलकर प्रभु-रजा मानो)

अहम् एवं गर्व के निवारण करने से ही गुरुमुख के हृदय में विनम्रता आन बसती है। हृदय में ज्ञान के प्रकाश के कारण भ्रम एवं अज्ञान रूपी अँधेरा मिट जाता है। जब गुरुमुख विनम्र हो चरणों में आ गिरता है तो मानहीन उस गुरुमुख को प्रभु-दरबार में भी सम्मान मिलता है। स्वामी को भी वही व्यक्ति अच्छा लगता है जिसे स्वामी की आज्ञा अच्छी लगती है। जो प्रभु-इच्छा को मानता है उसे सभी मानते हैं और फिर प्रभु भी अपनी रजा स्वयं मनवाता चला जाता है ।

भाणा मंनै मंनीऐ अपणा भाणा आपि मनावै ।
दुनीआ विचि पराहुणा दावा छडि रहै ला दावै ।
साधसंगति मिलि हुकमि कमावै ॥ १३ ॥

पउड़ी १४

(साधसंगति विच्च इक दी अराधना)

गुरु परमेसरु इकु जानि गुरमुखि दूजा भाउ मिटाइआ ।
हउमै पालि ढहाइ कै ताल नदी दा नीरु मिलाइआ ।
नदी किनारै दुह वली इक दू पारावारु न पाइआ ।
रुखहु फलु तै फलहु रुखु इकु नाउ फलु रुखु सदाइआ ।
छिअ रुती इकु सुझ है सुझै सुझु न होरु दिखाइआ ।
रातीं तारे चमकदे दिह चड़िऐ किनि आखु लुकाइआ ।
साधसंगति इक मनि इकु धिआइआ ॥ १४ ॥

गुरुमुख समझता है कि वह संसार में मेहमान है, इसीलिए वह सभी दावों (क्लेमों) को छोड़कर कोई भी दावा किये बिना निर्वाह किया जाता है । साधुसंगति में रहकर वह प्रभु के आदेश के अनुरूप साधना करता है ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(साधुसंगति में एक ही प्रभु की आराधना)

गुरु और परमेश्वर को एक ही जानकर गुरुमुख ने द्वैतवाद को मिटा दिया है । गुरुमुख ने अहम् की दीवार गिराकर अपने स्व को प्रभु में ऐसे अभेद कर दिया है जैसे नदी का जल सागर में मिलकर एक हो जाता है। बेशक नदी दोनों किनारों से घिरी रहती है, पर दोनों किनारे उसकी थाह नहीं जान सकते (इसी प्रकार जीव उस प्रभु का अन्त नहीं जान सकता)। वृक्ष से फल और फल से वृक्ष पैदा होता है अत: वास्तव में दोनों एक ही हैं (चाहे अवस्था-भेद के कारण उनके नाम अलग-अलग हैं)। छ: ऋतुओं में एक ही सूर्य है और उसी के सुझाए सब सूझता है अन्य कोई भी कुछ नहीं सुझा सकता । रात में अर्थात् अन्धकार में बेशक तारागण चमक लेते हैं पर दिन निकल आने पर भला किसके कहने से वे छिप जाते हैं अर्थात् सूर्य के प्रकाश में वे स्वत: विलुप्त हो जाते हैं (उसी प्रकार ज्ञान के प्रकाश से अज्ञानता का अन्धकार स्वत: ही मिट जाता है)। साधुसंगति में गुरुमुख एकाग्र मन से उस एक प्रभु की आराधना करते हैं ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(गुरसिक्ख जोगी)

गुरसिख जोगी जागदे माइआ अंदरि करनि उदासी ।
कंनीं मुंदराँ मंत्र गुर संताँ धूड़ि बिभूत सु लासी ।
खिंथा खिमा हंढावणी प्रेम पत्तु भाउ भुगति बिलासी ।
सबद सुरति सिंङी वजै डंडा गिआनु धिआनु गुर दासी ।
साधसंगति गुर गुफै बहि सहजि समाधि अगाधि निवासी ।
हउमै रोग अरोग होइ करि संजोगु विजोग खलासी ।
साधसंगति दुरमति साबासी ॥ १५ ॥

पउड़ी १६

(साधसंगति विच्च आशक हो के देखे)

लख ब्रहमे लख वेद पड़ि नेत नेत करि करि सभ थके ।
महादेव अवधूत लख जोग धिआन उणीदै अके ।

पउड़ी १५

(गुरुसिख योगी)

गुरु के सिक्ख योगी सदैव चेतन अवस्था में रहते हैं और माया में भी उदास बने रहते हैं। गुरु का मंत्र ही उनके लिए काम की मुद्राएँ हैं और संतों की चरण-धूलि ही उनके लिए विभूति है। क्षमा उनके लिए गुदड़ी है, प्रेम उनका खप्पर (पात्र) है एवं भक्तिभाव उनका खाद्य प्रसाद है। यही सब उनका ऐश्वर्य है। उनकी सिंगी का बजना शब्द में सुरति लगाना है, उनका डंडा ज्ञान है और गुरु का सेवक बनना ही उनके लिए सच्चा ध्यान लगाना है। वे साधुसंगति-रूपी गुफा में बैठकर अगाध सहज समाधि में निवास करते हैं। वे अहम्-रोग से छुटकारा पा नीरोग होकर संयोग-वियोग भाव के अधीन किये जानेवाले कर्मों से स्वतन्त्र बन जाते हैं। साधुसंगति एवं गुरुमत उसके लिए शाबाशी का कारण बनते हैं ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(साधुसंगति के प्रेमी बनकर देखो)

लाखों ब्रह्मा लाखों वेद पढ़-पढ़कर भी नेति-नेति कह-कहकर थक गये हैं। महादेव एवं लाखों अवधूत भी योगनिद्रा की अनिद्रा के कारण खिन्न हो चुके हैं ।

लख बिसन अवतार लै गिआन खड़गु फड़ि पहुचि न सके ।
लख लोमसु चिर जीवणे आदि अंति विचि धीरक धके ।
तिनि लोअ जुग चारि करि लख ब्रहमंड खंड कर ढके ।
लख परलउ उतपति लख हरहट माला आखि फरके ।
साधसंगति आसकु होइ तके ॥ १६ ॥

पउड़ी १७

(मनु जीतै जगु जीतु)

पारब्रहमु पूरन ब्रहमु आदि पुरखु है सतिगुरु सोई।
जोग धिआनु हैरानु होइ वेद गिआन परवाह न होई ।
देवी देव सरेवदे जल थल महीअल भवदे लोई ।
होम जग जप तप घणे करि करि करम धरम दुख रोई ।
वसि न आवै धाँवदा अठु खंडि पाखंड विगोई ।

लाखों विष्णु-अवतार (लेकर और ज्ञान रूपी खड्ग भी हाथ में लेकर) उस (प्रभु) तक पहुँच नहीं सके । लोमस ऋषि जैसे लाखों चिरंजीव लोग अंत में धैर्य को धारण कर भी यत्र-तत्र धक्के खाते घूमते हैं (परन्तु प्रभु-साक्षात्कार प्राप्त नहीं कर सके)। उस (प्रभु) ने तीनों लोकों, चारों युगों (लाखों ब्रह्मांडों) एवं खंडों को अपने से ढक रखा है अर्थात् वह इन सबसे भी बड़ा है । लाखों प्रलय एवं सृष्टियाँ रहट के चक्र की तरह चलती रहती हैं और उसके नेत्र निमेष मात्र में घटित हो जाती है । साधुसंगति का यदि कोई प्रेमी बने तो इस रहस्य को जान सकता है ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(मन को जीतने से ही संसार जीता जाता है)

वह परब्रह्म जो कि पूर्णब्रह्म है, वही आदिपुरुष एवं सद्गुरु है। योगी भी उसके ध्यान में हैरान होते हैं और उसी के लिए वेदों के ज्ञान की भी परवाह नहीं की जाती। देवी-देवताओं की आराधना करते हुए लोग जल-स्थल एवं आकाश में (विभिन्न योनियों के अंतर्गत) भ्रमण करते रहते हैं। वे होम, यज्ञ, तपस्याएँ आदि गहन रूप से करते हैं और धर्म-कर्म के कांड करते हुए भी रोते ही रहते हैं अर्थात् दुख दूर नहीं कर पाते। क्योंकि सदैव दौड़ता हुआ मन वश में नहीं आता, इसलिए इसने संसार के सारे खंडों को खराब कर रखा है। गुरुमुखों ने मन को जीतकर जगत् को जीत लिया है और अहम्भाव को गँवाकर सबको अपना बना लिया है।

गुरमुखि मनु जिणि जगु जिणै आपु गवाइ आपे सभ कोई ।
साधसंगति गुण हारु परोई ॥ १७ ॥

पउड़ी १८

(गुरू मलाह, साध संग)

अलख निरंजनु आखीऐ रूप न रेख अलेख अपारा ।
अबिगति गति अबिगति घणी सिमरणि सेख न आवै वारा ।
अकथ कथा किउ जाणीऐ कोइ न आखि सुणावणहारा ।
अचरजु नो आचरजु होइ विसमादै विसमादु सुमारा ।
चारि वरन गुरु सिख होइ घर बारी बहु वणज वपारा ।
साधसंगति आराधिआ भगति वछलु गुरु रूपु मुरारा ।
भवसागरु गुरि सागर तारा ॥ १८ ॥

पउड़ी १९

(गुरू नूँ सोझी पाई)

निरंकारु एकंकारु होइ ओअंकारि अकारु अपारा ।
रोम रोम विचि रखिओनु करि ब्रहमंड करोड़ि पसारा ।

(गुरुमुखों ने) साधुसंगति में से ही गुणों की माला पिरोई है ।। १७।।

पउड़ी १८

(गुरु केवट, साधुसंग)

वह अलख निरंजन, रूप-रेखा एवं लेखों से परे समझा जाता है। अव्यक्त प्रभु की गति भी गहन रूप से अव्यक्त है और शेषनाग के द्वारा निरंतर स्मरण किये जाने पर भी उसका रहस्य नहीं जाना जा सका। उसकी अकथनीय कथा को कैसे जाना जाए क्योंकि कोई भी उसके बारे में कहने-सुननेवाला नहीं है। आश्चर्य को भी उसके बारे में सोचकर आश्चर्य होता है और विस्मय को भी अपार विस्मय होता है। चारों वर्णों के लोग गुरु के सिक्ख बनकर विभिन्न प्रकार के वाणिज्य-व्यापार करते हैं। वे साधुसंगति में भक्तवत्सल गुरु-रूप मुरारि की अर्चना-आराधना करते हैं और गुरु उन्हें भवसागर से पार कर देता है ।।१८ ।।

पउड़ी १९

(गुरुमुख को सूझ प्राप्त होती है)

निराकार ने एकंकार एवं ॐकार का स्वरूप धारण कर अपार नाम-रूपों की रचना की। उसने अपने रोम-रोम में करोड़ों ब्रह्मांडों का प्रसार रख छोड़ा है।

केतड़िआँ जुग वरतिआ अगम अगोचरु धुंधूकारा ।
केतड़िआँ जुग वरतिआ करि करि केतड़िआँ अवतारा ।
भगति वछलु होइ आइआ कली काल परगट पाहारा ।
साधसंगति वसगति होआ ओति पोति करि पिरम पिआरा ।
गुरमुखि सुझै सिरजणहारा ॥ १९ ॥

पउड़ी २०

(सतिगुर ते सिक्ख, साध संग)

सतिगुर मूरति परगटी गुरमुखि सुखफलु सबद विचारा ।
इकदू होइ सहस फलु गुरु सिख साधसंगति ओअंकारा ।
डिठा सुणिआ मंनिआ सनमुखि से बिरले सैसारा ।
पहिलो दे पा खाक होइ पिछहु जगु मंगै पग छारा ।
गुरमुखि मारगु चलिआ सचु वनजु करि पारि उतारा ।

कितने ही युगों तक अगम्य-अगोचर धुंध ही बनी रही। कितने ही युगों तक कितने ही अवतारों के कार्य-व्यापार चलते रहे। कलियुग में वही भक्तवत्सल बनकर प्रकट रूप से (गुरु-रूप में) आया है। प्रेमी और प्रिय के रूप में वह ओत-प्रोत होकर साधुसंगति के वशंगत होकर रह रहा है। गुरुमुख को ही उस सृजनकर्त्ता की सूझ प्राप्त होती है ।। १९ ।।

पउड़ी २०

(सद्गुरु और सिक्ख, साधुसंग)

सद्गुरु प्रकट हुआ तो गुरुमुखों ने शब्द के विचार रूपी सुखफल को प्राप्त किया। उस एक गुरु से हजारों सिक्खों के रूप में फल बने। साधुसंगति में और गुरु-सिक्खों के हृदय में मात्र ॐकार का ही निवास है। जिन्होंने गुरु के सम्मुख होकर उसे देखा, सुना और उसका आदेश माना हो ऐसे गुरुमुख विरले ही हैं। पहले वे गुरु की चरणधूलि बनते हैं पर बाद में संसार उनके चरणों की धूलि माँगता है। गुरुमुखों के मार्ग पर चलने से सत्य का व्यापार करते हुए पार उतरा जाता है।

कीमति कोइ न जाणई आखणि सुणनि न लिखणिहारा ।
साधसंगति गुर सबदु पिआरा ॥ २० ॥

पउड़ी २१

(गुर-चेले दा मेल)

साधसंगति गुरु सबद लिव गुरमुखि सुख फलु पिरमु चखाइआ ।
सभ निधान कुरबान करि सभे फल बलिहार कराइआ ।
त्रिसना जलणि बुझाईआँ सांति सहज संतोखु दिड़ाइआ ।
सभे आसा पुरीआ आसा विचि निरासु वलाइआ ।
मनसा मनहि समाइ लै मन कामन निहकाम न धाइआ ।
करम काल जम जाल कटि करम करे निहकरम रहाइआ ।
गुर उपदेसु अवेसु करि पैरी पै जगु पैरी पाइआ ।
गुर चेले परचा परचाइआ ॥ २१ ॥ २९ ॥ उणत्तीह ॥

ऐसे व्यक्तियों की महिमा न तो कोई जानता है और न ही उनकी महिमा लिखी-सुनी या कही जा सकती है । साधुसंगति में उन्हें गुरु का शब्द ही प्यारा लगता है ।। २० ।।

पउड़ी २१

(गुरु-शिष्य का मिलाप)

साधुसंगति और गुरु-शब्द में सुरति लीन करने के फलस्वरूप गुरुमुखों ने प्रेम रूपी सुखफल को चखा है। इस सुखफल पर उन्होंने सभी खजानों को कुर्बान कर दिया है और अन्य सभी फलों को भी बलिहारी कर दिया है। इस सुखफल ने तृष्णा एवं जलन बुझा दी है तथा शांति, साम्यावस्था तथा संतोष की भावना को दृढ़ किया है। सभी आशाएँ पूरी हो गई हैं और आशाओं के प्रति उदासीनता की भावना आ गई है। मन की वृत्तियाँ मन में ही समाप्त हो गई हैं और मन-निष्कर्म होकर अब किसी ओर भी नहीं दौड़ता। कर्मकांड एवं यमपाश को काटकर कर्म करता हुआ भी मन अब निष्कर्म हो गया है । गुरु के उपदेश से आवेष्टित हो पहले गुरुमुख गुरु के चरणों में गिरा एवं फिर उसने सारे संसार को अपने चरणों में गिरा लिया। इस प्रकार गुरु के साथ चेले ने प्रेम की पहचान कर ली है ।। २१ ।। २९ ।।

* * *

वार ३०

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।।

पउड़ी १

(मंगलाचरण, सच्च ते कूड़)

सतिगुर सचा पातिसाहु गुरमुखि सचा पंथु सुहेला ।
मनमुख करम कमाँवदे दुरमति दूजा भाउ दुहेला ।
गुरमुखि सुख फलु साधसंग भाइ भगति करि गुरमुखि मेला ।
कूड़ु कुसतु असाध संगु मनमुख दुख फलु है विहु वेला ।
गुरमुखि आपु गवावणा पैरी पउणा नेहु नवेला ।
मनमुख आपु गणावणा गुरमति गुर ते उकड़ु चेला ।
कूड़ सचु सीह बकर खेला ।। १ ।।

पउड़ी २

(गुरमुख, मनमुख, सच्च ते कूड़)

गुरमुखि सुख फलु सचु है मनमुख दुख फलु कूड़ु कूड़ावा ।
गुरमुखि सचु संतोखु रुखु दुरमति दूजा भाउ पछावा ।

पउड़ी १

(मंगलाचरण, सत्य और झूठ)

सद्गुरु सच्चा सम्राट है और गुरुमुखों का मार्ग सुखदायक मार्ग है। स्वेच्छाचारी व्यक्ति दुर्बुद्धि के वशीभूत हो कर्म करते हैं और द्वैतभाव के दुखदायक मार्ग पर चलते हैं। गुरुमुखों को साधुसंगति में सुखफल की प्राप्ति होती है और भक्ति-भाव में रहने से गुरुमुखों से मिलाप होता है। झूठ, असत्य एवं असाधु व्यक्तियों की संगति में स्वेच्छाचारी व्यक्तियों का दुख-फल विष की बेल के समान बढ़ता चला जाता है। अहम्भाव को गँवाना और चरणों में गिर जाना गुरुमुखों का प्रेम का नया ही मार्ग है। स्वेच्छाचारी स्वयं का जतलाता है और गुरु तथा गुरुमत से विलग होकर चलता है। झूठ और सत्य के मिलाप का खेल तो शेर और बकरी के मिलने जैसा (असंभव) है ।।१।।

पउड़ी २

(गुरुमुख, स्वेच्छाचारी, सत्य और झूठ)

गुरुमुख को सत्य रूपी सुखफल तथा स्वेच्छाचारी को झूठ का कड़ुवा फल प्राप्त होता है। गुरुमुख सत्य एवं संतोष का वृक्ष है

गुरमुखि सचु अडोलु है मनमुख फेरि फिरंदी छावाँ ।
गुरमुखि कोइल अंब वण मनमुख वणि वणि हंढनि कावाँ ।
साधसंगति सचु बाग है सबद सुरति गुर मंतु सचावाँ ।
विहु वणु वलि असाध संगि बहुतु सिआणप निगोसावाँ ।
जिउ करि वेसुआ वंसु निनावाँ ॥ २ ॥

पउड़ी ३

(गुरमुख, मनमुख, सच्च ते कूड़)

गुरमुखि होइ वीआहीऐ दुही वली मिलि मंगल चारा ।
दुहु मिलि जंमै जाणीऐ पिता जाति परवार सधारा ।
जंमदिआँ रुणझुंझणा वंसि वधाई रुणझुणकारा ।
नानक दादक सोहिले विरतीसर बहु दान दतारा ।

और दुर्बुद्धि व्यक्ति द्वैतभाव की छाया के समान (हानिकारक) है। गुरुमुख सत्य की तरह अटल है तथा स्वेच्छाचारी तो सदैव घूमती डोलती छाया के समान है । गुरुमुख तो कोकिल के समान है, जो आम की कोयल है, जो उसी पर बैठती है अर्थात् गुरुमुख तो केवल सद्संगति में ही रहते हैं पर स्वेच्छाचारी कौवे के समान वनों में स्थान-स्थान पर भटकते रहते हैं । साधुसंगति तो सच्चा बाग है और शब्द में सुरति को लीन करनेवाला गुरुमंत्र सच्ची छाया है । असाधुओं की संगति विष-बेल की तरह है एवं गुरु-हीन व्यक्ति (स्वेच्छाचारी-मनमुख) इस विष-बेल को बढ़ाने के लिए बहुत सी चतुराइयाँ किया करता है । फिर भी वेश्या का पुत्र बेनाम ही होता है ।। २ ।।

पउड़ी ३

(पूर्वोक्त)

गुरुमुख ऐसे हैं जैसे दो परिवारों में विवाह संबंध होने पर मंगलाचार का सुख प्राप्त होता है । वे ऐसे ही सुख देनेवाले हैं जैसे पति-पत्नी के मिलाप से पुत्र पैदा होने से सुख होता है क्योंकि इस तरह पिता की कुल एवं परिवार में वृद्धि होती है । बच्चे के जन्म लेते ही शहनाइयाँ बजती हैं और वंश वृद्धि पर खुशी मनाई जाती है । पिता और ननिहाल में खुशी के गीत गाये जाते हैं एवं सेवकों को अनेकों

बहु मिती होइ वेसुआ ना पिउ नाउँ निनाउँ पुकारा ।
गुरमुखि वंसी परम हंस मनमुखि ठग बग वंस हतिआरा ।
सचि सचिआर कूड़हु कूड़िआरा ॥ ३ ॥

पउड़ी ४

(गुरमुख, मनमुख, सच्च ते कूड़)

मान सरोवरु साधसंगु माणक मोती रतन अमोला ।
गुरमुखि वंसी परम हंस सबद सुरति गुरमति अडोला ।
खीरहु नीर निकालदे गुरमुखि गिआनु धिआनु निरोला ।
गुरमुखि सचु सलाहीऐ तोलु न तोलणहारु अतोला ।
मनमुख बगुल समाधि है घुटि घुटि जीआँ खाइ अबोला ।
होइ लखाउ टिकाइ जाइ छपड़ि ऊहु पड़ै मुहचोला ।
सचु साउ कुड़ु गहिला गोला ॥ ४ ॥

दान दिये जाते हैं । अनेकों को मित्र बनानेवाली वेश्या के पुत्र के बाप का नाम नहीं होता और उसे बेनाम ही जाना जाता है । गुरुमुखों का वंश परमहंस (की तरह सत्य-झूठ को पहचाननेवाला) होता है तथा स्वेच्छाचारियों का वंश कपटी बगुलों की तरह अन्यों को मार डालनेवाला होता है । सत्य से सत्याचारी एवं झूठ से झूठे ही पनपते हैं ।। ३ ।।

पउड़ी ४

(वही)

साधुसंगति रूपी मानसरोवर में अमूल्य माणिक, मोती एवं लाल हैं। गुरुमुख भी परमहंसों के वंश के हैं जो सुरति को शब्द में लीनकर स्थिर अवस्था में बने रहते हैं । गुरुमुख अपने शुद्ध ज्ञान-ध्यान के बल पर दूध में से पानी अलग कर देते हैं । गुरुमुख सत्य का ही गुणानुवाद करते हुए अतुलनीय बन जाते हैं उनकी महिमा को कोई नहीं जाँच-तौल सकता । स्वेच्छाचारी व्यक्ति तो बगुले के समान हैं जो चुपचाप जीवों का गला दबाकर उन्हें खा जाता है । किसी शान्त तालाब पर उसके जा बैठने को देखते ही वहाँ जीवों में हाहाकार मच जाती है। सत्य तो मानों सच्चा साहूकार है और झूठ नीच गुलाम है ।। ४ ।।

पउड़ी ५

(गुरमुख, मनमुख, सच्च ते कूड़)

गुरमुख सचु सुलखणा सभि सुलखण सचु सुहावा ।
मनमुख कूड़ कुलखणा सभ कुलखण कूड़ु कुदावा ।
सचु सुइना कूड़ु कचु है कचु न कंचन मुलि मुलावा ।
सचु भारा कूड़ु हउलड़ा पवै न रतक रतन भुलावा ।
सचु हीरा कूड़ु फटकु है जड़ै जड़ाव न जुड़ै जुड़ावा ।
सच दाता कूड़ु मंगता दिहु राती चोर साह मिलावा ।
सचु साबतु कूड़ि फिरदा फावा ॥ ५ ॥

पउड़ी ६

(सच्च ते कूड़)

गुरमुखि सचु सुरंगु है मूलु मजीठ न टलै टलंदा ।
मनमुखु कूड़ु कुरंग है फुल कुसुंभै थिर न रहंदा ।

पउड़ी ५

(वही)

सच्चा गुरुमुख शुभ लक्षणों वाला होता है और सभी शुभ लक्षण उसमें शोभायमान होते हैं । स्वेच्छाचारी झूठे लक्षणों वाला होता है और उसमें सभी कुलक्षणों के साथ खोटे दाँवपेंच भी होते हैं । सत्य सोना और झूठ काँच के समान है। काँच कभी कंचन के भाव नहीं मोल लिया जा सकता । सत्य निश्चित ही भारी और झूठ हल्का होता है । रत्ती से कभी रत्न का धोखा नहीं खाया जा सकता। सत्य हीरा है और झूठ पत्थर है उसे कभी माला में जड़ा नहीं जा सकता। सत्य तो दानी है जबकि झूठ भिखारी है; ये दोनों ही चोर और साहूकार तथा दिन और रात की तरह (कभी नहीं) मिलते हैं। सत्य तो पूर्ण है और झूठ हारा हुआ दौड़ा फिरता है ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(सत्य और झूठ)

गुरुमुख रूपी सत्य ऐसा सुन्दर मजीठ रंग है जो उतारे से भी कभी नहीं उतरता। स्वेच्छाचारी झूठ का ऐसा रंग है जो कुसुम्भ के फूल की तरह कभी स्थिर रह ही नहीं सकता।

थोम, कथूरी, वासु लै नकु मरोड़ै मनि भावंदा ।
कूड़ु सचु अक अंब फल कउड़ा मिठा साउ लहंदा ।
साह चोर सचु कूड़ु है साहु सवै चोरु फिरै भवंदा ।
साह फड़ै उठि चोर नो तिसु नुकसानु दीबाणु करंदा ।
सचु कूड़ै लै निहड़ि बहंदा ॥ ६ ॥

पउड़ी ७

(सच्च ते कूड़)

सचु सोहै सिर पग जिउ कोझा कूड़ु कुथाइ कछोटा ।
सचु सताणा सारदूलु कूड़ु जिवै हीणा हरणोटा ।
लाहा सचु वणंजीऐ कूड़ु कि वणजहु आवै तोटा ।
सचु खरा साबासि है कूड़ न चलै दमड़ा खोटा ।
तारे लख अमावसै घेरि अनेरि चनाइणु होटा ।

झूठ लहसुन की तरह है जिसकी गंध लेकर नाक-भौं सिकोड़ा जाता है और सत्य कस्तूरी की गंध है जो मन को भाती है । झूठ और सत्य ऐसे ही हैं जैसे क्रमशः आक और आम के फल हैं जो कड़वे, मीठे स्वाद वाले होते हैं । सत्य और झूठ साहूकार और चोर के समान हैं । साहूकार तो सोता है पर चोर मारा-मारा घूमता है । साहूकार उठकर चोर को पकड़ लेता है और कचहरी में उसका और भी नुक़्सान कराता है । सच्चा व्यक्ति अन्त में झूठे को रस्सी से बाँध ही लेता है ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(सत्य और झूठ)

सत्य सिर पर पगड़ी की तरह शोभायमान होता है पर झूठ गंदे स्थान पर रहनेवाले लँगोट के समान है । सत्य शक्तिशाली शेर की तरह है और झूठ हीन भावना से पूर्ण हिरन की तरह है । सत्य के व्यापार में लाभ होता है और झूठ के व्यापार में हानि ही हानि होती है । सत्य खरा होता है अतः शाबाशी प्राप्त करता है पर झूठ खोटे सिक्के की तरह चल नहीं पाता । अमावस की रात को लाखों तारागण होते हैं पर प्रकाश की कमी बनी रहती है और घोर अंधकार बना ही रहता है ।

सूरज इकु चढ़ंदिआ होइ अठ खंड पवै फलफोटा ।
कूड़ु सचु जिउँ वटु घड़ोटा ॥ ७ ॥

पउड़ी ८

(सच्च अते कूड़)

सुहणे सामरतथ जिउ कूड़ु सचु वरतै वरतारा ।
हरि चंदउरी नगर वाँगु कूड़ु सचु परगटु पाहारा ।
नदी पछावाँ माणसा सिर तलवाइआ अंबरु तारा ।
धूअरु धुंधूकारु होइ तुलि न घणहरि वरसणहारा ।
साउ न सिमरणि संकरै दीपक बाझु न मिटै अंधारा ।
लड़ै न कागलि लिखिआ चितु चितेरे मै हथीआरा ।
सचु कूड़ु करतूति वीचारा ॥ ८ ॥

पउड़ी ९

(सच्च अते कूड़)

सचु समाइणु दुध विचि कूड़ विगाड़ कांजी दी चुखै ।
सचु भोजनु मुहि खावणा इकु दाणा नकै वलि दुखै ।

सूर्य के निकलते ही अंधकार आठ खंड होकर फट जाता है । झूठ और सत्य का संबंध ऐसा ही जैसा पत्थर और घड़े का होता है ।। ७ ।।

पउड़ी ८

(सत्य और झूठ)

स्वप्न में झूठा व्यवहार भी बिलकुल सच्चा एवं प्रत्यक्ष प्रतीत होता है। झूठ गंधर्व नगरी की तरह है और संसार प्रकट संसार की तरह है । झूठ ऐसा ही है जैसे नदी के पानी में मनुष्यों, वृक्षों, आकाश एवं तारागणों की परछाई होती है । धुएँ से भी धुंध हो जाती है पर यह अंधेरा उस अँधेरे के समान नहीं है जो बरसनेवाले घने बादलों के कारण होता है । शक्कर को याद करते रहने मात्र से मीठा स्वाद नहीं आ जाता और इसी तरह दीपक के बिना अंधकार नहीं मिटता । चित्र में बनाया गया सौ शस्त्र भी धारण करनेवाला शूरवीर कभी लड़ नहीं सकता। सत्य और झूठ की करतूत का यही विचार है ।। ८।।

पउड़ी ९

(सत्य और झूठ)

सत्य दूध को जमाने के लिए जामन की तरह है और झूठ दूध को फाड़नेवाली खटाई की बूँद के समान है। सत्य मुख से भोजन करने के समान सुखदायक है

फलहु रुख रुखहु सु फलु अंति कालि खउ लाखहु रुखै ।
सउ वरिआ अगि रुख विचि भसम करै अगि बिंदकु धुखै ।
सचु दारू कूड़ु रोगु है विणु गुर वैद वेदनि मनमुखै ।
सचु सथोई कूड़ ठगु लगै दुखु न गुरमुखि सुखै ।
कूड़ु पचै सचै दी भुखै ॥ ९ ॥

पउड़ी १०

(सच्च ते कूड़)

कूड़ु कपट हथिआर जिउ सचु रखवाला सिलह संजोआ ।
कूड़ु वैरी नित जोहदा सचु सुमितु हिमाइति होआ ।
सूरवीरु वरीआमु सचु कूड़ु कुड़ावा करदा ढोआ ।
निहचलु सचु सुखाइ है लरजै कूड़ु कुथाइ खड़ोआ ।

और झूठ नाक की ओर भोजन का एक दाना चले जाने पर होनेवाले कष्ट के समान है । फल से वृक्ष और वृक्ष से लाखों फल होते हैं परन्तु यदि वृक्ष को लाख लग जाये तो वृक्ष नष्ट हो जाता है (इसी प्रकार झूठ व्यक्ति का नाश कर देता है)। सैकड़ों वर्षों तक अग्नि वृक्ष में रहती है पर ज़रा से जल जाने पर वह वृक्ष को नष्ट कर देती है (इसी प्रकार झूठ बराबर मन में बना रहने पर अन्ततः प्रचण्ड रूप धारण कर व्यक्ति को नष्ट कर देता है ।) सत्य ओषधि और झूठा है रोग है और बिना गुरु रूपी वैद्य के स्वेच्छाचारियों को दुःख होता है । सत्य साथी (मित्र) है और झूठ ठगी करनेवाला ठग है, परन्तु गुरुमुखों को झूठ का दुःख नहीं सताता क्योंकि उनके पास सत्य का सुख है । झूठ नष्ट हो जाता है और सत्य की चाह सदैव बनी रहती है ।। ९।।

पउड़ी १०

(सत्य और झूठ)

झूठ नकली शस्त्र की तरह है और सत्य लौहकवच की तरह रक्षक है । झूठ शत्रु की तरह सदैव घात लगाये रहता है पर सत्य मित्र की तरह हिमायत करने के लिए सदैव तत्पर रहता है । सत्य श्रेष्ठ शूरवीर है और सच्चे लोगों से मिलता है जबकि झूठ झूठे से ही मिलाता है । अच्छे स्थानों पर सत्य अचल हो खड़ा रहता है परन्तु बुरे स्थानों पर होने के कारण झूठ काँपता रहता है। चारों दिशाएँ और तीनों लोकों के देखते-देखते सत्य ने झूठ को पकड़कर पछाड़ दिया ।

सचि फड़ि कूड़ पछाड़िआ चारि चक वेखन त्रै लोआ ।
कूड़ु कपटु रोगी सदा सचु सदा ही नवाँ निरोआ ।
सचु सचा कूड़ु कूड़ु विसोआ ॥ १० ॥

पउड़ी ११

(सच्च-कूड़ दा निरणय)

सचु सूरजु परगासु है कूड़हु घुघू कुझु न सुझै ।
सच वणसपति बोहीऐ कूड़हु वास न चंदन बुझै ।
सचहु सफल तरोवरा सिंमलु अफलु वडाई लुझै ।
सावणि वण हरीआवले सुकै अकु जवाहाँ रुझै ।
माणक मोती मानसरि संखि निसखण हसतन दुझै ।
सचु गंगोदकु निरमला कूड़ि रलै मद परगटु गुझै ।
सचु सचा कुड़ु कूड़हु खुझै ॥ ११ ॥

कपटी झूठ सदैव रोगी है और सत्य सदैव ही नीरोग एवं ताजा बना रहता है । सत्याचारी व्यक्ति सदैव सच्चा ही जाना जाता है और झूठ पर चलनेवाला व्यक्ति सदैव झूठा ही माना जाता है ।। १० ।।

पउड़ी ११

(सत्य झूठ का निर्णय)

सत्य सूर्य का प्रकाश है और झूठ लल्लू की तरह है; उसे कुछ नहीं दिखाई पड़ता । (चन्दन रूपी) सत्य की गंध तो सारी वनस्पति में समा जाती है पर झूठ रूपी बाँस उस गंध को नहीं पहचान पाता । सत्य बोलने से प्राणी सफल वृक्ष बन जाता है जबकि दूसरा सेमल वृक्ष की तरह निष्फल रहकर केवल अपने आकार-प्रकार के बड़प्पन पर कुढ़ता रहता है। सावन में सारे वन हरे-भरे हो जाते हैं पर आक और जवास सूखे के सूखे रह जाते हैं। मानसरोवर में माणिक और मोती होते हैं पर शंख खाली हाथों में रहकर दबाए जाते हैं । सत्य तो गंगाजल के समान निर्मल है पर झूठ रूपी शराब को यदि छिपाकर भी रखा जाए तो भी उसकी दुर्गंध प्रकट हो जाती है। सत्य सत्य ही है और अन्ततः झूठ झूठ ही है ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(सच्च कूड़ दा अंत)

सच कूड़ दुइ झागड़ू झगड़ा करदा चउतै आइआ ।
अगे सचा सचि निआइ आप हजूरि दोवै झगड़ाइआ ।
सचु सचा कूड़ि कूड़िआरु पंचा विचिदो करि समझाइआ ।
सचि जिता कूड़ि हारिआ कूड़ु कूड़ा करि सहरि फिराइआ ।
सचिआरै साबासि है कूड़िआरै फिटु फिटु कराइआ ।
सच लहणा कूड़ि देवणा खतु सतागलु लिखि देवाइआ ।
आप ठगाइ न ठगीऐ ठगणहारै आपु ठगाइआ ।
विरला सचु विराझण आइआ ॥ १२ ॥

पउड़ी १३

(सच्च कूड़ दा अंत)

कूड़ु सुता सचु जागदा सचु साहिब दे मनि भाइआ ।
सचु सचै करि पाहरू सच भंडार उते बहिलाइआ ।

पउड़ी १२

(सत्य और झूठ का अंत)

सत्य और झूठ दोनों का झगड़ा था और दोनों झगड़ते-झगड़ते न्याय के चबूतरे पर आ गये। आगे भी सच्चा न्याय करनेवाले ने दोनों की बहस कराई (और बयान सुने)। सत्य सच्चा है और झूठ झूठा है ऐसा पंचों ने मिल-बैठकर समझा दिया। सत्य जीत गया और झूठ हार गया तथा उसे झूठा करके सारे शहर में घुमाया गया। सत्याचारी को तो शाबाशी मिली पर झूठे को धिक्कार-धिक्कार सुनना पड़ा । यह कागज पर लिखकर दे दिया गया कि सत्य लेनदार है और झूठ देनदार है । जो स्वयं को ठगवाता है वह नहीं ठगा जाता और जो दूसरों को ठगता है वह अपने आपको ठगवाता है । कोई विरला ही सत्य का खरीदार होता है ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(वही)

झूठ सोता है, और सत्य जागता है इसीलिए सत्य उस परमात्मा

सचु आगू आन्हेर कूड़ उझड़ि दूजा भाउ चलाइआ ।
सचु सचे करि फउजदारु राहु चलावणु जोगु पठाइआ ।
जग भवजलु मिलि साधसंगि गुर बोहिथै चाढ़ि तराइआ ।
कामु क्रोधु लोभु मोहु फड़ि अहंकारु गरदनि मरवाइआ ।
पारि पए गुरु पूरा पाइआ ॥ १३ ॥

पउड़ी १४

(सच्च, सच्चा सिक्ख, सच्चा गुरू)

लूणु साहिब दा खाइ कै रण अंदरि लड़ि मरै सु जापै ।
सिर वढै हथीआरु करि वरीआमा वरिआमु सिञापै ।
तिसु पिछै जो इसतरी थपि थेई दे वरै सरापै ।
पोतै पुत वडीरीअनि परवारै साधारु परापै ।
वखतै उपरि लड़ि मरै अंम्रित वेलै सबदु अलापै ।
साधसंगति विचि जाइ कै हउमै मारि मरै आपु आपै ।

के मन को भाता है। सच्चे परमात्मा ने सत्य को पहरेदार नियुक्त करके सत्य के भंडार पर बैठा दिया है। सत्य पथ प्रदर्शक एवं झूठ अंधकार है और जीवों को द्वैतभाव के जंगल में घुमाता है। सच्चे परमात्मा ने सत्य को फ़ौजदार बनाकर अन्यों को सही मार्ग पर चलने योग्य बनाकर भेजा है। जगत् रूपी सागर से पार उतारने के लिए सत्य रूपी गुरु ने जीवों को सत्संगति रूपी जहाज पर चढ़ाकर पार उतार दिया है। काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं अहंकार को गर्दन से पकड़कर मार डाला है। जिन्हें पूर्णगुरु प्राप्त हो गया है वे (संसार-सागर से) पार हो गये हैं ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(सत्य, सच्चा सिक्ख, सच्चा गुरु)

सच्चा वही समझा जाता है जो स्वामी का नमक खाकर उसके लिए युद्ध में लड़ता हुआ मारा जाए । जो शस्त्रों से (शत्रु का) सिर काट लेता है वह वीरों में शूरवीर जाना जाता है । उसके पीछे जो स्त्री बचती है उसे वर-शाप देनेवाली सती समझा जाता है और इसी रूप में उसकी स्थापना की जाती है । उस सती के पुत्र-पौत्र प्रशंसा प्राप्त करते हैं और सारा परिवार लाभान्वित होता है । संकट की घड़ी में लड़ता हुआ मर जानेवाला और भोर बेला में शब्द (वाणी) का गान करनेवाला सच्चा शूरवीर जाना जाता है । वह साधुसंगति में जाकर अपनी तृष्णाओं को मारकर अपने अहम् को समाप्त कर देता है ।

लड़ि मरणा तै सती होणु गुरमुखि पंथु पूरण परतापै ।
सचि सिदक सच पीरु पछापै ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(साधसंगति)

निहचलु सचा थेहु है साधसंगु पंजे परधाना ।
सति संतोखु दइआ धरमु अरथु समरथु सभो बंधाना ।
गुर उपदेसु कमावणा गुरमुखि नामु दानु इसनाना ।
मिठा बोलणु निवि चलणु हथहु देण भगति गुर गिआना ।
दुही सराई सुरखरू सचु सबदु वजै नीसाना ।
चलणु जिन्ही जाणिआ जग अंदरि विरले मिहमाना ।
आप गवाए तिसु कुरबाना ।। १५ ।।

युद्ध में लड़ते हुए मर जाना और सतीत्व धारण किये रहना गुरुमुखों का पूर्ण प्रतापी मार्ग है (यह कार्य) अन्य लोग तो अज्ञान एवं अहम्-भावना के वशीभूत हो करते है पर गुरुमुख अहम्-भावना को मिटाकर इस कर्त्तव्य को ग्रहण करता है । जिसमें पूर्ण विश्वास होता है वही सच्चा गुरु जाना जाता है ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(साधुसंगति)

(साधुसंगति रूपी) नगर सच्चा एवं अटल है क्योंकि इसमें पाँचों प्रधान (गुण) अवस्थित हैं । सत्य, संतोष, दया, धर्म एवं सभी कुछ को बाँधकर चला लेनेवाला अर्थ (धन) यहाँ विराजमान हैं । यहाँ पर गुरुमुख व्यक्ति गुरु के उपदेश की साधना करते हैं एवं नाम-स्मरण, दान, स्नान को अपनाए रखते हैं। यहाँ लोग मीठा बोलते, विनम्र हो चलते, हाथ से दान देते, गुरु की भक्ति के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करते हैं। वे लोक-परलोक दोनों में ही निश्चिंत बने रहते हैं और उनके लिए सत्य शब्द के नगाड़े बजाये जाते हैं । जिन्होंने इस संसार से चले जाने को सत्य मान लिया है ऐसे मेहमान विरले ही हैं । जिसने अहम्भाव गँवा दिया है मैं उस पर कुर्बान जाता हूँ ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(झूठा पिंड)

कूड़ अहीराँ पिंडु है पंज दूत वसनि बुरिआरा ।
काम करोधु विरोधु नित लोभ मोह ध्रोहु अहंकारा ।
खिंजोताणु असाधु संगु वरतै पापै दा वरतारा ।
परधन पर निंदा पिआरु पर नारी सिउ वडे विकारा ।
खलुहलु मूलि न चुकई राज डंडु जम डंडु करारा ।
दुही सराई जरदरू जंमण मरण नरकि अवतारा ।
अगी फल होवनि अंगिआरा ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(सच्च विच्च कूड़ दी समाई नहीं)

सचु सपूरण निरमला तिसु विचि कूड़ु न रलदा राई ।
अखी कतु न संजरै तिणु अउखा दुखि रैणि विहाई ।

पउड़ी १६

(झूठा गाँव)

झूठ तो लुटेरों का गाँव है जिसमें पाँचों बुरे दूत निवास करते हैं । ये दूत हैं– काम, क्रोध, विरोध, लोभ, मोह, द्रोह एवं अहंकार । असाधुओं की संगति वाले इस गाँव में खींचातानी और पाप का व्यवहार सदैव चलता ही रहता है । यहाँ पराए धन, पराई निंदा, परनारी से प्रेम जैसे विकार सदैव बने ही रहते हैं। यहाँ सदैव खलबली मची रहती है और लोग सदैव राजदंड एवं यमदंड भोगते रहते हैं। यहाँ के लोग दोनों लोकों में शर्मिंदा बने रहते हैं और जन्म-मरण के नर्क में आते-जाते रहते हैं । आग का फल तो चिंगारियाँ ही होती हैं ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(सत्य में झूठ नहीं समा सकता)

सत्य पूर्ण रूप से निर्मल है उसमें झूठ बिलकुल वैसे ही नहीं मिल सकता जैसे आँख में तिनका पड़ा हुआ उसमें पड़ा नहीं रह सकता और सारी रात दुःख में ही व्यतीत होती हैं । भोजन में मक्खी होने पर भी वह वमन के द्वारा बाहर निकल आती है। रुई में एक चिंगारी उसे दुःख देकर जलाकर भस्म कर देती है।

भोजण अंदरि मखि जिउ होइ दुकुधा फेरि कढाई ।
रूई अंदरि चिणग वांग दाहि भसमंतु करे दुखदाई ।
कांजी दुधु कुसुध होइ फिटै सादहु वंनहु जाई ।
महुरा चुखकु चखिआ पातिसाहा मारै सहमाई ।
सचि अंदरि किउ कूड़ु समाई ॥ १७ ॥

पउड़ी १८

(सच्च नूँ कूड़ मिटा नहीं सकदा)

गुरमुखि सचु अलिपतु है कूड़हु लेपु न लगै भाई ।
चंदन सर्पी वेड़िआ चढ़ै न विसु न वासु घटाई ।
पारसु अंदरि पथराँ असट धातु मिलि विगड़ि न जाई ।
गंग संगि अपवित्र जलु करि न सकै अपवित्र मिलाई ।
साइर अगि न लगई मेरु सुमेरु न वाउ डुलाई ।
बाणु न धुरि असमाणि जाइ वाहेंदड़ु पिछै पछुताई ।
ओड़कि कूड़ु कूड़ो हुइ जाई ॥ १८ ॥

दूध में खटाई होने से स्वाद में भी खराब हो जाता है और रंग से भी बेरंग हो जाता है । जब थोड़ा सा विष भी चखा जाने पर सम्राटों को भी भयभीत करके मार देता है तब सत्य भला झूठ में कैसे मिल सकता है? ।। १७ ।।

पउड़ी १८

(सत्य को झूठ मिटा नहीं सकता)

गुरुमुख रूपी सत्य सदैव अलिप्त रहता है, उस पर झूठ का तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ सकता। चंदन का वृक्ष सर्पों से घिरा रहता है पर न तो उस पर विष चढ़ता है और न ही उसकी गंध में कमी आती है। पत्थरों में ही पारस पत्थर रहता है पर वह अष्टधातुओं से मिलकर भी खराब नहीं होता। गंगा में अपवित्र पानी मिलता रहता है पर फिर भी गंगा को अपवित्र नहीं कर सकता। समुद्र में कभी आग नहीं लगती और हवा पर्वतों तथा सुमेरु को हिला नहीं सकती। बाण कभी आसमान को छू नहीं सकता और चलानेवाला बाद में पछताता ही है। झूठ तो अंत में झूठ ही जाना जाता है ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(कूड़ अंत प्रगट हो जाँदा है)

सचु सचावा माणु है कूड़ कूड़ावी मणी मनूरी ।
कूड़े कूड़ी पाइ है सचु सचावी गुरमति पूरी ।
कूड़ै कूड़ा जोरि है सचि सताणी गरब गरूरी ।
कूड़ु न दरगह मंनीऐ सचु सुहावा सदा हजूरी ।
सुकराना है सचु घरि कूड़ु कुफर घरि ना साबूरी ।
हसति चाल है सच दी कूड़ि कुढंगी चाल भेडूरी ।
मूली पान डिकार जिउ मुलि न तुलि लसणु कसतूरी ।
बीजै विसु न खावै चूरी ॥ १९ ॥

पउड़ी २०

(कूड़ दा अंत बड़ा बुरा हुंदा है)

सचु सुभाउ मजीठ दा सहै अवटण रंगु चढ़ाए ।
सण जिउ कूड़ु सुभाउ है खल कढाइ वटाइ बनाए ।

पउड़ी १९

(झूठ अंत में उघड़ जाता है)

सत्य का सदैव सच्चा आदर है और झूठ की मान्यता भी झूठी ही होती है । झूठ की इज्जत भी झूठी है और सत्य की गुरु-प्रदत्त मति भी पूर्ण ही होती है । झूठे का बल भी झूठा है और सत्य का सात्विक अहंकार भी गंभीर एवं गुरुतापूर्ण होता है । झूठ को प्रभु-दरबार में मान्यता नहीं मिलती और सत्य उसके दरबार में सदैव शोभायमान होता है। सत्य के घर में सदैव कृतज्ञता का भाव व्याप्त रहता है जबकि झूठ कभी भी संतुष्ट नहीं रहता । सत्य की चाल तो मस्त हाथी की चाल है जबकि झूठ की चाल भेड़ की बेढंगी चाल के समान है । कस्तूरी और लहसुन का मोल मूली और पान के डकार की बराबरी पर नहीं रखा जा सकता । जो विष बोता है वह चूरी (स्वादिष्ट भोजन) नहीं खा सकता ।। १९।।

पउड़ी २०

(झूठ का अंत बहुत बुरा होता है)

सत्य का स्वभाव मजीठ की तरह होता है जो खुद उबाल की गर्मी सहनकर पक्का रंग चढ़ा देता है । झूठ का स्वभाव सनई के समान है

चंनण परउपकारु करि अफल सफल विचि वासु वसाए ।
वडा विकारी वाँसु है हउमै जलै गवाँढु जलाए ।
जाण अमिओ रसु कालकूटु खाधै मरै मुए जीवाए ।
दरगह सचु कबूलु है कूड़हु दरगह मिलै सजाए ।
जो बीजै सोई फलु खाए ॥ २० ॥ ३० ॥ तीह ॥

जिसकी खाल खींची जाती है और फिर उसे मोड़माड़ (बट) कर उसकी रस्सी बनाई जाती है । चन्दन परोपकार करता है और फलदार तथा फलविहीन सभी वृक्षों में सुगंधि भर देता है । बाँस बड़ा ही विकारी है जो अहम्भाव में जलता है और आग लगने पर अपने पड़ोसी वृक्षों को भी जला देता है । अमृत-रस के पीने से मृत भी जीवित हो जाते हैं और कालकूट विष के प्रभाव से जीवित भी मर जाते हैं। सत्य को प्रभु-दरबार में स्वीकार कर लिया जाता है पर झूठ को उसी दरबार में सजा मिलती है । जो जैसे बोता है वैसा ही फल खाता है ।। २० ।। ३०।।

* * *

वार ३१

ੴ सतिगुर प्रसादि ।।

पउड़ी १

(गुणाँ-अवगुणाँ दी गती)

साइर विचहु निकलै कालकूटु तै अंम्रित वाणी ।
उत खाधै मरि मुकीऐ उतु खाधै होइ अमरु धराणी ।
विसु वसै मुहि सप दै गरड़ दुगारि अमिअ रस जाणी ।
काउ न भावै बोलिआ कोइल बोली सभनाँ भाणी ।
बुरबोला न सुखावई मिठ बोला जगि मितु विडाणी ।
बुरा भला सैसार विचि परउपकार विकार निसाणी ।
गुण अवगुण गति आखि वखाणी ।। १ ।।

पउड़ी १

(गुण-अवगुण की गति)

कालकूट विष और अमृत दोनों ही समुद्र से निकाले गये । एक को खाकर मर जाया जाता है और दूसरे को खाने से प्राणी अमर हो जाता है । सर्प के मुँह में विष का निवास है जबकि गरुड़ (जो कि सर्प को खा जाता है) के मुँह से उत्पन्न हवा (डकार वायु) से पैदा होनेवाली बूटी अमृतरस के तुल्य है । कौआ बोलता हुआ अच्छा नहीं लगता परन्तु कोयल की बोली सबको भाती है । बुरा बोलनेवाला अच्छा नहीं लगता परन्तु मीठा बोलनेवाला सारे संसार में प्रशंसित किया जाता है । बुरे और भले लोग तो संसार में रहते ही हैं पर वे परोपकार और विकार के गुणों द्वारा क्रमश: भले और बुरे रूप में जाने जाते हैं । गुणों और अवगुणों की गति का वर्णन (हमने) कर दिया है ।। १।।

पउड़ी २

(खोजी अते वादी)

सुझहु सुझनि तिनि लोअ अंन्हे घुघू सुझु न सुझै ।
चकवी सूरज हेतु है कंतु मिलै विरतंतु सु बुझै ।
राति अन्हेरा पंखीआँ चकवी चितु अन्हेरि न रुझै ।
बिंब अंदरि प्रितबिंबु देखि भरता जाणि सुजाणि समुझै ।
देखि पछावा पवे खूहि डुबि मरै सीहु लोइन लुझै ।
खोजी खोजै खोजु लै वादी वादु करेंदड़ खुझै ।
गोरसु गाईं हसतिनि दुझै ॥ २ ॥

पउड़ी ३

(खोटे पुरश सुखदाई समिआँ पुर वी दुखी रहिंदे हन)

सावण वण हरीआवले वुठे सुकै अकु जवाहा ।
चेति वणसपति मउलीऐ अपत करीर न करै उसाहा ।

पउड़ी २

(खोजी और विवादी)

सूझवान को तो तीनों लोक सूझते हैं पर अंधे उल्लू को कुछ सुझाई नहीं पड़ता। चकवी का सूर्य से प्रेम है और कंत से मिलकर वे परस्पर प्रेम-वृत्तांत कहते-सुनते हैं। रात में पक्षियों के लिए अँधेरा हो जाता है (और वे विश्राम करते हैं) पर चकवी का मन अँधेरे में विश्राम नहीं करता अर्थात् सदैव सूर्य की ओर लगा रहता है । सुजान स्त्री पानी में भी अपने पति का प्रतिबिंब देखकर उसे पहचान जाती है । कुएँ में अपनी परछाई देखकर मूर्ख शेर उसमें कूदकर डूब मरता है तथा बाद में अपनी आँखों को कोसता है। अन्वेषक जिज्ञासु तो उपर्युक्त कथन के मर्म को समझाता है पर विवादी मात्र विवाद में इधर-उधर भटकता है और हथिनी से गाय के दूध को दुहने की अपेक्षा करता है (जो कि असंभव है) ।। २ ।।

पउड़ी ३

(खोटे पुरुष सुख में भी दुखी रहते हैं)

सावन में वन हरे-भरे होते हैं पर आक और जवास फिर भी सूखे ही रहते हैं । चैत्र में वनस्पति खिल उठती है पर पत्रविहीन करीर का वृक्ष (बाँस की एक प्रकार) तनिक भी उत्साहित नहीं होता ।

सुफल फलंदे बिरख सभ सिंमलु अफलु रहै अविसाहा ।
चंनण वासु वणासपति वास निवासि न उभे साहा ।
संखु समुंदहु सखणा दुखिआरा रोवै दे धाहा ।
बगुल समाधी गंग विचि झीगै चुणि चुणि खाइ भिछाहा ।
साथ विछुंने मिलदा फाहा ॥ ३ ॥

पउड़ी ४

(भला ते बुरा)

आपि भला सभु जगु भला भला भला सभना करि देखै ।
आपि बुरा सभु जगु बुरा सभ को बुरा बुरे दे लेखै ।
किसनु सहाई पांडवा भाइ भगति करतूति विसेखै ।
वैर भाउ चिति कैरवाँ गणती गणनि अंदरि कालेखै ।

सभी वृक्ष फलदार हो जाते हैं । परन्तु सेमल का अविश्वसनीय वृक्ष फल-विहीन ही रहता है । चंदन से सारी वनस्पति सुगंधित हो जाती है पर बाँस पर उसका कोई असर नहीं होता और वह हिचकियाँ लेता रहता है अर्थात् अपने भाग्य को कोसता है । समुद्र में रहने पर भी शंख खाली बना रहता है और बजाने पर दुहाई देकर चीखता-चिल्लाता है । बगुला गंगा में समाधि लगाने पर भी भिक्षुक की तरह इधर-उधर से ढूँढ़कर मछलियाँ खाता रहता है । अच्छी संगति में रहने पर भी उसके गुण को धारण न करने पर अर्थात् अच्छे व्यक्ति का मन से साथ न करने पर फाँसी ही प्राप्त होती है ।। ३ ।।

पउड़ी ४

(भला और बुरा)

व्यक्ति यदि स्वयं भला है तो सारा संसार भला है । भला व्यक्ति सदैव सबको भले रूप में ही देखता है । व्यक्ति स्वयं बुरा है तो उसके लिए सारा संसार बुरा है और सारी बुराई का उत्तरदायित्व उस बुरे व्यक्ति पर ही होता है। कृष्ण ने पांडवों की सहायता की क्योंकि उनमें भाव एवं भक्ति का चरित्र भरपूर रूप से था।

भला बुरा परवंनिआ भालण गए न दिसटि सरेखै ।
बुरा न कोई जुधिसटरै दुरजोधन को भला न भेखै ।
करवै होइ सु टोटी रेखै ॥ ४ ॥

पउड़ी ५

(धरमराज दी प्रसिद्ध कथा)

सूरजु घरि अवतारु लै धरम वीचारणि जाइ बहिठा ।
मूरति इका नाउ दुइ धरमराइ जम देखि सरिठा ।
धरमी डिठा धरमराइ पापु कमाइ पापी जम डिठा ।
पापी नो पछड़ाइंदा धरमी नालि बुलेंदा मिठा ।
वैरी देखनि वैर भाइ मित्र भाइ करि देखनि इठा ।
नरक सुरग विचि पुंन पाप वर सराप जाणनि अभरिठा ।
दरपणि रूप जिवेही पिठा ॥ ५ ॥

कौरवों के चित्त में बैर-भावना थी इसीलिए वे क्लेशयुक्त होकर सदैव नाप-तौल में ही लगे रहते थे । (दो राजा) भला और बुरा देखने (ढूँढ़ने) के लिए गये पर उनकी दृष्टि समान नहीं थी । इसीलिए युधिष्ठिर को कोई बुरा नजर नहीं आता था और दुर्योधन को कोई अच्छा नहीं दिखाई देता था । लोटे में जो कुछ होता है वह वास्तव में टोंटी में से जब निकलता है तो सबको स्पष्ट दिखाई पड़ ही जाता है ।। ४ ।।

पउड़ी ५

(धर्मराज की प्रसिद्ध कथा)

सूर्य के घर में पैदा हो वह न्यायकर्त्ता के रूप में विराजमान हो गया। उसकी मूर्ति एक है पर सृष्टि में उसे धर्मराज और यम दो नामों से जाना जाता है । धार्मिक व्यक्ति अर्थात् कर्तव्यपरायण व्यक्ति तो उसे धर्मराज के रूप में और पापी उसे यम के रूप में देखता है । वह भी पापी को तो पछाड़ फेंकता है पर धर्मवाले व्यक्ति के साथ मीठा बोलता है । शत्रु उसे शत्रुभाव से तथा मित्रगण उसे इष्टभाव से देखते हैं । पाप-पुण्य, वरदान, शाप आदि का फल नरक-स्वर्ग आदि तो अपने-अपने स्नेह के फलस्वरूप ही जाने-बूझे जाते हैं । दर्पण में तो वैसा ही रूप प्रतिबिंबित होगा जैसी आकृति (पीठ) है ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(शुद्ध आरसी)

जिउँ करि निरमल आरसी सभा सुध सभ कोई देखै ।
गोरा गोरो दिसदा काला कालो वंनु विसेखै ।
हसि हसि देखै हसत मुख रोंदा रोवणहारु सुलेखै ।
लेपु न लगै आरसी छिअ दरसनु दिसनि बहु भेखै ।
दुरमति दूजा भाउ है वैरु विरोधु करोधु कुलेखै ।
गुरमति निरमलु निरमला समदरसी समदरस सरेखै ।
भला बुरा हुइ रूपु न रेखै ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(गुरू पाहरू)

इकतु सूरजि आथवै राति अनेरी चमकनि तारे ।
साह सवनि घरि आपणै चोर फिरनि घरि मुहणैहारे ।

पउड़ी ६

(शुद्ध दर्पण)

जैसे निर्मल आरसी में से सभी अपना शुद्ध रूप देखते हैं । गोर वर्ण उसमें गोरा और काला उसमें विशिष्ट रूप से काला ही नजर आता है । हँसता हुआ व्यक्ति उसमें अपना हँसता चेहरा देखता है और रोता हुआ व्यक्ति उसमें रोता हुआ मुख देखता है । छ: दर्शनों वाले अनेकों वेश धारणकर उसमें देखते हैं पर दर्पण उन सबसे अलिप्त रहता है । द्वैतभाव ही दुर्बुद्धि है, जो शत्रुता, विरोध, क्रोध की जननी है । गुरुमत पर निर्मलतापूर्वक चलनेवाले निर्मल और समदर्शी बने रहते हैं । इसके अतिरिक्त भले-बुरे की रूप-रेखा अन्य कोई नहीं है ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(गुरु पहरेदार)

सन्ध्या को एक सूर्य के अस्त होने पर अँधेरी रात हो जाती है और तारे चमकने लगते हैं । साहूकार लोग तो अपने घरों में सोते हैं पर चोर घरों में चोरियाँ करने के लिए घूमते हैं । विरले पहरेदार ही जगते रहते हैं और होशियारी से पुकार लगाते रहते हैं। वे जगनेवाले पहरेदार सोते हुओं को जगाते हैं और इस प्रकार साहूकार चोरों को पकड़ लेते हैं ।

जागनि विरले पाहरू रूआइनि हुसीआर बिदारे ।
जागि जगाइनि सुतिआँ साह फड़ंदे चोर चगारे ।
जागदिआँ घरु रखिआ सुते घर मुसनि वेचारे ।
साह आए घरि आपणै चोर जारि लै गरदनि मारे ।
भले बुरे वरतनि सैसारे ॥ ७ ॥

पउड़ी ८

(संग सुभाउ)

मउले अंब बसंत रुति अउड़ी अकु सु फुली भरिआ ।
अंबि न लगै खखड़ी अकि न लगै अंबु अफरिआ ।
काली कोइल अंब वणि अकितिडु चितु मिताला हरिआ ।
मन पंखेरू बिरख भेदु संग सुभाउ सोई फलु धरिआ ।
गुरमति डरदा साधसंगि दुरमति संगि असाध न डरिआ ।

जो जागते हैं वे तो घर की रक्षा कर लेते हैं पर जो सोये रहते हैं उनका घर लूट लिया जाता है । साहूकार तो (चोर को पकड़वाकर) घर पर आनन्दपूर्वक आ जाते हैं पर चोरों-यारों की गर्दन तोड़ी जाती है । भले और बुरे दोनों ही इसी संसार में क्रियाशील हैं ।। ७।।

पउड़ी ८

(संग-स्वभाव)

वसंत ऋतु में आम फूल उठते हैं और आक के कड़वे पौधे पर भी फूल भर जाते हैं । आक के फूल को आम नहीं लग सकता और आम को फल-विहीन आक नहीं लग सकता । आम के वृक्ष पर बैठनेवाली कोयल काली और आक का टिड्डा चितकबरा होता है। मन पक्षी है और वृक्षों की संगति भेद के फलस्वरूप जिस प्रकार के वृक्ष पर बैठता है वैसा ही फल प्राप्त करता है । मन साधुसंगति एवं गुरुमत से तो डरता है परन्तु दुर्मति एवं असाधुसंगति में नहीं घबराता अर्थात् अच्छी संगति में वह नहीं जाना चाहता और कुसंगति में रुचि लेता रहता है । प्रभु को भक्तवत्सल भी कहा जाता है और पतितों का उद्धारक भी माना जाता है।

भगति वछलु भी आखीऐ पतित उधारणि पतित उधरिआ ।
जो तिसु भाणा सोई तरिआ ॥ ८ ॥

पउड़ी ९

(पूतना)

जे करि उधरी पूतना विहु पीआलणु कंमु न चंगा ।
गनिका उधरी आखीऐ पर घरि जाइ न लईऐ पंगा ।
बालमीकु निसतारिआ मारै वाट न होइ निसंगा ।
फंधकि उधरै आखीअनि फाही पाइ न फड़ीऐ टंगा ।
जे कासाई उधरिआ जीआ घाइ न खाईऐ भंगा ।
पारि उतारै बोहिथा सुइना लोहु नाही इक रंगा ।
इतु भरवासै रहणु कुढंगा ॥ ९ ॥

उसने अनेकों पतितों का उद्धार किया है । जो उस प्रभु को भाता है वही पार होता है ।। ८ ।।

पउड़ी ९

(पूतना)

यदि पूतना (राक्षसी) का उद्धार हो गया तो यह नहीं मानना चाहिए कि विष पिलाना अच्छा काम है । गणिका (वेश्या) का उद्धार हुआ कहा जाता है परन्तु फिर भी पराए घर में जाकर टाँग नहीं अड़ाना चाहिए । वाल्मीकि का उद्धार हो गया इसीलिए निस्संकोच होकर राहजनी नहीं करनी चाहिए । एक फंदक (चिड़ीमार) का उद्वार हो गया कहा जाता है, परन्तु हमें फंदा डालकर किसी की भी टाँग को नहीं पकड़ लेना चाहिए । सधना क़साई का उद्धार हो गया तो हमें जीवहत्या करके अपनी हानि नहीं करनी चाहिए । जहाज सोने और लोहे के पार उतार देता है परन्तु फिर भी दोनों का रंग-रूप एक जैसा नहीं होता । इस प्रकार के भरोसे पर जीवन-यापन करना जीने का एक बेढंगा तरीका ही है ।। ९ ।।

पउड़ी १०

(पाप दी रीस बुरी है)

पै खाजूरी जीवीऐ चढ़ि खाजूरी झड़उ न कोई ।
उझड़ि पइआ न मारीऐ उझड़ राहु न चंगा होई ।
जे सप खाधा उबरे सपु न फड़ीऐ अंति विगोई ।
वहणि वहंदा निकलै विणु तुलहे डुबि मरै भलोई ।
पतित उधारणु आखीऐ विरतीहाणु जाणु जाणोई ।
भाउ भगति गुरमति है दुरमति दरगह लहै न ढोई ।
अंति कमाणा होइ सथोई ॥ १० ॥

पउड़ी ११

(गुरमुख मनमुख दा फ़रक गुणाँ कर के)

थोम कथूरी वासु जिउँ कंचनु लोहु नहीं इक वंना ।
फटक न हीरे तुलि है समसरि नड़ी न वड़ीऐ गंना ।

पउड़ी १०

(पाप की नकल करना बुरा है)

खजूर के पेड़ से गिर जाने पर भी यदि कोई बच जाए तो भी यह ठीक नहीं है कि खजूर पर चढ़कर गिरा जाए । अनजाने उजाड़ रास्ते पर चलने पर भी यदि कोई नहीं मार दिया जाता तब भी उजाड़ राहों पर चलना ठीक नहीं है । यदि साँप का काटा बच भी जाए तो भी साँप को पकड़ना अंत में कष्टकारक ही होता है । दरिया में से कोई बहकर भी यदि बाहर निकल आये तो भी बिना नाव के दरिया में जाने पर डूब मरने के ही आसार ज्यादा (भले) होते हैं । परमात्मा ही पतित-उद्धारक है, यह सब वृत्तियों वाले भली प्रकार जानते हैं । प्रेम-भक्ति ही गुरुमत है और दुर्मति वालों को प्रभु-दरबार में आश्रय नहीं मिलता । अंतिम समय में (जीवन में) किये हुए कर्म ही साथी बनते हैं (अन्य कोई नहीं) ।। १० ।।

पउड़ी ११

(गुरुमुख एवं स्वेच्छाचारी का अन्तर केवल कर्मों के कारण है)

लहसुन और कस्तूरी की गंध जैसे अलग-अलग होती है वैसे ही लौह एवं स्वर्ण का भी स्वरूप एक जैसा नहीं होता । स्फटिक (बिल्लौरी पत्थर) हीरे के तुल्य नहीं है, इसी भाँति गन्ना और खोखली नली एक समान नहीं होती है।

तुलि न रतना रतकाँ मुलि न कचु विकावै पंना ।
दुरमति घुंमण वाणीऐ गुरमति सुक्रितु बोहिथु बंना ।
निंदा होवै बुरे दी जै जै कार भले धंनु धंना ।
गुरमुखि परगटु जाणीऐ मनमुख सचु रहै परछंना ।
कंमि न आवै भाँडा भंना ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(करनी कर के जस ते अपजस)

इक वेचनि हथीआर घड़ि इक सवारनि सिला सँजोआ ।
रण विचि घाउ बचाउ करि दुइ दल निति उठि करदे ढोआ ।
घाइलु होइ नंगासणा बखतर वाला नवाँ निरोआ ।
करनि गुमानु कमानगर खानजगदी बहुतु बखोआ ।
जग विचि साध असाध संगु संग सुभाइ जाइ फलु भोआ ।

रत्ती कभी रत्न के तुल्य नहीं होती और काँच पन्ने के भाव नहीं बिकता । दुर्मति पानी का भँवर है परन्तु गुरुमत अच्छे काम करवानेवाला जहाज है (जो पार लगा देता है)। बुरे व्यक्ति की सदैव निन्दा होती है और भले की जय-जयकार होती है, उसे धन्य-धन्य कहते हैं । गुरुमुखों में सत्य प्रकट होकर सामने आता है और सबके द्वारा जाना जाता है परन्तु स्वेच्छाचारियों में वही सत्य नीचे दबा-छिपाकर रखा जाता है । वह टूटे हुए बर्तन के समान काम नहीं आ सकता ।। ११।।

पउड़ी १२

(कर्म के कारण यश अथवा अपयश)

कई शस्त्र बनाकर उन्हें बेचते हैं और कई ज़िरहबख्तरों (कवचों) को माँजते-सँवारते हैं । युद्ध में घाव करते, बचाते हैं और दोनों दल उठ-उठकर मुठभेड़ करते हैं । जो नंगे होते हैं वे घायल होते हैं और जिसने कवच धारण कर रखा होता है वह भला-चंगा रहता है । कमान आदि शस्त्र बनानेवाले भी अपनी विशेष कमानों (खानजरादी) की श्रेष्ठता पर गर्व करते हैं । इस संसार में साधु और असाधु दो प्रकार की संगतियाँ हैं और दोनों के संगत भेद का फल भिन्न होता है ।

करम सु धरम अधरम करि सुख दुख अंदरि आइ परोआ ।
भले बुरे जसु अपजसु होआ ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(उह ही)

सतु संतोखु दइआ धरमु अरथ सुगरथु साधसंगि आवै ।
कामु करोधु असाध संगि लोभि मोहु अहंकार मचावै ।
दुक्रितु सुक्रितु करम करि बुरा भला हुइ नाउँ धरावै ।
गोरसु गाईं खाइ खड़ु इकु इकु जणदी वगु वधावै ।
दुधि पीतै विहु देह सप जणि जणि बहले बचे खावै ।
संग सुभाउ असाध साधु पापु पुंनु दुखु सुखु फलु पावै ।
परउपकार विकारु कमावै ।। १३ ।।

इसीलिए व्यक्ति धर्म-अधर्म के कारण सुख एवं दुख में लिप्त (पिरोया) रहता है। भले और बुरे का क्रमशः यश एवं अपयश होता है ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(वही)

सत्य, संतोष, दया, धर्म, धन, श्रेष्ठ पदार्थ सभी साधुसंगति से ही प्राप्त होते हैं । असाधुओं की संगति काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार को बढ़ाती है । कुकर्मों और सुकर्मों के कारण ही क्रमशः बुरा और भला नाम प्राप्त होता है । घास एवं खली इत्यादि खाकर गाय दूध देती है और एक-एक बच्चे पैदा करके अपने झुंड की वृद्धि करती है । सर्पिणी दूध पी-पीकर विष वमन करती है और अपने बच्चों को पैदा कर स्वयं ही खा जाती है । असाधु और साधु की संगति का अपना-अपना स्वभाव होता है और उसी के अनुसार पाप-पुण्य, दुख-सुख रूपी फल प्राप्त होता है और जीव परोपकार अथवा विकारों का अर्जन करता है ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(भला-बुरा)

चंनणु बिरखु सुबासु दे चंनणु करदा बिरख सबाए ।
खहदे वाँसहु अगि धुखि आपि जलैं परवारु जलाए ।
मुलह जिवै पंखेरूआ फासै आपि कुटंब फहाए ।
असट धातु हुइ परबतहुँ पारसु करि कंचनु दिखलाए ।
गणिका वाड़ै जाइ कै होवनि रोगी पाप कमाए ।
दुखीए आवनि वैद घर दारू दे दे रोगु मिटाए ।
भला बुरा दुइ संग सुभाए ॥ १४ ॥

पउड़ी १५

(भला-बुरा)

भला सुभाउ मजीठ दा सहै अवटणु रंगु चढ़ाए ।
गंना कोलू पीड़ीऐ टटरि पइआ मिठासु वधाए ।

पउड़ी १४

(भला-बुरा)

चन्दन का वृक्ष सुगंध देकर सभी वृक्षों को सुगंधित कर देता है । रगड़ खाते बाँस की आग से वह स्वयं जलता है और सारे परिवार अर्थात् अन्य बाँसों को भी जला देता है । बोलनेवाला बटेर पक्षी भी स्वयं तो फँसता है साथ ही साथ सारे परिवार को भी पकड़वाकर फँसा देता है । पर्वतों पर पाई जानेवाली अष्टधातुओं को ही पारस सोना बना देता है । वेश्या के आँगन (पास) जानेवाले व्यक्ति पाप तो कमाते ही हैं, साथ ही साथ रोगी भी हो जाते हैं । दुखी व्यक्ति स्वयं वैद्य के पास आता है और वह भी औषधि प्रदान कर उसका रोग मिटा देता है । अपनी-अपनी संगति के स्वभाव के कारण ही जीव भला अथवा बुरा बनता है ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(भला-बुरा)

मजीठ का स्वभाव भला है जो खुद गर्मी सहन करता है और अन्यों पर (पक्का) रंग चढ़ा देता है । गन्ने को पहले कोल्हू में पेरा जाता है,

तुंमे अंम्रितु सिंजीऐ कउड़तण दी बाणि न जाए ।
अवगुण कीते गुण करै भला न अंवगणु चिति वसाए ।
गुणु कीते अउगुणु करै बुरा न मंन अंदरि गुण पाए ।
जो बीजै सोई फलु खाए ॥ १५ ॥

पउड़ी १६

(भले-बुरे दी सुभाविक नेकी-बदी)

पाणी पथरु लीक जिउँ भला बुरा परकिरति सुभाए ।
वैर न टिकदा भले चिति हेतु न टिकै बुरै मनि आए ।
भला न हेतु विसारदा बुरा न वैरु मनहु बिसराए ।
आस न पुजै दुहाँ दी दुरमति गुरमति अंति लखाए ।
भलिअहुँ बुरा न होवई बुरिअहुँ भला न भला मनाए ।

फिर वह कड़ाहे में आग पर पक कर अपनी मिठास को और भी बढ़ाता है । आक को यदि अमृत से भी सींचा जाये तो भी वह अपना कड़वापन नहीं छोड़ता । भला व्यक्ति अवगुणों को मन में धारण नहीं करता और बुराई किये जाने पर भी बुराई करनेवाले के साथ भलाई ही करता है । उसी प्रकार बुरा व्यक्ति मन में गुण नहीं बसाता और भलाई करनेवाले के साथ बुराई ही करता है । जो जैसा बोता है वैसा ही फल प्राप्त करता है ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(भले-बुरे की स्वाभाविक नेकी-बदी)

भलाई पत्थर की लकीर की तरह अटल है और बुराई पानी की लकीर की तरह दिखने-छिपनेवाली अर्थात् धोखा देनेवाली है । भले व्यक्ति के मन में शत्रुता नहीं रहती और बुरे व्यक्ति के मन में किसी की भलाई नहीं टिकती। भला व्यक्ति किसी की भलाई को नहीं भुलाता और बुरा किसी की बुराई को मन से विस्मृत नहीं करता । इस संसार में दोनों की ही आशा अन्त में पूर्ण नहीं हो पाती क्योंकि बुरा अधिक से अधिक बुराई ही करते रहना चाहता है और भला और अधिक भलाई करने की आशा सदैव मन में लगाए रहता है।

विरतीहाणु वखाणिआ सई सिआणी सिख सुणाए ।
परउपकारु विकारु कमाए ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(भले-बुरे दी कहाणी)

विरतीहाणु वखाणिआ भले बुरे दी सुणी कहाणी ।
भला बुरा दुइ चले राहि उस थै तोसा उस थै पाणी ।
तोसा अगै रखिआ भले भलाई अंदरि आणी ।
बुरा बुराई करि गइआ हथीं कढि न दितो पाणी ।
भला भलाईअहुँ सिझिआ बुरे बुराईअहुँ वैणि विहाणी ।
सचा साहिबु निआउ सचु जीआँ दा जाणोई जाणी ।
कुदरति कादर नो कुरबाणी ।। १७ ।।

भले व्यक्ति द्वारा बुरा कार्य नहीं होता परन्तु भला करनेवाला बुरे व्यक्ति से भलाई की आशा न रखे । सौ सयाने व्यक्तियों की शिक्षाओं के निचोड़ रूप में यह शिक्षा मैंने कहते हुए चारों ओर व्याप्त वृत्तियों का वर्णन किया है । (भला) परोपकार और (बुरा) विकार युक्त कार्य करता है ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(भले-बुरे की कहानी)

भले और बुरे व्यक्तियों के बारे में सुनी कहानियों का ही (मैंने) वर्णन किया है । भला और बुरा व्यक्ति यात्रा पर गये । भले के पास रोटी और बुरे के पास पानी था । भले व्यक्ति ने भलाई को ध्यान में रखकर रोटी (खाने के लिए) निकालकर सामने रखी । बुरा बुराई कर गया अर्थात् उसकी रोटी तो खा गया और उसने पानी निकालकर भले व्यक्ति को नहीं दिया । भले को तो भलाई का फल मिला (वह मुक्त हो गया) पर बुरे व्यक्ति ने रोते हुए ही यह जीवन रूपी रात बिताई । जीवों के मन की जाननेवाला वह परमात्मा सच्चा है और उसका न्याय भी सच्चा है। मैं कर्त्ता और उसकी रचना पर कुर्बान जाता हूँ (क्योंकि एक ही पिता) परमात्मा के दोनों बच्चों का स्वभाव अलग-अलग है ।। १७।।

पउड़ी १८

(राम अते रावण)

भला बुरा सैसार विचि जो आइआ तिसु सरपर मरणा ।
रावण तै रामचंद वाँगि महाँबली लड़ि कारणु करणा ।
जरु जरवाणा वसि करि अंति अधरम रावणि मन धरणा ।
रामचंदु निरमलु पुरखु धरमहुँ साइर पथर तरणा ।
बुरिआईअहुँ रावणु गइआ काला टिका पर त्रिअ हरणा ।
रामाइणु जुगि जुगि अटलु से उधरे जो आए सरणा ।
जस अपजस विचि निडर डरणा ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(रावण दी जगत प्रसिद्ध कथा)

सोइन लंका वडा गड़ु खार समुंद जिवेही खाई ।
लख पुतु पोते सवा लखु कुंभकरणु महिरावणु भाई ।

पउड़ी १८

(राम और रावण)

संसार में भले-बुरे दोनों ही प्रकार के लोग हैं और जो यहाँ आया है उसे अवश्य ही मरना पड़ेगा । रावण और राम जैसे महाबली भी लड़ाइयों के कारण और कर्त्ता बने । बुढ़ापे को भी वश में करके अर्थात् काल को भी जीतकर अन्तत: रावण ने अधर्म को मन में धारण किया (और सीता को चुरा लाया) । रामचन्द्र निर्मल पुरुष थे और उनकी धार्मिक (कर्त्तव्य) भावना के कारण समुद्र पर पत्थर भी तैरने लगे। बुराई के कारण रावण गया (मारा गया) और पराई स्त्री का हरण कर उसने बुराई का काला टीका (माथे पर) लगाया । राम की कथा युगों-युगों तक अटल है । जो उसकी शरण में आये उनका उद्धार हो गया । जो धर्म-भीरु होते हैं संसार में उनका यश होता है और जो दुस्साहसी होते हैं उनका अपयश होता है ।। १८।।

पउड़ी १९

(रावण की जगत्-प्रसिद्ध कथा)

सोने की लंका एक बड़ा किला था, समुद्र जिसके चारों ओर एक खाई के समान था। रावण के लाख पुत्र, सवा लाख पौत्र एवं कुंभकर्ण-महिरावण जैसे भाई थे। पवन उसके यहाँ झाड़ू देता था और इन्द्र वर्षा करके उसका पानी भरता था।

पवणु बुहारी देइ निति इंद्र भरै पाणी वर्हिआई ।
बैसंतुर रासोईआ सूरजु चंदु चराग दीपाई ।
बहु खूहणि चतुरंग दल देस न वेस न कीमति पाई ।
महादेव दी सेव करि देव दानव रहंदे सरणाई ।
अपजसु लै दुरमति बुरिआई ॥ १९ ॥

पउड़ी २०

(स्री रामचंद दी लोक प्रसिद्ध कथा)

रामचंदु कारण करण कारण वसि होआ देहिधारी ।
मंनि मतेई आगिआ लै वणवासु वडाई चारी ।
परसरामु दा बलु हरै दीन दइआलु गरब परहारी ।
सीता लखमण सेव करि जती सती सेवा हितकारी ।
रामाइणु वरताइआ राम राजु करि स्रिसटि उधारी ।
मरणु मुणसा सचु है साधसंगति मिलि पैज सवारी ।
भलिआई सतिगुर मति सारी ॥ २० ॥ ३१ ॥ इकतीह ॥

~~~~~~

अग्नि उसका रसोइया था और सूर्य-चन्द्र उसके दीपक जलानेवाले थे । अनेक अक्षौहिणी उसकी चतुरंगिणी सेना थी जिसके बल-वैभव का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता । उसने महादेव (शिव) की सेवा की थी, इसी से देव-दानव सभी उसकी शरण में रहते थे । उस दुर्मति ने बुरे कर्म करके अपयश ही अर्जित किया ।। १९ ।।

पउड़ी २०

(श्री रामचन्द्र की लोकप्रसिद्ध कथा)

सभी कारणों के कर्त्ता ने किसी कारणवश रामचन्द्र के रूप में देह धारण की। सौतेली माँ की आज्ञा मानकर उसने वनवास लिया और बड़प्पन अर्जित किया। दीनदयालु एवं गर्वनाशक राम ने परशुराम के बल (गर्व) का हरण किया। लक्ष्मण राम की सेवा करके यति बना रहा और सीता भी सतीत्व भाव से राम की सेवा में लीन रही । राम कथा का प्रताप सब जगह फैलाया और राम-राज्य स्थापित कर राम ने सृष्टि का उद्धार किया । मरण उन व्यक्तियों के लिए सत्य है जिन्होंने साधुसंगति में आकर अपना जीवन उद्देश्य सँवार लिया है । भलाई ही सद्गुरु की श्रेष्ठ शिक्षा है ।। २० ।। ३१ ।।

* * *
~~~~~~

वार ३२

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।।

पउड़ी १

(गुरमुख दे लच्छण)

पहिला गुरमुखि जनमु लै भै विचि वरतै होइ इआणा ।
गुरसिख लै गुरसिखु होइ भाइ भगति विचि खरा सिआणा ।
गुरसिख सुणि मंनै समझि माणि महति विचि रहै निमाणा ।
गुरसिख गुरसिखु पूजदा पैरी पै रहरासि लुभाणा ।
गुरसिख मनहु न विसरै चलणु जाणि जुगति मिहमाणा ।
गुरसिख मिठा बोलणा निवि चलणा गुरसिखु परवाणा ।
घालि खाइ गुरसिख मिलि खाणा ।। १ ।।

पउड़ी १

(गुरुमुख के लक्षण)

गुरुमुख व्यक्ति जन्म लेकर इस संसार में अनजान बनकर प्रभु के भय को मन में धारण कर व्यवहार करता है। गुरु की शिक्षा लेकर वह गुरु का सिक्ख बनता है और प्रेमभक्ति में रहते हुए खरा एवं बुद्धिपूर्ण जीवन व्यतीत करता है । गुरु की शिक्षा सुन-समझकर मानता है और सम्मान प्राप्त होने पर भी विनम्र बना रहता है । गुरु की शिक्षा के अन्तर्गत वह गुरु के सिक्खों की पूजा-अर्चना करता है और उनके चरण छूकर इस सच्चे रास्ते पर चलते हुए सबका मन मोह लेता है । गुरु, सिक्ख के मन से कभी विस्मृत नहीं होता और वह यहाँ अतिथिभाव से युक्त होकर यहाँ से चले जाने की युक्ति को मन में बसाकर जीता है । गुरु का सिक्ख मीठा बोलता है और उसे झुककर अर्थात् विनम्र होकर चलना ही स्वीकृत होता है । वह मेहनत करके और गुरु के सिक्खों के साथ मिलकर खाता है ।। १ ।।

पउड़ी २

(गुरमुख-ताण होंदे होइ निताला)

दिसटि दरस लिव सावधानु सबद सुरति चेतंनु सिआणा ।
नामु दानु इसनानु दिड़ु मन बच करम करै मे लाणा ।
गुरसिख थोड़ा बोलणा थोड़ा सउणा थोड़ा खाणा ।
परतन परधन परहरै पर निंदा सुणि मनि सरमाणा ।
गुरमूरति सतिगुर सबदु साधसंगति समसरि परवाणा ।
इक मनि इकु अराधणा दुतीआ नासति भावै भाणा ।
गुरमुखि होदै ताणि निताणा ॥ २ ॥

पउड़ी ३

(मनमुख, मूरख, हीणा ते इकल्ला है)

गुरमुखि रंगु न दिसई होंदी अखीं अंन्हा सोई ।
गुरमुखि समझि न सकई होंदी कंनीं बोला होई ।

पउड़ी २

(गुरुमुख शक्ति होते हुए भी निर्बलता प्रदर्शित करता है)

गुरुमुख व्यक्ति की दृष्टि में प्रभु-दर्शन (की आकांक्षा) और सुरति में शब्द लीनता के फलस्वरूप सयानापन, चेतनता तथा सावधानी विराजमान रहती है । वह नाम-स्मरण, दान, स्नान आदि में दृढ़ रहकर मन-वचन एवं कर्म से सबके साथ मेल-मिलाप बनाए रखता है । गुरु का सिक्ख थोड़ा बोलता, कम सोता एवं कम खाता है । पराया तन (पराई स्त्री) परधन का त्यागकर वह पराई निंदा को सुनकर मन में संकोच का अनुभव करता है । गुरु की मूर्ति रूपी सद्गुरु के शब्द को और साधुसंगति को वह समान भाव से ग्रहण करता है । एक मन से वह एक प्रभु की आराधना करता है और द्वैतभाव को न धारण करते हुए उसे प्रभु की रजा स्वीकार होती है । गुरुमुख व्यक्ति शक्ति के होते हुए भी अपने आपको निर्बल अनुभव करता है ।। २।।

पउड़ी ३

(स्वेच्छाचारी, मूर्ख, हीन एवं अकेला है)

गुरुमुख व्यक्ति का रूप-रंग जिसे दिखाई नहीं देते, वह तो मानों आँखों के होते हुए भी अंधा है । जिसे गुरुमुख की बात समझ नहीं आती वह तो मानों कानों के होते हुए भी बहरा है ।

गुरमुखि सबदु न गावई होंदी जीभै गुंगा गोई ।
चरण कवल दी वास विणु नकटा होंदे नकि अलोई ।
गुरमुखि कार विहूणिआ होंदी करीं लुंजा दुखु रोई ।
गुरमति चिति न वसई सो मति हीणु न लहंदा ढोई ।
मूरख नालि न कोइ सथोई ॥ ३ ॥

पउड़ी ४

(मूरख घुग्गू दा द्रिशटांत)

घुघू सुझु न सुझई वसदी छडि रहै ओजाड़ी ।
इलि पढ़ाई न पढ़ै चूहे खाइ उडे देहाड़ी ।
वासु न आवै वाँस नो हउमै अंगि न चंनण वाड़ी ।
संखु समुंदहु सखणा गुरमति हीणा देह विगाड़ी ।
सिंमलु बिरखु न सफलु होइ आपु गणाए वडा अनाड़ी ।
मूरखु फकड़ि पवै रिहाड़ी ॥ ४ ॥

जो गुरुमुख के शब्दों का गायन नहीं करता वह मानों जीभ के होते हुए भी गूँगा है । गुरु के चरण-कमलों की सुगंध से विहीन व्यक्ति नाक होते हुए भी नकटा ही माना और जाना जाता है । गुरुमुखों की सेवा से विहीन व्यक्ति हाथों के होते हुए भी अपाहिज (लुंज) होकर रोता रहता है। जिसके चित्त में गुरुमत स्थित नहीं होता उस मतिहीन को कहीं भी आश्रय नहीं मिलता। मूर्ख का कोई भी साथी नहीं होता ।। ३।।

पउड़ी ४

(मूर्ख उल्लू का दृष्टांत)

उल्लू को समझ की बात नहीं सूझती और बस्ती को छोड़कर उजाड़ में रहता है । चील भी कुछ सिखाया नहीं सीखती और दिन भर चूहे खाकर उड़ती रहती है। चन्दन के उद्यान में रहते हुए भी अहंकारी बाँस में सुगन्धि नहीं आती । जैसे समुद्र में रहते हुए भी शंख खाली रहता है इसी प्रकार गुरुमत से विहीन व्यक्ति भी मानों अपने शरीर का नाश ही कर रहा है । सेमल का वृक्ष बहुत बड़ा अनाड़ी है जो गुणहीन होते हुए भी अपने आप को बड़ा जताता है । मूर्ख लोग ही व्यर्थ की बातों को लेकर झगड़ते रहते हैं ।। ४।।

पउड़ी ५

(मूरख अंन्हे दी आरसी)

अंन्हे अगै आरसी नाई धरि न वधाई पावै ।
बोलै अगै गावीऐ सूमु न डूमु कवाइ पैन्हावै ।
पुछै मसलति गुंगिअहु विगड़ै कंमु जवाबु न आवै ।
फुलवाड़ी वड़ि गुणगुणा माली नो न इनामु दिवावै ।
लूले नालि विआहीऐ किव गलि मिलि कामणि गलि लावै ।
सभना चाल सुहावणी लंगड़ा करे लखाउ लंगावै ।
लुकै न मूरखु आपु लखावै ॥ ५ ॥

पउड़ी ६

(मूरख दा सौरना)

पथरु मूलि न भिजई सउ वर्हिआ जलि अंदरि वसै ।
पथर खेतु न जंमई चारि महीने इंदरु वरसै ।

पउड़ी ५

(मूर्ख अंधे के समक्ष दर्पण)

अंधे के सामने दर्पण प्रस्तुत करनेवाले नाई को कभी पुरस्कार नहीं मिलता। बहरे के सामने गाना व्यर्थ है और इसी तरह कृपण कभी नौकर को तोहफे में पोशाक नहीं दे सकता । गूँगे से यदि परामर्श किया जाएगा तो काम बिगड़ ही जाएगा,क्योंकि वह कोई जवाब नहीं दे सकेगा । घ्राणशक्ति से विहीन व्यक्ति यदि फुलवाड़ी में जाएगा तो वह माली को इनाम नहीं दिला सकता। लूले व्यक्ति के साथ विवाहित स्त्री भला उससे कैसे मिले और वह उसे कैसे गले लगाए। सबकी चाल सुहावनी होती है परन्तु लँगड़ा व्यक्ति चाल दिखाने पर निश्चित रूप से लँगड़ाता दिखाई देता है । इसी प्रकार मूर्ख व्यक्ति कभी छिपता नहीं वह स्वयं को अवश्य प्रकट कर देता है ।। ५।।

पउड़ी ६

(मूर्ख का सँवरना)

सौ वर्ष तक जल में रहने पर भी पत्थर तनिक भी (अंदर से) नहीं भीगता।

पथरि चंनणु रगड़ीए चंनण वाँगि न पथरु घसै ।
सिल वटे नित पीसदे रस कस जाणे वासु न रसै ।
चकी फिरै सहंस वार खाइ न पीऐ भुख न तसै ।
पथर घड़ै वरतणा हेठि उते होइ घड़ा विणसै ।
मूरख सुरति न जस अपजसै ॥ ६ ॥

पउड़ी ७

(मूरख पत्थर है, संगति विच्च रहि के बी कु-संगी रहिंदा है)

पारस पथर संगु है पारस परसि न कंचनु होवै ।
हीरे माणक पथरहु पथर कोइ न हारि परोवै ।
वटि जवाहरु तोलीऐ मुलि न तुलि विकाइ समोवै ।
पथर अंदरि असटधातु पारसु परसि सुवंनु अलोवै ।
पथरु फटक झलकणा बहु रंगी होइ रंगु न गोवै ।

चार महीने तक भी यदि वर्षा होती रहे तो भी पत्थर खेत में उग नहीं सकता। पत्थर को बेशक चन्दन की तरह रगड़ा जाए पर वह चन्दन की तरह कभी घिसता नहीं । सिल-बट्टा सदैव पदार्थों को पीसता रहता है पर वह उनके रस एवं स्वाद अथवा कषाय गुणों के बारे में कभी नहीं जान पाता । चक्की हजारों बार घूमती है परन्तु न तो वह खाती-पीती है और न ही उसे भूख-प्यास लगती है । पत्थर और घड़े का सम्बन्ध ही ऐसा है कि पत्थर चाहे नीचे से आए चाहे ऊपर से आए, घड़े का विनाश निश्चित है । मूर्ख व्यक्ति को यश-अपयश की समझ नहीं होती ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(मूर्ख पत्थर है, संगति में रहकर भी कुसंगी बना रहता है)

आम पत्थर पारस पत्थर के संग रहता है परन्तु उससे स्पर्श कर धातु सोना नहीं बनती। हीरे-माणिक भी पत्थरों के साथ ही रहते हैं पर पत्थरों का हार नहीं पिरोया जाता । पत्थर के बाट से जवाहिरात तौले अवश्य जाते हैं पर इस बाट की क़ीमत जवाहिरातों की क़ीमत की बराबरी नहीं कर सकती। पत्थरों में ही अष्टधातुएँ बिखरी पड़ी रहती हैं परन्तु वे केवल पारस के स्पर्श से ही सोना बनती हैं। स्फटिक पत्थर अनेक रंगों वाला होकर झलकता तो है पर फिर भी स्वयं पत्थर का पत्थर ही बना रहता है ।

पथर वासु न साउ है मन कठोरु होइ आपु विगोवै ।
करि मूरखाई मूरखु रोवै ॥ ७ ॥

पउड़ी ८

(मूरख दा संग ना करो)

जिउँ मणि काले सप सिरि सार न जाणै विसू भरिआ ।
जाणु कथूरी मिरग तनि झाड़ाँ सिंङ्दा फिरै अफरिआ ।
जिउँ करि मोती सिप विचि मरमु न जाणै अंदरि धरिआ ।
जिउँ गाईं थणि चिचुड़ी दुधु न पीऐ लोहू जरिआ ।
बगला तरणि न सिखिओ तीरथि न्हाइ न पथरु तरिआ ।
नालि सिआणे भली भिख मूरख राजहु काजु न सरिआ ।
सेखी होइ विगाड़ै खरिआ ॥ ८ ॥

पत्थर में सुगंध और स्वाद कुछ नहीं है, वह कठोर मन केवल अपना आप ही गँवाता रहता है । मूर्ख व्यक्ति भी मूर्खता करके रोता रहता है ।। ७।।

पउड़ी ८

(मूर्ख की संगति न करो)

काले सर्प के सिर में मणि होती है पर वह उसको न जानता हुआ विष से भरा रहता है । कस्तूरी मृग के शरीर में ही होती है ऐसा जाना जाता है परन्तु वह घबराया हुआ कस्तूरी के लिए झाड़ियाँ सूँघता हुआ दौड़ता फिरता है। मोती सीप में रहता है परन्तु वह सीप उस अंदर रखे मोती के रहस्य को नहीं जानता । गाय के थनों में लगकर भी चर्मकृमि (चीचड़) गाय का दूध न पीकर उससे चिपककर केवल उसका खून पीता रहता है । बगुला पानी में रहने पर भी तैरना नहीं जानता और पत्थर अनेकों तीर्थों पर नहाने पर भी तैरकर पार नहीं हो सकता। इस प्रकार बुद्धिमान पुरुष के साथ रहकर तो भीख माँगकर खाना भला है परन्तु मूर्ख व्यक्ति के साथ रहकर राज करना भी ठीक नहीं है, क्योंकि जो स्वयं खोटा होगा वह खरे को भी बिगाड़ेगा ।। ८।।

पउड़ी ९

(मूरख नाल ओपरे रहो)

कटणु चटणु कुतिआँ कुतै हलक तै मनु सूगावै ।
ठंढा तता कोइला काला करि कै हथु जलावै ।
जिउ चकचूँधर सप दी अंन्हा कोढ़ी करि दिखलावै ।
जाणु रसउली देह विचि वढी पीड़ रखी सरमावै ।
वंसि कपूतु कुलछणा छडै बणै न विचि समावै ।
मूरख हेतु न लाईऐ परहरि वैरु अलिपतु वलावै ।
दुहीं पवाड़ीं दुखी विहावै ॥ ९ ॥

पउड़ी १०

(मूरख बेथव्हा ते औगुण ग्राही है)

जिउ हाथी दा न्हावणा बाहरि निकलि खेह उडावै ।
जिउ ऊठै दा खावणा परहरि कणक जवाहाँ खावै ।

पउड़ी ९

(मूर्ख के साथ अनजान बने रहो)

कुत्ते का काम ही काटना और चाटना है परन्तु यदि वह पागल हो जाए तो मन उससे डरता है । कोयला ठंडा या गर्म होने पर भी क्रमश: वह हाथ को काला करता तथा जला देता है । छछूँदर जो साँप द्वारा पकड़ ली जाती है वह उसे अंधा और कोढ़ी करके दिखा देती है । शरीर में रसौली होने पर उसे काट फेंकने पर तो पीड़ा होती है और रखे रहने पर सदैव संकोच बना रहता है । कुलक्षणों वाला कपूत यदि वंश में हो तो न तो उसे छोड़ते बनता है और न ही वह परिवार में रह पाता है । इसी प्रकार मूर्ख से प्यार नहीं करना चाहिए और उसकी शत्रुता को भी त्याग कर उससे निर्लिप्त बने रहना चाहिए अन्यथा दोनों तरीकों से ही दु:ख प्राप्त होगा ।। ९ ।।

पउड़ी १०

(मूर्ख बेढंगा और अवगुणग्राही है)

हाथी नहाता है और बाहर निकलकर फिर मिट्टी उड़ाता है।

कमले दा कछोटड़ा कदे लक कदे सीसि वलावै ।
जिउँ करि टुंडे हथड़ा सो चुती सो वाति वतावै ।
संन्ही जाणु लुहार दी खिणु जलि विचि खिन अगनि समावै ।
मखी बाणु कुबाणु है लै दुरगंधु सुगंध न भावै ।
मूरख दा किहु हथि न आवै ॥ १० ॥

पउड़ी ११

(मूरख आपे फसदे ते कुफक्कड़ी हन)

तोता नली न छडई आपण हथीं फाथा चीकै ।
बाँदरु मुठि न छडई घरि घरि नचै झीकणु झीकै ।
गदहुँ अड़ी न छडई रीघी पउदी हीकणि हीकै ।
कुते चकी न चटणी पूछ न सिधी धीकणि धीकै ।
करनि कुफकड़ मूरखाँ सप गए फड़ि फाटनि लीकै ।
पग लहाइ गणाइ सरीकै ॥ ११॥

ऊँट भी गेहूँ छोड़कर घटिया किस्म का अनाज जवास आदि खाता है । पागल व्यक्ति का लंगोट कभी वह पागल कमर में बाँध लेता है और कभी सिर पर बाँध लेता है। लुज व्यक्ति का हाथ भी कभी उसके चूतड़ों पर जाता है और कभी वही हाथ जम्हाई लेते समय मुँह पर आता है। लोहार की जंबूर (सँड़सी) क्षण भर में तो अग्नि में जाती और (फिर दूसरे ही क्षण जल में जाती है)। मक्खी का स्वभाव भी बुरा है । उसे दुर्गन्ध अच्छी लगती है और सुगंध नहीं भाती। मूर्ख व्यक्ति के इस प्रकार कुछ हाथ नहीं लगता ।। १०।।

पउड़ी ११

(मूर्ख स्वयं ही फँसता है और झूठा होता है)

तोता (फँसनेवाली) नली को नहीं छोड़ता और स्वयं ही फँसकर चीखता चिल्लाता है। बंदर भी (मटके में से निकालने के लिए) अनाज की मुट्ठी को नहीं छोड़ता और दुखी होकर घर-घर नाचता और नकल उतारता घूमता है। गधा भी जिद न छोड़ने पर छड़ी से पीटा जाता है तो रेंकता रहता है। कुत्ता चक्की चाटना नहीं छोड़ता और उसकी पूँछ को सीधा खींचने पर भी वह सीधी नहीं होती। मूर्ख व्यक्ति मूर्खता-पूर्ण डींगे मारते हैं और साँप के निकल जाने पर लकीर पीटते हैं । वे एक-दूसरे की पगड़ी उतारकर अर्थात् परस्पर एक-दूसरे को बेइज्जत करके ही जताते हैं कि हम लोग आपस में रिश्तेदार अथवा पट्टीदार हैं ।। ११।।

पउड़ी १२

(मूरख सच्च दा यार नहीं)

अंन्हा आखे लड़ि मरै खुसी होवै सुणि नाउ सुजाखा ।
भोला आखे भला मंनि अहमकु जाणि अजाणि न भाखा ।
धोरी आखै हसि दे बलद वखाणि करै मनि माखा ।
काउँ सिआणप जांणदा विसटा खाइ न भाख सुभाखा ।
नाउ सुरीत कुरीत दा मुसक बिलाई गाँडी साखा ।
हेठि खड़ा थू थू करै गिदड़ हथि न आवै दाखा ।
बोलविगाड़ु मूरखु भेडाखा ॥ १२ ॥

पउड़ी १३

(मूरख बिन गुण गरब करदा है)

रुखाँ विचि कुरुखु है अरंडु अवाई आपु गणाए ।
पिदा जिउ पंखेरूआँ बहि बहि डाली बहुतु बफाए ।

पउड़ी १२

(मूर्ख सत्य का मित्र नहीं)

(मूर्ख को अक्ल का) अंधा कहने पर वह लड़ मरता है और सुजान कहने पर वह खुश हो जाता है। (मूर्ख व्यक्ति को) भोला कहने पर वह अच्छा समझता है और उसे (साफ-साफ) मूर्ख कहने पर वह जान-बूझकर अनजान बन जाता है। उसे धैर्यवान कहने पर तो वह मुस्कुराता है परन्तु बैल के समान चपल कहने पर मन में क्रुद्ध हो उठता है। कौआ बहुत चतुराइयाँ जानता है, परन्तु काँव-काँव चिल्लाकर वह विष्ठा ही खाता है। कुरीतियों का मूर्ख ने भली रीतियाँ और विष्ठा का नाम मुश्कबिलाई (सुगंध) रखा हुआ है। वह गीदड़ की तरह अंगूर के फल तक हाथ न पहुँच पाने के कारण थू-थू ही करता है। भेड़चाल पर चलनेवाला मूर्ख अपने बोल के कारण सबसे बिगाड़ लेता है ।।१२।।

पउड़ी १३

(मूर्ख गुणविहीन होने पर भी गर्व करता है)

वृक्षों में निकृष्ट रेंड़ी का वृक्ष है जो नाहक ही अपने आपको जताता है ।

भेड भिविंगा मुहु करै तरणापै दिहि चारि वलाए ।
मुहु अखी नकु कन जिउँ इंद्रीआँ विचि गाँडि सदाए ।
मीआ घरहु निकालीऐ तरकसु दरवाजे टंगवाए ।
मूरख अंदरि माणसाँ विणु गुण गरबु करै आखाए ।
मजलस बैठा आपु लखाए ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(मूरख कौण है ?)

मूरख तिस नो आखीऐ बोलु न समझै बोलि न जाणै ।
होरो किहु करि पुछीऐ होरो किहु करि आखि वखाणै ।
सिख देइ समझाईऐ अरथु अनरथु मनै विचि आणै ।
वडा असमझु न समझई सुरति विहूणा होइ हैराणै ।

पक्षियों में छोटा सा पक्षी पिद्दी टहनियों पर फुदक-फुदककर ही अपने आप में फूला रहता है । भेड़ टेढ़ी दृष्टि से सबको देखकर मैं; मैं की आवाज करती है पर अपनी चार दिन की जवानी के दिन ही व्यतीत कर पाती है। गुदा भी आँख, कान, नाक, मुँह जैसी इन्द्रिय ही कहलाती है (और गर्व करती है)। सिपाही को तो घर से बाहर निकाल दिया जाए और उसका तरकस आदि दरवाजे पर टाँग दिया जाए (तो लोग भला कैसे डरेंगे)। मनुष्यों में मूर्ख व्यक्ति बिना गुण के ही गर्व करता और स्वयं को जताता रहता है तथा सभा में बैठकर केवल अपने आप को ही देखता है (अन्यों की बुद्धिमता को नहीं)।। १३ ।।

पउड़ी १४

(मूर्ख कौन है?)

मूर्ख उसे कहा जाता है जो बात का मर्म न समझे और न ही भली प्रकार बोलना जानता हो । उससे पूछा कुछ जाता है और वह उसका उत्तर कुछ अन्य ही देता है । उसे शिक्षा देकर समझाने पर उसके मन में अर्थ का भी अनर्थ भाव ही आता है । वह बड़ा नासमझ है जो समझाने पर भी नहीं समझता और सुरति से विहीन हो हैरान-परेशान रहता है । गुरुमत कभी उसके चित्त में नहीं बसता और अपनी दुर्बुद्धि के फलस्वरूप वह मित्र को भी शत्रु-रूप में जानता है ।

गुरमति चिति न आणई दुरमति मितु सतु परवाणै ।
अगनी सपहुँ वरजीऐ गुण विचि अवगुण करै धिङाणै ।
मूतै रोवै मा न सिञाणै ॥ १४ ॥

पउड़ी १५

(मूरख दी पछाण)

राहु छडि उझड़ि पवै आगू नो भुला करि जाणै ।
बेड़े विचि बहालीऐ कुदि पवै विचि वहण धिङाणै ।
सुघड़ाँ विचि बहिठिआँ बोलि विगाड़ि उघाड़ि वखाणै ।
सुघड़ाँ मूरख जाणदा आपि सुघड़ु होइ विरती हाणै ।
दिह नो राति वखाण दा चाम चड़िक जिवें टानाणै ।
गुरमति मूरखु चिति न आणै ॥ १५ ॥

पउड़ी १६

(मूरख दा अंत)

वैदि चंगेरी ऊठणी लै सिल वटा कचरा भंना ।
सेवकि सिखी वैदगी मारी बुढी रोवनि रंना ।

अग्नि, सर्प आदि के पास न जाने के बुद्धि रूपी गुण को वह अवगुण के रूप में अपनाकर वह जोर-जबर्दस्ती करता है (और बुरे रास्ते पर ही जाता है)। वह मूर्ख मल -मूत्र त्याग का कार्य और रोना जिस माँ के पास करता है उसे ही (बाद में) पहचानता नहीं ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(मूर्ख की पहचान)

रास्ते को छोड़कर उजाड़ का रास्ता अपनाए और आगे चलनेवाले को भूला हुआ माननेवाला मूर्ख होता है। नाव में बिठाने पर भी वह पानी की धारा में जबर्दस्ती कूद पड़ता है । सज्जनों में बैठा हुआ भी वह अपने बुरे बोल के कारण प्रकट हो ही जाता है । सयाने लोगों को वह मूर्ख मानता है और स्वयं चतुर बनकर अपनी ही हानि करता है । चमगादड़ एवं भुनगे की तरह दिन को रात ही बतलाता है । गुरुमत कभी मूर्ख के चित्त में निवास नहीं करता ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(मूर्ख का अंत)

एक वैद्य ने एक ऊँटनी को जिसके गले में कुछ फँस गया था उसकी गर्दन

पकड़ि चलाइआ रावलै पउदी उघड़ि गए सु कंना ।
पुछै आखि वखाणिउनु उघड़ि गइआ पाजु परछंना ।
पारखूआ चुणि कढिआ जिउ कचकड़ा न रलै रतंना ।
मूरखु अकली बाहरा वाँसहु मूलि न होवी गंना ।
माणस देही पसू उपंना ॥ १६ ॥

पउड़ी १७

(मूरख रीस दा फल भोगदा है)

महादेव दी सेव करि वरु पाइआ साहै दै पुतै ।
दरबु सरूप सरेवड़ै आए वड़े घरि अंदरि उतै ।
जिउ हथिआरी मारीअनि तिउ तिउ दरब होइ धड़धुतै ।
बुती करदे डिठिओनु नाई चैनु न बैठे सुतै ।
मारे आणि सरेवड़े सुणि दीवाणि मसाणि अछुतै ।

पर बाहर एक कच्चा खरबूजा रखकर उसे पत्थर से तोड़ा और ऊँटनी को भला-चंगा कर दिया । उसके सेवक ने भी यह देखकर इसे वैद्यकी की शिक्षा माना एवं ऐसा ही करके एक रोगी बुढ़िया को मार दिया जिससे घर की स्त्रियाँ रोने-धोने लग गई । उसे लोगों ने पकड़कर राजा के पास प्रस्तुत किया जहाँ मार पड़ने से उसके कान खुल गये अर्थात् उसे अक्ल आ गई । पूछने पर उसने बताया कि आज उसकी सीखी हुई हकीमी की पोल खुल गयी है। पारखी व्यक्तियों ने उसे ऐसे ही चुनकर अलग कर दिया जैसे जौहरी रत्नों में से काँच को छाँटकर अलग कर देते हैं । बुद्धि से विहीन मूर्ख उस बाँस के समान है जो कभी भी गन्ना नहीं बन सकता । वह तो मानों मनुष्य की देह में पशु उत्पन्न हुआ है ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(मूर्ख नकल करने का फल भोगता है)

एक साहूकार के पुत्र ने महादेव की सेवा कर (धन का) वरदान प्राप्त किया। उसके घर में द्रव्य श्रमणों (जैनी साधुओं) का रूप धारण करके आ गया। जैसे-जैसे उनको पीटा जाता था वैसे ही वैसे धन के ढेर लगते जाते थे । एक नाई ने भी घर का काम करते हुए यह सब दृश्य देख लिया जिससे उसकी तो नींद उड़ गई । उसने मौका पाकर सभी श्रमणों को जान से ही मार दिया और कचहरी में भी इस कृत्य की पुकार सुनी गई कि निर्दोषों को मार दिया गया है ।

मथै वालि पछाड़िआ वाल छडाइअनि किस दै बुतै ।
मूरखु बीजै बीउ कुरुतै ॥ १७ ॥

पउड़ी १८

(पंडित वी मूरख हो सकदा है)

गोसटि गांगे तेलीऐ पंडित नालि होवै जगु देखै ।
खड़ी करै इक अंगुली गांगा दुइ वेखालै रेखै ।
फेरि उचाइ पंचांगुला गांगा मुठि हलाइ अलेखै ।
पैरीं पै उठि चलिआ पंडितु हारि भुलावै भेखै ।
निरगुणु सरगुणु अंग दुइ परमेसरु पंजि मिलनि सरेखै ।
अखीं दोवैं भंनसाँ मुकी लाइ हलाइ निमेखै ।
मूरख पंडितु सुरति विसेखै ॥ १८ ॥

उसे सिर के बाल पकड़कर पछाड़ा गया । अब भला वह किसके बल पर अपने बाल छुड़ाएगा । मूर्ख व्यक्ति ऐसे ही असामयिक बीज बोता है (और हानि उठाता है) ।। १७ ।।

पउड़ी १८

(पंडित भी मूर्ख हो सकता है)

गंगू तेली की पंडित के साथ हो रही गोष्ठी को सारा संसार देख रहा था । गंगू तेली को एक अँगुली दिखाकर पंडित ने यह बताया कि ब्रह्म एक है पर गंगू ने यह सोचकर कि यह मेरी एक आँख निकालना चाहता है उसे दो अँगुलियाँ दिखाई (कि मैं तेरी दोनों आँखें निकाल लूँगा। परन्तु पंडित ने समझा कि गंगू कह रहा है कि एक ब्रह्म के निर्गुण एवं सगुण दो रूप हैं) । पंडित ने फिर पाँच अँगुलियाँ उठाकर जताया कि पाँच तत्वों के प्रसार के कारण ही उसके दो रूप लगते हैं पर मूर्ख ने सोचा कि पंडित कह रहा है, मैं अपनी सारी उँगलियों से तुम्हारा मुँह नोंच लूँगा । इसलिए उसने मुट्ठी भींचकर हिलाई कि मैं तुम्हें एक ही घूँसे से मार दूँगा। पंडित ने समझा उसे समझाया जा रहा है कि सारी सृष्टि की रचना इन पाँचों तत्वों की समष्टि के कारण ही है । पंडित ने उस मूर्ख के वेश के भुलावे में आकर अपनी हार मानकर उसकी चरण-वंदना करके उठ गया । एक ही परमेश्वर के सगुण और निर्गुण दो अंग हैं और पाँचों तत्व मिलकर श्रेष्ठ रचना करते हैं । मूर्ख का कहना कि आँखें निकाल लूँगा और घूँसा मार दूँगा का भी पंडित ने विशिष्ट अर्थ लगाया। सुरति की विशिष्टता के कारण ही पंडित भी मूर्ख सिद्ध हो गया ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(मूरख दी संगति दा फल)

ठंढे खूहहुँ न्हाइ कै पग विसारि आइआ सिरि नंगै ।
घर विचि रंनाँ कमलीआँ धुसी लीती देखि कुढंगै ।
रंनाँ देखि पिटंदीआँ ढाहाँ मारैं होइ निसंगै ।
लोक सिआपे आइआ रंनाँ पुरस जुड़े लै पंगै ।
नाइण पुछदी पिटदीआँ किस दै नाइ अल्हाणी अंगै ।
सहुरे पुछहु जाइ कै कउण मुआ नूह उतरु मंगै ।
कावाँ रौला मूरखु संगै ॥ १९ ॥

पउड़ी २०

(मूरख नाल किक्कुर वरतीए)

जे मूरखु समझाईऐ समझै नाही छाँव न धुपा ।
अखीं परखि न जाणई पितल सुइना कैहाँ रुपा ।

पउड़ी १९

(मूर्ख की संगति का फल)

एक व्यक्ति ठंडे कुएँ पर नहाकर और वहीं पर पगड़ी भूलकर (घर) चला आया। घर में स्त्रियों ने इस बेढंगे व्यवहार को देखा और माथा पीट-पीटकर रोने लगीं । (उन्होंने पगड़ी-विहीन गृहस्वामी को देखा तो समझा कि अवश्य कोई मर गया है और इसी कारण इसने पगड़ी उतारी है ।) स्त्रियों को रोता देखकर सभी घर के सदस्य चीख-चीखकर रोने लगे । अन्य लोग भी इकट्ठे होकर आ गये और स्त्री-पुरुष पंक्तियाँ लगाकर बैठ गये तथा अफ़सोस करने लगे । अब नाउन पूछने लगी कि रोने में मैं किसके नाम की पुकार लगाऊँ ? बहू कहने लगी कि ससुर से पूछकर उत्तर दो कि कौन मरा है, बताएँ (क्योंकि ससुर की ही पगड़ी उतरी हुई थी । तब पता चला कि वास्तविक तथ्य क्या है) । मूर्खों की संगति में इसी तरह की काँव-काँव होती है (क्योंकि कौवे भी एक कौवे की आवाज सुनकर बिना जाने-बूझे काँव-काँव करने लग जाते हैं) ।। १९ ।।

पउड़ी २०

(मूर्ख के साथ कैसे निपटें)

धूप और छाया के बारे में बताने पर भी मूर्ख समझता नहीं।

साउ न जाणै तेल घिअ धरिआ कोलि घड़ोला कुपा ।
सुरति विहूणा राति दिहु चानणु तुलि अन्हेरा घुपा ।
वासु कथूरी थोम दी मिहर कुली अधउड़ी तुपा ।
वैरी मितु न समझई रंगु सुरंग कुरंगु अछुपा ।
मूरख नालि चंगेरी चुपा ॥ २० ॥ ३२ ॥ बत्तीह ॥

अपनी आँखों से देखकर पीतल, काँसे, सोने और चाँदी की पहचान नहीं कर पाता। पास में रखे घी के घड़े और तेल के कुप्पे में से भी वह दोनों के स्वाद के बारे में नहीं जान सकता । वह रात-दिन सुरति से विहीन बना रहता है और उसके लिए प्रकाश एवं घोर अंधकार दोनों बराबर ही होते हैं । वह कस्तूरी और लहसुन की गंध तथा मखमल तथा चमड़े की सिलाई को एक ही जानता है । दोस्त, दुश्मन की पहचान नहीं करता और अच्छे-बुरे रंग की पहचान से भी अलिप्त ही बना रहता है । मूर्ख व्यक्ति के साथ तो चुप लगाना ही भला है ।। २० ।। ३२ ।।

* * *

वार ३३

ੴ सतिगुर प्रसादि ।।

पउड़ी १

(गुरमुख मनमुख)

गुरमुखि मनमुखि जाणीअनि साध असाध जगत वरतारा ।
दुह विचि दुखी दुबाजरे खरबड़ होए खुदी खुआरा ।
दुहीं सराईं जरद रू दगे दुराहे चोर चुगारा ।
ना उरवारु न पारु है गोते खानि भरमु सिरि भारा ।
हिंदू मुसलमान विचि गुरमुखि मनमुखि विच गुबारा ।
जंमणु मरणु सदा सिरि भारा ।। १ ।।

पउड़ी २

(हिंदू मुसलमान)

दुहु मिलि जंमे दुइ जणे दुहु जणिआँ दुइ राह चलाए ।
हिंदू आखनि राम रामु मुसलमाणाँ नाउ खुदाए ।

पउड़ी १

(गुरुमुख-स्वेच्छाचारी)

जगत में अपने व्यवहार के कारण गुरुमुखों एवं स्वेच्छाचारियों को क्रमशः साधु-असाधु-रूप में जाना जाता है । इन दानों में जो दोनों ओर चलनवाले अर्थात् जो साधु भी हैं और अन्तर्मन में चोर भी हैं, वे सदैव डाँवाँडोल अवस्था में अपने अहम् से दुःखी हो ख्वार होते हैं । ऐसे चोर चुग़लख़ोर एवं ठग व्यक्तियों के दोनों लोकों में ही घबराहट के मारे चेहरे पीले पड़े रहते हैं । ये न इस पार और न उस पार ही लग पाते हैं तथा सिर पर भ्रमों का बोझ लादे बीच में ही गोते खाते हैं । चाहे हिन्दू हो अथवा मुसलमान गुरुमुखों के बीच स्वेच्छाचारी तो घोर अंधकार के समान है । इनके सिर पर सदैव जन्म-मरण का बोझ लदा रहता है ।। १ ।।

पउड़ी २

(हिन्दू-मुसलमान)

स्त्री और पुरुष दोनों के मेल के फलस्वरूप (हिन्दू और मुसलमान) दोनों पैदा हुए परन्तु दोनों ने ही अलग-अलग मार्ग (सम्प्रदाय) चला लिया।

हिंदू पूरबि सउहिआँ पछमि मुसलमाणु निवाए ।
गंग बनारसि हिंदूआँ मका मुसलमाणु मनाए ।
वेद कतेबाँ चारि चारि चार वरन चारि मज़हब चलाए ।
पंज तत दोवै जणे पउणु पाणी बैसंतरु छाए ।
इक थाउँ दुइ नाउँ धराए ॥ २ ॥

पउड़ी ३

(दुबाजरेपुर आरसी दा द्रिशटांत)

देखि दुभिती आरसी मजलस हथो हथी नचै ।
दुखो दुखु दुबाजरी घरि घरि फिरै पराई खचै ।
अगै होइ सुहावणी मुहि डिठै माणस चहमचै ।
पिछहु देखि डरावणी इको मुहु दुहु जिनसि विरचै ।

हिन्दू राम-राम कहते हैं, और मुसलमानों ने उस (राम) का नाम खुदा रख दिया। हिन्दू पूर्व दिशा की और मुँह करके संध्या-तर्पण आदि करते हैं, और मुसलमान पश्चिम की तरफ़ सिर झुकाते हैं । हिन्दू गंगा और बनारस को मानते हैं और मुसलमान मक्का की मन्नत मानते हैं। दोनों के चार-चार वेद एवं कतेब हैं। हिन्दुओं ने चार वर्ण बना दिये और मुसलमानों ने चार मज़हब (हनफ़ीयह, शाफीयह, मालिकीयह एवं हंबलीयह) चला दिये। परन्तु वास्तव में दोनों ही में वही पवन, पानी और अग्नि विद्यमान है। (अंतिम) स्थान तो दानों के लिए एक ही है बस दोनों ने नाम अलग-अलग रख लिये हैं ।। २ ।।

पउड़ी ३

(जारज-पुत्र पर दर्पण का दृष्टांत)

दो भित्तियोंवाला अर्थात् ऊँचा-नीचा दर्पण सभा में हाथों-हाथ इधर-उधर नाचता रहता है और किसी को भी अच्छा नहीं लगता। वह ऐसे ही लगता है जैसे वेश्या पराये घरों में लिप्त हो घर-घर घूमती रहती है। ऐसे दर्पण में जब व्यक्ति पास होकर मुँह देखता है तो प्रसन्न होता है पर दूर हटकर देखने पर भयभीत हो जाता है। उसका एक ही मुँह दो प्रकार का दिखाई देता है। राख डालकर ऐसे दर्पण को माँजा भी जाए तो भी वह फिर मैल से भर जाता है। धर्म-राज यम तो एक ही है वह धर्म की बात तो स्वीकार करता है

खेहि पाइ मुह माँजीऐ फिरि फिरि मैलु भरै रंगि कचै ।
धरमराइ जमु इकु है धरम अधरमु न भरमु परचै ।
गुरमुखि जाइ मिलै सचु सचै ॥ ३ ॥

पउड़ी ४

(गुरसिक्ख प्रधान है)

वुणै जुलाहा तंदु गंढि इकु सूतु करि ताणा वाणा ।
दरजी पाड़ि विगाड़दा पाटा मुल न लहै विकाणा ।
कतरणि कतरै कतरणी होइ दुमूही चढ़दी साणा ।
सूई सीवै जोड़ि कै विछुड़िआँ करि मेलि मिलाणा ।
साहिबु इको राहि दुइ जग विचि हिंदू मुसलमाणा ।
गुरसिखी परधानु है पीर मुरीदी है परवाणा ।
दुखी दुबाजरिआ हैराणा ॥ ४ ॥

परन्तु अधर्म के भ्रमों से प्रसन्न नहीं होता। गुरुमुख व्यक्ति तो सत्यशील होते हैं और अन्तत: सत्य को प्राप्त हो जाते हैं ।। ३ ।।

पउड़ी ४

(गुरु का सिक्ख प्रधान है)

जुलाहा सूत को बाँधकर ताना-बाना बनाता है और कपड़ा बुनता है। दर्ज़ी उसी कपड़े को फाड़कर बिगाड़ देता है और फटा हुआ कपड़ा बिक नहीं सकता (परन्तु दर्जी उसे सीकर पुन: मूल्यवान बना देता है)। कैंची टुकड़े-टुकड़े करके कतर तो देती है परन्तु दो मुँह वाली होने के कारण उसे भी सान पर चढ़ना पड़ता है। दूसरी ओर सूई कपड़ों को जोड़कर सी देती है और ऐसा लगता है मानों वह बिछुड़े हुओं को मिला देती है। वह परमात्मा तो एक है परन्तु उस तक पहुँचने के लिए हिन्दू और मुसलमानों ने दो (अलग-अलग) रास्ते बना लिये हैं। गुरु की शिक्षा (अर्थात् गुरु पर श्रद्धा) ही जीवन का प्रमुख ध्येय है और गुरु-शिष्य भाव ही अन्तत: स्वीकृत होता है दुबिधाग्रस्त लोग दुखी और हैरान रहते हैं ।। ४ ।।

पउड़ी ५

(दुबाजरे पुर चरखे दा द्रिशटांत)

जिउ चरखा अठखंभीआ दुहि लठी दे मंझि मंझेरू ।
दुइ सिरि धरि दुहु खुंढ विचि सिर गिरदान फिरै लख फेरू ।
बाइड़ु पाइ पलेटीऐ माल्ह वटाइ पाइआ घट घेरू ।
दुहु चरमख विचि तकुला कतनि कुड़ीआँ चिड़ीआँ हेरू ।
तिंञणि बहि उठ जाँदीआँ जिउ बिरखहु उडि जानि पंखेरू ।
ओड़ि निबाहू ना थीऐ कचा रंगु रंगाइआ गेरू ।
घुंमि घुमंदी छाउ घवेरू ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(दुबाजरा ते बिभचारणि इसतरी)

साहुरु पीहरु पलरै होइ निलज न लजा धोवै ।
रावै जारु भतारु तजि खिंजोताणि खुसी किउ होवै ।

पउड़ी ५

(चरखे का दृष्टांत)

आठ डंडोंवाले चरखे का चक्र (पहिया) दो लट्ठों के बीच में होता है । दोनों सिरे दो लट्ठों के बीच के बने छिद्रों जैसे स्थानों पर रखे जाते हैं और गर्दन के बल चक्र को लाखों बार घुमाया जाता है । डोरी उस चक्र पर लपेटकर उस घनघोर रूप से घुमाया जाता है । चमड़े के दो टुकड़ों के बीच तकला (तकुआ) होता है जिस पर लड़कियाँ सूत कातती हैं। झुंड में बैठी हुई वे इस तरह उठ खड़ी होती हैं जैसे वृक्ष पर बैठे पक्षी उड़ जाते हैं (जीव भी उन लड़कियों अथवा पक्षियों के समान हैं जो अचानक ही उस संसार से उड़ जाते हैं)। गेरू रंग, जो कच्चा रंग होता है, अन्त तक साथ नहीं देता अर्थात् उड़ जाता है । यह सृष्टि तो घूमती छाया के समान अस्थिर है जो सदैव एक जैसी नहीं रहती ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(व्यभिचारिन स्त्री)

ससुराल और पीहर दोनों को ही त्यागकर निर्लज्ज (स्त्री) लज्जा को धोकर उतार देती है। अपने पति को त्यागकर वह यार के साथ रमण करती है।

समझाई ना समझई मरणे परणे लोकु विगोवै ।
धिरि धिरि मिलदे मेहणे हुइ सरमिंदी अंझू रोवै ।
पाप कमाणे पकड़ीऐ हाणि काणि दीबाणि खड़ोवै ।
मरै न जीवै दुख सहै रहै न घरि विचि पर घर जोवै ।
दुबिधा अउगुण हारु परोवै ॥ ६ ॥

पउड़ी ७

(द्वैत ते सिक्ख)

जिउ बेसीवै थेहु करि पछोतावै सुखि ना वसै ।
चड़ि चड़ि लड़दे भूमीए धाड़ा पेड़ा खसण खसै ।
दुह नारी दा वलहा दुहु मुणसा दी नारि विणसै ।
दुइ उजाड़ा खेतीऐ दुहि हाकम दुइ हुकमु खुणसै ।
दुख दुइ चिंता राति दिहु घरु छिजै वैराइणु हसै ।

इसी खींचातानी में भला वह कैसे खुश रह सकती है। किसी के समझाने-बुझाने पर भी वह नहीं समझती और जन्म-मरण के सामाजिक अवसरों को भी खो देती है अर्थात् किसी ऐसे काम में शामिल नहीं होती। उसे हर एक की ओर से उलाहने मिलते हैं तब वह आँखों में आँसू भरकर रोती है । पाप की कमाई करते हुए एक दिन पकड़ी जाती है और सम्मान की हानि करते हुए कचहरी में प्रस्तुत होती है। अब वह न मरती है, न जीवित रह सकती है। घर में भी नहीं रह पाती और पराए घरों का आश्रय ढूँढ़ती रहती है। दुबिधा और अन्य अवगुणों के हारों को पिरोती रहती है अर्थात् सदा दुखी ही रहती है ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(द्वैतभाव एवं सिक्ख)

जब कोई दूसरे की सीमा में अपना स्थान बसाता है तो वह सुखी नहीं रहता और सदैव पछताना पड़ता है। रोज़ आकर जमींदार लड़ते हैं, लूटते हैं और छीना-झपटी करते हैं। दो स्त्रियों का पति और दो पुरुषों की स्त्री दोनों का ही विनाश होता है। दो मालिकों के हुकुमों के फलस्वरूप खेती की बर्बादी ही होती है। दु:ख और चिन्ता दोनों ही जिस घर में रात-दिन रहते हों उसका नाश ही होता है और शत्रु पड़ोसिनें हँसती हैं।

दुहु खुंढाँ विचि रखि सिरु वसदी वसै न नसदी नसै ।
दूजा भाउ भुइअंगमु डसै ॥ ७ ॥

पउड़ी ८

(मनमुख ते सरप)

दुखीआ दुसटु दुबाजरा सपु दुमूहा बुरा बुरिआई ।
सभ दूँ मंदी सप जोनि सपाँ विचि कुजाति कुभाई ।
कोड़ी होआ गोपि गुर निगुरे तंतु न मंतु सुखाई ।
कोड़ी होवै लड़ै जिस विगड़ रूपि होइ मरि सहमाई ।
गुरमुखि मनमुखि बाहरा लातो लावा लाइ बुझाई ।
तिसु विहु वाति कुलाति मनि अंदरि गणती ताति पराई ।
सिर चिथै विहु बाणि न जाई ॥ ८ ॥

दो स्थानों में जो स्त्री अपना सिर रखती है अर्थात् जो दो पुरुषों से एक साथ संसर्ग रखती है वह न तो कहीं बस सकती है और न ही भाग सकती है । द्वैतभाव का सर्प उसे सदैव डसा करता है ।। ७ ।।

पउड़ी ८

(स्वेच्छाचारी और सर्प)

द्वैतभाव से ग्रस्त व्यक्ति दु:खी और दुष्ट होता है । ठीक वैसे ही दो मुँहवाला सर्प भी बुरा होता है । सर्प-योनि सबसे बुरी है और उसमें भी दो मुँह वाला सर्प बुरी जाति का और खोटे प्रकार का माना जाता है । यह गुरु को भुलाकर रहता है और इस निगुरे पर कोई तंत्र-मंत्र नहीं चलता। जिसे यह काटता है वह कोढ़ी हो जाता है। उसका स्वरूप बिगड़ जाता है और वह भयभीत होकर मर जाता है । स्वेच्छाचारी व्यक्ति गुरुमुखों के कहने से नहीं मानता और इधर-उधर लगाता-बुझाता रहता है । उसकी बात में भी विष होता है और मन में भी अनेकों बुरी कल्पनाएँ तथा दूसरों के लिए ईर्ष्याएँ होती हैं । उसका सिर कुचल डालने पर भी उसमें से विष-वमन की आदत नहीं जाती ।। ८ ।।

पउड़ी ९

(वेसवा दा द्रिशटांत)

जिउ बहु मिती वेसुआ छडै खसमु निखसमी होई ।
पुतु जणे जे वेसुआ नानकि दादकि नाउँ न कोई ।
नरकि सवारि सीगारिआ राग रंग छलि छलै छलोई ।
घंडा हेड़ु अहेड़ीआँ माणस मिरग विणाहु सथोई ।
एथै मरै हराम होइ अगै दरगह मिलै न ढोई ।
दुखीआ दुसटु दुबाजरा जाण रुपईआ मेखी सोई ।
विगड़ै आपि विगाड़ै लोई ॥ ९ ॥

पउड़ी १०

(दुबाजरा)

वणि वणि काउँ न सोहई खरा सिआणा होइ विगूता ।
चुतणि मिटी जिसु लगै जाणै खसम कुम्हाराँ कुता ।

पउड़ी ९

(वेश्या का दृष्टांत)

अनेकों मित्रों वाली वेश्या अपने पति को छोड़ पति-विहीन हो जाती है । यदि ऐसी वेश्या पुत्र को जन्म देती है तो उस बालक के ननिहाल अथवा दादा के घर का कोई नाम नहीं होता । अपने नारकीय शरीर को श्रृंगार से सँवार बनाकर वह राग-रंग और छल से सबको छल लेती है । घंटे की आवाज़ पर मृग को फँसानेवाले शिकारियों की तरह वह मनुष्य रूपी मृगों के साथ विश्वासघात कर उन्हें फाँस लेती है और उनका नाश कर देती है । वह इस लोक में भी निष्फलतापूर्वक मरती है और परलोक में भी उसे कोई स्थान नहीं मिलता। द्वैतभाव वाला जारज व्यक्ति दुष्ट, दुखी एवं खोटे रुपये के समान होता है । वह स्वयं भी बिगड़ता है और सारे लोक को भी बिगाड़ता है ।। ९ ।।

पउड़ी १०

(दुबिधाग्रस्त)

पेड़-पेड़ पर घूमता घोंसला-विहीन कौआ शोभा नहीं देता हालाँकि वह अपने आपको बहुत ही सयाना समझता है। जिस कुत्ते के चूतड़ों पर मिट्टी लगी हो वह अहंकारपूर्वक यह जताता है कि वह कुम्हारों का पालतू कुत्ता है।

बाबाणीआँ कहाणीआँ घरि घरि बहि बहि करनि कुपुता ।
आगू होइ मुहाइदा साथु छड़ि चउराहे सुता ।
जंमी साख उजाड़दा गलिआँ सेती मेंहु कुरुता ।
दुखीआ दुसटु दुबाजरा खटरु बलदु जिवै हलि जुता ।
डमि डमि सानु उजाड़ी मुता ॥ १० ॥

पउड़ी ११

(दुबाजरा दुखीआ है)

दुखीआ दुसटु दुबाजरा तामे रंगहु कैहाँ होवै ।
बाहरु दिसै उजला अंदरि मसु न धोपै धोवै ।
संनी जाणु लुहार दी होइ दुमूहीं कुसंग विगोवै ।
खणु तती आरणि बड़ै खणु ठंढी जलु अंदरि टोवै ।
तुमा दिसे सोहणा चित्रमिताला विसु विलोवै ।

पूर्वजों की कहानियाँ कुपुत्र लोग घरों में बैठकर कहा करते हैं अर्थात् स्वयं कुछ नहीं करते। जो व्यक्ति मार्गदर्शक होकर भी अपने साथियों को छोड़ दे और स्वयं चौराहे पर जाकर सो जाए वह अपने साथियों को अवश्य लुटवा देता है। बेमौसमी और ओलों की वर्षा जमी-जमाई खेती का नाश कर देती है । दुबिधा भाव वाला व्यक्ति वैसा ही दुष्ट होता है जैसा हल में लगाया हुआ अड़ियल बैल होता है जो सदैव डंडे खाता रहता है । ऐसे बैल को अन्तत: आग से दागकर उजाड़ जगह पर छोड़ दिया जाता है ।। १० ।।

पउड़ी ११

(दुबिधाग्रस्त दु:खी है)

द्वैतभाव वाला व्यक्ति कांस्य धातु के समान है जो ताम्र वर्ण की दिखाई देती है। बाहर से तो काँसा उज्ज्वल दिखाई देता है परन्तु अन्दर से उसकी कालिख धोने पर भी नहीं धुलती। लोहार की सँड़सी दो मुँह वाली होती है पर लोहार की कुसंगति में रहकर वह (बार-बार आग में जाकर) अपना आप नष्ट करती है। क्षण में वह गर्म भट्ठी में जाती है और दूसरे ही क्षण वह ठंडे पानी में डाल दी जाती है। तुम्बे की झाड़ी दिखने में सुंदर और चितकबरी दिखाई देती है पर उसके अन्दर विष लहरा रहा होता है।

साउ न कउड़ा सहि सकै जीभै छालै अंझू रोवै ।
कली कनेर न हारि परोवै ॥ ११ ॥

पउड़ी १२

(दूजा भाउ हार दिवाउँदा है)

दुखी दुसटु दुबाजरा सुतर मुरगु होइ कंमि न आवै ।
उडणि उडै न लदीऐ पुरसुस होई आपु लखावै ।
हसती दंद वखाणीअनि होरु दिखालै होरतु खावै ।
बकरीआँ नो चार थणु दुइ गल विचि दुइ लेवै लावै ।
इकनी दुधु समावदा इक ठगाऊ ठगि ठगावै ।
मोराँ अखी चारि चारि उड़ देखनि ओनी दिसि न आवै ।
दूजा भाउ कुदाऊ हरावै ॥ १२ ॥

उसका कड़वा स्वाद जीभ से सहन नहीं होता; जीभ छालों से भर जाती है और व्यक्ति आँसू बहाकर दुख में रोता है। कनेर की कलियों का (उनकी सुगंधि-विहीनता के कारण) कभी हार नहीं पिरोया जाता ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(द्वैतभाव पराजय दिलाता है)

द्वैतभाव वाला दुष्ट व्यक्ति शुतुरमुर्ग के समान है जो किसी काम नहीं आता। न तो वह पक्षियों की तरह उड़ सकता है और न ही ऊँट की तरह लादा जा सकता है। वैसे यदि उससे पूछो तो वह अपने आपको जताता है कि मैं बहुत बड़ा पक्षी हूँ। हाथी के दाँतों के बारे में बहुत कुछ कहा जाता है पर उसके दिखानेवाले दाँत और तथा खानेवाले दाँत और ही होते हैं। बकरियों के चार थन होते हैं, दो तो यथास्थान पर दो गले में लगे होते हैं। दो में तो दूध निहित रहता है पर दो मात्र दूसरों को ठगने के लिए होते हैं। मोरों के चार-चार आँखें होती हैं परन्तु सिरवाली आँखों को तो दिखता है और पंखों में लगी आँखों को नहीं दिखता। द्वैतभाव (जीवन-खेल में) बुरा दाँव है जो सदैव हरवाता है ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(द्वैत तों साड़ा)

दंमलु वजै दुहु धिरी खाइ तमाचे बंधनि जड़िआ ।
वजनि राग रबाब विचि कंन मरोड़ी फिरि फिरि फड़िआ ।
खान मजीरे टकराँ सिरि तन भंनि मरदे करि धड़िआ ।
खाली वजै वंझुली दे सूलाक न अंदरि वड़िआ ।
सुइने कलसु सवारीऐ भंना घड़ा न जाई घड़िआ ।
दूजा भाउ सड़ाणै सड़िआ ॥ १३ ॥

पउड़ी १४

(दुबाजरा सुधरदा नहीं)

दुखीआ दुसटु दुबाजरा बगुल समाधि रहै इक टंगा ।
बजर पाप न उतरनि घुटि घुटि जीआँ खाइ विचि गंगा ।

पउड़ी १३

(द्वैतभाव से कष्ट)

ढोल जो, दो मुँह वाला होता है, रस्सियों के बंधन में जकड़ा दोनों और से पीटकर बजाया जाता है। रबाब वाद्य में राग तो बजते हैं पर बार-बार उसकी कीलियों के कान मरोड़े जाते हैं। मजीरे भी दो मुँह वाले होने के कारण टक्करें खाते मारते हैं और धड़धड़ाते हुए अपने सिरों और तन को तोड़ते हैं। बाँसुरी अंदर से खाली हो तो जरूर बजती है पर जब उसके अन्दर कोई अन्य पदार्थ आ जाता है अर्थात् द्वैतभाव आ जाता है तो उसके अन्दर लोहे की शलाका डालकर उसे साफ़ किया जाता है (और कष्ट दिया जाता है) कि कहीं कोई अन्दर घुसा न रह जाए। स्वर्ण-कलश को तो सजाया-सँवारा जाता है पर मिट्टी के घड़े को टूटने पर दुबारा नहीं बनाया जाता। द्वैतभाव से ग्रस्त व्यक्ति अन्दर दुर्गंध के कारण सदैव जलता और कष्ट पाता रहता है ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(दुबिधाग्रस्त व्यक्ति सुधरता नहीं)

द्वैतभावना वाला व्यक्ति वैसे ही दुखी रहता है जैसे बगुला समाधि लगाये एक टाँग पर खड़ा हुआ दुखी रहता है । वह गंगा में रहते हुए भी दबा-दबाकर जीवों को खाता है और उसके घोर पाप कभी धुलते नहीं ।

तीरथ नावै तूँबड़ी तरि तरि तनु धोवै करि नंगा ।
मन विचि वसै कालकूटु भरमु न उतरै करमु कुढंगा ।
वरमी मारी ना मरै बैठा जाइ पतालि भुइअंगा ।
हसती नीरि नवालीऐ निकलि खेह उडाए अंगा ।
दूजा भाउ सुआओ न चंगा ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(दुबाजरे दा अंत)

दूजा भाउ दुबाजरा मन पाटै खरबाड़ु खीरा ।
अगहु मिठा होइ मिलै पिछहु कउड़ा दोखु सरीरा ।
जिउ बहु मिता कवल फुलु बहु रंगी बन्हि पिंडु अहीरा ।
हरिआ तिलु बूआड़ जिउ कली कनेर दुरंग न धीरा ।
जे सउ हथा नड़ु वधै अंदरु खाली वाजु नफीरा ।

तुम्मी पानी में तैर-तैरकर शरीर को नंगा कर-करके तीर्थों पर स्नान करती है परन्तु उसके कर्म इतने बेढंगे हैं कि उसके हृदय में बसा कालकूट विष कभी समाप्त नहीं होता । साँप के बिल को पीटने से वह नहीं मरता क्योंकि वह तो पाताल में जाकर बैठा होता है । हाथी को जलस्नान कराने के बावजूद भी वह जल से निकलकर फिर मिट्टी उड़ाकर अंगों को मल लेता है । द्वैतभाव का स्वाद बिलकुल अच्छा नहीं होता ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(द्वैतभावना वाले का अन्त)

द्वैतभावना वाले व्यक्ति का मन फटे दूध के समान बेकार होता है। पीने पर पहले तो वह मीठा लगता है पर फिर कड़वा लगता है और शरीर को रोगी बना देनेवाला होता है। द्वैतभावना वाला व्यक्ति ऐसा ही है जैसे भँवरा, जो बहुत से फूलों का मित्र होता है, गँवारों की तरह उन फूलों को ही अपना अन्तिम घर मान लेता है। हरा-भरा पर अन्दर से खोखला तिल का बीज और कनेर की कली में न तो कोई सच्चा रंग-रूप होता है और नही कोई धैर्यवान व्यक्ति उसे उपयोगी मानता है। सरकंडा सौ हाथ भी बढ़ जाए तो भी अंदर से खोखली आवाज वाला ही बना रहता है।

चंनण वास न बोहीअनि खहि खहि वाँस जलनि बेपीरा ।
जम दर चोटा सहा वहीरा ॥ १५ ॥

पउड़ी १६

(दुबाजरे दी निंम्रता वी बुरी है)

दूजा भाउ दुबाजरा बधा करै सलामु न भावै ।
ढींग जुहारी ढींगुली गलि बधे ओहु सीसु निवावै ।
गलि बधै जिउ निकलै खूहहु पाणी उपरि आवै ।
बधा चटी जो भरै ना गुण ना उपकारु चढ़ावै ।
निवै कमाण दुबाजरी जिह फड़िदे इक सीस सहावै ।
निवै अहेड़ी मिरगु देखि करै विसाह ध्रोहु सरु लावै ।
अपराधी अपराधु कमावै ॥ १६ ॥

चन्दन के पास रहकर भी बाँस उससे सुगंधित नहीं होता और आपस में रगड़-रगड़कर दुष्ट जलते रहते हैं। ऐसे व्यक्ति यम के द्वार पर अनेक दण्डों की चोटें सहन करते रहते हैं ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(दुबिधाग्रस्त की विनम्रता भी बुरी है)

दुबिधाग्रस्त व्यक्ति बँधा हुआ ही मजबूरी में प्रणाम करता है जो तनिक भी अच्छा नहीं लगता । सीधी तनी हुई लकड़ी के एक सिरे पर जब पत्थर और दूसरे सिरे पर चमड़े का थैला बाँधा जाता है तभी वह पत्थर के बोझ से झुकता है । दूसरी और चमड़े का थैला भी गला बँधवाकर ही कुएँ में से पानी लेकर बाहर निकलता है । जो मजबूरी में बँधा हुआ किसी का काम करता है उसका यह कार्य न तो कोई उसका गुण माना जाता है और न ही वह परोपकार माना जाता है । तीर को अपने पर चढ़ाए कमान खिंचकर झुकती है पर तत्क्षण ही उससे छूटा तीर किसी न किसी के सिर में जा लगता है । ऐसे ही शिकारी भी झुकता है परन्तु धोखा देते हुए वह अपना तीर मृग को मार देता है । अपराधी इस प्रकार (दुबिधाग्रस्त हो) सदैव अपराध ही करता रहता है ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(दुबाजरा आपे नहीं निउँदा)

निवै न तीर दुबाजरा गाडी खंड मुखी मुहि लाए ।
निवै न नेजा दुमुहा रण विचि उचा आपु गणाए ।
असटधातु दा जबर जंगु निवै न फुटै कोट ढहाए ।
निवै न खंडा सार दा होइ दुधारा खून कराए ।
निवै न सूली घेरणी करि असवार फाहे दिवाए ।
निवणि न सीखाँ सखत होइ मासु परोइ कबाबु भुनाए ।
जिउँ करि आरा रुखु तछाए ॥ १७ ॥

पउड़ी १८

(दुबाजरा दुखदाई)

अकु धतूरा झटुला नीवा होइ न दुबिधा खोई ।
फुलि फुलि फुले दुबाजरे बिखु फल फलि फलि मंदी सोई ।

पउड़ी १७

(दुबिधाग्रस्त स्वयं नहीं झुकता)

दुविधाग्रस्त व्यक्ति तीर की भाँति अकड़ा रहता है तभी उसमें पीछे पंख लगाकर उसे गाड़ा जाता है ताकि वह आर-पार न हो जाए। दो मुँह वाला भाला भी कभी नहीं झुकता और युद्ध में अपने आपको बड़ा जताता है। अष्टधातु से बना जबरजंग (तोपखाना) खुद नहीं टूटता-फूटता और क़िले को तोड़ देता है। लोहे का खड़ग भी नहीं टूटता और दुधारा होने से खून बहाता है । सबको घेर लेनेवाली बरछी नहीं झुकती और कई सवारों को फन्दा डाल लेती है । लोहे की शलाका सख्त होने के कारण झुकती नहीं और अपने में कबाब पिरोकर उन्हें भून देती है। ऐसे ही लोहे का सीधा आरा वृक्षों को काट देता है ।। १७ ।।

पउड़ी १८

(दुबिधाग्रस्त दुखदायी)

आक और धतूरे का पौधा टहिनीदार होकर झुका रहता है पर फिर दुबिधा नहीं छोड़ता । ये पौधे जो द्वैतभाव वाले हैं फूलते हैं पर इनके अंदर विष रूपी फल होते हैं और उनकी प्रसिद्धि भी खराब ही होती है ।

पीऐ न कोई अकु दुधु पीते मरीऐ दुधु न होई ।
खखड़ीआँ विचि बुढ़ीआँ फटि फटि छुटि छुटि उडनि ओई ।
चितमिताला अक तिडु मिलै दुबाजरिआँ किउ ढोई ।
खाइ धतूरा बरलीऐ कख चुणिंदा वतै लोई ।
कउड़ी रतक जेल परोई ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(चील्ह दा द्रिशटांत दुशटता दा)

वधै चील उजाड़ विचि उचै उपरि उची होई ।
गंढी जलनि मुसाहरे पत्त अपत्त न छुँहुदा कोई ।
छाँउ न बहनि पंधाणूआँ पवै पछावाँ टिबीं टोई ।
फिंड जिवै फलु फाटीअनि घुंघरिआले रूलनि पलोई ।
काठु कुकाठु न सहि सकै पाणी पवनु न धुप न लोई ।

आक का दूध पीने से व्यक्ति मर जाता है । भला जिस दूध के पीने से व्यक्ति मर जाए वह दूध कैसे हो सकता है । उसके फल फूटते हैं और उसमें से रुई के समान पदार्थ उड़ते हैं । आक का टिड्डा भी चितकबरा होता है परन्तु सदैव फुदकता रहता है । ऐसे ही दुबिधाग्रस्त व्यक्ति को भला कहाँ आश्रय मिल सकता है । धतूरा खाकर भी व्यक्ति पागल हो जाता है और लोग देखते हैं कि वह गलियों में घास के तिनके इकट्ठे करता घूमता है । कड़वी पत्तियों के हार तो पिरोये जाते हैं, परन्तु वे अन्दर से जहरीली ही बनी रहती हैं ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(चीड़ की दुष्टता का दृष्टांत)

चीड़ का वृक्ष निर्जन स्थान में बढ़ता है और ऊँचे से भी ऊँचा होता जाता है। उसकी गाँठें मशालों की भाँति जलती हैं और उसके तिरस्कृत पत्तों को कोई छूता भी नहीं है। कोई भी पथिक उसकी छाया में नहीं बैठता, क्योंकि उसकी लंबी छाया दूर-दूर ऊँचाइयों और गड़्हों पर गिरती है। आक के फल के समान उसके फल फटते हैं और उनमें से घुँघराले लच्छे गोलाकार रूप में इधर-उधर भटकते फिरते हैं। उसकी लकड़ी भी अच्छी लकड़ी नहीं होती क्योंकि वह पानी, हवा, धूप और लू को नहीं सह सकती। उसे आग लग जाए तो वह (जल्दी) बुझती नहीं।

लगी मूलि न विझवै जलदीं हउमैं अगि खड़ोई ।
वडिआई करि दई विगोई ॥ १९ ॥

पउड़ी २०

(दुशटता ते भलिआई पुर द्रिशटांत-तिल, सण ते कपाह)

तिलु काला फुलु उजला हरिआ बूटा किआ नीसाणी ।
मुढहु वढि बणाईऐ सिर तलवाइआ मझि बिबाणी ।
करि कटि पाई झंबीऐ तेलु तिलीहूँ पीड़े घाणी ।
सण कपाह दुइ राह करि परउपकार विकार विडाणी ।
वेलि कताइ वुणाईऐ पड़दा कजण कपड़ु प्राणी ।
खल कढाइ वटाइ सण रसे बंन्हनि मनि सरमाणी ।
दुसटाँ दुसटाई मिहमाणी ॥ २० ॥

वह अपनी ही अहम् की आग में जलती रहती है । उसको बड़ा आकार-प्रकार देकर भी दैव ने उसका नाश ही किया है ।। १९ ।।

पउड़ी २०

(दुष्टता और भलाई पर दृष्टांत–तिल, सनई और कपास)

कैसा आश्चर्य है कि तिल काला, उसका फूल सफ़ेद और पौधा हरा होता है । उसे नीचे से काट कर उसका सिर नीचा करके उसे दूर स्थान पर रख देते हैं । पहले उसे बुरी तरह (पत्थर पर) पटका जाता है और फिर तिलों को कोल्हू में पेरा जाता है । सनई और कपास दोनों के दो रास्ते हैं । एक परोपकार करता है, दूसरा विकारों का बड़प्पन धारण करता है । कपास को कात-बुनकर कपड़ा बनाया जाता है जिससे प्राणी अपने का ढाँकते हैं । सनई अपनी खाल खिंचवाती है, फिर उससे रस्से बनाए (बटे) जाते हैं और ये रस्से लोगों को बाँधते हुए तनिक भी मन में शर्मिंदा नहीं होते । दुष्टों की दुष्टता मेहमान की तरह होती है अर्थात् यह दुष्टता सदैव नहीं की जा सकती । एक दिन उनका नाश अवश्य करती है ।। २० ।।

पउड़ी २१

(दूजा भाउ किक्कर ते धरेक वाँगूँ है)

किकर कंडे धरेक फल फलीं न फलिआ निहफल देही ।
रंग बिरंगी दुहाँ फुल दाख ना गुछा कपट सनेही ।
चितमिताला अरिंड फलु थोथी थोहरि आस किनेही ।
रता फुल न मुलु अढु निहफल सिमल छाँव जिवेही ।
जिउ नलीएर कठोर फलु मुहु भंने दे गरी तिवेही ।
सूतु कपूतु सुपूतु दूत काले धउले तूत इवेही ।
दूजा भाउ कुदाउ धरेही ॥ २१ ॥

पउड़ी २२

(दुबाजरा-पन दा इलाज)

जिउ मणि काले सपसिरि हसि हसि रसि रसि देइ न जाणै ।
जाणु कथूरी मिरग तनि जीवदिआँ किउँ कोई आणै ।

(द्वैतभाव बबूल और धरेक वृक्ष की तरह है)

बबूल को काँटे और धरेक (नीम की एक अत्यन्त कड़वी क़िस्म) को फूल-फल लगते हैं, परन्तु ये सब नाम मात्र के लिए होते हैं क्योंकि ये किसी काम नहीं आते। दोनों के फल रंग-बिरंगे होते हैं परन्तु वे अंगूर के गुच्छे का भ्रम नहीं डाल सकते। रेंड़ी का फल भी चितकबरा और सुन्दर होता है और थोहर की झाड़ी भी सुन्दर पर काँटेदार होती है। इन सबसे भला क्या आशा की जा सकती है। सेमल के वृक्षों के फूलों का ज़रा (कौड़ी) सा भी मोल नहीं होता और ऊँचा होने से उसकी छाया भी व्यर्थ होती है। नारियल भी मुँह तोड़ने पर ही गिरी (गूदा) प्रदान करता है। शहतूत काले और सफ़ेद होते हैं पर इनका स्वाद अलग-अलग होता है, इसी तरह सुपुत्र आज्ञाकारी और कुपुत्र शत्रु होता है अर्थात् एक सुख देता है और दूसरा दुख देता है। द्वैतभाव तो सदैव बुरा (जीवन-ढंग) दाँव माना जाता है।। २१ ।।

पउड़ी २२

(द्वैतभाव का इलाज)

सर्प के सिर में मणि होती है पर वह हँसते हुए देना नहीं जानता अर्थात् उसे मारकर ही प्राप्त किया जा सकता है । उसी प्रकार मृग की कस्तूरी भी भला मृग के जीवित रहते कोई कैसे ले आ सकता है ।

आरणि लोहा ताईऐ घड़ीऐ जिउ वगदे वादाणै ।
सूरणु मारणि साधीऐ खाहि सलाहि पुरख परवाणै ।
पान सुपारी कथु मिलि चूने रंगु सुरंगु सिञाणै ।
अउखधु होवै कालकूटु मारि जीवालनि वैद सुजाणै ।
मनु पारा गुरमुखि वसि आणै ।। २२ ।। ३३ ।। तेती ।।

भट्ठी लोहा गर्म तो कर देती है पर उसे सुनिश्चित आकार तो हथौड़ा मारकर ही दिया जाता है । सूरन (ज़िमीकन्द) को मसाले डालकर सँवार लिया जाए तभी खानेवाले उसे स्वीकार करते हैं और उसकी प्रशंसा होती है । पान, सुपारी, कत्था, चूना, आदि मिलकर ही सुन्दर रंग के रूप में पहचाने जाते हैं । विष भी जब वैध के हाथ में आता है तो दवा बन जाता है और मृत (समान) को भी जीवित कर देता है । मन पारे के समान चंचल है जो केवल किसी गुरुमुख के ही वश में आता है ।। २२ ।। ३३ ।।

* * *

वार ३४

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।।

पउड़ी १

(सतिगुर दी महिमा, सनमुख ते बेमुख दा नतीजा)

सतिगुर पुरखु अगंमु है निरवैरु निराला ।
जाणहु धरती धरम की सची धरमसाला ।
जेहा बीजै सो लुणै फलु करम सम्हाला ।
जिउ करि निरमलु आरसी जगु वेखणि वाला ।
जेहा मुहु करि भालीऐ तेहो वेखाला ।
सेवकु दरगह सुरखरू बेमुखु मुहु काला ।। १ ।।

पउड़ी २

(गुर गोपू चेला)

जो गुर गोपै आपणा किउ सिझै चेला ।
संगलु घति चलाईऐ जम पंथि इकेला ।

पउड़ी १

(सद्‌गुरु की महिमा, सम्मुख और विमुख का परिमाण)

सद्‌गुरु पुरुष अगम्य, निर्वैर एवं निराला है । धरती को धर्मपालन की सच्ची धर्मशाला मानो। यहाँ कर्म ही फल को सँभालते हैं अर्थात् जो जैसा बोता है वैसा ही काटता है। निर्मल दर्पण यदि हो तो सारा संसार उसमें अपना बिंब देख सकता है। उस दर्पण में जैसा मुख लेकर काई जाएगा उसे वैसा ही दिखाई देगा। प्रभु-सेवक उस प्रभु के दरबार में निश्चिंत रहता है और प्रभु से विमुख व्यक्ति का मुँह काला ही होता है ।। १ ।।

पउड़ी २

(गुरु न बतानेवाला शिष्य)

यदि चेला गुरु के बारे में कुछ भी न (जाने) बताए तो भला वह कैसे मुक्त हो सकता है। उसे यम के मार्ग पर जंजीरों से बाँधकर चलाया जाता है। वह दुखी होकर खड़ा रहता है और नर्क में सजा भोगता है।

लहै सजाईं नरक विचि उहु खरा दुहेला ।
लख चउरासीह भउदिआँ फिरि होइ न मेला ।
जनमु पदारथु हारिआ जिउ जूए खेला ।
हथ मरोड़ै सिरु धुनै उहु लहै न वेला ॥ २ ॥

पउड़ी ३

(गुर गोपू बे-मुख है)

आपि न वंञै साहुरे सिख लोक सुणावै ।
कंत न पुछै वातड़ी सुहागु गणावै ।
चूहा खड न मावई लकि छजु वलावै ।
मंतु न होइ अठूहिआँ हथु सर्पी पावै ।
सरु संन्है आगास नो फिरि मथै आवै ।
दुही सराईं जरद रू बेमुख पछुतावै ॥ ३ ॥

वह चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करता रहता है और उसका मिलाप प्रभु से नहीं हो पाता। वह जुए के खेल की तरह जन्म रूपी इस (अमूल्य) वस्तु को हार जाता है। तब बाद में वह हाथ-पाँव ऐंठता और सिर पीटता है, परन्तु बीता समय हाथ नहीं आता ।। २ ।।

पउड़ी ३

(गुरु छिपानेवाला विमुख है)

(गुरु को गुप्त रखनेवाला वैसे ही है जैसे) लड़की खुद तो ससुराल जाए नहीं और अन्यों को (ससुराल में रहने के बारे में) शिक्षा दे। खुद उसका पति तो उसकी बात नहीं पूछता पर वह अपने सुहाग के बारे में लोगों में डींग मारती फिरती है। चूहा स्वयं तो बिल में घुस नहीं पाता पर वह अपनी कमर के साथ सूप बाँधे घूमता है और कहता है मैं इसके समेत बिल में घुस जाऊँगा। यह व्यक्ति तो वैसा ही है जैसे किसी के पास खनखजूरे का मंत्र भी न हो और वह साँप को हाथ डाल ले। जो व्यक्ति आकाश की ओर मुँह करके बाण चलाएगा तो वह बाण उसके सिर में ही आ लगेगा। प्रभु-विमुख व्यक्ति दोनों लोकों में ही भयभीत बना रहता है और पछताता है ।। ३ ।।

पउड़ी ४

(बे-मुख रस नहीं लैंदा)

रतन मणी गलि बाँदरै किहु कीम न जाणै ।
कड़छी साउ न संम्हलै भोजन रसु खाणै ।
डडू चिकड़ि वासु है कवलै न सिञाणै ।
नाभि कथूरी मिरग दै फिरदा हैराणै ।
गुजरु गोरसु वेचि कै खलि सूड़ी आणै ।
बेमुख मूलहु घुथिआ दुख सहै जमाणै ॥ ४ ॥

पउड़ी ५

(बे-मुख सभ कुझ हुंदिआँ सुंदिआँ दुखी)

सावणि वणि हरीआवले सुकै जावाहा ।
सभ को सरसा वरसदै झूरै जोलाहा ।

पउड़ी ४

(विमुख व्यक्ति आनन्द नहीं लेता)

बंदर के गले में रत्न और मणियाँ बाँध दी जाएँ तो वह भला उनके मूल्य को क्या समझ सकता है। कलछुल भोजन में रहती हुई भी उसके स्वाद को नहीं जानती। मेंढक का निवास सदैव कीचड़ में रहता है पर वह कमल को पहचानता भी नहीं। कस्तूरी मृग की नाभि में होती है पर वह हैरान-परेशान हो इधर-उधर दौड़ता रहता है। गूजर दूध तो बेच देता है पर उसके बदले में खली और चोकर वग़ैरा खरीद लाता है। प्रभु-विमुख व्यक्ति तो मूल रूप से ही दूर छिटका हुआ व्यक्ति है। वह सदैव यम के दुःख को सहन करता रहता है ।। ४ ।।

पउड़ी ५

(विमुख व्यक्ति सब कुछ होते हुए भी दुःखी रहता है)

सावन में सारा वन हरा होता है पर जवास का पौधा फिर भी सूखा रहता है। वर्षा होने पर सभी प्रसन्न होते हैं पर जुलाहा विषाद में डूबा रहता है। रात में सभी जोड़े मिल जाते हैं पर चकवी के लिए वह बिछुड़ने का समय होता है ।

सभना राति मिलावड़ा चकवी दोराहा ।
संखु समुंदहु सखणा रोवै दे धाहा ।
राहहु उझड़ि जो पवै मुसै दे फाहा ।
तिउँ जग अंदरि बेमुखाँ नित उभे साहा ॥ ५ ॥

पउड़ी ६

(बे-मुख गिद्दड़ दाख है, आपणा दोष दूजे नूँ)

गिदड़ दाख न अपड़ै आखै खूह कउड़ी ।
नचणु नचि न जाणई आखै भुइ सउड़ी ।
बोलै अगै गावीऐ भैरउ सो गउड़ी ।
हंसाँ नालि टटीहरी किउ पहुचै दउड़ी ।
सावणि वण हरीआवले अकु जंमै अउड़ी ।
बेमुख सुखु न देखई जिउ छुटड़ि छउड़ी ॥ ६ ॥

शंख समुद्र में भी खाली रहता है और बजाने पर दुहाई देकर रोता है। जो रास्ते से भटक जाएगा उसे अवश्य पाश डालकर लूट लिया जाता है। इसी प्रकार प्रभु-विमुख व्यक्ति संसार में हिचकियाँ ले-लेकर रोते हैं ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(विमुख गीदड़-अंगूर की तरह है)

गीदड़ का हाथ अंगूर तक नहीं पहुँचता तो वह कहता है–"थू, यह तो कड़वा है"। नाचनेवाला नाचना तो जानता नहीं पर कहता है स्थान कम है। बहरे के सामने राग भैरव अथवा राग गउड़ी का गायन करो उसके लिए एक समान है। छोटी चिड़िया (एक प्रकार की मैना) भला हंस के साथ दौड़ में कैसे पूरी उतर सकती है। सारा वन तो सावन में हरा-भरा होता है परन्तु आक सूखे में ही पनपता है। प्रभु-विमुख व्यक्ति उसी भाँति सुख नहीं प्राप्त कर सकता जैसे परित्यक्ता स्त्री सुखी नहीं रह सकती ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(बे-मुख दी संगति दा फल)

भेडै पूछलि लगिआँ किउ पारि लंघीऐ ।
भूतै केरी दोसती नित सहसा जीऐ ।
नदी किनारै रुखड़ा वेसाहु न कीऐ ।
मिरतक नालि वीआहीऐ सोहागु न थीऐ ।
विसु हलाहल बीजि कै किउ अमिउ लहीऐ ।
बेमुख सेती पिरहड़ी जम डंडु सहीऐ ॥ ७ ॥

पउड़ी ८

(बे-मुख आप दोशी है)

कोरड़ु मोठु न रिझई करि अगनी जोसु ।
सहस फलहु इकु विगड़ै तरवर की दोसु ।
टिबै नीरु न ठाहरै घणि वरसि गइओसु ।
विणु संजमि रोगी मरै चिंति वैद न रोसु ।

पउड़ी ७

(विमुख व्यक्ति की संगति का फल)

भेड़ की पूँछ पकड़कर पानी में जाने से भला कोई कैसे पार लग सकता है। भूत के साथ दोस्ती भी सदा मन में संदेह बनाये रखती है (कि पता नहीं भूत कब मुझे मार डाले)। नदी के किनारे खड़ा वृक्ष भला कैसे विश्वास कर सकता है (कि नदी उसे बहाकर नहीं ले जाएगी)। मृतक व्यक्ति के साथ विवाह करने पर भला कैसे सुहागिन रहा जा सकता है। हलाहल विष बो कर भला कैसे अमृत पाया जा सकता है। प्रभु-विमुख व्यक्ति के साथ दोस्ती करने में यमदण्ड सहना पड़ता है।। ७ ।।

पउड़ी ८

(विमुख व्यक्ति स्वयं दोषी है)

मोठ (मूँगी की एक क़िस्म) का कड़ा दाना कभी नहीं पकता चाहे अग्नि को कितना ही तेज़ किया जाय। हज़ारों फलों में से एक खराब हो जाय तो भला इसमें पेड़ का क्या दोष। बादल तो बरस जाता है पर टीले पर पानी नहीं ठहरता। संयम के बिना यदि रोगी मर जाय तो वैद्य के प्रति मन में रोष नहीं आना चाहिए।

अविआवर न विआपई मसतकि लिखिओसु ।
बेमुख पढ़ै न इलम जिउँ अवगुण सभि ओसु ॥ ८ ॥

पउड़ी ९

(बे-मुख दी कमाई दोशी है)

अंन्है चंदु न दिसई जगि जोति सबाई ।
बोला रागु न समझई किहु घटि न जाई ।
वासु न आवै गुण गुणौ परमलु महिकाई ।
गुंगै जीव न उघड़ै सभि सबदि सुहाई ।
सतिगुरु सागरु सेवि कै निधि सभनाँ पाई ।
बेमुख हथि घघूटिआँ तिसु दोसु कमाई ॥ ९ ॥

पउड़ी १०

(बे-मुख दे मसतक दा रूप)

रतन उपंने साइरहुँ भी पाणी खारा ।
सुझहु सुझनि तिनि लोअ अउलंगु विचिकारा ।

बाँझ स्त्री के यदि बच्चा न हो तो क्या किया जाय उसका भाग्यलेख ही ऐसा है। प्रभु-विमुख व्यक्ति ज्ञान प्राप्त नहीं करता तो सभी दोष उसके ही माने जाने चाहिए ।। ८ ।।

पउड़ी ९

(विमुख व्यक्ति की कमाई दूषित है)

अन्धे व्यक्ति को चन्द्रमा नहीं दिखता हालाँकि उसकी ज्योति सारे संसार में फैली हुई होती है। बहरे को यदि राग की समझ न आती तो इससे राग का कुछ कम नहीं हो जाता। कितनी ही सुगंधि महका दो पर जिसकी घ्राणशक्ति नहीं है उसे महक नहीं आती। शब्द तो सबमें शोभायमान है पर गूँगे व्यक्ति की जीभ नहीं चलती। सद्गुरु तो सागर के समान है और सच्चे सवेक उसमें से निधियाँ प्राप्त करते हैं। विमुख व्यक्ति के हाथ तो घोंघे ही आते हैं क्योंकि उसकी साधना (कमाई) ही दूषित होती है ।। ९ ।।

पउड़ी १०

(विमुख व्यक्ति के मस्तक का रूप)

समुद्र में से रत्न निकले परन्तु फिर भी उसका पानी खारा ही है। चन्द्र के प्रकाश में तीनों लोक दिखाई पड़ते हैं पर फिर भी उसमें कलंक का चिह्न बना ही हुआ है ।

धरती उपजै अंनु धनु विचि कलरु भारा ।
ईसरु तुसै होरना घरि खपरु छारा ।
जिउँ हणवंति कछोटड़ा किआ करै विचारा ।
बेमुख मसतकि लिखिआ कउणु मेटणहारा ॥ १० ॥

पउड़ी ११

(बे-मुख झूठा है)

गाँई घरि गोसाँईआँ माधाणु घड़ाए ।
घोड़े सुणि सउदागराँ चाबक मुलि आए ।
देखि पराए भाजवाड़ घरि गाहु घताए ।
सुइना हटि सराफ दे सुनिआर सदाए ।
अंदरि ढोई ना लहै बाहरि बाफाए ।
बेमुख बदल चाल है कूड़ो आलाए ॥ १० ॥

धरती से अन्न और धान्य पैदा होता है पर फिर भी उसमें क्षारीय धरती भी हैं (जहाँ कुछ भी पैदा नहीं होता)। शिव अन्यों पर तो प्रसन्न हो उन्हें बहुत कुछ देता है परन्तु उसके अपने घर में तो खप्पर और भभूत ही पायी जाती है । जैसे हनुमान अपने कार्यों के कारण तो महान है पर उसके अपने पास तो लंगोटी ही है, वह बेचारा क्या करे। प्रभु-विमुख व्यक्ति के मस्तक पर जो लिखा जाता है उसे भला कौन मिटा सकता है ।। १० ।।

पउड़ी ११

(विमुख व्यक्ति झूठा है)

गायें तो उनके स्वामियों के घर हैं पर मूर्ख व्यक्ति अपने लिए मथानियाँ बनवाता घूमता है । घोड़े तो सौदागरों के पास हैं पर मूर्ख व्यक्ति चाबुक मोल लिये घूमता है । मूर्ख व्यक्ति पराए खलिहानों को देखकर ही अपने घर में भगदड़ मचा देता है । सोना तो सर्राफ़ की दुकान पर है पर मूर्ख व्यक्ति सुनार को गहना बनवाने के लिए घर बुला भेजता है । घर में तो उसको कोई ठिकाना नहीं मिलता पर वह मूर्ख बाहर गप्पें हाँकता फिरता है । प्रभु-विमुख व्यक्ति बादल की गति के समान अस्थिर है और झूठ ही बोलता है ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(बे-मुख खाली हो गिआ)

मखणु लइआ विरोलि कै छाहि छुटड़ि होई ।
पीड़ लई रसु गंनिअहु छिलु छुहै न कोई ।
रंगु मजीठहु निकलै अढु लहै न सोई ।
वासु लई फुलवाड़ीअहु फिरि मिलै न ढोई ।
काइआ हंसु विछुंनिआ तिसु को न सथोई ।
बेमुख सुके रुख जिउँ वेखै सभ लोई ॥ १२ ॥

पउड़ी १३

(बे-मुख किक्कूँ साधीदा है)

जिउ करि खूहहु निकलै गलि बधे पाणी ।
जिउ मणि काले सप सिरि हसि देइ न जाणी ।
जाण कथूरी मिरग तनि मरि मुकै आणी ।
तेल तिलहु किउ निकलै विणु पीड़े घाणी ।

पउड़ी १२

(विमुख व्यक्ति थोथा हो गया)

जब मथकर मक्खन निकाल लिया जाता है तो लस्सी परित्यक्ता हो जाती है। जब गन्ने का रस निकाल लिया जाता है तो उसके छिलके को कोई छूता भी नहीं। मजीठ में से जब उसका पक्का रंग निकाल लिया जाता है तो उसे कौड़ी के भाव भी कोई नहीं पूछता। फूलों से जब गंध निकाल ली जाती है तो उन्हें फिर फुलवाड़ी में आश्रय नहीं मिलता। जब इस शरीर में हंस रूपी आत्मा बिछुड़ जाती है तो फिर इस शरीर का कोई साथी नहीं रहता। सभी लोग यह देखते हैं कि (प्रभु से) विमुख व्यक्ति सूखे पेड़ की तरह होता है (जिसे केवल आग में ही झोंका जा सकता है) ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(विमुख व्यक्ति को कैसे ठीक किया जाय)

कुएँ में से पानी तब ही निकलता है जब घड़े का मुँह रस्सी से बाँधा जाता है। काले सर्प में मणि होती है पर वह प्रसन्नता से नहीं देता (मरकर ही देता है)। मृग भी कस्तूरी को मरकर ही देता है। बिना कोल्हू में पेरे भला तिलों से तेल कैसे निकल सकता है।

जिउ मुहु भंने गरी दे नलीएरु निसाणी ।
बेमुख लोहा साधीऐ वगदी वादाणी ॥ १३ ॥

पउड़ी १४

(बे-मुख दा सभ कुझ पुट्ठा है)

महुरा मिठा आखीऐ रुठी नो तुठी ।
बुझिआ वडा वखाणीऐ सवारी कुठी ।
जलिआ ठंढा गई नो आई ते उठी ।
अहमकु भोला आखीऐ सभ गलि अपुठी ।
उजड़ु लटी बेमुखाँ तिसु आखनि वुठी ।
चोरै संदी माउँ जिउँ लुकि रोवै मुठी ॥ १४ ॥

पउड़ी १५

(बे-मुख दी संगति दा फल)

वड़ीऐ कजल केठड़ी मुहु कालख भरीऐ ।
कलरि खेती बीजीऐ किहु काजु न सरीऐ ।

नारियल की गिरी भी उसमें से तभी निकलती है जब नारियल का मुँह तोड़ा जाता है। विमुख व्यक्ति उस लोहे के समान है जिसे मनचाहा रूप हथौड़े की चोट से ही दिया जा सकता है ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(विमुख व्यक्ति का सब कुछ उलटा है)

विष को (मूर्ख विमुख व्यक्ति) मीठा कहता है और रुष्ट हुए को प्रसन्न बताता है । बुझे हुए (दीपक) को बढ़ा दिया और हलाल की गई (बकरी) को सँवारी हुई कहता है । जल चुके को ठंडा हो गया, गये को आया और आए को उठ गया कहता है अर्थात् आँख में आकर कुछ बैठ जाए तो आँख उठना और यदि कोई विधवा किसी के साथ विवाह कर बैठ जाए तो उसे घर से उठी हुई—भागी हुई कहता है । मूर्ख को वह भोला कहता है और उसकी सब बातें उलटी होती हैं । विमुख मूर्ख व्यक्ति उजड़ते हुए को कहेंगे कि यह उसकी अपनी मौज है कि सब छोड़ रहा है । ऐसे जीव चोर की माँ की तरह कोने में दुबककर रोते हैं क्योंकि अन्यथा रोने पर पुत्र के पकड़े जाने की संभावना बढ़ जाती है ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(विमुख व्यक्ति की संगति का फल)

काजल की कोठरी में घुसने पर मुँह कालिख से भर ही जाएगा ।

टुटी पींघैं पींघीऐ पै टोए मरीऐ ।
कंनाँ फड़ि मनतारूआँ किउ दुतरु तरीऐ ।
अगि लाइ मंदरि सवै तिसु नालि न फरीऐ ।
तिउँ ठग संगति बेमुखाँ जीअ जोखहु डरीऐ ॥ १५ ॥

पउड़ी १६

(बे-मुख घोर पापी हन)

बाम्हण गाँई वंस घात अपराध करारे ।
मदु पी जूए खेलदे जोहनि परनारे ।
मुहनि पराई लखिमी ठग चोर चगारे ।
विसास ध्रोही अकिरतघणि पापी हतिआरे ।
लख करोड़ी जोड़ीअनि अणगणत अपारे ।
इकतु लूइ न पुजनी बेमुख गुरदुआरे ॥ १६ ॥

क्षारीय धरती पर कुछ भी बोने पर काम नहीं बनता । टूटे झूले पर झूलने से गड्ढे में गिरकर मर जाता है । जो तैराक न हो उसका कंधा पकड़कर भला कैसे दुस्तर (सागर) को पार किया जा सकता है । जो घर को आग लगाकर उसी में सोने वाला है उसका साथ कभी नहीं पकड़ना चाहिए । विमुख व्यक्तियों की संगति ठगों की संगति है । इसलिए जान जाने को ध्यान में रखकर उनकी संगति से डरना चाहिए ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(विमुख व्यक्ति घोर पापी है)

ब्राह्मण,गाय और कुल के व्यक्ति की हत्या घोर अपराध है। मद्य-पान करने वाले जुआ खेलते और पराई स्त्रियों को देखते हैं । चोर-डाकू पराई लक्ष्मी को चुराते हैं । ये सभी विश्वासघाती, कृतघ्न, पापी एवं हत्यारे हैं । ऐसे लाखों-करोड़ों को अर्थात् अगणित लोगों को भी यदि इकट्ठा कर लिया जाए तो वे गुरु के द्वार से विमुख व्यक्ति के एक रोम के बराबर भी नहीं हैं ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(बे-मुख दी हत्तिआ लहिंदी नहीं)

गंग जमुन गोदावरी कुलखेत सिधारे ।
मथुरा माइआ अयुधिआ कासी केदारे ।
गइआ पिराग सरसुती गोमती दुआरे ।
जपु तपु संजमु होम जगि सभ देव जुहारे ।
अखी परणै जे भवै तिहु लोअ मझारे ।
मूलि न उतरै हतिआ बेमुख गुरदुआरे ।। १७ ।।

पउड़ी १८

(सतिगुरू बाझ सुख नहीं)

कोटीं सादीं केतड़े जंगल भूपाला ।
थलीं वरोले केतड़े परबत बेताला ।
नदीआँ नाले केतड़े सरवर असराला ।
अंबरि तारे केतड़े बिसीअरु पाताला ।

पउड़ी १७

(विमुखता का पाप छूटता नहीं)

गंगा, यमुना, गोदावरी अथवा कुरुक्षेत्र भी जाया जाए; मथुरा, मायापुरी, अयोध्या, काशी, केदारनाथ भी जाया जाय; गया, प्रयाग, सरस्वती, गोमती के द्वार पर भी जाया जाए ; जप, तप संयम, होमयज्ञ करके सभी देवताओं की स्तुति की जाय; आँखों को ज़मीन में लगाकर यदि तीनों लोकों में भी भ्रमण किया जाए तब भी गुरु-विमुखता रूपी हत्या का पाप तनिक भी नहीं छूटता ।। १७ ।।

पउड़ी १८

(सद्गुरु के बिना सुख नहीं)

अनेकों ही करोड़ों स्वादों में लिप्त और अनेकों ही लोग वनों के राजा हैं। अनेक ही स्थल, चक्रवात, पर्वत एवं वेताल हैं। अनेकों ही नदी, नाले एवं गहरे सरोवर हैं। आकाश में कितने ही तारे हैं और पाताल लोक में विषधर (सर्प) अनेकों हैं।

भंभल भूसे भुलिआँ भवजल भरनाला ।
इकसु सतिगुर बाहरे सभि आल जंजाला ॥ १८ ॥

पउड़ी १९

(बे-मुख केंदर हीन हन)

बहुतीं घरीं पराहुणा चिउ रहंदा भुखा ।
साँझा बबु न रोईऐ चिति चिंत न चुखा ।
बहली डूमी ढढि जिउ ओहु किसै न धुखा ।
वणि वणि काउँ न सोहई किउँ माणै सुखा ।
जिउ बहु मिती वेसुआ तनि वेदनि दुखा ।
विणु गुर पूजनि होरना बरने बेमुखा ॥ १९ ॥

पउड़ी २०

(अणहोंदा अहंकार करन वाले भूत हन)

वाइ सुणाए छाणनी तिसु उठ उठाले ।
ताड़ी मारि डराइंदा मैंगल मतवाले ।

अनेकों ही जीव संसार-सागर की भूल-भूलैयाँ में घूम रहे हैं। एक सद्गुरु के बिना सब व्यर्थ के ही जंजाल हैं ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(विमुख व्यक्ति केन्द्र-विहीन है)

अनेक घरों का मेहमान भूखा ही रहता है। जो सबका साझा बापू हो उसे कोई भी नहीं रोता और उसकी चिन्ता किसी को भी नहीं होती। अनेकों नटों का साझा ढोल बजता नहीं और इसकी किसी को भी चिन्ता नहीं होती। पेड़-पेड़ पर भटकता कौआ शोभा नहीं देता और वह इस भटकने में भला कैसे सुखी हो सकता है। जैसे अनेक मित्रों वाली वेश्या को शारीरिक कष्ट बना ही रहता है, वैसे ही एक गुरु को छोड़कर जो अन्यों की पूजा करते है उन्हें विमुख व्यक्ति कहा जाता है ।। १९ ।।

पउड़ी २०

(झूठा अहंकारी भूत है)

छाननेवाली छननी की आवाज़ करके ऊँट को उठाना बेकार है(क्योंकि उस मर कोई असर नहीं होता)। ताली बजाकर हाथी को डराना भी वैसा ही कार्य है

बासकि नागै साम्हणा जिउँ दीवा बाले ।
सीहुँ सरजै सहा जिउँ अखीं वेखाले ।
साइर लहरि न पुजनी पाणी परनाले ।
अणहोंदा आपु गणाइँदे बेमुख बेताले ॥ २० ॥

पउड़ी २१

(बे-मुखाँ नाल अड़ना निसफल है)

नारि भतारहु बाहरी सुखि सेज न चड़ीऐ ।
पुतु न मंनै मापिआँ कमजातीं वड़ीऐ ।
वणजारा सारहुँ फिरै वेसाहु न जड़ीऐ ।
साहिबु सउहैं आपणे हथिआरु न फड़ीऐ ।
कूड़ु न पहुँचै सच नो सउ घाड़त घड़ीऐ ।
मुंद्राँ कंनि जिनाड़ीआँ तिन नालि न अड़ीऐ ॥ २१ ॥ ३४ ॥ चउतीह ॥

जैसे वासुकि नाग के सामने दीपक जलाना (और यह आशा करना कि वह डर जायेगा)। खरगोश यदि आँखें दिखाकर शेर को डराना चाहे (तो यह मरने के ही तुल्य है)। पानी के पतनालों की धाराएँ समुद्र के तुल्य नहीं हो सकतीं। वेताल के समान प्रभु-विमुख व्यक्ति कुछ न होने पर भी अपने अभिमान को प्रकट करते रहते हैं ।। २० ।।

पउड़ी २१

(विमुख व्यक्तियों के साथ झगड़ना निष्फल है)

पति-विहीन स्त्री सुख-शय्या पर नहीं चढ़ सकती । पुत्र यदि माता-पिता का कहना नहीं मानता तो उसे कुजाति माना जाता है । व्यापारी यदि साहूकार को दिये वचन से फिर जाए तो उसका विश्वास जाता रहता है । अपने स्वामी के सामने कभी शस्त्र हाथ में नहीं पकड़ना चाहिए । चाहे अनेकों बहाने बनाये जाएँ पर झूठ कभी भी सत्य के तुल्य नहीं पहुँच सकता । जिन लोगों ने कानों में मुद्राएँ धारण कर रखी हैं उनके साथ ज़िदबाजी नहीं करनी चाहिए (अर्थात् वे बहुत अड़ियल लोग होते हैं) ।। २१ ।। ३४ ।।

* * *

वार ३५

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।।

पउड़ी १

(निंदक)

कुता राजि बहालीऐ फिरि चकी चटै ।
सपै दुधु पीआलीऐ विहु मुखहु सटै ।
पथरु पाणी रखीऐ मनि हठु न घटै ।
चोआ चंदनु परिहरै खरु खेह पलटै ।
तिउ निंदक पर निंदहू हथि मूलि न हटै ।
आपण हथीं आपणी जड़ आपि उपटै ।। १ ।।

पउड़ी २

(निंदक)

काउँ कपूर न चखाई दुरगंधि सुखावै ।
हाथी नीरि न्हवालीऐ सिरि छारु उडावै ।

पउड़ी १

(निन्दक)

कुत्ते को राजसिंहासन पर भी बैठा दिया जाय तो भी वह (आटे की) चक्की ही चाटता घूमता है । साँप को दूध पिलाने पर भी वह अपने मुँह से विष ही निकालता है । पत्थर को पानी में रखने पर भी उसके अन्तर्मन की कठोरता कम नहीं होती । गधा सुगन्धित इत्र, चन्दन आदि का परित्याग कर पुन: मिट्टी में ही लोटता है, ऐसे ही निन्दक भी पराई निंदा से एक हाथ भी पीछे नहीं हटता । वह अपने ही हाथ से अपनी जड़ उखाड़ता है ।। १ ।।

पउड़ी २

(निन्दक)

कौए को कपूर चुगना नहीं सुहाता क्योंकि उसे तो दुर्गन्ध ही अच्छी लगती है। हाथी को जल से स्नान कराया जाय वह फिर भी सिर पर मिट्टी उड़ाकर डाल लेता है। तुम्बी के पौधे को अमृत से भी सींचा जाए तो भी उसका कड़ुवापन नहीं जाता।

तुंमे अंम्रित सिंजीऐ कउड़तु न जावै ।
सिमलु रुखु सरेवीऐ फलु हथि न आवै ।
निंदकु नाम विहूणिआ सतिसंग न भावै ।
अंन्हा आगू जे थीऐ सभु साथु मुहावै ॥ २ ॥

पउड़ी ३

(निंदक)

लसणु लुकाइआ ना लुकै बहि खाजै कूणै ।
काला कंबलु उजला किउँ होइ सबूणै ।
डेमू खबर जो छुहै दिसै मुहि सूणै ।
कितै कंमि न आवई लावणु बिनु लूणै ।
निंदकि नाम विसारिआ गुर गिआनु विहूणै ।
हलति पलति सुखु ना लहै दुखीआ सिरु झूणै ॥ ३ ॥

सेमल के वृक्ष की बेशक (जल,खाद से) सेवा की जाए पर उससे कोई फल प्राप्त नहीं होता। निन्दक प्रभुनाम से विहीन होते हैं, उन्हें सद्संगति अच्छी नहीं लगती । अंधा यदि पथ-प्रदर्शक बन जाए तो सारे साथी भी लूट लिये जाते हैं ।। २ ।।

पउड़ी ३

(निन्दक)

कोने में बैठकर भी यदि लहसुन खाया जाए तो भी (अपनी गन्ध के कारण) वह छिपता नहीं । काला कम्बल भला साबुन लगाने से सफ़ेद कैसे हो सकता है । विषाक्त मक्खियों के झुंड के छत्ते को जो भी छुएगा उसका मुँह तो अवश्य सूज ही जाएगा । पकी हुई सब्जी नमक के बिना किसी काम नहीं आती । गुरु के ज्ञान से विहीन निन्दक ने प्रभु-नाम विस्मृत कर दिया है । वह इस लोक और परलोक में कभी सुख प्राप्त नहीं करता और दु:खी होकर सिर धुनता रहता है ।। ३ ।।

पउड़ी ४

(गुर-निंदा)

डाइणु माणस खावणी पुतु बुरा न मंगै ।
वडा विकरमी आखीऐ धी भैणहु संगै ।
राजे ध्रोहु कमाँवदे रैबार सुरंगै ।
बजर पाप न उतरनि जाइ कीचनि गंगै ।
थरहर कंबै नरकु जमु सुणि निंदक नंगै ।
निंदा भली न किसै दी गुर निंद कुढंगै ॥ ४ ॥

पउड़ी ५

(गुर-निंदा दे द्रिशटांत)

निंदा करि हरणाखसै वेखहु फलु वटै ।
लंक लुटाई रावणौ मसतकि दस कटै ।

पउड़ी ४

(गुरु-निन्दा)

चुड़ैल मानव-भक्षक होती है पर फिर भी वह अपने पुत्र का बुरा नहीं चाहती। बड़ा कुकर्मी जाना जानेवाला व्यक्ति भी बेटी, बहन से लजाता है। जो राजागण आपस में विश्वासघात करते वे भी दूतों को कुछ नहीं करते और बिचौलिए (दूत) आनन्दपूर्वक रहते हैं। गंगा एवं अन्य तीर्थों आदि पर जाकर जो पाप किये जाते हैं वे वज्र के समान कठोर होते है और उतरते नहीं। निन्दक की नंगई (नंगेपन) के कुकर्मों के बारे में सुनकर तो नर्क के यम भी थर-थर काँपने लगते हैं। किसी की भी निंदा करना ठीक नहीं होता, फिर गुरु की निंदा तो बेहद बेढंगापन है ।। ४ ।।

पउड़ी ५

(गुरु-निन्दा के दृष्टांत)

हिरण्यकशिपु ने (प्रभु की) निंदा की तो देखो कैसा फल प्राप्त किया अर्थात् जान से मार डाला गया। रावण ने भी (इस कार्य के लिए) लंका लुटवा ली और उसके दसों सिर काट डाले गये।

कंसु गइआ सण लसकरै सभ दैत संघटै ।
वंसु गवाइआ कैरवाँ खूहणि लख फटै ।
दंतबकत्र सिसपाल दे दंद होए खटै ।
निंदा कोइ न सिझिओ इउ वेद उघटै ।
दुरबासे ने सराप दे यादव सभि तटै ॥ ५ ॥

पउड़ी ६

(गुरू नूँ दोश देण वाला दुखी रहिंदा है)

सभनाँ दे सिर गुंदीअनि गंजी गुरड़ावै ।
कंनि तनउड़े कामणी बूड़ी बरिड़ावै ।
नखाँ नकि नवेलीआँ नकटी न सुखावै ।
कजल अखीं हरणाखीआँ काणी कुरलावै ।
सभनाँ चाल सुहावणी लँगड़ी लँगड़ावै ।
गणत गणै गुरदेव दी तिसु दुखि विहावै ॥ ६ ॥

कंस सारी सेना समेत मारा गया और उसके सभी दैत्यगण भी विनष्ट हो गये । कौरवों ने वंश गँवा दिया और अनेकों अक्षौहिणी सेना नष्ट हो गई । दन्तवक्त्र एवं शिशुपाल के भी (इसी कृत्य के कारण) दाँत खट्टे हुए । वेद-ग्रंथ भी यही बताते हैं कि निन्दा करके कोई भी सफल नहीं हो सका है। दुर्वासा ने भी (इसी निन्दा के कारण) सभी यादवों को शाप देकर नष्ट कर दिया ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(गुरु को दोष देनेवाला दुःखी होता है)

सभी के सिर के बालों को सजाया-सँवारा जाता है, पर गंजी स्त्री बड़बड़ाती रहती है। कामिनी के कानों में तो बुंदे शोभायमान होते हैं पर कर्ण-विहीन स्त्री दुःखी होती है। नई नवेली बहुओं के नाकों में नत्थें शोभा देती हैं पर नकटी को यह सब अच्छा नहीं लगता। हिरणी के समान आँखों वालियों की आँखों में काजल डाला जाता है जबकि कानी स्त्री चीख-पुकार लगाती है। सभी की चाल सुहानी होती है पर लँगड़ी तो लँगड़ा कर ही चलती है। जो गुरु की गिनती (निन्दा) करता है उसकी आयु दुःख में ही बीतती है ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(गुर निंदक दा जनम अकारथ है)

अपतु करीरु न मउलीऐ दे दोसु बसंतै ।
संढि सपुती न थीऐ कणतावै कंतै ।
कलरि खेतु न जंमई घणहरु वरसंतै ।
पंगा पिछै चंगिआँ अवगुण गुणवंतै ।
साइरु विचि घंघूटिआँ बहु रतन अनंतै ।
जनम गवाइ अकारथा गुरु गणत गणंतै ॥ ७ ॥

पउड़ी ८

(अकिरतघण)

ना तिसु भारे परबताँ असमान खहंदे ।
ना तिसु भारे कोट गढ़ घर बार दिसंदे ।

पउड़ी ७

(गुरु-निन्दक का जन्म निरर्थक है)

पत्ती-विहीन करीर (बबूल की एक जाति) हरा-भरा नहीं होता है, परन्तु इसके लिए वसन्त ऋतु को दोष देता है । बाँझ स्त्री के पुत्र नहीं होता पर वह अपने पति में दोष निकालती है । बंजर धरती पर चाहे बादल बरसते रहें वहाँ कोई भी फ़सल जम नहीं सकती । गुणवान व्यक्तियों को अवगुण और अच्छे लोगों को झंझट बुरे लोगों की संगति में ही प्राप्त हो जाते हैं। समुद्र के बीच में रहनेवाली अनेकों सीपियों में अनेकों रत्न भी प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् अच्छे व्यक्ति की संगति का अच्छा ही फल प्राप्त होता है । गुरु की गिनतियाँ गिनते अर्थात् उसके दोषों को गिनाने के फलस्वरूप जन्म व्यर्थ ही चला जाता है ।। ७ ।।

पउड़ी ८

(कृतघ्न)

(कृतघ्न व्यक्ति से) अधिक बोझवाले गगनचुंबी पर्वत भी नहीं हैं । घर और बाहर दूर से दिखनेवाले अनेकों क़िले भी उससे भारी नहीं हैं । उससे भारी तो वे समुद्र भी नहीं है जिनमें अनेकों नदियाँ-नाले बहकर आकर मिलते हैं ।

ना तिसु भारे साइराँ नद वाह वहंदे ।
ना तिसु भारे तरुवराँ फल सुफल फलंदे ।
ना तिसु भारे जीअ जंत अणगणत फिरंदे ।
भारे भुईं अकिरतघण मंदी हू मंदे ॥ ८ ॥

पउड़ी ९

(अकिरतघण दा द्रिशटांत)

मद विचि रिधा पाइ कै कुते दा मासु ।
धरिया माणस खोपरी तिसु मंदी वासु ।
रतू भरिआ कपड़ा करि कजणु तासु ।
ढकि लै चली चूहड़ी करि भोग बिलासु ।
आखि सुणाए पुछिआ लाहे विसवासु ।
नदरी पवै अकिरतघणु मतु होइ विणासु ॥ ९ ॥

पउड़ी १०

(लूण हरामी)

चोरु गइआ घरि साह दै घर अंदरि वड़िआ ।
कुछा कूणै भालदा चउबारे चढ़िआ ।

वे तरु भी उससे भारी नहीं हैं जो अच्छे फलों से सदैव लदे रहते हैं । संसार में घूमनेवाले अनेकों जीव-जन्तु भी उससे अधिक भारी नहीं है । धरती पर कृतघ्न व्यक्ति ही बोझ है क्योंकि वह ही बुरे से बुरा है ।। ८ ।।

पउड़ी ९

(कृतघ्न का दृष्टांत)

कुत्ते के मांस को शराब में पकाया गया और उसको उसकी दुर्गन्ध समेत मनुष्य की खोपड़ी में रखा गया । रक्त से सराबोर कपड़े से उसे ढका गया और भंगिन स्त्री भोग-विलास करके इसको ढककर ले जा रही है । जब उससे इस (घृणित पदार्थ) को ढककर ले जाने का कारण पूछा गया तो भ्रम-निवारण करते हुए उसने बताया कि मैंने इसे इसलिए ढका है कि कहीं किसी कृतघ्न की नज़र लग जाने से यह पदार्थ खराब न हो जाए ।। ९ ।।

पउड़ी १०

(नमकहराम)

एक चोर साहूकार के घर में घुसा। चारों कोने देखता खोजता वह चौबारे पर जा चढ़ा।

सुइना रुपा पंउ बंन्हि अगलाई अड़िआ ।
लोभ लहरि हलकाइआ लूण हाँडा फड़िआ ।
चुखकु लै के चखिआ तिसु कखु न खड़िआ ।
लूण हरामी गुनहगारु धड़ु धंमड़ धड़िआ ॥ १० ॥

पउड़ी ११

(लूण खाणिआँ दी गिणती)

खाधे लूण गुलाम होइ पीहि पाणी ढोवै ।
लूण खाइ करि चाकरी रणि टुक टुक होवै ।
लूण खाइ धी पुतु होइ सभ लजा धोवै ।
लूणु वणोटा खाइ कै हथ जोड़ि खड़ोवै ।
वाट वटाऊ लूणु खाइ गुणु कंठि परोवै ।
लूण हरामी गुनहगार मरि जनमु विगोवै ॥ ११ ॥

उसने रुपये, सोने आदि की गाँठ बाँध ली परन्तु फिर भी उसका मन लालच से अड़ गया। लोभ-लहर में पागल हो उसने नमक का एक बर्तन पकड़ लिया। ज़रा लेकर उसने चखा और वहाँ से कुछ भी नहीं लेकर गया । (वह चोर भी समझता था कि) नमकहराम (प्रभु की सभा में) ढोल की तरह पीटा जाता है ।। १० ।।

पउड़ी ११

(नमकहलालों की गिनती)

नमक खाकर व्यक्ति सेवक बन चक्की पीसता और पानी ढोता है। नमक खानेवाला सेवक युद्ध में (स्वामी के लिए) टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। नमक खानेवाले पुत्र-पुत्रियाँ कुल की लज्जा को धोते-सँवारते हैं। नौकर नमक खाकर हाथ जोड़कर खड़ा रहता है। पथिक किसी का नमक खाकर उसके गुण गाता है, परन्तु जो नमकहराम होता है वह गुनहगार होता है और मरकर जन्म को बिगाड़कर जाता है ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(धरमसाल दी झाक)

जिउ मिरयादा हिंदूआ गऊ मासु अखाजु ।
मुसलमाणाँ सूअरहु सउगंद विआजु ।
सहुरा घरि जावाईऐ पाणी मदराजु ।
सहा न खाई चूहड़ा माइआ मुहताजु ।
जिउ मिठै मखी मरै तिसु होइ अकाजु ।
तिउ धरमसाल दी झाक है विहु खंडूपाजु ॥ १२ ॥

पउड़ी १३

(झाक-पूजा दा धान)

खरा दुहेला जग विचि जिस अंदरि झाकु ।
सोइने नो हथु पाइदा हुइ वंञै खाकु ।

पउड़ी १२

(धर्मशाला पर आँख लगाना)

जैसे हिन्दू-मर्यादा के अनुसार गोमांस अखाद्य है; मुसलमानों के लिए सूअर और ब्याज निषिद्ध है और इसके लिए सौगन्ध खाये रहते हैं; ससुर के लिए दामाद के घर का पानी भी शराब के तुल्य (निषिद्ध) हैं, भंगी खरगोश नहीं खाता चाहे वह धन की ओर से लाचार ही क्यों न हो; जैसे मीठे में मक्खी के मर जाने पर मीठा अच्छे स्वाद वाला नहीं रह जाता तथा विषाक्त होने के कारण काम में नहीं आता वैसे ही धर्मशाला (धर्मस्थानों) की कमाई पर नज़र गड़ाना मानों खाँड़ में लपेटे विष के (खाने के) समान है ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(पूजा के धन-धान्य की तृष्णा)

जिसके मन में तृष्णा है वह इस संसार में सदैव दु:खी रहता है। वह सोने को भी हाथ लगाता है तो सोना मिट्टी हो जाता है। इष्ट मित्र, पुत्र, भाई एवं अन्य सभी सम्बन्धी उससे अप्रसन्न हो जाते हैं।

इठ मित पुत भाइरा विहरनि सभ साकु ।
सोगु विजोगु सरापु है दुरमति नापाकु ।
वतै मुतड़ि रंन जिउ दरि मिलै तलाकु ।
दुखु भुखु दालिद घणा दोजक अउताकु ॥ १३ ॥

पउड़ी १४

(पूजा दा धान)

विगड़ै चाटा दुध दा काँजी दी चुखै ।
सहस मणा रूई जलै चिणगारी धुखै ।
बूरु विणाहे पाणीऐ खउ लाखहु रुखै ।
जिउ उदमादी अतीसारु खई रोगु मनुखै ।
जिउ जालि पंखेरू फासदे चुगण दी भुखै ।
तिउ अजरु झाक भंडार दी विआपे वेमुखै ॥ १४ ॥

उस दुर्बुद्धि को सदैव संयोग एवं वियोग का शाप अर्थात् जन्म-मरण का शाप सताता रहता है । वह परित्यक्त स्त्री की तरह डोलता-फिरता है क्योंकि उसे प्रभु के द्वार से भी तलाक़ मिल जाती है । उसे अत्यधिक दु:ख, भूख, दरिद्रता नसीब होती है और मरने पर नर्क में निवास मिलता है ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(पूजा का धन-धान्य)

दूध का घड़ा थोड़ी सी काँजी (खटाई) से फट जाता है । एक चिनगारी से हजारों मन रुई जल जाती है । पानी का जाला पानी का नाश कर देता है और लाख वृक्ष की क्षति का कारण बनती है । पागल को अतिसार का रोग और आम व्यक्ति को क्षय-रोग नष्ट कर देता है । जैसे पक्षी दाना चुगने की लालसा के कारण जाल में फँस जाते हैं, इसी प्रकार भंडारण की असह्य तृष्णा स्वेच्छाचारी के हृदय में बनी रहती है ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(पूजा दा धान किवूँ पचे ?)

अउचरु झाक डंडार दी चुखु लगै चखी ।
होइ दुकुधा निकलै भोजनु मिलि मखी ।
राति सुखाला किउ सवै तिणु अंदरि अखी ।
कथा दबी अगि जिउ ओहु रहै न रखी ।
झाक झकाईऐ झाकवालु करि भख अभखी ।
गुर परसादी उबरे गुर सिखा लखी ॥ १५ ॥

पउड़ी १६

(धरमसाल दी झाक रखण वालिआँ दा लच्छण)

जिउ घुण खाधी लकड़ी विणु ताणि निताणी ।
जाणु डरावा खेत विचि निरजीतु पराणी ।
जिउ धूअरु झड़ु वाल दी किउ वरसै पाणी ।
जिउ थण गल विचि बकरी दुहि दुधु न आणी ।

पउड़ी १५

(पूजा का धन-धान्य कैसे पचे)

भंडार के सामान पर तृष्णा रखना उचित नहीं है परन्तु जिसे यह सब चखने की इच्छा बनी रहे उसके अन्दर से सामान फिर वैसे ही निकलता है जैसे भोजन के साथ अन्दर गई मक्खी वमन के साथ निकलती है। जिसकी आँख में तिनका पड़ गया हो भला वह रात में आराम से कैसे सो सकता है। सूखे तिनकों के नीचे रखी आग जैसे दबी नहीं रहती वैसे ही तृष्णा रखनेवाले की तृष्णा दबी नहीं रहती और वह अखाद्य को भी खाद्य समझने लग जाता है। गुरु के सिक्ख तो लाखों हैं पर जिनको गुरु-प्रसाद प्राप्त हुआ है अर्थात् जिन पर गुरु की कृपा हुई है उनका ही उद्धार होता है ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(धर्मशाला की ओर आँख लगाए रखनेवालों के लक्षण)

वे घुन द्वारा खायी जा चुकी लकड़ी के समान अशक्त एवं निराश्रित हो जाते हैं । वे वैसे ही हैं जैसे खेत में डराने के लिए व्यक्ति का निर्जीव बुत बना दिया जाता है । धुएँ में से भला बादल की तरह वर्षा कैसे हो सकती है ।

झाके अंदरि झाकवालु तिस किआ नीसाणी ।
जिउ चमु चटै गाइ महि उह भरमि भुलाणी ॥ १६ ॥

पउड़ी १७

(साध असाध परीखिआ)

गुछा होइ धिकानूआ किउ वड़ीऐ दाखै ।
अकै केरी खखड़ी कोइ अंबु न आखै ।
गहणे जिउ जरपोस दे नही सोइना साखै ।
फटक न पुजनि हीरिआ ओइ भरे बिआखै ।
धउले दिसनि छाहि दुधु सादहु गुण गाखै ।
तिउ साध असाध परखीअनि करतूति सु भाखै ॥ १७ ॥

पउड़ी १८

(चार वरण विच साध)

सावे पीले पान हहि ओइ वेलहु तुटे ।
चितमिताले फोफले फल बिरखहुँ छुटे ।

बकरी के गले के कृत्रिम थन में से दूध नहीं निकलता, वैसे ही तृष्णा वाला व्यक्ति (इधर-उधर) झाँकता रहता है । ऐसे व्यक्ति की भला क्या निशानी है । ऐसा व्यक्ति ऐसे ही भ्रम में रहता है जैसे गाय-भैंस मृत बच्चे को उसे जीवित समझकर भ्रम में चाटती रहती है और भूली रहती है ।।१६ ।।

पउड़ी १७

(साधु-असाधु परीक्षा)

निमोली के गुच्छे को भला अंगूर कैसे कहा जा सकता है । आक के खोखले फल को कोई आम नहीं कहता । मुलम्मे के गहनों की साख सोने के गहनों के समान नहीं होती । स्फटिक-हीरे तक नहीं पहुँच सकता क्योंकि हीरे बहुत कीमती होते हैं । छाछ और दूध दोनों सफ़ेद दिखाई देते हैं पर स्वाद से ही उनके गुण का पता लग पाता है । उसी प्रकार साधु-असाधु उनकी करतूतों (कर्मों) से परखे जाते हैं ।।१७ ।।

पउड़ी १८

(चारों वर्ण में साधु)

बेल से टूटनेवाले पान (के पत्ते) हरे, पीले रंग के होते हैं। सुपारी चितकबरे रंग की होकर पेड़ से टूटती है। कत्था भूरे रंग का और हलका होता है

कथ हरेही भूसली दे चावल चुटे ।
चूना दिसै उजला दहि पथरु कुटे ।
आपु गवाइ समाइ मिलि रंगुचीच वहुटे ।
तिउ चहु वरना विचि साध हनि गुरमुखि मुह जुटे ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(साँगी साध)

चाकर सभ सदाइँदे साहिब दरबारे ।
निवि निवि करनि जुहारीआ सभ सैहथीआरे ।
मजलस बहि बाढाइँदे बोल बोलनि भारे ।
गलीए तुरे नचाइँदे गजगाह सवारे ।
रण विचि पइआँ जाणीअनि जोध भजणहारे ।
तिउ साँगि सिखापनि सनमुखाँ बेमुख हतिआरे ।। १९ ।।

और चावल के समान चुटकी भरकर डाला जाता है । चूना सफ़ेद दिखाई देता है और उसको जला कर कूटा जाता है । ये सब अपना-आप गँवाकर (जब मिलते हैं तो) लाल रंग वाले हो जाते हैं। इसी प्रकार चारों वर्णों के गुणों को धारण करनेवाले साधुजन होते हैं जो गुरुमुखों के समान परस्पर मिलकर रहते है ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(स्वाँगी साधु)

मालिक की सभा में सभी सेवक (कहते) कहाते हैं । वे सभी शस्त्रों से लैस हो झुक-झुककर प्रणाम करते हैं । मजलिसों में बैठकर वे बड़ी-बड़ी डींगें मारते हैं । उनके हाथी श्रृंगार किये रहते हैं और गलियों-बाजारों में (दिखाने के लिए) घोड़े नचाते फिरते हैं । परन्तु युद्ध में जाने पर ही पता लगता है कि योद्धा कौन है और भाग खड़े होने वाले कौन हैं । ऐसे ही प्रभु-विमुख हत्यारे होते हैं जो प्रभु के सम्मुख बने रहनेवालों का स्वाँग बनाकर घूमते रहते हैं परन्तु अन्ततः पहचान लिये जाते हैं ।। १९ ।।

पउड़ी २०

(गुरू साँग)

जे माँ होवै जारनी किउ पुतु पतारे ।
गाई माणकु निगलिआ पेतु पाड़ि न मारे ।
जे पिरु बहु घरु हंढणा सतु रखै नारे ।
अमरु चलावै चंम दे चाकर वेचारे ।
जे मदु पीता बामणी लोड़ लुझणि सारे ।
जे गुर साँगि वरतदा सिखु सिदकु न हारे ॥ २० ॥

पउड़ी २१

(साँग विच साबत विरले)

धरती उपरि कोट गड़ भुइचाल कंमंदे ।
झखड़ि आए तरुवरा सरबत हलंदे ।

पउड़ी २०

(गुरु की लीला कौतुक)

यदि माँ व्यभिचारिणी भी हो तो भला पुत्र उसकी (अपने मुँह से) निन्दा क्यों करे? गाय यदि माणिक निगल जाए तो कोई भी उसका पेट-फाड़कर उसे नहीं निकालता । यदि पति अनेक घरों में आने-जाने वाला (अयोग्य काम करनेवाला) हो तो भी पत्नी को अपना सतीत्व क़ायम रखना चाहिए । राजा यदि चमड़े का हुक्म (सिक्का) चलाता है अर्थात् सेवकों को मारता-पीटता भी है तो भी सेवक उसके सामने बेचारे हैं। यदि ब्राह्मण स्त्री ने मद्यपान कर रखा हो तो सबको अत्यन्त विषाद होता है पर कर कुछ नहीं सकते । इसी प्रकार यदि गुरु कोई ऐसी ही लीला का मायाजाल रचता है तो सिक्ख को उसके प्रति अपना अटल विश्वास नहीं डिगाना चाहिए ।। २० ।।

पउड़ी २१

(लीला में कोई विरला ही खरा उतरता है)

भूचाल आने पर धरती पर करोड़ों क़िले थरथराने लगते हैं ।

डवि लगै उजाड़ि विचि सभ घाह जलंदे ।
हड़ आए किनि थंमीअनि दरीआउ वहंदे ।
अंबरि पाटे थिगली कूड़िआर करंदे ।
साँगै अंदरि साबते से विरले बंदे ॥ २१ ॥

पउड़ी २२

(जे गुरू साँग वरताए ताँ सिख विचारा की कर सकदा है?)

जे भाउ पुतै विसु दे तिस ते किसु पिआरा ।
जे घरु भंनै पाहरू कउणु रखणहारा ।
बेड़ा डोबै पातणी किउ पारि उतारा ।
आगू लै उझड़ि पवे किसु करै पुकारा ।
जे करि खेतै खाइ वाड़ि को लहै न सारा ।
जे गुर भरमाए साँगु करि किआ सिखु विचारा ॥ २२ ॥

आँधी आने पर सारे वृक्ष हिलने लग जाते हैं। । उजाड़ में आग लग जाने पर सभी प्रकार की घास जल जाती है । बहते दरिया में बाढ़ आने पर भला उसे कौन रोक सकता है । फटे आसमान को कपड़े से सीने जैसा कठिन और मूर्खतापूर्ण कार्य काई झूठी गप्पें हाँकनेवाला व्यक्ति ही कर सकता है । जो इस प्रकार के मायाजाल से बच रहे ऐसे व्यक्ति विरले ही होते हैं ।। २१ ।।

पउड़ी २२

(यदि गुरु ही कोई लीला खेल दे तो भला सिक्ख क्या कर सकता है ?)

यदि माँ ही बेटे को विष दे दे तो भला अन्य किसी को वह पुत्र कहाँ अधिक प्रिय हो सकता है ? यदि पहरेदार ही घर को तोड़ ले तो भला अन्य कौन रक्षक हो सकता है ? यदि मल्लाह ही नाव को डुबा दे तो भला कैसे पार हुआ जा सकता है ? यदि पथप्रदर्शक ही गुमराह कर दे तो फिर किसके पास पुकार लगाई जाए ? यदि बाड़ ही खेत को खाने लगे तो फिर तो कोई भी पूछनेवाला नहीं है । और इसी प्रकार लीला के अन्तर्गत यदि गुरु ही भ्रम में डाल दे तो भला उसके सामने बेचारा सिक्ख क्या है ? ।। २२ ।।

पउड़ी २३

(साँग विच साबत उह रहिंदा है जिस ते गुरू किरपा होवे)

जल विचि कागद लूण जिउ घिअ चोपड़ि पाए ।
दीवे वटी तेलु दे सभ राति जलाए ।
वाइ मंडल जिउ डोर फड़ि गुडी ओडाए ।
मुह विचि गरड़ दुगारु पाइ जिउ सपु लड़ाए ।
राजा फिरै फकीरु होइ सुणि दुखि मिटाए ।
साँगै अंदरि साबता जिसु गुरू सहाए ॥ २३ ॥ ३५ ॥ पैंतीह ॥

पउड़ी २३

(ऐसी लीला में खरा वही उतरता है जिस पर गुरु की कृपा हो)

कागज़ और नमक में घी चुपड़ देने से उन्हें जल में डाल दिया जा सकता है (वि कम गलते हैं) । दीपक की बत्ती तेल के आसरे सारी रात जलती रहती है । डोर पकड़कर वायुमंडल में पतंग को उड़ाया जा सकता है । मुँह में गरुड़बूटी को रख साँप से कटवाया जा सकता है । राजा यदि फ़क़ीर का वेश बनाकर घूमता है तो वह अन्यों के दु:ख सुनकर उन दु:खों को दूर करता है । ऐसे लीला के कौतुक में वही खरा उतरता है गुरु जिसकी (स्वयं) सहायता करता है ।। २३ ।। ३५ ।।

* * *

वार ३६

ੴ सतिगुर प्रसादि ।।

पउड़ी १

(मीणा-मूँह-काला)

तीरथ मंझि निवासु है बगुला अपतीणा ।
लवै बबीहा वरसदै जल जाइ न पीणा ।
वाँसु सुगंधि न होवई परमल संगि लीणा ।
घुघू सुझु न सुझई करमा दा हीणा ।
नाभि कथूरी मिरग दे वतै ओडीणा ।
सतिगुर सचा पातिसाहु मुहु कालै मीणा ।। १ ।।

पउड़ी २

(मीणे दा झूठा पाज उघड़ जावेगा)

नीलारी दे भट विचि पै गिदड़ु रता ।
जंगल अंदरि जाइ कै पाखंडु कमता ।

पउड़ी १

(स्वार्थी-मुँह-काला)

तीर्थस्थान पर निवास रखने पर भी बगुला विश्वासघाती बना ही रहता है। पास में बरसते हुए जल को पपीहा पीना नहीं जानता । बाँस में सुगंधि नहीं होती बेशक वह चन्दन में लीन बना रहे । उल्लू ऐसा भाग्यविहीन है कि उसे कभी (सूर्य जैसा प्रकाश भी) दिखाई नहीं देता । कस्तूरी मृग की नाभि में होती है पर उसे ढूँढने के लिए दौड़ता फिरता है । सद्‌गुरु सच्चा सम्राट् है और स्वार्थी-ठगों के मुँह काले होते हैं ।। १ ।।

पउड़ी २

(कपटी का झूठा पोल खुल जाएगा)

रंगरेज के घड़े में गिर गीदड़ रँग गया । उसने अपने बदले हुए रंग का लाभ उठाया और जंगल में जाकर पाखंड करने लगा ।

दरि सेवै मिरगावली होइ बहै अवता ।
करै हकूमति अगली कूड़ै मदि मता ।
बोलणि पाज उघाड़िआ जिउ मूली पता ।
तिउ दरगाहि मीणा मारीऐ करि कूड़ु कुपता ।। २ ।।

पउड़ी ३

(मीणा सची संगत नहीं बणा सकदा)

चोरु करै नित चोरीआ ओड़कि दुख भारी ।
नकु कंनु फड़ि वढीऐ रावै पर नारी ।
अउघट रुधे मिरग जिउ वितुहारि जूआरी ।
लंङी कुहलि न आवई पर वेलि पिआरी ।
वग न होवनि कुतीआ मीणे मुरदारी ।
पापहु मूलि न तगीऐ होइ अंति खुआरी ।। ३ ।।

अब वह हिरणों को डराकर एक-एक करके घर पर ही बुलाकर खाने लगा और अकड़ के साथ टेढ़ा होकर बैठने लगा । झूठे मद में मस्त हो वह बड़े ज़ोर-शोर से राज करने लगा । जैसे डकार आने पर पता लग जाता है कि वास्तव में मूली के पत्ते का ही सेवन किया गया है, इसी तरह एक दिन देखा-देखी गीदड़ के चिल्लाने पर उसका पोल खुल गया । इस प्रकार झूठ और झगड़ालू कपटी व्यक्ति को प्रभु-दरबार में मारा-पीटा जाता है ।। २ ।।

पउड़ी ३

(कपटी सच्ची संगति नहीं बना सकता)

चोर नित्य चोरी करता है पर अन्ततः भारी दुःख भोगता है । पराई स्त्री के साथ रमण करनेवाले के नाक-कान पकड़कर काट दिए जाते हैं । पाश में फँसे मृग के समान द्रव्य हार जानेवाले जुआरी की स्थिति बन जाती है । लँगड़ी स्त्री ठीक तरह से चल नहीं सकती पर फिर भी पराई (लँगड़ी) स्त्री भी प्यारी लगती है । कुतियों के झुंड नहीं बनते और कपटी व्यक्ति भी जूठन ही खाते हैं । पापकर्म करने पर कभी उद्धार नहीं होता और अन्ततः ख्वार ही होना पड़ता है ।। ३ ।।

पउड़ी ४

(मीणा अंत नूँ जमपुर जाएगा)

चानणि चंद न पुजई चमकै टानाणा ।
साइर बूँद बराबरी किउ आखि वखाणा ।
कीड़ी इभ न अपड़ै कूड़ा तिसु भाणा ।
नानेहालु वखाणदा मा पासि इआणा ।
जिनि तूँ साजि निवाजिआ दे पिंडु पराणा ।
मुढहु घुथहु मीणिआ तुधु जमपुरि जाणा ।। ४ ।।

पउड़ी ५

(मीणे दी संगत खोटी ते दुखदाई है)

कैहा दिसै उजला मसु अंदरि चितै ।
हरिआ तिलु बूआड़ जिउ फलु कंम न कितै ।
जेही कली कनेर दी मनि तनि दुहु भितै ।
पेंझू दिसनि रंगुले मरीऐ अगलितै ।

पउड़ी ४

(कपटी अन्तत: यमपुरी को जाएगा)

जुगनू चाहे कितना चमके वह चन्द्रमा की रोशनी का मुकाबला नहीं कर सकता। यह कैसे कहा जा सकता है कि सागर और पानी की एक बूँद बराबर होती है। कीड़ी कभी हाथी की बराबरी नहीं कर सकती; उसका गर्व झूठा होता है। ननिहाल से लौटकर यदि बच्चा उनका वर्णन करे तो वह माँ की तुलना में भला क्या जान-बता सकता है ? हे कपटी ! जिस प्रभु ने तुझे शरीर और प्राण देकर बनाया-सवाँरा है, उसे यदि तुमने बिलकुल ही भुला दिया तो तुम यमपुरी ही जाओगे ।। ४ ।।

पउड़ी ५

(कपटी की संगति खोटी और दु:खदायी है)

काँसा दिखने में उज्ज्वल दिखाई देता है पर उसके अंदर कालिमा ही होती है । तिल के खेत में निकम्मी घास व्यर्थ होती है जो कोई फल नहीं देती । कनेर की कली भी अंतर्मन से विषैली और बाहर से दिखने में रंगीन लगती है पर खाते ही व्यक्ति मर जाता है ।

खरी सुआलिओ वेसुआ जीअ बझा इतै ।
खोटी संगति मीणिआ दुख देंदी मितै ॥ ५ ॥

पउड़ी ६

(मीणे दा पंथ नरक नूँ लिजाँदा है)

बधिकु नादु सुणाइ कै जिउ मिरगु विणाहै ।
झीवरु कुंडी मासु लाइ जिउ मछी फाहै ।
कवलु दिखालै मुहु खिड़ाइ भवरै वेसाहै ।
दीपक जोति पतंग नो दुरजन जिउ दाहै ।
कला रूप होइ हसतनी मैगलु ओमाहै ।
तिउ नकट पंथु है मीणिआ मीलि नरकि निबाहै ॥ ६ ॥

पउड़ी ७

(मीणे दी संगत निरास करदी है)

हरि चंदुउरी देखि कै करदे भरवासा ।
थल विच तपनि भठीआ किउ लहै पिआसा ।

वेश्या देखने में सुन्दर होती है पर जिसका चित्त उसी में अटक जाता है उसकी समझो इतिश्री हो जाती है । कपटी व्यक्तियों की संगति बुरी होती है जो मित्रों को अवश्य दु:ख देती है ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(कपटी का मार्ग नरक में ले जाता है)

शिकारी सुन्दर नाद सुनाकर जैसे मृग को मार देता है; जैसे कुंडी में मांस लगाकर कहार मछली को फाँस लेता है; जैसे कमल अपना खिला हुआ मुँह दिखाकर भँवरे को विश्वास दिला देता है (और उसे अपने में ही बंद कर लेता है); जैसे दीपक की ज्योति पतंगे को शत्रु की तरह जला देती है; जैसे कलात्मक कृति के रूप में बनी (काग़ज़ की) हथिनी-हाथी को कामासक्त कर देती है वैसे ही कपटी व्यक्तियों का मार्ग नकटों का मार्ग है जिस पर चलकर नरक की ओर जाया जाता है ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(कपटी की संगति निराश करती है)

धुएँ की बनी भ्रम नगरी को देखकर लोग विश्वास कर लेते हैं ।

सुहणे राजु कमाईऐ करि भोग बिलासा ।
छाइआ बिरखु न रहै थिरु पुजै किउ आसा ।
बाजीगर दी खेड जिउ सभु कुड़ु तमासा ।
रलै जु संगति मीणिआ उठि चलै निरासा ।। ७ ।।

पउड़ी ८

(मीणे, गुरू फिटके हन)

कोइल काँउ रलाईअनि किउ होवनि इकै ।
तिउ निंदक जग जाणीअनि बोलि बोलणि फिकै ।
बगुले हंसु बराबरी किउ मिकनि मिकै ।
तिउ बेमुख चुणि कठीअनि मुहि काले टिकै ।
किआ नीसाणी मीणिआ खोटु साली सिकै ।
सिरि सिरि पाहणी मारीअनि ओइ पीर फिटिकै ।। ८ ।।

जिस रेगिस्तान में आग की भट्ठियाँ तप रही हों वहाँ भला मृगतृष्णा के जल से प्यास कैसे बुझ सकती है ? लोग स्वप्न में राजा बनकर भोग-विलास करते हैं (परंतु प्रात: कुछ भी हाथ नहीं लगता) । वृक्ष की छाया कभी स्थिर नहीं रहती, फिर भला उसके नीचे बैठकर सुख प्राप्त करने जाने की आशा कैसे पूर्ण हो सकती है ? ये सब एक नट के खेल की तरह झूठा तमाशा है । जो व्यक्ति कपटी की संगति में जा मिलता है वह अन्तत: निराश हो उठ जाता है ।। ७ ।।

पउड़ी ८

(कपटी, गुरु द्वारा तिरस्कृत होते हैं)

कोयलों और कौओं को मिला देने पर भी भला ये कैसे एक हो सकते हैं । ऐसे फीकी और हल्की बोली बोलनेवाले निन्दकगण भी सारे संसार में जाने जाते हैं। बगुले और हंस को भला एक ही बराबरी के नाप से कैसे नापा जा सकता है । उसी प्रकार प्रभु-विमुखों को चुनकर अलग कर लिया जाता है । उनके मुख पर कालिमा के टीके लगे होते हैं अर्थात् वे बदनाम लोग होते हैं । कपटी व्यक्तियों की पहचान क्या है ? वे टकसाल के खोटे सिक्कों के समान हैं । उनके सिर पर जूते मारे जाते हैं और गुरु द्वारा भी वे दुत्कार दिये जाते हैं ।। ८ ।।

पउड़ी ९

(गुरू हीन हो के गुरू सदाउणा)

राती नींगर खेलदे सभ होइ इकठे ।
राजा परजा होवदे करि साँग उपठे ।
इकि लसकर लै धावदे इकि फिरदे नठे ।
ठीकरीआँ हाले भरनि उइ खरे असठे ।
खिन विचि खेड उजाड़िदे घरु घरु नूँ तठे ।
विणु गुणु गुरू सदाइदे ओइ खोटे मठे ॥ ९ ॥

पउड़ी १०

(गुरू हीणिआँ दे चेले निरास हो जाँदे हन)

उचा लंमा झाटुला विचि बाग दिसंदा ।
मोटा मुढु पतालि जड़ि बहु गरब करंदा ।
पत सुपतर सोहणे विसथारु बणंदा ।
फुल रते फल बकबके होइ अफल फलंदा ।

पउड़ी ९

(गुरु-हीन होकर गुरु कहलवाना)

रात में सभी बच्चे इकट्ठा होकर खेल खेलते हैं । उलटे-उलटे वेश बनाकर कोई राजा बन जाता है और कोई प्रजा बन जाता है । उनमें से कोई तो सेना लेकर दौड़ लगाते फिरते हैं और कई हारकर भागे फिरते हैं । मिट्टी के टूटे बर्तनों के टुकड़ों (ठीकरी) को लेकर वे महसूल चुकाते हैं और इस प्रकार सयाने बन जाते हैं । फिर क्षण भर में ही वे खेल को समाप्त कर अपने-अपने घरों को भाग खड़े होते हैं । जो व्यक्ति गुणहीन होकर भी अपने आपको गुरु कहलवाता है वे मन के खोटे और आलसी (बैल) होते हैं ।। ९ ।।

पउड़ी १०

(गुरु-विहीनों के चेले निराश होते हैं)

बाग़ में (सेमल) वृक्ष ऊँचा, लम्बा और टहनीदार दिखाई देता है । वह अपनी मोटी जड़ पाताल तक होने के कारण गर्व करता है । उसके पत्ते हरे, सुन्दर और उसके विस्तार को बनानेवाले होते हैं ।

सावा तोता चुहचुहा तिसु देखि भुलंदा ।
पिछो दे पछुताइदा ओहु फलु न लहंदा ॥ १० ॥

पउड़ी ११

(गुरू हीन हीजड़े हन)

पहिनै पंजे कपड़े पुरसावाँ वेसु ।
मुछाँ दाढ़ी सोहणी बहु दुरबल वेसु ।
सै हथिआरी सूरमा पंचीं परवेसु ।
माहरु दड़ दीबाण विचि जाणै सभु देसु ।
पुरखु न गणि पुरखतु विणु कामणि कि करेसु ।
विणु गुर गुरू सदाइदे कउण करै अदेसु ॥ ११ ॥

पउड़ी १२

(शहु सेवा करन नाल मिलदा है)

गलीं जे सहु पाईऐ तोता किउ फासै ।
मिलै न बहुतु सिआणपै काउ गूँहु गिरासै ।

परन्तु फूल लाल,फल स्वादहीन वाला यह वृक्ष निष्फल ही फूलता-फलता है । चहचहाने वाला हरा तोता उसे देखकर भ्रमित हो जाता है । बाद में वह पछताता है क्योंकि उसे कुछ भी प्राप्त नहीं होता है ।। १० ।।

पउड़ी ११

(गुरु-विहीन नपुंसक है)

पाँचों वस्त्र धारण कर पुरुष का वेश बना रखा है । मूछें, ढाढ़ी तो सुन्दर हैं पर शरीर दुर्बल है । सौ शस्त्र चला लेनेवाला ऐसा व्यक्ति पंचों में भी गिना जा सकता है । वह द्वार, दरबार के कामों में भी निपुण हो सकता है और यह भी हो सकता है कि उसे सारा देश जानता हो । परन्तु यदि उसमें पुरुषत्व नहीं तो उसे मर्द नहीं कहा जा सकता और ऐसे व्यक्ति का भला कामिनी भी क्या करे ? जो बिना गुरु के हैं और स्वयं गुरु कहलवाते हैं भला उन्हें कौन प्रणाम करे ? ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(प्रिय सेवा करने से प्राप्त होता है)

बातें बनाने से ही यदि प्रिय मिल जाता है तो तोता भला क्यों पिंजरे में फँसा रहे। अधिक चतुराई से भी वह नहीं मिलता क्योंकि कौआ अन्ततः विष्ठा ही खाता है ।

जोरावरी न जिपई शीह सहा विणासै ।
गीत कवितु न भिजई भट भेख उदासै ।
जोबन रूपु न मोहीऐ रंगु कुसुंभ दुरासै ।
विणु सेवा दोहागली पिरु मिलै न हासै ॥ १२ ॥

पउड़ी १३

(मुकती दे सारे साधन निसफल हन)

सिर तलवाए पाईऐ चमगिदड़ जूहै ।
मड़ी मसाणी जे मिलै विचि खुडाँ चूहै ।
मिलै न वडी आरजा बिसीअरु विहु लूहै ।
होइ कुचीलु वरतीऐ खर सूर भसूहे ।
कंद मूल चितु लाईऐ अईअड़ वणु धूहे ।
विणु गुर मुकति न होवई जिउँ घरु विणु बूहे ॥ १३ ॥

ताक़त भी नहीं जीतती (बुद्धि जीतती है) क्योंकि एक खरगोश ने शेर को (कुएँ में उसका बिम्ब दिखाकर कुएँ में ही कुदाकर) मार डाला था । गीत और कविता में ही यदि मन लगा रह सकता हो तो और लोग भी अन्ततः उदासीन वेश क्यों धारण करें ? यौवन और सौंदर्य को देखकर मोहित नहीं हुआ जा सकता, क्योंकि कुसुम्भ के फूल का रंग नाशवान ही होता है । सेवा के बिना यह जीवात्मा दुहागिन है और (मूर्खों की तरह) हँसते रहने से भी प्रिय की प्राप्ति नहीं होती (वह सेवा करने से होती है) ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(मुक्ति के सारे साधन निष्फल हैं)

यदि सिर झुकाने से (मुक्ति) मिलती हो तो फिर चमगादड़ तो जंगलों में उलटे ही लटके रहते हैं। यदि श्मशान के एकाँत में मिलती हो तो फिर तो चूहों को उनके बिलों में ही प्राप्त हो जाए। लम्बी आयु करने से भी मुक्ति नहीं मिलती क्योंकि सर्प अपनी लम्बी आयु भर जहर में ही जलता रहता है । यदि गंदे बने रहने से मिलती हो तो गधे और सूअर तो मिट्टी में ही पलीत बने रहते हैं । कन्द - मूल खाने से ही और उसी में यदि चित्त लगाने से मुक्ति मिलती हो तो जानवरों के झुंड के झुंड केवल उसी को घसीट-घसीटकर खाते रहते हैं (उन्हें भी मुक्त हो जाना चाहिए) । जैसे द्वार के बिना घर बेकार है वैसे ही गुरु के बिना मुक्ति प्राप्त नहीं होती ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(तपाँ, हठाँ ते भेखाँ नाल मुकति नहीं)

मिलै जि तीरथि नातिआँ डडाँ जल वासी ।
वाल वधाइआँ पाईऐ बड़ जटाँ पलासी ।
नंगे रहिआँ जे मिलै वणि मिरग उदासी ।
भसम लाइ जे पाईऐ खरु खेह निवासी ।
जे पाईऐ चुप कीतिआँ पसूआँ जड़ हासी ।
विणु गुर मुकति न होवई गुर मिलै खलासी ॥ १४ ॥

पउड़ी १५

(मुकती दे आपणे साधन निसफल हन)

जड़ी बूटी जे जीवीऐ किउ मरै धनंतरु ।
तंतु मंतु बाजीगराँ ओइ भवहि दिसंतरु ।

पउड़ी १४

(तप, हठ और वेशों से मुक्ति नहीं)

यदि तीर्थों पर नहाने से (मुक्ति) मिल जाए तो मेंढकों का तो जल में ही निवास रहता है । बालों को बढ़ाने से यदि प्राप्त होती हो तो बट की अनेकों जड़ें लटका करती हैं । नंगे रहने से यदि प्राप्त हो तो फिर तो वन के मृग सदैव उदासी ही कहे जा सकते हैं। भस्म मलने से यदि मुक्ति मिलती हो तो गधा सदैव मिट्टी में ही (लोटता) रहता है । यदि चुप रहने से भी मिलती हो तो पशु एवं जड़ तो कभी (बोलते) हँसते नहीं । गुरु के बिना मुक्ति नहीं मिलती और गुरु के मिलने पर ही बंधनों से छुटकारा मिलता है ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(मुक्ति के लिए अपने साधन व्यर्थ हैं)

जड़ी-बूटियों के आसरे यदि जीवित रहा जा सके तो भला धन्वन्तरि (वैद्य) क्यों मरते ? नटों को तंत्र-मंत्र बहुत से आया करते हैं पर वे फिर भी देश-देशान्तरों में घूमा करते हैं । वृक्षों आदि की पूजा से यदि प्राप्त होती हो तो फिर उनकी लकड़ी में आग ही क्यों लगे ।

रुखीं बिरखीं पाईऐ कासट बैसंतरु ।
मिलै न वीराराधु करि ठग चोर न अंतरु ।
मिलै न राती जागिआँ अपराध भवंतरु ।
विणु गुर मुकति न होवई गुरमुखि अमरंतरु ॥ १५ ॥

पउड़ी १६

(गुरू बिन मुकती असंभव)

घंटु घड़ाइआ चूहिआँ गलि बिली पाईऐ ।
मता मताइआ मखीआँ घिअ अंदरि नाईऐ ।
सूतकु लहै न कीड़िआँ किउ झथु लंघाईऐ ।
सावणि रहण भंबीरीआँ जे पारि वसाईऐ ।
कूँजड़ीआँ वैसाख विचि जिउ जूह पराईऐ ।
विणु गुर मुकति न होवई फिरि आईऐ जाईऐ ॥ १६ ॥

गणों और वीरों की आराधना से भी मुक्ति प्राप्त नहीं होती क्योंकि ठग और चोरों में कोई विशेष अंतर नहीं होता । रात्रि-जागरण से भी मुक्ति प्राप्त नहीं होती क्योंकि अपराधी तो रात भर (जागते) घूमते ही रहते हैं । गुरु के बिना मुक्ति प्राप्त नहीं होती और गुरुमुख स्वयं भी अमर हैं और अन्यों को भी अमर कर देने वाले हैं ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(गुरु के बना मुक्ति असंभव)

चूहों ने घंटी बनवाई ताकि उसे बिल्ली के गले में डाला जा सके (परन्तु ऐसा हो नहीं सका)। मक्खियों ने विचार किया कि घी में स्नान किया जाए (पर सभी मारी गईं)। कीट-पतंगों का मरण-अशोच समाप्त नहीं होता, (क्योंकि वे पल-पल भर में मरते रहते हैं)। फिर भला उनका समय कैसे कटता है । सावन के महीने में उड़नेवाले पतंगे बने ही रहते हैं चाहें उन्हें जितना भी दूर किया जाए। वैशाख में क्रौंच पक्षी दूर-दूर तक उड़ते जाते हैं उनकी उड़ान पर रोक संभव नहीं। गुरु के बिना मुक्ति संभव नहीं है और आवागमन बना ही रहता है ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(कूड़ दा पाज कूड़ है)

जे खुथी बिंडा बहै किउ होइ बजाजु ।
कुते गल वासणी न सराफी साजु ।
रतनमणी गलि बाँदरै जउहरी नहि काजु ।
गदहुँ चंदन लदीऐ नहिं गांधी गाजु ।
जे मखी मुहि मकड़ी किउ होवै बाजु ।
सचु सचावाँ काँढीऐ कूड़ि कूड़ा पाजु ।। १७ ।।

पउड़ी १८

(जो अणहोंदा आप गणावे सो मूरख है)

अंङणि पुतु गवाँढणी कूड़ावा माणु ।
पाणी चउणा चारदा घर वितु न जाणु ।

पउड़ी १७

(झूठ का पोल झूठ ही है)

झींगुर यदि कपड़े के ढेर पर बैठ जाए तो वह भला बजाज (कपड़ा बेचनेवाला) कैसे बन जाएगा । कुत्ते के गले में रुपया रखनेवाली थैली बाँध दी जाए तो भी वह सर्राफ़ का-सा व्यवहार नहीं कर सकता । बंदर के गले में रत्न एवं मणियाँ बाँध दिए जाने पर भी वह जौहरी का काम नहीं कर सकता । गधे पर चंदन की लकड़ी लाद देने पर वह गंधी तो नहीं कहा जा सकता । यदि मकड़ी के मुँह में कोई मक्खी आ जाए तो वह मकड़ी बाज़ तो नहीं मानी जाएगी । सच सच्चा और झूठ सदैव झूठा ही होता है ।। १७ ।।

पउड़ी १८

(गुण न होने पर भी अपने गुण गिनानेवाला मूर्ख है)

अपने आँगन में पड़ोसी का पुत्र आ जाने से उस पर किया गया गर्व झूठा है । चरवाहा झुंड को चराता तो अवश्य है पर उसे अपनी सम्पत्ति नहीं समझ सकता । बेगारी करनेवाले (मजदूर) के सिर पर रुपयों की थैली होने पर भी वह निर्धन और हैरान ही बना रहता है ।

बदरा सिरि बेगारीऐ निरधनु हैराणु ।
जिउ करि राखा खेत विचि नाही किरसाणु ।
पर घरु जाणै आपणा मूरखु मिहमाणु ।
अणहोंदा आपु गणाइंदा ओहु वडा अजाणु ॥ १८ ॥

पउड़ी १९

(अणहोंदा आप गणाऊ गवार है)

कीड़ी वाक न थंमीऐ हसती दा भारु ।
हथ मरोड़े मखु किउ होवै सींह मारु ।
मछरु डंगु न पुजई बिसीअरु बुरिआरु ।
चित्रे लख मकउड़िआँ किउ होइ सिकारु ।
जे जूह सउड़ी संजरी राजा न भतारु ।
अणहोंदा आपु गणाइँदा उहु वडा गवारु ॥ १९ ॥

खेत की रखवाली करनेवाला खेत का जैसे मालिक नहीं होता वैसे ही पराए घर को अपनी सम्पत्ति माननेवाला मेहमान मूर्ख होता है। जो कुछ भी अपना न होने पर भी अपने आप को जताता रहता है वह बहुत बड़ा अनजान व्यक्ति है ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(वही)

कीड़ी हाथी का भार सँभाल नहीं सकती । मक्खी कितने ही हाथ मरोड़े पर भला वह शेर को मारनेवाली कैसे हो सकती है । मच्छर का डंक सर्प के जहर की बराबरी नहीं कर सकता । लाखों मकोड़े मिलकर भी चीते का शिकार भला कैसे कर सकते हैं ? पति की रजाई में अनेकों जुएँ होने से वह सेना का स्वामी राजा नहीं बन सकता । जो कुछ न होने पर भी अपने आपको जताता है, वह बड़ा गँवार समझा जाता है ।। १९ ।।

पउड़ी २०

(गुरू दी परख 'सच्च' है)

पुतु जणै वड़ि कोठड़ी बाहरि जगु जाणै ।
धनु धरती विचि दबीऐ मसतकि परवाणै ।
वाट वटाऊ आखदे वुठै इंद्राणै ।
सभु को सीसु निवाइदा चढ़िऐ चंद्राणै ।
गोरख दे गलि गोदड़ी जगु नाथु वखाणै ।
गुर परचै गुरु आखीऐ सचि सचु सिञाणै ॥ २० ॥

पउड़ी २१

(मेरे बिच्च सारे अउगुण हन)

हउ अपराधी गुनहगार हउ बेमुख मंदा ।
चोरु यारु जूआरि हउ पर घरि जोहंदा ।

पउड़ी २०

(गुरु की परख "सत्य" है)

पुत्र को कोठरी में जन्म दिया जाता है परन्तु बाहर सब लोग जान जाते हैं । धन बेशक धरती में दबाकर रखा जाए पर धनवान के माथे का ऐश्वर्य देखकर सब उस व्यक्ति को धनी मानते हैं । हो चुकी वर्षा के बारे में तो साधारण राहगीर भी बता देते हैं कि वर्षा हुई है । दूज के चाँद को देखकर सभी उसकी ओर सिर झुकाते हैं। गोरख के गले में तो गुदड़ी है पर संसार उसे 'नाथ' कहकर पुकारता है। गुरु की सेवा करने से ही "गुरु-गुरु" का स्मरण किया जाता है । सत्य को सत्य ही पहचानता है ।। २० ।।

पउड़ी २१

(मुझमें सभी अवगुण हैं)

मैं अपराधी, दोषी, बुरा एवं प्रभु-विमुख हूँ। मैं चोर, यार, जुआरी हूँ और पराये घर की ओर घात लगाए रहता हूँ।

निंदकु दुसटु हरामखोरु ठगु देस ठगंदा ।
काम क्रोधु मदु लोभु मोहु अहंकारु करंदा ।
बिसासघाती अकिरतघण मै को न रखंदा ।
सिमरि मुरीदा ढाढीआ सतिगुर बखसंदा ॥ २१ ॥३६॥ छत्ती ॥

मैं निन्दक, दुष्ट, हरामखोर, ठग हूँ जो सारे देश को ठगता फिरता है। मैं काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह एवं अहंकार करनेवाला हूँ । मैं विश्वासघाती एवं कृतघ्न हूँ, मुझे कोई भी रखने को तैयार नहीं । सद्‌गुरु को स्मरण कर उसका गुणानुवाद करनेवाले सेवक केवल एक गुरु ही ऐसा है जो कृपा करता है (और तुझ पर कृपा करेगा) ।। २१ ।। ३६ ।।

* * *

वार ३७

ੴ सतिगुर प्रसादि ॥

पउड़ी १

(मंगलाचरण, कादर दे चोज)

इकु कवाउ पसाउ करि ओअंकारि अकारु बणाइआ ।
अंबरि धरति विछोड़ि कै विणु थंमाँ आगासु रहाइआ ।
जल विचि धरती रखीअनि धरती अंदरि नीरु धराइआ ।
काठै अंदरि अगि धरि अगी होंदी सुफलु फलाइआ ।
पउण पाणी बैसंतरी तिंने वैरी मेलि मिलाइआ ।
राजस सातक तामसो ब्रहमा बिसनु महेसु उपाइआ ।
चोज विडाणु चलितु वरताइआ ॥ १ ॥

पउड़ी १

(मंगलाचरण, कर्त्ता की लीला)

एक ही वाक् (ध्वनि) से प्रसार करके ॐकार ने (सृष्टि-रूप में) आकार धारण किया है । उस (ॐकार) ने धरती को आकाश से अलग करके धरती को बिना किसी स्तम्भ की टेक के आकाश में स्थित रखा है । जल में उसने धरती को रखा और धरती में जल स्थित किया । काष्ठ में उसने अग्नि रखी और इस आग के होते हुए भी वृक्षों को सुन्दर फलोंवाले बनाया । हवा, पानी और आग तीनों परस्पर शत्रु हैं पर उसने इन तीनों का मेल कराया है (और सृष्टि की रचना की है) । उसने रजोगुण, सत्वगुण एवं तमोगुण वाले ब्रह्मा, विष्णु और महेश को उत्पन्न किया । उस लीलामय ॐकार ने यह आश्चर्यकारक लीला की सृष्टि की है ।। १ ।।

पउड़ी २

(ईश्वरी शकती)

सिव सकती दा रूप करि सूरजु चंदु चरागु बलाइआ ।
राती तारे चमकदे घरि घरि दीपक जोति जगाइआ ।
सूरजु एकंकारु दिहि तारे दीपक रूपु लुकाइआ ।
लख दरीआउ कवाउ विचि तोलि अतोलु न तोलि तुलाइआ ।
ओअंकारु अकारु जिसि परवदगारु अपारु अलाइआ ।
अबगति गति अति अगम है अकथ कथा नहि अलखु लखाइआ ।
सुणि सुणि आखणु आखि सुणाइआ ।। २ ।।

पउड़ी ३

(रचना दी विचित्रता)

खाणी बाणी चारि जुग जल थल तरुवरु परबत साजे ।
तिंन लोअ चउदह भवण करि इकीह ब्रहमंड निवाजे ।

पउड़ी २

(ईश्वरीय शक्ति)

शिव और शक्ति अर्थात् चैतन्यता रूपी परम तत्व और शक्ति प्रकृति अर्थात् पदार्थ के मिलाप को रूपायमान कर उसने संसार बनाया और सूर्य, चन्द्र, मानों उसके लिए दीपक बना दिये । रात में तारे इस तरह चमकते हैं मानों घर-घर में दीपक ज्योति दे रहे हों । दिन में एक ही महान सूर्य के निकलने से तारागण रूपी दीपकों का रूप छिप जाता है । उसके एक वाक् में लाखों (जीवन रूपी) नदियाँ हैं । उसकी महिमा को तौला नहीं जा सकता । उस कृपालु प्रभु ने भी अपना आकार "ॐकार" ही कहा है । उसकी गति अव्यक्त, अगम्य है और उसकी कथा अवर्णनीय है । कहनेवाले उस प्रभु के बारे में केवल सुन-सुनकर ही कहते, बतलाते हैं ।। २ ।।

पउड़ी ३

(रचना की विचित्रता)

चार उत्पत्ति-स्रोत (खानियाँ), चार वाणियाँ (परा, पश्यन्ति,

चारे कुंडा दीप सत नउ खंड दह दिसि वजणि वाजे ।
इकस इकस खाणि विचि इकीह इकीह लख उपाजे ।
इकत इकत जूनि विचि जीअ जंतु अणगणत बिराजे ।
रूप अनूप सरूप करि रंग बिरंग तरंग अगाजे ।
पउणु पाणी घरु नउ दरवाजे ॥ ३ ॥

पउड़ी ४

(रचना दी विचित्रता)

काला धउला रतड़ा नीला पीला हरिआ साजे ।
रसु कसु करि विसमादु सादु जीभहुँ जाप न खाज अखाजे ।
मिठा कउड़ा खटु तुरसु फिका साउ सलूणा छाजे ।
गंध सुगंधि अवेसु करि चोआ चंदनु केसरु काजे ।
मेदु कथूरी पान फुलु अंबरु चूर कपूर अंदाजे ।

मध्यमा, बैखरी) एवं चार युगों समेत जल, स्थल, वृक्ष एवं पर्वतों की रचना (उस प्रभु ने) की है । एक ही प्रभु ने तीन लोक, चौदह भुवन एवं ब्रह्माण्डों की सर्जना की । चार कोने, सात द्वीप, नव खण्ड और दसों दिशाओं में उसके लिए वाद्य बज रहे हैं । एक-एक उत्पत्ति-स्रोत में से इक्कीस-इक्कीस लाख जीव पैदा किये गये । फिर एक-एक योनि में से असंख्य जीव-जन्तु विराजमान हैं । सब रूप, रंग अनुपम हैं और वे सब रंग-बिरंगी तरंगों की तरह कहे जाते हैं। पवन-पानी के मेल से उत्पन्न शरीर में नौ द्वार उसने बनाए ।। ३ ।।

पउड़ी ४

(रचना की विचित्रता)

काला, सफ़ेद, लाल, नीला, पीला और हरा रंग शोभायमान हो रहा है । रस कषाय एवं अन्य कई विस्मयकारक स्वाद बनाये गये हैं जिन्हें केवल जीभ से ही जाना जाता है कि वे खाद्य हैं अथवा अखाद्य । ये स्वाद मीठे, कड़वे, खट्टे, तीखे, फीके, नमकीन आदि रूपों में शोभायमान हैं । अनेक गंधियाँ, सुगंधियाँ को मिलाकर कपूर, चंदन, केसर के कार्य करनेवाली बनाया है । मुश्कबिलाई, कस्तूरी, पान, फूल, अंबरचूर, कपूर आदि भी ऐसे ही अनुमानित किये जाते हैं ।

राग नाद संबाद बहु चउदह विदिआ अनहद गाजे ।
लख दरीआउ करोड़ जहाजे ॥ ४ ॥

पउड़ी ५

(रचनाँ विच्च मनुक्ख देह दा ही पार उतारा है)

सत समुंद अथाह करि रतन पदारथ भरे भंडारा ।
महीअल खेती अउखधी छादन भोजन बहु बिसथारा ।
तरुवर छाइआ फुल फल साखा पत मूल बहु भारा ।
परबत अंदरि असटधातु लालु जवाहरु पारसि पारा ।
चउरासीह लख जोनि विचि मिलि मिलि विछुड़े वड परवारा ।
जंमणु जीवणु मरण विचि भवजल पूर भराइ हजारा ।
माणस देही पारि उतारा ॥ ५ ॥

पउड़ी ६

(माणस जनम ते भुल्ल)

माणस जनम दुलंभु है छिण भंगरु छल देही छारा ।
पाणी दा करि पुतला उडै न पउणु खुले नउ दुआरा ।

अनेकों राग, नाद, संवाद हैं तथा चौदह विद्याओं के माध्यम से अनहद नाद बजता है। लाखों ही दरिया हैं और करोड़ों ही (उनको पार करने के लिए) जहाज हैं ।। ४ ।।

पउड़ी ५

(रचना में मानव-देह ही पार उतरने योग्य है)

उस प्रभु ने अथाह सात समुद्र बनाकर उसमें रत्न पदार्थों के भंडार भर दिये हैं । धरती पर खेती, ओषधि, कपड़े, भोजन का अनेक प्रकार से विस्तार किया है। पेड़ों की छाया है, फूल, फल, शाखा, पत्ते, जड़ें आदि हैं । पर्वतों में भी अष्टधातु, लाल, जवाहिर एवं पारस आदि हैं। चौरासी लाख योनियों में बड़े-बड़े परिवार मिल-मिलकर बिछुड़ते रहते हैं अर्थात् जन्मते-मरते रहते हैं। जन्म और मरण के चक्र में हज़ारों ही जीवों के झुंड सदैव इस संसार में आते-जाते रहते हैं। मनुष्य-शरीर के माध्यम से इस संसार-सागर से पार उतरा जा सकता है ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(मानव जन्म और भूल)

मनुष्य-जन्म दुर्लभ है परन्तु यह शरीर भी मिट्टी का बना होने के

अगनि कुंड विचि रखीअनि नरक घोर मंहि उदरु मझारा ।
करै उरध तपु गरभ विचि चसा न विसरै सिरजणहारा ।
दसी महीनीं जंमिआँ सिमरण करी करे निसतारा ।
जंमदो माइआ मोहिआ नदरि न आवै रखणहारा ।
साहों विछुड़िआ वणजारा ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(मानस जनम-माइआ जाल)

रोवै रतनु गवाइ कै माइआ मोहु अनेरु गुबारा ।
ओहु रोवै दुखु आपणा हसि हसि गावै सभ परवारा ।
सभनाँ मनि वाधाइआँ रुण झुंझनड़ा रुण झुणकारा ।
नानकु दादकु सोहले देनि असीसाँ बालु पिआरा ।
चुखहुँ बिंदक बिंदु करि बिंदहुँ कीता परबत भारा ।
सति संतोख दइआ धरमु अरथु सुगरथ विसारि विसारा ।

कारण क्षण भंगुर है । रज और बिन्दु के संयोग से बना यह शरीर पानी का पुतला है जिसमें नव द्वार हैं इसमें वायु भी है जो जीवनी शक्ति के रूप में इसमें से (अपने-आप) निकलती नहीं । घोर नर्क रूपी माँ के पेट के अग्निकुंड में भी उस प्रभु ने इस जीव की रक्षा की है । उस समय तो गर्भ में यह उलटा लटककर तपस्या करता है और इसे एक क्षण के लिए भी सर्जक प्रभु विस्मृत नहीं होता । दस महीनों के बाद यह जन्म लेता है और स्मरण करते जीव का अग्निकुंड से उद्धार किया । जन्मते ही यह माया में ग्रस्त हो जाता है और इसे वह रक्षक अब दिखाई नहीं देता । प्रभु रूपी साहूकार से व्यापारी रूपी जीव बिछुड़ गया है ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(मानव-जन्म–माया-जाल)

(जन्म लेते ही बालक) माया-मोह के घोर अंधकार में (परमात्मा रूपी) रत्न गँवाकर रोता है । वह तो अपने दु:ख से दु:खी हो रोता है पर इधर सारा परिवार हँस-हँसकर (खुशी के गीत) गाता है । सबके मन में खुशियाँ होती हैं और ढोल, मृदंग की थाप-झंकार सुनाई पड़ती है ।

काम करोधु विरोधु विचि लोभु मोहु धरोह अहंकारा ।
महाँ जाल फाथा वेचारा ॥ ७ ॥

पउड़ी ८

(बालक बुद्धि अचेत)

होइ सुचेत अचेत इव अखीं होंदी अंन्हा होआ ।
वैरी मितु न जाणदा डाइणु माउ सुभाउ समोआ ।
बोला कंनीं होंवदी जसु अपजसु मोहु धोहु न सोआ ।
गुंगा जीभै हुंदीऐ दुधु विचि विसु घोलि मुहि चोआ ।
विहु अंम्रित समसर पीऐ मरन जीवन आस त्रास न ढोआ ।
सरपु अगनि वलि हथु पाइ करै मनोरथ पकड़ि खलोआ ।
समझै नाही टिबा टोआ ॥ ८ ॥

ननिहाल और दादा के घर के खुशी के गीत गाते हुए प्यारे बालक को आशीर्वाद देते हैं । तनिक से बिंदु से बड़ा हुआ और अब यह बिंदु मानों भारी पर्वत के समान है । बड़ा होकर इसने सत्य, संतोष, दया, धर्म, श्रेष्ठ अर्थ (विचार) आदि सबको भुला दिया । यह काम, क्रोध, विरोध, लोभ, मोह, द्रोह एवं अहंकार के बीच में रहने लगा और इस प्रकार बेचारा महाजाल में फँस गया ।। ७ ।।

पउड़ी ८

(बालक-बुद्धि अचेत है)

यह (जीव) चेतन होते हुए भी ऐसा अचेत हुआ कि मानों आँखों के होते हुए भी अंधा हो गया हो । अब यह शत्रु और मित्र को भी नहीं पहचानता और इसके अनुसार तो माँ और डायन का स्वभाव भी एक समान है । यह कानों के होते भी बहरा है और इसे यश, अपयश, मोह, द्रोह आदि किसी की भी पहचान नहीं। जीभ के होते भी यह गूँगा है और दूध में विष घोलकर पीनेवाला है । विष और अमृत को समान समझकर पीता है और इसे जीवन, मरण आशा-तृष्णा की कुछ समझ न होने से इसे कहीं भी ठिकाना नहीं मिलता । साँप और अग्नि को हाथ से पकड़ लेने के लिए संकल्प कर उठ खड़ा होता है । टीले और गड्ढे की पहचान-समझ उसे नहीं होती है ।। ८ ।।

पउड़ी ९

(बालक विचार हीनता)

लूला पैरी होंवदी टंगाँ मारि न उठि खलोआ ।
हथो हथु नचाईऐ आसा बंधी हारु परोआ ।
उदम उकति न आवई देहि बिदेहि न नवाँ निरोआ ।
हगण मूतण छडणा रोगु सोगु विचि दुखीआ रोआ ।
घुटी पीऐ न खुसी होइ सपहुँ रखिअड़ा अणखोआ ।
गुणु अवगुण न विचारदा न उपकारु विकारु अलोआ ।
समसरि तिसु हथीआरु संजोआ ॥ ९ ॥

पउड़ी १०

(माता दे उपकार)

मात पिता मिलि निंमिआ आसावंती उदरु मझारे ।
रस कस खाइ निलज होइ छुह छुह धरणि धरै पग धारे ।

पउड़ी ९

(बालक-विचार-हीनता)

पाँव के होते भी यह (जीव) लूला है और टाँग से बल लगाकर उठ खड़ा नहीं होता । आशाओं, तृष्णाओं का हार बनाकर यह गले में बाँधे रखता है और इस तरह हाथों-हाथ नाचता फिरता है । उद्यम की युक्ति इसे नहीं आती और शारीरिक लापरवाही के कारण यह भला-चंगा नहीं रहता । मल-मूत्र-त्याग में भी यह रोगग्रस्त हो दुःखी होकर रोता रहता है । (प्रभु-नाम रूपी) घुट्टी प्रसन्न मन से नहीं पीता और (विषय विकार रूपी) सर्पों को ज़िद करके पकड़े रहता है । गुण-अवगुण का विचार नहीं करता और परोपकारी न बनकर विकारों की ओर ही देखता है । उस (मूर्ख) के लिए तो शस्त्र एवं कवच दोनों ही बराबर हैं ।। ९ ।।

पउड़ी १०

(माता के उपकार)

माता-पिता से मिलकर गर्भ धारण करती है और आशावान बनकर (बच्चे को) पेट में रखती है । यह रसों एवं कषायों को निर्लज्जता-पूर्वक खाने लगता तथा धरती को हाथों से छू-छूकर और उस पर पाँव रखकर चलने लगता है ।

पेट विचि दस माह रखि पीड़ा खाइ जणै पुतु पिआरे ।
जण कै पालै कसट करि खान पान विचि संजम सारे ।
गुढ़ती देइ पिआलि दुधु घुटी वटी देइ निहारे ।
छादनु भोजनु पोखिआ भदणि मंगणि पढ़नि चितारे ।
पाँधे पासि पढ़ाइआ खटि लुटाइ होइ सुचिआरे ।
उरिणत होइ भारु उतारे ॥ १० ॥

पउड़ी ११

(माता दा उपकार ते पुत्र दा अपकार)

माता पिता अनंद विचि पुतै दी कुड़माई होई ।
रहसी अंग न मावई गावै सोहिलड़े सुख सोई ।
विगसी पुत विआहिऐ घोड़ी लावाँ गाव भलोई ।
सुखाँ सुखै मावड़ी पुतु नूँह दा मेल अलोई ।
नुहु नित कंत कुमंतु देइ विहरे होवह ससु विगोई ।

माँ प्यारे पुत्र को दस मास तक पेट में रखकर पीड़ा सहकर उसे जन्म देती है । पैदा करके माँ बच्चे को पालती है और खान-पान में संयम रखती है । वह उसे घुट्टी देकर दूध पिलाकर प्रेम से उसकी ओर देखती-निहारती है । वह उसके भोजन, मुंडन, सगाई एवं शिक्षा आदि के बारे में सोचती है । उस पर से पैसे न्योछावर कर नहला-धुलाकर पंडित के पास उसे पढ़ने भेजती है । इस प्रकार उऋण होकर वह अपना बोझ हलका करती है ।। १० ।।

पउड़ी ११

(माता का उपकार और पुत्र का अपकार)

माता-पिता आनंदित हैं कि पुत्र की सगाई हो गई है । माता खुशी में फूली नहीं समाती और सुखपूर्वक गीत गाती है । शादी के गीत गाकर फेरों का भला माँगती हुई वह पुत्र का विवाह कर प्रसन्न होती है । पुत्र एवं पुत्र वधू के अलौकिक मिलन के लिए माँ अनेकों मनौतियाँ मानती है । बहू अब सदैव पुत्र को कुमंत्रणा देकर कहती-रहती है कि घर वालों से अलग हो जाना चाहिए । सास अब दुःखी होती है ।

लख उपकारु विसारि कै पुत कुपुति चकी उठि झोई ।
होवै सरवण विरला कोई ॥ ११ ॥

पउड़ी १२

(मापिआँ दा उपकार विसारना पाप है)

कामणि कामणिआरीऐ कीतो कामणु कंत पिआरे ।
जंमे साईं विसारिआ वीवाहिआँ माँ पिअ विसारे ।
सुखाँ सुखि विवाहिआ सउणु संजोगु विचारि विचारे ।
पुत नूहें दा मेलु वेखि अंग ना माथनि माँ पिउ वारे ।
नूँह नित मंत कुमंत देइ माँ पिउ छडि वडे हतिआरे ।
वख होवै पुतु रंनि लै माँ पिउ दे उपकारु विसारे ।
लोकाचारि होइ वडे कुचारे ॥ १२ ॥

पउड़ी १३

(मापिआँ दे अपकारी दे जप तप निसफल हन)

माँ पिउ परहरि सुणै वेदु भेदु न जाणै कहाणी ।
माँ पिउ परहरि करै तपु वणखंडि भुल फिरै बिबाणी ।

लाखों उपकारों को विस्मृत कर पुत्र कुपुत्र बनकर लड़ाई ठान लेता है । श्रवण की तरह (आज्ञाकारी) पुत्र कोई विरला ही होता है ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(माता-पिता का उपकार विस्मृत करना पाप है)

(माया रूपी) कामिनी ने ऐसा प्रभाव डाला कि (जीव-माया) कामिनी का ही प्रिय बन गया । उसने जन्मते ही प्रभु को और विवाह होते ही माँ-बाप को भुला दिया। अनेकों शकुन-अपशकुन, संयोग-वियोग का विचार कर मनौतियाँ मान-मानकर उसका विवाह किया। पुत्र और वधू का मिलाप देखकर माँ-बाप फूले नहीं समाते । वधू नित्य बुरी सलाह देती रहती है और पति को समझाती रहती है कि माँ-बाप को छोड़ दो । ये तुम्हारे हत्यारे अर्थात् सबसे बड़े शत्रु हैं । माँ-बाप के उपकारों को भुलाकर पुत्र पत्नी को लेकर माँ-बाप से अलग हो जाता है । अब तो लोगों का चलन बहुत ही टेढ़ा (खराब) हो गया है ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(माता-पिता के अपकारी के जप-तप निष्फल हैं)

माता-पिता को त्यागकर वेद सुननेवाला वेदों के भेद को नहीं समझ पाता और वे उसके लिए मात्र कहानी ही बनकर रह जाते हैं।

माँ पिउ परहरि करै पूजु देवी देव न सेव कमाणी ।
माँ पिउ परहरि न्हावणा अठसठि तीरथ घुंमण वाणी ।
माँ पिउ परहरि करै दान बेईमान अगिआन पराणी ।
माँ पिउ परहरि वरत करि मरि मरि जंमै भरमि भुलाणी ।
गुरु परमेसरु सारु न जाणी ॥ १३ ॥

पउड़ी १४

(उपकारी करतार नूँ सँभाल)

कादरु मनहुँ विसारिआ कुदरति अंदरि कादरु दिसै ।
जीउ पिंड दे साजिआ सास मास दे जिसै किसै ।
अखी मुहुँ नकु कंनु देइ हथु पैरु सभि दात सु तिसै ।
अखीं देखै रूप रंगु सबद सुरति मुहि कंन सरिसै ।

माता-पिता को त्यागकर वन में तपस्या करना निर्जन स्थान में भटकने के समान है। माता-पिता को छोड़कर देवी-देवताओं की सेवा करना भी स्वीकृत नहीं होता। माता-पिता को त्यागकर अड़सठ तीर्थों पर स्नान करना मानों भँवर में फँसने के समान है। माता-पिता को त्यागकर दान करने वाला बेईमान एवं अज्ञानी व्यक्ति है। माता-पिता को छोड़कर व्रत करनेवाला जन्म-मरण के चक्र में भटकता रहता है। उस व्यक्ति ने (वास्तव में) गुरु और परमेश्वर के भेद को नहीं समझा है ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(उपकारी कर्ता की पहचान)

सारी प्रकृति में वह कर्त्ता दिखाई देता है पर जीव ने उसे मन से भुला दिया है । उसी प्रभु ने हर एक को शरीर, प्राण , मांस, श्वास देकर बनाया है । आँख, मुँह, नाक, कान, हाथ, पाँव सब उसी का दिया दान है । आँख से व्यक्ति रूप-रंग देखता है और मुँह तथा कानों से शब्द कहता-सुनता है । नाक से गंध लेता और हाथों से काम करता तथा पाँव से खिसक-खिसककर चलता है । बाल, दाँत, नाखून, रोमावली, श्वास, भोजन आदि को सँभल- सँभालकर कार्य में प्रयुक्त करता है । हे जीव ! तू स्वादों के वशीभूत हो सांसारिक मालिकों को याद करता रहता है । तू उसका सौवाँ हिस्सा ही उस प्रभु को स्मरण कर ।

नकि वासु हथीं किरति पैरी चलण पल पल खिसै ।
वाल दंद नहुँ रोम रोम सासि गिरासि समालि सलिसै ।
सादी लबै साहिबो तिस तूँ संभल सैवैं हिसै ।
लूणु पाइ करि आटै मिटै ॥ १४ ॥

पउड़ी १५

(जेही जागदिआँ सुरत तेही स्वपन विच्च)

देही विचि न जापई नींद भुखु तेह किथै वसै ।
हसणु रोवणु गावणा छिक डिकारु खंगूरणु दसै ।
आलक ते अंगवाड़ीआँ हिडकी खुरकणु परस परसै ।
उभे साह उबासीआँ चुटकारी ताड़ी सुणि किसै ।
आसा मनसा हरखु सोगु जोगु भोगु दुखु सुखु न विणसै ।
जागदिआँ लघु चितवणी सुता सुहणे अंदरि धसै ।
सुता ही बरड़ाँवदा किरति विरति विचि जस अपजसै ।
तिसना अंदरि घणा तरसै ॥ १५ ॥

जीवन रूपी आटे में नमक जितनी भक्ति डालकर तुम इस जीवन को स्वादिष्ट बना लो ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(जैसी सुरति जागृत अवस्था में वैसी स्वप्न में)

शरीर में यह पता नहीं लगता कि निद्रा, भूख, प्यास कहाँ बसती है । कोई बताए कि हँसने, रोने, गाने, छींक, डकार एवं खाँसी कहाँ रहते हैं । आलस्य, अँगड़ाई, हिचकी, खुजली, ठंडी साँसें, उबासी, चुटकी और कथा, कहानी सुनकर ताली बजाना आदि कहाँ रहते हैं ? आशा, तृष्णा, हर्ष, शोक, योग, भोग, दु:ख, सुख आदि न नष्ट होनेवाली भावनाएँ हैं । जागृत अवस्था में जो लाखों वृत्तियाँ बनती हैं वे ही सोते समय भी स्वप्न में मन के अंदर धँसी रहती हैं। जागृत अवस्था में जो यश-अपयश उसने कमाया था व्यक्ति सोया हुआ ही वह सब कुछ बड़बड़ाता रहता है। जीव तृष्णा के वशीभूत हो सदैव बुरी तरह तरसता ही रहता है।। १५ ।।

पउड़ी १६

(दुरमती, उपकार कीतिआँ वी नहीं सोरदा)

गुरमति दुरमति वरतणा साधु असाधु संगति विचि वसै ।
तिंन वेस जमवार विचि होइ संजोगु विजोगु मुणसै ।
सहस कुबाण न विसरै सिरजणहारु विसारि विगसै ।
पर नारी परदरबु हेतु परनिंदा परपंच रहसै ।
नाम दान इसनानु तजि कीरतन कथा न साधु परसै ।
कुता चउक चढ़ाईऐ चकी चटणि कारण नसै ।
अवगुणिआरा गुण न सरसै ॥ १६ ॥

पउड़ी १७

(अनेकता विच्च इक विआपक नूँ चेतो)

जिउ बहु वरन वणासपति मूल पत्र फलु फुलु घनेरे ।
इकु वरनु बैसंतरै सभना अंदरि करदा डेरे ।

पउड़ी १६

(दुर्बुद्धि व्यक्ति उपकार करने पर भी नहीं संवरता)

साधु और असाधु को संगति में रहनेवाले व्यक्ति क्रमशः गुरुमत और दुर्मति के अनुसार व्यवहार करते हैं । सभी व्यक्ति संयोग-वियोग एवं तीन अवस्थाओं (बचपन, जवानी और बुढ़ापा) के अन्तर्गत व्यवहार करते हैं । हज़ारों बुरी आदतें नहीं भूलतीं और जीव उस सृजनकर्त्ता को भूलकर खुश होता है । यह परनारी, परद्रव्य, परनिन्दा आदि प्रपंचों में प्रसन्न बना रहता है । नाम-स्मरण, दान, स्नान को इसने त्याग दिया है और कथा-कीर्तन तथा साधुसंगति में भी नहीं जाता । यह उस कुत्ते के समान है जिसे ऊँचे स्थान पर चढ़ाकर बैठाया जाय पर वह फिर भी चक्कियाँ चाटने के लिए दौड़ता फ़िरता है । अवगुणी व्यक्ति गुणवान जीवन में प्रसन्न नहीं रहता ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(अनेकता में व्याप्त एक का स्मरण करो)

एक ही वनस्पति अनेकों रंगों, जड़ों, पत्तों, फूलों एवं फलोंवाली होती है ।

रूपु अनूपु अनेक होइ रंगु सुरंगु सु वासु चंगेरे ।
वाँसहु उठि उपंनि करि जालि करंदा भसमै ढेरे ।
रंग बिरंगी गऊ वंस अंगु अंगु धरि नाउ लवेरे ।
सद्दी आवै नाउ सुणि पाली चारै मेरे तेरे ।
सभना दा इकु रंगु दुधु घिअ पट भाँडै दोख न हेरे ।
चितै अंदरि चेतु चितेरे ॥ १७ ॥

पउड़ी १८

(अनेकता विच्च 'इक' करते नूँ , कीता नहीं चेतदा)

धरती पाणी वासु है फुली वासु निवासु चंगेरी ।
तिल फुलाँ दे संगि मिलि पतितु पुनीतु फुलेलु घवेरी ।
अखी देखि अन्हेरु करि मनि अंधे तनि अंधु अँधेरी ।
छिअ रुत बारह माह विचि सूरजु इकु न घुघू हेरी ।

एक ही अग्नि विभिन्न पदार्थों के अन्दर निवास करती है। गन्ध एक ही है पर वह अनेकों रंगों एवं अनुपम रूपों वाले पदार्थों में अवस्थित रहती है। बाँसों में से ही उष्णता उत्पन्न हो सारी वनस्पति को जलाकर भस्म कर देती है। रंग-बिरंगी अनेक गायें हैं जिनके अनेकों नाम रख दिए जाते हैं । ग्वाला उन्हें चराता है परन्तु प्रत्येक गाय अपने नाम की पुकार सुनकर चली आती है। सभी के दूध का रंग एक जैसा ही होता है। घी और रेशम में दोष नहीं देखा जाता (इसी प्रकार विभिन्न जातियों-प्रजातियों को न देखकर सच्ची मनुष्यता की पहचान की जानी चाहिए)। हे जीव ! इस संसार रूपी चित्रकला के चित्रकार का स्मरण कर ।। १७ ।।

पउड़ी १८

(अनेकता में एक कर्त्ता का कृत जीव स्मरण नहीं करता)

धरती और पानी के अच्छे निवास में रहकर फूलों में भी अच्छी गन्ध आ जाती है । तिल (का तैल भी) फूलों के (रस के) साथ रहकर पवित्र फुलेल (इत्र) की सुगन्ध वाला हो जाता है। अन्धा मन आँखों से देखकर भी अंधकार में रहनेवाले की तरह बर्ताव करता है और तन से भी अंधा बन जाता है अर्थात् जीव देखकर भी अंधा बना रहता है ।

सिमरणि कूँज धिआनु कछु पथर कीड़े रिजकु सवेरी ।
करते नो कीता न चितेरी ॥ १८ ॥

पउड़ी १९

(मनमुख अंन्हे हन)

घुघू चामचिड़क नो देहुँ न सुझै चानण होंदे ।
राति अन्हेरी देखदे बोलु कुबोल अबोलु खलोंदे ।
मनमुख अंन्हे राति दिहुँ सुरति विहूणे चकी झोंदे ।
अउगुण चुणि चुणि छड़ि गुण परहरि हीरे फटक परोंदे ।
नाउ सुजाखे अंन्हिआँ माइआ मद मतवाले रोंदे ।
काम करोध विरोध विचि चारे पले भरि भरि धोंदे ।
पथर पाप न छुटहि ढोंदे ॥ १९ ॥

पउड़ी २०

(मनमुख गुण कीतियाँ, अवगुण करदा है)

थलाँ अंदरि अकु उगवनि वुठे मींह पवै मुहि मोआ ।
पति टुटै दुधु वहि चलै पीतै कालकूटु ओहु होआ ।

छः ऋतुओं, बारह मासों में एक ही सूर्य रहता है पर उल्लू उसे देखता नहीं । प्रभु-स्मरण से क्रौंच और ध्यान लगाने से कछुए के बच्चे पलते हैं । वह प्रभु पत्थर के कीड़ों को भी जीविका देता है परन्तु फिर भी उसकी रचना जीव उस कर्त्ता को याद नहीं करता ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(स्वेच्छाचारी अंधे हैं)

चमगादड़ और उल्लू को दिन का प्रकाश होते हुए भी कुछ नहीं सूझता । वे अँधेरी रात में ही देखते है । वैसे चुप रहते हैं परन्तु जब बोलते हैं तो बुरा ही बोलते हैं। स्वेच्छाचारी भी दिन-रात अंधे बने रहते हैं और चेतना-विहीन होकर (कलह-क्लेश की) चक्की पीसते रहते हैं । अवगुणों को चुन-चुनकर रखते हैं, गुणों को छोड़ते जाते हैं, हीरे का त्याग करते हैं और पत्थरों की माला पिरोते रहते हैं । इन अंधों के नाम सुजान है और ये सब माया के मद में मतवाले होकर (सदैव) रोते रहते हैं ।। १९ ।।

अकहुँ फल होइ खखड़ी निहफलु सो फलु अकतिडु भोआ ।
विहुँ नसै अक दुध ते सपु खाधा खाइ अक नरोआ ।
सो अक चरि कै बकरी देइ दुधु अंम्रित मोहि चोआ ।
सपै दुधु पीआलीऐ विसु उगालै पासि खड़ोआ ।
गुण कीते अवगुणु करि ढोआ ।। २० ।।

पउड़ी २१

(निगुरा मनमुख वस विच नही आ सकदा)

कुहै कसाई बकरी लाइ लूण सीख मासु परोआ ।
हसि हसि बोले कुहींदी खाधे अकि हालु इहु होआ ।
मास खानि गलि छुरी दे हालु तिनाड़ा कउणु अलोआ ।
जीभै हंदा फेड़िआ खउ दंदाँ मुहु भंनि विगोआ ।
परतन परधन निंद करि होइ दुजीभा बिसीअरु भोआ ।

पउड़ी २०

(स्वेच्छाचारी भलाई करने पर भी बुराई करता है)

रेतीले स्थानों में आक का पौधा उगता है और वर्षा होने पर वह मुँह के बल गिर पड़ता है। उसका पत्त टूटने पर उसमें से दूध बह निकलता है और वह दूध पी लिये जाने पर कालकूट विष के समान हो जाता है । आक का निष्फल फल होता है जो टिड्डे को ही अच्छा लगता है। आक के दूध से विष उतर जाता है और साँप का काटा आक खाने से (कभी-कभी) निरोग हो जाता है। वही आक जब बकरी चरती है तो मुँह में डालनेवाला अमृत के समान दूध देती है। साँप को दूध पिलाया जाए तो वह उसे विष के रूप में उगल देता है। बुरे व्यक्ति के साथ भलाई करने पर भी वह अपने अन्दर अवगुणों को ही आश्रय दिये रहता है ।। २० ।।

पउड़ी २१

(गुरु-विहीन मनोन्मुख व्यक्ति वश में नहीं आ सकता)

क़साई बकरी को मारता है और फिर बकरी का मांस नमक लगाकर लोहे की शलाका में पिरोया जाता है । बकरी हँस-हँसकर यह कहती है कि मेरा यह हाल तो इसलिए हुआ है क्योंकि मैंने आक के पौधे के (विषैले) पत्ते खाये थे।

वसि आवै गुरुमंत सपु निगुरा मनमुखु सुणै न सोआ ।
वेखि न चलै अगै टोआ ॥ २१ ॥

पउड़ी २२

(दूजा भाउ खोटा दाउ है)

आपि न वंञै साहुरै लोका मती दे समझाए ।
चानणु घरि विचि दीविअहुँ हेठ अंनेरु न सकै मिटाए ।
हथु दीवा फड़ि आखुड़ै हुइ चकचउधी पैरु थिड़ाए ।
हथ कंङणु आरसी अउखा होवै देखि दिखाए ।
दीवा इकतु हथु लै आरसी दूजै हथि फड़ाए ।
हुंदे दीवे आरसी आखुंड़ि टोए पाउंदा जाए ।
दूजा भाउ कुदाए हराए ॥ २२ ॥

जो लोग जीव के गले पर छुरी चलाकर उनका मांस खाते हैं उनका क्या हाल देखने को मिलेगा ? जीभ का विकृत स्वाद दाँतों के लिए भय और मुँह तोड़ देनेवाला है । पराये तन, धन का रमण और पराई निन्दा करनेवाला दो जीभों वाले सर्प के समान है । यह सर्प गुरु के मंत्र से वश में आता है और गुरु-विहीन मनमुख (मन के पीछे चलने वाला व्यक्ति) कभी (गुरु) गरिमा के बारे में नहीं सुनता । वह देखकर नहीं चलता कि आगे गड्ढा है ।। २१ ।।

पउड़ी २२

(द्वैतभाव खोटा दाँव है)

(दुष्ट) लड़की खुद तो ससुराल जाती नहीं परन्तु अन्यों को ससुराल घर के रहन-सहन के बारे में शिक्षा देती है । दीपक से घर में तो प्रकाश हो जाता है परन्तु दीपक अपनी तली का अँधेरा नहीं मिटा सकता । हाथ में दीपक पकड़कर चलनेवाला व्यक्ति भी लौ की चकाचौंध में पैर टिकाकर चल नहीं पाता । जो हाथ के कंगन से दर्पण का काम लेना चाहता है वह स्वयं भी कठिनाई में पड़ता है और दूसरों को भी कठिनाई से ही बिम्ब दिखा पाता है। अब वह एक हाथ में दीपक और दूसरे में यदि दर्पण पकड़ ले तो भी दीपक और दर्पण के फेर में ही वह उखड़कर गड्ढे में गिर पड़ेगा । द्वैतभाव बुरा ढंग है जो अन्ततः हराता है ।। २२ ।।

पउड़ी २३

(मनमुख अक्रितघण है)

अमिअ सरोवरि मरै डुबि तरै न मनतारू सु अवाई ।
पारसु परसि न पथरहु कंचनु होइ न अघड़ु घड़ाई ।
बिसीअरु विसु न परहरै अठ पहर चंनणि लपटाई ।
संख समुंदहुँ सखणा रोवै धाहाँ मारि सुणाई ।
घुघू सुझू न सुझई सूरजु जोति न लुकै लुकाई ।
मनमुख वडा अक्रितघणु दूजै भाइ सुआइ लुभाई ।
सिरजनहार न चिति वसाई ॥ २३ ॥

पउड़ी २४

(निगुरा प्राणी सभ तों बुरा)

माँ गभणि जीअ जाणदी पुतु सपुतु होवै सुखदाई ।
कुपुतहुँ धी चंगेरड़ी पर घर जाइ वसाइ न आई ।

पउड़ी २३

(मनमुख व्यक्ति कृतघ्न है)

जो तैराक नहीं है वह अमृत के सरोवर में भी डूब मरेगा । पारस को स्पर्श कर पत्थर सोना नहीं बनता और उस ऊबड़-खाबड़ पत्थर का गहना नहीं गढ़ा जा सकता । सर्प विष का त्याग नहीं करता बेशक वह आठों प्रहर (रात-दिन) चन्दन में लिपटा रहता है । शंख समुद्र में रहते हुए भी खोखला एवं खाली रहता है और (फूँकने पर) चीख-चीखकर रोता है ! उल्लू को कुछ नहीं सूझता और सूर्य की ज्योति छिपाये नहीं छिपती । मनमुख व्यक्ति बड़ा कृतघ्न होता है और द्वैतभाव के स्वाद का ही सदैव लोभी होता है । उस सर्जक परमात्मा को मन में नहीं बसाता ।। २३ ।।

पउड़ी २४

(गुरु-विहीन प्राणी सबसे बुरा)

माँ गर्भवती होकर मन में यह समझती है मेरे यहाँ सुख देनेवाला सपूत जन्म लेगा । कुपुत्र से तो बेटी भली जो कम से कम पराये घर को बसायेगी और फिर लौटकर (दु:ख देने के लिए) नहीं आयेगी ।

पीअहुँ सप सकारथा जाउ जणेंदी जणि जणि खाई ।
माँ डाइण धंनु धंनु है कपटी पुतै खाइ अघाई ।
बाम्हण गाई खाइ सपु फड़ि गुर मंत्र पवाइ पिड़ाई ।
निगुरे तुलि न होरु को सिरजणहारै सिरठि उपाई ।
माता पिता न गुरु सरणाई ।। २४ ।।

पउड़ी २५

(निगुरा सभ तों बुरा है)

निगुरे लख न तुल तिस निगुरे सतिगुर सरणि न आए ।
जो गुर गोपै आपणा तिसु डिठे निगुरे सरमाए ।
सींह सउहाँ जाणा भला ना तिसु बेमुख सउहाँ जाए ।
सतिगुरु ते जो मुहु फिरै तिसु मुहि लगणु वडी बुलाए ।
जे तिसु मारै धरम है मारि न हंघै आपु हटाए ।

~~~~~~

दुष्ट पुत्री से सर्पिणी अच्छी है जो जन्मते ही बच्चों को खा लेती है (और वे बड़े होकर अन्यों को दुःख नहीं देते) । सर्पिणी से चुड़ैल माँ अच्छी है जो कपटी पुत्र को भी खाकर अघाती है । ब्राह्मण और गाय को काट खानेवाला सर्प भी गुरु का मंत्र सुनकर पिटारी में जा बैठता है । परन्तु उस सर्जक परमात्मा ने गुरु-विहीन व्यक्ति के तुल्य अन्य किसी को इस सृष्टि में नहीं बनाया । वह माता-पिता एवं गुरु की शरण में नहीं आता ।। २४ ।।

पउड़ी २५

(गुरु-विहीन व्यक्ति सबसे बुरा है)

जो व्यक्ति सद्‌गुरु (परमात्मा) की शरण में नहीं आता, लाखों गुरु-विहीन व्यक्ति भी उसकी तुलना में कुछ नहीं हैं । गुरु की स्तुति न करनेवाले व्यक्ति को तो गुरु-विहीन व्यक्ति भी देखकर लज्जित हो जाते हैं । उस गुरु-विमुख व्यक्ति के सामने जाने की अपेक्षा तो शेर के सामने चले जाना ठीक है । जो सद्‌गुरु (परमात्मा) से मुँह फेर लेता है उसके मुँह लगना तो मानों बड़ी विपत्ति में फंसने के तुल्य है । ऐसी बला को जो मार भगाता है वह मानों धर्म का कार्य करता है परन्तु यदि उसे न हटा सके तो स्वयं वहाँ से हट जाए ।
~~~~~~

सुआमि ध्रोही अकिरतघणु बामण गऊ विसाहि मराए ।
बेमुख लूँअ न तुलि तुलाइ ॥ २५ ॥

पउड़ी २६

(जुआरीए दा जनम हारना)

माणस देहि दुलंभु है जुगह जुगंतरि आवै वारी ।
उतमु जनमु दुलंभु है इक वाकी कोड़मा वीचारी ।
देहि अरोग दुलंभु है भागठु मात पिता हितकारी ।
साधू संगि दुलंभु है गुरमुखि सुख फलु भगति पिआरी ।
फाथा माइआ महाँ जालि पंजि दूत जमकालु सु भारी ।
जिउ करि सहा वहीर विचि पर हथि पासा पउछकि सारी ।
दूजै भाइ कुदाइअड़ि जम जंदारु सार सिरि मारी ।
आवै जाइ भवाईऐ भवजलु अंदरि होइ खुआरी ।
हारै जनमु अमोलु जुआरी ॥ २६ ॥

स्वामी के साथ द्रोह करनेवाला, कृतघ्न,ब्राह्मण, गाय को विश्वास दिलवाकर मरवा देनेवाला व्यक्ति भी सद्‌गुरु से विमुख व्यक्ति के एक रोम के बराबर भी नहीं है ।। २५।।

पउड़ी २६

(जुआरी का जन्म हारना)

कई युगों-युगान्तरों के बाद दुर्लभ मनुष्य देही धारण करने की बारी आती है । एक वाक्य पर अटल रहनेवाले परिवार में जन्म लेना तो फिर सबसे उत्तम है । अरोग्य शरीर और भाग्यशाली माता-पिता, जो बच्चे का हित कर सकते हों, बिल्कुल ही दुर्लभ हैं । साधुसंगति और गुरुमुखों का सुख-फल प्यारी भक्ति तो और भी दुर्लभ है । परन्तु जीव पंच दूतों के जाल में फँसा हुआ भारी यम का दण्ड सहन करता है । जीव की वही दशा होती है जो एक खरगोश की भीड़ में फँस जाने पर होती है । पराये हाथ में पासा होने से सारा खेल ही उलट जाता है । द्वैतभाव में कूदने-फाँदने से यम की गदा सिर पर पड़ती है और जीव आवागमन के चक्र में पड़कर भवजल में ख्वार होता रहता है । जुआरी की तरह यह अमूल्य जन्म को हार जाता है ।। २६ ।।

पउड़ी २७

(चउपड़ दी खेल वाँगूं गुरमुख पुगदे हन)

इहु जगु चउपड़ि खेलु है आवा गउण भउजल सैंसारे ।
गुरमुखि जोड़ा साधसंगि पूरा सतिगुर पारि उतारे ।
लगि जाइ सो पुगि जाइ गुर परसादी पंजि निवारे ।
गुरमुखि सहजि सुभाउ है आपहुँ बुरा न किसै विचारे ।
सबद सुरति लिव सावधान गुरमुखि पंथ चलै पगु धारे ।
लोक वेद गुरु गिआन मति भाइ भगति गुरु सिख पिआरे ।
निज घरि जाइ वसै गुरु दुआरे ॥ २७ ॥

पउड़ी २८

(अंन्हाँ आगू जे बीऐ)

वास सुगंधि न होवई चरणोदक बावन बोहाए ।
कचहु कंचन न थीऐ कचहुँ कंचन पारस लाए ।

पउड़ी २७

(चौपड़ के खेल की तरह गुरुमुख निभते हैं)

यह संसार चौपड़ का खेल है और (चौपड़ में गोटियों के पिटने की तरह) इस संसार-सागर में जीवों का आवागमन हो रहा है । गुरुमुखों का संयोग साधुसंगति के साथ बैठता है जहाँ से पूर्णगुरु (परमात्मा) उन्हें पार उतार देता है । जीव रूपी जो गोटी गुरु-चरणों में लग जाती है वह सफल हो जाती है और गुरु-कृपा से उसकी पाँचों व्याधियाँ दूर हो जाती हैं । गुरुमुखों का स्वभाव सहज भाववाला है, वे स्वयं किसी के प्रति बुरा नहीं सोचते । शब्द में सुरति लगाकर चेतनतापूर्वक गुरुमुख व्यक्ति दृढ़ क़दमों से (गुरु) पथ पर चलता है । लोकाचार, धर्म-पुस्तकों और गुरु-ज्ञान की मति के अनुसार चलनेवाले गुरु के सिक्ख गुरु को प्यारे होते हैं । गुरु के माध्यम से वे अपने निज स्वरूप में अवस्थित हो जाते हैं ।। २७ ।।

पउड़ी २८

(यदि अंधा पथ-प्रदर्शक बन जाए)

बाँस सुगंधित नहीं होता परन्तु गुरु के चरण जल से यह भी संभव हो जाता है।

निहफलु सिंमलु जाणीऐ अफलु सफलु करि सभ फलु पाए ।
काउँ न होवनि उजले काली हूँ धउले सिरि आए ।
कागहु हंस हुइ परम हंसु निरमोलकु मोती चुणि खाए ।
पसू परेतहुँ देव करि साधसंगति गुरु सबदि कमाए ।
तिस गुरु सार न जातीआ दुरमति दूजा भाइ सभाए ।
अंना आगू साथु मुहाए ।। २८ ।।

पउड़ी २९

(निंम्रता दा उत्तम उपदेश)

मै जेहा न अकिरतिघणु है भि न होआ होवणिहारा ।
मै जेहा न हरामखोरु होरु न कोई अवगुणिआरा ।
मै जेहा निंदकु न कोइ गुरु निंदा सिरि बजरु भारा ।
मै जेहा बेमुखु न कोइ सतिगुरु ते बेमुख हतिआरा ।

काँच सोना नहीं बनता परन्तु (गुरु रूपी) पारस के प्रभाव से काँच भी कंचन बन जाता है । सेमल वृक्ष को निष्फल जाना जाता है, पर वह भी (गुरु-कृपा से) फलवान हो सब प्रकार के फल देता है । मनमुखी जीव उस कौए के समान हैं जो काले से उज्ज्वल नहीं होते बेशक उनके बाल काले से सफ़ेद हो जाएँ अर्थात् वे अपना स्वभाव नहीं छोड़ते । परन्तु यदि गुरु-कृपा हो जाए तो कौआ हंस बन जाता है और अमूल्य मोतियों को चुगकर खाता है । गुरु के शब्द की साधना करवानेवाली साधुसंगति पशु-प्रेत से भी देवता बना देती है । जो द्वैतभाव में अनुरक्त हैं उन्होंने गुरु की महिमा को नहीं जाना है । यदि नेतृत्व देनेवाला अंधा हो तो निश्चित रूप से उसके साथी लुट जाएँगे ।। २८ ।।

पउड़ी २९

(नम्रता का उत्तम उपदेश)

मेरे जैसा कृतघ्न न तो कोई हुआ है और न ही होगा । मेरे जैसा हरामखोर और अवगुणी भी अन्य कोई नहीं है । मेरे जैसा निन्दक भी कोई नहीं है और मेरे सिर पर तो गुरु-निन्दा का वज्र रखा हुआ है । मेरे जैसा गुरु-विमुख व्यक्ति भी कोई नहीं होगा । मैं सद्गुरु से विमुख एवं हत्यारा हूँ ।

मै जेहा को दुसट नाहि निरवैरै सिउ वैर विकारा ।
मै जेहा न विसाहु धोहु बगल समाधी मीन अहारा ।
बजरु लेपु न उतरै पिंडु अपरचे अउचरि चारा ।
मै जेहा न दुबाजरा तजि गुरमति दुरमति हितकारा ।
नाउ मुरीद न सबदि वीचारा ॥ २९ ॥

पउड़ी ३०

(निंम्रता दा उत्तम उपदेश)

बेमुख होवनि बेमुखाँ मै जेहे बेमुखि मुखि डिठे ।
बजर पापाँ बजर पाप मै जेहे करि वैरी इठे ।
करि करि सिठाँ बेमुखाँ आपहुँ बुरे जानि कै सिठे ।
लिख न सकनि चित्र गुपति सत समुंद इमावनि चिठे ।
चिठी हूँ तुमार लिखि लख लख इकदूँ इक दुधिठे ।
करि करि साँग हुरेहिआँ हुइ मसकरा सभ सभि रिठे ।
मैथहु बुरा न कोइ सरिठे ॥ ३० ॥

मेरे जैसा दुष्ट अन्य कोई नहीं है जिसकी शत्रुता-विहीन लोगों से भी शत्रुता है । मेरे जैसा विश्वासघाती कोई नहीं है जिसकी बगुले जैसी समाधि है और जिसका आहार मछली है । मेरा शरीर (प्रभु-नाम से) अपरिचित है, अखाद्य पदार्थों का खानेवाला है । उस पर वज्र के समान कठोर पापों का लेप लगा है जो उतर नहीं सकता । मेरे जैसा वर्णसंकर अन्य कोई नहीं है जो "गुरुमत" को त्यागकर दुर्मति के साथ नेह लगाये हुए है । नाम तो मेरा शिष्य है परन्तु मैं (गुरु) शब्द को विचारता नहीं ।। २९ ।।

पउड़ी ३०

(नम्रता का उत्तम उपदेश)

मेरे जैसे (गुरु) विमुख व्यक्ति का मुँह देखने से विमुख व्यक्ति भी घोर रूप से गुरु-विमुख बन जाते हैं । वज्र से वज्र पाप जैसे शत्रुओं को भी मैंने इष्ट बना लिया है । गुरु-विमुख व्यक्तियों को मैंने बुरा जानकर उन्हें ताने कसे (हालाँकि मैं उनसे भी बुरा हूँ) । मेरे पाप का चिट्ठा तो सातों समुद्र भी (अपनी स्याही से) नहीं लिख सकते क्योंकि एक काग़ज की कहानी की लाखों कहानियाँ और फिर उससे दुगने कारनामे हो जाते हैं । मैंने दूसरों की इतनी नक़लें उतारी हैं कि सभी मसखरे भी मेरे सामने लज्जित हैं । सारी सृष्टि में मुझसे बुरा अन्य कोई नहीं है ।। ३० ।।

पउड़ी ३१

(गुरू-दरगाह दा कुत्ता)

लैले दी दरगाह दा कुता मजनूँ देखि लुभाणा ।
कुते दी पैरी पवै हड़ि हड़ि हसै लोक विडाणा ।
मीरासी मीरासीआँ नाम धरीकु मुरीदु बिबाणा ।
कुता डूम वखाणीऐ कुता विचि कुतिआँ निमाणा ।
गुरसिख आसकु सबद दे कुते दा पड़कुता भाणा ।
कटणु चटणु कुतिआँ मोहु न धोहु ध्रिगसदु कमाणा ।
अवगुणिआरे गुणु करनि गुरमुखि साधसंगति कुरबाणा ।
पतित उधारणु बिरदु वखाणा ।। ३१ ।। ३७ ।। सैंती ।।

पउड़ी ३१

(गुरु-दरबार का कुत्ता)

लैला के घर का कुत्ता देखकर ही मजनूँ प्रसन्न हो उठा । वह (अपनी प्रेमिका के) कुत्ते के पाँव में आ पड़ा जिसे देखकर लोग हड़हड़ाकर हँसने लगे । मीरासियों (मुसलमान भाटों, चारणों) में से एक मीरासी बाबा (नानक) का नाम धारण कर उसका शिष्य बन गया । उसके साथियों ने उसे कुत्ता भाट कहा और कुत्तों में भी उसे नीच कुत्ता जाना । गुरु के सिक्ख तो शब्द (ब्रह्म) के आशिक़ हैं। इन्होंने उसे (तथाकथित) कुत्ते की पकड़ सँभाल ली । काटना, चाटना बेशक कुत्तों की आदत है पर सबको चाहिए कि वह मोह,द्रोह को धिक्कारे और सत्य की कमाई करे । अवगुणी व्यक्ति पर साधुसंगति उपकार का काम करती है और गुरुमुख इसी कारण साधुसंगति पर बलिहार जाते हैं । साधुसंगति का विरद तो पतित-उद्धारक जाना जाता है ।। ३१ ।। ३७ ।।

* * *

वार ३८

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।।

[गुर-सिक्खी दा वरणन]

पउड़ी १

(विकार गुरसिक्ख नूँ नहीं पोंहदे)

काम लख करि कामना बहु रूपी सोहै ।
लख करोध करोध करि दुसमन होइ जोहै ।
लख लोभ लख लखमी होइ धोहण धोहै ।
माइआ मोहि करोड़ मिलि हो बहु गुण सोहै ।
असुर संघारि हंकार लख हउमै करि छोहै ।
साधसंगति गुरु सिख सुणि गुरु सिख न पोहै ।। १ ।।

पउड़ी २

(गुरसिक्ख नूँ काम नहीं पोहंदा)

लख कामणि लख कावरू लख कामणिआरी ।
सिंगलदीपहुँ पदमणी बहु रूपि सीगारी ।

पउड़ी १

(विकार गुरुसिक्ख को स्पर्श नहीं करते)

कामवेग लाखों कामनाओं के रूप में दिखाई दे; लाखों क्रोधपूर्वक शत्रु बनकर देखें; लाखों लोभ, लाखों लक्ष्मियाँ चाहे अपने में बहा ले जाएँ; माया-मोह करोड़ों गुणों वाले बनकर शोभायमान हों एवं अहंकार लाखों असुरों को मार डालने का अभिमान लेकर स्पर्श करे तब भी साधुसंगति में गुरु की शिक्षा सुननेवाले गुरु के सिक्ख को ये सब छू तक नहीं पाते ।। १ ।।

पउड़ी २

(गुरु के सिक्ख को काम स्पर्श नहीं करता)

लाखों कामरूपों की लाखों जादूगर स्त्रियाँ; अनेक प्रकार से श्रृंगार करनेवाली सिंहलद्वीप की पद्मिनियाँ; स्वच्छ आचरण वाली इन्द्रपुरी की मोहक अप्सराएँ,

मोहणीआँ इंद्रापुरी अपछरा सुचारी ।
हूराँ परीआँ लख लख लख बहिसत सवारी ।
लख कउलाँ नव जोबनी लख काम करारी ।
गुरमुखि पोहि न सकनी साधसंगति भारी ।। २ ।।

पउड़ी ३

(गुरसिक्ख हंकार दी मारों परे हन)

लख दुरयोधन कंस लख लख दैत लड़ंदे ।
लख रावण कुंभकरण लख लख राकस मंदे ।
परसराम लख सहंसबाहु करि खुदी खहंदे ।
हरनाकस बहु हरणाकसा नरसिंघ बुकंदे ।
लख करोध विरोध लख लख वैरु करंदे ।
गुरु सिख पोहि न सकई साधसंगि मिलंदे ।। ३ ।।

पउड़ी ४

(गुरसिक्ख लोभ दे वस नहीं हुंदा)

सोइना रुपा लख मणा लख भरे भंडारा ।
मोती माणिक हीरिआँ बहु मोल अपारा ।

बिहिश्त की हूरें, लाखों परियाँ, कामकला में निपुण लाखों नवयौवना लक्ष्मियाँ भी गुरुतर साधुसंगति में रहनेवाले गुरुमुख को स्पर्श तक नहीं कर पातीं ।। २ ।।

पउड़ी ३

(गुरुसिक्ख अहंकार की मार से परे हैं)

लाखों दुर्योधन, कंस एवं लाखों दैत्य परस्पर लड़नेवाले हैं । लाखों रावण, कुभंकर्ण एवं अन्य लाखों बुरे राक्षस जाने जाते हैं । परशुराम, सहस्त्रबाहु आदि लाखों हैं जो अपने अहम् के कारण आपस में भिड़ते हैं । हिरण्यकशिपु जैसे अनेकों एवं नरसिंह जैसे गर्जनेवाले भी कई हैं । लाखों के परस्पर विरोध एवं क्रोध हैं और ये सब लाखों प्रकार की शत्रुताएँ रखनेवाले हैं । ये सब गुरु के सिक्ख का कुछ नहीं बिगाड़ते और साधुसंगति में परस्पर मिलकर बैठते हैं ।। ३ ।।

पउड़ी ४

(गुरु का सिक्ख लोभ के वश में नहीं होता)

लाखों मन सोना, रुपया और लाखों भरे हुए भंडारागार; अपार मोल वाले

देस वेस लख राज भाग परगणे हजारा ।
रिधी सिधी जोग भोग अभरण सीगारा ।
कामधेनु लख पारिजाति चिंतामणि पारा ।
चार पदारथ सगल फल लख लोभ लुभारा ।
गुरसिख पोह न हंघनी साधसंगि उधारा ॥ ४ ॥

पउड़ी ५

(गुरसिक्ख मोह रहित है)

पिउ पुतु मावड़ धीअड़ी होइ भैण भिरावा ।
नारि भतारु पिआर लख मन मेलि मिलावा ।
सुंदर मंदर चित्रसाल बाग फुल सुहावा ।
राग रंग रस रूप लख बहु भोग भुलावा ।
लख माइआ लख मोहि मिलि होइ मुदई दावा ।
गुरुसिख पोहि न हंघनी साधसंगु सुहावा ॥ ५ ॥

मोती, माणिक एवं हीरे; लाखों राज्य, देश, वेश एवं हज़ारों परगने; ऋद्धियाँ, सिद्धियाँ, योग, भोग, गहने एवं श्रृंगार; कामधेनु, लाखों पारिजात एवं चिंतामणियाँ आदि चारों पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) लाखों लुभायमान करनेवाले फल उस गुरु के सिक्ख को छू भी नहीं पाते जिसका साधुसंगति में उद्धार हो चुका है ।। ४ ।।

पउड़ी ५

(गुरु का सिक्ख मोह-विहीन है)

पिता, पुत्र, माँ, बेटी, बहन, भाई, स्त्री-पुरुष आदि का परस्पर प्यार और लाखों प्रकार से मेलजोल होता है । सुन्दर महल, चित्रशालाएँ एवं सुहावने बाग़ फूल होते हैं । भोगों में भुलानेवाले लाखों राग-रंग एवं रूप-रस कहे जाते हैं । जीव लाखों प्रकार की मोह-माया में लीन होकर अनेक प्रकार के दावे करते हैं । साधुसंगति में शोभायमान होने वाले गुरु के सिक्खों को उपर्युक्त सभी स्पर्श तक भी नहीं कर सकते ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(गुरसिक्ख खुदी तों खाली है)

वरना वरन न भावनी करि खुदी खहंदे ।
जंगल अंदरि सींह दुइ बलवंति बुकंदे ।
हाथी हथिआई करनि मतवाले हुइ अड़ी अड़ंदे ।
राज भूप राजे वडे मल देस लड़ंदे ।
मुलक अंदरि पातिसाह दुइ जाइ जंग जुड़ंदे ।
हउमै करि हंकार लख मल मल घुलंदे ।
गुरुसिख पोहि न सकनी साधुसंगि वसंदे ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(गुरसिक्ख निरहंकार जती है)

गोरख जती सदाइआँ तिसु गुरु घरिबारी ।
सुकर काणा होइआ मंती अविचारी ।

पउड़ी ६

(गुरसिक्ख स्वयं ही खाली है)

सभी वर्ण परस्पर एक-दूसरे को भाते नहीं अत: अहंकारवश आपस में ऐसे भिड़ते रहते हैं जैसे जंगल में दो बलवान शेर गर्जते हों । ये सब उन हाथियों की तरह हैं जो मतवाले होकर अड़ जाते हैं । बड़े-बड़े राजागण बड़े-बड़े देशों पर क़ब्ज़ा कर परस्पर लड़ते हैं । एक ही देश में जब दो बादशाह होंगे तो वे आपस में जा लड़ते हैं । अहम्भावना के वशीभूत हो लाखों पहलवान आपस में कुश्तियाँ लड़ते हैं । साधुसंगति में निवास करनेवाले गुरु-सिक्ख को ये सब छू भी नहीं पाते ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(गुरुसिक्ख निरभिमानी है)

गोरख को यति कहा जाता है पर उसका गुरु (मत्स्येन्द्र) घर-बारियों की तरह था । शुक्राचार्य भी खोटे मंत्र के कारण लांछनयुक्त हो गया । लक्ष्मण ने भूख-प्यास तो साध ली पर अहम्भावना उसमें बनी रही ।

लखमण साधी भुख तेह हउमै अहंकारी ।
हनूंमत बलवंत आखीऐ चंचल मति खारी ।
भैरउ भूत कुसूत संगि दुरमति उरधारी ।
गुरसिख जती सलाहीअनि जिनि हउमै मारी ॥ ७ ॥

पउड़ी ८

(गुरसिक्ख सती है)

हरीचंद सति रखिआ निखास विकाणा ।
बल छलिआ सतु पालदा पातालि सिधाणा ।
करनु सु कंचन दान करि अंतु पछोताणा ।
सतिवादी हुइ धरमपुतु कूड़ जमपुरि जाणा ।
जती सती संतोखीआ हउमै गरबाणा ।
गुरसिख रोम न पुजनी बहु माणु निमाणा ॥ ८ ॥

हनुमान बलवान कहा जाता है पर उसकी मति भी काफी चंचल थी । भैरव भी बुरी संगति के कारण मन में दुर्बुद्धि बनाये रहा । गुरु के उस सिक्ख की यति-रूप में प्रशंसा होती हैं जिसने अहम्‌भावना को मार दिया है ।। ७ ।।

पउड़ी ८

(गुरु का सिक्ख सत्याचारी है)

हरिश्चन्द्र ने सत्य का पालन किया और मंडी में बिक गया । छले जाने पर भी राजा बलि ने सत्य का पालन किया और पाताललोक में चला गया । कर्ण भी कंचन दान किया करता था पर अपनी उस प्रतिज्ञा के कारण उसे अंत में पछताना पड़ा (क्योंकि कपट से देवराज इन्द्र ने उससे कवच-कुंडल माँग लिये थे जिसे उसने सहर्ष देना स्वीकार कर अपना बल घटा लिया था) । धर्मपुत्र युधिष्ठिर को सत्यवादी होने के कारण केवल एक झूठ बोलने के लिए यमपुरी (नर्क) में जाना पड़ा । जितने भी यति, सत्याचारी एवं संतोषी लोग हुए हैं उन्हें अपने आचरण पर अभिमान था । गुरु का सिक्ख इतना विनम्र होता है कि ये सब उसके एक रोम के तुल्य भी नहीं हैं ।। ८ ।।

पउड़ी ९

(गुरसिक्ख हिंदूआँ मुसलमानाँ तों उच्चा है)

मुसलमाणा हिंदूआँ दुइ राह चलाए ।
मजहब वरण गणाइँदे गुरु पीरु सदाए ।
सिख मुरीद पखंड करि उपदेस द्रिड़ाए ।
राम रहीम धिआइँदे हउमै गरबाए ।
मका गंग बनारसी पूज जारत आए ।
रोजे वरत नमाज करि डंडउति कराए ।
गुरु सिख रोम न पुजनी जो आपु गवाए ।। ९ ।।

पउड़ी १०

(गुरसिक्ख सभ मत मतांतराँ तों उच्चा है)

छिअ दरसन वरताइआ चउदह खनवादे ।
घरै घूँमि घरबारीआ असवार पिआदे ।

पउड़ी ९

(गुरु का सिक्ख हिन्दू-मुसलमान भावना से ऊँचा है)

हिन्दू और मुसलमानों ने अलग-अलग दो मार्ग चला दिये हैं । मुसलमान मज़हबों की और हिन्दू वर्णों की गिनती गिनवाते हैं और अपने आपको गुरु अथवा पीर कहलवाते हैं । अपने शिष्यों को ये बड़े प्रपंचों से चेले और मुरीद बनाते हैं । राम और रहीम की आराधना करते हैं और अहम् भाव में ग्रस्त रहते हैं । ये अलग-अलग मक्का, गंगा, बनारस और हज के लिए मक्का जाते हैं । रोज़ा-व्रत एवं नमाज़ अदा कर ये अपनी वंदना करवाते हैं । ये उस गुरुसिक्ख के रोम के बराबर भी नहीं हैं जिसने अहम्भाव को त्याग दिया है ।। ९ ।।

पउड़ी १०

(गुरुसिक्ख सब मत-मतांतरों से ऊँचा है)

(संसार में) छः दर्शन और सूफ़ियों के चौदह खानदानों का व्यवहार है। घर-घर घूमनेवाले, घरबारी, सवार और प्यादे आदि (इस संसार में) विचरण करते हैं । दस प्रकार के नाम रखकर संन्यासियों के सम्प्रदाय आपस में वाद-विवाद करते हैं।

संनिआसी दस नाम धरि करि वाद कवादे ।
रावल बारह पंथ करि फिरदे उदमादे ।
जैनी जूठ न उतरै जूठे परसादे ।
गुरुसिख रोम न पुजनी धुरि आदि जुगादे ॥ १० ॥

पउड़ी ११

(गुरसिक्ख अन्य देशी ते अन्य धरमीआँ तों उच्चा है)

बहु सुंनी शीअ राफज़ी मज़हब मनि भाणे ।
मुलहिद होइ मुनाफ़का सभ भरमि भुलाणे ।
ईसाई मूसाईआँ हउमै हैराणे ।
होइ फिरंगी अरमनी रूमी गरबाणे ।
काली पोस कलंदराँ दरवेस दुगाणे ।
गुरुसिख रोम न पुजनी गुर हटि विकाणे ॥ ११ ॥

रावल (योगी) भी बारह पंथ बनाकर उन्मादित अवस्था में भ्रमण करते हैं । जैनियों का तो जूठन का ही प्रसाद है उनकी जूठन नहीं उतरती । ये सब उन गुरुसिक्खों के रोम के बराबर भी नहीं है जिन्होंने उस आदिपुरुष परमात्मा से लौ लगा रखी है ।। १० ।।

पउड़ी ११

(गुरुसिख अन्य देशी और अन्य धर्म वालों से ऊँचा)

अनेकों ही सुन्नी, शिया,राफ़जी आदि मनभावन मज़हबों वाले लोग हैं । अनेकों ही पाखंडी नास्तिक बनकर भ्रमों में भूले घूमते हैं । ईसाई और मूसाई भी अनेकों हैं जो अहंकार में ही परेशान हैं । कोई फ़िरंगी, रूमी और आरमीनिया का निवासी होने पर ही गर्व किये हुए हैं । कई काले वेश वाले कलंदर और दरवेश हैं जो कौड़ियों के गंडे बाँहों पर बाँधे घूमते हैं । ये सब उन गुरुसिक्खों के रोम के तुल्य भी नहीं हैं जो गुरु की दुकान पर बिक चुके हैं ।। ११ ।।

पउड़ी **१२**

(गुरसिक्ख करम धरम तों उच्चा सुखफल विच है)

जप तप संजम साधना हठ निग्रह करणे ।
वरत नेम तीरथ घणे अधिआतम धरणे ।
देवी देवा देहुरे पूजा परवरणे ।
होम जग बहु दान करि मुख वेद उचरणे ।
करम धरम भै भरम विचि बहु जंमण मरणे ।
गुरमुखि सुखफल साधसंगि मिलि दुतरु तरणे ॥ १२ ॥

पउड़ी १३

(गुरसिक्ख प्रतापीआँ , चिर-जीबीआँ तों उच्चा, सुखफल विच है)

उदे असति विचि राज करि चक्रवरति घनेरे ।
अरब खरब लै दरब निधि रस भोगि चंगेरे ।
नरपति सुरपति छत्रपति हउमै विचि घेरे ।
सिव लोकहुँ चढ़ि ब्रहमलोक बैकुंठ वसेरे ।

पउड़ी १२

(गुरु का सिक्ख कर्म-धर्म से ऊँचा सुख-फल में है)

जप, तप, संयम, साधना, हठ, निग्रह आदि कर्म किये जाते हैं । व्रत नियम एवं तीर्थाटन आध्यात्मिकता के लिए किये जाते हैं । देवी-देवताओं और मंदिरों की पूजा के लिए प्रवृत्त हुआ जाता है । होम, यज्ञ एवं अनेकों दान कर मुख से वेदोच्चार किया जाता है । इस प्रकार के कर्म-धर्म-भ्रम में फँसकर आवागमन का भय बना ही रहता है । गुरुमुखों का सुख-फल तो साधुसंगति है जिसे मिलकर दुस्तर संसार-सागर पार किया जाता है ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(प्रतापी और चिरंजीवी लोगों से गुरुसिक्ख श्रेष्ठ है)

ऐसे अनेकों चक्रवर्ती राजा हैं जिनका राज्य जहाँ से सूर्य उदय होता है से लेकर वहाँ तक है जहाँ अस्त होता है । अरबों-खरबों का उनके पास द्रव्य और अच्छे-अच्छे भोग्य रस पदार्थ हैं । ये सभी नरपति एवं सुरपति अहम् भाव में घिरे रहते हैं । ये सब (बेशक) शिवलोक से लेकर ब्रह्मलोक एवं बैकुण्ठ में निवास कर लेनेवाले हैं ।

चिर जीवणु बहु हंढणा होहि वडे वडेरे ।
गुरमुखि सुखफलु अगमु है होइ भले भलेरे ॥ १३ ॥

पउड़ी १४

(गुरसिक्ख इंद्रिय सुक्खाँ तों उच्चे सुक्ख फल विच्च है)

रूपु अनूप सरूप लख होइ रंग बिरंगी ।
राग नाद संबाद लख संगीत अभंगी ।
गंध सुगंधि मिलाप लख अरगजे अदंगी ।
छतीह भोजन पाकसाल रस भोग सुढंगी ।
पाट पटंबर गहणिआँ सोहहिं सरबंगी ।
गुरमुखि सुखफलु अगंमु है गुरुसिख सहलंगी ॥ १४ ॥

पउड़ी १५

(गुरसिक्ख मन बुद्धी दे सुक्खाँ तों उच्चे सुख विच्च है)

लख मति बुधि सुधि उकति लख लख लख चतुराई ।
लख बल बचन बिबेक लख परकिरति कमाई ।

अन्य कई चिरंजीवी बनकर बड़ी आयु वाले हुए हैं परन्तु गुरुसिक्ख का सुखफल अगम्य है और भले से भी भला है ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(गुरुसिक्ख इन्द्रिय सुखों से ऊपर सुखफल में है)

अनुपम रूप वाले लाखों रंग-बिरंगे जीव हैं । उसी प्रकार राग, नाद, संवाद और सदैव प्रवाहमान लाखों संगीत हैं । अनेकों गंधों, सुगंधियों को मिलाकर लाखों शुद्ध सुगंधियाँ बनाई जाती हैं। इसी प्रकार पाकशालाओं के छत्तीस प्रकार के रसयुक्त भोज्य पदार्थ हैं। रेशमी वस्त्रों एवं गहनों में सजी अनेकों सर्वांगी स्त्रियाँ हैं। गुरु के सिक्खों की संगति का गुरुमुखों का सुखफल अगम्य है ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(गुरुसिक्ख मन-बुद्धि के सुखों से ऊँचे सुख में हैं)

लाखों बुद्धियाँ, शुद्ध उक्तियाँ एवं चतुराइयाँ विद्यमान हैं। लाखों ही बल, विवेक, वचन एवं पराई चाकरियाँ जानी जाती हैं । लाखों प्रकार का सयानापन, लाखों चेतनाएँ और लाखों कौशल (इस संसार में) अवस्थित हैं। इसी प्रकार ज्ञान, ध्यान, स्मरण एवं सहस्त्रों-लाखों गुणानुवाद हैं ।

लख सिआणप सुरति लख लख सुरति सुघड़ाई ।
गिआन धिआन सिमरणि सहंस लख पति वडिआई ।
हउमै अंदरि वरतणा दरि थाइ न पाई ।
गुरमुखि सुखफल अगम है सतिगुर सरणाई ॥ १५ ॥

पउड़ी १६

(गुरसिक्ख सतोगुणी सुक्खाँ तों उच्चा, पिरम रस विच है)

सति संतोख दइआ धरमु लख अरथ मिलाही ।
धरति अगास पाणी पवण लख तेज तपाही ।
खिमाँ धीरज लख लजि मिलि सोभा सरमाही ।
सांति सहज सुख सुक्रिता भाउ भगति कराही ।
सगल पदारथ सगल फल आनंद वधाही ।
गुरमुखि सुखफल पिरमि रसु इकु तिलु न पुजाही ॥ १६ ॥

पउड़ी १७

(गुरसिक्ख आतम सुक्खाँ तों उच्चा, पिरम रस विच्च है)

लख लख जोग धिआन मिलि धरि धिआनु बहंदे ।
लख लख सुंन समाधि साधि निज आसण संदे ।

इन सबके रहते हुए भी अहम्भाव में व्यवहार करने से प्रभु-द्वार पर स्थान (भी) नहीं मिलता । सद्गुरु की शरण में आने का गुरुमुखों का सुखफल अगम्य है ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(गुरुसिक्ख सत्वगुणी सुखों से ऊँचा प्रेम-रस में है)

सत्य, संतोष, दया, धर्म एवं लाखों अर्थ मिल जाएँ; धरती, आकाश, पानी, पवन और लाखों तेज तपानेवाले हों; क्षमा, धैर्य, लाखों लज्जाएँ मिलकर शोभा को भी लजा दे; शांति, सहज, सुकृत मिलकर प्रेमाभक्ति करायें; और ये सब समेकत रूप में होकर आनन्द को और अधिक बढ़ायें तब भी ये सब गुरुमुखों के प्रेम-रस रूपी सुखफल के एक कण के बराबर भी नहीं पहुँच सकते ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(गुरुसिक्ख आत्मिक सुखों से ऊँचा प्रेम-रस में रहता है)

लाखों योगी मिलकर ध्यान में बैठें; लाखों साधु अपनी-अपनी समाधि में लाखों शून्य समाधियाँ लगाएँ; लाखों शेषनाग गुणों का गायन

लख सेख सिमरणि करहिं गुण गिआन गणंदे ।
महिमाँ लख महातमाँ जैकार करंदे ।
उसतति उपमाँ लख लख लख भगति जपंदे ।
गुरमुखि सुखफलु पिरम रसु इक पलु न लहंदे ॥ १७ ॥

पउड़ी १८

(गुरसिक्ख पिरम रस बिसमाद तों उच्चा है)

अचरज नो आचरजु है अचरजु होवंदा ।
विसमादै विसमादु है विसमादु रहंदा ।
हैराणै हैराणु है हैराणु करंदा ।
अबिगतहुँ अबिगतु है नहिं अलखु लखंदा ।
अकथहुँ अकथ अलेखु है नेति नेति सुणंदा ।
गुरमुखि सुखफलु पिरम रसु वाहु वाहु चवंदा ॥ १८ ॥

पउड़ी १९

(पिरम रस प्रापती दा वसीला–गुरू, सतिसंग, नाम, हउमैं तिआग)

इकु कवाउ पसाउ करि ब्रहमंड पसारे ।
करि ब्रहमंड करोड़ लख रोम रोम संजारे ।

करते हुए उस प्रभु का स्मरण करें; लाखों महात्मा उसकी महिमा का जय-जयकार करें; लाखों भक्त स्तुति-महिमा और लाखों जाप करें तो भी ये सब गुरुमुख के प्रेमरस के एक पल के सामने भी नहीं टिकते ।। १७।।

पउड़ी १८

(गुरुमुख का प्रेम-रस आश्चर्य से भी ऊँचा है)

प्रेम-रस के समक्ष तो आश्चर्य को भी आश्चर्य होता है। विभोरता को भी उसके प्रेम के समक्ष आत्मविभोरतापूर्ण विस्मय होता है । उसका प्रेम हैरानी को भी हैरान कर देता है। जो अविगत है वह भी उस अलक्ष्य (प्रभु) को नहीं देख सकता । वह कथनियों से परे है और नेति-नेति ही सुना जाता है । गुरुमुखों का सुखफल तो प्रेमरस ही है जो मुँह से "वाहवाह" ही निकलवाता है ।। १८।।

पउड़ी १९

(प्रेमरस-प्राप्ति का साधन-गुरु सत्संग, नाम एवं अहम्-त्याग)

उस प्रभु ने एक ही वाक् (ध्वनि) का प्रसार कर सारे ब्रह्मांडों का सृजन कर दिया। लाखों-करोड़ों ब्रह्मांड बनाकर अपने एक-एक रोम में लीन कर लिये। वह मुरारि परब्रह्म, जो कि पूर्णब्रह्म है, ने गुरु-रूप धारण किया है । उसके प्रभाव

पारब्रहम पूरण ब्रहम गुरु रूपु मुरारे ।
गुरु चेला चेला गुरू गुर सबदु वीचारे ।
साधसंगति सचु खंड है वासा निरंकारे ।
गुरमुखि सुख फलु पिरम रसु दे हउमै मारे ॥ १९ ॥

पउड़ी २०

(छे गुर-उसतति)

सतिगुरु नानक देउ है परमेसरु सोई ।
गुरु अंगदु गुरु अंग ते जोती जोति समोई ।
अमरापदु गुरु अंगदहुँ हुइ जाणु जणोई ।
गुरु अमरहुँ गुरु रामदास अंम्रित रसु भोई ।
रामदासहुँ अरजनु गुरू गुरु सबद सथोई ।
हरिगोविंद गुरु अरजनहुँ गुरु गोविंदु होई ।
गुरमुखि सुख फल पिरम रसु सतिसंग अलोई ।
गुरु गोविंदहुँ बाहिरा दूजा नही कोई ॥२०॥३८॥ अठत्तीह ॥

से गुरु तो चेला और चेला गुरु बनकर गुरु के शब्द को विचारता है अर्थात् चेला और गुरु पूर्ण रूप से एक-दूसरे में समाहित हो गये हैं । साधुसंगति तो सत्य देश है जिसमें निराकार का निवास है । यह सद्संगति गुरुमुखों को प्रेम-रस प्रदान कर उनके अहम् को नष्ट कर देती है ।। १९ ।।

पउड़ी २०

(छः गुरु-स्तुति)

(गुरु) नानकदेव ही सद्गुरु हैं और स्वयं परमेश्वर हैं । इसी गुरु के अंग से गुरु अंगद बने और उनकी ज्योति में इनकी ज्योति प्रविष्ट हुई । गुरु अंगद से अमर पद के अधिकारी सर्वान्तर्यामी गुरु अमरदास हुए । गुरु अमरदास से गुरु रामदास हुए जो अमृत-रस के भोक्ता हुए हैं । रामदास से गुरु शब्द के साथी गुरु अरजनदेव हुए । गुरु अरजन से गुरु गोविंद-रूप गुरु हरिगोबिंद हुए । गुरुमुख व्यक्ति सत्संगति में प्रेम-रस रूपी सुखफल का साक्षात्कार करते हैं । गुरु और गोविंद (परमेश्वर) के बिना इस संसार में अन्य कुछ भी नहीं हैं ।। २० ।। ३८ ।।

* * *

वार ३९

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।।

पउड़ी १

(मंगलाचरण)

एकंकारु इकांग लिखि ऊड़ा ओअंकारु लिखाइआ ।
सतिनामु करता पुरखु निरभउ होइ निरवैरु सदाइआ ।
अकाल मूरति परतखि होइ नाउ अजूनी सैभं भाइआ ।
गुरपरसादि सु आदि सचु जुगह जुगंतरि होंदा आइआ ।
हैभी होसी सचु नाउ सचु दरसणु सतिगुरू दिखाइआ ।
सबदु सुरति लिवलीणु होइ गुरु चेला परचा परचाइआ ।
गुरु चेला रहरासि करि वीह इकीह चड़्हाइ चड़्हाइआ ।
गुरमुखि सुखफलु अलखु लखाइआ ।। १ ।।

पउड़ी १

(मंगलाचरण)

(मूल मंत्र में) उस एकरस परम सत्ता (प्रभु) को पहले एक अंक के रूप में लिखकर फिर उसे पंजाबी में ऊड़ा (उ) अक्षर से ॐकार रूप में लिखा । फिर सत्नाम, कर्त्तापुरुष, निर्भय एवं निर्वैर रूप में उसे पुकारा । फिर कालातीत मूर्ति के रूप में प्रत्यक्ष हो उसे अपना नाम अयोनि एवं स्वयम्भू कहलाना अच्छा लगा है । गुरु के प्रसाद से प्राप्त होनेवाला यह आदि सत्य (रूपी परमात्मा) युगों-युगान्तरों से इसी प्रकार प्रवाहमान है । इसका सत्य नाम है भी और आगे भी सदैव रहेगा । इस सत्य के दर्शन तो सद्गुरु ने कराये हैं । शब्द में सुरति को लीन कर जिसने गुरु-शिष्य के संबंध में प्रेम लगाया है उसी शिष्य ने गुरु की भक्ति कर विषयों से भरे संसार से ऊपर उठकर अपनी सुरति को (प्रभु में) लीन किया है । गुरुमुखों ने सुखफल रूपी अलक्ष्य (प्रभु) का दर्शन कर लिया है ।। १ ।।

पउड़ी २

(पंज गुरू)

निरंकारु अकारु करि एकंकारु अपार सदाइआ ।
ओअंकारु अकारु करि इकु कवाउ पसाउ कराइआ ।
पंज तत परवाणु करि पंज मित्र पंज सत्रु मिलाइआ ।
पंजे तिनि असाध साधि साधु सदाइ साधु बिरदाइआ ।
पंजे एकंकार लिखि अगों पिछीं सहस फलाइआ ।
पंजे अखर परधान करि परमेसरु होइ नाउ धराइआ ।
सतिगुरु नानक देउ है गुरु अंगदु अंगहुँ उपजाइआ ।
अंगद ते गुरु अमरपद अंम्रित राम नामु गुरु भाइआ ।
रामदास गुरु अरजन छाइआ ॥ २ ॥

पउड़ी २

(पाँच गुरु)

निराकार प्रभु आकार धारण कर एकंकार कहलाया (उस एकंकार ने ॐकार का आकार धारण कर एक ही स्फुरण(वाक्) से सारी सृष्टि का प्रसार कर दिया । फिर पाँच तत्त्व बनाये और (जीव के रूप में) पाँच मित्र (सत्य, संतोष, दया आदि) और पाँच शत्रु (काम, क्रोध, आदि) मिला दिये । मानव ने पाँच (विकार) और तीन (गुण-सत्व, रज, तम) असाध्य रोगों को साधा और अपने साधुत्व का विरद पाला । पाँचों गुरुजनों ने एकंकार रूपी वाणी की रचना कर आगे-पीछे (मानव-समाज को) सहस्र प्रकार से फल लगाये अर्थात् फलने-फूलने का राह दिखाया । गुरु रूपों में परमेश्वर ने स्वयं गुरु-नामों के पाँचों अक्षरों को प्रमुखता प्रदान की । (ये नाम) सद्गुरु नानकदेव हैं जिन्होंने गुरु अंगद को अपने अंग से उत्पन्न किया। अंगद से गुरु अमर पद को प्राप्त गुरु अमरदास और फिर इनसे अमृत नाम प्राप्त कर गुरु रामदास लोगों को भाये। रामदास से उनकी छाया के सदृश गुरु अरजनदेव अवस्थित हुए।। २।।

पउड़ी ३

(गुरू हरिगोबिंद साहिब जी)

दसतगीर हुइ पंज पीर हरि गुरु हरि गोबिंदु अतोला ।
दीन दुनी दा पातिसाहु पातिसाहाँ पातिसाहु अडोला ।
पंज पिआले अजरु जरि होइ मसतान सुजाण विचोला ।
तुरीआ चढ़ि जिणि परमततु छिअ वरतारे कोलो कोला ।
छिअ दरसणु छिअ पीढ़ीआँ इकसु दरसणु अंदरि गोला ।
जती सती संतोखीआँ सिध नाथ अवतार विरोला ।
गिआरह रुद्र समुंद्र विचि मरि जीवै तिसु रतनु अमोला ।
बारह सोलाँ मेल करि वीह इकीह चढ़ाउ हिंडोला ।
अंतरजामी बाला भोला ।। ३ ।।

पउड़ी ३

(गुरु हरिगोबिंद साहिब जी)

पहले पाँचों पीर (गुरु) लोगों का हाथ थापनेवाले हुए है और यह (छठवाँ) हरिगोविंद हरि-रूप एवं अतुलनीय है । यह धर्म (आध्यात्मिकंता) और दुनिया (सांसारिकता) का बादशाह और वस्तुतः बादशाहों का भी अडिग बादशाह है। यह पहले पाँच प्यालों (गुरुजनों)के असहनीय ज्ञान को आत्मसात् कर अन्तर्मन से सुजान एवं भावविभोर अवस्था में स्थित है । आसपास छः मतों के व्यवहारों के होते हुए भी इसने तुरीय अवस्था में पहुँचकर परमतत्त्व को प्राप्त कर लिया है । इसने छः सम्प्रदायों के छः दर्शनों को एक ही दर्शन में पिरो दिया है । यति, सत्याचारी, संतोषियों, सिद्ध-नाथों एवं अवतारों (के जीवनतत्व) का मंथन इसने किया है । समुद्र में ही ग्यारहों रुद्र होते हैं पर जो मौत में भी जीवन अनुभव करनेवाला (गोताखोर) होता है वही अमूल्य रत्नों को प्राप्त करता है । सूर्य की बारह राशियों, चन्द्रमा की सोलह कलाओं और समस्त संसार के व्यवहार ने इसके लिए अपना (सुन्दर) हिंडोला तैयार किया है और यह (गुरु) भोला पर अन्तर्यामी है (और उस हिंडोले का आनन्द ले रहा है) ।। ३ ।।

पउड़ी ४

(गुरू चरणोदक-महिमा)

गुर गोविंदु खुदाइ पीर गुरु चेला चेला गुरु होआ ।
निरंकार आकारु करि एकंकारु अकारु पलोआ ।
ओअंकारि अकारि लख लख दरीआउ करेंदे ढोआ ।
लख दरीआउ समुंद्र विचि सत समुंद्र गड़ाड़ि समोआ ।
लख गड़ाड़ि कड़ाह विचि त्रिसना दझहिं सीख परोआ ।
बावन चंदन बूँद इकु ठंढे तते होइ खलोआ ।
बावन चंदन लख लख चरण कवल चरणोदकु होआ ।
पारब्रहमु पूरन ब्रहमु आदि पुरखु आदेसु अलोआ ।
हरिगोविंद गुर छत्रु चँदोआ ॥ ४ ॥

पउड़ी ५

(उपकारी महाँ पुरख)

सूरज दै घरि चंद्रमा वैरु विरोधु उठावै केतै ।
सूरज आवै चंद्रि घरि वैरु विसारि समालै हेतै ।

पउड़ी ४

(गुरु-चरणोदक-महिमा)

गुरु हरिगोबिंद गुरु-रूप परमेश्वर है । यह पहले स्वयं शिष्य था, अब गुरु है अर्थात् पहले के गुरु और गुरु हरिगोबिंद एक ही रूप हैं । निराकार (प्रभु)ने पहले एकंकार (सद्गुरु) का आकार धारण किया और फिर गुरु के आकार में परिवर्तित हुआ । ॐकार के आकार (गुरु) में लाखों (जीवन) धाराएँ आश्रय लेती हैं । समुद्र में लाखों दरिया और सातों समुद्र महासागरों में विलीन हो जाते हैं । ऐसे लाखों महासागरों की तृष्णा रूपी बड़वाग्नि की कड़ाही में करोड़ों जीव लौहशलाकाओं से बिंधे जल-भुन रहे हैं । ये सभी जलनेवाले जीव (गुरु रूपी) बावन चंदन के रस की एक बूँद से ही शांत हो जाते हैं । इस प्रकार के लाखों बावन चंदन गुरु के चरणोदक से उत्पन्न हुए हैं । जिस हरिगोबिंद के सिर पर गुरु-छत्र है वही परब्रह्म, पूर्ण परब्रह्म है । ऐसे आदिपुरुष को प्रणाम है ।। ४ ।।

पउड़ी ५

(उपकारी महापुरुष)

(ज्योतिष विद्या के अनुसार) जब चन्द्रमा सूर्य के घर में आ जाए

जोती जोति समाइ कै पूरन परम जोति चिति चेतै ।
लोक भेद गुणु गिआनु मिलि पिरम पिआला मजलस भेतै ।
छिअ रुती छिअ दरसनाँ इकु सुरजु गुर गिआनु समेतै ।
मजहब वरन सपरसु करि असत धातु इकु धातु सु खेतै ।
नउ घर थापे नवै अंग दसमाँ सुंन लँघाइ अगेतै ।
नील अनील अनाहदो निझरु धारि अपार सनेतै ।
वीह इकीह अलेख लेख संख असंख न सतिजुगु त्रेतै ।
चारि वरन तंबोल रस देव करेंदा पसू परेतै ।
फकर देस किउँ मिलै दमेतै ।। ५ ।।

तो अनेकों बैर-विरोध उठ खड़े होते हैं । यदि सूर्य चन्द्र के घर में प्रवेश कर जाए तो शत्रुता विस्मृत हो जाती है और हित का विचार उठता है । परन्तु (गुरुमुख व्यक्ति) उस परम ज्योति के साथ तादात्म्य स्थापित कर सदैव उस परम ज्योति को ही चित्त में धारण किये रहता है। ये व्यक्ति सांसारिक व्यवहार, शास्त्रज्ञान आदि के रहस्य को समझकर मज्लिस (साधुसंगति) में प्रेमरस के प्याले को पीते हैं । जैसे छः ऋतुएँ एक ही सूर्य के कारण हैं वैसे ही छः दर्शन भी एक ही गुरु (परमात्मा) के समेकित ज्ञान का फल हैं । जैसे अष्टधातुएँ एक (पारस) से स्पर्श कर कंचन हो जाती हैं वैसे ही गुरु के मिलने पर सभी वर्ण एवं मजहब एक गुरुपंथ के अनुयायी बन जाते हैं । नौ अंगों को नवघर (गोलक) बनाया है, परन्तु जब जीव दसवें शून्य (द्वार) को समझता है तभी इन नौ का विस्तार होता है और जीव आगे बढ़कर प्रभु-चरणों में लीन होता है । शून्य को समझ लेने से यह जीव नील, अनील की असंख्य गणनाओं की तरह हो जाता है । और उसके प्रेम के निर्झर धारा का आनन्द लेता है । फिर यह जीव बीस, इक्कीस, शख, असंख्य, सतियुग, त्रेतायुग आदि के लेखों से अलेख हो जाता है अर्थात् आवागमन से छूट जाता है । यह (परोपकारी पुरुष गुरु) पशु-प्रेतों को भी वैसे ही देवता बना देता है जैसे चार वस्तुएँ पान में एक रस एवं सुन्दर बन जाती हैं। यह बेगम पुरा (देश) भला दामों से कैसें मिल सकता है ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(सचहुँ ओरै सभ किहु)

चारि चारि मजहब वरन छिअ दरसन वरतै वरतारा ।
सिव सकती विच वणज करि चउदह हट साहु वणजारा ।
सचु वणजु गुरु हटीऐ साधसंगति कीरति करतारा ।
गिआन धिआन सिमरन सदा भाउ भगति भउ सबदि बिचारा ।
नामु दानु इसनानु द्रिड़ गुरमुखि पंथु रतन वापारा ।
परउपकारी सतिगुरू सच खंडि वासा निरंकारा ।
चउदह विदिआ सोधि कै गुरमुखि सुखफलु सचु पिआरा ।
'सचहुँ ओरै सभ किहु' उपरि गुरमुखि सचु आचारा ।
चंदन वासु वणासपति गुरु उपदेसु तरै सैसारा ।
अपिउ पीअ गुरमति हुसीआरा ॥ ६ ॥

पउड़ी ६

(सब कुछ सत्य से नीचे)

(मुसलमानों के) चार मजहब, (हिन्दुओं के) चार वर्ण एवं छः दर्शनों का व्यवहार संसार में चल रहा है । शिवशक्ति अथवा माया उद्‌भूत चौदह लोकों की दुकानों में वह साहूकार (प्रभु) स्वयं ही व्यापार कर रहा है । सच्चा सौदा तो गुरु की हाट रूपी सत्संगति में है जहाँ उस कर्त्ता प्रभु का कीर्ति-गायन होता है । वहाँ सदैव ज्ञान, ध्यान, स्मरण, प्रेमाभक्ति प्रभु-भय एवं शब्द पर विचार होता है । नाम, दान, स्नान में दृढ़ गुरुमुख व्यक्ति वहाँ (गुण रूपी) रत्नों का लेन-देन करते हैं । सद्‌गुरु परोपकारी है और उसके सत्यदेश में निराकार प्रभु का निवास है । गुरुमुखों ने चौदहों विद्याओं की साधना कर उनमें से सत्य के प्रति प्रेम को ही सुखफल जाना है । सब कुछ सत्य से नीचे है परन्तु गुरुमुखों के लिए सत्य से भी ऊँचा सत्याचरण है । जिस प्रकार चन्दन की संगुध वनस्पति को सुगंधित करनेवाली होती है, उसी प्रकार गुरु के उपदेश से सारा संसार पार उतर जाता है । गुरुमत के अपेय (न पिये जा सकनेवाले) अमृत का पान कर जीव चैतन्यभाव को प्राप्त कर कुशल हो जाते हैं (वे अन्य नशे पीने की तरह अचेतन नहीं होते)।। ६।।

पउड़ी ७

(गुरमुखाँ विच गुरू बरतदा है)

अमली सोफी चाकराँ आपु आपणे लागे बंनै ।
महरम होइ वजीर सो मंत्र पिआला मूलि न मंनै ।
ना महरम हुसिआर मसत मरदानी मजलस करि भंनै ।
तकरीरी तहरीर विचि पीर परसत मुरीद उपंनै ।
गुरमति अलखु न लखीऐ अमली सूफी लगनि कंनै ।
अमली जाणनि अमलीआँ सोफी जाणनि सोफी वंनै ।
हेतु वजीरै पातिसाह दोइ खोड़ी इकु जीउ सिधंनै ।
जिउ समसेर मिआन विचि इकतु थेकु रहनि दुइ खंनै ।
वीह इकीह जिवैं रसु गंनै ।। ७ ।।

पउड़ी ७

(गुरुमुखों में गुरु ही व्यवहरित होता है)

नशेड़ी और नशा न करनेवाला नौकर दोनों ही नौकरी में लग गये । हरम तक पहुँच रखनेवाला मंत्री नशेड़ी नौकर की दी गई सलाह (मंत्रणा) को बिलकुल ही नहीं मानता । जो नशे में मस्त होता है वह चाहे कितना ही शक्तिशाली पुरुष हो, कौशलहीन होने के कारण उसके पुरुषत्व का अभिमान दरबार में मंत्री द्वारा तोड़ा जाता है अर्थात् उसकी निन्दा ही होती है । लिखने और बोलने में (इसी मंत्री की भाँति नीर-क्षीर-विवेक करनेवाले) गुरु की वंदना करनेवाले शिष्य (गुरुसिक्ख) (गुरु द्वारा) पैदा किये गये हैं । जिन (धन-दौलत के) नशेड़ियों ने गुरुमत के माध्यम से उस अलक्ष्य प्रभु का साक्षात्कार नहीं किया, वे समझ लो कभी नशा-सेवन न करनेवाले (सत्संगियों) के पास नहीं बैठे। जैसे नशेड़ी तो केवल नशेबाजों को ही जानते हैं वैसे ही नशा न करने वाले (सूफ़ी) भी अपने सदृश (सूफ़ियों) के पास ही जाते हैं । सम्राट् और मंत्री का स्नेह ऐसा होता है मानों दो शरीरों में एक ही प्राण हो (इसी प्रकार गुरुमुख व्यक्ति और गुरु का संबंध है ।) ये संबंध तलवारों और म्यानों जैसा भी है (तलवारें बेशक हों अलग-अलग पर एक ही धातु की बनी होती हैं)। गुरुमुखों का संबंध ऐसा ही है जैसा गन्ने का सब रस गन्नों से होता है ।। ७ ।।

पउड़ी ८

(रसीए गुरसिक्ख ते फोकट गिआनी)

चाकर अमली सोफीआँ पातिसाह दी चउकी आए ।
हाजर हाजराँ लिखीअनि गैरहाजर गैरहाजर लाए ।
लाइक दे विचारि कै विरलै मजलस विचि सदाए ।
पातिसाहु हुसिआर मसत खुश फहिमी दोवै परचाए ।
देनि पिआले अमलीआँ सोफी सभि पीआवण लाए ।
मतवाले अमली होए पी पी चढ़े सहजि घरि आए ।
सूफी मारनि टकराँ पूज निवाजै सीस निवाए ।
वेद कतेब अजाब विचि करि करि खुदी बहस बहसाए ।
गुरमुखि सुख फलु विरला पाए ॥ ८ ॥

पउड़ी ८

(रसिक गुरुसिक्ख एवं खोखले ज्ञानी)

नशेबाज़ और नशा न करनेवाले दोनों ही (प्रभु) सम्राट् की नौकरी बजाने उसके समक्ष आये। (प्रभु-दरबार में) हाजिर लोगों को हाजिर और गैरहाजिरों को अनुपस्थित लिखा जाता है अर्थात् शरीर से उपस्थित पर मन से अनुपस्थित को अनुपस्थित ही माना जाता है। सम्राट् बहुत चतुर है उसने दोनों प्रकार के व्यक्तियों को मस्त कर दिया और दोनों को काम पर लगा दिया। (प्रभु-नाम के) नशेबाजों को पिलाने के लिए सूफ़ियों अर्थात् तथाकथित पवित्र जीवन जीनेवाले ढोंगी धर्म प्रचारकों को लगा दिया अर्थात् वे उपदेश करने लगे। (प्रभु-नाम के) नशेबाज तो प्रभु के नाम में मतवाले हो गये, तथा सहज भाव में स्थित हो गये परन्तु तथाकथित सूफ़ी केवल पूजा, नमाज में ही जीवन भर उलझे रहे। वेद-कतेब भी उनके सामने मुश्किल में पड़ गये। ये लोग इन पर वाद-विवाद कर-करके अपने अहंकार को ही बढ़ाते रहे। कोई विरला गुरुमुख ही सुखफल को प्राप्त करता है ।। ८ ।।

पउड़ी ९

(रसीए, फोकट गिआनीआँ नूँ रस देंदे हन, पर उन्हाँ दी नाँह)

बहै झरोखे पातिसाह खिड़की खोल्हि दीवान लगावै ।
अंदरि चउकी महल दी बाहरि मरदामा मिलि आवै ।
पीऐ पिआला पातिसाहु अंदरि खासाँ महलि पीलावै ।
देवनि अमली सूफीआँ अवलि दोम देखि दिखलावै ।
करे मनाह शराब दी पीऐ आपु न होरु सुखावै ।
उलस पिआला मिहर करि विरले देइ न पछोतावै ।
किहु न वसावै किहै दा गुनह कराइ हुकमु बखसावै ।
होरु न जाणै पिरम रसु जाणै आप कै जिसु जणावै ।
विरले गुरमुखि अलखु लखावै ।। ९ ।।

पउड़ी ९

(प्रभु रसिकों को ही प्रेम-रस देता है)

बादशाह (प्रभु) झरोखे (सत्संगति) में बैठकर दरबार लगाता है । अंदर तो विशिष्ट अंतरंग लोगों का समूह है परन्तु बाहर सामान्य लोग एकत्र रहते हैं । सम्राट् (प्रभु) स्वयं (प्रेम का) प्याला पीता है और विशिष्ट व्यक्तियों को अपने महल के अन्दर पिलाता है । वह नशेबाजों (प्रेमियों) और सूफियों (तथाकथित धार्मिक व्यक्तियों) को प्रथम-द्वितीय श्रेणी क्रम में देखकर स्वयं बाँटता है । तथाकथित धार्मिक व्यक्ति (कर्मकांड तो समझाता है पर) प्रेम की शराब न स्वयं पीता है और न ही दूसरों को पीने देता है । वह प्रभु प्रसन्न होकर अपना (प्रेम) प्याला विरले रसिकों को देता जाता है और तनिक भी पछताता नहीं । उस प्रभु के सामने किसी का जोर नहीं चलता । जीव गुनाह करते हैं पर प्रभु के "हुक्म" के अंतर्गत ही उनके पाप क्षमा किये जाते हैं । अन्य कोई भी प्रेम-रस के रहस्य को नहीं बूझता; केवल वही जानता है जिसे वह प्रभु स्वयं जनवाता है । कोई विरला गुरुमुख उस अलक्ष्य प्रभु का दर्शन करता है ।। ९ ।।

पउड़ी १०

(बे-अमलीआँ, फोकट गिआनीआँ दा हाल)

वेद कतेब वखाणदे सूफी हिंदू मुसलमाणा ।
मुसलमाण खुदाइ दे हिंदू हरि परमेसुरु भाणा ।
कलमाँ सुंनत सिदक धरि पाइ जनेऊ तिलकु सुखाला ।
मका मुसलमान दा गंग बनारस दा हिंदुवाणा ।
रोज़े रखि निमाज़ करि पूजा वरत अंदरि हैराणा ।
चारि चारि मजहब वरन छिअ घरि गुरू उपदेसु वखाणा ।
मुसलमान मुरीद पीर गुरु सिखी हिंदू लोभाणा ।
हिंदू दस अवतार करि मुसलमाण इको रहिमाणा ।
खिंजोताणु करेनि धिङाणा ॥ १० ॥

पउड़ी ११

(ख़ास अमली-रसीआँ दा हाल)

अमली खासे मजलसी पिरमु पिआला अलखु लखाइआ ।
माला तसबी तोड़ि कै जिउ सउ तिवै अठोतरु लाइआ ।

पउड़ी १०

(नशा-विहीन खोखले ज्ञानियों का हाल)

(प्रभु-) प्रेम-विहीन हिन्दू और मुसलमान क्रमश: वेदों और कतेबों का बखान करते हैं। मुसलमान खुदा के बंदे हैं और हिन्दुओं को हरि परमेश्वर अच्छा लगता है। मुसलमानों का यकीन कलमा और सुन्नत पर है और हिन्दुओं को जनेऊ, तिलक सुखदायक लगता है। मुसलमानों का (तीर्थ) मक्का है और हिन्दुओं का गंगा पर स्थित बनारस (तीर्थ) है। वे रोज़े और नमाज अदा करते हैं। इधर (हिन्दू) पूजा और व्रतों में ही परेशान हैं। इन दोनों के चार-चार मज़हब और वर्ण हैं। हिन्दुओं के छ: दर्शन और उनके विभिन्न उपदेश भी हैं। मुसलमानों में मुरीद और पीर की परम्परा है परन्तु हिन्दू गुरु-शिष्य-परम्परा का लोभी है। हिन्दुओं के दस अवतार हैं और उधर मुसलमानों का एक ही रहमान (खुदा) है। ये दोनों व्यर्थ मूर्खतापूर्ण खींचतान लगाये हुए हैं ।। १० ।।

पउड़ी ११

(विशिष्ट रसिकों का हाल)

मज्लिस (सत्संगति) के विशिष्ट रसिकों ने प्रेमप्याले के माध्यम

मेरु इमामु रलाइ कै रामु रहीमु न नाउँ गणाइआ ।
दुइ मिलि इकु वजूदु हुइ चउपड़ सारी जोड़ि जुड़ाइआ ।
सिव सकती नो लंघि कै पिरम पिआले निज घरि आइआ ।
राजसु तामसु सातको तीनो लंघि चउथा पदु पाइआ ।
गुर गोविंद खुदाइ पीरु गुरसिख पीरु मुरीदु लखाइआ ।
सचु सबद परगासु करि सबदु सुरति सचु सचि मिलाइआ ।
सचा पातिसाहु सचु भाइआ ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(सतिगुरू निवास, सतिसंग विच्च)

पारब्रहमु पूरन ब्रहमु सतिगुरु साधसंगति विचि वसै ।
सबदि सुरति अराधीऐ भाइ भगति भै सहजि विगसै ।
ना ओहु मरै न सोगु होइ देंदा रहै न भोगु विणसै ।
गुरू समाणा आखीऐ साधसंगति अबिनासी हसै ।

से अलक्ष्य को लख लिया है, अनुभव कर लिया है । वे माला और तसबी (मुसलमानी माला) का बंधन तोड़ देते हैं और उनके लिए सौ और एक सौ आठ मनके, दोनों ही एक जैसे हैं । वे मेरु (हिन्दूमाला का अंतिम मनका) और इमाम (मुसलमानी माला का अंतिम मनका) मिला देते हैं और राम-रहीम के नाम में अन्तर नहीं गिनते । वे दोनों को मिलाकर एक अस्तित्व के रूप में देखते हैं और इस संसार को चौपड़ की बिछी हुई बाजी समझते हैं । शिवशक्ति के मायावी प्रपंच को लाँघकर प्रेम का प्याला पीकर वे निज स्वरूप में स्थित होते हैं । रज, तमस और सत्त्व तीनों को पार कर वे चौथे तुरीय पद को प्राप्त करते हैं । गुरु, गोविंद, खुदा और पीर एक ही हैं और गुरु का सिक्ख पीर-मुरीद दोनों के अन्तर्निहित सत्य को देखता-पहचानता है । वह सत्य शब्द का प्रकाश कर शब्द में सुरति लीन कर अपने सत्य को उस परमसत्य में मिला देता है । उन्हें सच्चा सम्राट् (प्रभु) और सत्य ही भाता है ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(सद्गुरु का निवास सद्संगति में)

सद्गुरु परब्रह्म अथवा पूर्णब्रह्म और उसका निवास साधुसंगति में है । शब्द में सुरति लीन करके उसकी आराधना की जाती है और प्रेम, भक्ति एवं भय को मन में धारण करने से वह सहज रूप से ही प्रसन्न हो उठता है ।

छेवीं पीढ़ी गुरू दी गुरसिखा पीढ़ी को दसै ।
सचु नाउँ सचु दरसनो सचखंड सतिसंगु सरसै ।
पिरम पिआला साधसंगि भगतिवछलु पारसु परसै ।
निरंकारु अकारु करि होइ अकाल अजोनी जसै ।
सचा सचु कसौटी कसै ॥ १२ ॥

पउड़ी १३

(सतिसंग-सच्चखंड है)

ओअंकार अकारु करि त्रै गुण पंज तत उपजाइआ ।
ब्रहमा बिसनु महेसु साजि दस अवतार चलित वरताइआ ।
छिअ रुति बारह माह करि सतिवार सैंसार उपाइआ ।
जनम मरन दे लेख लिखि सासत्र वेद पुराण सुणाइआ ।

वह न मरता है, न शोकाकुल होता है। वह सदैव (दान) देता रहता है और न तो भोगा जा सकता है और न ही उसका नाश होता है। लोग गुरु को समा गया (गुजर गया) कहते हैं, परन्तु साधुसंगति तो उसे अविनाशी मानती है और लोगों के इस कथन पर हँसती हैं अर्थात् गुरु साधुसंगति में सदैव विराजमान है। गुरु (हरिगोबिंद) की तो छठवीं पीढ़ी है, गुरुसिक्खों की कितनी पीढ़ियाँ चल रही हैं भला कौन बताये? सत्य नाम, सच्चा दर्शन, सत्य देश आदि भाव सत्संग में ही प्रफुल्लित होते हैं । साधुसंगति में ही प्रेम का प्याला पिया जाता है और वहीं पर भक्तवत्सल परमात्मा (पारस) का स्पर्श प्राप्त किया जाता है । सत्संगति में ही निराकार आकार धारण करता है और अकाल और वहीं पर अयोनि सत्ता का गुणानुवाद होता है । वहाँ सत्य ही है और प्रत्येक को सत्य की कसौटी पर कसा जाता है ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(सत्संग-सत्यदेश है)

परमात्मा ने ॐकार रूप धारण कर तीनों गुण एवं पाँचों तत्त्व उत्पन्न किये। ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश का सृजन कर दस अवतारों की लीलाएँ कीं । छः ऋतुएँ, बारह माह बनाकर सात-वार (दिन) और सारा संसार बनाया । फिर जन्म-मरण का लेखा लिखकर शास्त्र, वेद, पुराणादि सुनाए ।

साधसंगति दा आदि अंतु थित न वारु न माहु लिखाइआ ।
साधसंगति सचु खंडु है निरंकारु गुरु सबदु वसाइआ ।
बिरखहुँ फलु फल ते बिरखु अकलकला करि अलखु लखाइआ ।
आदि पुरखु आदेसु करि आदि पुरखु आदेसु कराइआ ।
पुरखु पुरातनु सतिगुरू ओत पोति इकु सूत्र बणाइआ ।
विसमादै विसमादु मिलाइआ ॥ १३ ॥

पउड़ी १४

(ब्रहमा दे करतव्व)

ब्रहमे दिते वेद चारि चारि वरन आसरम उपजाए ।
छिअ दरसन छिअ सासता छिअ उपदेस भेस वरताए ।
चारे कुंडाँ दीप सत नउ खंड दहदिसि वंड वंडाए ।
जल थल वण खंड परबताँ तीरथ देवसथान बणाए ।
जप तप संजम होम जग करम धरम करि दान कराए ।

साधुसंगति के प्रारम्भ और अन्त के बारे में न तो किसी तिथि और न ही किसी दिन और मास आदि के बारे में बताया । साधुसंगति ही सत्य देश है जिसमें गुरु शब्द के रूप में निराकार (परमात्मा) निवास करता है । वृक्ष से फल और फल से पुनः वृक्ष उत्पन्न कर अर्थात् गुरु से शिष्य और शिष्य से पुनः गुरु बनाकर परमात्मा ने अपने सर्वकला सम्पूर्ण अलक्ष्य स्वरूप का साक्षात्कार करा दिया है । गुरुज़नों ने स्वयं उस आदि पुरुष (परमात्मा) को प्रमाण किया और अन्यों द्वारा भी उसे ही प्रणाम करवाया । सद्‌गुरु तो प्राचीनतम (आदि) पुरुष है जो इस रचना में (माला के) सूत्र की तरह ओत-प्रोत है । गुरु स्वयं विस्मय है और उस परम विस्मय में मिला हुआ है ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(ब्रह्मा के कार्य)

ब्रह्मा ने चार वेद दिए और चार वर्ण तथा चार आश्रम (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास) बनाए। (रचयिता होने के नाते) उसने छः दर्शनों के छः उपदेश और वेश प्रचारित किए । उसने चारों कोने, सातों द्वीप, नव खंड और दसों दिशाओं में संसार को बाँटा। जल, स्थल, वन्य प्रदेश, पर्वत, तीर्थ, देवस्थान आदि बनाए। जप, तप, संयम, होम, यज्ञ, कर्म, धर्म, दान आदि की परम्पराएँ बनाईं ।

निरंकारु न पछाणिआ साधसंगति दसै न दसाए ।
सुणि सुणि आखणु आखि सुणाए ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(बिशनू दे करतव्य)

दस अवतारी बिसन होइ वैर विरोध जोध लड़वाए ।
देव दानव करि दुइ धड़े दैत हराए देव जिणाए ।
मछ कछ वैराह रूप नरसिंघ बावन बौध उपाए ।
परसरामु राम क्रिसनु होइ किलक कलंकी नाउ गणाए ।
चंचल चलित पखंड बहु वल छल करि परपंच वधाए ।
पारब्रहमु पूरन ब्रहमु निरभउ निरंकारु न दिखाए ।
खत्री मारि संघारु करि रामायण महाभारत भाए ।
काम करोधु न मारिओ लोभु मोहु अहंकारु न जाए ।
साधसंगति विणु जनमु गवाए ।। १५ ।।

उसने भी निराकार परमात्मा को नहीं पहचाना, क्योंकि परमात्मा के बारे में साधुसंगति ही बताती है लेकिन वहाँ जाकर कोई पूछता नहीं। लोग सुन-सुनकर ही बातें करते-सुनते हैं (कोई स्वयं अनुभव के मार्ग पर नहीं चलता) ।। १४ ।।

पउड़ी १५

(विष्णु के कार्य)

विष्णु ने दस अवतारों में परस्पर वैर-विरोध रखनेवाले योद्धागण लड़वाए । देव और दानव नामक दो पक्ष बनाए और उनमें से देवों को जिताया और दैत्यों को हराया । उसने मत्स्य, कच्छप, वराह, नरसिंह, वामन, बुद्ध पैदा किए । परशुराम, राम, कृष्ण, कल्कि-अवतार आदि नाम गिनवाए । इन्होंने प्रभु के चंचल-प्रपंची चरित्र के माध्यम से अनेकों छल, कपटों और प्रपंचों को बढ़ाया । परब्रह्म, पूर्णब्रह्म अभय निरंकार का साक्षात्कार नहीं कराया गया । क्षत्रियों का संहार कराया, रामायण-महाभारत आदि ग्रंथों की रचना की जो लोगों को भाती रही । काम, क्रोध नहीं मारा गया और लोभ, मोह तथा अहंकार आदि दूर नहीं हुए । साधुसंगति के बिना जन्म व्यर्थ ही गँवाया ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(शिव दे करतव्व)

इकदू गिआरह रुद्र होइ घरबारी अउधूतु सदाइआ।
जती सती संतोखीआँ सिध नाथ करि परचा लाइआ।
संनिआसी दस नाँव धरि जोगी बारह पंथ चलाइआ।
रिधि सिधि निधि रसाइणाँ तंत मंत चेटक वरताइआ।
मेला करि सिवरात दा करामात विचि वादु वधाइआ।
पोसत भंग सराब दा चलै पिआला भुगत भुंचाइआ।
वजनि बुरगू सिङीआँ संख नाद रहरासि कराइआ।
आदि पुरखु आदेसु करि अलखु जगाइ न अलखु लखाइआ।
साधसंगति विणु भरमि भुलाइआ ॥ १६ ॥

पउड़ी १७

(सच्ची रहुरीति ते मुकति मारग)

निरंकारु आकारु करि सतिगुरु गुराँ गुरू अबिनासी।
पीराँ पीरु वखाणीऐ नाथाँ नाथु साधसंगि वासी।

पउड़ी १६

(शिव के कार्य)

एक से ग्यारह तक हो जानेवाले रुद्र (शिव) घरबारी होकर भी अवधूत कहलवाए। उन्होंने यति, सत्याचारी, संतोषी, सिद्ध, नाथ आदि व्यक्तियों से स्नेह किया। संन्यासियों ने भी दस नाम रख दिए और योगियों ने बारह पंथ चलाए। ऋद्धियों, सिद्धियों, निधियों, रसायन, तंत्र, मंत्र आदि प्रपंचों का व्यवहार करवाया। शिवरात्रि का अवसर मेले के रूप में मनाया जाने लगा जिससे करामातें और वाद-विवाद बढ़े। पोस्त, भाँग, शराब आदि पदार्थों का प्याला चखा-भोगा जाने लगा। वायु फूँक कर बजाए जानेवाले वाद्य सिंगीनाद और शंखनाद की मर्यादा प्रचलित हो गई। आदिपुरुष परमात्मा को न तो प्रणाम किया गया और न ही अलख जगाकर उस अलक्ष्य परमात्मा का साक्षात्कार किया गया । साधुसंगति बिना सभी भ्रमों में भूले रहे ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(सच्ची मर्यादा और मुक्ति-मार्ग)

निराकार ने आकार धारण किया और सद्गुरु (नानकदेव) गुरुओं

गुरमुखि पंथु चलाइआ गुरसिखु माइआ विचि उदासी ।
सनमुखि मिलि पंच आखीअनि बिरदु पंच परमेसुरु पासी ।
गुरमुखि मिलि परवाण पंच साधसंगति सच खंड बिलासी ।
गुर दरसन गुरसबद है निज घरि भाइ भगति रहरासी ।
मिठा बोलणु निव चलणु खटि खवालणु आस निरासी ।
सदा सहजु बैरागु है कली काल अंदरि परगासी ।
साधसंगति मिलि बंद खलासी ।। १७ ।।

पउड़ी १८

(गुरमुख पीढ़ी)

नारी पुरखु पिआरु है पुरखु पिआर करेंदा नारी ।
नारि भतारु संजोग मिलि पुत सुपुतु कुपुतु सैंसारी ।
पुरख पुरखाँ जो रचनि ते विरले निरमल निरंकारी ।
पुरखहुँ पुरख उपजदा गुरु ते चेला सबद वीचारी ।

का भी अविनाशी गुरु है । उसे पीरों का पीर कहा जाता है और नाथों का भी नाथ, वह साधुसंगति में बसता है । उसने गुरुमुख पंथ चलाया है और गुरु के सिक्ख माया में भी निर्लिप्त बने रहते हैं । जो सम्मुख होकर (गुरु को) मिलते हैं उन्हें पंच (मिले पुरुष) कहा जाता है, और ऐसे पंचों को बिरद परमेश्वर पालता है । गुरुमुखों को मिलकर ऐसे पंच (मिले लोग) स्वीकृत हो जाते हैं और साधुसंगति रूपी सत्यदेश में विहार करते हैं । गुरु-शब्द ही गुरु का दर्शन है और अपने स्वरूप में स्थित होकर ही प्रेमाभक्ति की मर्यादा निभाती है । इस मर्यादा के अन्तर्गत मीठा बोलना, विनम्र हो चलना, कमाई करके खिलाना और आशाओं में भी उदासीन बने रहना आता है । कलियुग में यही मर्यादा उचित मानी जाती है कि सदैव सहज वैराग्य भाव में रहा जाए । साधु संगति से मिलकर ही छुटकारा होता है अर्थात् आवागमन से छूट जाता है ।। १७ ।।

पउड़ी १८

(गुरुमुख पीढ़ी)

स्त्री का पुरुष से प्रेम है और पुरुष भी स्त्री को प्यार करता है । पति-पत्नी के संयोग से संसार में पुत्र, सुपुत्र एवं कुपुत्र पैदा होते हैं, जो पुरुषों के पुरुष परमात्मा में लीन बने रहते हैं वे निर्मल एवं निराकारी पुरुष विरले ही होते हैं ।

पारस होआ पारसहुँ गुर चेला चेला गुणकारी ।
गुरमुखी वंसी परमहंस गुरसिख साध से परउपकारी ।
गुरभाई गुरभाईआँ साक सचा गुर वाक जुहारी ।
पर तनु पर धनु परहरे निंदा हउमै परहारी ।
साधसंगति विटहुँ बलिहारी ॥ १८ ॥

पउड़ी १९

(गुरसिक्खी दा साक सच्चा साक है)

पिउ दादा पड़दादिअहुँ पुत पोता पड़पोता नता ।
माँ दादी पड़दादीअहुँ फुफी भैण धीअ सणखता ।
नाना नानी आखीऐ पड़नाना पड़नानी पता ।
ताइआ चाचा जाणीऐ ताई चाची माइआ मता ।
मामे तै मामाणीआँ मासी मासड़ दै रंग रता ।

परमपुरुष से पुरुष की उत्पत्ति वैसे ही होती है जैसे शब्द के चिन्तन के फलस्वरूप गुरु से (सच्चा) शिष्य पैदा होता है । पारस से पारस पैदा होता है अर्थात् गुरु से चेला और वही चेला गुणकारी (गुरु) बन जाता है । गुरुमुख परमहंसों की वंश-परम्परा में होते हैं अर्थात् परम पवित्र होते हैं । गुरु के सिक्ख साधुओं की तरह परोपकारी होते हैं । गुरुभाई का गुरुभाई से सच्चा संबंध होता है और वे गुरु-वचन के माध्यम से ही परस्पर प्रणाम करते हैं । उन्होंने पराया तन, धन, निन्दा एवं अहम्भाव को दूर कर त्याग दिया है। (ऐसा कर देनेवाली) साधुसंगति पर मैं बलिहारी जाता हूँ ।। १८ ।।

पउड़ी १९

(गुरुसिक्खी का रिश्ता सच्चा रिश्ता है)

पिता, दादा और परदादा से क्रमशः पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र और प्रपौत्र से "नत्त" अथवा नाती होता है । माँ, दादी, परदादी, बुआ, बहन, पुत्री एवं बहू का रिश्ता भी संसार में माना जाता है । नाना, नानी भी कहे जाते हैं और परनाना, परनानी भी जाने जाते हैं । ताऊ, चाचा, ताई एवं चाची आदि भी माया में लीन (देखे समझे जाते) हैं । मामा-मामी, मौसी, मौसा सब (अपने) रंग में रँगे हुए हैं ।

मासड़ फुफड़ साक सभ सहुरा सस साली सालता ।
ताएर पितीएर मेलु मिलि मउलेर फुफेर अवता ।
साढू कुड़मु कुटंब सभ नदी नाव संजोग निसता ।
सचा साक न विछड़ै साधसंगति गुर भाई भता ।
भोग भुगति विच जोग जुगता ॥ १९ ॥

पउड़ी २०

(सतिगुरू दा पिचार)

पीउ दे नाँह पिआर तुलि ना फुफी ना पितीए ताए ।
माऊ हेतु न पुजनी हेतु न मामे मासी जाए ।
अंबाँ सधर न उतरै आणि अंबाकड़ीआँ जे खाए ।
मूली पान पटंतरा वासु डिकारु परगटीआए ।
सूरज चंद न पुजनी दीवे लख तारे चमकाए ।
रंग मजीठ कुसुंभ दा सदा सथोई वेसु वटाए ।

मौसा, फूफा, ससुर, सास, साली, आदि सभी दुविधाजनक संबंध कहे जाते हैं । ताऊ और चाचा के पुत्र तथा मामा, फूफा के पुत्रों का संबंध भी टेढ़ा ही होता है। साढू, समधी आदि के संबंध नदी में नाव पर सवार मुसाफिरों के झुंड के परस्पर संबंधों की तरह क्षणिक अथवा झूठे हैं । सच्चा संबंध तो उन भाइयों से होता है जो साधुसंगति में मिलते हैं । ये कभी नहीं बिछुड़ते । गुरुमुख व्यक्ति साधुसंगति के माध्यम से भोग में भी योग की युक्ति सीख लेते हैं ।। १९ ।।

पउड़ी २०

(सद्गुरु का प्यार)

यह प्यार पिता के, बुआ के अथवा चचेरे भाइयों के प्यार के समान नहीं हैं। माँ का प्यार भी वहाँ तक नहीं पहुँचता और मामा, मौसी की संतानों का भी उतना प्यार नहीं है । आम के बौर को खाने से आम खाने की इच्छा पूर्ण नहीं होती । मूली के पत्तें और पान की गंध की बराबरी नहीं हो सकती, क्योंकि डकार अपने पर भेद खुल जाता है । लाखों दीपक और तारागण प्रकाशित होने पर भी वे सूर्य और चन्द्र का मुकाबला नहीं कर सकते । मजीठ का रंग सदा स्थिर रहता है और कुसुंभ का रंग जल्दी ही रूप बदल जाता है।

सतिगुरु तुलि न मिहरवान मात पिता न देव सबाए ।
डिठे सभे ठोकि वजाए ॥ २० ॥

पउड़ी २१

(उहो ही)

मापे हेतु न पुजनी सतिगुर हेतु सुचेत सहाई ।
साह विसाह न पुजनी सतिगुर साहु अथाहु समाई ।
साहिब तुलि न साहिबी सतिगुर साहिब सचा साईं ।
दाते दाति न पुजनी सतिगुर दाता सचु द्रिड़ाई ।
वैद न पुजनि वैदगी सतिगुर हउमै रोग मिटाई ।
देवी देव न सेव तुलि सतिगुर सेव सदा सुखदाई ।
साइर रतन न पुजनी साधसंगति गुरि सबदु सुभाई ।
अकथ कथा वड़ी वडिआई ॥ २१ ॥ ३९ ॥ उणताली* ।

माता-पिता और सभी देवगण भी सद्गुण के तुल्य कृपापूर्ण नहीं हो सकते । इन सभी संबंधों को ठोंक-बजाकर परख लिया गया है ।। २० ।।

पउड़ी २१

(वही)

चैतन्यता प्रदान करनेवाले सद्गुरु के प्रेम की बराबरी माता-पिता का प्रेम नहीं कर सकता। साहूकारों का भरोसा सद्गुरु रूपी साहूकार के भरोसे तक नहीं पहुँच सकता । उस साहिब के तुल्य साहिबी किसी की नहीं है । वही सद्गुरु सच्चा साहिब (मालिक) है । अन्य दाताओं का दान सद्गुरु के दान के बराबर नहीं पहुँच सकता क्योंकि सद्गुरु सत्य पर दृढ़ करता है । वैद्यों की वैद्यकी भी उस सद्गुरु वैद्य के तुल्य नहीं पहुँच सकती, क्योंकि सद्गुरु तो अहम्भाव रूपी रोगों का नाश करता है। देवी-देवताओं की पूजा भी सद्गुरु की सदैव सुख देनेवाली वंदना के तुल्य नहीं है । समुद्र के रत्न भी (गुरु-रूप) साधुसंगति की बराबरी नहीं कर सकते , क्योंकि साधुसंगति में गुरु शब्द रूपी रत्न शोभायमान होते हैं । सद्गुरु की महिमा की कथा अकथनीय है और उसकी महिमा महान् है ।। २१ ।। ३९ ।।*

*** सिक्ख रेफरेन्स लाइब्रेरी की पांडुलिपि सं० १३६१ एवं ७३९८ के अनुसार भाई गुरदास की केवल ३९ ही ''वाराँ'' हैं जिसकी पुष्टि अन्य कई प्राचीन ग्रंथों से भी होती है और इसके आगे की ''वार'' (४०सवीं) किसी अन्य बुद्धिमान की कृति बताई जाती है । परन्तु यह कथन कहाँ तक सही है, इस संबंध में और अधिक शोध की आवश्यकता है ।**

* * *

वार ४०

१ओं सतिगुर प्रसादि ।।

पउड़ी १

(मंगलाचरण, सतिगुरू)

सउदा इकतु हटि है पीराँ पीरु गुराँ गुरु पूरा ।
पतित उधारणु दुख हरणु असरणु सरणि वचन दा सूरा ।
अउगुण लै गुण विकणै सुख सागरु विसराइ विसूरा ।
कटि विकार हजार लख परउपकारी सदा हजूरा ।
सतिनामु करता पुरखु सति सरूपु न कदही ऊरा ।
साधसंगति सच खंड वसि अनहद सबद वजाए तूरा ।
दूजा भाउ करे चकचूरा ।। १ ।।

पउड़ी २

(साधसंगति)

पारस परउपकार करि जात न असटधातु वीचारे ।
बावन चंदन बोहिंदा अफल सफलु न जुगति उर धारै ।

पउड़ी १

(मंगलाचरण, सद्गुरु)

(सत्य का) सौदा तो एक उस ही दुकान पर मिलता है जहाँ पीरों का पीर और गुरुओं का पूर्ण गुरु (परमात्मा) बैठता है। वह पतितों का उद्धारक, दुःखहर्ता, शरण-विहीनों को शरण देनेवाला और वचन का धनी है। वह अवगुणों को तो ले लेता है और गुण देता है। सुखों का सागर परमात्मा दुखों को दूर कर देता है। वह हजारों-लाखों विकारों को काटनेवाला परोपकारी और सदैव सर्वत्र व्याप्त रहनेवाला है। वह सत्यनाम, कर्त्तापुरुष, सत्यस्वरूप (प्रभु) कभी भी खाली नहीं होता। वह साधुसंगति रूपी सत्यदेश में बसकर अनहद् शब्द की तुरही बजाता है और द्वैतभाव को चकनाचूर कर देता है ।। १ ।।

पउड़ी २

(साधुसंगति)

पारस (सोना बनाने का) परोपकार करते समय अष्टधातु की

सभ ते इंदर वरसदा थाउँ कुथाउँ न अंम्रित धारै ।
सूरज जोति उदोत करि ओतपोति हो किरण पसारै ।
धरती अंदरि सहनसील परमल हरै अवगुण न चितारै ।
लाल जवाहर मणि लोहा सुइना पारस जाति बिचारै ।
साधसंगति का अंतु न पारै ॥ २ ॥

पउड़ी ३

(सतिगुर सेवा, सभ फल दाती)

पारस धाति कंचनु करै होइ मनूर न कंचन झूरै ।
बावन बोहै बनासपति बाँसु निगंध न बुहै हजूरै ।
खेती जंमै सहंस गुण कलर खेति न बीज अंगूरै ।
उलू सुझ न सुझई सतिगुरु सुझ सुझाइ हजूरै ।

जाति का विचार नहीं करता । बावन चंदन सबको सुगंधित कर देता है और वृक्षों की फलविहीनता तथा फलयुक्तता की बात मन में नहीं लाता। बादल सब जगह बरसता है और ठौर-कुठौर को नहीं देखता। सूर्य की किरण उदित होकर सर्वत्र अपनी किरणों का प्रसार करती है। धरती में सहनशीलता का गुण है जो पराये मल को भी अपने अन्दर धारण कर लेती है और दूसरों के अवगुणों को नहीं देखती। इसी प्रकार लाल, जवाहिर, मणि,लोहा, सोना, पारस आदि सब पदार्थ अपने प्राकृतिक स्वभाव का विचार बनाये रखते हैं और तद्नुसार व्यवहार करते हैं । साधुसंगति (की महानता) का कोई ओर-छोर नहीं है ।। २ ।।

पउड़ी ३

(सद्‌गुरु सेवा सभी फल-प्रदायक)

पारस धातु को तो सोना कर देता है परन्तु लोहे की भस्म (मैल) सोना नहीं बनती इसलिए दुखी होती है। बावन चंदन सारी वनस्पति को सुगंधित कर देता है परन्तु चन्दन के पास ही बसनेवाला बाँस गंधविहीन ही बना रहता है । बीज बोने पर खेती हजारों गुणा अधिक पैदा होती है, परन्तु क्षारीय धरती पर बीज का अंकुर फूटता नहीं। उल्लू को कुछ भी दिखाई नहीं देता परन्तु सच्चा गुरु तो उस परमात्मा की सूझ देकर उसके प्रत्यक्ष दर्शन करा देता है। धरती में जैसा बोया जाता है वही काटा जाता है परन्तु सद्‌गुरु की सेवा से तो सब प्रकार के (श्रेष्ठ) फल प्राप्त होते हैं। जैसे जहाज में जो भी बैठता है पार निकल जाता है,

धरतीं बीजै सु लूणै सतिगुरु सेवा सभ फल चूरै ।
बोहिथ पवै सो निकलै सतिगुरु साधु असाधु न दूरै ।
पसू परेतहुँ देव विचूरै ॥ ३ ॥

पउड़ी ४

(सतिगुरू दी स्रेशटता)

कंचनु होवै पारसहुँ कंचन करै न कंचन होरी ।
चंदन बावन चंदनहुँ ओदूँ होरु न पवै करोरी ।
वुठे जंमै बीजिआ सतिगुरु मति चितवै फल भोरी ।
राति पवै दिहु आथवै सतिगुरु गुरु पूरण धुर धोरी ।
बोहिथ परबत ना चढ़ै सतिगुरु हठ निग्रहु न सहोरी ।
धरती नो भुंचाल डर गुरु मति निहचल चलै न चोरी ।
सतिगुरु रतन पदारथ बोरी ॥ ४ ॥

उसी प्रकार सद्‌गुरु के लिए सभी साधु-असाधु भेदभाव के बिना हैं । वह जीव को पशु-प्रेत-योनि से निकालकर देवयोनि में विचरण कराता है ।। ३ ।।

पउड़ी ४

(सद्‌गुरु की श्रेष्ठता)

पारस से सोना बन जाता है पर यह सोना और आगे सोना नहीं बना सकता । बावन चंदन से वृक्षों में चन्दन की सुगंध आ जाती है पर ये सुगंधित वृक्ष अन्य वृक्षों को सुगंधित नहीं कर सकते । जब जल बरसता है तो बोया हुआ बीज अंकुरित होता है, इसी प्रकार सद्‌गुरु की शिक्षा ग्रहण करने से शीघ्र ही फल प्राप्त होता है । रात होने पर सूर्य तो अस्त हो जाता है पर गुरु (सद्‌गुरु-परमात्मा) तो अनन्त समय तक पूर्ण रूप से (साथ) बना रहता है । जिस प्रकार बलात् पानी का जहाज पर्वत पर नहीं चढ़ सकता (केवल पानी में तैर सकता है) उसी प्रकार हठपूर्वक इन्द्रिय-निग्रह (एवं दमन) सद्‌गुरु को सह्य नहीं है अर्थात् उसे अच्छे नहीं लगते । धरती को तो भूचाल का डर है वह अपने स्थान पर डोल जाती है परन्तु गुरुमति धारण करनेवाले अडिग भी रहते हैं एवं किसी बात की चोरी नहीं रखते। सद्‌गुरु तो रत्न-पदार्थों का मानों (भरा हुआ) बोरा है ।। ४ ।।

पउड़ी ५

(साधसंगति तों बलिहार)

सूरज चड़िऐ लुक जानि उलू अंध कंध जगि माही ।
बुके सिंघ उदिआन महि जंबुक मिरग न खोजे पाही ।
चढ़िआ चंद अकास ते विचि कुनाली लुकै नाही ।
पंखी जेते बन बिखे डिठे बाज न ठउरि रहाही ।
चोर जार हरामखोर दिहु चढ़िआ को दिसै नाही ।
जिन को रिदै गिआन होइ लख अगिआनी सुध कराही ।
साधसंगति कै दरसनै कलि कलेसि सभ बिनस बिनाही ।
साधसंगति विटहुँ बलि जाही ॥ ५ ॥

पउड़ी ६

(साधसंगति धंन है)

राति हन्हेरी चमकदे लख करोड़ी अंबरि तारे ।
चढ़िऐ चंद मलीण होणि को लुकै को बुकै बबारे ।

पउड़ी ५

(साधुसंगति पर से बलिहार)

सूर्य के निकलने पर दीवार की तरह अंधे उल्लू इसी संसार में कहीं छिप जाते हैं। जब शेर जंगल में दहाड़ता है तो गीदड़, मृग आदि ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलते। आकाश में निकला चन्द्रमा मिट्टी की छोटी सी थाली से छिपाया नहीं जा सकता। वन में जितने भी पक्षी हैं बाज को देखते ही एक स्थान पर नहीं ठहरते (और जान बचाने के लिए फड़फड़ाते रहते हैं)। चोर, व्यभिचारी व्यक्ति और हरामखोर लोग दिन निकलने पर दिखाई नहीं देते। जिनके हृदय में ज्ञान होता है वे लाखों अज्ञानियों (की बुद्धि) का शोधन कर देते हैं। साधुसंगति के दर्शन से कलियुग के सभी क्लेश विनष्ट हो जाते हैं। साधुसंगति पर तो मैं बलिहारी जाता हूँ ।। ५ ।।

पउड़ी ६

(साधुसंगति धन्य है)

अँधेरी रात में आकाश में लाखों तारागण चमकते हैं । चन्द्रमा के निकल आने पर वे छिप जाते हैं और उनमें से कुछ फिर भी बड़बड़ाते रहते हैं

सूरज जोति उदोति करि तारे चंद न रैणि अंधारे ।
देवी देव न सेवकाँ तंत न मंत न फुरनि विचारे ।
वेद कतेब न असटधातू पूरे सतिगुरु सबद सवारे ।
गुरमुखि पंथ सुहावड़ा धंन गुरू धंन गुरू पिआरे ।
साधसंगति परगटु संसारे ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(सतिगुरु दे गाहक)

चारि वरनि चारि मज़हबाँ छिअ दरसन वरतनि वरतारे ।
दस अवतार हजार नाव थान मुकाम सभे वणजारे ।
इकतु हटहुँ वणज लै देस दिसंतरि करनि पसारे ।
सतिगुरु पूरा साहु है बेपरवाहु अथाहु भंडारे ।
लै कै मुकरि पानि सभ सतिगुरु देइ न देंदा हारे ।
इकु कवाउ पसाउ करि ओअंकारि अकार सवारे ।
पारब्रह्म सतिगुर बलिहारे ।। ७ ।।

अर्थात् थोड़ा सा चमकते रहते हैं। सूर्य की ज्योति उदित होने पर तारे, चन्द्रमा और अँधेरी रात तीनों ही नहीं रहते। पूर्ण सद्गुरु के शब्द के माध्यम से सँवारे जीवनवाले के सामने वर्णाश्रम, वेद, कतेब आदि नगण्य हैं और देवी, देवता, उनके सेवक, तंत्र-मंत्र आदि का तो स्फुरण ही नहीं होता। गुरुमुखों का पंथ सुहाना है। गुरु भी धन्य है और गुरु के प्यारे भी धन्य हैं। साधुसंगति की महिमा तो सारे संसार में प्रकट (ही) है ।। ६ ।।

पउड़ी ७

(सद्गुरु के ग्राहक)

चारों वर्ण, चार मजहब, छः दर्शन और उनके व्यवहार, दस अवतार एवं प्रभु के हज़ारों नाम सभी उस (सद्गुरु परमात्मा) के व्यापारी हैं, चाहनेवाले हैं । ये सभी उस एक परम सत्ता की दुकान से वस्तुएँ लेकर देश-देशान्तरों में उन्हें प्रसारित करते हैं । वह निश्चिन्त सद्गुरु (परमात्मा) पूर्ण साहूकार है और उसके भंडार अथाह (एवं अक्षय) हैं । सभी उससे ले-लेकर मुकर जाते हैं पर वह सद्गुरु देता हुआ कभी थकता नहीं । वह ओअंकार प्रभु एक ही वाक् से प्रसार कर सभी आकारों को सँवारता है अर्थात् बना देता है । परब्रह्म रूपी इस सद्गुरु पर मैं बलिहारी जाता हूँ ।। ७ ।।

पउड़ी ८

(बिना गुर गति नहीं)

पीर पैकंबर औलीए गौस कुतब उलमाउ घनेरे ।
सेख मसाइक सादका सुहदे और सहीद बहुतेरे ।
काजी मुलाँ मउलवी मुफती दानसवंद बंदेरे ।
रिखी मुनी दिगंबराँ कालख करामात अगलेरे ।
साधिक सिधि अ गणत हैनि आप जणाइनि वडे वडेरे ।
बिनु गुर कोइ न सिझई हउमैं वधदी जाइ वधेरे ।
साधसंगति बिनु हउमै हेरे ॥ ८ ॥

पउड़ी ९

(सभे दाताँ ओअंकार दी बखशिश हन)

किसै रिधि सिधि किसै देइ किसै निधि करामात सु किसै ।
किसै रसाइण किसै मणि किसै पारस किसै अंम्रित रिसै ।

पउड़ी ८

(गुरु के बिना गति नहीं)

अनेकों ही पीर, पैग़म्बर, औलीया, गौंस, कुतुब एवं उलमा हैं । बहुत से शेख, संतोषी (सादिक) , निर्धन एवं शहीद जाने जाते हैं । क़ाजी, मुल्ला, मौलवी एवं बुद्धिमान सेवक भी अनेकों जाने जाते हैं । ऋषि, मुनि, जैनी, दिगम्बर एवं काला इल्म जाननेवाले पहले सिरे के करामाती लोग भी हैं । साधक, सिद्धगण भी असंख्य हैं जो अपने आपको बड़ा जनवाते हैं । गुरु के बिना कोई भी मुक्त नहीं होता और अपने अहम्-भाव की बढ़ोत्तरी ही करता जाता है। साधुसंगति के बिना अहम्-भावना व्याकुल करती है और जीव को ढूँढ़ती रहती है ।। ८ ।।

पउड़ी ९

(सभी दान ओअंकार की कृपा है)

वह किसी को ऋद्धियाँ, सिद्धियाँ किसी को निधियाँ और किसी को चमत्कार प्रदान करता है। किसी को (जीवनी) रसायन, किसी को मणि, किसी को पारस और उसकी कृपा से किसी के अंदर अमृत झरता है ।

तंतु मंतु पाखंड किसै वीराराध दिसंतरु दिसै ।
किसै कामधेनु पारिजात किसै लखमी देवै जिसै ।
नाटक चेटक आसणा निवली करम भरम भउ मिसै ।
जोगी भोगी जोगु भोगु सदा संजोगु विजोग सलिसै ।
ओअंकारि अकार सु तिसै ॥ ९ ॥

पउड़ी १०

(माणस जनम दी उत्तमता)

खाणी बाणी जुगि चारि लख चउरासीह जूनि उपाई ।
उतम जूनि वखाणीऐ माणसि जूनि दुलंभ दिखाई ।
सभि जूनी करि वसि तिसु माणसि नो दिती वडिआई ।
बहुते माणस जगत विचि पराधीन किछु समझि न पाई ।
तिन मै सो आधीन को मंदी कंमीं जनमु गवाई ।

किसी को तंत्र, मंत्र, पाखंड और किसी को वीर आराधना (शैवमत की आराधना) करवाकर देश-देशान्तरों में भटकता रहता है । किसी को कामधेनु, किसी को पारिजात वृक्ष और जिसे चाहे उसे लक्ष्मी देता है । भ्रम में डालने के बहाने कइयों को नाटक, चमत्कार, आसन एवं न्यौली कर्म आदि क्रियाएँ प्रदान करता है । योगी और भोगी अपनी-अपनी योग और भोग की क्रियाओं में सदैव जन्मते और मरते रहते हैं। ये सभी उसी ओअंकार का ही आकार (स्थल-रूप) हैं ।। ९ ।।

पउड़ी १०

(मनुष्य-जन्म की श्रेष्ठता)

चार युग, चार खानियाँ (जीवन-स्रोत), चार वाणियाँ (परा, पश्यंति, मध्यमा, बैखरी) एवं लाखों योनियों में जीनेवाले जीव उसने उत्पन्न किये। दुर्लभ मानी जानेवाली मनुष्य योनि सबसे उत्तम योनि कही जाती है। सभी योनियों को मनुष्य के अधीन कर प्रभु ने इसे सम्मान दिया है। जगत् में भी अधिकतर मनुष्य एक-दूसरे के अधीन रहते हैं और कुछ भी समझने-करने में असमर्थ हैं। उनमें वास्तविक रूप से वही गुलाम हैं जिन्होंने बुरे कर्मों में जन्म गँवा दिया है।

साधसंगति दे वुठिआँ लख चउरासीह फेरि मिटाई ।
गुरु सबदी वडी वडिआई ।। १० ।।

पउड़ी ११

(गुरुमुख गाडी राह जाँ नित्त क्रिया)

गुरसिख भलके उठ करि अंम्रित वेले सरु न्हावंदा ।
गुरु कै बचन उचारि कै धरमसाल दी सुरति करंदा ।
साधसंगति विचि जाइ कै गुरबाणी दे प्रीति सुणंदा ।
संका मनहुँ मिटाइ कै गुरु सिखाँ दी सेव करंदा ।
किरत विरत करि धरमु दी लै परसाद आणि वरतंदा ।
गुरसिखाँ नो देइ करि पिछों बचिआ आपु खवंदा ।
कली काल परगास करि गुरु चेला देला गुरु संदा ।
गुरमुख गाडी राहु चलंदा ।। ११ ।।

साधुसंगति के प्रसन्न होने पर चौरासी लाख योनियों में आवागमन मिट जाता है। गुरु के शब्द (वाणी) की महानता बहुत बड़ी है ।। १० ।।

पउड़ी ११

(गुरुमुख का राजमार्ग अथवा नित्यकर्म)

गुरुमुख व्यक्ति प्रात: उठकर अमृत-रूपी सरोवर में स्नान करता है । गुरु के वचनों का उच्चारण कर अर्थात् गुरुवाणी का पाठ कर धर्मशाला (गुरुद्वारे) की ओर चल पड़ता है । वहाँ साधुसंगति में पहुँचकर वह प्रेमपूर्वक गुरुवाणी को श्रवण करता है । मन में से (ऊँच-नीच की) शंका मिटाकर गुरु के सिक्खों की सेवा करता है। फिर धर्मानुकूल जीविकोपार्जन कर उसका प्रसाद-स्वरूप भोजन आकर (ज़रूरतमन्दों में) बाँटता है । गुरु के सिक्खों को पहले देकर फिर जो बच जाता है उसे स्वयं ग्रहण करता है । कलियुग में उपर्युक्त भावना से प्रकाशित हो चेला गुरु और गुरु चेला बन जाता है । गुरुमुख इसी प्रकार के राजमार्ग पर ही चलते हैं ।। ११ ।।

पउड़ी १२

(गुर आगिआ विच लीन)

ओअंकार अकारु जिसु सतिगुरु पुरखु सिरंदा सोई ।
इकु कवाउ पसाउ जिस सबद सुरति सतिसंग विलोई ।
ब्रहमा बिसनु महेसु मिलि दस अवतार वीचार न होई ।
भेद न बेद कतेब नो हिंदू मुसलमाण जणोई ।
उतम जनमु सकारथा चरणि सरणि सतिगुरु विरलोई ।
गुरुसिख सुणि गुरुसिख होइ मुरदा होइ मुरीद सु कोई ।
सतिगुरु गोरिसतान समोई ॥ १२ ॥

पउड़ी १३

(गुरसिक्खाँ तों बिनाँ सभ भंबल-भूसे खा रहे हन)

जप तप हथि निग्रह घणे चउदह विदिआ वेद वखाणे ।
सेख नाग सनकादिकाँ लोमस अंतु अनंत न जाणे ।

पउड़ी १२

(सृष्टि)

जिस सद्‌गुरु (परमात्मा) का आकार ओअंकार है, वही सच्चा (सृष्टि) रचयिता है। उसके ही एक शब्द (वाक्) से सारा सृष्टि-प्रसार होता है और सत्संगति में सुरति उसी के शब्द में लीन होती है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश एवं दस अवतार भी मिलकर उस (परमात्मा) के रहस्य का विचार नहीं कर सकते । वेद, कतेब, हिन्दू-मुस्लिम अर्थात् कोई भी उसके भेद को नहीं जानता । सद्‌गुरु के चरणों की शरण में आकर अपने जन्म को सफल बनानेवाला कोई विरला ही होता है। गुरु की शिक्षा को सुनकर शिष्य बनकर विरला ही कोई वासनाओं की ओर से मृत होता है और सच्चा मुरीद बनता है। कोई विरला ही सद्‌गुरु रूपी क़ब्रिस्तान में समाता है ।। १२ ।।

पउड़ी १३

(गुरुसिक्खों के बिना सभी भ्रमों में भटक रहे हैं)

जप, तप, हठ, अनेकों इन्द्रिय-निग्रह, वेदों के व्याख्यान एवं चौदह विद्याएँ जानी जाती हैं। शेषनाग, सनकादिक एवं लोमस ऋषि भी उस अनन्त का रहस्य नहीं जानते।

जती सती संतोखीआँ सिध नाथ होइ नाथ भुलाणे ।
पीर पैकंबर अउलीए बुज़रकवार हज़ार हैराणे ।
जोग भोग लख रोग सोग लख संजोग विजोग विडाणे ।
दस नाउँ संनिआसीआँ भंभल भूसे खाइ भुलाणे ।
गुरु सिख जोगी जागदे होर सभे बनवासु लुकाणे ।
साधसंगति मिलि नामु वखाणे ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(सतिगुरू दी सिक्खिआ)

चंद सूरज लख चानणे तिल न पुजनि सतिगुरु मती ।
लख पाताल अकास लख उची नीवीं किरणि न रती ।
लख पाणी लख पउण मिलि रंग बिरंग तरंग न वती ।
आदि न अंतु न मंतु पलु लख परलउ लख लख उतपती ।

यति, सत्याचारी, संतोषी, सिद्ध एवं नाथ भी उसके बिना अनाथ हो भ्रम में भूल-भटक रहे हैं। पीर, पैगम्बर, औलिया एवं हज़ारों बुजुर्ग उसको ढूँढ़ते हुए हैरान हैं। योग, भोग, लाखों रोग, शोक, संयोग एवं वियोग सब उसी की महिमा का बखान करते हैं। संन्यासियों के दसों सम्प्रदाय सब भ्रमों में भटके-भूले घूम रहे हैं। गुरु के शिष्य रूपी योगी सदैव चैतन्य रहते हैं , अन्य सभी तो वन में निवास कर छिपे बैठे हैं अर्थात् संसार की कठिनाइयों से मुँह मोड़े बैठे हैं। गुरु के सिक्ख साधुसंगति में मिलकर प्रभु-नाम का बखान (एवं गुणानुवाद) करते हैं ।। १३ ।।

पउड़ी १४

(सद्‌गुरु की शिक्षा)

लाखों चन्द्रमाओं एवं सूर्यों का प्रकाश सद्‌गुरु की मति के तिल मात्र प्रकाश की भी बराबरी नहीं कर सकता । सद्‌गुरु के प्रकाश की किरण लाखों पातालों, आकाशों के ऊँच-नीच में भी समान भाव से कार्य करती है। लाखों पवन, पानी मिलकर रंग-बिरंगा वातावरण बनाते हैं पर उस सद्‌गुरु के प्रकाश की एक तरंग के भी तुल्य नहीं हैं । लाखों प्रलयों एवं उत्पत्तियों के बावजूद सद्‌गुरु के विवेक का आदि-अंत-मध्य नहीं जाना जा सकता।

धीरज धरम न पुजनी लख लख परबत लख धरती ।
लख गिआन धिआन लख तुलि न तुलीऐ तिल गुरमती ।
सिमरण किरणि घणी घोल घती ।। १४ ।।

पउड़ी १५
(विरले बंदे)

लख दरीआउ कवाउ विचि लख लख लहरि तरंग उठंदे ।
इकस लहरि तरंग विचि लख लख लख दरीआउ वहंदे ।
इकस इकस दरीआउ विचि लख अवतार अकार फिरंदे ।
मछ कछ मरिजीवड़े अगम अथाह न हाथि लहंदे ।
परवदगार अपारु है पारावार न लहनि तरंदे ।
अजरावरु सतिगुरु पुरखु गुरमति गुरुसिख अजरु जरंदे ।
करनि बंदगी विरले बंदे ।। १५ ।।

गुरु के शिक्षा रूपी धैर्य, धर्म की बराबरी लाखों धैर्यवान धरतियाँ और पर्वत नहीं कर सकते । लाखों ज्ञान, ध्यान गुरुमत के तिलमात्र ज्ञान के भी बराबर नहीं है । प्रभु-स्मरण रूपी एक किरण पर से मैंने लाखों प्रकाशों की किरणों को कुर्बान कर दिया है ।। १४ ।।

पउड़ी १५
(विरले सेवक)

उस प्रभु के एक वाक् में लाखों (जीवनों के) दरिया बहते हैं और उनमें लाखों तरंगें उठती हैं। उसकी एक-एक लहर में पुन: लाखों दरिया (जीवन-स्रोत) बहते हैं। एक-एक दरिया में अवतारों के रूपों में लाखों जीव आकार धारण कर घूमते रहते हैं। मत्स्य, कच्छप-अवतार रूपी गोताखोर उसमें डुबकी लगाते हैं पर उनके कुछ हाथ नहीं लगता अर्थात् वे भी उस परमसत्ता का अन्त नहीं जान सकते। वह प्रतिपालक प्रभु अपार है कोई उसका पारावार नहीं जान पाता। वह सद्गुरु पुरुष श्रेष्ठतम है और गुरु के शिष्य गुरुमत के माध्यम से उस असह्य को आत्मसात् करते हैं। ऐसी बंदगी करनेवाले मनुष्य कोई बिरले ही होते हैं ।। १५ ।।

पउड़ी १६

(आदिपुरख)

इक कवाउ अमाउ जिसु केवडु वडे दी वडिआई ।
ओअंकार अकार जिसु तिसु दा अंतु द कोऊ पाई ।
अधा साहु अथाहु जिसु वडी आरजा गणत न आई ।
कुदरति कीम न जाणीऐ कादरु अलखु न लखिआ जाई ।
दाति न कीम न राति दिहु बेसुमारु दातारु खुदाई ।
अबिगति गति अनाथ नाथ अकथ कथा नेति नेति अलाई ।
आदिपुरखु आदेसु कराई ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(फोकट करमाँ दी निखेधी)

सिरु कलवतु लै लख वार होमे कटि कटि तिलु तिलु देही ।
गलै हिमाचल लख वारि करै उरध तप जुगति सनेही ।

पउड़ी १६

(आदिपुरुष)

जिस प्रभु का एक वाक् ही सब सीमाओं से परे है उस बड़े का बड़प्पन कितना है, इसके बारे में क्या कहा जा सकता है अर्थात् वह वर्णनातीत है । ओअंकार ही जिसका आकार है, उसका कोई भी अंत (रहस्य) नहीं जान सकता । जिसका आधा श्वास भी अपरिमित है उसकी बड़ी आयु की गणना नहीं की जा सकती । उसकी बनाई सृष्टि का सही मूल्यांकन नहीं किया जा सकता, फिर भला उस अलक्ष्य को कैसे देखा (समझा) जा सकता है । दिन-रात जैसे उसके दान भी अमूल्य हैं । उस दाता की अन्य देनें भी अनन्त हैं । अनाथों के नाथ प्रभु की गति अव्यक्त है एवं उसकी अकथनीय कथा में भी उसे नेति-नेति ही कहा जाता है । प्रणाम करने योग्य वह आदिपुरुष ही है ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(कर्म-निषेध)

सिर पर आरा रखकर लाखों बार तिल-तिल देह को काटकर होम किया जाए; लाखों बार बर्फ़ में गल जाए अथवा युक्तिपूर्वक ऊपर की ओर मुँह करके तप करे;

जल तपु साधे अगनि तपु पूँअर तपु करि होइ विदेही ।
वरत नेम संजम घणे देवी देव असथान भवेही ।
पुंन दान चंगिआईआँ सिधासण सिंघासण थे एही ।
निवली करम भुइअंगमाँ पूरक कुंभक रेच करेही ।
गुरमुखि सुख फल सरनि सभेही ॥ १७ ॥

पउड़ी १८

(सुख फल दी विशेशता)

सहस सिआणे सैपुरस सहस सिआणप लइआ न जाई ।
सहस सुघड़ सुघड़ाईआँ तुलु न सहस चतुर चतुराई ।
लख हकीम लख हिकमती दुनीआदार वडे दुनिआई ।
लख साह पतिसाह लख लख वज़ीर न मसलत काई ।
जती सती संतोखीआँ सिध नाथ मिलि हाथ न पाई ।
चार वरन चार महजबाँ छिअ दरसन नहिं अलखु लखाई ।
गुरमुखि सुख फल वडी वडिआई ॥ १८ ॥

जल-तप, अग्नि-तपों एवं भीतरी अग्नि में तप कर विदेह हो जाए; व्रत, नियम, अनेकों संयम करे और देवी-देवताओं के स्थानों पर भटकता फिरे; पुण्य-दान, अच्छाइयाँ, सिद्धासन के सिंहासन बनाकर रहे; न्योली कर्म, भुजंग-आसन, रेचक,पूरक और कुंभक आदि कर्मों को करे परन्तु प्रभु की शरण में जाने से गुरुमुख को इन सबके सुखफल वहीं प्राप्त हो जाते हैं ।। १७ ।।

पउड़ी १८

(सुखफल की विशिष्टता)

सहस्रों ही सयाने पुरुष हैं पर उनकी चतुराइयों के माध्यम से भी (परम) सुखफल प्राप्त नहीं किया जा सकता । सहस्रों ही कौशल एवं हज़ारों ही चातुर्य उसके तुल्य पहुँच नहीं सकते । संसार में लाखों हकीम और हिकमत करनेवाले अन्य दुनियादार हैं; लाखों शाह, बादशाह और लाखों ही उनके वजीर हैं ; परन्तु किसी का भी सुझाव काम नहीं आता । यतियों, सत्याचारियों, संतोषी व्यक्तियों, सिद्धों, नाथों किसी के भी हाथ नहीं आता । चार वर्ण, चार मजहब, छः दर्शन अर्थात् कोई भी उस अलक्ष्य सुखफल रूपी प्रभु को देख नहीं सका है । गुरुमुखों के सुखफल की महिमा महान् है ।। १८ ।।

(विरले बंदे)

लख दरीआउ कवाउ विचि लख लख लहरि तरंग उठंदे ।
इकस लहरि तरंग विचि लख लख लख दरीआउ वहंदे ।
इकस इकस दरीआउ विचि लख अवतार अकार फिरंदे ।
मछ कछ मरिजीवड़े अगम अथाह न हाथि लहंदे ।
परवदगार अपारु है पारावार न लहनि तरंदे ।
अजरावरु सतिगुरु पुरखु गुरमति गुरुसिख अजरु जरंदे ।
करनि बंदगी विरले बंदे ॥ १५ ॥

पउड़ी १६

(आदिपुरख)

इक कवाउ अमाउ जिसु केवडु वडे दी वडिआई ।
ओअंकार अकार जिसु तिसु दा अंतु द कोऊ पाई ।
अधा साहु अथाहु जिसु वडी आरजा गणत न आई ।

पउड़ी १९

(गुरु की शिष्यता)

गुरु की शिष्यता बड़ी कठिन है इसे कोई पीरों का पीर अथवा गुरुओं का गुरु ही जानता है। वह सद्‌गुरु का उपदेश लेकर सांसारिक प्रपंचों को लाँघकर उस प्रभु की पहचान करता है। जो वासनाओं की ओर से मृत हो जाए वही गुरुसिक्ख उस बाबा (नानक) में लीन होता है। जो गुरु के चरणों में गिरकर धूलि के समान बन जाता है, उसी की चरण-धूलि से लोग पसीजते हैं, संतुष्ट होते हैं। गुरुमुखों का मार्ग अगम्य है; जो मर कर जीवित रहता है अर्थात् जीते जी वासनाओं को त्यागता है वही उस प्रभु की पहचान करता है। गुरु के उपदेश से आवेष्ठित होकर वह भृंगी कीड़े द्वारा कीड़ी को भी भृंगी बना लिये जाने का व्यवहार अपना कर स्वयं गुरु के बड़प्पन को प्राप्त कर लेता है। इस अकथनीय कथा का भला कौन कथन करे? ।। १९ ।।

पउड़ी २०

(सुखफल)

चारों वर्ण साधुसंगति में आकर चार का चार गुना अर्थात् सोलह कला वाले हो जाते हैं। गुरु के शब्द के पाँच प्रकारों (परा, पश्यन्ति, मध्यमा, वैखरी, मात्रका) में सुरति लीन कर जीव पचीस प्रकार की प्रकृतियों को अपने वश में ले आता है।

कुदरति कीम न जाणीऐ कादरु अलखु न लखिआ जाई ।
दाति न कीम न राति दिहु बेसुमारु दातारु खुदाई ।
अबिगति गति अनाथ नाथ अकथ कथा नेति नेति अलाई ।
आदिपुरखु आदेसु कराई ।। १६ ।।

पउड़ी १७

(फोकट करमाँ दी निखेधी)

सिरु कलवतु लै लख वार होमे कटि कटि तिलु तिलु देही ।
गलै हिमाचल लख वारि करै उरध तप जुगति सनेही ।
जल तपु साधे अगनि तपु पूँअर तपु करि होइ विदेही ।
वरत नेम संजम घणे देवी देव असथान भवेही ।
पुंन दान चंगिआईआँ सिधासण सिंघासण थे एही ।

छ: दर्शनों को एक ही प्रभु-दर्शन में अंतर्भुक्त कर छत्तीस आसनों के महात्म्य को जान लेता है । सातों द्वीपों में एक ही दीपक (प्रभु) का प्रकाश देखने से उनचासों पवन वश में हो जाते हैं। चार वर्णों और चार आश्रमों रूपी अष्टधातु को गुरु पारस से मिलाकर एक कंचन बनाने से चौंसठों विद्याओं का आनन्द लिया जाता है । नौ नाथों के नाथ एक(प्रभु) को मानने से इक्यासी खंडों की जानकारी प्राप्त हो जाती है। दसों द्वारों से स्वतन्त्र होकर पूर्ण योगी शतप्रतिशत (प्रभु के दरबार में) स्वीकृत हो जाता है । गुरुमुखों के सुखफल की लीला महान है ।। २०।।

पउड़ी २१

(सद्गुरु-महिमा)

सिक्ख यदि सौ है तो अविनाशी सद्गुरु एक सौ एक है । उसका दरबार सदैव स्थिर है और वह आवागमन में नहीं पड़ता । जिसने उसका एक मन से ध्यान किया उसने उसके गले का फंदा काट डाला । वह एक ही प्रभु सर्वत्र व्याप्त है और शब्द में सुरति लीन करने पर ही उस सद्गुरु को जाना जा सकता है। गुरु-मूर्ति (शब्द) के दर्शन के बिना व्यक्ति लाखों योनियों में भ्रमण करता रहता है। गुरुदेव की दीक्षा के बिना जीव मरता-जन्मता रहता है और नर्क में जाता है।

बिनु दरसनु गुरु मूरति भ्रमता फिरे लख जूंनि चउरासी ।
बिनु दीखिआ गुरदेव दी मरि जनमे विचि नरक पवासी ।
निरगुण सरगुण सतिगुरू विरला को गुर सबद समासी ।
बिनु गुर ओट न होरु को सची ओट न कदे बिनासी ।
गुराँ गुरू सतिगुरु पुरखु आदि अंति थिरु गुरू रहासी ।
को बिरला गुरमुखि सहजि समासी ॥ २१ ॥

पउड़ी २२

(मूल वरणन)

धिआन मूल मूरति गुरू पूजा मूल गुरु चरण पुजाए ।
मंत्रु मूलु गुरु वाक है सचु सबदु सतिगुरू सुणाए ।
चरणोदकु पवित्र है चरण कमल गुरुसिख धुआए ।
चरणाम्रित कसमल कटे गुरु धूरी बुरे लेख मिटाए ।
सतिनामु करता पुरखु वाहिगुरू विचि रिदै समाए ।

सद्‌गरु (परमात्मा) निर्गुण एवं सगुण दोनों रूपों में है। कोई विरला ही गुरु के शब्द में लीन होता है। गुरु के बिना कोई आश्रय नहीं है और यह ऐसा सच्चा आश्रय है जो कभी विनष्ट नहीं होता। गुरुजनों का भी गुरु सद्‌गुरु (परमात्मा) पुरुष आदि और अन्त में भी स्थिर बने रहनेवाला गुरु है। कोई विरला गुरुमुख ही सहज में लीन होता है ।। २१ ।।

पउड़ी २२

(मूल वर्णन)

ध्यान का मूल गुरु का स्वरूप (जो निर्गुण एवं सगुण दोनों हैं) और पूजा का मूल गुरु के चरण हैं । मंत्रों का मूल गुरु-वाक्य है । सच्चा गुरु सत्य शब्द सुनाता है । सिक्ख के द्वारा गुरु के चरणों को धोने वाला चरणोदक भी पवित्र है । गुरु का चरणामृत सारे पाप काट देता है और गुरु की चरण-धूलि बुरे लेखों को मिटा देती है । इसकी कृपा से सत्य नाम वाला कर्त्ता पुरुष वाहिगुरु (परमात्मा) हृदय में समा जाता है । योगियों के बारह तिलक मिटाकर गुरुमुख प्रभु-कृपा रूपी चिह्न का तिलक माथे पर लगाता है ।

बारह तिलक मिटाइ के गुरुमुखि तिलक नीसाण चढ़ाए ।
रहुरासी रहुरासि एहु इको जपीऐ होरु तजाए ।
बिनु गुर दरसणु देखणा भ्रमता फिरे ठउड़ि नहीं पाए ।
बिनु गुरु पूरै आए जाए ॥ २२ ॥ ४० ॥ चालीह ॥

सभी मर्यादाओं में से एक ही (सच्ची) मर्यादा है कि अन्य सबको त्यागकर केवल एक (परमात्मा) का जाप किया जाए । गुरु के अतिरिक्त किसी अन्य का दर्शन करने से व्यक्ति निराश्रित होकर भटकता रहता है। पूर्णगुरु से विहीन जीव आवागमन में पड़ा रहता है ।। २२ ।। ४०।।

* * *

वार ४१

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।।

(वार स्त्री भगउती जी की पातिसाही दसवीं की)

बोलणा भाई गुरदास का

हरि सचे तखत रचाइआ सति संगति मेला ।
नानक निरभउ निरंकार विचि सिधाँ खेला ।
गुरुदास मनाई कालका खंडे की वेला ।
पीओ पाहुल खंडधार होइ जनम सुहेला ।
संगति कीनी खालसा मनमुखी दुहेला ।
वाह वाह गोबिंदसिंघ आपे गुरु चेला ।। १ ।।
सचा अमर गोबिंद का सुण गुरू पिआरे ।
सतिसंगति मेलाप करि पंच दूत संघारे ।

(वार स्त्री भगउती जी की पातिसाही दसवीं की)

बोलना भाई गुरदास का

सत्संगति का मिलाप ही सच्चे हरि का तख्त है (जिस पर वह विराजमान रहता है)। निर्भय, निराकार प्रभु का रूप नानक ने सिद्धों में विचरण किया। परमगुरु के दास गुरु नानकदेव ने (दसवें स्वरूप में) खड्‌ग हाथ में लेते समय भी महाकाल (प्रभु) की आराधना कर उसे मनाया अर्थात् शक्ति के साथ भक्ति को भी संयुक्त किये रखा । लोगों को बताया कि जन्म को सफल बनाने के लिए खड्‌ग का अमृतपान करो "संगत" (शिष्यों के समूह) को गुरु ने और अधिक सुव्यवस्थित कर "खालसा" (सीधा परमात्मा से संबंद्ध) नाम दे दिया जिससे स्वेच्छाचारी स्वार्थी व्यक्ति दुबिधा में पड़ गये । हे गुरु गोबिंदसिंह! तुम धन्य हो। तुम स्वयं ही गुरु हो और स्वयं ही चेला हो ।। १।। हे गुरु के प्यारे (सिक्ख) ! धरती के आधार (परमात्मा) के सच्चे "हुक्म" को सुन । सत्संगति से मेल-मिलाप बढ़ाकर पाँचों शत्रुओं (काम-क्रोधादि) का संहार कर। जिसने प्रभु स्वामी को विस्मृत कर दिया है उन्हें "संगत" में स्थान नहीं मिलता ।

विचि संगति ढोई ना लहनि जो खसमु विसारे ।
गुरमुखि मथे उजले सचे दरबारे ।
हरि गुरु गोबिंद धिआईऐ सचि अंम्रित वेला ।
वाह वाह गोबिंदसिंघ आपे गुरु चेला ॥ २ ॥
हुकमै अंदरि वरतदी सभ स्रिसटि सबाई ।
इकि आपे गुरमुखि कीतीअनु जिनि हुकम मनाई ।
इकि आपे भरम भुलाइअनु दूजै चितु लाई ।
इकना नो नामु बखसिअनु होइ आपि सहाई ।
गुरमुखि जनमु सकारथा मनमुखी दुहेला ।
वाह वाह गोबिंदसिंघ आपे गुरु चेला ॥ ३ ॥
गुरबाणी तिनि भाईआ जिनि मसतकि भाग ।
मनमुखि छुटड़ि कामणी गुरमुखि सोहाग ।
गुरमुखि ऊजल हंसु है मनमुख है काग ।
मनमुखि ऊँधे कवलु हैं गुरमुखि सो जाग ।
मनमुखि जोनि भवाईअनि गुरमुखि हरि मेला ।
वाह वाह गोबिंदसिंघ आपे गुरु चेला ॥ ४ ॥

गुरु की ओर उन्मुख व्यक्तियों के माथे उस सत्य दरबार में उज्ज्वल होते हैं । धरती के आश्रय हरि-गुरु का प्रात: (भोर में) निश्चित रूप से स्मरण करो । हे गुरु गोबिंदसिंह ! तुम धन्य हो । तुम स्वयं ही गुरु हो और स्वयं ही चेला हो ।। २ ।। सम्पूर्ण सृष्टि उस प्रभु के "हुक्म" के अन्तर्गत ही व्यवहार करती है । जिन्होंने हुक्म को माना है उन्हें तुमने स्वयं गुरुमुख बना दिया है । कुछ ऐसे हैं जिनको तुमने स्वयं भ्रमों में भुला रखा है और उनका अन्यों में स्नेह लगा रखा है। कुछ को स्वयं सहायता करके तुमने नाम (प्रभु-नाम) प्रदान किया है । गुरुमुख का जन्म सफल है और स्वेच्छाचारी का जन्म दुविधाजनक है । हे गुरु गोबिंदसिंह! तुम धन्य हो । तुम स्वयं ही गुरु और स्वयं ही चेला हो ।। ३ ।। जिनके मस्तक पर सौभाग्य रेखा होती है उन्हें ही गुरुवाणी भाती है । मनोन्मुख व्यक्ति तो परित्यक्ता स्त्री की तरह हैं और गुरुमुख सुहागिनों के समान हैं । गुरुमुख तो उज्ज्वल हंस हैं परन्तु स्वेच्छाचारी व्यक्ति कौए हैं। मनोन्मुख व्यक्ति औंधे कमल हैं परन्तु गुरुमुख जगे हुए हैं अर्थात् खिले फूल के समान हैं। मनमुख व्यक्ति योनियों में भटकाया जाता है, जबकि गुरुमुख का मिलाप हरि से होता है। हे गुरु गोबिंदसिंह ! तुम धन्य हो । तुम स्वयं ही गुरु हो और स्वयं ही चेला हो ।। ४ ।।

सचा साहिबु अमर सचु सची गुरु बाणी ।
सचे सेती रतिआ सुख दरगह माणी ।
जिनि सतिगुरु सचु धिआइआ तिनि सुख विहाणी ।
मनमुखि दरगहि मारीऐ तिल पीड़ै घाणी ।
गुरमुखि जनम सदा सुखी मनमुखी दुहेला ।
वाह वाह गोबिंदसिंघ आपे गुरु चेला ॥ ५ ॥
सचा नामु अमोल है वडभागी सुणीऐ ।
सतिसंगति विचि पाईऐ नित हरि गुण गुणीऐ ।
धरम खेत कलिजुग सरीर बोईऐ सो लुणीऐ ।
सचा साहिब सचु निआइ पाणी जिउँ पुणीऐ ।
विचि संगति सचु वरतदा नित नेहु नवेला ।
वाह वाह गोबिंदसिंघ आपे गुरु चेला ॥ ६ ॥
ओअंकार अकार आपि है होसी भी आपै ।
उपावनहारु है गुर सबदी जापै ।
खिन महिं ढाहि उसारदा तिसु भाउ न बिआपै ।
कली काल गुरु सेवीऐ नहीं दुख संतापै ।

साहिब (परमात्मा) सत्य है उसका हुक्म (विधान) सत्य है और गुरु की वाणी भी सत्य है । जो सत्य से ओतप्रोत है, वह प्रभु-दरबार में सुख भोगता है । जिन्होंने सत्य रूपी सद्गुरु की उपासना की है उनकी आयु सुखपूर्वक बीती है। मनोन्मुखों को प्रभु-दरबार में ऐसे मारा जाता है जैसे तिलों को कोन्हू में पेरा जाता है । गुरुमुखों का जन्म सदैव सुखपूर्वक बीतता है और मनमुख दुबिधा में जीते हैं । हे गुरु गोबिंद सिंह ! तुम धन्य हो । तुम स्वयं ही गुरु और स्वयं ही चेला हो।। ५ ।। सत्यनाम अमूल्य है और सौभाग्य होने से उसे सुना जा सकता है । यह उस सत्संगति में प्राप्त होता है, जहाँ सदैव हरि के गुणों का चिंतन होता है । कलियुग में शरीर रूपी खेत से धर्म-अधर्म जो बोओगे वैसा ही फल काटोगे । पानी को छानने से जैसे पानी ही प्राप्त होता है वैसे ही सच्चे साहिब (परमात्मा) से सत्य ही निकलता है । "संगत" में नित्यनवीन सत्य ही व्याप्त रहता है । हे गुरु गोबिंदसिंह ! तुम धन्य हो । तुम स्वयं ही गुरु हो और स्वयं ही चेला हो ।। ६ ।। ओअंकार उस प्रभु का आकार है और यही रहेगा । वही सारी सृष्टि का रचयिता है और उसे गुरु के शब्द के माध्यम से जाना जा सकता है । वह क्षण भर में नष्ट करके फिर बना देता है और उसे कोई भी भय नहीं लगता।

सभ जगु तेरा खेलु है तूँ गुणी गहेला ।
वाह वाह गोबिंसिंघ आपे गुरु चेला ॥ ७ ॥
आदि पुरख अनभै अनंत गुरु अंत न पाईऐ ।
अपर अपार अगंम आदि जिसु लखिआ न जाईऐ ।
अमर अजाची सतिनामु तिसु सदा धिआईऐ ।
सचा साहिब सेवीऐ मन चिंदिआ पाइऐ ।
अनिक रूप धरि प्रगटिआ है एक अकेला ।
वाह वाह गोबिंदसिंघ आपे गुरु चेला ॥ ८ ॥
अबिनासी अनंत है घटि घटि दिसटाइआ ।
अघनासी आतम अभुल नहीं भुलै भुलाइआ ।
हरि अलख अकाल अडोल है गुरु सबदि लखाइआ ।
सरब बिआपी है अलेप जिसु लगै न माइआ ।
हरि गुरमुखि नाम धिआईऐ जितु लंघै वहेला ।
वाह वाह गोबिंदसिंघ आपे गुर चेला ॥ ९ ॥
निरंकारु नरहरि निधान निरवैरु धिआईऐ ।
नाराइण निरबाण नाथ मन अनदिन गाईऐ ।

कलियुग में गुरु की सेवा करने से दुःख और संताप नहीं लगता । सब जगत् तुम्हारा खेल है तुम गुणों के सागर हो । हे गुरु गोबिंदसिंह ! तुम धन्य हो । तुम स्वयं ही गुरु हो और स्वयं ही चेला हो ।। ७ ।। गुरु आदिपुरुष, निर्भय एवं अनन्त है । उसका भेद नहीं जाना जा सकता । वह अपार, अगम्य एवं आदि (कारण) है । उसे देखा नहीं जा सकता। वह अमर, अयाचक एवं सदैव स्थिर रहनेवाला "सतिनामु" है । सदैव उसका स्मरण करना चाहिए । सच्चे साहिब की उपासना करने से मनोवांछित फल प्राप्त होता है । वह एक अकेला अनेकों रूप धारण कर प्रकट हुआ है । हे गुरु गोबिंदसिंह ! तुम धन्य हो । तुम स्वयं ही गुरु एवं स्वयं चेला हो ।। ८ ।। वह अविनाशी अनन्त प्रभु घट-घट में दृष्टिगोचर होता है। पापनाशक, आत्मा को कभी न भूल सकनेवाला, भुलाए जाने पर भी न भूलने वाला है । वह हरि अलक्ष्य कालातीत, अचल है जिसे गुरु का शब्द ही दिखा सकता है । वह सर्वव्यापक एवं निर्लिप्त है । माया का प्रभाव उस पर नहीं होता । श्रेष्ठ हरि का नाम ही स्मरण करना चाहिए जिससे समय अच्छा व्यतीत हो । हे गुरु गोबिंदसिंह ! तुम धन्य हो । तुम स्वयं ही गुरु हो और स्वयं ही चेला हो ।। ९ ।। वह प्रभु निराकार, जीवों का स्वामी, (सर्व पदार्थों का) खजाना एवं वैररहित है ।

नरक निवारण दुख दलण जपि नरकि न जाईऐ ।
देणहार दइआल नाथ जो देइ सु पाईऐ ।
दुखभंजन सुख हरि धिआन माइआ विचि खेला ।
वाह वाह गोबिंदसिंघ आपे गुरु चेला ।।१० ।।
पारब्रहम पूरन पुरख परमेसुर दाता ।
पतित पावन परमातमा सरब अंतरि जाता ।
हरि दाना बीना बेसुमार बेअंत बिधाता ।
बनवारी बखसिंद आपु आपे पित माता ।
इह मानस जनम अमोल है मिलने की वेला ।
वाह वाह गोबिंदसिंघ आपे गुरु चेला ।।११ ।।
भै भंजन भगवान भजो भै नासन भोगी ।
भगति वछल भै भंजनो जपि सदा अरोगी ।
मनमोहन मूरति मुकंद प्रभु जोग सु जोगी ।
रसीआ रखवाला रचनहार जो करे सु होगी ।
मधुसूदन माधो मुरारि बहुरंगी खेला ।
वाह वाह गोबिंदसिंघ आपे गुरु चेला ।।१२ ।।

उसका स्मरण करना चाहिए । वह नारायण बंधनों से परे है । हे मन ! उस नाथ का दिन-रात गुणानुवाद कर । उस नर्क-निवारण, दु:खहंता का जाप करने से नर्क में जाने से बचा जाता है । वह दाता, दयालु नाथ जो देता है वही (जीवों द्वारा) प्राप्त किया जाता है । माया में खेलनेवाले हरि की उपासना दु:खभंजक एवं सुख देनेवाली है । हे गुरु गोबिंसिंह ! तुम धन्य हो । तुम स्वयं ही गुरु हो और स्वयं ही चेला हो ।। १० ।। परब्रह्म पूर्णपुरुष परमेश्वर एवं दाता है । परमात्मा सर्वान्तर्यामी एवं पतितपावन है। हरि दाता, अनन्त, असीम एवं विधाता है। वह बनवारी, दयालु परमात्मा स्वयं ही पिता और स्वयं ही माता है। यह दुर्लभ मनुष्य-जन्म ही उस प्रभु से मिलने का अवसर है। हे गुरु गोबिंदसिंह! तुम धन्य हो। तुम स्वयं ही गुरु हो और स्वयं ही चेला हो ।। ११ ।। हे भोगी जीव! उस भयभंजन भगवान का जाप करो। भक्तवत्सल और भयभंजन उस प्रभु की उपासना कर सदा के लिए नीरोग हो जाओ। वह मनमोहक स्वरूप वाला मुक्ति-प्रदाता प्रभु योगियों का भी योगी है। वह रसिक है, रक्षक है और रचयिता है। वह जो चाहता है वही होगा। वह प्रभु मधुसूदन, माधव मुरारि आदि अनेकों रूपों-रंगों में लीला करता है। हे गुरु गोबिंदसिंह ! तुम धन्य हो। तुम स्वयं ही गुरु हो और स्वयं ही चेला हो ।। १२ ।।

लोचा पूरन लिखनहारु है लेख लिखारी ।
हरि लालन लाल गुलाल सचु सचा वापारी ।
रावनहारु रहीमु राम आपे नर नारी ।
रिखीकेस रघुनाथ राइ जपीऐ बनवारी ।
परमहंस भै त्रास नास जपि रिदै सुहेला ।
वाह वाह गोबिंदसिंघ आपे गुरु चेला ।। १३ ।।
प्रान मीत परमातमा पुरखोतम पूरा ।
पोखनहार पातिसाह है प्रतिपालन ऊरा ।
पतित उधारन प्रानपति सद सदा हजूरा ।
वाह प्रगटिओ पुरख भगवंत रूप गुर गोबिंद सूरा ।
अनंद बिनोदी चोजीआ सचु सची वेला ।
वाह वाह गोबिंदसिंघ आपे गुरु चेला ।। १४ ।।
उहु गुरु गोबिंद होइ प्रगटिओ दसवाँ अवतारा ।
जिन अलख अपार निरंजना जपिओ करतारा ।
जिन पंथ चलाइओ खालसा धरि तेज करारा ।

इच्छाओं को पूर्ण करनेवाला वह सबके भाग्य लेखों का लेखक है । वह हरि प्यारों में से भी सबसे प्यारा है और सच्चा व्यापारी है । वह राम और रहीम के रूप में पूज्य है और स्वयं ही स्त्री एवं पुरुष है । वह ऋषिकेश (कृष्ण) एवं रघुनाथ (राम) और बनवारी है । उसका जाप करना चाहिए। उस परमहंस, भयनाशक का जाप कर हृदय को धन्य बनाना चाहिए । हे गुरु गोबिंदसिंह ! तुम धन्य हो । तुम स्वयं ही गुरु हो और स्वयं ही चेला हो ।। १३ ।। वह प्राणों का प्राण, मित्र, परमात्मा और पूर्ण पुरुषोत्तम है । वह देनेवाला बादशाह एवं अधूरों को पूरा करनेवाला प्रतिपालक है । वह पतित-उद्धारक, प्राणपति है जो सदैव सर्वत्र विराजमान है । वह भगवान, परमपुरुष गुरु गोबिंद (सिंह) शूरवीर के रूप में प्रकट हुआ है । सत्य की इस वेला में वह आनन्द करनेवाला । विनोदी एवं अनेकों कौतुक करनेवाला है । हे गुरु गोबिंदसिंह ! तुम धन्य हो । तुम स्वयं ही गुरु और स्वयं ही चेला हो ।। १४ ।। यह दसवाँ अवतार गुरु गोबिंदसिंह के रूप में प्रकट हुआ है। जिसने स्वयं अलक्ष्य, अपार निरंजन कर्त्ता (प्रभु) का जाप किया है। उसने महान् तेजस्विता धारण कर खालसा नामक अपना पंथ चलाया।

सिर केस धारि गहि खड़ग को सभ दुसट पछारा ।
सील जत की कछ पहरि पकड़ो हथिआरा ।
सच फते बुलाई गुरू की जीतिओ रण भारा ।
सध दैत अरिनि को घेर करि कीचै प्रहारा ।
तब सहिजे प्रगटिओ जगत मै गुरु जाप अपारा ।
इउँ उपजे सिंघ भुजंगीए नील अंबर धारा ।
तुरक दुसट सभि छै कीए हरि नाम उचारा ।
तिन आगै कोइ न ठहिरिओ भागे सिरदारा ।
जह राजे साह अभीरड़े होए सभ छारा ।
फिर सुन करि ऐसी धमक कउ काँपै गिरि भारा ।
तब सभ धरती हलचल भई छाड़े घरबारा ।
इउँ ऐसे दुंद कलेस महि खपिओ संसारा ।
तिहि बिनु सतिगुर कोई है नही भै काटनहारा ।
गहि ऐसे खड़ग दिखाईऐ को सकै न झेला ।
वाह वाह गोबिंदसिंघ आपे गुरु चेला ॥ १५ ॥
गुरुबर अकाल के हुकम सिउँ उपजिओ बिगिआना ।
तब सहिजे रचिओ खालसा साबत मरदाना ।

सिर पर केश धारण कर और हाथ में खड़ग पकड़कर उसने सब दुष्टों को पछाड़ फेंका। शील और संयम की कच्छ (घुटनों तक का जाँघिया) पहनकर उसने शस्त्र हाथ में पकड़े। गुरु (परमात्मा) की फ़तह का उच्चारण किया और भारी युद्धों को जीत लिया। उसने दैत्य रूपी सभी शत्रुओं को घेर कर उन पर प्रहार किया। तब जगत में स्वत: ही गुरु की अपार महिमा प्रकट हो गई। इस प्रकार नीले वस्त्र पहन कर भुजंगों जैसे सिंह (सिक्ख) पैदा हुए। हरि-नाम का उच्चारण करते हुए दुष्ट तुर्कों का नाश किया। उनके आगे कोई न ठहर सका और बड़े-बड़े सिरदार लोग भाग खड़े हुए। जिसके समक्ष राजा, शाह एवं अमीर सभी राख हो गये । उसकी आवाज को सुनकर बड़े-बड़े पर्वत भी काँप उठे । सारी धरती पर हलचल मच गई और सभी घरबार छोड़ गये। इस प्रकार के द्वंद्व और क्लेश में सारा संसार त्रस्त है। तेरे बिना हे सद्गुरु ! कोई अन्य भय का नाश करनेवाला नहीं है। तुमने खड़ग पकड़कर ऐसा दिखाया है कि कोई उसकी मार झेल नहीं सका। हे गुरु गोबिंदसिंह ! तुम धन्य हो। तुम स्वयं ही गुरु हो और स्वयं ही चेला हो ।। १५ ।। उस अकालपुरुष रूपी श्रेष्ठ गुरु से आत्मज्ञान उत्पन्न हुआ

इउँ उठे सिंघ भभकारि कै सभ जग डरपाना ।
मड़ी देवल गोर मसीत ढाहि कीए मैदाना ।
बेद पुरान खट सासत्रा फुन मिटे कुराना ।
बाँग सलात हटाइ करि मारे सुलताना ।
मीर पीर सभ छपि गए मजहब उलटाना ।
मलवाने काजी पड़ि थके कछु मरमु न जाना ।
लख पंडित ब्रहमन जोतकी बिख सिउ उरझाना ।
फुन पाथर देवल पूजि कै अति ही भरमाना ।
इउँ दोनो फिरके कपट मों रच रहे निदाना ।
इउँ तीसर मजहब खालसा उपजिओ परधाना ।
जिनि गुरु गोबिंद के हुकम सिउ गहि खड़ग दिखाना ।
तिह सभ दुसटन कउ छेदि कै अकाल जपाना ।
फिर ऐसा हुकम अकाल का जग मै प्रगटाना ।
तब सुंनत कोइ न करि सकै काँपति तुरकाना ।
इउँ उमत सभ मुहंमदी खपि गई निदाना ।
तब फते डंक जग मो घुरे दुख दुंद मिटाना ।

और तब सहज रूप में साबुत मर्द खालसा की रचना की गई । सिंह इस प्रकार दहाड़ कर उठे कि सारा जग डर गया । उन्होंने श्मशान, देवालय, क़ब्रिस्तान, मस्जिद अर्थात जहाँ भी पाखंड-प्रपंच होता था उन्हें गिरा कर मैदान बना दिया । वेद, पुराण, षट्शास्त्रों , कुरान के (स्वार्थियों द्वारा प्रचारित) प्रभाव को मिटा दिया। (प्रपंचियों द्वारा) बांग, सलात आदि के किये जा रहे कर्मकांडों को हटाकर इन्होंने सुल्तानों को भी मार गिराया । मीर और पीर सब छिप गये । इन्होंने (पाखंडों की धारा में बहे जाते) मज़हब को उलट दिया अर्थात् सही स्वरूप प्रदान किया। मौलाना और क़ाजी लोग पढ़कर थक गये हैं पर इन्होंने भी उस (खुदा के) रहस्य को नहीं समझा । इसी प्रकार लाखों पंडित, ब्राह्मण, ज्योतिषी विषय-विकारों में उलझे हुए थे । पत्थर और देवताओं की पूजा कर सभी अत्यन्त भ्रम में भूले हुए थे। इस प्रकार दोनों सम्प्रदाय कपट क्रियाओं में पूर्णतः लीन थे। इस प्रकार प्रधान रूप में कार्य करनेवाला तीसरा धर्म "खालसा" उत्पन्न हुआ जिसने गुरु गोबिन्दसिंह के आदेश से खड्ग हाथ में पकड़ा। उसने सभी दुष्टों को मारकर सबको उस अकालपुरुष का जाप कराया। उस अकालपुरुष (परमात्मा) का अब ऐसा हुक्म इस संसार में चला कि अब सुन्नत कोई नहीं कर सकता था

इउँ तीसर पंथ रचाइअनु वड सूर गहेला ।
वाह वाह गोबिंदसिंघ आपे गुर चेला ।। १६ ।।
जागे सिंघ बलवंत बीर सभ दुसट खपाए ।
दीन मुहंमदी उठ गइओ हिंदक ठहिराए ।
तहि कलमा कोइ न पढ़ सकै नहीं जिकरु अलाए ।
निवाज़ दरूद न फाइता नह लंड कटाए ।
यह राहु शरीअत मेट करि मुसलम भरमाए ।
गुरु फते बुलाई सभन कउ सच खेल रचाए ।
निज सूर सिंघ वरिआमड़े बहु लाख जगाए ।
सभ जग तिनहूँ लूट करि तुरकाँ चुणि खाए ।
फिर सुख उपजाइओ जगत मै सभ दुख बिसराए ।
निज दोही फिरी गोबिंद की अकाल जपाए ।
तिह निरभउ राज कमाइअनु सच अटल चलाए ।
इउँ कलिजुग मै अवतार धारि सतिगुर वरताए ।

और तुर्क काँपने लगे । इस प्रकार अन्ततः इस्लामी जनता व्याकुल हो उठी । तब जगत में खालसा की जीत का डंका बजा और दुख-द्वन्द्व मिट गये । इस प्रकार इस महाबली शूरवीर ने तीसरे पंथ की रचना की । हे गुरु गोबिंदसिंह ! तुम धन्य हो। तुम स्वयं ही गुरु हो और स्वयं ही चेला हो ।। १६ ।। बलवान सिंह शूरवीर जग गये और उन्होंने सभी दुष्टों को नष्ट कर दिया । इस्लाम धर्म यहाँ से उठ गया अर्थात् समाप्त हो गया और अब हिन्दू बचकर स्थिर हुए । अब कोई कलमा भी नहीं पढ़ सकता और न ही अल्लाह का कोई जिक्र चलता है । अब न नमाज रही, न दरूद की क्रिया रही; न फातिमा की चर्चा होती है और न कोई लिंग कटवाता अर्थात् सुन्नत करवाता है । इस प्रकार शरीयत के इन कर्मकांडों को समाप्त कर मुसलमानों को व्याकुल कर दिया है । सच्चा खेल खेलते हुए गुरु ने सबको "फ़तह" (वाहिगुरू जी का खालसा, वाहिगुरू जी की फ़तह) का अभिवादन किया। इन्होंने अपने लाखों सिंह शूरवीर (निद्रा से) जगाये। उन्होंने सारे संसार को फ़तह कर लिया और तुर्कों को चुन-चुनकर खा गये । सारे संसार में दुबारा सुख पैदा हो गया और लोग दुःखों को भूल गये । (सारे जगत) में गुरु गोबिंदसिंह की दुहाई (जय-जयकार) होने लगी, क्योंकि इसने एक निराकार प्रभु का जाप जपाया है । उसने निर्भय होकर राज्य किया और सत्यशील न्याय का मार्ग चलाया। इस प्रकार कलियुग में अवतार धारण करके इसे सतयुग बना दिया ।

सभ तुरक मलेछ खपाइ करि सच बणत बनाए ।
तब सकल जगत कउ सुख दीए दुख मारि हटाए ।
इउँ हुकम भइओ करतार का सभ दुंद मिटाए ।
तब सहजे धरम प्रगासिआ हरि हरि जस गाए ।
वह प्रगटिओ मरद अगंमड़ा वरीआम इकेला ।
वाह वाह गोबिंदसिंघ आपे गुरु चेला ।। १७ ।।
निज फ़ते बुलाई सतिगुरू कीनो उजीआरा ।
झूठ कपट सभ छपि गए सच सच बरतारा ।
फिर जग होम ठहिराइ कै निज धरम सवारा ।
तुरक दुंद सभ उठ गइओ रचिओ जैकारा ।
जह उपजे सिंघ महाबली खालस निरधारा ।
सभ जग तिनहूँ बस कीओ जप अलख अपारा ।
गुर धरम सिमरि जग चमकिओ मिटिओ अंधिआरा ।
तब कुसल खेम आनंद सिउँ बसिओ संसारा ।
हरि वाहिगुरू मंतर अंगम जग तारनहारा ।
जो सिमरहि नर प्रेम सिउ पहुँचै दरबारा ।
सभ पकड़ो चरन गोबिंद के छाडो जंजारा ।

सब तुर्क-म्लेच्छों को नष्ट कर सत्य का बोलबाला किया । दु:खों को मार भगाया और सारे जगत को सुख दिया, इस प्रकार कर्ता का हुक्म पुन: चलने लगा और सारे द्वंद्व मिट गये । हरि-यश को गानेवाले इस धर्म का तब सहज रूप से ही प्रकाश हुआ। वह अकेला ही निराला शूरवीर मर्द प्रगट हुआ । हे गुरु गोबिंदसिंह ! तुम धन्य हो। तुम स्वयं ही गुरु और स्वयं चेला हो ।। १७ ।। सद्गुरु ने अपना फ़तह घोष किया और चारों ओर प्रकाश कर दिया । सारे झूठ, कपट छिप गये और सत्य का ही व्यवहार होने लगा । यज्ञ-होम आदि को स्थगित कर उन्होंने अपने धर्म को परिष्कृत किया। जयघोष (बोले सो निहाल सत स्री अकाल) के बोलते ही तुर्कों के झुंड भाग खड़े हुए। इस जयघोष से शुद्ध, किसी पर आश्रित न रहनेवाले यहाँ बली सिंह पैदा हुए । इन्होंने उस अलक्ष्य प्रभु का जाप कर सारे संसार को वश में कर लिया। धर्म का स्मरण कर गुरु जग में प्रगट हुआ और सारा अंधकार मिट गया । अब सारा संसार कुशल-क्षेम एवं आनन्द से बसने लगा । हरि का "वाहिगुरू" मंत्र अगम्य है और सारे-सारे संसार को पार करनेवाला है । जो व्यक्ति प्रेम से इसका स्मरण करते हैं । वे प्रभु-दरबार में पहुँच जाते हैं ।

नातरु दरगह कुटीअनु मनमुखि कूड़िआरा ।
तह छूटै सोई जु हरि भजै सभ तजै बिकारा ।
इस मन चंचल कउ घेर करि सिमरै करतारा ।
तब पहुँचे हरि हुकम सिउँ निज दसवैं दुआरा ।
फिर इउँ सहिजे भेटै गगन मै आतम निरधारा ।
तब वै निरखैं सुरग महि आनंद सुहेला ।
वाह वाह गोबिंदसिंघ आपे गुर चेला ॥ १८ ॥
वहि उपजिओ चेला मरद का मरदान सदाए ।
जिनि सभ प्रिथवी कउ जीत करि नीसान झुलाए ।
तब सिंघल कउ बखस करि बहु सुख दिखलाए ।
फिर सभ प्रिथवी के ऊपरे हाकम ठहिराए ।
तिनहूँ जगत सँभाल करि आनंद रचाए ।
तह सिमरि सिमरि अकाल कउ हरि हरि गुन गाए ।
वाहगुरु गोबिंद गाजी सबल जिनि सिंघ जगाए ।
तब भइओ जगत सभ खालसा मनमुख भरमाए ।
इइँ उठि तबके बल बीर सिंघ ससत्र झमकाए ।
तब सभ तुरकन को छेद करि अकाल जपाए ।

सभी उस (गुरु गोबिन्दसिंह) के चरण पकड़ो और अन्य सभी जंजालों को छोड़ो । अन्यथा प्रभु-दरबार में झूठे मनोन्मुख व्यक्तियों को दण्डित किया जायेगा । वहाँ वही छूटता है जो सब विकारों को त्याग कर हरि का भजन करता है और इस चंचलपन को घेर-घारकर कर्ता (प्रभु) का स्मरण करता है । वह परमात्मा की आज्ञा के अन्तर्गत ही दशम द्वार तक पहुँच पाता है । तब वह सहज भाव में स्थित हो अपने अन्दर ही निराधार आत्मा का साक्षात्कार करता है। जीव तत्पश्चात् स्वर्ग के आनन्द का अनुभव करता है। हे गुरु गोबिंदसिंह ! तुम धन्य हो । तुम स्वयं ही गुरु हो और स्वयं ही चेला हो ।। १८ ।। वह परमपुरुष का चेला कहलानेवाला मर्द (गुरु गोबिंदसिंह) पैदा हुआ । जिसने सारी पृथ्वी को जीतकर अपना झंडा झुलाया। उसने सिंहों पर कृपा कर उन्हें बहुत सुख दिलाया। सारी पृथ्वी पर उसने अपने हाकिम नियुक्त कर दिये। उन्होंने भी संसार को सँभाला और आनन्द किया। उन सबने अकाल की उपासना करते हुए उस प्रभु के गुण गाये । वाहिगुरु गोबिंदसिंह ! तुम वह सबल शूरवीर हो जिसने सिंहों में जागृति भर दी है । सारा जगत ही अब खालसा बन गया है और मनोन्मुख व्यक्ति भ्रमों में भटक रहे हैं।

सभ छत्रपती चुनि चुनि हते कहूँ टिकनि न पाए ।
तब जग मैं धरम परगासिओ सचु हुकम चलाए ।
यह बारह सदी निबेड़ करि गुर फड़े बुलाए ।
तब दुसट मलेछ सहिजे खपे छल कपट उडाए ।
इउँ हरि अकाल के हुकम सों रण जुध मचाए ।
तब कुदे सिंघ भुजंगीए दल कटक उडाए ।
इउँ फते भई जग जीत करि सचु तखत रचाए ।
बहु दीओ दिलासा जगत को हरि भगति द्रिड़ाए ।
तब सभ प्रिथवी सुखीआ भई दुख दरद गवाए ।
फिर सुख निहचल बखसिओ जगत भै त्रास चुकाए ।
गुरदास खड़ा दर पकड़ि कै इउँ उचरि सुणाए ।
हे सतिगुर जम त्रास सों मुहि लेहु छुडाए ।
जब हउँ दासन को दासरो गुर टहिल कमाए ।
तब छूटै बंधन सकल फुन नरकि न जाए ।
हरिदासाँ चिंदिआ सद सदा गुर संगति मेला ।
वाह वाह गोबिंदसिंघ आपे गुरु चेला ॥ १९ ॥

इस प्रकार अब बलवान सिंह शस्त्र चमकाते हुए दहाड़ उठे हैं और सब तुर्कों को मारकर अकालपुरुष का जाप करते हैं । इन्होंने सब छत्रपतियों को चुन-चुनकर मार डाला है और कोई भी इनके सामने टिक नहीं पाया है । जगत में धर्म का प्रसार हुआ है और सत्य का हुक्म (आदेश) चलने लगा है । गुरु ने (मुसलमानों की) बारह सदियों से जमी हुकूमत को नष्ट कर सबको पकड़ लिया है। छल और कपट से उड़नेवाले दुष्ट म्लेच्छ अब आसानी से नष्ट हो गये हैं। इस प्रकार इन योद्धाओं ने हरि अकाल के आदेश से युद्ध किया है। इस युद्ध में सिंह रूपी भुजंगों के दल कूद पड़े हैं और उन्होंने योद्धाओं के अपार समूहों को उड़ा दिया है। इस प्रकार इन्होंने जगत को जीता है और सत्य के तख्त की रचना की है। इन्होंने संसार को धैर्य बँधाया है और सबको हरि की भक्ति दृढ़ की है। सारी पृथ्वी दुःख-दर्द को गँवाकर सुखी हो गयी है। जगत् को अचल सुख इन्होंने प्रदान किया है और भय एवं त्रास का निवारण कर दिया है। गुरदास द्वार पर खड़ा होकर यह कह रहा है कि हे सद्गुरु ! मुझे यम के भय से मुक्त कर दो। जब मैं आपके दासों का दास और गुरु का सेवक हूँ तो मेरे सारे बंधन कट जाने चाहिए और मैं नर्क को न जाऊँ। हरि के दासों ने तो सदैव सद्संगति और गुरु के मिलाप का चिन्तन-ध्यान किया है। हे गुरु गोबिंदसिंह ! तुम धन्य हो । तुम स्वयं ही गुरु हो और स्वयं ही चेला हो ।। १९ ।।

संत भगत गुर सिख हहि जग तारन आए ।
से परउपकारी जग मो गुरु मंत्र जपाए ।
जप तप संजम साध करि हरि भगति कमाए ।
तहि सेवक सो परवान है हरिनाम द्रिड़ाए ।
काम करोध फुन लोभ मोह अहंकार चुकाए ।
जोग जुगति घटि सेध करि पवणा ठहिराए ।
तब खट चकरा सहिजे घुरे गगना घरि छाए ।
निज सुंन समाधि लगाइ कै अनहद लिव लाए ।
तब दरगह मुख उजले पति सिउँ घरि जाए ।
कली काल मरदान मरद नानक गुन गाए ।
यह ''वार भगउती'' जो पढ़ै अमरा पद पाए ।
तिह दूख संताप न कछु लगै आनंद वरताए ।
फिर जो चितवै सोई लहै घटि अलख लखाए ।
तब निस दिन इस वार सों मुख पाठ सुनाए ।
सो लहै पदारथ मुकति पद चढ़ि गगन समाए ।
तब कछू न पूछै जम धरम सभ पाप मिटाए ।

गुरु के सिक्ख संत एवं भक्त हैं जो जगत को पार उतारने के लिए आये हैं। ये जगत में परोपकारी हैं और गुरु के मंत्र का जाप जपाते हैं। जप,तप, संयम एवं साधना करके ये हरिभक्ति को कमाई करते हैं। जो हरि के नाम को मन में दृढ़ करता है वही सेवक प्रभु के दरबार में स्वीकृत होता है। वह काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं अहंकार को समाप्त कर देता है । योग की युक्ति की साधना मन में ही करके यह पवन के समान चंचल मन को स्थिर करता है। तब स्वत: षट्चक्रों के नाद सुनाई पड़ जाते हैं और गगनमंडल में पहुँचा जाता है। ये शून्य समाधि लगाकर अनहद् शब्द में सुरति लीन कर लेते हैं। इस प्रकार प्रभु दरगाह में इनके मुख उज्ज्वल होते हैं और ये ससम्मान अपने घर (परमात्मा) में लीन हो जाते हैं। कलियुग में मर्दों में भी वह श्रेष्ठ मर्द है जो गुरु नानक का गुणानुवाद करता है। इस भगवती की वार को जो पढ़ेगा वह अमरपद को प्राप्त हो जायेगा। उसे दु:ख, संताप कुछ भी नहीं लग सकता और वह आनंद का प्रसार करेगा। वह मनोवांछित फल प्राप्त करेगा और अपने अंदर ही उस अलक्ष्य प्रभु का दर्शन करेगा। जो रात-दिन इस वार का पाठ सुनाएगा, वह मुक्ति-पदार्थ प्राप्त करेगा और गगनमंडल में निवास करेगा। यम एवं धर्मराज उससे कुछ नहीं पूछेगा और उसके सब पाप मिट जायेंगे।

तब लगै न तिसु जमडंड दुख नहिं होइ सुहेला ।
वाह वाह गोबिंदसिंघ आपे गुर चेला ॥ २० ॥
हरि सतिगुर नानक खेल रचाइआ ।
अंगद कउ प्रभु अलख लखाइआ ।
प्रिथम महल हर नामु जपाइओ ।
दुतीए अंगद हरि गुण गाइओ ।
तीसर महल अमर परधाना ।
जिह घट महि निरखे हरि भगवाना ।
जल भरिओ सतिगुरु के दुआरे ।
तब इह पाइओ महल अपारे ।
गुरु रामदास चउथे परगासा ।
जिनि रटे निरंजन प्रभु अबिनासा ।
गुरू अरजन पंचम ठहिराइओ ।
जिन सबद सुधार गरंथ बणाइओ ।
ग्रंथ बणाइ उचार सुनाइओ ।
तब सरब जगत मै पाठ रचाइओ ।
करि पाठ ग्रंथ जगत सभ तरिओ ।
जिह निस बासुर हरि नाम उचरिओ ।
गुर हरिगोबिंद खसटम अवतारे ।

उसे यमदंड भी नहीं लगेगा और दुबिधा में वह दुःखी भी नहीं होगा । हे गुरु गोबिंदसिंह ! तुम धन्य हो । तुम स्वयं ही गुरु हो और स्वयं चेला हो ।। २० ।। हरि ने सद्गुरु नानक के रूप में लीला की है और अंगद (गुरु) को अलक्ष्य प्रभु का दर्शन करा दिया । पहले (गुरु के) रूप में हरि-नाम का स्मरण कराया और दूसरे रूप में हरि का गुणानुवाद किया । तीसरे रूप में अमरदास (गुरु) प्रधान पद पर नियुक्त हुए । घर में ही हरि भगवान के दर्शन किये और गुरु के द्वार पर जल भर कर इस अपार पद (महल) को प्राप्त किया । चौथे शरीर में गुरु रामदास का प्रकाश हुआ जिसने निरंजन अविनाशी प्रभु का जाप किया । पाँचवें गुरु अरजन माने जाते हैं, जिसने शब्दों का सम्पादन कर (गुरू-) ग्रन्थ (साहिब) बना दिया । (गुरू-) ग्रन्थ (साहिब) बनाकर उसका उच्चारण बताया। तब सारे जगत में उसका पाठ कराया । उस ग्रन्थ का पाठकर सारा संसार पार हो गया जिसके माध्यम से लोगों ने रात-दिन हरि-नाम का जाप किया । गुरु हरिगोबिंद सिंह छठवें अवतार थे

जिनि पकड़ि तेग बहु दुसट पछारे ।
इउँ सभ मुगलन का मन बउराना ।
तब हरि भगतन सों दुंद रचाना ।
इउँ करि है गुरदास पुकारा ।
हे सतिगुरु मुहि लेहु उबारा ॥ २१ ॥
सपतम महिल अगम हरिराइआ ।
जिन सुंन धिआन करि जोग कमाइआ ।
चढ़ि गगन गुफा महि रहिओ समाई ।
जहा बैठ अडोल समाधि लगाई ।
सभ कला खैंच करि गुपत रहायं ।
तहि अपन रूप को नहिं दिखलायं ।
इउँ इस परकार गुबार मचाइओ ।
तह देव अंस को बहु चमकाइओ ।
हरिकिसन भयो असटम बल बीरा ।
जिन पहुँचि देहली तजिओ सरीरा ।
बाल रूप धरि स्वाँग रचाइओ ।
तब सहिजे तन को छोडि सिधाइओ ।
इउ मुगलनि सीस परी बहु छारा ।
वै खुद पति सो पहुँचे दरबारा ।

जिन्होंने तलवार पकड़कर बहुत से दुष्टों का संहार किया इस प्रकार सब मुगलों का मन पगला उठा और उन्होंने हरि के भक्तों से द्वंद्व शुरू कर दिया । इस प्रकार गुरुदास यह पुकार कर रहा है कि हे सद्गुरु! मुझे बचा लो ।। २१ ।। सातवें शरीर में हरिराय (गुरु) हुए जिन्होंने शून्य ध्यान लगाकर (राज) योग की साधना की । वे गगनगुफा (दशम द्वार) में चढ़ कर अचल समाधि में स्थित रहे । सब कलाओं को खींचकर अपने में समेट लिया और गुप्त रखा । उन्होंने अपना (विराट) रूप किसी को नहीं दिखाया। इस प्रकार जो घोर अंधकार फैला हुआ था उसमें उन्होंने अपने देवत्व अंश का प्रकाश फैलाया । हरिकृष्ण आठवें बलवीर हुए जिन्होंने दिल्ली पहुँचकर अपना शरीर त्याग दिया। बाल-रूप में ही उसने स्वाँग-लीला की और सहजभाव में ही तन त्यागकर चल दिये । इस प्रकार मुगलों के सिर पर अत्यधिक राख (कालिख) पड़ी और वह (गुरु हरिकृष्ण) ससम्मान प्रभु-दरबार में जा पहुँचे।

औरंगे इह बाद रचाइओ ।
तिन अपना कुल सभ नास कराइओ ।
इउ ठहकि ठहकि मुगलनि सिरि झारी ।
फुन होइ पापी वह नरक सिधारी ।
इउ करि है गुरदास पुकारा ।
हे सतिगुर मुहि लेहु उबारा ॥ २२ ॥
गुरू नानक सभ के सिर ताजा ।
जिह कउ सिमरि सरे सभ काजा ।
गुर तेग बहादर स्वाँग रचायं ।
जिह अपन सीस दे जग ठहरायं ।
इस बिधि मुगलन को भरमाइओ ।
तब सतिगुरु अपना बल न जनाइओ ।
प्रभु हुकम बूझि पहुँचे दरबारा ।
तब सतिगुरु कीनी मिहर अपारा ।
इउँ मुगलनि को दोखा लगाना ।
होइ खराब खापि गए निदाना ।
इउँ नऊँ महिलों की जुगति सुनाई ।
जिह करि सिमरन हरि भगति रचाई ।
हरि भगति रचाइ नाम निसतारे ।
तब सभ जग मै प्रगटिओ जैकारे ।

औरंगजेब ने विवाद खड़ा किया और अपने सारे कुल का नाश करा लिया । परस्पर झगड़ों में मुगलों के सिर काटे गये और अन्ततः सभी पापी नर्क में पहुँच गये । इस प्रकार गुरदास पुकार कर रहा है कि हे सद्गुरु ! मुझे बचा लो ।। २२ ।। गुरु नानक सबक सिरमौर हैं । उनका स्मरण करने से सारे काम बन जाते हैं। अब गुरु तेगबहादुर ने लीला की और अपना सिर देकर जगत को बचा लिया । मुगल भ्रम में ही भटकते रहे पर गुरु ने अपने बल का प्रदर्शन नहीं किया । वे प्रभु का आदेश मान कर उस परम सम्राट् (प्रभु के दरबार) में पहुँच गये और इस प्रकार सब जीवों पर अपार कृपा की, (क्योंकि उनका धर्म बचाए रखा) । इस प्रकार मुगलों को और भी दोष लगा और वे सभी जल्दी ही नष्ट हो गये । यह तो उन नौ गुरुओं की युक्ति कह सुनाई है जिन्होंने स्वयं भी स्मरण किया और हरि-भक्ति का

इउँ करि है गुरदास पुकारा ।
हे सतिगुरु मुहि लेहु उबारा ॥ २३ ॥
गुरु गोबिंद दसवाँ अवतारा ।
जिन खालसा पंथ अजीत सुधारा ।
तुरक दुसट सभ मारि बिदारे ।
सभ प्रथवी कीनी गुलजारे ।
इउँ प्रगटे सिंघ महाँ बलबीरा ।
तिन आगे को धरै न धीरा ।
फते भई दुख दुंद मिटाए ।
तह हरि अकाल का जाप जपाए ।
प्रिथम महल जपिओ करतारा ।
तिन सभ प्रिथवी को लीओ उबारा ।
हरि भगति द्रिड़ाइ नरू सभ तारे ।
जब आगिआ कीनी अलख अपारे ।
इउँ सतिसंगति का मेल मिलायं ।
जह निस बासुर हहि हरि गुन गायं ।
इउँ करि है गुरदास पुकारा ।
हे सतिगुरु मुहि लेहु उबारा ॥ २४ ॥
तूँ अलख अपार निरंजन देवा ।
जिह ब्रहमा बिसनु सिव लखै न भेवा ।

प्रचार भी किया । हरि-भक्ति का प्रसार कर "नाम" के माध्यम से लोगों को पार किया और तब सारे जगत् में जय-जयकार हुआ । इस प्रकार गुरदास पुकार करता है कि हे सद्गुरु ! मेरा उद्धार कर दो ।। २३ ।। गुरु गोविंद (सिंह) दसवाँ अवतार है, जिसने अजेय खलसा पंथ बनाया है । सभी दुष्ट तुर्क मारकर नष्ट कर दिये और सारी पृथ्वी को हरा-भरा कर दिया। इस प्रकार बलवान सिंह प्रकट हुए जिनके सामने कोई धैर्य धारण नहीं करता था । उनकी जीत हुई और उन्होंने दु:ख द्वन्द्व मिटा दिये । उन्होंने हरि अक़ाल का जाप जपाया, गुरु शरीरों ने पहले स्वयं कर्त्ता प्रभु का जाप जपा और तब उन्होंने सारी पृथ्वी को उबार लिया। हरि-भक्ति दृढ़ करवाकर अलख प्रभु की आज्ञानुसार लोगों को पार उतार दिया । इस प्रकार उन्होंने सत्संगति का मेल-मिलाप भी बना दिया जहाँ रात-दिन प्रभु का गुणानुवाद ही होता है । इस प्रकार गुरदास विनती करता है। हे सद्गुरु! मुझे उबार लो ।। २४ ।। तुम वह अलख-अपार निरंजनदेव हो जिसका रहस्य ब्रह्मा,

तुम नाथ निरंजन गहर गंभीरे ।
तुम चरननि सों बाँधे धीरे ।
अब गहि पकरिओ तुमरा दरबारा ।
जिउँ जानहु तिउँ लेहु सुधारा ।
हम कामी क्रोधी अति कूड़िआरे ।
तुम ही ठाकुर बखसनहारे ।
नहीं कोई तुम बिणु अवरु हमारा ।
जो करि है हमरी पतिपारा ।
तुम अगम अडोल अतोल निराले ।
सभ जग की करिहो प्रतिपाले ।
जल थल महीअल हुकम तुमारा ।
तुम कउ सिमरि तरिओ संसारा ।
इउँ करि है गुरदास पुकारा ।
हे सतिगुरु मुहि लेहु उबारा ॥ २५ ॥
तुम अछल अछेद अभेद कहायं ।
जहा बैठि तखत पर हुकम चलायं ।
तुझ बिनु दूसरि अवर न कोई ।
तुम एको एकु निरंजन सोई ।
ओअंकार धरि खेल रचायं ।
तुम आप अगोचर गुपत रहायं ।

विष्णु और शिव भी नहीं जान सके । हे नाथ ! तुम निरंजन, गहन् एवं गंभीर हो और तुम्हारे ही चरणों में मुझे धैर्य बँधता है । मैंने अब तुम्हारा दरबार (आसरा) पकड़ लिया है । तुम जैसे ठीक समझो मेरा सुधार कर दो । हम कामी, क्रोधी और महा झूठे हैं, पर तुम क्षमाशील ठाकुर हो । हमारा तुम्हारे बिना अन्य कोई नहीं है जो हमारी रक्षा (पोषण) कर सके । तुम अटल, अगम्य, अतुलनीय एवं निराले हो और सारे संसार का पोषण करने वाले हो । जल, स्थल एवं आकाश में तुम्हारा ही आदेश चलता है और तुम्हारा ही स्मरण कर सारा संसार पार उतर गया है । इस प्रकार गुरदास पुकार लगा रहा है कि हे सद्गुरु ! मुझे उबार लो ।। २५ ।। तुम अछल, अछेद एवं अभेद कहलाते हो और तख्त पर बैठकर हुक्म चलाते हो । तुम्हारे बिना दूसरा अन्य कोई नहीं है; तुम एक ही एक निरंजन हो । तुमने ओअंकार का रूप धारण कर लीला रचाई और

प्रभ तुमरा खेल अगम निरधारे ।
तुम सभ घट भीतर सभ ते न्यारे ।
तुम ऐसा अचरज खेल बनाइओ ।
जिह लख ब्रहमंड को धारि खपाइओ ।
प्रभु तुमरा मरमु न किनहू लखिओ ।
जह सभ जग झूठे धंदे खपिओ ।
बिनु सिमरन ते छुटै न कोई ।
तुम को भजै सु मुकता होई ।
गुरदास गरीब तुमन का चेला ।
जपि जपि तुम कउ भइओ सुहेला ।
इह भूल चूक सभ बखश करीजै ।
गुरदास गुलाम अपना करि लीजै ।
इउँ करि है गुरदास पुकारा ।
हे सतिगुरु मुहि लेहु उबारा ॥ २६ ॥
इह कवन कीट गुरदास बिचारा ।
जो अगम निगम की लखै सुमारा ।
जब करि किरपा गुर बूझ बुझाई ।
तब इह कथा उचारि सुनाई ।
जिह बिन हुकम इक झुलै न पाता ।
फुनि होइ सोई जे करै बिधाता ।

अपने आपको अगोचर एवं गुप्त रखा । हे प्रभु ! तुम्हारा खेल अगम्य एवं निराधार है । तुम सभी घरों में स्थित हो और सबसे न्यारे हो । तुमने ऐसा आश्चर्यपूर्ण खेल बनाया है कि लाखों ब्रह्मांडों को धारण कर फिर उन्हें नष्ट कर दिया है । हे प्रभु! तुम्हारा रहस्य कोई नहीं जान सका है; यह सारा संसार तो झूठे क्रिया-कलापों में ही परेशान है । बिना (प्रभु-) स्मरण के कोई नहीं छूट सकता; तुम्हारा भजन जो करता है वह मुक्त हो जाता है । ग़रीब गुरदास तुम्हारा ही शिष्य है जो तुम्हें जप-जपकर सफल हो गया है । मेरी भूल-चूक सब माफ़ कर दो और इस गुरदास को अपना सेवक बना लो । इस प्रकार गुरदास यह पुकार लगा रहा है कि हे सद्गुरु ! मुझे उबार लो ।। २६ ।। यह गुरदास भला कहाँ का कीट (कीड़ा) है जो आगम और निगम के रहस्य को समझ सके। गुरु ने जब कृपा की तब मैंने यह कथा उच्चारण कर सुना दी । जिसके आदेश के बिना एक

हुकमै अंदरि सगल अकारे ।
बुझै हुकम सु उतरै पारे ।
हुकमै अंदरि ब्रहम महेसा ।
हुकमै अंदरि सुर नर सेसा ।
हुकमै अंदरि बिसनु बनायं ।
जिन हुकम पाइ दीवान लगायं ।
हुकमै अंदरि धरम रचायं ।
हुकमै अंदरि इंदर उपायं ।
हुकमै अंदरि ससि अरु सूरे ।
सभ हरि चरण की बाँछहि धूरे ।
हुकमै अंदरि धरनि अकासा ।
हुकमै अंदरि सासि गिरासा ।
जिह बिना हुकम कोई मरै न जीवै ।
बूझै हुकम सो निहचल थीवै ।
इउँ करि है गुरदास पुकारा ।
से सतिगुरु मुहि लेहु उबारा ॥ २७ ॥
इह 'वार भगउती' महाँ पुनीते ।
जिस उचरति उपजति परतीते ।
जो इस वार सों प्रेम लगावै ।
सोई मन बांछित फल पावै ।

पत्ता भी नहीं हिलता है वह विधाता ही जो चाहेगा वह होगा । उसके "हुक्म" के अन्तर्गत ही सारे आकार हैं । जो उसके हुक्म को बूझेगा वही पार उतरेगा । ब्रह्मा, महेश, सुर, नर, शेष आदि सभी उसके हुक्म के अन्दर ही (कार्य करते) हैं । हुक्म के अन्तर्गत ही विष्णु की रचना हुई, जिसने उस प्रभु का हुक्म मान कर ही दरबार लगाया । हुक्म में ही धर्मराज की रचना हुई और हुक्म में ही इन्द्र की उत्पत्ति हुई । शशि एवं सूर्य भी हुक्म में ही हैं और सभी हरि के चरणों की धूल चाहते हैं । धरती,आकाश, श्वास और ग्रास सभी कुछ हुक्म के अन्तर्गत ही हैं। जिसके हुक्म के बिना कोई जीता-मरता नहीं, उस हुक्म को जो बूझ लेता है, वह अटल हो जाता है । इस प्रकार गुरदास पुकारता है कि हे सद्गुरु ! मुझे उबार लो ।। २७ ।। भगउती की यह वार महापवित्र है जिसके उच्चारण से प्रेम पैदा होता है । जो भी इस वार से प्रेम लगाता है वह मनोवांछित

मिटहिं सगल दुख दुंद कलेसा ।
फुन प्रगटैं बहु सुख परवेसा ।
जो निस बासुर रटहिं इक वारे ।
सो पहुँचे धुर हरि दरबारे ।
इह वार भगउती समापति कीनी ।
अब घट बिदिआ की सभ बिधि चीनी ।
इउ सतिगुरु साहिब भए दिआला ।
तब छूट गए सभ ही जंजाला ।
करि किरपा प्रभ हरि गिरधारे ।
तहि पकड़ि बाँह भउजल सों तारे ।
इउँ करि है गुरदास पुकारा ।
हे सतिगुरु मुहि लेहु उबारा ॥ २८ ॥

॥ इती ॥

॥ वारां गिआन रतनावली समाप्त ॥

फल प्राप्त करता है । उसके सकल दु:ख-द्वन्द्व-क्लेश मिट जाते हैं और बहुत से सुख प्रकट हो उसमें प्रवेश कर जाते हैं । जो रात-दिन इस वार का जाप करते हैं वे सीधे उस हरि के दरबार में पहुँच जाते हैं । यह भगउती की वार अब मैंने समाप्त की है और इसके माध्यम से मन में ही मैंने विद्या की सर्वविधियों को पहचान लिया है । इस प्रकार सद्गुरु साहिब दयालु हो गये हैं और मेरे सभी जंजाल छूट गये हैं । हरि, गिरधारी प्रभु ने कृपा की और बाँह पकड़कर भवसागर से पार उतार लिया। इस प्रकार गुरदास पुकार करता है कि हे सद्गुरु ! मुझे उबार लो ।। २८ ।।

॥ वारां ज्ञानरत्नावली समाप्त ॥

* * *